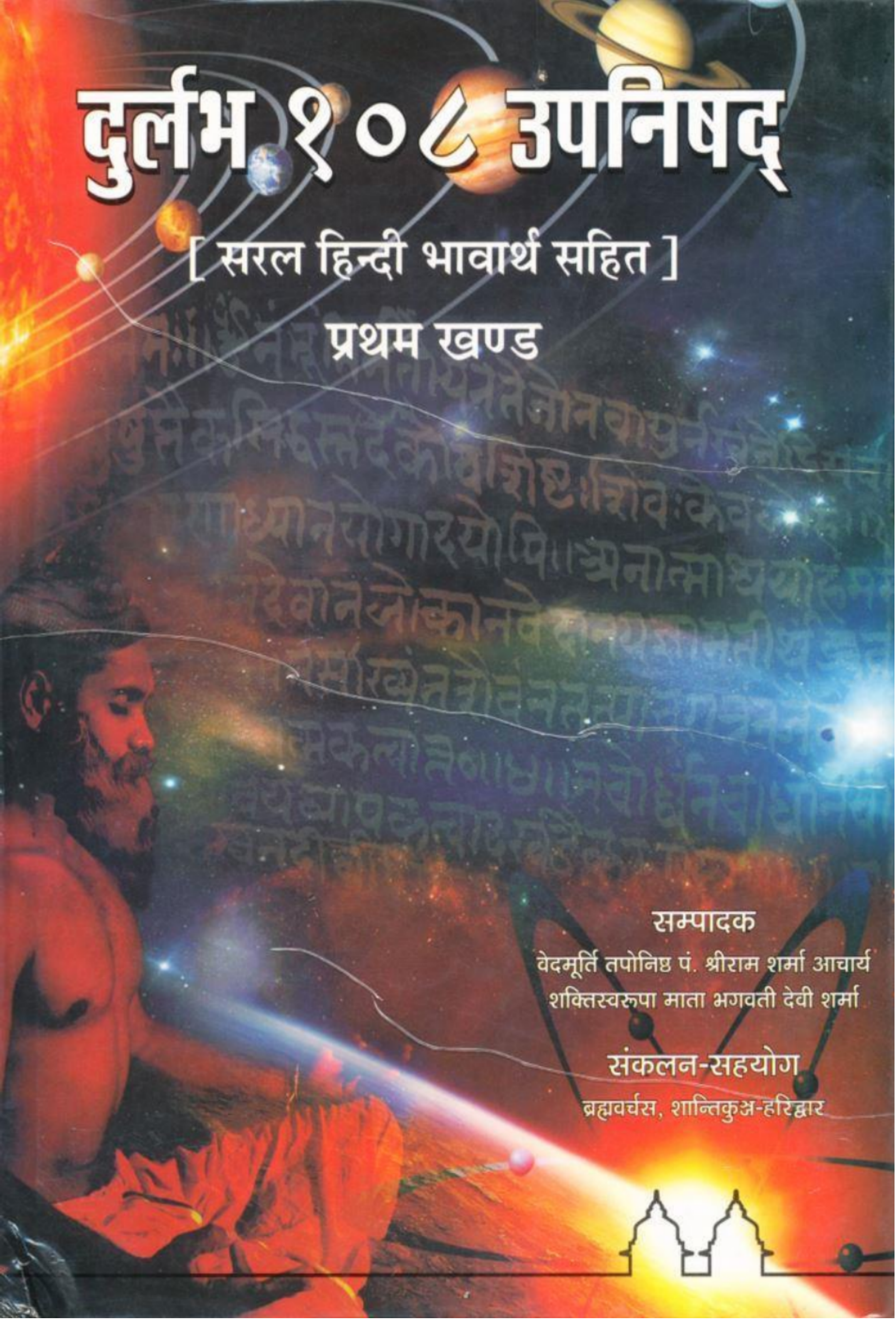


दुर्लभ १०८ उपनिषद्

[सरल हिन्दी भावार्थ सहित]

प्रथम खण्ड

सम्पादक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं. श्रीराम शर्मा आचार्य
शक्तिस्वरूपा माता भगवती देवी शर्मा

संकलन-सहयोग
ब्रह्मवर्चस, शान्तिकुञ्ज-हरिद्वार

दुर्लभ १०८ उपनिषद्

[सरल हिन्दी भावार्थ सहित]

प्रथम खण्ड

*

सम्पादक

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

शक्तिस्वरूपा माता भगवती देवी शर्मा

*

संकलन-सहयोग

ब्रह्मवर्चस

संस्कृत-वेदविभाग

देव संस्कृति विश्वविद्यालय

शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

*

प्रकाशक

श्रीवेदमाता गायत्री ट्रस्ट

शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

प्रकाशक

श्रीवेदमाता गायत्री ट्रस्ट

शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

सम्पादक

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

शक्तिस्वरूपा माता भगवती देवी शर्मा

संकलन-सहयोग

ब्रह्मवर्चस

संस्कृत-वेदविभाग

देव संस्कृति विश्वविद्यालय

गायत्रीतीर्थ-शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार

प्रथम आवृत्ति

सन् २०११

सम्पर्क सूत्र-

गायत्रीतीर्थ-शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार (उत्तराखण्ड) २४९४११

फोन-(०१३३४) २६०६०२, २६०३०९ फैक्स-२६०८६६

website-www.awgp.org, dsvv.org, email: shantikunj@awgp.org

250/-

श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट

गायत्रीतीर्थ शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)249411

Internet: www.awgp.org Email: shantikunj@awgp.org

• विचार क्रान्ति अभियान के संकल्प के अवतरण की जन्म शताब्दी •

भावाभिव्यक्ति

उपनिषद् शब्द का शाब्दिक अर्थ है—पास बैठकर दिया गया ज्ञान। हमारे ऋषि-मुनियों ने अपनी गहन तपश्चर्या द्वारा परब्रह्म का सामीप्य पाकर समाधि में जो ज्ञान प्राप्त किया, वह उपनिषदों का ज्ञान है। ये वेदों का अंतिम भाग (सर्वश्रेष्ठ भाग) कही जाती हैं। जो पाप-ताप का नाश करे, सच्चा ज्ञान प्रदान करे, आत्मा की प्राप्ति कराए और अज्ञान-अविद्या के बन्धनों को शिथिल करे, वह उपनिषद् है—यह भाव ''उपनिषद्'' से निकलता है। उपनिषदों को अध्यात्म-विद्या भी कहा जाता है, जिसे स्वयं योगेश्वर श्रीकृष्ण ने अपनी एक विभूति माना है (गीता-१०/३२)। प्रस्थानत्रयी का एक भाग ये उपनिषदें भारतीय प्रज्ञा का एक बेमिसाल उदाहरण हैं। ऋषियों-द्रष्टाओं का यह अनुभूतिजन्य ज्ञान है।

१०८ उपनिषदें सभी के संज्ञान में हैं। किन्तु लगभग २२० उपनिषदें प्रकाश में आ चुकी हैं। परम पूज्य गुरुदेव वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने १९६०-६१ में १०८ उपनिषदों का सरल भाष्य तीन खण्डों में प्रस्तुत किया। उनने उनकी बृहद् विस्तार से लिखी भूमिका में यह भी लिखा कि शेष दुर्लभ उपनिषदें भी कालान्तर में प्रकाश में आयेंगी। बाद में वेद विभाग, ब्रह्मवर्चस शान्तिकुञ्ज द्वारा परम वन्दनीया माता भगवती देवी शर्मा के सम्पादकत्व में इन सभी उपनिषदों का पूज्यवर के महाप्रयाण के बाद १९९६-१९९९ में प्रकाशन किया। सारे राष्ट्र एवं विश्वभर के सुधीजनों ने इनका स्वागत किया। इनमें मंत्रानुक्रमणिका के साथ स्थान-स्थान पर वैज्ञानिक व्याख्या भी दी गयी थी, जो कि संकलक-सहयोगीजनों का एक विनम्र प्रयास गुरुवर के आशीर्वाद से ही था।

कोई भी संशोधन क्रान्तदर्शी महापुरुषों के लेखन-सम्पादन में कदापि सम्भव नहीं मानना चाहिए। इसीलिए पाठकों को युगानुकूल दृष्टि देने के लिए यह प्रयास किया गया, जो शक्तिस्वरूपा वंदनीया माताजी के मार्गदर्शन में सम्पन्न हुआ। अब प्रस्तुत प्रकाशन आप सभी के समक्ष है। दुर्लभ उपनिषदें वे हैं, जिनके नामों का जिक्र तो संस्कृत ग्रन्थों में है; परन्तु जिन पर सरल हिन्दी में व्याख्या कहीं दिखाई नहीं देती। है भी, तो आम आदमी की पहुँच में नहीं। मात्र कुछ वाचनालयों-विद्वज्जनों तक ये सीमित होकर रह गयी हैं। देव संस्कृति विश्वविद्यालय एक नूतन प्रकल्प के अन्तर्गत २००२ में आरम्भ हुआ। वहाँ पर एक संस्कृत विभाग आरम्भ हुआ। वेद विभाग, संस्कृत विभाग के साथ मिलकर एक हो गया एवं यहाँ के विद्वानों ने अथक परिश्रम द्वारा दुर्लभ उपनिषदों का सरलतम भाष्य परम पूज्य गुरुदेव के जन्म शताब्दी वर्ष की पूर्व वेला में प्रस्तुत करने का पुण्य कार्य सम्पन्न किया है। सभी संकलक-सहयोगी-विद्वज्जन साधुवाद के पात्र हैं। जो भी कुछ बन पड़ा है गुरुकृपा-उनके आशीष के बिना सम्भव नहीं था। हमारी आराध्य सत्ता के श्रीचरणों में श्रावणी पर्व की वेला में दुर्लभ उपनिषदों (१०८ उपनिषद्) का प्रथम खण्ड प्रस्तुत है।

(डॉ० प्रणव पण्ड्या) (शैलबाला पण्ड्या)

श्रावणी पर्व २०१०

फोन- 01334 260602, 260309, 261328 फैक्स- 01334 260866

शत-शत नमन



वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

(१९११-१९९०)

उपनिषद् परम चेतना के सामीप्य से प्राप्त होने वाला दुर्लभ-गूढ़ ज्ञान है। ऐसे दुर्लभ और गूढ़ ज्ञान को, ऋषियों की अमूल्य थाती को जन-जन तक पहुँचाने और उनके भाव को परिष्कृत करने के लिए कृतसङ्कल्प, जिनके द्वारा उपनिषदीय परम्परा का पुनर्जागरण किया गया, ऐसे युगऋषि के पावन चरणों में बारम्बार नमन है-

दुर्लभगूढज्ञानस्य प्रकाशं कृतवान्स्वयम् ।
यो जनेभ्यः प्रकाशात्मा तस्मै भूयो नमो नमः ॥

शत-शत नमन



वन्दनीया माता भगवती देवी शर्मा
(१९२६-१९९४)

युगावतार-प्रज्ञावतार लीला संदोह में जनमानस में प्रज्ञा जागरण और उसके भावनात्मक परिष्कार की प्रक्रिया में जो छाया की तरह साथ रहीं, श्रीराम की अनन्य सहचरी शक्तिस्वरूपा, उन माता भगवती देवी के पावन चरणों में बारम्बार नमन है—

प्रज्ञावतार लीलायै प्रज्ञाजागरणाय वै।
श्रीरामसहचरीं देवीं शक्तिरूपां नमाम्यहम्॥

गायत्री महामन्त्र

ॐ

भूर्भुवः स्वः

तत्सवितुर्वरेण्यं

भर्गो देवस्य

धीमहि।

धियो यो नः

प्रचोदयात्॥

(ऋ. ३/६२/१०, यजु.३/३५,२२/९, ३०/२, ३६/३ साम. उत्तरार्चिक १४६२,
त्रिपाद्विभूति महानारायणोपनिषद् ७/३९, त्रिपुरातापिन्युपनिषद् १/१-२)

उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुखस्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अन्तरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करे।

विषयानुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृष्ठ से	तक
१.	अथर्वशिखोपनिषद्	१	५
२.	अद्वैतभावनोपनिषद्	६	७
३.	अद्वैतोपनिषद्	८	९
४.	अन्नपूर्णोपनिषद्	१०	४३
५.	अरुणोपनिषद्	४४	४८
६.	अव्यक्तोपनिषद्	४९	५५
७.	आचमनोपनिषद्	५६	५६
८.	आथर्वण द्वितीयोपनिषद्	५७	६६
९	आर्षेयोपनिषद्	६७	७१
१०.	इतिहासोपनिषद्	७२	८७
११.	कौलोपनिषद्	८८	९१
१२.	गणेशपूर्वतापिन्युपनिषद्	९२	९९
१३.	गणेशोत्तरतापिन्युपनिषद्	१००	११३
१४.	गर्भोपनिषद्	११४	११९
१५.	गुह्यकाल्युपनिषद्	१२०	१२९
१६.	गुह्यषोढान्यासोपनिषद्	१३०	१३१

क्र. विषय पृष्ठ से तक

१७. गोपालोत्तरतापिन्युपनिषद्......१३०-१३१

१८. गोपीचन्दनोपनिषद्......१४८-१५२

१९. चित्युपनिषद्......१५३-१६८

२०. छागलेयोपनिषद्......१६९-१७२

२१. तत्त्वोपनिषद्......१७३-१७३

२२. तारसारोपनिषद्......१७४-१७८

२३. तुरीयोपनिषद्......१७९-१८०

२४. तेजोबिन्दूपनिषद्......१८१-२३६

२५. त्रिपाद्विभूति महानारायणोपनिषद्......२३७-२८७

२६. त्रिपुरातापिन्युपनिषद्......२८८-३११

२७. दशश्लोक्युपनिषद्......३१२-३१३

२८. नारदोपनिषद्......३१४-३१४

२९. नारायणपूर्वतापिन्युपनिषद्......३१५-३२३

३०. नारायणोत्तरतापिन्युपनिषद्......३२४-३२८

३१. निरुक्तोपनिषद्......३२९-३३१

३२. नृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषद्......३३२-३५८

३३. पिण्डोपनिषद्......३५९-३६०

३४. पैप्पलादोपनिषद्......३६१-३६६

३५. बाष्कलमन्त्रोपनिषद्......३६७-३७१

प्राक्कथन

उपनिषदों की गरिमा आर्ष वाङ्मय के शीर्ष भाग के रूप में सर्वविदित है। कारण यह है कि यह समस्त आर्षवाङ्मय का नवनीत है, जो ब्रह्मज्ञान से ओतप्रोत है। ब्रह्म का साक्षात्कार जिसके द्वारा सरलता से किया जा सकता है, वह उपनिषद् ही है। उपनिषद् के इसी भाव को अभिव्यक्त करती यह उक्ति—

'**उपनिषद्यते प्राप्यते ब्राह्मात्मभावोऽनया इति उपनिषद्**' प्रसिद्ध है, जिसका अर्थ है—जिसके द्वारा ब्राह्मात्मभाव प्राप्त होता है, वह उपनिषद् है।

नवयुग निर्माण के पुष्ट आध्यात्मिक आधार को विकसित करने के लिए उपनिषदों का ज्ञानामृत विचारशीलों तक पहुँचाया जाना आवश्यक था, इसीलिए परम पूज्य गुरुदेव, युगऋषि, वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने सन् १९६१ में ही १०८ उपनिषदों का सुगम हिन्दी अनुवाद और जनसुलभ प्रकाशन का अद्भुत पुरुषार्थ कर दिखाया।

इन १०८ उपनिषदों के तीन खण्डों (ज्ञानखण्ड, ब्रह्मविद्याखण्ड, साधनाखण्ड) के नव्य संस्करणों का प्रकाशन भी सन् १९९६ से १९९९ के बीच वेदविभाग-ब्रह्मवर्चस शान्तिकुञ्ज हरिद्वार संपन्न हो चुका; किन्तु उपनिषदों के विषय में और भी अधिक जानने के जिज्ञासा पाठकों में बनी रही, कारण कि पूज्य गुरुदेव ने प्रारम्भ में प्रकाशित १०८ उपनिषदों की भूमिका में लिखा था—'**उपनिषदों की संख्या बहुत है। २०० से ऊपर तो प्रकाशित हो चुकी हैं। कितनी ही अप्राप्य हो गयीं, कितनी ही अप्रकाशित हैं। समय आने पर प्रकाश में आयेंगी। एक सौ उनमें से प्रधान मानी जाती हैं। किन्हें प्रधान और किन्हें गौण माना जय, इस सम्बन्ध में मतभेद है।.................उनमें से किसी का महत्त्व कम नहीं। रोगी अपनी दृष्टि में उनमें से उन औषधियों को सर्वोत्तम मान सकता है, जो उसके रोग के लिए उपयुक्त हों।**'

वर्तमान में उपलब्ध २०० से अधिक उपनिषदों में से पूज्य गुरुदेव ने १०८ उपनिषदों का तीन खण्डों में चयन कर उन्हीं का सरल हिन्दी भावार्थ प्रस्तुत करते हुए यह अभिलाषा प्रकट की थी कि अभी जो १०० से अधिक उपनिषदें बची हैं, उनका भी समय आने पर प्रकाशन किया जाये। इसीलिये १०८ उपनिषद् ज्ञानखण्ड-प्रथम संस्करण की भूमिका की अन्तिम पंक्तियों में वे लिखते हैं—

'जो १०० से अधिक उपनिषदें इस संकलन में नहीं आ सकी हैं, वे कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, उनमें भी बहुत ज्ञान है।' पाठकगण इन उपनिषदों का विशद विवेचन कर स्वयं पायेंगे कि इन उपनिषदों में इतना कुछ है, जो हमारे संस्कृति वाङ्मय का अभी तक अछूता पक्ष प्रस्तुत करता है। हमें लगता है कि अभी तक प्रमुख उपनिषदों की ही जन-जन को जानकारी रही है। पर उनके भी सरल हिन्दी भाष्य परम पूज्य गुरुदेव के प्रथम प्रयास (१९६०-६१) द्वारा सुलभ हो सके। यों तो और भी भाष्य थे, पर संस्कृतनिष्ठ एवं शब्दश: होने के कारण क्लिष्ट थे। इसी तरह ये नितान्त अछूती उपनिषदें तो ज्ञान-विज्ञान की भाण्डागार हैं। इनको सरल हिन्दी में व्याख्या सहित प्रस्तुत करने का प्रयास अपने आप में प्रथम ही है। इससे दुर्लभ उपनिषदों का महत्त्व जन सामान्य को विदित हो सकेगा। यही हमारी आराध्य गुरुसत्ता की इच्छा भी थी।

पू० गुरुदेव की आकांक्षा को ध्यान में रखकर १०८ उपनिषदों के नये संस्करणों के प्रकाशन क्रम में ही परम वंदनीया माताजी से शेष उपनिषदों में से अधिक उपयोगी उपनिषदों के जनसुलभ संस्करण निकालने का आशीर्वाद प्राप्त कर लिया गया था। तदनुसार ऋषियुग्म के सूक्ष्म संरक्षण-मार्गदर्शन में यह कार्य आगे बढ़ाया गया। युगऋषि द्वारा स्थापित व्यवस्थामण्डल की अग्रणी, श्रीवेदमाता गायत्री ट्रस्ट की मुख्य प्रबन्ध ट्रस्टी श्रद्धेया जीजी (शैलबाला पण्ड्या) एवम् देवसंस्कृति विश्वविद्यालय के कुलाधिपति, ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान के निदेशक श्रद्धेय डॉ० साहब (डॉ० प्रणव पण्ड्या जी) के प्रत्यक्ष मार्गदर्शन में इस प्रथम खण्ड के प्रकाशित होने की व्यवस्था बनी। निर्देशित उन दुर्लभ १०८ उपनिषदों के सरल हिन्दी भावार्थ सहित संपादन-प्रकाशन का कार्य 'वेदविभाग' द्वारा हाथ में लिया गया, जो या तो ऋषियों द्वारा हस्तलिखित और पूर्णत: अप्रकाशित हैं अथवा कुछ मूलत: संस्कृत में प्रकाशित तो हैं, किन्तु उनका हिन्दी अनुवाद या भावार्थ कहीं उपलब्ध नहीं होता अथवा उनका प्रकाशन और व्याख्या कहीं हुई है, तो वह संस्कृत में ही है। जन-सामान्य उन्हें समझ सके या उनके भाव को हृदयङ्गम कर सके, ऐसी स्थिति नहीं है। अत: इन दुर्लभ १०८ उपनिषदों का सङ्कलन किया गया, जो आपके हाथ में हैं। इन स्थानों के नाम इस प्रकार हैं—

१. अड्यार लाइब्रेरी चेन्नई (तमिलनाडु) तत्कालीन मद्रास

२. भाण्डारकर प्राच्य शोध प्रतिष्ठान पूना (महाराष्ट्र)

३. सिन्धिया प्राच्य विद्या शोध संस्थान, उज्जैन (म.प्र.)

४. एशियाटिक रिसर्च इन्सटीट्यूट, मुम्बई (महा.)

५. अखिल भारतीय संस्कृत परिषद् लखनऊ (उ.प्र.)

६. सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी (उ.प्र.)

७. गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार (उत्तराखण्ड) आदि

उल्लेखनीय है कि इन दुर्लभ १०८ उपनिषदों को (५४-५४ उपनिषदों की संख्या में) दो खण्डों में प्रकाशित किये जाने की योजना है। प्रथम चरण में प्रथम खण्ड की ५४ उपनिषदों का यह गुच्छक आपके समक्ष प्रस्तुत है। इन उपनिषदों के मन्त्रों में वर्णित भावार्थ को और अधिक खोलने की दृष्टि से पाद-टिप्पणियों का भी प्रयोग किया गया है, ताकि अध्येता मन्त्र के मूल भाव का संस्पर्श सरलता से पा सकें। कतिपयशरीरविज्ञान परक उपनिषदों में वर्णित तथ्यों को स्पष्ट करने के लिये आधुनिक चिकित्सा विज्ञानियों के परामर्शों से उन्हें सुसंगत और सुग्राह्य बनाने का प्रयत्न भी किया गया है।

इस प्रकार परम पूज्य गुरुदेव एवं वन्दनीया माताजी की प्रेरणा एवं उन्हीं के द्वारा प्रदत्त शक्ति से प्रथम बार प्रकाशित दुर्लभ १०८ उपनिषदों में से ५४ उपनिषदों का यह प्रथम खण्ड आपके समक्ष प्रस्तुत करने में हमें आन्तरिक सन्तोष का अनुभव हो रहा है।

इस ज्ञानयज्ञ में जिस समिधा और हव्य का उपयोग हुआ है, उसे जुटाने और प्रयुक्त करने में जिनके भी श्रमसीकर-समय-साधन सार्थक हुए हैं, उन्हें इस महान् ज्ञानयज्ञ की दिव्य सुगन्ध आप्यायित करके सुनिश्चित रूप से धन्य बनायेगी, ऐसा हमारा विश्वास है। मात्र शब्दों में उनका आभार व्यक्त करके हम उनका अवमूल्यन नहीं करना चाहते।

इस प्रयास को अधिक उत्कृष्ट बनाने में पाठकों, शोधार्थियों, जिज्ञासुओं के सुझाव सदैव प्रार्थनीय रहेंगे; क्योंकि वे ही इसके सच्चे पारखी हैं। उन्हीं के हाथों में इसे इस आशा के साथ सौंप रहे

हैं कि वे इस ज्ञानामृत का रसास्वादन उसी भाव से करेंगे, जिस भाव से इसे प्रस्तुत किया गया है

यदि पाठक, साधक इससे कुछ भी लाभान्वित हुए, तो हम अपने प्रयास को सार्थक समझेंगे। आगामी खण्ड के प्रकाशन द्वारा इसे पूर्णता तक पहुँचायेंगे। जन्म शताब्दी वर्ष की पूर्व वेला में गुरुवर के चरणों में यह एक पुष्प मात्र है।

संकलक-सहयोगी
गुरुवर के शिष्यगण
ब्रह्मवर्चस, वेदविभाग
देव संस्कृति विश्वविद्यालय
शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार

॥ अथर्वशिखोपनिषद् ॥

॥ शान्तिपाठः ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥
स्वस्ति न ऽ इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥

॥ प्रथमः खण्डः ॥

अथ हैनं पैप्पलादोऽङ्गिराः सनत्कुमारश्चाथर्वाणमुवाच– भगवन् किमादौ प्रयुक्तं ध्यानं ध्यायितव्यं किं तद्ध्यानं को वा ध्याता कश्च ध्येयः ॥ १ ॥

यथोक्त साधन (विवेक, वैराग्य, षट्-सम्पत्ति, श्रद्धा, समाधान आदि) अनुष्ठान से चित्त शुद्धि हो जाने के पश्चात् आचार्य पिप्पलाद के पुत्र पैप्पलाद, अङ्गिरा और सनत्कुमार ने विख्यात अथर्वा ऋषि से कहा-भगवन्! पहले किस ध्यान को करना चाहिए? उस ध्यान का स्वरूप क्या है? ध्याता और ध्येय कौन हैं?॥ १ ॥

स एभ्योऽथर्वा प्रत्युवाच-ओमित्येतदक्षरमादौ प्रयुक्तं ध्यानं ध्यायितव्यमित्येतदक्षरं परं ब्रह्मास्य पादाश्चत्वारो वेदाश्चतुष्पादिदमक्षरं परं ब्रह्म ॥ २ ॥

अथर्वा ऋषि ने आचार्य पिप्पलाद से कहा-ओम् (ॐ) इस अक्षर का, जो आदि में प्रयुक्त है, ध्यान करना चाहिए। यह परब्रह्म का स्वरूप है। इसके चार पाद चारों देव तथा चारों वेद हैं। अतः चतुष्पाद यह अक्षर परब्रह्म है॥ २ ॥

पूर्वाऽस्य मात्रा पृथिव्यकारः स ऋग्भिर्ऋग्वेदो ब्रह्मा वसवो गायत्री गार्हपत्यः ॥ ३ ॥

इसकी पहली मात्रा पृथिवी (अकाररूप) है। वह ऋचाओं से ऋग्वेद, ब्रह्मा, वसु देवता, गायत्री छन्द, गार्हपत्य अग्नि (गृहस्थ में आहार पकाने वाली अग्नि) वाली है॥ ३ ॥

द्वितीयाऽन्तरिक्षं स उकारः स यजुर्भिर्यजुर्वेदो विष्णूरुद्रास्त्रिष्टुब्दक्षिणाग्निः ॥ ४ ॥

दूसरी मात्रा उकार अन्तरिक्ष है। वह यजुषों से यजुर्वेद, विष्णु, रुद्र देवता, त्रिष्टुप् छन्द. दक्षिणाग्नि (इसे दक्षिण में स्थापित अथवा अन्वाहार्यपचन आर्थात् पितरों के आहार हेतु प्रयुक्त अग्नि कहा गया है) वाली है॥ ४ ॥

तृतीया द्यौः स मकारः स सामभिः सामवेदो रुद्र आदित्या जगत्याहवनीयः ॥ ५ ॥

तीसरी मात्रा मकार द्यौ है। वह सामों से सामवेद, रुद्र, आदित्य देवता, जगती छन्द, आहवनीय अग्नि (देवताओं के लिए आहार प्रस्तुत करने वाली अग्नि), वाली है॥ ५॥

याऽवसानेऽस्य चतुर्थ्यर्धमात्रा सा सोमलोक ओङ्कारः साऽथर्वणैर्मन्त्रैरथर्ववेदः संवर्तकोऽग्निर्मरुतो विराडेकर्षिर्भास्वती स्मृता ॥ ६ ॥

अन्त में जो चौथी अर्धमात्रा है, वह सोमलोक ओंङ्कार है। वह अथर्वण मन्त्रों से अथर्ववेद, संवर्तक अग्नि (प्रलय कालाग्नि)और मरुत् देवता, विराडेकर्षि छन्द, भास्वती (तुर्य प्रकाश से युक्त) अग्नि वाली है॥ ६॥

[प्रलयकाल में सभी अग्नियों को अपने में समाहित करने वाली अग्नि को संवर्तक अग्नि कहते हैं। यही अग्नि सृष्टिकाल में सभी अग्नियों को प्रकट करने वाली भी होती है, अर्थात् अग्नि (ऊर्जा) का वह रूप जिससे विविध ऊर्जा प्रकट होती है और अन्त में उसी में विलीन हो जाती है। अगले मन्त्र में इस भाव को ऋषि द्वारा स्पष्ट किया गया है।]

प्रथमा रक्तपीता महद्ब्रह्मदैवत्या। द्वितीया विद्युमती कृष्णा विष्णुदैवत्या। तृतीया शुभाशुभा शुक्ला रुद्रदैवत्या। याऽवसानेऽस्य चतुर्थ्यर्धमात्रा सा विद्युमती सर्ववर्णा पुरुषदैवत्या ॥ ७ ॥

[उक्त चारों अग्नियों के प्रकाश के गुणधर्मों को समझाते हुए कहा गया है कि] पहली लाल पीली, महान् ब्रह्मादेवता वाली, दूसरी बिजली के समान चमकने वाली, उससे मिश्रित कृष्णवर्णा विष्णु देवता वाली है। तीसरी शुभा-अशुभा शुक्लवर्ण वाली, रुद्र देवता वाली है। अन्त में चौथी अर्धमात्रा बिजली के प्रकाश वाली, सभी रंगों के मिश्रण जैसी पुरुष देवता वाली है॥ ७॥

स एष ह्योङ्कारश्चतुरक्षरश्चतुष्पादश्चतुः शिरश्चतुश्चतुर्धा मात्रा स्थूलमेतद्ध्रस्वदीर्घप्लुतम् ॥ ८ ॥

वह ओङ्कार अकारादि भेद से चार अक्षर वाला, चार पैरों वाला, चार सिर वाला, चार मात्रा वाला है। स्थूल, ह्रस्व, दीर्घ एवं प्लुत भेद से, पहली मात्रा स्थूल, दूसरी उससे सूक्ष्म, तीसरी उससे भी सूक्ष्म और चौथी अति सूक्ष्म है॥ ८॥

[ओङ्कार की चार मात्राएँ अ,उ,म् और अनुस्वार इनके उच्चारण व्याकरण अनुशासन के अनुसार स्थूल, ह्रस्व, दीर्घ एवं प्लुत होते हैं]

ॐॐॐ इति त्रिरुक्त्वा चतुर्थः शान्त आत्मा प्लुत प्रणवप्रयोगेण समस्तमोमिति प्रयुक्तमात्मज्योतिः सकृदावर्तते ॥ ९ ॥

ॐॐॐ इस प्रकार तीन बार कहकर चौथा शान्त आत्मा प्लुत प्रणव के प्रयोग से समस्त ओम् प्रयोग हुआ, जो कि आत्मज्योति का साक्षात्कार कराने की ओर प्रवृत्त होता है॥ ९॥

सकृदुच्चारितमात्रेणोर्ध्वमुन्नामयतीत्योङ्कारः। प्राणान् सर्वान् प्रलीयत इति प्रलयः। प्राणान् सर्वान् परमात्मनि प्रणामयतीत्येतस्मात् प्रणवः। चतुर्धाऽवस्थित इति सर्वदेववेदयोनिः सर्ववाच्यवस्तु प्रणवात्मकम्॥ १०॥

एक बार उच्चारण-मात्र से ही प्राणों को ऊपर की ओर उठाता है, इसलिए ओङ्कार कहलाता है। समस्त प्राणों को अपने में समाहित कर लेता है, इसलिए प्रलय कहलाता है। समस्त प्राणों को परमात्मा में प्रविष्ट करा देने के कारण 'प्रणव' कहा जाता है। इसका अभिप्राय हुआ- प्रणव का स्थूलांश ओङ्कार, उसका सूक्ष्मांश प्रलय, उसका बीजांश प्रणव तथा शान्तरूप अन्तिम है, इस प्रकार चार रूपों में अवस्थित यह ओङ्कार, जो सर्व देवमय वेद योनि (सब वेदों का प्रकटकर्त्ता), सब वाच्यवस्तु (जिनका कथन किया जा सकता है) प्रणवात्मक ही है॥ १०॥

॥ इति प्रथमः खण्डः॥

॥ द्वितीयः खण्डः॥

देवाश्चेति संधत्तां सर्वेभ्यो दुःखभयेभ्यः संतारयतीति तारणात्तारः॥ १॥

इस प्रकार समस्त देवशक्तियों को धारण करने वाला, सब दुःखों और भयों से जो पार उतार दे, वह तारण करने से तारक कहलाता है॥ १॥

सर्वे देवाः संविशन्तीति विष्णुः ॥ २॥

सब देवता जिसमें वास करते हैं, इससे वह विष्णु कहलाता है (शब्दकल्पद्रुम के अनुसार विष्णु का एक अर्थ वसु है। वसु अर्थात् जो सबको वास देने में समर्थ हो, उसे वसु को कहते हैं)॥ २॥

सर्वाणि बृंहयतीति ब्रह्म॥ ३॥

सबको-अपने अतिरिक्त सब (अविद्यारूप कार्यसमूह) को ग्रास करके बृंहण करने से वह ब्रह्म है॥ ३॥

सर्वेभ्योऽन्तः स्थानेभ्यो ध्येयेभ्यः प्रदीपवत् प्रकाशयतीति प्रकाशः॥ ४॥

सब अन्तः स्थानों को (अन्तःकरण को) दीपक के समान प्रकाशित करता है, इससे वह प्रकाश कहलाता है॥ ४॥

प्रकाशेभ्यः सदोमित्यन्तः शरीरे विद्युद्वद्द्योतयति मुहुर्मुहुरिति विद्युद्वत् प्रतीयां दिशं भित्त्वा सर्वांल्लोकान् व्याप्नोति व्यापयतीति व्यापनाद्व्यापी महादेवः॥ ५॥

अन्तः शरीर (अन्तःकरण) में स्वयं प्रकाश्य जो तत्त्वों को बार-बार विद्युत्वत् प्रकाशित करता है। माया को भेदकर सर्वलोकों को व्याप्त करने से वे सर्वव्यापी 'महादेव' हैं॥ ५॥

॥ इति द्वितीयः खण्डः॥

॥ तृतीयः खण्डः ॥

पूर्वाऽस्य मात्रा जागर्ति जागरितं द्वितीया स्वप्नं तृतीया सुषुप्तिश्चतुर्थी तुरीयम्॥ १ ॥

इसकी पहली मात्रा जागर्ति जागरित, दूसरी स्वप्न, तीसरी सुषुप्ति, चौथी तुरीय है॥ १ ॥

मात्रा मात्राः प्रतिमात्रागताः सम्यक् समस्तानपि पादान् जयतीति स्वयंप्रकाशः स्वयं ब्रह्म भवतीत्येष सिद्धिकर एतस्माद्ध्यानादौ प्रयुज्यते। सर्वकरणोपसंहारत्वाद्धार्यधारणाद्ब्रह्म तुरीयम्॥ २ ॥

जब (अकारादि) मात्राएँ (स्थूल-सूक्ष्म) आदि मात्रा-समूहों में विलीन हो जाती हैं, तब भली प्रकार से (साधक ओङ्कार के) समस्त पादों (चरणों) को जीत लेता है अर्थात् जान लेता है, (इस स्थिति में वह) स्वयं प्रकाश हो जाता है- स्वयं ब्रह्म हो जाता है। यही सिद्धि-प्रदायक मार्ग है, इसलिए ध्यान आदि में इस (ॐ) का प्रयोग किया जाता है। इस अवस्था में सभी इन्द्रियों का उपसंहार (विलय) हो जाने से धारण करने योग्य तुरीय-ब्रह्म की धारणा सिद्ध हो जाती है॥ २ ॥

सर्वकरणानि संप्रतिष्ठाप्य ध्यानं विष्णुः प्राणं मनसि सह करणैः मनसि संप्रतिष्ठाप्य ध्याता रुद्रः प्राणं मनसि सह करणैर्नादान्ते परमात्मनि संप्रतिष्ठाप्य ध्यायीतेशानं प्रध्यायितव्यम्॥ ३ ॥

सब इन्द्रियों की सम्यक् प्रतिष्ठा करके, (मैं ब्रह्म हूँ, यह ध्यान करके) उसके प्रभाव से विष्णु प्रधान पुरुष होते हैं। मुमुक्षुओं के द्वारा करणों (इन्द्रिय) के साथ प्राण को मन में स्थापित कर जिसका मन ब्रह्माकार में परिणत होता है, वही ध्याता रुद्र है। सम्पूर्ण अन्तःकरण से ब्रह्म प्रणव के नादान्त में परमात्मा में मन को स्थापित करके स्वमात्र में स्थित रहने के लिए ईश्वर-ब्रह्म का ध्यान करना चाहिए। (घोषोपरान्त) वही ईशान आत्मा है॥ ३ ॥

सर्वमिदं ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रास्ते संप्रसूयन्ते सर्वाणि चेन्द्रियाणि सह भूतैर्न कारणं कारणानां ध्याता कारणं तु ध्येयः सर्वैश्वर्यसंपन्नः सर्वेश्वरः शंभुराकाशमध्ये ध्रुवं स्तब्ध्वाऽधिकं क्षणमेकं क्रतुशतस्यापि चतुः सप्तत्या यत् फलं तदवाप्नोति कृत्स्नमोङ्कारगतिश्च सर्वध्यानयोगज्ञानानां यत् फलमोङ्कारो वेद पर ईशो वा शिव एको ध्येयः शिवंकरः सर्वमन्यत् परित्यज्य॥ ४ ॥

यह सम्पूर्ण जगत्, इसके सर्ग, स्थिति, भङ्गकर्त्ता ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र देवता; पञ्च महाभूतों के साथ सभी इन्द्रियादिक उत्पन्न होते हैं। अतः कारण कारणों का ध्याता नहीं हो सकता। सबका कारण तो ध्येय ही है, जो सर्वैश्वर्य-सम्पन्न, सबका ईश्वर शम्भु है। ऐसे शिव को जो पुरुष कुछ क्षण भी अपने हृदयाकाश में स्थिर कर लेता है, वह १७४ अनुष्ठानों का फल प्राप्त करता है। ओङ्कार की समस्त गति का भी ज्ञाता हो जाता है। यों सब ध्यानयोगों, ज्ञानों का जो फल है, वह फल ओङ्कार को जानने से प्राप्त करता है। अतः परईश अथवा शिव ही एकमात्र ध्यान करने योग्य हैं; क्योंकि वे ही शिव (कल्याण) करने वाले हैं॥ ४ ॥

समाप्ताऽथर्वशिखा तामधीत्य द्विजो गर्भवासाद्विमुक्तो मुच्यत एतामधीत्य द्विजो गर्भवासाद्विमुक्तो विमुच्यत इत्योॅंसत्यमित्युपनिषत्॥ ५॥

यह अथर्वशिखा उपनिषद् समाप्त हुई। इसका अध्ययन करने वाला द्विज गर्भवास से छुटकारा पा जाता है। इसी वाक्य को पुष्ट करने के अभिप्राय से दो बार कहा गया है। ॐ सत्य है, यह उपनिषद् (रहस्य) है॥५॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः......... इति शान्तिः॥

॥ इति अथर्वशिखोपनिषत्समाप्ता ॥

॥ अद्वैतभावनोपनिषद् ॥

अद्वैतभावनां वक्ष्ये शृणुष्व कमलानने। यस्य विज्ञानमात्रेण भवेद्गङ्गाधरः स्वयम्॥

हे कमल के समान मुखवाली! सुनो- मैं तुमसे अद्वैत भावनात्मक उपनिषद् को कहता हूँ, जिसके जानने मात्र से स्वयं शिव गङ्गाधर बने।

अहं स्त्री। पुरुषोऽहम्। सदाशिवोऽहम्। परमप्रकृत्यो (तिर)ऽहम्। परमपुरुषोऽहम्। नादोऽहम्। विन्दुरहम्। कलाचाहम्। शब्दब्रह्माहम्। क्रियायोगोऽहम्। ब्रह्माहम्। विष्णुरहम्। सौरोऽहम्। ब्राह्मोऽहम्। वैष्णवोऽहम्। शिवाऽहम्। नानाशक्तयहम्। असुरोऽहम्। सुरोऽहम्। उच्चाररहितोऽहम्। विद्याऽहम्। वेदाश्चाहम्। वेदशाखिन (वेदसाक्षिण) श्चाहम्। वेदक्रियाऽहम्। कर्म्मयोगोऽहम्। धर्म्मकर्म्माऽहम्। पिताऽहम्। माताऽहम्। पुत्रोऽहम्। गुरुरहम्। आचार्य्योऽहम्। आगमोऽहम्। रामायणोऽहम्। महाभागवतोऽहम्। महाभारतोऽहम्। श्रीभागवतोऽहम्। श्रुतिशास्त्राण्यहम्। मन्त्रोऽहम्। मन्त्रार्थोऽहम्। स्तवोऽहम्। कवचोऽहम्। अहं सहस्त्रनामानि। अहं गायत्री। बीजान्यहम्। कूटाक्षरोऽहम्। त्र्यक्षरोऽहम्। पञ्चाशन्मातृकाऽहम्। पञ्भूतान्यहम्। पञ्चमहाभूतान्यहम्। तत्त्वान्यहम्। स्थूलोऽहम्। सूक्ष्मोऽहम्। कुलाकुलाश्चाऽहम्। कुलाचलाश्चाऽहम्। प्रमाणादि-षोडशपदार्थोऽहम्। ऋषयश्चाऽहम्। मुनयश्चाऽहम्। लक्ष्मीरहम्। स्त्रियोऽहम्। श्रियोऽहम्। प्रियोऽहम्। गौर्य्यहम्। भूतोऽहम्। कूष्माण्डोऽहम्। प्रेतोऽहम्। लोकपालाश्चाऽहम्। ग्रहाश्चाऽहम्। दिग्गजाश्चाऽहम्। दशदिशोऽहम्। ऊर्द्ध्वोऽहम्। अधोऽहम्। चतुर्दशभुवनान्यहम्। ततस्थोऽहम्। तदसंप्रदर्च्चा-श्रद्धानन्तरम्। तदहं संप्रकुर्य्यात्।

मैं स्त्री हूँ। मैं पुरुष हूँ। मैं ही सदाशिव हूँ। परम प्रकृतिस्वरूप मैं हूँ। परम-पुरुष मैं हूँ। नाद मैं हूँ। बिन्दु भी मैं हूँ। समस्त कलास्वरूप मैं हूँ। शब्द ब्रह्म मैं हूँ। क्रियायोग मैं हूँ। ब्रह्मा मैं हूँ। विष्णु मैं हूँ। सौर (सूर्य का अनुयायी) मैं हूँ। ब्राह्म (ब्रह्मा का अनुयायी) मैं हूँ। वैष्णव मैं हूँ। शिवा मैं हूँ। नाना शक्तियों के रूप में मैं हूँ। असुर मैं हूँ। देव मैं हूँ। मैं उच्चाररहित हूँ। विद्या मैं हूँ। वेद भी मैं ही हूँ। वेदों का साक्षी मैं हूँ। वेदों की क्रिया मैं हूँ। कर्मयोग मैं हूँ। धर्म-कर्म मैं हूँ। पिता मैं हूँ। माता मैं हूँ। पुत्र मैं हूँ। गुरु मैं हूँ। आचार्य मैं हूँ। आगम मैं हूँ। रामायण मैं हूँ। महाभागवत मैं हूँ। महाभारत मैं हूँ। श्री भागवत मैं हूँ। वेद-शास्त्र मैं हूँ। मन्त्र मैं हूँ। मन्त्रार्थ मैं हूँ। स्तोत्र मैं हूँ। कवच मैं हूँ। मेरे ही सहस्त्र नाम हैं। मैं ही गायत्री हूँ। बीज मैं हूँ। कूटाक्षर मैं हूँ। तीन अक्षरों के रूप में भी मैं हूँ। पचास मातृकाओं के रूप में मैं हूँ। पञ्चभूत मेरा ही स्वरूप हैं। पञ्चमहाभूत भी मैं हूँ। तत्त्व मैं हूँ। स्थूल मैं हूँ। सूक्ष्म मैं हूँ। कुल और अकुल अर्थात् सम्पूर्ण और अपूर्ण मैं हूँ। कुलाचल अर्थात् कुल नाम का पर्वत मैं हूँ। प्रमाणादि सोलह पदार्थ भी मैं ही हूँ। ऋषिगण मैं हूँ। मुनिगण मैं हूँ। लक्ष्मी मैं हूँ। समस्त स्त्रियाँ मेरा ही स्वरूप हैं। श्री मेरा ही स्वरूप है। प्रिय मैं हूँ। गौरी मैं हूँ। भूत मैं हूँ। कूष्माण्ड (पिशाचों का एक भेद)

मैं हूँ। प्रेत मैं हूँ। लोकपाल मैं हूँ। ग्रह (नक्षत्र) के स्वरूप में मैं हूँ। दिग्गजों के रूप में भी मैं ही हूँ। दसों दिशाएँ मेरा ही स्वरूप हैं। ऊपर मैं हूँ। नीचे मैं हूँ। चौदह लोक मेरा ही स्वरूप हैं। ततूरूप में स्थित मैं हूँ। यह ऋचा अश्रद्धालु को न जाए। उस अहम् को प्रकृति स्वरूप जानें।

जपेन्मन्त्रं विधानेन संख्यां कुर्वन् विधानतः। न दोषो मानसे जापे इत्याह भगवान् शिवः॥

विधिपूर्वक गणना करते हुए नियमित मन्त्र का जप करें; किन्तु मानसिक जप में कोई दोष नहीं अर्थात् मानसिक जप में किसी विधि-विधान की आवश्यकता नहीं। ऐसा भगवान् शिव का कथन है।

॥ इति अद्वैतभावनोपनिषत्समाप्ता ॥

॥ अद्वैतोपनिषद् ॥

ॐ अद्वैतपुरुषस्य न द्वितीयो भेदोऽस्ति। स्थिरजङ्गममध्ये अद्वैतं ब्रह्म प्रकाशितम्। सर्वलोकमध्ये ब्रह्म द्विधारूपं विचरति। चैतन्यचित्तेजसः अन्तरात्मा। मध्ये कैवल्यात्मा। एकैकं यथा रवितेजः रविर्भवेत् तथा अखण्डितब्रह्म मायाजगत्त्रयं अवस्थात्रयं परमात्मनः एकं भवति। या बुद्धिर्गर्भमध्ये सा बुद्धिर्बाल्यावस्था न भवति। या बुद्धिर्बाल्यावस्था भवति सा बुद्धिर्यौवनावस्था न भवति। या बुद्धिर्यौवनावस्था सा बुद्धिर्यूनावस्था न भवति। जरावस्था कालसंप्रीकामेवधर्मक्रीयते कारणं तत्त्वज्ञानं भवति। ज्ञानप्रबोधो यस्मिन्मध्ये मायामोहं परित्यज्य सर्वकर्मविनिर्मुक्तः स शब्दातीतोऽपि जायते। अथेतोऽपि अद्वैतपुरुषस्य पूर्णं ब्रह्म प्रतिभासितम्। यथा नदी जायते सागर एकोऽपि सागरप्रतिभासितः तथा ब्रह्म सर्वान्तरात्मा मध्ये प्रकाशितम्। नाप्रसं संपुटं सत्त्वरजस्तमोगुणरहितं तत्त्वं चेति। यथा योगी वायुनिरोधनं उक्ताचरणगुरुराछिनोति किल्बिषम्। सर्वदिव्यदेहमध्ये परमात्मा प्रकाशितः विनिर्मुक्तभवसागरः स्वर्गे देवमध्ये उत्तमस्वल्पस्य बुद्धिप्रकाशः अस्मिन्मध्ये मायामोहं परित्यजेत्। प्रकाशमध्ये माया करोति। तैलमध्ये यथा यथा मक्षिका एकदेहिमध्ये ब्रह्म दशधा रूपं विचरति। चक्षुः प्राणमनोबुद्धिपञ्चेन्द्रियाणि पञ्चतत्त्वानि तथा घटघटमध्ये बहुचन्द्रोऽपि दृश्यते प्रकाशितः सर्वलोकमध्ये ब्रह्मणो रूपं विचरति तथा घटघटमध्ये बहुचन्द्रोऽपि दृश्यते। अद्वैतं कथितं येन पुरुषोऽमूढो भवति। देवासुरमुनिमनुष्याणां अधः ऊर्ध्वं चतुर्दिशम्। भुवर्णायुदेवादाव्यदेहितेरसकारो दृश्यते रसकाराकारमध्ये भवति निराकारः अकारउकार मध्ये ब्रह्म परिपूर्णं सत्यसत्यं वेदवाक्यं वेदशास्त्रप्रतिभासितं कैवल्यं द्वैताद्वैतरहितं मनोमय आनन्दमयतत्त्वमयतेजोमयसर्वमयः विष्णुवृक्षफलं उत्पन्नं परमहंसपूर्णोऽपि जायते। ज्ञानं माता विज्ञानं पिता सगुणब्रह्म निर्गुणब्रह्मार्पितं अष्टमी च निर्गुणावस्था ब्रह्म शरीरज्ञानलहरी ब्रह्मणः। ब्रह्मणो यज्ञोपवीतमनिष्टं गंभीरग्रहे क्षेमसर्ववैराग्यप्रभावेन सन्तोषलाभसमस्तगुणोऽपि जायते। परमहंसपुरुषस्य द्वितीयं भेदं यथा जलरहिते भिन्नं प्राणप्रीतेयन्। द्वितीयवस्तुरहितः अखण्डितं वस्तु मध्ये प्रविष्टं अर्धस्थाने अर्धमृचस्थाने आत्मा दृश्यते आत्मव्यापकं ब्रह्मज्ञानविज्ञानम्॥

अद्वैत पुरुष का दूसरा भेद (रूप) नहीं है। स्थावर (जड़), जङ्गम (चेतन) प्रत्येक पदार्थ में ब्रह्म ही प्रकाशित हो रहा है। सम्पूर्ण संसार में ब्रह्म (इन्हीं) दो रूपों में विचरण कर रहा है (प्रकाशित हो रहा है)। तेजस् अर्थात् प्रकाश की अन्तरात्मा चैतन्य ज्ञानस्वरूप है। उसी के मध्य में कैवल्य स्वरूप वाला आत्मा विद्यमान है। जिस प्रकार सूर्य का प्रत्येक प्रकाश (किरण) सूर्य ही है, उसी प्रकार का अखण्ड ब्रह्म, मायामय तीनों जगत् एवं तीनों अवस्थाएँ एक ही परमात्मा के विविध रूप हैं। गर्भ में स्थित प्राणी की जो बुद्धि होती है, बाल्यावस्था में वैसी नहीं होती। बाल्यावस्था में जो बुद्धि होती है, वह युवावस्था में नहीं होती। यौवनावस्था में

जो बुद्धि होती है, वह प्रौढ़ावस्था में नहीं होती। काल की प्रतीक्षा करने वाली जरावस्था ही धर्म में प्रवृत्त करती है, तत्त्वज्ञान ही इसका कारण होता है। जिसमें ज्ञान का उदय होता है, वह माया-मोह का परित्याग कर सम्पूर्ण कर्मों से मुक्त हो जाता है, वह शब्दातीत (जिसका यथार्थ वर्णन सम्भव नहीं) भी हो जाता है। इस स्थिति वाले अद्वैत पुरुष के लिए पूर्ण ब्रह्म (एकाकार रूप में) प्रतिभासित हो जाता है। जैसे सागर में मिलकर नदी भी एकमात्र सागर रूप बन जाती है, वैसे ही सभी आत्माओं में प्रकाशित ब्रह्म भी एकमात्र ब्रह्म रूप में प्रतिभासित होता है। सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणों से रहित कोई भी पदार्थ प्रकट नहीं होता है। शास्त्र-निर्दिष्ट आचरण करते हुए व्यक्ति, श्वासों पर नियन्त्रण करने वाले योगी की तरह अपने दुष्कृत्यों को छिन्न-भिन्न कर देता है। सभी की दिव्य देह में परमात्मा ही प्रकाशित हो रहा है, ऐसा ज्ञान होने पर जीव भवसागर से मुक्त हो जाता है। स्वर्ग में देवों के मध्य रहने वाले छोटे-बड़े सभी की बुद्धि में तत्त्वज्ञान का प्रकाश होता है। अत: इस लोक में माया-मोह का त्याग कर देना ही उचित है।

प्रकाश में भी माया ही कार्य करती है। तैल में विचरण करती मक्षिका (मक्खी) की तरह ब्रह्म भी एक ही जीवात्मा के शरीर में दस रूपों में विचरण करता है। [**ऋषि इस उदाहरण से जड़ पञ्च भूतों में जीव चेतना द्वारा उत्पन्न होने वाली हलचलों को स्पष्ट करना चाहते हैं। तैल जड़-स्थिर द्रव है। यदि उसमें एक मक्खी डाल दी जाय, तो वह तमाम तरह की तरंगें तैल में पैदा कर देती है। इसी तरह जीव चेतना पञ्चभूतों से बनीं जड़ दसों इन्द्रियों में तरह-तरह की कामनाएँ-क्रियाएँ पैदा कर देती है।**] जैसे चक्षु, प्राण, मन, बुद्धि, पाँच इन्द्रियाँ आदि सभी पञ्च तत्त्वमय हैं। जिस प्रकार चन्द्रमा जल से भरे प्रत्येक घट में अनेकश: प्रतिबिम्बित दिखाई देता है, उसी प्रकार सम्पूर्ण जगत् में- प्रत्येक अन्त:करण में ब्रह्म ही विभिन्न रूपों में प्रकाशित हो रहा है। अद्वैत का जो वर्णन किया गया है, उससे पुरुष अमूढ़ (मोहरहित) हो जाता है। देवों, असुरों, मुनियों एवं मनुष्यों में तथा ऊपर-नीचे सर्वत्र ब्रह्म ही प्रकाशित हो रहा है। ('भुवर्णा.... दृश्यते' इतना अंश अस्पष्ट है।) रसकार (रसस्वरूप सगुण ब्रह्म) सकार के मध्य में ही होता है। अकार, उकार के मध्य निराकार (ब्रह्म) है। जो परिपूर्ण ब्रह्म है, सत्य का भी सत्य है, वेदज्ञान का वाचक है, वेद-शास्त्र द्वारा प्रतिभासित, कैवल्यस्वरूप, द्वैताद्वैतरहित, मनोमय, आनन्दमय, तत्त्वमय, तेजोमय, सर्वात्मक, विष्णु वृक्ष का फल उत्पन्न होने पर पूर्ण परमहंस हो जाता है। ऐसी स्थिति में ज्ञान ही माता, विज्ञान ही पिता, सगुण ब्रह्म, निर्गुण ब्रह्म में लीन होता है। यह आठवीं निर्गुणावस्था है। यही ब्रह्म शरीर ज्ञान की लहर है। ब्रह्म के लिए यज्ञोपवीत अभीष्ट नहीं है। अद्वैत ब्रह्म के गम्भीर ज्ञान की उपलब्धि से सम्पूर्ण योगक्षेम होता है। वैराग्य के प्रभाव से सन्तोष लाभ एवं समस्त गुणों की प्राप्ति हो जाती है। परमहंस पुरुष का द्वितीय भेद वैसे ही है, जैसे जलविहीन पात्र में चन्द्र सूर्य के प्रतिबिम्ब की जल से भिन्न प्रतीति होती है। द्वितीय वस्तु के ज्ञान से रहित (एकात्मज्ञान युक्त) अखण्ड वस्तु हृदय में प्रविष्ट आत्मा अर्द्ध ऋचा के समान दिखाई देती है। ब्रह्म का सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान आत्मा के समान ही व्यापक है।

॥ इति अद्वैतोपनिषत् समाप्ता ॥

॥ अन्नपूर्णोपनिषद् ॥

॥ शान्तिपाठः ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः .... इति शान्तिः ॥ (द्रष्टव्य–अथर्वशिखोपनिषद्)

॥ अथ प्रथमोऽध्यायः ॥

हरिः ॐ। निदाघो नाम योगीन्द्रः ऋभुं ब्रह्मविदां वरम्। प्रणम्य दण्डवद्भूमावुत्थाय स पुनर्मुनिः ॥ १ ॥

हरि ॐ। निदाघ नामक योगिवर ने ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ ऋभु को दण्डवत् प्रणाम करके उठकर सादर प्रश्न किया ॥ १ ॥

आत्मतत्त्वमनुब्रूहीत्येवं पप्रच्छ सादरम्। कयोपासनया ब्रह्मन्नीदृशं प्राप्तवानसि॥ २॥

भगवन् आत्मतत्त्व का उपदेश कीजिये, आपने किस उपासना से इस तत्त्व को प्राप्त किया॥ २ ॥

तां मे ब्रूहि महाविद्यां मोक्षसाम्राज्यदायिनीम्। निदाघ त्वं कृतार्थोऽसि शृणु विद्यां सनातनीम्॥३ ॥

मोक्षरूपी साम्राज्य को प्रदान करने वाली उस महाविद्या को मुझे बतलाइये। ऋभु ने कहा- हे निदाघ! तुम कृतार्थ हो इस सनातन विद्या को सुनो॥ ३ ॥

यस्या विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तो भविष्यसि। मूलशृङ्गाटमध्यस्था बिन्दुनादकलाऽऽश्रया॥ ४॥
नित्यानन्दा निराधारा विख्याता विलसत्कचा। विष्टपेशी महालक्ष्मीः कामस्तारो नतिस्तथा॥५ ॥
भगवत्यन्नपूर्णेति ममाभिलषितं ततः। अन्नं देहि ततः स्वाहा मन्त्रसारेति विश्रुता॥ ६॥
सप्तविंशतिवर्णात्मा योगिनीगणसेविता॥ ७॥
ऐं ह्रीं सौं श्रीं क्लीं ॐ नमो भगवत्यन्नपूर्णे ममाभिलषितमन्नं देहि स्वाहा। इति पित्रोपदिष्टोऽस्मि तदादिनियमस्थितः। कृतवान्स्वाश्रमाचारो मन्त्रानुष्ठानमन्वहम् ॥ ८॥

जिसके विशिष्ट ज्ञान से तुम जीवन्मुक्त हो जाओगे। मूल शृंगाट के बीच में बिन्दुनाद कला की आधारभूता नित्यानन्दस्वरूपा-निराधारा-सुकेशी-त्रिलोकेश्वरी-महालक्ष्मी विराजमान रहती हैं। काम-तारा (के बीज मन्त्र) नमः भगवति अन्नपूर्णे ममाभिलषितं अन्नं देहि स्वाहा (इन्हें क्रमशः जोड़कर मन्त्र बना लेना चाहिए)। यह मन्त्र-सार के रूप में प्रसिद्ध है। यह सत्ताईस वर्णों वाला मन्त्र योगिनियों द्वारा सेवित है। (मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है-) **'ऐं ह्रीं सौं श्रीं क्लीं ॐ नमो भगवत्यन्नपूर्णे ममाभिलषितमन्नं देहि स्वाहा'**। यह

सत्ताईस अक्षरों वाला मन्त्र हमारे पिता ने हमें दिया था। प्रतिदिन अपने आश्रम में नियमपूर्वक मन्त्र का अनुष्ठान करना मैंने आरम्भ किया॥ ४-८॥

एवं गते बहुदिने प्रादुरासीन्ममाग्रतः। अन्नपूर्णा विशालाक्षी स्मयमानमुखाम्बुजा॥ ९॥

बहुत दिनों तक अनुष्ठान करने के बाद एक दिन विशालाक्षी अन्नपूर्णा मुस्कराती हुई मेरे सामने प्रकट हुईं ॥ ९॥

तां दृष्ट्वा दण्डवद्भूमौ नत्वा प्राञ्जलिरास्थितः। अहो वत्स कृतार्थोऽसि वरं वरय मा चिरम्॥१०॥

उन्हें देखकर मैं दण्डवत् प्रणाम करके हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। तब भगवती अन्नपूर्णा ने कहा - वत्स तुम सफल हो गये, वरदान माँगो, देर मत करो॥ १०॥

एवमुक्तो विशालाक्ष्या मयोक्तं मुनिपुङ्गव। आत्मतत्त्वं मनसि मे प्रादुर्भवतु पार्वति॥ ११॥

तब मैंने कहा- हे भगवति! पार्वति! मेरे मन में आत्मतत्त्व प्रकाशित हो जाये॥ ११॥

तथैवास्त्विति मामुक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत। तदा मे मतिरुत्पन्ना जगद्वैचित्र्यदर्शनात्॥ १२॥

'ऐसा ही हो' कहकर देवी अन्तर्हित हो गईं। तब संसार की विचित्रता को देखकर मुझे विचार आया॥ १२॥

भ्रमः पञ्चविधो भाति तदेवेह समुच्यते। जीवेश्वरौ भिन्नरूपाविति प्राथमिको भ्रमः॥ १३॥

भ्रम पाँच प्रकार का प्रतीत होता है ,वही यहाँ स्पष्ट किया जा रहा है- जीव और ईश्वर भिन्न रूप में दिखाई देते हैं- यह पहला भ्रम है॥ १३॥

आत्मनिष्ठं कर्तृगुणं वास्तवं वा द्वितीयकः। शरीरत्रयसंयुक्तजीवः सङ्गी तृतीयकः॥ १४॥

कर्म करने वाले का गुण वास्तविक है अथवा आत्मनिष्ठ है, यह दूसरा भ्रम है। जीव तीनों (स्थूल,सूक्ष्म एवं कारण) शरीरों में आसक्त है, यह तीसरा भ्रम है॥ १४॥

जगत्कारणरूपस्य विकारित्वं चतुर्थकः। कारणाद्भिन्नजगतः सत्यत्वं पञ्चमो भ्रमः। पञ्चभ्रमनिवृत्तिश्च तदा स्फुरति चेतसि॥ १५॥

जगत् का कारणरूप होने से ब्रह्मतत्त्व विकारयुक्त है, यह चतुर्थ भ्रम है। कारण से भिन्न जगत् सत्य है, यह पाँचवाँ भ्रम है। जब चित्त के पाँच प्रकार के भ्रमों की निवृत्ति हो जाती है तब चित्त में आत्मतत्त्व स्फुरित होता है॥ १५॥

ऊपर वर्णित भ्रमों के निवारणार्थ आगे के मन्त्र में दर्शन के दृष्टान्त प्रस्तुत किए गये हैं।

बिम्बप्रतिबिम्बदर्शनेन भेदभ्रमो निवृत्तः। स्फटिकलोहितदर्शनेन पारमार्थिककर्तृत्वभ्रमो निवृत्तः। घटमठाकाशदर्शनेन सङ्गीतिभ्रमो निवृत्तः। रज्जुसर्पदर्शनेन कारणाद्भिन्नजगतः सत्यत्वभ्रमो निवृत्तः। कनकरुचकदर्शनेन विकारित्वभ्रमो निवृत्तः। तदाप्रभृति मच्चित्तं ब्रह्माकारमभूत्स्वयम्। निदाघ त्वमपीत्थं हि तत्त्वज्ञानमवाप्नुहि॥ १६॥

बिंब- प्रतिबिंब के दृष्टान्त से भेद का भ्रम दूर हो गया। स्फटिक-मणि और लोहित-मणि के दर्शन से पारमार्थिक कर्त्तृत्व का भ्रम नष्ट हो गया। घटाकाश और मठाकाश के दर्शन से संगी होने का भ्रम दूर हो गया। रज्जु-सर्प के दृष्टान्त से कारण से भिन्न जगत् को सत्य समझने का भ्रम मिट गया। सुवर्ण एवं सोने का कड़ा के दृष्टान्त से ब्रह्म के विकारित्व का भ्रम दूर हो गया। तभी से मेरा चित्त स्वयं ब्रह्माकार हो गया। हे निदाघ ! तुम भी इसी प्रकार तत्त्वज्ञान को प्राप्त करो॥ १६॥

[जैसे चन्द्रमा की परछाईं जल में चन्द्रमा रूप में दीख पड़ती है, उसी प्रकार वह परमात्मा भी सब जीवों में आत्मरूप से विद्यमान है। दोनों पृथक् दीखते हुए भी एक हैं। दूसरे भ्रम की निवृत्ति हेतु स्फटिक और लोहित मणि का दृष्टान्त दिया है। जैसे स्फटिक मणि के पास रखी वस्तु शुभ्र और लोहित मणि के पास रखी वस्तु रक्तवर्ण की दिखाई पड़ती है, उसी प्रकार कर्म करने वाला व्यक्ति परमार्थ दृष्टि से कार्य कर रहा है या आत्मनिष्ठ होकर स्वार्थ पूर्वक कार्य कर रहा है, यह बात पता चलती है। चेतना स्फटिक तुल्य और माया लोहितमणि तुल्य है। अगले भ्रम की निवृत्ति घटाकाश और मठाकाश के दृष्टान्त द्वारा बताई है कि जो आकाश घट के बीच में संकुचित रूप में है, वही मठ (मन्दिर) में विस्तृत रूप में है। स्थूल-सूक्ष्म और कारण तीनों शरीरों में चेतना का क्रमशः विस्तार होता जाता है। चतुर्थ भ्रम की निवृत्ति रस्सी का सर्प समझने और बाद में उसकी वास्तविकता के बोध से बताई गई है कि जगत् वस्तुतः वैसा नहीं है जैसा दीख पड़ता है। पाँचवें भ्रम की निवृत्ति सोने और उसके बने आभूषण के उदाहरण से करते हुए कहा है कि ब्रह्म और जीव अलग-अलग नहीं हैं। जीव ब्रह्म का ही अंश है।]

निदाघःप्रणतो भूत्वा ऋभुं पप्रच्छ सादरम्। ब्रूहि मे श्रद्दधानाय ब्रह्मविद्यामनुत्तमाम्॥१७॥ तथेत्याह ऋभुः प्रीतस्तत्त्वज्ञानं वदामि ते। महाकर्त्ता महाभोक्ता महात्यागी भवानघ। स्वस्वरूपानुसन्धानमेवं कृत्वा सुखी भव॥ १८॥

निदाघ ने सादर प्रणाम करके ऋभु से फिर पूछा- मुझे सर्वोत्तम ब्रह्मविद्या सिखाइये, मैं अत्यन्त श्रद्धावनत हूँ। प्रसन्न होकर ऋभु ने कहा- ठीक है, मैं तुझे तत्त्वज्ञान बताता हूँ। हे निष्पाप निदाघ! निरन्तर अपने स्वरूप का अनुसन्धान करो, ऐसा करने से तुम महाकर्ता, महाभोक्ता, महात्यागी एवं परमसुखी हो जाओगे॥ १७-१८॥

नित्योदितं विमलमाद्यमनन्तरूपं ब्रह्माऽस्मि नेतरकलाकलनं हि किञ्चित्। इत्येव भावय निरञ्जनतामुपेतो निर्वाणमेहि सकलामलशान्तवृत्तिः॥ १९॥

मैं ही नित्योदित विमल आद्य-अनन्तरूप ब्रह्म हूँ, मेरे अतिरिक्त कुछ भी कलाकलन (क्रिया-कलाप) नहीं है। निरन्तर यही भावना करो, समग्र वृत्तियों के शान्त होने पर निष्कल-निरञ्जनरूप होकर निर्वाण प्राप्त करोगे॥ १९॥

यदिदं दृश्यते किञ्चित्तत्तन्नास्तीति भावय। यथा गन्धर्वनगरं यथा वारि मरुस्थले॥ २०॥

ऐसी भावना करो कि जिस तरह गन्धर्वनगर अथवा मरुस्थल में जल किञ्चित भी नहीं होता उसी प्रकार जो कुछ भी दिखाई देता है, वह वास्तव में कुछ भी नहीं है॥ २०॥

यत्तु नो दृश्यते किञ्चिद्यन्नु किञ्चिदिव स्थितम्। मनःषष्ठेन्द्रियातीतं तन्मयो भव वै मुने॥ २१॥
अविनाशि चिदाकाशं सर्वात्मकमखण्डितम्। नीरन्ध्रं भूरिवाशेषं तदस्मीति विभावय॥ २२॥
यदा संक्षीयते चित्तमभावात्यन्तभावनात्। चित्सामान्यस्वरूपस्य सत्तासामान्यता तदा॥ २३॥

जो कुछ दिखाई नहीं देता तथा कुछ के समान स्थित है, जो मन एवं पाँच ज्ञानेन्द्रियों से अगम्य है, हे मुनि निदाघ! उसी में लीन हो जाओ। जो अविनाशी है, चिदाकाशस्वरूप है, सर्वात्मक एवं अखण्डरूप है, जो नीरन्ध्र (छिद्ररहित) है तथा भूमि के समान है, वह सम्पूर्ण मैं ही हूँ- ऐसी भावना करो। अभाव की अत्यन्त भावना करने से जब चित्त समग्ररूपेण क्षीण हो जाता है, तब चिन्मात्र स्वरूप की सामान्य सत्ता प्राप्त हो जाती है॥ २१-२३॥

नूनं चैत्यांशरहिता चिद्यदाऽऽत्मनि लीयते। असद्रूपवदत्यच्छा सत्तासामान्यता तदा॥ २४॥ दृष्टिरेषा हि परमा सदेहादेहयोः समा। मुक्तयोः संभवत्येव तुर्यातीतपदाभिधा॥ २५॥ व्युत्थितस्य भवत्येषा समाधिस्थस्य चानघ। ज्ञस्य केवलमज्ञस्य न भवत्येव बोधजा। अनानन्दसमानन्द-मुग्धमुग्धमुखद्युतिः॥ २६॥ चिरकालपरिक्षीणमननादिपरिभ्रमः। पदमासाद्यते पुण्यं प्रज्ञयैवैकया तथा॥ २७॥

जब चैत्यांश (चैतन्य के आवास शरीर) से रहित चित्सत्ता आत्मा में विलीन हो जाती है, तब ही असत् रूप की तरह निर्मल स्वच्छ सत्ता-सामान्यत्व प्राप्त होता है। जब मुक्त सदेह एवं अदेह में परम समदृष्टि प्राप्त हो जाती है, तब तुर्या कही जाने वाली स्थिति प्राप्त होती है। तत्त्वज्ञानी चाहे समाधिस्थ रहे या समाधिभिन्न स्थिति में रहे, उसी को यह तुर्या स्थिति प्राप्त होती है, अज्ञानी को नहीं। लौकिक आनन्द से भिन्न पूर्णानन्द में मग्न जैसी मुखद्युति वाली यह तुरीया स्थिति होती है। चिरकाल तक मनन करने से सम्पूर्ण भ्रमों के क्षीण हो जाने पर, एकमात्र प्रज्ञा के द्वारा ही यह परम पुण्य पद प्राप्त होता है॥ २४-२७॥

इमं गुणसमाहारमनात्मत्वेन पश्यतः। अन्तःशीतलया याऽसौ समाधिरिति कथ्यते॥ २८॥ अवासनं स्थिरं प्रोक्तं मनोध्यानं तदेव च। तदेव केवलीभावं शान्ततैव च तत्सदा॥ २९॥ तनुवासनमत्युच्चैः पदायोद्यतमुच्यते। अवासनं मनोऽकर्तृपदं तस्मादवाप्यते॥ ३०॥ घनवासनमेतत्तु चेतः कर्तृत्वभावनम्। सर्वदुःखप्रदं तस्माद्वासनां तनुतां नयेत्॥ ३१॥ चेतसा संपरित्यज्य सर्वभावात्मभावनाम्। सर्वमाकाशतामेति नित्यमन्तर्मुखस्थितेः॥ ३२॥ यथा विपणगा लोका विहरन्तोऽप्यसत्समाः। असंबन्धात्तथा ज्ञस्य ग्रामोऽपि विपिनोपमः॥ ३३॥ अन्तर्मुखतया नित्यं सुप्तो बुद्धो व्रजन्पठन्। पुरं जनपदं ग्राममरण्यमिव पश्यति॥ ३४॥ अन्तःशीतलतायां तु लब्धायां शीतलं जगत्। अन्तस्तृष्णोपतप्तानां दावदाहमयं जगत्॥ ३५॥

भवत्यखिलजन्तूनां यदन्तस्तद्बहिः स्थितम्॥ ३६॥ यस्त्वात्मरतिरेवान्तः कुर्वन्कर्मेन्द्रियैः क्रियाः। न वशो हर्षशोकाभ्यां स समाहित उच्यते॥ ३७॥

समस्त गुण-समूह को आत्मा से भिन्न रूप में देखने वाले जिज्ञासु साधक की जो आन्तरिक शान्त स्थिति होती है, उसे ही समाधि कहते हैं। वासना-शून्य स्थिरता ही ध्यान की स्थिति है। निरन्तर बनी रहने वाली यह शान्त स्थिति ही केवलीभाव (कैवल्य स्थिति) कहलाती है। जब वासना क्षीण होने लगती है, तब मन उच्च स्थिति की ओर बढ़ने लगता है। धीरे-धीरे वासना -शून्य होने पर मन से कर्तृत्व भाव नष्ट हो जाता है। वासना की अधिकता से मन में अहंकर्तृत्व की भावना उत्पन्न होती है, जो सब प्रकार के दु:खों का कारण होती है; अत: साधक को चाहिए कि वासना को क्षीण करने का अभ्यास करे। चित्त से समस्त पदार्थों में स्थित आत्मभावना (आसक्ति) का परित्याग करके नित्य अन्तर्मुख रहने वाले साधक को सब कुछ शून्य प्रतीत होता है। जैसे-सम्बन्ध न रहने के कारण बाजार में घूमने वाले लोग 'नहीं ' के समान ही लगते हैं, उसी प्रकार सम्बन्ध के अभाव में तत्त्वज्ञ को गाँव भी वन जैसा ही जनशून्य लगता है। सदा अन्तर्मुख स्थिति में रहने वाला साधक सोते, जागते, चलते, पढ़ते हुए, नगर को, जनपद को या ग्राम को अरण्य के समान ही देखता है।

जैसे आन्तरिक शान्तिमयी शीतलता प्राप्त होने पर सम्पूर्ण जगत् शान्त-शीतल लगता है, वैसे ही आन्तरिक तृष्णा से जलने वालों को यह जगत् जलता हुआ प्रतीत होता है। सभी प्राणियों को अन्त:स्थिति के अनुरूप ही बाहरी जगत् प्रतीत होता है। जो स्वयं में ही लीन रहता है, वह कर्मेन्द्रियों से कार्य करता हुआ भी हर्ष शोकान्वित नहीं होता है, उसे ही समाहित कहते हैं॥ २८-३७॥

आत्मवत्सर्वभूतानि परद्रव्याणि लोष्टवत्। स्वभावादेव न भयाद्यः पश्यति स पश्यति॥ ३८॥

किसी भय से नहीं, जो स्वभाव से ही सब प्राणियों को अपने जैसा तथा परद्रव्य को मिट्टी के ढेले की तरह देखता है, वस्तुत: वही देखता है॥ ३८॥

अद्यैव मृतिरायातु कल्पान्तनिचयेन वा। नासौ कलङ्कमाप्नोति हेम पङ्कगतं यथा॥ ३९॥

आज ही मृत्यु आ जाए या अनेक कल्पों के बाद, कीचड़ में पड़े हुए सुवर्ण की तरह से वह कलंकित (कीचड़ अर्थात् हीन वातावरण से प्रभावित) नहीं होता॥ ३९॥

कोऽहं कथमिदं किं वा कथं मरणजन्मनी। विचारयान्तरे वेत्थं महत्तत्फलमेष्यसि॥ ४०॥

हे निदाघ! अपने अन्त:करण में यह विचार करो - मैं कौन हूँ, यह जगत् कैसे, क्या है? मृत्यु और जन्म क्या है? तब तुम बड़ी सफलता प्राप्त करोगे॥ ४०॥

विचारेण परिज्ञातस्वभावस्य सतस्तव। मनः स्वरूपमुत्सृज्य शममेष्यति विज्वरम्॥ ४१॥ विज्वरत्वं गतं चेतस्तव संसारवृत्तिषु। न निमज्जति तद्ब्रह्मन् गोष्पदेष्विव वारणः॥ ४२॥ कृपणं तु मनो ब्रह्मन् गोष्पदेऽपि निमज्जति। कार्येगोष्पदतोयेऽपि विशीर्णो मशको यथा॥ ४३॥ यावद्यावन्मुनिश्रेष्ठ स्वयं संत्यज्यतेऽखिलम्। तावत्तावत्परालोकः परमात्मैव शिष्यते॥ ४४॥

यावत्सर्वं न संत्यक्तं तावदात्मा न लभ्यते। सर्ववस्तुपरित्यागे शेष आत्मेति कथ्यते॥ ४५॥
आत्मावलोकनार्थं तु तस्मात्सर्वं परित्यजेत्। सर्वं संत्यज्य दूरेण यच्छिष्टं तन्मयो भव॥ ४६॥

विचार करते हुए जब तुम स्वभाव (आत्मस्वरूप) को जान लोगे, तब तुम्हारा चञ्चल मन शान्त हो जाएगा। विगतज्वर (सांसारिक रोगों से मुक्त) तुम्हारा मन तब सांसारिक वृत्तियों में उसी प्रकार मग्न नहीं होगा, जिस तरह छोटे-छोटे पल्वलों (पोखरों) में हाथी नहीं डूबता। हे ब्रह्मन्! कृपण (विषयी) मन छोटे पोखर (सांसारिक वृत्तियों)में भी उसी प्रकार डूब जाता है, जिसप्रकार छोटा-सा मच्छर उसमें डूब जाता है। हे मुनिश्रेष्ठ! जैसे-जैसे साधक स्वयं सांसारिकता को त्याग देता है, वैसे-वैसे ही परम प्रकाशरूप परमात्मा ही शेष रहता जाता है। जब तक समग्र (संसार के पदार्थों के प्रति आसक्ति के) भावों का त्याग नहीं किया जाता, तब तक आत्मा की उपलब्धि नहीं होती। समस्त पदार्थों के त्याग के पश्चात् जो कुछ बचा रहता है, वही आत्मा है। अत: आत्मावलोकन के लिये अन्य सब का त्याग कर देना चाहिए। दूर से ही सब कुछ का त्याग करने (विषयों के निकट भी न जाने का सुनिश्चित संकल्प सधने) पर जो शेष रहता है, उसी में लीन हो जाओ॥ ४१-४६॥

सर्वं किञ्चिदिदं दृश्यं दृश्यते यज्जगद्गतम्। चिन्निष्पन्दांशमात्रं तन्नान्यत्किञ्चन शाश्वतम्॥ ४७॥

जगत् में जो कुछ भी दिखाई दे रहा है, वह चैतन्य के निष्पन्दन का एक अंशमात्र है। उससे भिन्न कोई भी वस्तु शाश्वत नहीं है॥ ४७॥

समाहिता नित्यतृप्ता यथाभूतार्थदर्शिनी। ब्रह्मन्समाधिशब्देन परा प्रज्ञोच्यते बुधैः॥ ४८॥

हे ब्रह्मन्! वास्तविक स्थिति को देखने वाली, नित्यतृप्त, समाहित परा-प्रज्ञा ही विद्वानों के द्वारा समाधि-शब्द से संबोध्य कही जाती है॥ ४८॥

अक्षुब्धा निरहंकारा द्वन्द्वेष्वननुपातिनी। प्रोक्ता समाधिशब्देन मेरोः स्थिरतरा स्थितिः॥ ४९॥

क्षोभ एवं अहंकार से रहित, द्वन्द्वों में न पड़ने वाली, मेरु के समान अटल- निश्चल स्थिति ही समाधि कही जाती है॥ ४९॥

निश्चिता विगताभीष्टा हेयोपादेयवर्जिता। ब्रह्मन्समाधिशब्देन परिपूर्णा मनोगतिः॥ ५०॥

हे ब्रह्मन्! निश्चित कामनारहित हेय एवं उपादेय (त्याज्य एवं ग्रहणीय) से वर्जित परिपूर्ण मन:स्थिति ही समाधि कही गई है॥ ५०॥

केवलं चित्प्रकाशांशकल्पिता स्थिरतां गता। तुर्या सा प्राप्यते दृष्टिर्महद्भिर्वेदवित्तमैः॥ ५१॥

वेद ज्ञानी महाविद्वानों के द्वारा ही वह तुर्या दृष्टि (स्थिति) प्राप्त की जाती है, जो केवल चित्प्रकाशमयी एवं शाश्वत है॥ ५१॥

अदूरगतसादृश्या सुषुप्तस्योपलक्ष्यते। मनोहंकारविलये सर्वभावान्तरस्थिता॥ ५२॥

मन के अहंकार के नष्ट हो जाने पर समग्र भावों से रहित सुषुप्तितुल्य स्थिति हो जाती है॥ ५२॥

समुदेति परानन्दा या तनुः पारमेश्वरी। मनसैव मनश्छित्त्वा सा स्वयं लभ्यते गतिः॥ ५३॥

परमेश्वर की परमानन्द-दायिनी प्रसादपूर्ण जो स्थिति है, वह मन से ही मन को (अन्तःकरण में जाग्रत् दिव्य ज्ञान के प्रकाश से मन की इच्छाओं को) नष्ट करके स्वयं प्राप्त होती है॥ ५३॥

तदनु विषयवासनाविनाशस्तदनु शुभः परमस्फुटप्रकाशः। तदनु च समतावशात्स्वरूपे परिणमनं महतामचिन्त्यरूपम्॥ ५४॥

उस स्थिति के प्राप्त होने पर विषय-वासना का विनाश हो जाता है। तत्पश्चात् परमप्रकाश प्रकट होता है। तदनन्तर समत्व भाव के कारणस्वरूप में ही महापुरुषों का अचिन्त्यरूप परिणत हो जाता है॥ ५४॥

अखिलमिदमनन्तमात्मतत्त्वं दृढपरिणामिनि चेतसि स्थितोऽन्तः। बहिरुपशमिते चराचरात्मा स्वयमनुभूयत एव देवदेवः॥ ५५॥

यह अनन्त, सम्पूर्ण आत्मतत्त्व दृढ़परिणामी (स्थिर) चित्त में ही अन्तःस्थित रहता है। बाह्यज्ञान के शान्त हो जाने पर चराचरात्मदेव (जड़-चेतन में संव्याप्त ब्राह्मी चेतना) का स्वयं अनुभव होता है॥ ५५॥

असक्तं निर्मलं चित्तं युक्तं संसार्यविस्फुटम्। सक्तं तु दीर्घतपसा युक्तमप्यतिबद्धवत्॥ ५६॥

आसक्तिरहित निर्मल चित्त ही संसार से हटाकर योग में लगाने योग्य होता है, अन्यथा आसक्तियुक्त चित्त तो दीर्घतप से युक्त भी अतिबद्ध (भवबन्धनों में जकड़ा हुआ) जैसा ही है॥ ५६॥

अन्तः संसक्तिनिर्मुक्तो जीवो मधुरवृत्तिमान्। बहिः कुर्वन्नकुर्वन्वाकर्त्ता भोक्ता न हि क्वचित्॥ ५७॥

आन्तरिक संसर्ग आसक्ति से निर्मुक्त जीवात्मा आनन्दमयी मधुर-वृत्ति से सम्पन्न होता है। ऐसा जीवात्मा बाह्य जगत् में कार्य करता हुआ अथवा नहीं करता हुआ भी, न तो कुछ करता ही है और न कुछ भोगता ही है॥ ५७॥

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

निदाघ उवाच-

सङ्गः कीदृश इत्युक्तः कश्च बन्धाय देहिनाम्। कश्च मोक्षाय कथितः कथं त्वेष चिकित्स्यते॥ १॥

जिज्ञासु निदाघ ने पूछा- देहधारियों का संग (आसक्ति) किस प्रकार का कहा गया है? उनका बन्धन क्या है? उनका मोक्ष किसे कहा जाता है? तथा इसका ज्ञान किस प्रकार होता है?॥ १॥

देहदेहिविभागैकपरित्यागेन भावना। देहमात्रे हि विश्वासः सङ्गो बन्धाय कथ्यते॥ २॥

महर्षि ऋभु ने कहा-शरीर एवं आत्मा के भिन्नत्व का परित्याग करने पर देहमात्र में जो आत्मभावना हो जाती है, वही बन्धन कराने वाली है॥ २॥

सर्वमात्मेदमत्राहं किं वाञ्छामि त्यजामि किम्। इत्यसङ्गस्थितिं विद्धि जीवन्मुक्ततनुस्थिताम्॥ ३॥

यहाँ पर सब कुछ आत्मा ही है, फिर मैं किसकी इच्छा करूँ, किसका त्याग करूँ, जीवन्मुक्त महापुरुषों के शरीर की यह स्थिति ही अनासक्ति कहलाती है॥ ३॥

नाहमस्मि न चान्योऽस्ति न चायं न च नेतरः। सोऽसङ्ग इति संप्रोक्तो ब्रह्मास्मीत्येव सर्वदा॥ ४॥

मैं(शरीर)नहीं हूँ,मेरे अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है, न तो यह है और न इसके अतिरिक्त दूसरा कोई है। यह भावना ही असंग अर्थात् अनासक्ति है। प्रत्येक समय ब्रह्मास्मि 'मैं ब्रह्म हूँ' यह भावना बनी रहे॥ ४॥

नाभिनन्दति नैष्कर्म्यं न कर्मस्वनुषज्जते। सुसमो यः परित्यागी सोऽसंसक्त इति स्मृतः॥ ५॥

न तो नैष्कर्म्य की प्रशंसा करता है, न कर्मों में आसक्त ही होता है, जिसमें समता की भावना है और जो मन से परित्यागी है, वही 'असंसक्त' अर्थात् अनासक्त योगी कहा गया है॥ ५॥

सर्वकर्मफलादीनां मनसैव न कर्मणा। निपुणो यः परित्यागी सोऽसंसक्त इति स्मृतः॥ ६॥
असंकल्पेन सकलाश्चेष्टा नाना विजृम्भिताः। चिकित्सिता भवन्तीह श्रेयः संपादयन्ति हि॥ ७॥
न सक्तमिह चेष्टासु न चिन्तासु न वस्तुषु। न गमागमचेष्टासु न कालकलनासु च॥ ८॥ केवलं
चिति विश्रम्य किंचिच्चैत्यावलम्ब्यपि। सर्वत्र नीरसमिह तिष्ठत्यात्मरसं मनः॥ ९॥ व्यवहारमिदं
सर्वं मा करोतु करोतु वा। अकुर्वन्वाऽपि कुर्वन्वा जीवः स्वात्मरतिक्रियः॥ १०॥

समस्त कर्मों के फल-परिणामादि का परित्याग केवल कर्म (बाहरी दिखावे से नहीं,मन से) करने में कुशल व्यक्ति ही अनासक्त कहा जाता है। अनासक्त व्यक्ति की सम्पूर्ण बढ़ी हुई चेष्टाएँ बिना संकल्प के ही समाहित (शान्त) हो जाती हैं। तब यहाँ श्रेयस् सम्पादन होने लगता है। न तो (वह) चेष्टाओं में आसक्त हो, न कार्यों की चिन्ताओं में और न पदार्थों की प्राप्ति में, न आने-जाने में और न समय की गणना में ही आसक्त हो। केवल चित्स्वरूप में ही विश्राम करता रहे, कुछ समय चैत्य (आध्यात्मिक वातावरण से युक्त मठ आदि) में जाकर भी समय व्यतीत करता रहे। सर्वत्र (बाह्य जगत् में) नीरस होकर आत्मरस में ही मन लगाए। सब प्रकार के व्यावहारिक कार्यों को करता रहे अथवा न करता रहे। कार्य करे या न भी करे, तो भी जीव स्वात्मा में ही रमण करता रहता है॥ ६-१०॥

अथवा तमपि त्यक्त्वा चैत्यांशं शान्तचिद्घनः। जीवस्तिष्ठति संशान्तो ज्वलन्मणिरिवात्मनि॥११॥
चित्ते चैत्यदशाहीने या स्थितिः क्षीणचेतसाम्। सोच्यते शान्तकलना जाग्रत्येव सुषुप्तता॥ १२॥

अथवा उस मठ आदि स्थान का भी त्याग करके जीवात्मा शान्त, चिन्मय स्वरूप होकर जाज्वल्यमान

मणि के समान स्वयं प्रकाशित हो जाता है। चित्त जब चैत्यदशाहीन अर्थात् संकल्पहीन हो जाता है, तब क्षीण- चेता महापुरुषों की जो स्थिति होती है, वही शान्तस्वरूप स्थिति,जाग्रतावस्था में सुषुप्ति कही जाती है॥ ११-१२॥

एषा निदाघ सौषुप्तस्थितिरभ्यासयोगतः। प्रौढा सती तुरीयेति कथिता तत्त्वकोविदैः॥ १३॥

हे निदाघ! यह सुषुप्ति की स्थिति अभ्यास से जब प्रौढ़ हो जाती है, तब तुरीयावस्था कही जाती है, ऐसा तत्त्वज्ञानियों का मत है॥ १३॥

अस्यां तुरीयावस्थायां स्थितिं प्राप्याविनाशिनीम्। आनन्दैकान्तशीलत्वादनानन्दपदं गतः॥ १४॥
अनानन्दमहानन्दकालातीतस्ततोऽपि हि। मुक्त इत्युच्यते योगी तुर्यातीतपदं गतः॥ १५॥

इस तुरीयावस्था में शाश्वत स्थिति को प्राप्त कर आनन्दमात्र की स्थिति से भी परा स्थिति को प्राप्त होता है। अतः क्रमशः अनानन्द, महानन्द एवं कालातीत स्थिति को प्राप्त कर योगी तुर्यातीत स्थिति में पहुँचकर मुक्त हो जाता है, ऐसा कहा जाता है॥ १४-१५॥

परिगलितसमस्तजन्मपाशः सकलविलीनतमोमयाभिमानः। परमरसमयीं परात्मसत्तां जलगतसैन्धवखण्डवन्महात्मा॥ १६॥

ऐसा योगी जन्म-मरण के समस्त बन्धनों के नष्ट होने से, तमोमय (अज्ञान जनित) समस्त अभिमान के विलीन हो जाने से परम रसमयी परमात्म सत्ता को प्राप्तकर, जल में घुले हुए नमक के समान 'महात्मा' (महान् आत्मा) हो जाता है॥ १६॥

जडाजडदृशोर्मध्ये यत्तत्त्वं पारमार्थिकम्। अनुभूतिमयं तस्मात्सारं ब्रह्मेति कथ्यते॥ १७॥

जड़-चेतन दृश्य जगत् में जो अनुभूतिमय पारमार्थिक तत्त्व है, वही ब्रह्म कहा जाता है॥ १७॥

दृश्यसंवलितो बन्धस्तन्मुक्तौ मुक्तिरुच्यते। द्रव्यदर्शनसंबन्धे याऽनुभूतिरनामया॥ १८॥
तामवष्टभ्य तिष्ठ त्वं सौषुप्तीं भजते स्थितिम्। सैव तुर्यत्वमाप्नोति तस्यां दृष्टिं स्थिरां कुरु॥ १९॥
आत्मास्थूलो न चैवाणुर्न प्रत्यक्षो न चेतरः। न चेतनो न च जडो न चैवासन्न सन्मयः॥ २०॥

जब तक दृश्य-दर्शक का भेद रहता है, बन्धन ही कहा जाता है, जब दृश्य-दर्शक का भेद समाप्त हो जाता है, उसी स्थिति को मुक्ति कहते हैं। द्रव्य (दृश्य) एवं दर्शन के सम्बन्ध में जो शुद्ध अनुभूति होती है, हे निदाघ! उसी को स्थिर करके रहो, (निरन्तर बनाये रखो) तो तुम सुषुप्ति अवस्था को प्राप्त कर सकोगे। निरन्तर के अभ्यास से वही (सुषुप्तावस्था) तुरीया स्थिति को प्राप्त हो जाती है, उसी में तुम्हें स्थिर दृष्टि रखनी चाहिए। आत्मा न तो स्थूल है और न अणु। न प्रत्यक्ष है और न ही परोक्ष, न चेतन है और न जड़। न असत् है और न सत् ही॥ १८-२०॥

नाहं नान्यो न चैवैको न चानेकोऽद्वयोऽव्ययः। यदिदं दृश्यतां प्राप्तं मनः सर्वेन्द्रियास्पदम्॥ २१॥
दृश्यदर्शनसंबन्धे यत्सुखं पारमार्थिकम्। तदतीतं पदं यस्मात्तन्न किञ्चिदिवैव तत्॥ २२॥
न मोक्षो नभसः पृष्ठे न पाताले न भूतले। सर्वाशासंक्षये चेतःक्षयो मोक्ष इतीष्यते॥ २३॥
मोक्षो मेऽस्त्विति चिन्ताऽन्तर्जाता चेदुत्थितं मनः। मननोत्थे मनस्येष बन्धः सांसारिको दृढः॥ २४॥
आत्मन्यतीते सर्वस्मात्सर्वरूपेऽथ वा तते। को बन्धः कश्च वा मोक्षो निर्मूलं मननं कुरु॥ २५॥

न मैं हूँ, न अन्य कोई है, न एक है और न ही अनेक है, न अद्वैत है, न अव्यय (अक्षर) है। जो दृष्टिगोचर-इन्द्रियगोचर है, वह मन ही है, जो सभी इन्द्रियों के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करता है। दृश्य एवं दर्शन का सम्बन्ध होने पर, जो पारमार्थिक सुख होता है वह वाङ्मनसातीत (वाणी एवं मन से परे) पद ही है, वह किसी जैसा नहीं है। आकाश पर मोक्ष नहीं है न पाताल में है और न पृथिवी पर ही है। समग्र आशाओं का क्षय हो जाने पर चित्त के क्षय को ही मोक्ष कहना चाहिए। मेरा मोक्ष हो, यदि ऐसी चिन्ता जग जाए, तो मन का उत्थान (मन में कामना का जागरण) हुआ और मन का उत्थान होने पर मन में सांसारिक बन्धन उत्पन्न हो गया। समस्त पदार्थों से मन के अतीत 'विरक्त' हो जाने पर अथवा आत्मा के सर्वरूप हो जाने पर बन्धन क्या और मोक्ष क्या? अतः हे निदाघ! मनन के साथ मन को निर्मूल करो॥ २१-२५॥

अध्यात्मरतिराशान्तः पूर्णपावनमानसः। प्राप्तानुत्तमविश्रान्तिर्न किञ्चिदिह वाञ्छति॥ २६॥

अध्यात्म में रमण करने वाला पूर्णकाय पूर्णतया पवित्र मानस वाला पुरुष अलौकिक विश्रान्ति 'शान्ति' को प्राप्तकर जगत् में किसी वस्तु या भाव की इच्छा नहीं रखता॥ २६॥

सर्वाधिष्ठानसन्मात्रे निर्विकल्पे चिदात्मनि। यो जीवति गतस्नेहः स जीवन्मुक्त उच्यते॥ २७॥

दिक्कालादि समस्त विश्व के आधार निर्विकल्प चिदात्मा में निष्काम रमण करने वाला ही जीवन्मुक्त कहा जाता है॥ २७॥

नापेक्षते भविष्यच्च वर्तमाने न तिष्ठति। न संस्मरत्यतीतं च सर्वमेव करोति च॥ २८॥ अनुबन्धपरे
जन्तावसंसर्गमनाः सदा। भक्ते भक्तसमाचारः शठे शठ इव स्थितः॥ २९॥
बालो बालेषु वृद्धेषु वृद्धो धीरेषु धैर्यवान्। युवा यौवनवृत्तेषु दुःखितेषु सुदुःखधीः॥ ३०॥
धीरधीरुदितानन्दः पेशलः पुण्यकीर्तनः। प्राज्ञः प्रसन्नमधुरो दैन्यादपगताशयः॥ ३१॥ अभ्यासेन
परिस्पन्दे प्राणानां क्षयमागते। मनः प्रशममायाति निर्वाणमवशिष्यते॥ ३२॥
यतो वाचो निवर्तन्ते विकल्पकलनान्विताः। विकल्पसंक्षयाज्जन्तोः पदं तदवशिष्यते॥ ३३॥
अनाद्यन्तावभासात्मा परमात्मैव विद्यते। इत्येतन्निश्चयं स्फारं सम्यग्ज्ञानं विदुर्बुधाः॥ ३४॥
यथाभूतात्मदर्शित्व-मेतावद्भुवनत्रये। यदात्मैव जगत्सर्वमिति निश्चित्य पूर्णता॥ ३५॥

जो भविष्य की चाह नहीं करता, जो वर्तमान में भी नहीं रहता, जो भूतकाल की चिन्ता नहीं करता और सब कुछ करता रहता है। सांसारिक बन्धनों में जकड़े हुए लोगों के साथ सदैव मन से असंसक्त रहने वाला,

भक्त के साथ भक्त के समान आचरण करने वाला, शठ के साथ शठ जैसा, बालकों में बालक, वृद्धों में वृद्ध, धीर पुरुषों में धीर, युवाओं में युवा, दुःखियों में दुःखी, प्रशान्त स्वभाव, आनन्दमग्न, कोमल, पवित्रवाक्, प्रज्ञावान्, प्रसन्न, मधुर-स्वभाव, उदारचेता पुरुष का मन उस समय शान्त हो जाता है, जब अभ्यासयोग के द्वारा प्राणों का स्पंदन अर्थात् कामनाओं का क्षय हो जाता है, तब केवल निर्वाण ही अवशिष्ट रहता है। संकल्प-विकल्प की विचारधारा से संयुक्त सब प्रकार की वैखरी, मध्यमा एवं पश्यन्ती आदि वाणियाँ जहाँ नहीं पहुँचती हैं एवं प्राणी के समस्त संकल्प-विकल्प क्षीण हो जाते हैं, तब वह निर्वाणपद ही अवशिष्ट रहता है। आदि-अन्त से रहित प्रकाशमान आत्मा ही परमात्मा है, ऐसा पूर्ण निश्चय ही सम्यक् ज्ञान है, विद्वानों का यही मत है। तीनों लोकों में विद्यमान पदार्थों को तात्त्विक दृष्टि से देखने पर, जब यह निश्चय हो जाए कि 'आत्मैव सर्वमिदम्' यह जगत् आत्मा ही है, तब पूर्णता की स्थिति प्राप्त होती है॥ २८-३५॥

सर्वमात्मैव कौ दृष्टौ भावाभावौ क्व वा स्थितौ। क्व बन्धमोक्षकलने ब्रह्मैवेदं विजृम्भते॥ ३६॥

यह आत्मा ही सम्पूर्ण विश्व है। दृश्यमान भाव एवं उनका अभाव क्या है अथवा वे भावाभाव किसमें हैं? बन्ध एवं मोक्ष किसका है? सर्वत्र (तो) ब्रह्म ही प्रकाशित हो रहा है॥ ३६॥

सर्वमेकं परं व्योम को मोक्षः कस्य बन्धता। ब्रह्मेदं बृंहिताकारं बृहद्बृहदवस्थितम्॥ ३७॥

एक परमाकाश ही सर्वत्र है, किसका मोक्ष और किसका बन्धन? यह अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों तक विस्तीर्ण ब्रह्म ही महाविस्तृत रूप में व्यवस्थित है॥ ३७॥

दूरादस्तमितद्वित्वं भवात्मैव त्वमात्मना। सम्यगालोकिते रूपे काष्ठपाषाणवाससाम्॥ ३८॥
मनागपि न भेदोऽस्ति क्वासि संकल्पनोन्मुखः। आदावन्ते च संशान्तस्वरूपमविनाशि यत्॥ ३९॥

द्वैत-भाव तो अब दूरस्थ व्योम में अस्त हो चुका है, तुम इस बृहदाकार आत्मा 'ब्रह्म' के साथ स्वयं ब्रह्म (आत्मा) हो जाओ। काष्ठ में, पाषाण में, वस्त्रों में सर्वत्र आत्मस्वरूप का ही अवलोकन करो, ऐसी स्थिति में आदि और अन्त में शान्तस्वरूप अविनाशी जो ब्रह्मतत्त्व है, उसमें और तुममें किञ्चित् भी भेद नहीं है। फिर संकल्पों की ओर उन्मुख तुम कौन हो?॥३८-४२॥

वस्तूनामात्मनश्चैतत्तन्मयो भव सर्वदा। द्वैताद्वैतसमुद्भेदैर्जरामरणविभ्रमैः॥ ४०॥
स्फुरत्यात्मभिरात्मैव चित्तैरब्धीव वीचिभिः। आपत्करञ्जपरशुं पराया निर्वृतेः पदम्॥ ४१॥
शुद्धमात्मानमालिङ्ग्य नित्यमन्तःस्थया धिया। यः स्थितस्तं क आत्मेह भोगो बाधयितुं क्षमः॥ ४२॥

सदैव पदार्थों एवं आत्मा में एकत्व का-तन्मयत्व का अनुभव करो। द्वैत एवं अद्वैत, जरा एवं मरणादि द्वन्द्वों से आत्मा का ही स्फुरण हो रहा है, जिस प्रकार अनन्त लहरों में सागर ही स्फुरित होता है। परम निर्वृति (शान्ति) का एक ही उपाय है— आपत्तिकारक वासनारूपी करंज वृक्ष को अनासक्ति के फरसे से काट दिया जाए। नित्य ही आन्तरिक चिन्तन से विशुद्ध आत्मा का आलिंगन करके स्थित रहने वाले आत्मस्वरूप-स्थित पुरुष को कौन-सा भोग बाधा पहुँचा सकता है?॥ ४०-४२॥

कृतस्फारविचारस्य मनोभोगादयोऽरयः। मनागपि न भिन्दन्ति शैलं मन्दानिला इव॥ ४३॥

जिसप्रकार मन्द गति से प्रवाहशील पवन विशाल पर्वत को नहीं भेद सकते, उसीप्रकार स्पष्ट विस्तृतरूपेण विचार करने वाले पुरुष के दृढ़ संकल्प मन को विभिन्न भोगादि शत्रु किञ्चिदपि विचलित नहीं कर सकते॥ ४३॥

नानात्वमस्ति कलनासु न वस्तुतोऽन्तर्नानाविधासु सरसीव जलादिवान्यत्। इत्येकनिश्चयमयः पुरुषो विमुक्त इत्युच्यते समवलोकितसम्यगर्थः॥ ४४॥

कलाओं में, क्रियाओं में, चेष्टाओं में जो वैविध्य है, वह वास्तविक नहीं है। जैसे विभिन्न जलाशयों में एक जल ही है, जल के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। इस प्रकार समस्त पदार्थों में सम्यक् दृष्टि रखने वाले निश्चयी पुरुष को ही मुक्त कहते हैं॥ ४४॥

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

विदेहमुक्तेः किं रूपं तद्वान्को वा महामुनिः। कं योगं समुपास्थाय प्राप्तवान्परमं पदम्॥ १॥
सुमेरोर्वसुधापीठे माण्डव्यो नाम वै मुनिः। कौण्डिन्यात्तत्त्वमास्थाय जीवन्मुक्तोऽभवत्पुरा॥ २॥
जीवन्मुक्तिदशां प्राप्य कदाचिद्ब्रह्मवित्तमः। सर्वेन्द्रियाणि संहर्तुं मनश्चक्रे महामुनिः॥ ३॥
बद्धपद्मासनस्तिष्ठन्नर्धोन्मीलितलोचनः। बाह्यानाभ्यन्तरांश्चैव स्पर्शान्परिहरञ्छनैः॥ ४॥ ततः
स्वमनसः स्थैर्यं मनसा विगतैनसा। अहो नु चञ्चलमिदं प्रत्याहृतमपि स्फुटम्॥ ५॥
पटाद्घटमुपायाति घटाच्छकटमुत्कटम्। चित्तमर्थेषु चरति पादपेष्विव मर्कटः॥ ६॥ पञ्च द्वाराणि
मनसश्चक्षुरादीन्यमून्यलम्। बुद्धीन्द्रियाभिधानानि तान्येवालोकयाम्यहम्॥ ७॥ हन्तेन्द्रियगणा
यूयं त्यजथाकुलतां शनैः। चिदात्मा भगवान्सर्वसाक्षित्वेन स्थितोऽस्म्यहम्॥ ८॥ तेनात्मना बहुज्ञेन
निर्ज्ञाताश्चक्षुरादयः। परिनिर्वामि शान्तोऽस्मि दिष्ट्यास्मि विगतज्वरः॥ ९॥ स्वात्मन्येवावतिष्ठेऽहं
तुर्यरूपपदेऽनिशम्। अन्तरेव शशामास्य क्रमेण प्राणसन्ततिः॥ १०॥ ज्वालाजालपरिस्पन्दो
दग्धेन्धन इवानलः। उदितोऽस्तं गत इव ह्यस्तं गत इवोदितः॥ ११॥ समः समरसाभासस्तिष्ठामि
स्वच्छतां गतः। प्रबुद्धोऽपि सुषुप्तिस्थः सुषुप्तिस्थः प्रबुद्धवान्॥ १२॥ तुर्यमालम्ब्य कायान्तस्तिष्ठामि
स्तम्भितस्थितिः। सबाह्याभ्यन्तरान्भावान्स्थूलान्सूक्ष्मतरानपि॥ १३॥ त्रैलोक्यसंभवांस्त्यक्त्वा
संकल्पैकविनिर्मितान्। सह प्रणवपर्यन्तदीर्घनिःस्वनतन्तुना॥ १४॥ जहाविन्द्रियतन्मात्राजालं
खग इवानिलः। ततोऽङ्गसंविदं स्वच्छां प्रतिभासमुपागताम्॥१५॥ सद्योजातशिशुज्ञानं
प्राप्तवान्मुनिपुङ्गवः। जहौ चित्तं चैत्यदशां पन्दशक्तिमिवानिलः॥ १६॥ चित्सामान्यमथासाद्य
सत्तामात्रात्मकं ततः। सुषुप्तपदमालम्ब्य तस्थौ गिरिरिवाचलः॥ १७॥ सुषुप्तस्थैर्यमासाद्य
तुर्यरूपमुपाययौ। निरानन्दोऽपि सानन्दः सच्चासच्च बभूव सः॥ १८॥ ततस्तत्संबभूवासौ
यद्गिरामप्यगोचरः। यच्छून्यवादिनां शून्यं ब्रह्म ब्रह्मविदां च यत्॥ १९॥ विज्ञानमात्रं विज्ञानविदां

यदमलात्मकम्। पुरुषः सांख्यदृष्टीनामीश्वरो योगवादिनाम्॥ २०॥ शिवः शैवागमस्थानां कालः कालैकवादिनाम्। यत्सर्वशास्त्रसिद्धान्तं यत्सर्वहृदयानुगम्॥ २१॥ यत्सर्वं सर्वगं वस्तु यत्तत्त्वं तदसौ स्थितः। यदनुक्तमनिष्पन्दं दीपकं तेजसामपि॥ २२॥ स्वानुभूत्येकमानं च यत्तत्त्वं तदसौ स्थितः। यदेकं चाप्यनेकं च साञ्जनं च निरञ्जनम्। यत्सर्वं चाप्यसर्वं च यत्तत्त्वं तदसौ स्थितः॥ २३॥ अजममरमनाद्यमाद्यमेकं पदममलं सकलं च निष्कलं च। स्थित इति स तदा नभः स्वरूपादपि विमलस्थितिरीश्वरः क्षणेन॥ २४॥

निदाघ ने प्रश्न किया- हे मुनिवर! विदेहमुक्ति का स्वरूप क्या है? और विदेहमुक्त कौन है? एवं आपने किस योग के अभ्यास से यह परमपद प्राप्त किया? ऋभु ने बताया कि प्राचीनकाल में सुमेरु की धरती पर माण्डव्य नामक मुनि रहते थे, महर्षि कौण्डिन्य से तत्त्वज्ञान प्राप्त कर वे जीवन्मुक्त हो गये थे। जीवन्मुक्ति की दशा प्राप्त करने के पश्चात् एक समय उन ब्रह्मज्ञानी महामुनि ने समग्र इन्द्रियों के संहार (प्रत्याहार) का विचार किया। वे पद्मासन लगाकर बैठ गये, नेत्र अधखुले रखकर बाह्य एवं आन्तरिक सभी स्पर्शों को धीरे-धीरे त्याग दिया। तब पवित्र मन से अपने मन को स्थिर करने लगे। उन्हें अनुभव हुआ कि इन्द्रियों के प्रत्याहार के पश्चात् भी यह मन का चाञ्चल्य नष्ट नहीं हुआ। यह चञ्चल मन कभी पट से घट (व्यक्ति से व्यक्ति) में चला जाता है, घट से शकट (व्यक्ति से संसार) में सञ्चरित हो जाता है। वृक्ष से वृक्ष पर कूदने वाले मर्कट के समान यह मन जगत् के पदार्थों में भ्रमण करता रहता है। पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ ही मन के पाँच द्वार हैं, जिनसे मन बाहर भागता रहता है, मैं इन्हीं बुद्धि-इन्द्रियादि का अवलोकन कर रहा हूँ।

हे इन्द्रियगण ! तुम धीरे-धीरे आकुलता (स्वच्छन्द विचरणशीलता) को छोड़ दो। सर्वसाक्षीरूप में, मैं चिदात्मा सब कुछ निर्लेपभाव से देख रहा हूँ। उस सर्वज्ञ आत्मा के द्वारा चक्षु आदि इन्द्रियों की क्रियाओं को देख रहा हूँ । भाग्यवश मैं मुक्त हूँ, शान्तस्वरूप हूँ, विगतज्वर हूँ। मैं निरन्तर अपनी आत्मा में, तुरीयावस्था में स्थित रहता हूँ। इस प्रकार मेरी प्राणधारा क्रमशः स्वयं में ही शान्त हो गई है। ईंधन को जला देने वाली अग्नि की तरह कभी ज्वालाओं के निकलने एवं कभी बन्द होने के समान कभी मैं उदित, कभी अस्त होता हुआ सब रसों के आभास वाला समरूप हो गया हूँ। मैं अत्यन्त निर्मल हूँ। जाग्रत् अवस्था में रहते हुए भी मैं सुषुप्ति में रहता हूँ तथा सुषुप्ति की अवस्था में भी जाग्रत् रहता हूँ। समग्र इन्द्रियों, मन एवं बुद्धि पर नियन्त्रण करके तुरीयावस्था में ही शरीरस्थ रहता हूँ। स्थूल एवं सूक्ष्म सभी बाह्य एवं आन्तरिक भाव, जो त्रैलोक्य-संभूत तथा संकल्पजन्य होते हैं, उनका त्याग करके (उन माण्डव्य मुनि ने) उच्चस्वर में उच्चारित ओंकार की दीर्घध्वनिरूप तार से इन्द्रियों के तन्मात्रा-जाल को उसी प्रकार काट दिया, जैसे आकाशगामी वायु अर्थात् वात्याचक्र अपने साथ आने वाले हलके-फुलके पदार्थों को इधर-उधर बिखेर देता है, तब स्पष्ट प्रतीत होने वाली अंग-चेतना का भी त्याग कर दिया।

अनेन प्रकारेण मुनि पुङ्गव माण्डव्य को अपने विषय में ऐसा ज्ञान हुआ, जैसे कि वे एक सद्योजात शिशु हैं। उनके चित्त ने भी चेतना सम्बन्धी अवस्था को उसी प्रकार छोड़ दिया, जैसे- स्तब्ध पवन स्पन्दन शक्ति का त्याग कर देता है। ज्ञान की साम्यावस्था को प्राप्त कर स्वयं की सत्तामात्र का बोध शेष रह गया। सुषुप्ति अवस्था का स्वयं आश्रय लेकर अचल पर्वत की तरह स्थिर हो गया। स्थिर सुषुप्ति की अवस्था को प्राप्त कर स्वयं तुर्यावस्था को प्राप्त हो गया। वह स्वयं ही आनन्द से भी परे सानन्दरूप सद्-असद् रूप हो गया। तत्पश्चात् वह वाणी से भी अगोचर अर्थात् वर्णनातीत स्थिति वाला हो गया। शून्यवादियों का जो निर्मल विज्ञान मात्र है,

सांख्ययोगियों का जो पुरुष है, योगदर्शन वालों का जो ईश्वर है, शैवागम वालों का जो शिव है, कालवादियों का जो काल है, जो सभी शास्त्रों का मूलसिद्धान्त है, जो सबके हृदय का अन्तर्यामी है, जो सब में है, वही तत्त्वरूप वह (माण्डव्य) हो गया। जो अनुक्त (अकथनीय) है, जो स्थिर लौ वाले दीपक की कान्ति सदृश है और अनुभव से केवल एक (अकेला) है, वही तत्त्वरूप वह (माण्डव्य) है। जो एक ही है; परन्तु वह अनेक भी है, जो सकल भी है, जो निष्कल भी है। जो सब कुछ है एवं सब कुछ से परे भी है, वह (माण्डव्य) वही तत्त्वरूप हो गया। वह अजन्मारूप हो गया। तब उसी क्षण वह आकाश से भी अधिक निर्मल विराट्स्वरूप ब्रह्मरूप हो गया॥ १-२४॥

॥ अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

जीवन्मुक्तस्य किं लक्ष्म ह्याकाशगमनादिकम्। तथा चेन्मुनिशार्दूल तत्र नैव प्रलक्ष्यते॥१॥

निदाघ का प्रश्न- क्या जीवन्मुक्त का चिह्न आकाश में उड़ना आदि सिद्धियाँ हैं? यदि ऐसा है, तो हे मुनिश्रेष्ठ! जीवन्मुक्त के ये लक्षण तो नहीं दिखाई देते॥ १॥

अनात्मविदमुक्तोऽपि नभोविहरणादिकम्। द्रव्यमन्त्रक्रियाकालशक्त्याऽऽप्नोत्येव स द्विजः॥ २॥

ऋभु का उत्तर- वह द्विज, जिसे आत्मज्ञान नहीं है और जो मुक्त भी नहीं है, ऐसा पुरुष भी द्रव्य,मन्त्र, क्रिया, काल शक्ति आदि के बल पर गगन विहार कर सकता है॥ २॥

[उक्त कथन से यह स्पष्ट होता है कि उपनिषद् काल में द्रव्य,धन देकर (यानों के माध्यम से मंत्रों के द्वारा क्रिया-कौशल आदि के द्वारा गगन विहार किये जाने की सुविधाएँ प्राप्त थीं।]

नात्मज्ञस्यैष विषय आत्मज्ञो ह्यात्ममात्रदृक्। आत्मनाऽऽत्मनि संतृप्तो नाविद्यामनुधावति॥ ३॥

यह आत्मज्ञानी का विषय नहीं है। आत्मज्ञानी तो केवल आत्मा का ही दर्शन करता है। (वह) स्वयं आत्मा में ही सन्तुष्ट रहता है, ऐसी बाजीगरी कलाओं के पीछे वह नहीं दौड़ता ॥ ३॥

ये ये भावाः स्थिता लोके तानविद्यामयान्विदुः। त्यक्ताविद्यो महायोगी कथं तेषु निमज्जति॥ ४॥

इस जगत् में जो-जो भी भाव या पदार्थ हैं, वे सब अविद्यामय ही हैं। जिस महायोगी ने अविद्या का त्याग कर दिया है, वह उनमें क्यों फँसेगा?॥ ४॥

यस्तु मूढोऽल्पबुद्धिर्वा सिद्धिजालानि वाञ्छति। स सिद्धिसाधनैर्योगैस्तानि साधयति क्रमात्॥ ५॥

जो अविद्याग्रस्त या अल्पबुद्धि है, वही सिद्धि के जाल में फँसता है। वह सिद्धिसाधनों से या सिद्धिप्रद योगों से सिद्धि पाने की साधना करता है॥ ५॥

द्रव्यमन्त्रक्रियाकालयुक्तय: साधुसिद्धिदा:। परमात्मपदप्राप्तौ नोपकुर्वन्ति काश्चन॥ ६॥

द्रव्य, मन्त्र, क्रिया एवं कालयुक्तियाँ सिद्धि तो प्रदान कर सकती हैं; किन्तु परमात्मपद की प्राप्ति में रंच मात्र भी सहायता नहीं कर सकती॥ ६॥

यस्येच्छा विद्यते काचित्ससिद्धिं साधयत्यहो। निरिच्छो: परिपूर्णस्य नेच्छा संभवति क्वचित्॥७॥

जिसके मन में इच्छा (कामना) होती है, वही सिद्धि पाने की साधना करता है; किन्तु जो परिपूर्ण, निष्काम है, उसे किस वस्तु की इच्छा होगी?॥ ७॥

सर्वेच्छाजालसंशान्तावात्मलाभो भवेन्मुने। स कथं सिद्धिजालानि नूनं वाञ्छत्यचित्तक: ॥८॥

अर्थात् उसे कोई इच्छा नहीं होती है। हे मुने! समग्र इच्छाओं के पूर्णत: शान्त होने पर ही आत्मलाभ की पात्रता होती है। फिर वह अचित्त (ऐसा साधक जिसने अपने चित्त के संस्कारों को समाप्त कर दिया है) सिद्धि पाने की इच्छा कैसे कर सकता है?॥ ८॥

अपि शीतरुचावर्के सुतीक्ष्णेऽपीन्दुमण्डले। अप्यध: प्रसरत्यग्नौ जीवन्मुक्तो न विस्मयी॥ ९॥
अधिष्ठाने परे तत्त्वे कल्पिता रज्जुसर्पवत्। कल्पिताश्चर्यजालेषु नाभ्युदेति कुतूहलम्॥ १०॥
ये हि विज्ञातविज्ञेया वीतरागा महाधिय:। विच्छिन्नग्रन्थय: सर्वे ते स्वतन्त्रास्तनौ स्थिता: ॥११॥
सुखदु:खदशाधीरं साम्यान्न प्रोद्धरन्ति यम्। नि:श्वासा इव शैलेन्द्रं चित्तं तस्य मृतं विदु:॥ १२॥
आपत्कार्पण्यमुत्साहो मदो मान्द्यं महोत्सव:। यं नयन्ति न वैरूप्यं तस्य नष्टं मनो विदु:॥ १३॥

चाहे सूर्य की रश्मियाँ शीतल हो जाएँ, चाहे चन्द्र मण्डल तपने लगे, चाहे अग्नि की ज्वालाएँ अधोगामी हो जाएँ; परन्तु जीवन्मुक्त को इन बातों से बिल्कुल आश्चर्य नहीं होता है। परमतत्त्व में अधिष्ठित होने पर रस्सी में साँप की भ्रान्ति नहीं होती, इस तरह के मायाजाल में आत्मतत्त्वज्ञ को कौतूहल नहीं होता है। ज्ञातव्य को जानने वाले, वीतराग, महामेधावी एवं जिनकी अज्ञानग्रन्थियाँ खुल गई हैं, ऐसे सभी लोग शरीर धारण करने में स्वतन्त्र होते हैं। जिस धीरपुरुष को सुख-दु:खादि द्वन्द्व साम्यावस्था से विचलित नहीं करते हैं, उसी का चित्त मृत जानना चाहिये। सच है नि:श्वास पवन से पहाड़ नहीं उड़ सकता है। कष्ट, कृपणता, उत्साह, मद, अल्पज्ञता एवं महोत्सव आदि जिसमें विरूपता उत्पन्न नहीं कर सकते, उसी का मन नष्ट हो गया है॥ ९-१३॥

द्विविधश्चित्तनाशोऽस्ति सरूपोऽरूप एव च। जीवन्मुक्तौ सरूप: स्यादरूपो देहमुक्तिग:॥ १४॥
चित्तसत्तेह दु:खाय चित्तनाश: सुखाय च। चित्त सत्तां क्षयं नीत्वा चित्तं नाशमुपानयेत्॥ १५॥

चित्त-नाश के २ भेद हैं (१) सरूप (२) अरूप। जीवन्मुक्ति की अवस्था में सरूप तथा देहमुक्ति की अवस्था में अरूप चित्त-नाश होता है। चित्त का जीवित रहना ही कष्टदायक है और चित्त का नाश ही सुखप्रद है। अतएव अभ्यासयोग से चित्त- सत्ता को क्षीण कर चित्त को नष्ट कर देना चाहिए॥ १४-१५॥

मनस्तां मूढतां विद्धि यदा नश्यति साऽनघ। चित्तनाशाभिधानं हि तत्स्वरूपमितीरितम्॥ १६॥ मैत्र्यादिभिर्गुणैर्युक्तं भवत्युत्तमवासनम्। भूयो जन्मविनिर्मुक्तं जीवन्मुक्तस्य तन्मनः॥ १७॥ सरूपोऽसौ मनोनाशो जीवन्मुक्तस्य विद्यते। निदाघारूपनाशस्तु वर्तते देहमुक्तिके॥ १८॥ विदेहमुक्त एवासौ विद्यते निष्कलात्मकः। समग्राग्र्यगुणाधारमपि सत्त्वं प्रलीयते॥ १९॥ विदेहमुक्तौ विमले पदे परमपावने। विदेहमुक्तिविषये तस्मिन्सत्त्वक्षयात्मके ॥ २०॥ चित्तनाशे विरूपाख्ये न किंचिदिह विद्यते। न गुणा नागुणास्तत्र न श्रीर्नाश्रीर्न लोकता॥ २१॥ न चोदयो नास्तमयो न हर्षामर्षसंविदः। न तेजो न तमः किंचिन्न संध्यादिनरात्रयः। न सत्तापि न चासत्ता न च मध्यं हि तत्पदम्॥ २२॥ ये हि पारङ्गता बुद्धेः संसाराडम्बरस्य च। तेषां तदास्पदस्फारं पवनानामिवाम्बरम्॥ २३॥ संशान्तदुःखमजडात्मकमेकसुप्तमानन्दमन्थरमपेतरजस्तमो यत्। आकाशकोशतनवोऽतनवो महान्तस्तस्मिन्पदे गलितचित्तलवा भवन्ति॥ २४॥ हे निदाघ महाप्राज्ञ निर्वासनमना भव। बलाच्चेतः समाधाय निर्विकल्पमना भव॥ २५॥ यज्जगद्भासकं भानं नित्यं भाति स्वतः स्फुरत्। स एव जगतः साक्षी सर्वात्मा विमलाकृतिः॥ २६॥

उस मूढ़ता को ही मन समझो, जब वह मूढ़ता नष्ट हो जाती है, तब चित्तनाश नामक मन का स्वरूप कहा गया है। मित्रतादि गुणों से संयुक्त मन उत्तम वासना वाला माना गया है। जीवन्मुक्त का वही मन भी फिर जन्मरहित हो जाता है। हे निदाघ! जीवन्मुक्त पुरुष का यह सरूप चित्तनाश कहलाता है। जिसमें देह की मुक्ति हो जाती है, वह मन का अरूप-नाश कहा जाता है। विदेहमुक्ति प्राप्त होने पर यह मनोनाश पूर्णतया क्रियाशून्य हो जाता है। निष्कल निरञ्जन हो जाता है,उस स्थिति में समग्र श्रेष्ठ गुणों का आधारभूत अन्तःकरण भी प्रलीन (विलीन) हो जाता है। परम-पावन, निर्मल परमपद में देहमुक्ति हो जाने पर सत्त्व अर्थात् अन्तःकरण का भी क्षय हो जाता है। चित्तनाश की भी अरूपावस्था हो जाती है, तब यहाँ कुछ भी नहीं रहता है, न गुण ही विद्यमान रहते हैं, न अगुण। न श्री ही शेष रहती है और न अश्री। न लोक ही शेष रहता है, न उदय होता है और न अस्त। न हर्ष होता है,न अमर्ष और न उनका ज्ञान ही रहता है। न तेज रहता है, न अन्धकार। न संध्या, न दिन, न रात्रि ही रहती है। न सत्ता ही रहती है और न सत्ता का अभाव। न भीतर है न बाहर, जो संसाररूपी आडम्बर एवं बुद्धि के पारंगत हैं, उनका वही विस्तृत विशाल पद (स्थान) है, जिस प्रकार समग्र पवनों का विश्राम-स्थल अन्तरिक्ष है, जहाँ कोई दुःख नहीं है, जड़ता नहीं है, जहाँ एकमात्र सुषुप्ति है, उस पद को प्राप्त कर चित्त के सम्पूर्ण नाश से युक्त, शरीर में अहंकार न रखने वाले महापुरुष आकाशवत् विशाल तन वाले हो जाते हैं। हे निदाघ! हे महाप्राज्ञ! मन को वासनाओं से शून्य कर दो। बलपूर्वक चित्त को एकाग्र कर मन को सम्पूर्ण विकल्पों (संशयों) से शून्य कर दो। जो जगत् का प्रकाशक नित्य भासमान स्वतः स्फुरित होने वाला भान (ज्ञान) है, वही जगत् का साक्षी निर्मलस्वरूप सर्वात्मा ईश्वर है॥ १६-२६॥

प्रतिष्ठा सर्वभूतानां प्रज्ञानघनलक्षणः। तद्विद्याविषयं ब्रह्म सत्यज्ञानसुखाद्वयम्॥ २७॥ एकं ब्रह्माहमस्मीति कृतकृत्यो भवेन्मुनिः॥ २८॥ सर्वाधिष्ठानमद्वन्द्वं परं ब्रह्म सनातनम्। सच्चिदानन्दरूपं तदवाङ्मनसगोचरम्॥ २९॥ न तत्र चन्द्रार्कवपुः प्रकाशते न वान्ति वाताः सकलाश्च देवताः। स एव देवः कृतभावभूतः स्वयं विशुद्धो विरजः प्रकाशते॥ ३०॥ भिद्यते

हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥ ३१॥ द्वौ सुपर्णौ शरीरेऽस्मिञ्जीवेशाख्यौ सह स्थितौ। तयोर्जीवः फलं भुङ्क्ते कर्मणो न महेश्वरः॥ ३२॥ केवलं साक्षिरूपेण विना भोगो महेश्वरः। प्रकाशते स्वयं भेदः कल्पितो मायया तयोः। चिच्चिदाकारतो भिन्ना न भिन्ना चित्त्वहानितः॥ ३३॥ तर्कतश्च प्रमाणाच्च चिदेकत्वव्यवस्थितेः। चिदेकत्वपरिज्ञाने न शोचति न मुह्यति॥ ३४॥ अधिष्ठानं समस्तस्य जगतः सत्यचिद्घनम्। अहमस्मीति निश्चित्य वीतशोको भवेन्मुनिः॥ ३५॥ स्वशरीरे स्वयंज्योतिःस्वरूपं सर्वसाक्षिणम्। क्षीणदोषाः प्रपश्यन्ति नेतरे माययाऽऽवृताः॥ ३६॥ तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः। नानुध्यायाद्बहूञ्छब्दान्वाचो विग्लापनं हि तत्॥ ३७॥ बाल्येनैव हि तिष्ठासेन्निर्विद्य ब्रह्मवेदनम्। ब्रह्मविद्यां च बाल्यं च निर्विद्य मुनिरात्मवान्॥ ३८॥ अन्तर्लीनसमारम्भः शुभाशुभमहाङ्कुरम्। संसृतिव्रततेर्बीजं शरीरं विद्धि भौतिकम्॥ ३९॥

सम्पूर्ण प्राणियों में प्रतिष्ठित प्रज्ञानघन ही जिसका लक्षण है, विद्या द्वारा ही जो ग्राह्य है, एकमात्र सत्य, ज्ञान एवं सुखस्वरूप ही ब्रह्म है। 'अहं ब्रह्मास्मि' इस भाव की एकमात्र अनुभूति से ही मननशील व्यक्ति कृतार्थ (मुक्त) हो जाता है। सम्पूर्ण चराचर का आधारभूत द्वन्द्वरहित अद्वैत, सनातन ब्रह्म ही सच्चिदानन्द स्वरूप है, वह वाणी एवं मन का विषय नहीं है। जहाँ न सूर्य-चन्द्र प्रकाश देते हैं, न वायु चलती है, न देवता ही प्रकाशित होते हैं, वही देवाधिदेव भावभूत, स्वयं विशुद्ध विरज ब्रह्म प्रकाशित हो रहा है। उस अनादि अनन्त ब्रह्म के अनुभवगम्य हो जाने पर हृदय की सम्पूर्ण अज्ञान ग्रन्थियाँ, समग्र संशय छिन्न-भिन्न होकर विलीन हो जाते हैं। तत्पश्चात् संचित प्रारब्ध का कोई कर्म शेष नहीं रहता है। इस शरीर में दो पक्षी-जीव एवं ईश्वर साथ-साथ निवास करते हैं। इनमें से जीव तो कर्मफल का भोग करता है, ईश्वर नहीं। वह महेश्वर शरीर में रहते हुए भी कर्म का फल नहीं भोगता; किन्तु साक्षी (द्रष्टा) के रूप में उपस्थित रहता है। माया के कारण ही दोनों में भेद दिखाई देता है। वह चिति या चित् शक्ति चित् के संस्कार होने के कारण भिन्न प्रतीत होती है, चित्त्व (चित्त का संस्कार) का संस्कार समाप्त हो जोने पर वह मिलती नहीं दिखती।

तर्क के निष्कर्ष से एवं प्रमाण के आधार पर जब जीव चिदाकार स्थिति में पहुँचता है, तब मैं केवल ज्ञानस्वरूप हूँ, देहेन्द्रियाँ मन बुद्धि आदि मैं नहीं हूँ- ऐसा ज्ञान होने पर न शोक होता है और न मोह। सम्पूर्ण जगत् का अधिष्ठान सच्चिद्घन मैं ही हूँ, ऐसा निश्चय कर लेने पर मननशील पुरुष वीतशोक हो जाता है। पाप आदि दोषों के क्षीण हो जाने पर अपने शरीर में ही सर्वसाक्षिरूप स्वयं ज्योतिस्स्वरूप आत्मा के दर्शन होने लगते हैं। जब तक अहन्त्व, ममत्वरूप माया का आवरण रहता है, तब तक उस ब्रह्म के दर्शन सम्भव नहीं होते हैं। उस ज्योतिस्स्वरूप विशुद्ध ब्रह्म को जानकर ब्रह्मज्ञानी पुरुष को स्थितप्रज्ञ हो जाना उचित है। अधिक शब्दजाल के चिन्तन में नहीं पड़ना चाहिए, वह वाणी का अपव्यय है। बाल्यकाल से ही निर्वेदपूर्वक (दीनता-जिज्ञासापूर्वक) ब्रह्मज्ञान के लिये अभ्यास करना चाहिए। मननशील स्थितप्रज्ञ को भोगों से विरक्त होकर बाल्यकाल से ही ब्रह्मविद्या के प्रति जिज्ञासा करनी चाहिए। शुभ या अशुभ बीज वाला अंकुर तो शरीर के साथ चित्त में रहता ही है। इस प्रकार यह भौतिक शरीर ही संसाररूपी लता का बीज है॥ २७-३९॥

भावाभावदशाकोशं दुःखरत्नसमुद्गकम्। बीजमस्य शरीरस्य चित्तमाशावशानुगम्॥ ४०॥ द्वे बीजे चित्तवृक्षस्य वृत्तिव्रततिधारिणः। एकं प्राणपरिस्पन्दो द्वितीयं दृढभावना॥ ४१॥ यदा प्रस्पन्दते प्राणो नाडीसंस्पर्शनोद्यतः। तदा संवेदनमयं चित्तमाशु प्रजायते॥ ४२॥ सा हि सर्वगता संवित्प्राणस्पन्देन बोध्यते। संवित्संरोधनं श्रेयः प्राणादिस्पन्दनं वरम्॥ ४३॥ योगिनश्चित्तशान्त्यर्थं कुर्वन्ति प्राणरोधनम्। प्राणायामैस्तथा ध्यानैः प्रयोगैर्युक्तिकल्पितैः॥ ४४॥

भावों एवं अभावों का भाण्डागार, दुःखरूपी रत्नों का महासागर यह शरीर है आशाओं का वशवर्ती चित्त ही इस शरीर का बीज है। वृत्तियों की लताओं को धारण करने वाले इस चित्तरूपी वृक्ष के दो ही बीज हैं। १- प्राणों का स्पन्दन। २-दृढ़ भावना। जब नाड़ियों के स्पर्श के लिये प्राण का स्पन्दन होता है, तभी यह संवेदनशील चित्त तुरन्त जाग्रत् हो जाता है। सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त वह चित्त की संवेदनशीलता प्राणों के स्पन्दन से ही प्रतीत होती है। इन चित्तवृत्तियों के समूह का निरोध करना ही श्रेयस्कर है, प्राणस्पन्दन तो उचित ही है। प्राण के स्पन्दन तो बिजली की तरंगों की तरह होते हैं। चित्त वृत्तियाँ उपकरणों की तरह उस प्राण विद्युत् के द्वारा ही क्रियाशील होती हैं। इसीलिए ऋषि प्राण स्पन्दनों को तो ठीक ही मानते हैं, वृतियों का शमन करने की सलाह भी देते हैं। विशिष्ट प्राणायामों के तथा ध्यान के विभिन्न प्रकारों से योगीजन यौगिक प्रयोगों से चित्त की शान्ति (शमन) के लिये प्राणों का निरोध करते हैं॥ ४०-४४॥

चित्तोपशान्तिफलदं परमं विद्धि कारणम्। सुखदं संविदः स्वास्थ्यं प्राणसंरोधनं विदुः॥ ४५॥ दृढभावनया त्यक्तपूर्वापरविचारणम्। यदादानं पदार्थस्य वासना सा प्रकीर्तिता॥ ४६॥ यदा न भाव्यते किञ्चिद्धेयोपादेयरूपि यत्। स्थीयते सकलं त्यक्त्वा तदा चित्तं न जायते॥ ४७॥ अवासनत्वात्सततं यदा न मनुते मनः। अमनस्ता तदोदेति परमोपशमप्रदा॥ ४८॥ यदा न भाव्यते भावः क्वचिज्जगति वस्तुनि। तदा हृदम्बरे शून्ये कथं चित्तं प्रजायते॥ ४९॥ यदभावनमास्थाय यदाभावस्य भावनम्। यद्यथा वस्तुदर्शित्वं तदचित्तत्वमुच्यते॥ ५०॥ सर्वमन्तः परित्यज्य शीतलाशयवर्ति यत्। वृत्तिस्थमपि तच्चित्तमसद्रूपमुदाहृतम्॥ ५१॥ भ्रष्टबीजोपमा येषां पुनर्जननवर्जिता। वासनारसनाहीना जीवन्मुक्ता हि ते स्मृताः॥ ५२॥ सत्वरूपपरिप्राप्तचित्तास्ते ज्ञानपारगाः। अचित्ता इति कथ्यन्ते देहान्ते व्योमरूपिणः॥ ५३॥ संवेद्यसंपरित्यागात्प्राणस्पन्दनवासने। समूलं नश्यतः क्षिप्रं मूलच्छेदादिव द्रुमः॥ ५४॥ पूर्वदृष्टमदृष्टं वा यदस्याः प्रतिभासते। संविदस्तत्प्रयत्नेन मार्जनीयं विजानता॥ ५५॥ तदमार्जनमात्रं हि महासंसारतां गतम्। तत्प्रमार्जनमात्रं तु मोक्ष इत्यभिधीयते॥ ५६॥ अजडो गलितानन्दस्त्यक्तसंवेदनो भव॥ ५७॥ संविद्वस्तुदशालम्बः सा यस्येह न विद्यते। सोऽसंविदजडः प्रोक्तः कुर्वन्कार्यशतान्यपि॥ ५८॥ संवेद्येन हृदाकाशे मनागपि न लिप्यते। यस्यासावजडा संविज्जीवन्मुक्तः स कथ्यते॥ ५९॥ यदा न भाव्यते किंचिन्निर्वासनतयात्मनि। बालमूकादिविज्ञानमिव च स्थीयते स्थिरम्॥ ६०॥ तदा जाड्यविनिर्मुक्तमसंवेदनमाततम्। आश्रितं भवति प्राज्ञो यस्माद्भूयो न लिप्यते॥ ६१॥

प्राण का निरोध ही चेतना को स्वस्थ रखने वाला, चित्त-शान्तिरूप फल देने वाला मुख्य हेतु है, ऐसा समझो। कार्य-कारण का विचार न करके किसी पदार्थ का ग्रहण करना ही वासना कही गई है। जब हेय एवं उपादेय रूप वाली किसी वस्तु के प्रति कोई भावना नहीं उठती है, सब कुछ का त्याग करके जीव स्थिर शान्त हो जाता है, तब चित्त जाग्रत् ही नहीं होता। निरन्तर (सतत) वासनाहीन रहने से जब मन शान्त हो जाता है, तब परम शान्ति प्रदान करने वाली अमनस्ता,(मन की शान्त स्थिति) विषयों से उपरामता (लगाव न रहने की स्थिति) उपलब्ध होती है। जब किसी भी सांसारिक वस्तु के प्रति कोई भाव नहीं जगता है, तब शून्य हृदयाकाश में चित्त का उदय कैसे हो सकता है? राग- द्वेष से रहित होकर सांसारिक पदार्थों के प्रति उदासीनता का भाव रखते हुए, जो भाव-शून्यता या अभाव की भावना की जाती है एवं प्रत्येक पदार्थ को जीव निरपेक्ष साक्षीभाव से देखता है, तब अचित्तत्व (चित्त न होने जैसी स्थिति) की स्थिति उत्पन्न होती है। समस्त संकल्प- विकल्पों का त्याग करके शान्त वासना वाला चित्त शान्त वृत्तिस्थ होते हुए भी अरूप ही कहा गया है। जिनकी वासना दग्धबीज के समान दुबारा जन्म लेने के अयोग्य हो गई है, वे ही मुक्त कहे गये हैं। जिनका चित्त शुद्ध- सात्त्विक रूप को प्राप्त हो गया है, वे ही मुक्त कहे गये हैं। जिनका चित्त शुद्ध- सात्त्विक रूप को प्राप्त हो गया है, जो तत्त्वज्ञान में पारंगत हैं, वे ही अचित्त कहे जाते हैं। शरीर त्यागने पर वे आकाशरूप ही हो जाते हैं। जिस प्रकार जड़ काट देने से वृक्ष धराशायी हो जाते हैं, उसी प्रकार ज्ञेय जगत् का सम्पूर्ण त्याग कर देने से प्राणस्पन्दन एवं वासना दोनों ही तुरन्त समूल नष्ट हो जाते हैं। पूर्वानुभूत एवं अननुभूत जो भी पदार्थ ज्ञान-चेतना से प्रतिभासित होते हैं, ज्ञानी का कर्त्तव्य है कि वह प्रयत्नपूर्वक उनका मार्जन (सफाई) कर दे। ज्ञाताज्ञात, दृष्टादृष्ट, अनुभूताननुभूत पदार्थों को चेतना ज्ञान से न हटाना ही घोर सांसारिकता है एवं उनका प्रमार्जन कर देना (भुला देना) ही वस्तुत: मोक्ष है। अत: हे निदाघ! तुम भी बाह्यज्ञान का त्याग कर निश्चिन्त एवं आनन्दमग्न हो जाओ। वस्तुओं की स्थिति का अवलम्बन करने वाली संविद् जिसके पास नहीं है, वह सैकड़ों काम करते हुए भी असंविद् अजड़ अर्थात् निर्लेप निश्चिन्त कहा गया है। ज्ञानेन्द्रियों एवं बुद्धि से ज्ञेय पदार्थों से जिसके हृदयाकाश में किञ्चिन्मात्र भी लिप्तता नहीं होती है, ऐसी निर्लिप्त ज्ञान-चेतना जिसकी हो जाती है, वही जीवन्मुक्त कहा जाता है। वासनारहित हो जाने के कारण जिसके मन में कोई संकल्प नहीं उठता है, जो मूक बालक की तरह स्थिर शान्त रहता है, उसी को सांसारिकता (जड़ता) से मुक्ति मिल जाती है। प्राज्ञ पुरुष व्यष्टि संविद् से रहित असीम सर्वाधार हो जाता है, जिससे वह पुन: सांसारिकता में लिप्त नहीं होता॥ ४५-६१॥

समस्ता वासनास्त्यक्त्वा निर्विकल्पसमाधित:। तन्मयत्वादनाद्यन्ते तदप्यन्तर्विलीयते॥ ६२॥
तिष्ठन्गच्छन्स्पृशञ्जिघ्रन्नपि तल्लेपवर्जित:। अजडो गलितानन्दस्त्यक्तसंवेदन: सुखी॥ ६३॥
एतां दृष्टिमवष्टभ्य कष्टचेष्टायुतोऽपि सन्। तरेद्दु:खाम्बुधे: पारमपारगुणसागर:॥ ६४॥ विशेषं
संपरित्यज्य सन्मात्रं यदलेपकम्। एकरूपं महारूपं सत्तायास्तत्पदं विदु:॥ ६५॥ कालसत्ता
कलासत्ता वस्तुसत्तेयमित्यपि। विभागकलनां त्यक्त्वा सन्मात्रैकपरो भव॥ ६६॥
सत्तासामान्यमेवैकं भावयन्केवलं विभु:। परिपूर्ण: परानन्दी तिष्ठापूरितदिग्भर:॥ ६७॥
सत्तासामान्यपर्यन्ते यत्तत्कलनयोज्झितम्। पदमाद्यमनाद्यन्तं तस्य बीजं न विद्यते॥ ६८॥ तत्र
संलीयते संविन्निर्विकल्पं च तिष्ठति। भूयो न वर्तते दु:खे तत्र लब्धपद: पुमान्॥ ६९॥ तद्धेतु:
सर्वभूतानां तस्य हेतुर्न विद्यते। स सार: सर्वसाराणां तस्मात्सारो न विद्यते॥ ७०॥

समस्त वासनाओं का त्याग करके निर्विकल्प समाधि द्वारा अनादि अनन्त ब्रह्म में तल्लीन होने पर साधक अन्तरात्मा में लीन हो जाता है। खड़ा होना, चलना, स्पर्श करना, सूँघना आदि क्रियाओं को करते हुए भी उनसे निर्लिप्त रहकर सांसारिकता से मुक्त आनन्दमग्न पुरुष इन्द्रियजन्य एवं बुद्धिजन्य ज्ञान से निर्मुक्त एवं सुखी रहता है। कष्टदायक चेष्टाओं से युक्त होकर भी इस निर्लिप्त-भावदृष्टि का अवलम्बन लेकर पुरुष दुःख के सागर से पार हो जाता है। विशेष का परित्याग करके निर्लिप्त होकर केवल सत्ता-मात्र बनकर रहे। सत्ता की यह स्थिति ही वह लक्ष्य है, जिसे पाकर आत्मा महारूप एवं एकरूप हो जाती है। अतः हे निदाघ! तुम भी काल, कला एवं वस्तु सत्ता के भेद को त्यागकर एकमात्र सत्स्वरूप हो जाओ। एकमात्र सामान्य सत्ता ही सर्वत्र व्याप्त है, ऐसी भावना करते हुए परमानन्द स्वरूप ब्रह्म में लीन रहो। अनन्त सत्ता में उपस्थित किसी भी पदार्थ के प्रति यह-वह के व्यावहारिक भेद से रहित अनादि अनन्त पद प्रतिष्ठित है। उसका कोई कारण हेतु या बीज नहीं है। उस पद के प्राप्त होने पर समस्त चेतना उसी में लीन हो जाती है। तब पुरुष निर्विकल्प स्थिति को प्राप्त कर लेता है। उस स्थिति को प्राप्त पुरुष पुनःदुःख में नहीं डूबता। वही समस्त प्राणियों का हेतु है, उससे बढ़कर कोई सार वस्तु नहीं है॥ ६२-७०॥

तस्मिंश्चिद्दर्पणे स्फारे समस्ता वस्तुदृष्टयः। इमास्ताः प्रतिबिम्बन्ति सरसीव तटद्रुमाः॥ ७१॥

उस चिद्रूप स्पष्ट दर्पण में जगत् के समस्त पदार्थ उसी प्रकार प्रतिबिम्बित होते हैं, जिस प्रकार सरोवर में तट के वृक्ष प्रतिबिम्बित होते हैं॥ ७१॥

तदमलमरजं तदात्मतत्त्वं तदवगतावुपशान्तिमेति चेतः। अवगतविगतैकतत्स्वरूपो भवभयमुक्तपदोऽसि सम्यगेव॥ ७२॥ एतेषां दुःखबीजानां प्रोक्तं यद्यन्मयोत्तरम्। तस्य तस्य प्रयोगेण शीघ्रं तत्प्राप्यते पदम्॥ ७३॥ सत्तासामान्यकोटिस्थे द्रागित्येव पदे यदि। पौरुषेण प्रयत्नेन बलात्संत्यज्य वासनाम्॥ ७४॥ स्थितिं बध्नासि तत्त्वज्ञ क्षणमप्यक्षयात्मिकाम्। क्षणेऽस्मिन्नेव तत्साधु पदमासादयस्यलम्॥ ७५॥

उस परम विशुद्ध रजोगुण से सर्वथारहित आत्मतत्त्व को अवगत कर लेने पर चित्त पूर्ण शान्त हो जाता है। हे निदाघ! अब तक अविज्ञात परमतत्त्व को अच्छी तरह जान लेने पर, तुम सांसारिक भय से मुक्त हो जाओगे। इन सांसारिक दुःखों के हेतुओं को नष्ट करने के लिये मैंने जो-जो उत्तर बताये हैं, उनके अभ्यासपूर्वक प्रयोग से शीघ्र ही उस अमृत पद को प्राप्त किया जा सकता है। हे तत्त्व को समझ लेने वाले निदाघ! यदि बलपूर्वक प्रयत्न एवं पुरुषार्थ के द्वारा वासना का परित्याग करके उस सामान्य एकरूप सत्ता के पद में क्षण भर भी अपनी अक्षय स्थिति स्थापित कर लोगे, तो तुम उसी क्षण उस श्रेष्ठ पद को प्राप्त कर लोगे॥ ७२-७५॥

सत्तासामान्यरूपे वा करोषि स्थितिमादरात्। तत्किञ्चिदधिकेनेह यत्नेनाप्नोषि तत्पदम्॥ ७६॥

यदि श्रद्धापूर्वक सामान्य सत्ता की धारणा करोगे, तो बाद में कुछ अधिक प्रयत्न करके उस पद को प्राप्त करोगे॥ ७६॥

संवित्तत्त्वे कृतध्यानो निदाघ यदि तिष्ठसि। तद्यत्नेनाधिकेनोच्चैरासादयसि तत्पदम्॥ ७७॥

हे निदाघ! यदि निरन्तर संवित् तत्त्व में ध्यान करते रहोगे, तो तदनन्तर अधिक प्रयत्न करते हुए उस उच्चपद को प्राप्त कर सकोगे॥ ७७॥

वासनासंपरित्यागे यदि यत्नं करोषि भोः। यावद्विलीनं न मनो न तावद्वासनाक्षयः॥ ७८॥ न क्षीणा वासना यावच्चित्तं तावन्न शाम्यति। यावन्न तत्त्वविज्ञानं तावच्चित्तशमः कुतः॥ ७९॥ यावन्न चित्तोपशमो न तावत्तत्त्ववेदनम्। यावन्न वासनानाशस्तावत्तत्त्वागमः कुतः। यावन्न तत्त्वसंप्राप्तिर्न तावद्वासनाक्षयः॥ ८०॥ तत्त्वज्ञानं मनोनाशो वासनाक्षय एव च। मिथः कारणतां गत्वा दुःसाध्यानि स्थितान्यतः॥ ८१॥ भोगेच्छां दूरतस्त्यक्त्वा त्रयमेतत्समाचर॥ ८२॥ वासनाक्षयविज्ञानमनोनाशा महामते। समकालं चिराभ्यस्ता भवन्ति फलदा मताः॥ ८३॥ त्रिभिरेभिः समभ्यस्तैर्हृदयग्रन्थयो दृढाः। निःशेषमेव त्रुट्यन्ति बिसच्छेदाद्गुणा इव॥ ८४॥ वासनासंपरित्यागसमं प्राणनिरोधनम्। विदुस्तत्त्वविदस्तस्मात्तदप्येवं समाहरेत्॥ ८५॥ वासनासंपरित्यागाच्चित्तं गच्छत्यचित्तताम्। प्राणस्पन्दनिरोधाच्च यथेच्छसि तथा कुरु॥ ८६॥

यदि वासना के परित्याग का प्रयत्न करते रहो, तो अच्छा है; क्योंकि जब तक मन का विलय (नाश) नहीं होगा, तब तक वासना का क्षय नहीं हो सकता। जब तक वासना का क्षय नहीं होता, तब तक चित्त शान्त नहीं होता। जब तक तत्त्व का विशेष ज्ञान नहीं होता, तब तक चित्त का उपशम भी नहीं हो सकता। जब तक चित्त का शमन नहीं होता, तब तक तत्त्व का ज्ञान भी सम्भव नहीं है। जब तक वासना का पूर्णतया नाश नहीं होता, तब तक तत्त्वज्ञान की उपलब्धि कहाँ संभव है। जब तक तत्त्व की उपलब्धि नहीं होती, तब तक वासना-क्षय भी संभव नहीं है। ब्रह्मतत्त्व (आत्मतत्त्व) का ज्ञान, मन का विलय, वासना विनाश, ये सभी परस्पर कारण-कार्य सम्बन्ध रखते हैं, सभी अति दुःसाध्य हैं। अतः हे निदाघ! भोगेच्छा का दूर से ही परित्याग कर उक्त तीनों बातों का अभ्यास करो, आचरण करो। वासना-क्षय, तत्त्वज्ञान और मन का नाश- ये चिरकाल तक एक साथ अभ्यास करते-करते ही सफलता प्रदान करते हैं। हे महामते! उपर्युक्त इन तीनों का निरन्तर एक साथ अभ्यास करने पर ही हृदय की मजबूत गाँठें पूरी तरह से खुल जाती हैं, जैसे कि बिसतन्तु (कमलनाल) के काट देने पर कमल के सभी अङ्ग नष्ट हो जाते हैं। वासना के सम्यक् परित्याग के समान ही प्राणवायु का स्तम्भन भी महत्त्वपूर्ण है। अतः प्राणवायु का समाहार भी आवश्यक है, ऐसा तत्त्ववेत्ताओं का मत है। प्राण स्पन्दन के निरोध से एवं वासना के पूर्णत्याग से चित्त अचित्त हो जाता है। अतः जैसा चाहो, वैसा ही करो ॥ ७८-८६॥

प्राणायामदृढाभ्यासैर्युक्त्या च गुरुदत्तया। आसनाशनयोगेन प्राणस्पन्दो निरुध्यते॥ ८७॥ निःसङ्गव्यवहारत्वाद्भवभावनवर्जनात्। शरीरनाशदर्शित्वाद्वासना न प्रवर्तते॥ ८८॥ यः प्राणपवनस्पन्दश्चित्तस्पन्दः स एव हि। प्राणस्पन्दजये यत्नः कर्तव्यो धीमतोच्चकैः॥ ८९॥ न शक्यते मनो जेतुं विना युक्तिमनिन्दिताम्। शुद्धां संविदमाश्रित्य वीतरागः स्थिरो भव॥ ९०॥ संवेद्यवर्जितमनुत्तममाद्यमेकं संवित्पदं विकलनं कलयन्महात्मन्। हृद्येव तिष्ठ कलनारहितः क्रियां

तु कुर्वन्नकर्तृपदमेत्य शमोदितश्रीः ॥ ९१ ॥ मनागपि विचारेण चेतसः स्वस्य निग्रहः । पुरुषेण कृतो येन तेनाप्तं जन्मनः फलम् ॥ ९२ ॥

गुरु द्वारा बताई हुई युक्ति से तथा प्राणायाम के दृढ़ अभ्यास से, आसनों के अभ्यास से तथा युक्ताहार-विहार के अभ्यास योग से प्राण- स्पन्दन का निरोध होता है। आसक्तिरहित व्यवहार से सांसारिक भाव माया-मोह के त्याग से तथा लोक में शरीर-नाश के देखने से वासना नष्ट हो जाती है। प्राणवायु का स्पन्दन ही चित्त का स्पन्दन है,अतः बुद्धिमान जिज्ञासु को प्राण-स्पन्दन को वश में करने का प्रयत्न बलपूर्वक करना चाहिए। श्रेष्ठ युक्ति के बिना मन को वश में नहीं किया जा सकता है, अतः शुद्ध संविद् का आश्रय लेकर वीतराग एवं स्थिर (पूर्णतया शान्त) बनो। हे महात्मन् निदाघ! जहाँ कोई ज्ञेय नहीं है, जो उत्तम से भी उत्तम, अनादि, अनन्त, एकमात्र, निर्विकार संवित्पद है, उसी का आकलन करते हुए अपने हृदय में स्थित आत्मस्वरूप में स्थिर हो जाओ। क्रिया करते हुए भी तुम अकर्तृत्व को प्राप्त कर शान्त, प्रकाशित, श्री (दिव्य शोभा) सम्पन्न हो जाओगे। हे निदाघ! जिस पुरुष ने विवेक-विचारपूर्वक अपने चित्त का थोड़ा सा भी निग्रह कर लिया, उसने मनुष्य जन्म का फल प्राप्त कर लिया॥ ८७-९२ ॥

॥ अथ पञ्चमोऽध्यायः ॥

गच्छतस्तिष्ठतो वाऽपि जाग्रतः स्वपतोऽपि वा। न विचारपरं चेतो यस्यासौ मृत उच्यते॥१ ॥ सम्यग्ज्ञानसमालोकः पुमाञ्ज्ञेयसमः स्वयम्। न बिभेति न चादत्ते वैवश्यं न च दीनताम्॥ २ ॥ अपवित्रमपथ्यं च विषसंसर्गदूषितम्। भुक्तं जरयति ज्ञानी क्लिन्नं नष्टं च मृष्टवत्॥ ३ ॥

चलते हुए या खड़े रहते हुए, जागते हुए या सोते हुए जिस पुरुष का चित्त कोई विचार नहीं करता, उसे मृत कहा गया है। तत्त्व के समीचीन ज्ञान के आलोक को प्राप्त कर लेने वाला पुरुष स्वयं ज्ञेय (इष्ट) के सदृश हो जाता है। वह भयभीत नहीं होता, न विवश होता है और न दीन। विष के संसर्ग से दूषित, अपवित्र एवं स्वास्थ्यदूषक अन्न खा लेने पर भी ज्ञानी पुरुष पचा लेता है। सड़े हुए बासी भोजन को भी वह शुद्ध परिष्कृत खाद्यान्न के समान ही आसानी से पचा लेता है॥ १-३ ॥

[यहाँ ऋषि यह बताना चाहते हैं कि जिस प्रकार पाचनतन्त्र शक्तिशाली रहने पर किञ्चित् विकारयुक्त भोजन भी पच जाता है, उसी प्रकार मानसिक स्थिति सन्तुलित-परिष्कृत रहने पर कभी कोई दुर्विचार भी यदि मन में आ जाये, तो वह अधिक देर नहीं टिकता, वरन् सुविचार में बदल जाता है।]

सङ्गत्यागं विदुर्मोक्षं सङ्गत्यागादजन्मता। सङ्गं त्यज त्वं भावानां जीवन्मुक्तो भवानघ॥ ४॥ भावाभावे पदार्थानां हर्षामर्षविकारदा। मलिना वासना यैषा सासङ्ग इति कथ्यते॥ ५॥ जीवन्मुक्तशरीराणामपुनर्जन्मकारिणी। मुक्ता हर्षविषादाभ्यां शुद्धा भवति वासना॥ ६ ॥ दुःखैर्न ग्लानिमायासि हृदि हृष्यसि नो सुखैः। आशावैवश्यमुत्सृज्य निदाघासङ्गतां व्रज॥ ७॥

संग के त्याग को ही मोक्ष कहा गया है। संग के त्याग से पुनर्जन्म नहीं लेना पड़ता। हे निदाघ! तुम भी समस्त भावों-पदार्थों के प्रति संग का त्याग करो और जीवन्मुक्त हो जाओ। पदार्थों की उपलब्धि से हर्ष एवं अनुपलब्धि से असहनशीलता या क्रोध के विकार को जन्म देने वाली मलिन वासना ही संग कहलाती है। जीवन्मुक्त शरीरधारी महापुरुषों की पुनर्जन्म न देने वाली हर्ष एवं विषाद से मुक्त वासना ही शुद्ध वासना होती है। शारीरिक मानसिक आधि-व्याधियों से दु:खी न हो और न विविध सुखों की उपलब्धि से हृदय में हर्ष का अनुभव करो। आशा और दीनता का त्याग करते हुए, हे निदाघ! असंग हो जाओ॥ ४-७॥

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नमदृष्टोभयकोटिकम्। चिन्मात्रमक्षयं शान्तमेकं ब्रह्मास्मि नेतरत्॥ ८॥ इति मत्वाऽहमित्यन्तर्मुक्तामुक्तवपुः पुमान्। एकरूपः प्रशान्तात्मा मौनी स्वात्मसुखो भव॥ ९॥

दिशाओं से तथा काल आदि से अपरिच्छिन्न जिसके आदि एवं अन्त नहीं हैं, जो चिन्मात्र है, जो अखण्ड है, जो शान्त है, एक है, वही ब्रह्म मैं स्वयं ही हूँ अन्य कोई नहीं। ऐसी भावना कर अन्तर्मुक्तामुक्त शरीर वाले, (शरीर में रहकर संसार के बाह्य क्रियाकलापों को करते हुए भी अन्दर से उनसे निर्लिप्त-मुक्त) प्रशान्तचित्त चिन्मात्रस्वरूप, मौन धारण कर अन्तरात्मा में लीन (सुखी) हो जाओ॥ ८-९॥

नास्ति चित्तं न चाविद्या न मनो न च जीवकः। ब्रह्मैवैकमनाद्यन्तमब्धिवत्प्रविजृम्भते॥ १०॥

न चित्त है, न अविद्या है, न मन है, न जीव है। महासागर की तरह आद्यन्तहीन ब्रह्म ही सर्वत्र फैला हुआ है, छाया हुआ है॥ १०॥

देहे यावदहंभावो दृश्येऽस्मिन्यावदात्मता। यावन्ममेदमित्यास्था तावच्चित्तादिविभ्रमः॥ ११॥ अन्तर्मुखतया सर्वं चिद्वह्नौ त्रिजगत्तृणम्। जुह्वतोऽन्तर्निवर्तन्ते मुने चित्तादिविभ्रमाः॥ १२॥

देह में जब तक अहंभाव है, जब तक दृश्यमान जगत् में आत्मीयता है, जब तक 'यह मेरा है' ऐसी मनोवृत्ति है,तब तक चित्तादि के विकार रहते हैं। अन्तर्मुख होकर ज्ञानाग्नि में त्रिजगद्रूपी तिनके (घास) को जला देने वाले पुरुष के चित्त भ्रमादि संकल्प-विकल्प से स्वयं निवृत्त हो जाते हैं॥ ११-१२॥

चिदात्माऽस्मि निरंशोऽस्मि परापरविवर्जितः। रूपं स्मरन्निजं स्फारं मा स्मृत्या संमितो भव॥१३॥ अध्यात्मशास्त्रमन्त्रेण तृष्णाविषविषूचिका। क्षीयते भावितेनान्तः शरदा मिहिका यथा॥१४॥ परिज्ञाय परित्यागो वासनानां य उत्तमः। सत्तासामान्यरूपत्वात्तत्कैवल्यपदं विदुः॥ १५॥

मैं ही चिदात्मा हूँ, अंशहीन हूँ, मेरा न पर है न अपर। अपने ऐसे विशुद्धरूप का स्मरण करते हुए पूर्वानुभूतियों की स्मृति का सफाया कर दो। अध्यात्म शास्त्र के मन्त्र से ही तृष्णा विष से उत्पन्न विषूचिका का उसी प्रकार विनाश होता है, जिस प्रकार शरद ऋतु में गिरने वाला पाला (धूम्र) से प्रभावित होकर नष्ट हो जाता है। तत्त्वज्ञान प्राप्ति के पश्चात् वासनाओं का त्याग करना श्रेष्ठ है। तदनन्तर सामान्य सत्ता की अनुभूति को ही कैवल्यपद कहा गया है॥ १३-१५॥

यत्रास्ति वासना लीना तत्सुषुप्तं न सिद्धये। निर्बीजा वासना यत्र तत्तुर्यं सिद्धिदं स्मृतम्॥ १६॥
वासनायास्तथा वह्नेर्ऋणव्याधिद्विषामपि। स्नेहवैरविषाणां च शेषः स्वल्पोऽपि बाधते॥ १७॥

जहाँ सुषप्ति में वासना छिपी हुई हो, वह सुषुप्ति सिद्धिदायक नहीं होती है। जिस तुरीयावस्था में वासना निर्बीज हो जाए, वही सिद्धिदायक है। जिस प्रकार अग्नि का, ऋण का, व्याधि का, शत्रु का, राग का, वैर का या विष का स्वल्पमात्र भी शेष भाग भविष्य में उग्ररूप धारण कर लेता है, उसी प्रकार वासना का रञ्चमात्र भी शेष भाग पुरुष को लक्ष्य सिद्धि से भ्रष्ट कर देता है॥ १६-१७॥

निर्दग्धवासनाबीजः सत्तासामान्यरूपवान्। सदेहो वा विदेहो वा न भूयो दुःखभाग्भवेत्॥१८॥

सामान्य सत्तारूप साधक पुरुष, अपने वासनारूपी बीज के भून डालने पर चाहे सदेह रहे या विदेह, वह पुनः दुःख नहीं भोगता है॥ १८॥

एतावदेवाविद्यात्वं नेदंब्रह्मेति निश्चयः। एष एव क्षयस्तस्या ब्रह्मेदमिति निश्चयः॥ १९॥

यह (जगत्) ब्रह्म नहीं है, ऐसा निश्चय ही अविद्या है। यह सब कुछ ब्रह्म ही है, ऐसा निश्चय हो जाना ही अविद्या का क्षय है॥ १९॥

ब्रह्म चिद्ब्रह्म भुवनं ब्रह्म भूतपरम्परा। ब्रह्माहं ब्रह्म चिच्छत्रुर्ब्रह्म चिन्मित्रबान्धवाः॥ २०॥
ब्रह्मैव सर्वमित्येव भाविते ब्रह्म वै पुमान्। सर्वत्रावस्थितं शान्तं चिद्ब्रह्मेत्यनुभूयते॥ २१॥

चिन्मय ब्रह्म ही ब्रह्म है, यह भुवन भी ब्रह्म है, समस्त प्राणी भी ब्रह्म हैं, मैं भी ब्रह्म हूँ, शत्रु भी ब्रह्म है, मित्र एवं बान्धव भी चिद्ब्रह्म हैं। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' की भावानुभूति करने पर स्वयं पुरुष भी ब्रह्म ही हो जाता है। उसे सम्पूर्ण सृष्टि में, प्रत्येक पदार्थ में शान्तस्वरूप चिन्मय ब्रह्म की ही अनुभूति होती है॥ २०-२१॥

असंस्कृताध्वगालोके मनस्यन्यत्र संस्थिते। या प्रतीतिरनागस्का तच्चिद्ब्रह्मास्मि सर्वगम्॥ २२॥

दूषित आचरण वाले जगत् को देखने वाले मन के उस दृश्य से अन्यत्र हट जाने पर, जो शुद्ध प्रतीति होती है, वही सर्वव्यापी चिन्मय ब्रह्म मैं हूँ॥ २२॥

प्रशान्तसर्वसंकल्पं विगताखिलकौतुकम्। विगताशेषसंरम्भं चिदात्मानं समाश्रय॥ २३॥

अतः हे निदाघ! तुम भी उस चिन्मय ब्रह्म का ही एकमात्र आश्रय ग्रहण करो- जो सब प्रकार के संकल्पों, कौतुकों एवं विकल्पों से रहित, पूर्ण शान्त है॥ २३॥

एवं पूर्णधियो धीराः समा नीरागचेतसः। न नन्दन्ति न निन्दन्ति जीवितं मरणं तथा॥ २४॥

ऐसी निश्चित ब्रह्मधारणा करने वाले, वीतराग चित्त वाले, समदृष्टि रखने वाले धीरपुरुष न तो जीवन की प्रशंसा ही करते हैं और न ही मरण की निन्दा॥ २४॥

प्राणोऽयमनिशं ब्रह्मन्स्पन्दशक्तिः सदागतिः। सबाह्याभ्यन्तरे देहे प्राणोऽसावूर्ध्वगः स्थितः॥ २५॥

हे ब्रह्मन्! स्थूल शरीर एवं सूक्ष्म शरीर में स्पन्दनशक्ति-सम्पन्न यह प्राण रात-दिन सतत गतिशील रहता है, शरीर के ऊर्ध्व भाग में (हृदय में) इसका स्थान है॥ २५॥

अपानोऽप्यनिशं ब्रह्मन्स्पन्दशक्तिः सदागतिः। सबाह्याभ्यन्तरे देहे अपानोऽयमवाक्स्थितः॥ २६॥

इसी प्रकार अपान भी शरीर के निचले भाग (गुदा-वस्ति आदि) में सतत गतिशील रहता है॥ २६॥

जाग्रतः स्वपतश्चैव प्राणायामोऽयमुत्तमः। प्रवर्तते ह्यभिज्ञस्य तं तावच्छ्रेयसे शृणु॥ २७॥

ज्ञानी पुरुष की जाग्रत् अवस्था या सुप्तावस्था में प्राणापान का यह उत्तम प्राणायाम सतत चलता रहता है, उसके सम्बन्ध में श्रेयस्कर बात सुनो॥ २७॥

द्वादशाङ्गुलपर्यन्तं बाह्यमाक्रमतां ततः। प्राणानामङ्गसंस्पर्शो यः स पूरक उच्यते॥ २८॥
अपानश्चन्द्रमा देहमाप्याययति सुव्रत। प्राणः सूर्योऽग्निरथवा पचत्यन्तरिदं वपुः॥ २९॥
प्राणक्षयसमीपस्थमपानोदयकोटिगम्। अपानप्राणयोरैक्यं चिदात्मानं समाश्रय॥ ३०॥
अपानोऽस्तङ्गतो यत्र प्राणो नाभ्युदितः क्षणम्। कलाकलङ्करहितं तच्चित्तत्त्वं समाश्रय॥ ३१॥

बारह अंगुल दीर्घ श्वास तेजी से बाहर निकालने पर श्वासहीन स्थिति में पुनः प्राणों के प्रमुख अङ्ग हृदय का स्पर्श करने वाला प्राणवायु पूरक कहा जाता है। हे श्रेष्ठव्रतधारी निदाघ! अपान नामक प्राण चन्द्रमा है, जो देह को जीवनीशक्ति से भर देता है। प्राण नामक वायु सूर्य अथवा अग्नि के समान है, जो इस शरीर को भीतर से पकाता रहता है। प्राण और अपान की एकता वाले चिदात्मा का सतत आश्रय लेते रहो, जिसमें प्राण की क्षीणता एवं अपान की उपस्थिति अर्थात् दोनों का संगम होता है। अथवा कलाओं के कलंक से रहित उस निष्कलंक चित् तत्त्व का आश्रय ग्रहण करो, जहाँ प्राण का क्षणिक उदय नहीं होता और अपान अस्तङ्गत (विलीन) हो जाता है॥ २८-३१॥

नापानोऽस्तङ्गतो यत्र प्राणश्चास्तमुपागतः। नासाग्रगमनावर्तं तच्चित्तत्त्वमुपाश्रय॥ ३२॥

अथवा उस चित्तता का आश्रय लो-जो सदा नासाग्रवर्ती रहे जहाँ प्राण तो अस्तङ्गत (विलीन) हो जाए; परन्तु अपान उदित रहे॥ ३२॥

आभासमात्रमेवेदं न सन्नासज्जगत्रयम्। इत्यन्यकलनात्यागं सम्यग्ज्ञानं विदुर्बुधाः॥ ३३॥
आभासमात्रकं ब्रह्मन् चित्तादर्शकलङ्कितम्। ततस्तदपि संत्यज्य निराभासो भवोत्तम॥ ३४॥
भयप्रदमकल्याणं धैर्यसर्वस्वहारिणम्। मनः पिशाचमुत्सार्य योऽसि सोऽसि स्थिरो भव॥ ३५॥

यह जगत् न सत् है न असत्, केवल आभासता भर है। इससे भिन्न मान्यता का त्याग ही सम्यक् ज्ञान कहा गया है। हे ब्रह्मन्! इस जगत् के आभास-मात्र से भी यह चित्तरूपी आदर्श कलङ्कित हो जाता है, अशुद्ध हो जाता है, अतएव तुम उस आभास मात्र का भी परित्याग कर निराभास हो जाओ। समस्त धैर्य को विनष्ट कर देने वाले, भय प्रदायक, अकल्याणकारी मनरूपी पिशाच को उखाड़ कर, जो हो वही रहो अर्थात् विशुद्ध रूप हो जाओ॥ ३३-३५॥

चिद्व्योमेव किलास्तीह परापरविवर्जितम्। सर्वत्रासंभवच्चैत्यं यत्कल्पान्तेऽवशिष्यते॥ ३६॥
वाञ्छाक्षणे तु या तुष्टिस्तत्र वाञ्छैव कारणम्। तुष्टिस्त्वतुष्टिपर्यन्ता तस्माद्वाञ्छां परित्यज॥
३७॥ आशा यातु निराशात्वमभावं यातु भावना। अमनस्त्वं मनो यातु तवासङ्गेन जीवतः॥
३८॥ वासनारहितैरन्तरिन्द्रियैराहरन्क्रियाः। न विकारमवाप्नोषि खवत्क्षोभशतैरपि॥ ३९॥

चिदाकाश के समान परापर विभागों से रहित यही एकमात्र चैतन्य (चैत्य-उपासनास्थल) है, जो कल्पान्त में भी नष्ट नहीं होता है। इच्छापूर्ति में जो तुष्टि होती है, उसका कारण इच्छा ही होती है। जब तक अतुष्टि है तब तक तुष्टि की इच्छा रहती है, अतः इच्छा का त्याग ही वास्तव में तुष्टि है। तुम इच्छाओं का त्याग कर दो, आसक्तिरहित होकर जीवित रहने पर तुम्हारी आशा-निराशा में, अभाव-भाव में तथा अमनत्व मन के रूप में परिवर्तित हो जाएगा। वासनारहित सूक्ष्मेन्द्रियों से सभी शारीरिक क्रियाओं को करते हुए भी तुम उसी प्रकार विकारहीन हो जाओगे, जिस प्रकार अनेकों विक्षोभों से टकराकर भी आकाश क्षुब्ध नहीं होता ॥ ३६ ३९॥

चित्तोन्मेषनिमेषाभ्यां संसारप्रलयोदयौ। वासनाप्राणसंरोधादनुन्मेषं मनः कुरु॥ ४०॥

चित्त के उन्मेष से ही संसार का उदय होता है,चित्त के निमेष से ही संसार का प्रलय हो जाता है। अतः तुम वासना एवं प्राणों के संरोध से अपने चित्त को उन्मेषरहित कर दो॥ ४०॥

प्राणोन्मेषनिमेषाभ्यां संसृतेः प्रलयोदयौ। तमभ्यासप्रयोगाभ्यामुन्मेषरहितं कुरु॥ ४१॥

प्राण के उन्मेष से ही संसार का उदय होता है,प्राण के निमेष से ही संसार का प्रलय हो जाता है। अतः तुम निरन्तर अभ्यास एवं प्रयोग के द्वारा प्राण को उन्मेषहीन कर दो॥ ४१॥

मौर्ख्योन्मेषनिमेषाभ्यां कर्मणां प्रलयोदयौ। तद्विलीनं कुरु बलाद्गुरुशास्त्रार्थसंगमैः॥ ४२॥

प्राण के उच्छृंखल स्वच्छन्द उन्मेष और निमेष से ही कर्मों का उदय तथा प्रलय होता है। अतः गुरु द्वारा प्रदत्त युक्ति से तथा शास्त्रज्ञान से एवं निरन्तर शास्त्र एवं गुरु के संग से बलपूर्वक तुम प्राण को विलीन कर दो॥ ४२॥

असंवित्स्पन्दमात्रेण याति चित्तमचित्तताम्। प्राणानां वा निरोधेन तदेव परमं पदम्॥ ४३॥

बाह्य विषयों से ज्ञानेन्द्रियों को हटाकर प्राणों के स्पन्दनमात्र से चित्त अचित्त हो जाता है अथवा प्राणायाम विशेष के द्वारा प्राणों का निरोध होने पर भी वही पद (अचित्तता) प्राप्त होता है। वही परमपद है॥४३॥

दृश्यदर्शनसंबन्धे यत्सुखं पारमार्थिकम्। तदन्तैकान्तसंवित्त्या ब्रह्मदृष्ट्याऽवलोकय॥ ४४॥
यत्र नाभ्युदितं चित्तं तद्वै सुखमकृत्रिमम्। क्षयातिशयनिर्मुक्तं नोदेति न च शाम्यति॥ ४५॥

दृश्य पदार्थों के दर्शन-सम्बन्ध से जो पारमार्थिक सुख होता है। उसे ही ब्राह्मी दृष्टि रखकर चिन्मात्र स्वरूप में देखते रहें। जिसमें चित्त का उदय नहीं होता है, वही स्वाभाविक सुख है, जिसका न क्षय होता है, न वृद्धि। जो सदा एकरस रहता है अर्थात् न जिसका उदय होता है न अस्त ॥ ४४-४५॥

यस्य चित्तं न चित्ताख्यं चित्तं चित्तत्वमेव हि। तदेव तुर्यावस्थायां तुर्यातीतं भवत्यतः॥ ४६॥

जिसका चित्त चित्तनाम वाला नहीं है। चित्तत्व अर्थात् पदार्थों का भेदपूर्वक ज्ञान ही चित्त का स्वरूप है। वह चित्त ही पुरुष की तुर्यावस्था में तुर्यातीत हो जाता है अर्थात् जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्तिजन्य ज्ञान से परे हो जाता है॥ ४६॥

संन्यस्तसर्वसंकल्पः समः शान्तमना मुनिः। संन्यासयोगयुक्तात्मा ज्ञानवान्मोक्षवान्भव॥ ४७॥

अतः सम्पूर्ण संकल्पों को त्याग कर शान्तस्वरूप, मननशील, ज्ञानवान्, मोक्षवान् होकर संन्यास योग में तत्पर हो जाओ॥ ४७॥

सर्वसंकल्पसंशान्तौ प्रशान्तघनवासनम्। न किंचिद्भावनाकारं यत्तद्ब्रह्म परं विदुः॥ ४८॥

समस्त संकल्पों के व्यक्त होने एवं विषय-वासना के शान्त हो जाने पर, जब कुछ भी नहीं भासता, उसे ही परब्रह्म कहा गया है॥ ४८॥

सम्यग्ज्ञानावरोधेन नित्यमेकसमाधिना। सांख्य एवावबुद्धा ये ते सांख्या योगिनः परे॥ ४९॥

निरन्तर सहज समाधि के अभ्यास द्वारा बाह्यजगत् के सम्यक् ज्ञान का अवरोध हो जाने पर, जो केवल सांख्यज्ञान में ही प्रबुद्ध रहते हैं, वे ही श्रेष्ठ सांख्ययोगी कहे गये हैं॥ ४९॥

प्राणाद्यनिलसंशान्तौ युक्त्या ये पदमागताः। अनामयमनाद्यन्तं ते स्मृता योगयोगिनः॥ ५०॥
उपादेयं तु सर्वेषां शान्तं पदमकृत्रिमम्। एकार्थाभ्यसनं प्राणरोधश्चेतः परिक्षयः॥ ५१॥

प्राणायाम के विशेष प्रयोगों से गुरु द्वारा प्रदत्त विशेष युक्तियों से प्राणापान वायुओं के शान्त, सम हो जाने पर जो अनामय,अनादि, अनन्त पद को प्राप्त कर लेते हैं, वे ही वास्तविक योगी हैं। सभी के लिये ग्रहण करने योग्य शान्त, सहज पद एकतत्त्वाभ्यास ही प्राण का निरोध करने में सहायक है और इसी से चित्त का भी क्षय हो जाता है॥ ५०-५१॥

एकस्मिन्नेव संसिद्धे संसिध्यन्ति परस्परम्। अविनाभाविनी नित्यं जन्तूनां प्राणचेतसी॥ ५२॥
आधाराधेयवच्चैते एकभावे विनश्यतः। कुरुतः स्वविनाशेन कार्यं मोक्षाख्यमुत्तमम्। ॥ ५३॥

एकमात्र परतत्त्व के सिद्ध हो जाने पर चेतःक्षय,अद्वैत भाव आदि सभी सिद्ध हो जाते हैं। प्राणियों के प्राण और चित्त नित्य ही अविनाभाव सम्बन्ध वाले हैं अर्थात् 'चले वायौ चलं चित्तम्'। आधार और आधेय के समान ये प्राण और चित्त दोनों एक साथ ही नष्ट हो जाते हैं। साथ ही अपने विनाश से ये दोनों ही मोक्षरूप श्रेष्ठ कार्य को भी सम्पन्न कर देते हैं॥ ५२-५३॥

सर्वमेतद्धिया त्यक्त्वा यदि तिष्ठसि निश्चलः। तदाऽहङ्कारविलये त्वमेव परमं पदम्॥ ५४॥

बुद्धिपूर्वक दृश्यमान सम्पूर्ण जगत् का त्याग कर निश्चल स्थिर रहोगे, तो अहंकार के विलय हो जाने पर तुम स्वयं ही परमपदरूप हो जाओगे॥ ५४॥

महाचिदेकैवेहास्ति महासत्तेति योच्यते। निष्कलङ्का समा शुद्धा निरहङ्काररूपिणी॥ ५५॥

जो महासत्ता कही गयी है, वह निष्कलंक, सम, शुद्ध , निरहंकाररूपिणी महाचित् शक्ति इस विश्व में एक ही है॥ ५५॥

सकृद्विभाता विमला नित्योदयवती समा। सा ब्रह्म परमात्मेति नामभिः परिगीयते॥ ५६॥

एक बारगी प्रकाशिता, निर्मला नित्या समा, वह महाचित् शक्ति ही ब्रह्म, परमात्मा आदि नामों से गायी जाती है॥ ५६॥

सैवाहमिति निश्चित्य निदाघ कृतकृत्यवान्। न भूतं न भविष्यच्च चिन्तयामि कदाचन॥ ५७॥

हे निदाघ! वह महाचित् शक्ति ही मैं स्वयं हूँ, ऐसा निश्चय करके मैं कृतकृत्य हूँ एवं कभी भी भूत या भविष्य की चिन्ता नहीं करता॥ ५७॥

दृष्टिमालम्ब्य तिष्ठामि वर्तमानामिहात्मना। इदमद्य मयालब्धमिमं प्राप्स्यामि सुन्दरम्॥ ५८॥ न स्तौमि न च निन्दामि आत्मनोऽन्यन्नहि क्वचित्। न तुष्यामि शुभप्राप्तौ न खिद्याम्यशुभागमे॥ ५९॥ प्रशान्तचापलं वीतशोकमस्तसमीहितम्। मनो मम मुने शान्तं तेन जीवाम्यनामयः॥ ६०॥

इस जगत् में केवल वर्तमान पर दृष्टि रखकर ही स्थित हूँ। आज मैंने यह प्राप्त कर लिया और भविष्य में इस रमणीय वस्तु को प्राप्त करूँगा। न प्रशंसा करता हूँ और न निन्दा ही करता हूँ। मेरे सिवा अन्य कुछ भी नहीं है। न तो शुभ की प्राप्ति पर सन्तुष्ट (प्रसन्न) होता हूँ और न ही अशुभ की प्राप्ति से खिन्न होता हूँ। मेरी चपलता शान्त हो चुकी है,मेरा शोक-दुःख नष्ट हो चुका है,मैंने अभीष्ट प्राप्त कर लिया है। हे मुने! मेरा मन पूर्ण शान्त है, अतः इसी हेतु से मैं नीरोग स्वस्थ जीवन जी रहा हूँ॥ ५८-६०॥

अयं बन्धुः परश्चायं ममायमयमन्यकः। इति ब्रह्मन्न जानामि संस्पर्शं न ददाम्यहम्॥ ६१॥ वासनामात्रसंत्यागाज्जरामरणवर्जितम्। सवासनं मनो ज्ञानं ज्ञेयं निर्वासनं मनः॥ ६२॥

यह मेरा कुटुम्बी है,यह पराया है, अमुक पदार्थ मेरा है,यह किसी अन्य का है,यह मैं नहीं जानता। हे ब्रह्मन्! मैं किसी का स्पर्श भी नहीं करता। सम्पूर्ण वासनाओं के सम्यक् परित्याग से मेरा मन जरा-मरण भाव से वर्जित है। वासनायुक्त मन ही सांसारिक ज्ञान का हेतु है; किन्तु मेरा मन तो पूर्णतः वासना से रहित है ॥ ६१-६२॥

चित्ते त्यक्ते लयं याति द्वैतमेतच्च सर्वतः। शिष्यते परमं शान्तमेकमच्छमनामयम्॥ ६३॥

चित्त का त्याग कर देने पर समस्त द्वैत का लय हो जाता है। परम शान्त, निर्मल, विशुद्ध एक तत्त्व ही शेष रह जाता है॥ ६३॥

अनन्तमजमव्यक्तमजरं शान्तमच्युतम्। अद्वितीयमनाद्यन्तं यदाद्यमुपलम्भनम्॥ ६४॥
एकमाद्यन्तरहितं चिन्मात्रममलं ततम्। खादप्यतितरां सूक्ष्मं तद्ब्रह्मास्मि न संशयः॥ ६५॥

अनन्त, अजन्मा, अव्यक्त, जरारहित, शान्त, अच्युत, अद्वितीय, अनादि, अनन्त, आद्यतम, आद्यन्त रहित, चिन्मात्र, निर्मल, व्यापक आकाश से भी अधिक सूक्ष्म,वह ब्रह्म मैं ही हूँ इसमें सन्देह नहीं है॥६४-६५॥

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नं स्वच्छं नित्योदितं ततम्। सर्वार्थमयमेकार्थं चिन्मात्रममलं भव॥ ६६॥

तुम भी दिक्कालादि से अपरिच्छिन्न, स्वच्छ नित्योदित,सर्वत्र व्याप्त, सर्वस्वरूप, अद्वितीय, चिन्मात्र निर्मल स्वरूप हो जाओ॥ ६६॥

सर्वमेकमिदं शान्तमादिमध्यान्तवर्जितम्। भावाभावमजं सर्वमिति मत्वा सुखी भव॥ ६७॥

यह सब कुछ एक, शान्त, आदि, मध्य एवं अन्त से रहित, भावाभाव-स्वरूप एवं अजन्मा है,ऐसा जानकर सुखी हो जाओ॥ ६७॥

न बद्धोऽस्मि न मुक्तोऽस्मि ब्रह्मैवास्मि निरामयम्। द्वैतभावविमुक्तोऽस्मि सच्चिदानन्दलक्षणः। एवं भावय यत्नेन जीवन्मुक्तो भविष्यसि॥ ६८॥

न मैं बन्धनयुक्त हूँ, न मुक्त हूँ, एकमात्र निर्मल ब्रह्म ही हूँ। द्वैतभाव से विमुक्त,सच्चिदानन्द लक्षण वाला ही मैं हूँ-ऐसी भावना करो, निरन्तर प्रयत्नपूर्वक ऐसी भावना करते हुए तुम जीवन्मुक्त हो जाओगे॥ ६८॥

पदार्थवृन्दे देहादिधिया संत्यज्य दूरतः। आशीतलान्तःकरणो नित्यमात्मपरो भव॥ ६९॥

पदार्थों में देहादि बुद्धि का दूर से ही त्याग करके, शीतल अन्तःकरण होने तक नित्य ही आत्मस्वरूप में तत्पर रहो॥ ६९॥

इदं रम्यमिदं नेति बीजं ते दुःखसंततेः। तस्मिन्साम्याग्निना दग्धे दुःखस्यावसरः कुतः॥ ७०॥
शास्त्रसज्जनसंपर्कैः प्रज्ञामादौ विवर्धयेत्॥ ७१॥

यह सुखकर सुन्दर है,यह सुखकर सुन्दर नहीं है-यही भावना सांसारिक दुःखों का बीज है। समत्व योग की अग्नि के द्वारा उक्त बीज के दग्ध हो जाने पर, दुःख प्राप्ति का अवसर ही कहाँ आ सकता है? पहले अध्यात्म ज्ञान सम्बन्धी शास्त्रों के स्वाध्याय से, उसके बाद तत्त्वदर्शियों के सत्संग से अपनी प्रज्ञा को बढ़ाना आवश्यक है॥ ७०-७१॥

ऋतं सत्यं परं ब्रह्म सर्वसंसारभेषजम्। अत्यर्थममलं नित्यमादिमध्यान्त वर्जितम्॥ ७२॥ तथा ऽस्थूलमनाकाशमसंस्पृश्यमचाक्षुषम्। न रसं न च गन्धाख्यमप्रमेयमनूपमम्॥ ७३॥ आत्मानं सच्चिदानन्दमनन्तं ब्रह्म सुव्रत। अहमस्मीत्यभिध्यायेद्देहातीतं विमुक्तये॥ ७४॥ समाधिः

संविदुत्पत्तिः परजीवैकतां प्रति। नित्यः सर्वगतो ह्यात्मा कूटस्थो दोषवर्जितः॥ ७५॥ एकः सन्भिद्यते भ्रान्त्या मायया न स्वरूपतः। तस्मादद्वैत एवास्ति न प्रपञ्चो न संसृतिः॥ ७६॥

जिसका न आदि है न मध्य और न अन्त ही है,जो अत्यन्त विशुद्ध निर्मल,शाश्वत है,जो ऋत-सत्य ब्रह्म है, वही संसाररूपी रोग की एकमात्र औषधि है। हे सुव्रत! जो शब्द,स्पर्श,रूप,रस एवं गन्ध का विषय नहीं है; जो अप्रमेय है, अनुपम है, सच्चिदानन्द स्वरूप अनन्त ब्रह्म है, वही देहातीत मैं हूँ-विमुक्ति के लिये निरन्तर यही चिन्तन करना आवश्यक है। अन्य सभी प्राणियों के प्रति आत्मीय चेतना की उत्पत्ति ही समाधि है। कूटस्थ, नित्य (शाश्वत), सनातन आत्मा सभी प्राणियों में एक ही है। एक होते हुए भी भ्रान्तिरूपी माया से वह भिन्न-भिन्न प्राणियों में भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है। वस्तुतः वह स्वरूप से भिन्न नहीं है। अतएव वह आत्मा अद्वैत है,एक ही है, न तो प्रपञ्च है और न संसार ही है॥ ७२-७६॥

यथाकाशो घटाकाशो महाकाश इतीरितः। तथा भ्रान्तेर्द्विधा प्रोक्तो ह्यात्मा जीवेश्वरात्मना॥७७॥

जिस प्रकार एक ही आकाश घटाकाश महाकाश कहा जाता है, उसी प्रकार भ्रान्ति के कारण एक ही आत्मा जीव और ईश्वर दो रूपों में कहा जाता है॥ ७७॥

यदा मनसि चैतन्यं भाति सर्वत्रगं सदा। योगिनोऽव्यवधानेन तदा संपद्यते स्वयम्॥ ७८॥ यदा सर्वाणि भूतानि स्वात्मन्येव हि पश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ब्रह्म संपद्यते तदा॥ ७९॥

जब योगी के चित्त में सर्वत्र व्याप्त चैतन्य निरन्तर अव्यवहित रूप से भासता है, तब वह स्वयं ही ब्रह्म हो जाता है। जब अपनी आत्मा में ही सभी प्राणियों को देखता है और सभी प्राणियों में अपनी आत्मा को देखता है, तब वह ब्रह्मरूप ही हो जाता है॥ ७८-७९॥

यदा सर्वाणि भूतानि समाधिस्थो न पश्यति। एकीभूतः परेणासौ तदा भवति केवलः॥ ८०॥

जब समाधि की स्थिति में रहते हुए योगी सभी प्राणियों को भिन्न-भिन्न रूप में नहीं देखता, तब परब्रह्म से एकीभूत होकर वह कैवल्य पद में अधिष्ठित हो जाता है॥ ८०॥

शास्त्रसज्जनसंपर्कवैराग्याभ्यासरूपिणी। प्रथमा भूमिकैषोक्ता मुमुक्षुत्वप्रदायिनी॥ ८१॥

वेदान्त शास्त्र के स्वाध्याय से, तत्त्वज्ञ मनीषियों के सत्संग से, अभ्यास एवं वैराग्य से उत्पन्न यह प्रथम भूमिका है, जो मुमुक्षुत्व प्रदान करती है॥ ८१॥

विचारणा द्वितीया स्यात्तृतीया साङ्गभावना। विलायिनी चतुर्थी स्याद्वासना विलयात्मिका॥ ८२॥ शुद्धसंविन्मयानन्दरूपा भवति पञ्चमी। अर्धसुप्तप्रबुद्धाभो जीवन्मुक्तोऽत्र तिष्ठति॥ ८३॥ असंवेदनरूपा च षष्ठी भवति भूमिका। आनन्दैकघनाकारा सुषुप्तसदृशी स्थितिः॥ ८४॥ तुर्यावस्थोपशान्ता सा मुक्तिरेव हि केवला। समता स्वच्छता सौम्या सप्तमी भूमिका भवेत्॥ ८५॥ तुर्यातीता तु याऽवस्था परा निर्वाणरूपिणी। सप्तमी सा परा प्रौढा विषयो नैव जीवताम्॥ ८६॥

पूर्वावस्थात्रयं तत्र जाग्रदित्येव संस्थितम्। चतुर्थी स्वप्न इत्युक्ता स्वप्नाभं यत्र वै जगत्॥ ८७॥
आनन्दैकघनाकारा सुषुप्ताख्या तु पञ्चमी। असंवेदनरूपा तु षष्ठी तुर्यपदाभिधा॥ ८८॥
तुर्यातीतपदावस्था सप्तमी भूमिकोत्तमा। मनोवचोभिरग्राह्या स्वप्रकाशसदात्मिका॥ ८९॥

दूसरी भूमिका विचारणा होती है। साङ्ग-भावना तृतीय भूमिका होती है। विलायिनी चतुर्थी भूमिका होती है, जिसमें वासना का विलय हो जाता है, शुद्धचिन्मयानन्द-स्वरूपा पाँचवीं भूमिका कही गई है,जिसमें योगी जाग्रदवस्था में भी अर्द्ध सुप्तवत भासित होता है। असंवेदनरूपा छठी भूमिका कही जाती है,जिसमें ज्ञान से भी परे केवल घनानन्दमयी स्थिति में योगी सुषुप्ति की स्थिति का अनुभव करता है। तुर्यावस्थावत् उपशान्त कैवल्यमुक्तिरूपा समत्वयोगरूपा निर्मल सौम्यावस्था सातवीं भूमिका कही गई है। तुर्यावस्था से परे निर्वाण- रूपिणी जो परा अवस्था है, वह प्रौढ़ा सप्तमी भूमिका कही गयी है, जिसमें विषय शेष नहीं रहता है। प्रारम्भ की तीन अवस्थाएँ जाग्रत् अवस्था जैसी ही होती हैं। चतुर्थी अवस्था स्वप्नाख्य कही गई है, जिसमें जगत् स्वप्नवत् अनुभूत होता है। एकमात्र आनन्दस्वरूपा सुषुप्त नाम की पाँचवीं अवस्था होती है। सम्पूर्ण संवेदन से रहित तुर्या नाम की छठी अवस्था होती है। तुर्यातीत अवस्था सातवीं उत्तमा भूमिका होती है। यह अवस्था मन और वाणी से अगम्य है, जो केवल प्रकाशस्वरूपा होती है॥ ८२-८९॥

अन्तः प्रत्याहृतिवशाच्चैत्यं चेन्न विभावितम्। मुक्त एव न सन्देहो महासमतया तया॥ ९०॥

अन्तः प्रत्याहार की स्थिति में जब चित्तत्व का आभास नहीं होता है, तब महासमत्वयोग की दशा में योगी जीवन्मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ९०॥

न म्रिये न च जीवामि नाहं सन्नाप्यसन्मयः। अहं न किंचिच्चिदिति मत्वा धीरो न शोचति॥९१॥

न मैं मरने वाला हूँ, न मैं जीवित हूँ, न तो मैं सत् हूँ और न असत् ही हूँ। मैं कुछ भी नहीं हूँ,चिति ही एकमात्र है, ऐसा समझकर धैर्यशील को शोक नहीं होता है॥ ९१॥

अलेपकोऽहमजरो नीरागः शान्तवासनः। निरंशोऽस्मि चिदाकाशमिति मत्वा न शोचति॥ ९२॥

मैं निर्लेप हूँ, अजर, अमर, रागरहित, शान्त वासना वाला अंशहीन हूँ, पूर्ण चिदाकाशरूप हूँ, ऐसा जानकर योगी शोक नहीं करता॥ ९२॥

अहंमत्या विरहितः शुद्धो बुद्धोऽजरोऽमरः। शान्तः शमसमाभास इति मत्वा न शोचति॥ ९३॥

देहेन्द्रियादि में अहंकार से रहित शुद्ध, ज्ञानस्वरूप अजर-अमर, शान्त शमस्वरूप हूँ,ऐसा ज्ञान प्राप्त कर योगी कष्टकर स्थिति में भी शोक नहीं करता॥ ९३॥

तृणाग्रेष्वम्बरे भानौ नरनागामरेषु च। यस्तिष्ठति तदेवाहमिति मत्वा न शोचति॥ ९४॥

घास के तिनके में, आकाश में, सूर्य में, मनुष्यों में, नागों में, देवों में, सर्वत्र मैं ही हूँ। ऐसा जान लेने पर योगी शोक नहीं करता॥ ९४॥

भावनां सर्वभावेभ्यः समुत्सृज्य समुत्थितः। अवशिष्टं परं ब्रह्म केवलोऽस्मीति भावय॥ ९५॥

सब प्रकार के रसों की भावना (आस्वादन) का त्याग कर अवशिष्ट एकमात्र केवल ब्रह्म हूँ, ऐसी भावना करो॥ ९५॥

वाचामतीतविषयो विषयाशादशोज्झितः। परानन्दरसाक्षुब्धो रमते स्वात्मनाऽऽत्मनि॥ ९६॥ सर्वकर्मपरित्यागी नित्यतृप्तो निराश्रयः। न पुण्येन न पापेन नेतरेण च लिप्यते॥ ९७॥ स्फटिकः प्रतिबिम्बेन यथा नायाति रञ्जनम्। तज्ज्ञः कर्मफलेनान्तस्तथा नायाति रञ्जनम्॥ ९८॥

ऐसा योगी वाणी के विषय से अतीत समस्त विषयों से अतीत, परमानन्दरूपी महासागर में निमग्न स्वयं ही स्वयं में रमण करता है। वह समस्त कर्मों का परित्याग कर नित्य प्रसन्न किसी आश्रय की अपेक्षा नहीं करता। न पाप, न पुण्य और न पाप- पुण्येतर किसी भाव में लिप्त होता है। जिस प्रकार स्फटिक मणि किसी रंगीन वस्तु के प्रतिबिम्ब से रंगीन नहीं होती है,उसी प्रकार ब्राह्मीभूत योगी भी कर्मों के फल से लिप्त नहीं होता॥ ९६-९८॥

विहरञ्जनतावृन्दे देवकीर्तनपूजनैः। खेदाह्लादौ न जानाति प्रतिबिम्बगतैरिव॥ ९९॥ निःस्तोत्रो निर्विकारश्च पूज्यपूजाविवर्जितः। संयुक्तश्च वियुक्तश्च सर्वाचारनयक्रमैः॥ १००॥ तनुं त्यजतु वा तीर्थे श्वपचस्य गृहेऽथ वा । ज्ञानसंपत्तिसमये मुक्तोऽसौ विगताशयः॥ १०१॥

जन समूह में विहरण करते हुए भी देवार्चन-प्रभुनाम संकीर्तन आदि कर्मों द्वारा न आनन्दित होता है न खिन्न। मानो वह स्वयं प्रतिबिम्ब मात्र हो । वह न कोई स्तोत्र पाठ करता है, न देवादि पूज्यों की पूजा ही करता है,वह तो निर्विकार रहकर सभी आचारों व नीतियों से संयुक्त रहे या वियुक्त,दोनों विपरीत स्थितियों में समान (निर्विकार) रहता है। वह चाहे तीर्थ-स्थल में शरीर का त्याग करे अथवा किसी चाण्डाल के घर में देह त्याग करे, निर्विषयी चित्त वाला वह योगी ज्ञान की सम्पत्ति की अवस्था में मुक्त हो जाता है॥ ९९-१०१॥

संकल्पत्वं हि बन्धस्य कारणं तत्परित्यज। मोक्षो भवेदसंकल्पात्तदभ्यासं धिया कुरु॥ १०२॥

मन में किसी संकल्प का उठना ही बन्धन का कारण है, अतः तुम संकल्प का त्याग करो। संकल्पाभाव से ही मोक्ष होना सम्भव है, अतः बुद्धिपूर्वक संकल्परहित होने का ही अभ्यास करो॥ १०२॥

सावधानो भव त्वं च ग्राह्यग्राहकसंगमे। अजस्रमेव संकल्पदशाः परिहरन् शनैः॥ १०३॥

ग्राह्य अर्थात् पदार्थ एवं ग्राहक अर्थात् ज्ञानेन्द्रियाँ, इनके संगम में जागतिक ज्ञान होता है, अतः ज्ञानेन्द्रियों तथा चित्त को बाह्य विषयों की ओर जाने से रोकते रहें, सावधान रहें। अहर्निश चित्त का अवलोकन करते हुए उसमें कोई संकल्प न उठने दें॥ १०३॥

मा भव ग्राह्यभावात्मा ग्राहकात्मा च मा भव। भावनामखिलां त्यक्त्वा यच्छिष्टं तन्मयोभव॥१०४॥ किंचिच्चेद्रोचते तुभ्यं तद्बद्धोऽसि भवस्थितौ। न किंचिद्रोचते चेत्ते तन्मुक्तोऽसि भवस्थितौ॥ १०५॥ अस्मात्पदार्थनिचयाद्यावत् स्थावरजङ्गमात्॥

तृणादेर्देहपर्यन्तान्मा किंचित्तत्र रोचताम्॥ १०६॥

हे निदाघ! न तो तुम किसी के विषय बनो और न स्वयं विषयों के ग्राहक ही बनो। समस्त भावना का त्याग करने पर जो कुछ शेष रहता है, बस उसी में लीन हो जाओ। यदि जगत् में तुम्हें कुछ भी अच्छा लगता है, तो तुम सांसारिकता के बन्धन में बँध गये हो। यदि तुम्हें किसी वस्तु के प्रति रुचि (राग) नहीं है, तो तुम सांसारिक बन्धन से मुक्त ही हो। सम्पूर्ण स्थावर-जंगम पदार्थों में तिनके से लेकर देह पर्यन्त किसी भी वस्तु के प्रति रुचि मत रखो॥ १०४-१०६॥

अहंभावानहंभावौ त्यक्त्वा सदसती तथा। यदसक्तं समं स्वच्छं स्थितं तत्तुर्यमुच्यते॥ १०७॥

अहंभाव का त्याग कर्त्तव्य है,साथ ही अहंभाव के अभाव का भी त्याग करें। सद्भाव का त्याग करें, साथ ही असत् का भी त्याग करें। इस प्रकार आसक्तिरहित समत्व,निर्मलत्व की स्थिति ही तुर्यावस्था कही जाती है॥ १०७॥

या स्वच्छा समता शान्ता जीवन्मुक्तव्यवस्थितिः। साक्ष्यवस्था व्यवहृतौ सा तुर्या कलनोच्यते॥ १०८॥ नैतज्जाग्रन्न च स्वप्नः संकल्पानामसंभवात्। सुषुप्तभावो नाप्येतदभावाज्जडतास्थितेः॥ १०९॥

जो स्वच्छ शान्त समत्व योग की जीवन्मुक्त स्थिति, व्यवहार में केवल साक्षिभाव की आत्मस्थिति है, वही तुर्यावस्था की अनुभूति है। न तो यह जाग्रदवस्था है, न स्वप्नावस्था है; क्योंकि इसमें संकल्पों का तो अभाव ही है। इसी प्रकार जड़ता की स्थिति नहीं होने से यह सुषुप्तावस्था भी नहीं है॥ १०८-१०९॥

**शान्तसम्यक्प्रबुद्धानां यथास्थितमिदं जगत्। विलीनं तुर्यमित्याहुरबुद्धानां स्थितं स्थिरम्॥ ११०॥
अहंकारकलात्यागे समतायाः समुद्गमे। विशरारौ कृते चित्ते तुर्यावस्थोपतिष्ठते॥ १११॥
सिद्धान्तोऽध्यात्मशास्त्राणां सर्वापह्नव एव हि। नाविद्यास्तीह नो माया शान्तं ब्रह्मेदमक्लमम्॥ ११२॥
शान्त एव चिदाकाशे स्वच्छे शमसमात्मनि। समग्रशक्तिखचिते ब्रह्मेति कलिताभिधे॥ ११३॥
सर्वमेव परित्यज्य महामौनी भवानघ। निर्वाणवान्निर्मनन: क्षीणचित्तः प्रशान्तधीः॥ ११४॥**

शान्त सम्यक् प्रबुद्ध तत्त्वज्ञ महापुरुषों के लिये यह जगत् जैसा भी है विलीन ही है, जिसे तुर्य कहा जाता है। पुनश्च- जो लोग अहंकारवश तत्त्वज्ञान से रहित हैं, उनके लिये तो यह जगत् स्थिर है। अहंकार की भावना का त्याग कर देने पर, समत्वयोग की स्थिति प्राप्त हो जाने पर तथा चित्त के विनष्ट हो जाने पर तुर्यावस्था की उपस्थिति हो जाती है। सभी अध्यात्म शास्त्रों का यह सिद्धान्त है कि जो भी प्रतिभासित होता है, वह कुछ नहीं है। यहाँ न माया है, न अविद्या ही है। यहाँ एकमात्र शान्त ब्रह्म है। शान्त, स्वच्छ, चिदाकाशरूप निर्मल आत्मा में ही सम्पूर्ण शक्तिसम्पन्न ब्रह्म नाम से आकलित तत्त्व है। उसी ब्रह्मस्वरूप आत्मा में सब कुछ त्याग कर महामौन धारण कर क्षीणचित्त शान्तबुद्धि मन के संकल्प-विकल्प से रहित, निर्वाणयुक्त हो जाओ॥ ११०-११४॥

आत्मन्येवास्स्व शान्तात्मा मूकान्धबधिरोपमः। नित्यमन्तर्मुखः स्वच्छः स्वात्मनान्तः-प्रपूर्णधीः ॥११५॥
जाग्रत्येव सुषुप्तस्थः कुरु कर्माणि वै द्विज। अन्तः सर्वपरित्यागी बहिकुरु यथागतम्॥ ११६॥

गूँगे, बहरे, अन्धे के समान अपने आप में शान्त, सम, स्थिर,सतत अन्तर्मुखी होकर अपने आप ही अन्तर्ज्ञानसम्पन्न हो जाओ। जाग्रदवस्था में ही सुषुप्ति का अनुभव करते हुए सब कर्म करते रहो। हे ब्राह्मण! आन्तरिक अवस्था में सब कुछ त्याग कर बाह्यरूप में यथाप्राप्त कार्य सम्पादन करते रहो॥ ११५-११६॥

चित्तसत्ता परं दुःखं चित्तत्यागः परं सुखम्। अतश्चित्तं चिदाकाशे नय क्षयमवेदनात्॥ ११७॥

चित्त की सत्ता ही सब दुःखों का हेतु है,चित्त का त्याग ही परमसुख है। अतः बाह्यज्ञान से विमुख होकर, चित्त को एकमात्र चिदाकाश में लीन (क्षीण) कर दो॥ ११७॥

दृष्ट्वा रम्यमरम्यं वा स्थेयं पाषाणवत्सदा। एतावतात्मयत्नेन जिता भवति संसृतिः ॥ ११८॥

रमणीय या कष्टकर वस्तु, भाव या स्थिति को देखकर, उससे प्रभावित न होकर सदा निर्जीव पाषाण के समान रहो। बस इतना प्रयत्न पुरुषार्थ-मात्र से तुम संसार पर विजय कर सकोगे ॥ ११८ ॥

वेदान्ते परमं गुह्यं पुराकल्पप्रचोदितम्। नाप्रशान्ताय दातव्यं न चाशिष्याय वै पुनः॥ ११९॥

पुरातन कल्प में प्रकाशित यह रहस्यमय ज्ञान वेदान्त में परम गोपनीय माना गया है। जो अनुशासन में रहने योग्य नहीं है, जिसका चित्त सांसारिक विषयों से विरक्त होकर शान्त नहीं हुआ है, ऐसे अशिष्य (शिष्यत्व भावरहित) को यह ज्ञान नहीं दिया जाना चाहिए ॥ ११९ ॥

अन्नपूर्णोपनिषदं योऽधीते गुर्वनुग्रहात्। स जीवन्मुक्तता प्राप्य ब्रह्मैव भवति स्वयम॥१२०॥

सद्गुरुदेव के परमअनुग्रह से जो मनन-चिन्तनपूर्वक इस अन्नपूर्णोपनिषद् का अध्ययन करता है, वह जीवन्मुक्त होकर स्वयं ब्रह्मरूप हो जाता है। यही इस उपनिषद् का रहस्य है ॥ १२० ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः........................ इति शान्तिः ॥

इति अन्नपूर्णोपनिषत्समाप्ता

॥ अरुणोपनिषद् ॥

यह 'अरुणोपनिषद्' पुरातनकालीन है, जो 'अड्यार लाइब्रेरी, मद्रास' द्वारा संकलित है। सन् १९२२ की मुद्रित यह उपनिषद् सूत्ररूपा है, जिस पर पुराकालीन 'लक्ष्मीधराचार्य' नामक विद्वद्वरेण्य की टीका उपलब्ध है, उसी को आधार मानकर इन सूत्रपरक मन्त्रों का भावार्थ यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

[इस उपनिषद् में पृश्नि मुनि चक्रविद्या की महत्ता पर प्रकाश डालते हैं। यह सृष्टि यज्ञीय चक्र पर आधृत है, शरीर की क्रियाएँ भी चक्रवत चल रही हैं। प्रकृति चक्र (इकॉलोजिकल बेलॅन्स) पर पर्यावरण सन्तुलन निर्भर है। यौगिक सन्दर्भ में भी षट्चक्रों के वेधन द्वारा आध्यात्मिक उत्कर्ष किया जाता है। साधना विज्ञान में भी मंत्र रूप श्री चक्र, महाचक्र-सुदर्शन चक्र (द्रष्टव्य- १०८ उपनिषद् साधना खण्ड परिशिष्ट) वर्णित हैं, जिनके प्रयोग से विभिन्न सिद्धियों की प्राप्ति संभव है।]

इमा नुकं भुवना सीषधेम॥ १ ॥

पृश्नि नामक मुनि आपस में विचार करते हैं कि इस चक्रविद्या का आश्रय लेकर ही सब लोक अवस्थित हैं, ऐसा हमारा अनुमान है॥ १ ॥

इन्द्रश्च विश्वे च देवाः॥ २ ॥

इन्द्र इत्यादि समस्त देवता चक्रविद्या का आश्रय लेकर ही स्थित हैं॥ २ ॥

यज्ञञ्च नस्तन्वञ्च प्रजाञ्च। आदित्यैरिन्द्रः सह सीषधातु॥ ३ ॥

अग्निष्टोमादिक यज्ञ, हमारे शरीर तथा शरीर का अर्धभाग पत्नी, सन्तान तथा सारी सम्पदाएँ मरुद्गणों के साथ इन्द्र ने भी चक्रविद्या की उपासना से अर्जित कर परमैश्वर्य प्राप्त किया और हमको भी चक्रविद्या का उपदेश किया॥ ३ ॥

आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिः। अस्माकं भूत्वविता तनूनाम्॥ ४ ॥

आदित्य और मरुद्गणों के सहित इन्द्र ही हमारे पुत्र, मित्र, कलत्र आदि के रक्षक हैं अर्थात् इन्द्र ही हमारे योग-क्षेम के सम्पादक हैं॥ ४ ॥

आप्लवस्व प्रप्लवस्व॥ ५ ॥

पृश्नि नामक मुनि चक्रविद्या को आरम्भ करते हैं। आपाद-मस्तक अर्थात् चरणों से मस्तक पर्यन्त अमृत- कणों का सिंचन करो और बहत्तर हजार नाड़ी-मार्गों में उस अमृत को विशेष रूप से भर दो॥ ५ ॥

आण्डीभव ज मा मुहुः॥ ६॥

पिण्डरूप से हमारा शरीर और समस्त ब्रह्माण्ड आप से ही व्याप्त है, अतः आप मुझे अपना सान्निध्य प्रदान करो। मुझ पर कृपा करो॥ ६॥

सुखादीन्दुःखनिधनाम्॥ ७॥
प्रतिमुञ्चस्व स्वां पुरम्॥ ८॥
मरीचयः स्वायम्भुवाः॥ ९॥

सुख-सम्पादक चन्द्र तथा आकाश ही है पूर्णरूप से धन जिसका, ऐसी उसके (भगवती के); अथवा सुखस्वरूपा एवं दुःखरहिता है जो,ऐसी उसके (भगवती के); अथवा मन के द्वारा जानने योग्य तथा चक्षु आदि इन्द्रियों के द्वारा अगोचर है जो, ऐसी भगवती देवी के शरीर में स्थित होकर,स्वयं भगवती के तेज से उत्पन्न किरणें ही सारे लोकों में व्याप्त होकर स्थित हैं। सूर्य-चन्द्र-अग्नि इत्यादि में जो प्रकाश है, वह स्वयं भगवती से उत्पन्न किरणों की कृपा का ही परिणाम है॥ ७-९॥

ये शरीराण्यकल्पयन्॥ १०॥
ते ते देहं कल्पयन्तु॥ ११॥

जो किरणें तीन सौ साठ संख्या वाले दिनों का निर्माण करती हैं अर्थात् संवत्सर का निर्माण करती हैं, वे किरणें आप भगवती के चरणों से ही उत्पन्न हुई हैं॥ १०-११॥

मा च ते ख्या स्म तीरिषत्॥ १२॥

आपकी ख्याति और आपका ज्ञान हमें न छोड़े अर्थात् आपके विषय सम्बन्धी हमारी ज्ञान-सम्पदा सफल हो॥ १२॥

नोट- इससे आगे पृश्नि नामक मुनि चक्रविद्या के अनुष्ठान में उत्सुक होकर आपस में विचार करते हैं-

उत्तिष्ठत मा स्वप्त। अग्निमिच्छध्वं भारताः।
राज्ञः सोमस्य तृप्तासः। सूर्य्येण सयुजोषसः॥ १३॥

हे ज्योतिस्वरूपा चक्रविद्या की उपासना में रत अथवा सरस्वती की श्रीविद्या-उपासना में निरत उपासको उठो! असावधान मत हो। (हे तेजस्वी पुरुषो!) अपने भीतर स्थित ज्ञान की अग्नि को प्रज्वलित करो। चन्द्र से निकलने वाली अमृतमयी किरणों से तृप्त हो अर्थात् चन्द्र से टपकने वाले अमृत बिन्दुओं से तृप्त होने वाले, अनाहत चक्र और विभादि चक्र के मध्य में स्थित सूर्य के ध्यान में लगे रहने वाले तथा उषाकाल में भगवती के ध्यान में निरत उपासको उठो॥ १३॥

इसके बाद पृश्नि नामक मुनि पूजा-सामग्री के विषय में उपदेश करते हैं-

युवा सुवासाः॥ १४॥

युवावस्था में जबकि शरीर पूर्णस्वस्थ हो, स्वच्छ वस्त्र तथा सुन्दर पवित्र मालादि धारण कर पूजा करें॥ १४॥

अब श्रीचक्र के स्वरूप का वर्णन करते हैं-

अष्टाचक्रा नवद्वारा॥ १५॥

श्रीचक्र आठ चक्रों और नव द्वारों वाला है। अष्टकोण, दशकोण, चौदहकोणों वाला है। आठ पंखुड़ियों वाला, सोलह पंखुड़ियों वाला, तीन वलय वाला, तीन रेखाओं से युक्त अष्ट-चक्रों वाला तथा त्रिकोणाकार नवद्वारों वाला है॥ १५॥

देवानां पूरयोध्या॥ १६॥

यह इन्द्रादि पूज्य देवताओं की नगरी है तथा पच्चीस तत्त्वों का अधिष्ठान है। सबकी वहाँ गति नहीं है। अनधिकारियों के लिए यह नगरी पूर्णतया अप्राप्य है॥ १६॥

तस्यां हिरणमयः कोशः। स्वर्गो लोको ज्योतिषावृतः॥ १७॥

श्रीचक्र में स्थित उस पुरी में सहस्रदलकमल-कोश विद्यमान है। उस कोश की ज्योति से स्वर्गलोक प्रकाशित रहता है॥ १७॥

अब पृश्नि नामक मुनि चक्रविद्या की उपासना का फल बताते हैं-

यो वै तां ब्रह्मणो वेद अमृतेनावृतां पुरीम्। तस्मै ब्रह्म च ब्रह्मा च आयुः कीर्तिं प्रजां ददुः॥ १८॥

ब्रह्मस्वरूपा भगवती के अमृत से आवृत श्रीचक्ररूप उस पुरी का जो वेदज्ञानपूर्वक अर्चन करता है, उसके लिए ब्रह्मस्वरूपा भगवती तथा ब्रह्मास्वरूप भगवान् ये दोनों मिलकर आयुः, कीर्ति, सन्तान प्रदान करते हैं॥ १८॥

शिव और शक्ति का निवास वहीं रहता है, ऐसा कहते हैं-

विभ्राजमानां हरिणीं यशसां संपरीवृताम्। पुरं हिरण्मयीं ब्रह्मा विवेशापराजिता॥ १९॥

अनन्त कोटि संख्या वाली किरणों से प्रकाशित, स्वर्णिम-आभा से युक्त, यश से व्याप्त, उस पुरी में ब्रह्म स्वरूपा भगवती और शिव दोनों षट्-चक्रों का भेदन करके बार-बार प्रवेश करते हैं॥ १९॥

शिव और शक्ति का उस चक्र में रहने का ढंग क्या है? इसका वर्णन करते हैं-

पराङ्त्यज्यामयी। पराङ्त्यनाशकी॥ २०॥

शिव और शक्ति दोनों में शक्ति तो नाशरहित, नित्य, आनन्दमयी तथा दुःखरहित है। (वह) नीचे को मुख किये हुए स्थित रहती है। शिव नीचे से ऊपर को मुख किये हुए स्थित रहते हैं, परन्तु चक्राकार होने के कारण परस्पर अधोमुख ही प्रतीत होते हैं॥ २०॥

अब विद्वान् का फल कहते हैं-

इह चामुत्र चान्वेति। विद्वान् देवासुरानुभयान्॥ २१॥

देव और असुर इन दोनों का जो पच्चीस तत्त्वों से उत्पन्न होना जानता है तथा इन तत्त्वों से भी विलक्षण शिव और शक्ति से संयुक्त छब्बीसवें तत्त्व को जानता है, वह विद्वान् है। वह इस लोक में सत्कार का पात्र बनता है तथा परलोक में सार्ष्टि (जिसमें ईश्वर तुल्य ऐश्वर्य भोग प्राप्त होता है), सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्यात्मक पाँच प्रकार की मुक्ति प्राप्त करता है॥ २१॥

अब देव और असुर दोनों के ज्ञान का उपाय कहते हैं-

यत्कुमारी मन्द्रयते यद् योषित्यत् पतिव्रता। अरिष्टं यत् किञ्च क्रियते अग्निस्तदनुवेधति॥ २२॥

कुण्डलिनी शक्ति की तीन अवस्थाएँ हैं- प्रथम चक्र में कुमारी, कौमार्यावस्था को प्राप्त करती हुई प्रथमतः जब सोकर उठती है, तो मन्द ध्वनि करती है। दूसरी अवस्था कुलयोषित् की है, द्वितीय चक्र में कुल नारी (की तरह कुण्डलिनी शक्ति) विष्णु-ग्रन्थि तक जाकर रमण करती है (आनन्दित होती है)।

तृतीय अवस्था में कुण्डलिनी-शक्ति पतिव्रता रूप में पति सदाशिव के साथ सहस्रदल कमल में विहार करती हुई जो कुछ भी शुभ करती है, उसमें स्वाधिष्ठान-चक्र में स्थित अग्नि सहायता करती है। इसके आगे, अभ्यासपूर्वक (प्राण) वायु से प्राणाग्नि को प्रज्वलित करके, उस अग्निशिखा के बीच विद्यमान चन्द्रमण्डल से निर्झरित पीयूष (अमृत) धारा की अनुभूति की स्थिति में पच्चीस तत्त्वों से (भी) अतीत (परे) परमात्मा (शिव-शक्ति) को जानने में (साधक) समर्थ हो जाता है-यही उपदेश (ज्ञान) है॥ २२॥

चक्रविद्या की उपासना समस्त वर्ण वालों के समान आश्रमवासियों, ज्ञानियों और अज्ञानियों को भी फलदायक है, ऐसा कहते हैं-

अश्रृतासः श्रृतासश्च यज्वानो ये ऽप्ययज्वनः स्वर्य्यन्तो नापेक्षन्ते॥ २३॥

जिनके अन्तःकरणों के कषाय-कल्मष नष्ट नहीं हुए हैं तथा जिनके अन्तःकरण कषाय-कल्मषों से रहित हैं, ऐसे यजनशील तीनों वर्णों के प्राणी और तीनों आश्रमवासी (अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं ब्रह्मचारी, गृहस्थ तथा वानप्रस्थी) तथा शूद्रादि भी चक्रविद्या की उपासना के अधिकारी हैं। जबकि यज्ञादि वैदिक कर्मों में शूद्रों (क्षुद्र वृत्ति वालों) का अधिकार नहीं है। चक्रविद्या की उपासना करने वालों को स्वर्ग की भी अपेक्षा नहीं रहती॥ २३॥

चक्रविद्या की उपासना के अभाव में अन्य देवों की उपासना में अनिष्ट होता है, ऐसा कहते हैं-

इन्द्रमग्निञ्च ये विदुः सिकता इव संयन्ति।
रश्मिभिः समुदीरिताः अस्माल्लोकादमुष्माच्च॥ २४॥

देव और असुर दोनों जिसके चरण-कमलों की वन्दना करते हैं, जो सब प्राणियों के हृदय में स्थित है, जगत् की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय की जो कारणरूपा है, ऐसी चक्रविद्या की उपासना के अभाव में जो इन्द्र, अग्नि, यज्ञादि-लोकपालों की, पृथिव्यादि-सदाशिवादि अन्य देवों की उपासना में रत रहते हैं, वे उसी प्रकार भ्रष्ट हो जाते हैं, जैसे बालू-कण अलग-अलग बिखर कर नष्ट हो जाते हैं और यम के पाशों से बद्ध हो जाते हैं। इस प्रकार वे इस लोक तथा परलोक दोनों से भ्रष्ट हो जाते हैं॥ २४॥

इसीलिए श्रुति भी कहती है- विद्या विरुद्ध इन्द्रादि की जो उपासना करते हैं, वे अन्धतामिस्त्र लोकों को प्राप्त होते हैं-

ऋषिभिरदात् पृश्निभिः॥ २५॥

पृश्नि मुनियों के सहित समस्त ऋषि समुदाय ने ऐसा कहा है॥ २५॥

॥ इति अरुणोपनिषत्समाप्ता॥

॥ अव्यक्तोपनिषद्॥

॥ शान्तिपाठः॥

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

॥ प्रथमः खण्डः॥

पुरा किलेदं न किंचनासीन्न द्यौर्नान्तरिक्षं न पृथिवी केवलं ज्योतीरूपमनाद्यनन्तमनण्वस्थूल-रूपमरूपं रूपवदविज्ञेयमानन्दमयमासीत्॥ १॥

इस सृष्टि से पूर्व कुछ भी नहीं था, न द्यौ, न अन्तरिक्ष, न ही पृथिवी थी। केवल आदि-अन्तरहित ज्योतिरूप था, जो न अणुरूप, न ही स्थूलरूप में, अरूप होते हुए भी रूपवान्, आनन्दमय और अविज्ञेय था॥ १॥

तदनन्यत्तदद्वेधाऽभूद्धरितमेकं रक्तमपरम्। तत्र यद्रक्तं तत्पुंसो रूपमभूत्। यद्धरितं तन्मायायाः। तौ समागच्छतः। तयोर्वीर्यमेवमनन्दत्। तदवर्धत। तदण्डमभूद्धैमम्। तत्परिणममानमभूत्। ततः परमेष्ठी व्यजायत॥ २॥

वह ज्योति फिर द्विधा विभक्त हुई। एक हरी और दूसरी लाल। जो लाल ज्योति थी, वह पुरुष के रूप में और जो हरे रंग वाली थी, वह मायारूप में परिवर्तित हो गई। (काल-कर्मयोग से) उनका सम्पर्क हुआ। उन पुरुष-प्रकृति का वीर्य-रज योग तुष्टि को प्राप्त हुआ, वह बढ़ने लगा। वह फिर सुनहरा अण्डा बन गया। इसके बाद अविद्यारूप अण्ड के आधार भगवान् के नाभि-कमल से परमेष्ठी ब्रह्माजी उत्पन्न हुए॥ २॥

सोऽभिजिज्ञासत किं मे कुलं किं मे कृत्यमिति। तं ह वागदृश्यमानाऽभ्युवाच-भो भो प्रजापते त्वमव्यक्तादुत्पन्नोऽसि व्यक्तं ते कृत्यमिति। किमव्यक्तं यस्मादहमासिषम्। किं तद्व्यक्तं यन्मे कृत्यमिति। साऽब्रवीदविज्ञेयं हि तत्सौम्य तेजः। यदविज्ञेयं तदव्यक्तम्। तच्चेज्जिज्ञाससिमामऽवगच्छेति। स होवाच कैषा त्वं ब्रह्मवाग्वदसि शंसात्मानमिति। सा त्वब्रवीत्तपसा मां विजिज्ञासस्वेति। स ह सहस्त्रं समा ब्रह्मचर्यमध्युवासाध्युवास॥ ३॥

उन्होंने जानना चाहा कि मेरा कुल कौन है, मेरा क्या कृत्य है? तब उन्हें अदृश्य वाणी ने उत्तर दिया- हे प्रजापते! तुम अव्यक्त से उत्पन्न हुए हो; किन्तु तुम्हारा कृत्य व्यक्त है। प्रजापति ने पूछा- वह अव्यक्त क्या है, जिसमें मैं हुआ हूँ? वह व्यक्त क्या है, जो मुझे करना है? उस (अदृश्यवाणी) ने कहा- हे सौम्य! वह तेज अविज्ञेय है। जो अविज्ञेय है, वह अव्यक्त है। यदि तुम जानना चाहते हो, तो मुझे जानो। तब परमेष्ठी ने कहा-

हे ब्रह्मवाणि! तुम क्या हो, कैसी हो? सो अपने को बताओ। इस पर अदृश्य वाणी ने कहा-मुझे तप से जानने की इच्छा करो। तब ब्रह्माजी ने हजारों वर्षों तक ब्रह्मचर्यव्रत का पालन किया॥ ३॥

॥ द्वितीयः खण्डः ॥

अथापश्यदृचमानुष्टुभीं परमां विद्यां यस्याङ्गान्यन्ये मन्त्राः। यत्र ब्रह्म प्रतिष्ठितम्। विश्वेदेवाः प्रतिष्ठिताः। यस्तां न वेद किमन्यैर्वेदैः करिष्यति॥ १॥

तदनन्तर उन्होंने परमाविद्या आनुष्टुभी ऋचा को देखा। अन्य मन्त्र जिसके अङ्ग थे, जिसमें ब्रह्म प्रतिष्ठित था तथा वेद प्रतिष्ठित थे। जो इस आनुष्टुभी ऋचा को नहीं जानता, वह अन्य वेदों से क्या करेगा?॥ १॥

तां विदित्वा स च रक्तं जिज्ञासयामास। तामेवमनूचानां गायन्नासिष्ट। सहस्त्रं समा आद्यन्तनिहितोङ्कारेण पदान्यगायत्। सहस्त्रं समास्तथैवाक्षरशः। ततोऽपश्यज्ज्योतिर्मयंश्रियाऽऽलिङ्गितं सुपर्णरथं शेषफणाच्छादितमौलिं मृगमुखं नरवपुषं शशिसूर्यहव्यवाहनात्मकनयनत्रयम्॥ २॥

उसे जानकर परमेष्ठी ने रक्तवर्ण को जानने की इच्छा प्रकट की। तप से प्रादुर्भूत उसी आनुष्टुभी ऋचा का गायन प्रारम्भ किया तथा वे हजारों वर्ष आदि-अन्त में ओंकार से सम्पुटित पदों को गाते रहे। सहस्रों वर्ष उसी प्रकार अक्षरशः गाते रहे। तब उन्होंने ज्योतिर्मय, लक्ष्मीजी से आलिङ्गित, गरुड़-वाहन पर आसीन, शेषनाग के फणों से आच्छादित सिर वाले, पशु (सिंह) के मुखवाले, नर के शरीर वाले, शशि, सूर्य, अग्निरूप तीन नेत्रों वाले भगवान् नारायण को देखा॥ २॥

ततःप्रजापतिः प्रणिपपात नमो नम इति। तयैवर्चाथ तमस्तौत्। उग्रमित्याह उग्रः खलु वा एष मृगरूपत्वात्। वीरमित्याह वीरो वा एष वीर्यवत्त्वात्। महाविष्णुमित्याह महतां वा अयं महात्रोदसी व्याप्य स्थितः। ज्वलन्तमित्याह ज्वलन्निव खल्वसाववस्थितः। सर्वतोमुखमित्याह सर्वतः खल्वयं मुखवान्विश्वरूपत्वात्। नृसिंहमित्याह यथा यजुरेवैतत्। भीषणमित्याह भीषो वा अस्मादादित्य उदेति भीतश्चन्द्रमा भीतो वायुर्वाति भीतोऽग्निर्दहति भीतः पर्जन्यो वर्षति। भद्रमित्याह भद्रः खल्वयं श्रिया जुष्टः। मृत्योर्मृत्युमित्याह मृत्योर्वा अयं मृत्युरमृतत्वं प्रजानामन्नादानाम्। नमामीत्याह यथा यजुरेवैतत्। अहमित्याह यथा यजुरेवैतत्॥ ३॥

उन्हें देखकर ब्रह्मा ने नमो नमः कह कर प्रणाम किया और फिर उसी ऋचा [उग्रंवीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम्। नृसिंह भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्॥ (द्रष्टव्य-त्रि०म०नारायणो०७/४०)] से उनकी स्तुति करने लगे। उन्हें उग्र कहा, क्योंकि वे सिंहरूप होने से उग्र थे। उन्हें वीर कहा, क्योंकि वे वीर्यवान् थे। उन्हें महाविष्णु कहा, क्योंकि वे महान् थे तथा महदाकाश को घेर कर स्थित थे। उन्हें जाज्वल्यमान कहा, क्योंकि वे अग्नि के समान प्रदीप्त थे। उन्हें सर्वतोमुख कहा, क्योंकि वे विश्वरूप होने से सब ओर मुख वाले थे। उन्हें नृसिंह कहा, जैसा यजुर्वेद (५.२०) में कहा (प्रतद्विष्णुस्तवते वीर्याय मृगः इति) है।

उन्हें भीषण कहा, क्योंकि इनसे भीत (भयभीत) सूर्य उदय होता है; चन्द्रमा चमकता है, भीत वायु प्रवहमान है, भीत अग्नि ज्वलनशील है, भीत बादल बरसता है। उन्हें भद्र कहा, क्योंकि वे श्री से सेवित हैं। उन्हें मृत्यु की मृत्यु बताया; क्योंकि वे मृत्यु की मृत्यु हैं। अन्न खाने वाले सभी प्रणियों को जीवन (अमृतत्व) प्रदान करने से भी वे अमृतरूप हैं। नमन करता हूँ। जैसा यजुर्वेद में (यस्माद्यं सर्वे देवा नमन्ति मुमुक्षवो ब्रह्मवादिनश्च) कहा है। उन्हें अहम् कहा-जैसा यजुर्वेद में (वेदैश्च सर्वैरहमेववेद्यः) वर्णित है॥ ३॥

॥ तृतीयः खण्डः ॥

अथ भगवांस्तमब्रवीत्प्रजापते प्रीतोऽहं किं तवेप्सितं तद्ददामिशंसेति। स होवाच भगवन्न-व्यक्तादुत्पन्नोऽस्मि व्यक्तं मम कृत्यमिति पुराऽश्रावि। तत्राव्यक्तं भवानित्यज्ञायि व्यक्तं मे कथयेति। व्यक्तं वै विश्वं चराचरात्मकम्। यद्व्यज्यते तद्व्यक्तस्य व्यक्तत्वमिति॥ १॥

इस स्तुति को सुनकर भगवान् ने प्रजापति से कहा— हे प्रजापते! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, तुम्हारी क्या इच्छा है, उसे पूरी करूँ, बताओ। तब ब्रह्मा ने कहा— भगवन्! मैं अव्यक्त से उत्पन्न हुआ हूँ, मेरा कृत्य व्यक्त है, ऐसा पहले सुना था। अत: उस व्यक्त को बताइये। प्रजापति की बात सुनकर भगवान् ने कहा— चराचरात्मक विश्व ही व्यक्त है। जो व्यक्त (प्रकट) होना है, वही व्यक्त की व्यक्तता है॥ १॥

स होवाच न शक्नोमि जगत्स्त्रष्टुमुपायं मे कथयेति। तमुवाच पुरुषः प्रजापते शृणु सृष्टेरुपायं परमं यं विदित्वा सर्वं ज्ञास्यसि। सर्वत्र शक्ष्यसि सर्वं करिष्यसि। मय्यग्नौ स्वात्मानं हविर्ध्यायेत्तयैवाऽनुष्टुभर्चा ध्यानयज्ञोऽयमेव॥ २॥

प्रजापति ने कहा— मैं जगत् की सृष्टि करने में अक्षम हूँ, अत: आप उपाय बताइये। भगवान् ने प्रजापति से कहा— सुनो, सृष्टि के परम उपाय को बताता हूँ, जिसे जानकर सब जान जाओगे, सर्वत्र समर्थ होओगे, सब कुछ कर सकोगे। मुझ अग्नि में उसी आनुष्टुभ ऋचा से अपने को ध्यान यज्ञ से हवन करो। यही ध्यान यज्ञ है॥ २॥

एतद्वै महोपनिषद्देवानां गुह्यम्। न ह वा एतस्य साम्ना नर्चा न यजुषाऽर्थोऽनुविद्यते। य इमां वेद स सर्वान्कामानवाप्य सर्वांल्लोकाञ्जित्वा मामेवाभ्युपैति न स पुनरावर्तते य एवं वेदेति॥ ३॥

यह महोपनिषद् देवताओं के लिए भी गुह्य है। इस ध्यान यज्ञ से जो अर्थ अनुवेद्य होता है, वह ऋग्, यजुः, साम तीनों वेदों से भी प्राप्त नहीं हो सकता। जो मेरे द्वारा कही इस निर्विशेष ब्रह्मोपनिषद् को जानता है, वह समस्त कामनाओं को पूर्ण करके सब लोकों को जीतकर, मुझे प्राप्त करता है। जो इसे जानता है, वह फिर संसार में लौट कर नहीं आता॥ ३॥

॥ चतुर्थः खण्डः ॥

प्रजापतिस्तं यज्ञाय वसीयांसमात्मानं मन्यमानो मनोयज्ञेनेजे। सप्रणवया तयैवर्चा हविर्ध्यात्वाऽऽत्मानमात्मन्यग्नौ जुहुयात्। सर्वमजानात्सर्वत्राशकत्सर्वमकरोत्॥ १॥

भगवान् के उपर्युक्त उपदेश को सुनकर प्रजापति ने अपने को ही यज्ञार्थ हवन सामग्री मानते हुए मनोयज्ञ से यजन किया। प्रणव सहित उसी आनुष्टुभ ऋचा से (उग्रं वीरमित्यादि एकादश पदोज्ज्वल अर्थात् ॐ उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतो मुखम्। नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्॥ मन्त्र से) हवि का ध्यान करके आत्मा को आत्मरूप अग्नि में हवन किया। तब से सब कुछ जान गये, सब करने में समर्थ हुए और सब कुछ किया॥ १॥

य एवं विद्वानिमं ध्यानयज्ञमनुतिष्ठेत्स सर्वज्ञोऽनन्तशक्तिः सर्वकर्त्ता भवति। स सर्वांल्लोकाञ्जित्वा ब्रह्म परं प्राप्नोति॥ २॥

इस प्रकार जो भी विद्वान् इस ध्यान यज्ञ का अनुष्ठान करता है, वह सर्वज्ञ, अनन्त-शक्ति-सम्पन्न, सब कुछ करने में सक्षम होता है। वह सब लोकों को जीतकर परब्रह्म को प्राप्त करता है॥ २॥

॥ पञ्चमः खण्डः॥

अथ प्रजापतिर्लोकान्सिसृक्षमाणस्तस्या एव विद्याया यानि त्रिंशदक्षराणि तेभ्यस्त्रींल्लोकान्। अथ द्वे द्वे अक्षरे ताभ्यामुभयतो दधार। तस्या एवर्चोद्वात्रिंशद्भिरक्षरैस्तान्देवान्निर्ममे। सर्वैरेव स इन्द्रोऽभवत्। तस्मादिन्द्रो देवानामधिकोऽभवत्। य एवं वेद समानानामधिकोभवेत्॥ १॥

इसके बाद प्रजापति ने लोकों की सृष्टि करने की इच्छा करते हुए, उसी विद्या के तीस अक्षरों से तीनों लोकों की रचना की। दो-दो अक्षरों से दोनों ओर से उन लोकों को धारण किया। उसी ऋचा के बत्तीस अक्षरों से (बत्तीस) देवों की रचना की। उन सबके (समुच्चय) द्वारा इन्द्र रचे गये। इसलिए इन्द्र अन्य (बत्तीस) देवों में एक अधिक हुए (अर्थात् कुल मिलाकर तैंतीस देव हो गये)। जो ऐसा जानता है, वह भी सामान्य जनों से अधिक होता है॥ १॥

तस्या एकादशभिः पादैरेकादश रुद्रान्निर्ममे। तस्या एकादशभिरेकादशादित्यान्निर्ममे। सर्वैरेवस विष्णुरभवत्। तस्माद्विष्णुरादित्यानामधिकोऽभवत्। य एवं वेद समानानामधिको भवेत्। स चतुर्भिश्चतुर्भिरक्षरैरष्टौ वसूनजनयत्॥ २॥

प्रजापति ने उस ऋचा के ग्यारह पदों से ग्यारह रुद्रों की रचना की। उस ऋचा के इन्हीं एकादश पदों से एकादश आदित्यों की रचना की। इन सबके समुच्चय से विष्णु का आविर्भाव हुआ। इसलिए विष्णु आदित्यों में एक अधिक (अर्थात् द्वादश) हो गये। जो ऐसा जानता है, वह अन्यों की अपेक्षा अधिक होता है। प्रजापति ने चार-चार अक्षरों से आठ वसुओं को उत्पन्न किया॥ २॥

स तस्या आद्यैर्द्वादशभिरक्षरैर्ब्राह्मणमजनयत्। दशभिर्दशभिर्विट्क्षत्रे तस्माद्ब्राह्मणो मुख्यो भवति। एवं तन्मुख्यो भवति य एवं वेद। तूष्णीं शूद्रमजनयत्तस्माच्छूद्रो निर्विद्योऽभवत्॥ ३॥

प्रजापति ने (आनुष्टुभी ऋचा के) आदि के बारह अक्षरों से ब्राह्मण को उत्पन्न किया। दस-दस अक्षरों से क्षत्रिय और वैश्य उत्पन्न किये। इसी से ब्राह्मण उन दोनों की अपेक्षा मुख्य होता है। मुख्य इस प्रकार होता है, जो इसे जानता है (वह अन्यों की अपेक्षा श्रेष्ठ होता है) । मौन होकर शूद्र को उत्पन्न किया। इसी से शूद्र निर्विद्य (विद्याहीन) हुआ॥ ३ ॥

न वा इदं दिवा न नक्तमासीदव्याकृतम्। स प्रजापतिरानुष्टुभाभ्यामर्धर्चाभ्यामहो रात्रावकल्पयत्॥ ४॥

इस प्रकार की विचित्र सृष्टि का चित्रभित्ति के समान अधिकरण क्या था? न तो दिन था, न रात थी; अपितु सब कुछ कल्पना-विरल अधिकरण-विहीन था। प्रजापति ने इसी आधी-आधी आनुष्टुभ ऋचा से दिन-रात की कल्पना की॥ ४॥

ततो व्यैच्छत्। व्येवास्मा उच्छति। अथो तम एवापहते। ऋग्वेदमस्या आद्यात्पादादकल्पयत्। यजुर्द्वितीयात्। साम तृतीयात्। अथर्वाङ्गिरसश्चतुर्थात्। यदष्टाक्षरपदा तेन गायत्री। यदेकादशपदा तेन त्रिष्टुप्। यच्चतुष्पदा तेन जगती। यद्द्वात्रिंशदक्षरा तेनानुष्टुप्। सा वा एषा सर्वाणि छन्दांसि। य इमां सर्वाणि छन्दांसि वेद। सर्वं जगदानुष्टुभ एवोत्पन्नमनुष्टुप्प्रतिष्ठितं प्रतितिष्ठति यश्चैवं वेद॥ ५॥

तब प्रजापति ने आगे विशेष इच्छा की कि मैं जो सोचता हूँ, वही प्रकट हो जाता है, इस चिन्ता के लिए उन्होंने आगे के अन्धकार को (कर्त्तव्य के अनिश्चय को) साफ कर दिया। तदनन्तर आनुष्टुभ ऋचा के आदि पाद से ऋग्वेद की रचना की, दूसरे से यजुर्वेद की, तीसरे से सामवेद की, चौथे से अथर्वाङ्गिरस की रचना की। जो आठ अक्षर पद वाली थी, उससे गायत्री की, जो ग्यारह अक्षर पद वाली थी, उससे त्रिष्टुप् की, जो चतुष्पदा थी, उससे जगती की और जो बत्तीस अक्षरों वाली थी, उससे अनुष्टुप् की रचना की। इस प्रकार सारे छन्दों की रचना हुई। जो इन सभी छन्दों को जानता है, वह यह भी जानता है कि सब जगत् आनुष्टुभ से उत्पन्न हुआ है, उसी में स्थित है, उसी में स्थित रहेगा॥ ५॥

॥ षष्ठः खण्डः ॥

अथ यदा प्रजाः सृष्टा न जायन्ते प्रजापतिः कथंन्विमाः प्रजाः सृजेयमिति चिन्तयन्नुग्रमितीमामृचं गातुमुपाक्रामत्। ततः प्रथमपादादुग्ररूपो देवः प्रादुरभूत्। एकः श्यामः पुरतो रक्तः पिनाकी स्त्रीपुंसरूपस्तं विभज्य स्त्रीषु तस्य स्त्रीरूपं पुंसि च पुंरूपं व्यधात्। स उभाभ्यामाशाभ्यां सर्वमादिष्टः। ततः प्रजाः प्रजायन्ते। य एवं वेद सोऽपि त्र्यम्बक इमामृचमुद्गायन्नुदग्रथितजटाकलापः प्रत्यग्ज्योतिष्यात्मन्येव रन्ता रमति॥ १॥

जब प्रजा की सृष्टि न हो पाई और प्रजापति सोचने लगे कि कैसे मैं इस प्रजा का सृजन करूँ, तब वे उसी 'उग्रम्'....इत्यादि ऋचा का गान करने को तैयार हुए। इससे उसके प्रथम पाद से उग्ररूप देव का आविर्भाव हुआ, जो एक ओर से श्याम तथा सामने से रक्त-पिनाकी स्त्री पुरुष के सम्मिलित रूप वाला था। उसको बाँट कर स्त्रीरूप से स्त्रियों को तथा पुरुषरूप से पुरुषों को उत्पन्न किया। प्रजापति ने दोनों को आशापूर्वक आदेश किया।

तब से प्रजा का क्रम चल पड़ा। जो इस प्रकार जानता है, वह भी त्र्यम्बक है, वह इस ऋचा को गाते हुए उलझी जटाओं वाला, सतत योगनिष्ठ आत्मा में ही उस परमतत्त्व का द्रष्टा होकर रमण करता है॥ १॥

इन्द्रो वै किल देवानामानुजावर आसीत्। तं प्रजापतिरब्रवीद्गच्छ देवानामधिपतिर्भवेति। सोऽगच्छत्। तं देवा ऊचुरानुजावरोऽसि त्वमस्माकं कुतस्तवाधिपत्यमिति। स प्रजापतिमभ्येत्योवाचैवं देवाऊचुरानुजा-वरस्य कुतस्तवाधिपत्यमिति। तं प्रजापतिरिन्द्रं त्रिकलशैरमृतपूर्णैरानुष्टुभाऽभिमन्त्रितैरभिषिच्य तं सुदर्शनेन दक्षिणतो ररक्ष पाञ्चजन्येन वामतो द्वयेनैव सुरक्षितोऽभवत्। रौक्मेफलकेसूर्यवर्चसि मन्त्रमानुष्टुभं विन्यस्य तदस्य कण्ठे प्रत्यमुञ्चत्। ततः सुदुर्निरीक्षोऽभवत्। तस्मै विद्यामानुष्टुभीं प्रादात्। ततो देवास्तमा-धिपत्यायानुमेनिरे। स स्वराडभूत्। य एवं वेद स्वराड् भवेत्। सोऽमन्यत पृथिवीमिमां कथं जयेयमिति। स प्रजापतिमुपाधावत्। तस्मात्प्रजापतिः कमठाकारमिन्द्रनागभुजगेन्द्राधारं भद्रासनं प्रादात्। स पृथिवीमभ्यजयत्। ततः स उभयोर्लोकयोरधिपतिरभूत्। य एवं वेदोभयोर्लोकयोरधिपतिर्भवति। स पृथिवीं जयति॥ २॥

इन्द्र देवों के बाद हुए, अतः छोटे हुए। प्रजापति ने उन्हें आदेश किया— जाओ, देवों के अधिपति होओ। वे इन्द्र गये। देवों ने कहा— तुम छोटे हो, फिर हम पर तुम्हारा स्वामित्व कैसे? इन्द्र फिर प्रजापति के पास आये और देवों से कही हुई बात बताई- 'तुम छोटे हो, फिर तुम्हारा स्वामित्व हम पर कैसे है'? तब प्रजापति ने आनुष्टुभ ऋचाओं को पढ़ते हुए तीन कलशों के अमृत से उन इन्द्र का अभिषेक किया और तब वे दायीं ओर सुदर्शन से और वामभाग में पाञ्चजन्य दोनों ओर से सुरक्षित हो गये। सूर्य की प्रभा जैसे रौक्म-फलक (स्वर्णपत्र) पर आनुष्टुभ मन्त्र को लिखकर अथवा रखकर उन (इन्द्र) के कण्ठ में बाँध दिया, इसके बाद वे दुर्निरीक्ष हो गये। प्रजापति ने उन्हें आनुष्टुभी विद्या प्रदान की। तब तो देवों ने भी उनके स्वामित्व का अनुमोदन किया। वे सम्राट् हो गये। जो इसे जानता है, वह भी सम्राट् हो जाता है।

वे सोचने लगे, इस पृथिवी को मैं कैसे विजय करूँ? वे (इन्द्र) फिर प्रजापति के पास दौड़े। इससे प्रजापति ने इन्द्र को कूर्माकार, अष्टादिङ्नागों से अलंकृत भद्रासन प्रदान किया। तब उन्होंने पृथिवी की विजय प्राप्त की। फिर वे दोनों लोकों के स्वामी हो गये। जो ऐसा जानता है, वह भी दोनों लोकों का स्वामी होता है। वह पृथिवी को जीत लेता है॥ २॥

यो वा अप्रतिष्ठितं शिथिलं भ्रातृव्येभ्यः परमात्मानं मन्यते। स एतमासीनमधितिष्ठेत्। प्रतिष्ठितोऽशिथिलो भ्रातृव्येभ्यो वसीयान्भवति यश्चैवं वेद यश्चैवं वेद॥ ३॥

जो विद्वान् स्वयं को (आत्मतत्त्व से पृथक् बहिर्मुखी इन्द्रियरूप वाले) स्वपद में अप्रतिष्ठित, शिथिल (देहाभिमान के कारण) जीवात्मा के रूप में मानता है, वह परमात्मा को अद्वैत भाव से अनुभव करे। इसी भावना से वह स्वमहिमा में प्रतिष्ठित एवं अशिथिल (चैतन्य) होता है। इस अनुभव के साथ ही वह केवल ब्रह्म भाव की महिमा से वसीयान् (विदेह मुक्त) हो जाता है, जो इस प्रकार से जानता है (वह भी मुक्त हो जाता है)॥ ३॥

य इमां विद्यामधीते स सर्वान्वेदानधीते। स सर्वैः क्रतुभिर्यजते। स सर्वतीर्थेषु स्नाति। स महापातकोपपातकैः प्रमुच्यते। स ब्रह्मवर्चसं महदाप्नुयात्। आब्रह्मणः पूर्वानाकल्पांश्चोत्तरांश्चवंश्यान्पुनीते। नैनमपस्मारादयो रोगा अधिदेयुः। सयक्षाः सप्रेतपिशाचा अप्येनं स्पृष्ट्वा दृष्ट्वा श्रुत्वा वा पापिनः पुण्यलोकानवाप्नुयुः। चिन्तितमात्रादस्य सर्वेऽर्थाः सिद्ध्येयुः। पितरमिवैनं सर्वे मन्यन्ते। राजानश्चास्यादेशकारिणो भवन्ति। न चाचार्यव्यतिरिक्तं श्रेयांसं दृष्ट्वा नमस्कुर्यात्। न चास्मादुपावरोहेत्। जीवन्मुक्तश्च भवति। देहान्ते तमसः परं धाम प्राप्नुयात्। यत्र विराण् नृसिंहोऽवभासते तत्र खलूपासते। तत्स्वरूपध्यानपरा मुनय आकल्पान्ते तस्मिन्नेवात्मनि लीयन्ते। न च पुनरावर्तन्ते॥ १ ॥

जो इस विद्या (आनुष्टुभी) को पढ़ता है, वह सब वेदों को पढ़ लेता है। वह सारे यज्ञ कर लेता है। वह सब तीर्थों में स्नान कर लेता है। वह महापातकों और उपपातकों से मुक्त हो जाता है। वह महद् ब्रह्मवर्चस को प्राप्त करता है। वह कल्प की अपनी पूर्वपीढ़ियों और उत्तरपीढ़ियों का उद्धारक होता है। वह अपस्मार(मिरगी) आदि रोगों से आक्रान्त नहीं होता। यक्ष, प्रेत, पिशाच अथवा पापी इसको छूकर, देखकर, सुनकर ही पुण्यलोकों को प्राप्त कर लेते हैं। इसके चिन्तन-मात्र से सारे अर्थ सिद्ध हो जाते हैं। सब उसे अपने पितर जैसा मानते हैं। राजा-महाराजा इसके आदेश पालक होते हैं। आचार्य को छोड़कर वह किसी को भी नमस्कार न करे। इस (ज्ञानी) से ऊपर (ऊँचे) स्थान पर भी कोई नहीं बैठे। ऐसा ज्ञानी जीवन्मुक्त होता है। शरीरान्त होने पर वह तम से परे परमधाम को प्राप्त करता है। जहाँ विराट् नृसिंह भगवान् विद्यमान हैं, वहीं वह उनकी सेवा करता है। उस स्वरूप के ध्यानपरायण मुनिजन कल्पभर उसी परब्रह्म में लीन रहते हैं। वे पुनः लौटकर नहीं आते॥ १ ॥

न चेमां विद्यामश्रद्दधानाय ब्रूयान्नासूयावते नानूचानाय नाविष्णुभक्ताय नानृतिने नातपसे नादान्ताय नाशान्ताय नादीक्षिताय नाधर्मशीलाय न हिंसकाय नाब्रह्मचारिण इत्येषोपनिषत्॥ २ ॥

इस विद्या को कभी अश्रद्धालु के समक्ष नहीं कहना चाहिए तथा जो इसकी निन्दा करता हो, जो तर्क-वितर्क करता हो, जो विष्णुभक्त नहीं हो, जो असत्य भाषण करता हो, जो तपस्वी न हो, संयमी न हो, जो अशान्त हो, जो दीक्षासम्पन्न न हो, जो धर्मशील न हो, हिंसक हो, ब्रह्मचारी न हो, इन लोगों से भी इस विद्या को नहीं कहना चाहिए। यही यह उपनिषद् है॥ २ ॥

॥ हरिः ॐ तत्सत्॥

॥ ॐ आप्यायन्तु..............इति शान्तिः ॥

॥ इत्यव्यक्तोपनिषत्समाप्ता ॥

॥ आचमनोपनिषद् ॥

ॐ आचमनविधिं व्याख्यास्यामः। जङ्घे पाणिपादौ प्रक्षाल्य प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा बद्धशिखो यज्ञोपवीती। ब्राह्मणस्य दक्षिणे हस्ते पञ्च तीर्थानि भवन्ति। अङ्गुल्यग्रे देवतीर्थं कनिष्ठिकामूले आर्षिकं तीर्थं [अङ्गुष्ठतर्जन्योर्मध्ये] पैतृकं तीर्थं अङ्गुष्ठमूले ब्रह्मतीर्थं मध्ये अग्नितीर्थम्। न तिष्ठन्न हसन् न बुद्बुदैर्न च लोमैः गोकर्णाकृतिवत् कृत्वा माषमग्रजलं पिबेत्। तेन त्रिराचामेत्। प्रथमं यः पिबेदृग्वेदः प्रीणातु। द्वितीयं यः पिबेद्यजुर्वेदः प्रीणातु। तृतीयं यः पिबेत् सामवेदः प्रीणातु। लोमाधरोष्ठमथर्ववेदः प्रीणातु। मुखमग्नितृप्तं सर्वं प्रोक्षति। यः पादौ प्रोक्षति यश्चक्षुषी यश्चन्द्रमादित्यौ यन्नाभिं तेन पृथिवी यस्ततस्तेन विष्णुः। यच्छिरस्तेन रुद्रः। मूर्ध्नि शतकुबेरः। सर्वदेवत्यास्ते प्रीणन्तु। य एवं वेद। इत्युपनिषत्॥

अब आचमन की विधि-व्यवस्था, उसके प्रकार आदि बताएँगे। जंघाओं (पिण्डलियों) और हाथ-पैरों को धोकर पूर्व या उत्तर को मुख करके शिखाबन्धन करे, यज्ञोपवीत धारण करे। ब्राह्मण के दाहिने हाथ में पाँच तीर्थ होते हैं। अँगुलियों के अग्रभाग में देवतीर्थ, कनिष्ठिका के मूल में आर्षिकतीर्थ, अंगुष्ठ और तर्जनी के मध्य में पैतृकतीर्थ, अंगुष्ठमूल में ब्रह्मतीर्थ तथा मध्य में अग्नितीर्थ होता है। न खड़ा रहकर, न हँसते हुए, न बुदबुदाते हुए, न रोमाञ्चित होते हुए; गौ के कान की सी हाथ की आकृति बनाकर हथेली भर जल का पान करे। इससे तीन बार आचमन करे। पहली बार जो पिये, उससे ऋग्वेद प्रसन्न हो। दूसरी बार पीने से यजुर्वेद प्रसन्न हो। तीसरी बार पीने से सामवेद प्रसन्न हो। (आचमनोपरान्त) लोमसहित अधरोष्ठ (मूँछों सहित नीचे और ऊपर के ओष्ठ) के स्पर्श से अथर्ववेद प्रसन्न हो (शास्त्रीय परम्परा में आचमन के बाद अंगुष्ठ के मूल भाग से होठों को पोंछने का विधान है)। अग्नितृप्त-मुख सबका प्रोक्षण करता है। जो पैरों का प्रोक्षण करता (धोता) है, (वह मानो) उससे (पवित्र जल से) पृथिवी का प्रोक्षण करता है; जो चक्षुओं का प्रोक्षण करता है, (वह मानो) उसमें चन्द्रमा और सूर्य का प्रोक्षण करता है; जो नाभि का प्रोक्षण करता है, (वह मानो) उससे विष्णु का प्रोक्षण करता है; जो शिर का प्रोक्षण करता है, (वह मानो) उससे रुद्र का प्रोक्षण करता है; जो मूर्धा (मस्तक) का प्रोक्षण करता है, (वह मानो) उससे शतकुबेर का प्रोक्षण करता है। इस प्रकार समस्त देवता तेरे लिए प्रसन्न हों, कृपालु हों। जो ऐसा जानता है। यही रहस्य (उपनिषद्) है।

॥ इत्याचमनोपनिषत् समाप्ता ॥

।। आथर्वणद्वितीयोपनिषद् ।।

यहाँ शक्ति की उन अनेकविध धाराओं को नमन किया जा रहा है, जो शक्ति धाराएँ जीवन और जगत् को नियन्त्रित-व्यवस्थित बनाये हुए हैं। सभी शक्तियाँ माँ भगवती शिवा से उसी तरह निःसृत हैं, जैसे सूर्य से उसकी किरणें प्रकट होती हैं।

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती अणिमासिद्ध्यादिदशकं तस्यै वै नमो नमः ॥ १ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती अणिमा सिद्धि इत्यादि दस रूपों में विद्यमान हैं, उनको नमस्कार है ॥ १ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती अणिमासिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः ॥ २ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती अणिमा सिद्धि हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ २ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती लघिमासिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः ॥ ३ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती लघिमा सिद्धि हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ३ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती महिमासिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः ॥ ४ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती महिमा सिद्धि हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ४ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ईशित्वसिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः ॥ ५ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती ईशित्व सिद्धि हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ५ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती वशित्वसिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः ॥ ६ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती वशित्व सिद्धि हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ६ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती प्राकाम्यसिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः ॥ ७ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती प्राकाम्य सिद्धि हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ७ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती भुक्तिसिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः ॥ ८ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती भुक्ति सिद्धि हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ८ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती इच्छासिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः ॥ ९ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती इच्छा सिद्धि हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ९ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती प्राप्तिसिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः ॥ १० ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती प्राप्ति सिद्धि हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ १० ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती प्रकामसिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः ॥ ११ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती प्रकाम सिद्धि हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ११ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ब्राह्मयष्टकं तस्यै वै नमो नमः ॥ १२ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती ब्राह्मी इत्यादि आठ शक्तियों वाली हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ १२ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती आं ब्राह्मीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः ॥ १३ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती आं ब्राह्मी शक्ति हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ १३ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ईं माहेश्वरीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः ॥ १४॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती ईं माहेश्वरी शक्ति हैं, उन्हें नमस्कार है॥ १४॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ऊं कौमारीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः॥ १५॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती ऊं कौमारी शक्ति हैं, उन्हें नमस्कार है॥ १५॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ॠं वैष्णवीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः॥ १६॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती ॠं वैष्णवी ब्राह्मी शक्ति हैं, उन्हें नमस्कार है॥ १६॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ॡं वाराहीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः॥ १७॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती ॡं वाराही शक्ति हैं, उन्हें नमस्कार है॥ १७॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ऐं इन्द्राणीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः॥ १८॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती ऐं इन्द्राणी शक्ति हैं, उन्हें नमस्कार है॥ १८॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती औं चामुण्डाशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः॥ १९॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती औं चामुण्डा शक्ति हैं, उन्हें नमस्कार है॥ १९॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती महालक्ष्मीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः॥ २०॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती महालक्ष्मी शक्ति हैं, उन्हें नमस्कार है॥ २०॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती मुद्रादशकं तस्यै वै नमो नमः॥ २१॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती दस- मुद्रारूपा हैं, उन्हें नमस्कार है॥ २१॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती द्रां सर्वसंक्षोभिणीमुद्रा तस्यै वै नमो नमः॥ २२॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती द्रां सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा हैं, उन्हें नमस्कार है॥ २२॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती द्रीं द्राविणीमुद्रा तस्यै वै नमो नमः॥ २३॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती द्रीं द्राविणी मुद्रा हैं, उन्हें नमस्कार है॥ २३॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती क्लीं सर्वाकर्षिणीमुद्रा तस्यै वै नमो नमः॥ २४॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती क्लीं सर्वाकर्षिणी (सभी को आकर्षित करने वाली) मुद्रा हैं, उन्हें नमस्कार है॥ २४॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ब्लूं सर्ववशङ्करीमुद्रा तस्यै वै नमो नमः॥ २५॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती ब्लूं सर्ववशङ्करी मुद्रा हैं, उन्हें नमस्कार है॥ २५॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सः उन्मादिनीमुद्रा तस्यै वै नमो नमः॥ २६॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सः उन्मादिनी मुद्रा हैं, उन्हें नमस्कार है॥ २६॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती क्रों महाङ्कुशमुद्रा तस्यै वै नमो नमः॥ २७॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती क्रों महाङ्कुश मुद्रा हैं, उन्हें नमस्कार है॥ २७॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ह्स्ख्फ्रें खेचरीमुद्रा तस्यै वै नमो नमः॥ २८॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती ह् स् ख् फ्रें खेचरी मुद्रा हैं, उन्हें नमस्कार है॥ २८॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती हसौं बीजमुद्रा तस्यै वै नमो नमः॥ २९॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती हसौं बीज मुद्रा हैं, उन्हें नमस्कार है॥ २९॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ऐं सर्वयोनि मुद्रा तस्यै वै नमो नमः ॥ ३० ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती ऐं सर्वयोनि मुद्रा हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ३० ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती हसौं त्रिखण्डमुद्रा तस्यै वै नमो नमः ॥ ३१ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती हसौं त्रिखण्ड मुद्रा हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ३१ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती प्रथमचक्रेश्वरी त्रिपुरा देवी तस्यै वै नमो नमः ॥ ३२ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती प्रथम चक्रेश्वरी त्रिपुरादेवी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ३२ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती अणिमादि सिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः ॥ ३३ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती अणिमा आदि सिद्धि हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ३३ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वसंक्षोभिणीमुद्रा तस्यै वै नमो नमः ॥ ३४ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ३४ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती कामाकर्षिण्यादिषोडशकं तस्यै वै नमो नमः ॥ ३५ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती कामाकर्षिणी आदि सोलह रूपधारी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ३५ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती कामाकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः ॥ ३६ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती कामाकर्षिणी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ३६ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती बुद्ध्याकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः ॥ ३७ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती बुद्ध्याकर्षिणी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ३७ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती अहङ्काराकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः ॥ ३८ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती अहङ्काराकर्षिणी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ३८ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती शब्दाकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः ॥ ३९ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती शब्दाकर्षिणी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ३९ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती स्पर्शाकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः ॥ ४० ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती स्पर्शाकर्षिणी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ४० ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती रूपाकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः ॥ ४१ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती रूपाकर्षिणी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ४१ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती रसाकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः ॥ ४२ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती रसाकर्षिणी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ४२ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती गन्धाकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः ॥ ४३ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती गन्धाकर्षिणी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ४३ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती चित्ताकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः ॥ ४४ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती चित्ताकर्षिणी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ४४ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती धैर्याकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः ॥ ४५ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती धैर्याकर्षिणी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ४५ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती स्मृत्याकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः ॥ ४६ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती स्मृत्याकर्षिणी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ४६ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती नामाकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः ॥ ४७ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती नामाकर्षिणी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ४७ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती बीजाकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः ॥ ४८ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती बीजाकर्षिणी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ४८ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती आत्माकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः ॥ ४९ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती आत्माकर्षिणी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ४९ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती अमृताकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः ॥ ५० ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती अमृताकर्षिणी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ५० ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती शरीराकर्षिणी तस्यै वै नमो नमः ॥ ५१ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती शरीराकर्षिणी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ५१ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती द्वितीयचक्रेश्वरी तस्यै वै नमो नमः ॥ ५२ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती द्वितीय चक्रेश्वरी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ५२ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ऐं क्लीं सौः त्रिपुरेश्वरी तस्यै वै नमो नमः ॥ ५३ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती ऐं, क्लीं, सौः त्रिपुरेश्वरी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ५३ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती द्रीं सर्वविद्राविणीमुद्रा तस्यै वै नमो नमः ॥ ५४ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती द्रीं सर्वविद्राविणीमुद्रा हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ५४ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती अनङ्गकुसुमाष्टकं तस्यै वै नमो नमः ॥ ५५ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती अनङ्गकुसुमाष्टकरूप हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ५५ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती कं खं गं घं ङंअनङ्गकुसुमा तस्यै वै नमो नमः ॥ ५६ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती कं, खं, गं, घं, ङं, अनङ्गकुसुमा हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ५६ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती चं छं जं झं ञं अनङ्ग-मेखला तस्यै वै नमो नमः ॥ ५७ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती चं छं जं झं ञं अनङ्गमेखला हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ५७ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती टं ठं डं ढं णं अनङ्गमदना तस्यै वै नमो नमः ॥ ५८ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती टं, ठं, डं, ढं, णं अनङ्गमदना हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ५८ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती तं थं दं धं नं अनङ्गमदनातुरा तस्यै वै नमो नमः ॥ ५९ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती तं, थं, दं, धं, नं अनङ्गमदनातुरा हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ५९ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती पं फं बं भं मं अनङ्गरेखा तस्यै वै नमो नमः ॥ ६० ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती पं, फं, बं, भं, मं अनङ्गरेखा हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ६० ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती यं रं लं वं अनङ्गवेगा तस्यै वै नमो नमः ॥ ६१ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती यं, रं, लं, वं अनङ्गवेगा हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ६१ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती शं षं सं हं अनङ्गाङ्कुशा तस्यै वै नमो नमः ॥ ६२ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती शं, षं, सं, हं अनङ्गाङ्कुशा हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ६२ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती लं क्षं अनङ्गमालिनी तस्यै वै नमो नमः ॥ ६३ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती लं, क्षं अनङ्गमालिनी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ६३ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ह्रीं क्लीं सौः तृतीयचक्रेश्वरी त्रिपुरासुन्दरी देवी तस्यै वै नमो नमः ॥ ६४ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती ह्रीं, क्लीं, सौः तृतीयचक्रेश्वरी त्रिपुरसुन्दरी देवी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ६४ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती क्लीं सर्वाकर्षिणीमुद्रा तस्यै वै नमो नमः ॥ ६५ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती क्लीं सर्वाकर्षिणी मुद्रा हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ६५ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वसंक्षोभिण्यादिचतुर्दशकं तस्यै वै नमो नमः ॥ ६६ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वसंक्षोभिणी आदि चौदह रूपों वाली हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ६६ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वसंक्षोभिणीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः ॥ ६७ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वसंक्षोभिणी शक्ति हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ६७ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वविद्राविणीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः ॥ ६८ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वविद्राविणी शक्ति हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ६८ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वाकर्षिणीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः ॥ ६९ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वाकर्षिणी शक्ति हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ६९ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वाह्लादिनीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः ॥ ७० ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वाह्लादिनी शक्ति हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ७० ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वसंमोहिनीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः ॥ ७१ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वसम्मोहिनी शक्ति हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ७१ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वस्तंभिनीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः ॥ ७२ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वस्तंभिनी शक्ति हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ७२ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वजृंभिणीशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः ॥ ७३ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वजृम्भिणी [सबको जँभाई (जम्हाई) दिलाने वाली] शक्ति हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ७३ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वरञ्जनी तस्यै वै नमो नमः ॥ ७४ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वरञ्जनी शक्ति हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ७४ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्ववशङ्करी तस्यै वै नमो नमः ॥ ७५ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्ववशङ्करी शक्ति हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ७५ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वोन्मादिनी तस्यै वै नमो नमः ॥ ७६ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वोन्मादिनी शक्ति हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ७६ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वार्थसाधकी तस्यै वै नमो नमः ॥ ७७ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वार्थसाधकी शक्ति हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ७७ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वसम्पत्तिपूरणी तस्यै वै नमो नमः ॥ ७८ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वसम्पत्तिपूरणी शक्ति हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ७८ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वमन्त्रमयी तस्यै वै नमो नमः ॥ ७९ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वमन्त्रमयी शक्ति हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ७९ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करी देवी तस्यै वै नमो नमः ॥ ८० ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करी शक्ति हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ८० ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ऐं क्लीं सौः त्रिपुरवासिनी देवी तस्यै वै नमो नमः ॥ ८१ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती ऐं, क्लीं, सौः त्रिपुरवासिनी देवी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ८१ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ईशित्वसिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः ॥ ८२ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती ईशित्व सिद्धि हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ८२ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ब्लूं सर्ववशङ्करीमुद्रा तस्यै वै नमो नमः ॥ ८३ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्ववशङ्करी मुद्रा हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ८३ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वसिद्धिप्रदादिदशकं तस्यै वै नमो नमः ॥ ८४ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वसिद्धिप्रदा आदि दस रूपधारी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ८४ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वसिद्धिप्रदा तस्यै वै नमो नमः ॥ ८५ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वसिद्धिप्रदा शक्ति हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ८५ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वसम्पत्प्रदा तस्यै वै नमो नमः ॥ ८६ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वसम्पत्प्रदा शक्ति हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ८६ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वप्रियङ्करी तस्यै वै नमो नमः ॥ ८७ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वप्रियङ्करीरूप हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ८७ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वमङ्गलकारिणी तस्यै वै नमो नमः ॥ ८८ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वमङ्गलकारिणी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ८८ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वकामप्रदा तस्यै वै नमो नमः ॥ ८९ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वकामप्रदा हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ८९ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वदुःखविमोचनी तस्यै वै नमो नमः ॥ ९० ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वदुःखविमोचनी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ९० ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वमृत्युप्रशमनी तस्यै वै नमो नमः ॥ ९१ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वमृत्युप्रशमनी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ९१ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वविघ्ननिवारणी तस्यै वै नमो नमः ॥ ९२ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वविघ्ननिवारणी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ९२ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वाङ्गसुन्दरी तस्यै वै नमो नमः ॥ ९३ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वाङ्गसुन्दरी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ९३ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वसौभाग्यदायिनी तस्यै वै नमो नमः ॥ ९४ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वसौभाग्यदायिनी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ९४ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ह्सैं ह्स्क्लीं ह्सौः पञ्चमचक्रेश्वरी त्रिपुराश्रीस्तस्यै वै नमो नमः ॥९५ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती ह्सैं ह्स्क्लीं ह्सौः पञ्चमचक्रेश्वरी त्रिपुराश्री हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ९५ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती वशित्वसिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः ॥ ९६ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती वशित्व सिद्धि हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ९६ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती उन्मादिनीमुद्रा तस्यै वै नमो नमः ॥ ९७ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती उन्मादिनी मुद्रा हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ९७ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वज्ञादिदशकं तस्यै वै नमो नमः ॥ ९८ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वज्ञ आदि दशरूपवाली हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ९८ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वज्ञशक्तिस्तस्यै वै नमो नमः ॥ ९९ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वज्ञशक्ति हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ९९ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वशक्तिदेवी तस्यै वै नमो नमः ॥ १०० ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वशक्ति देवी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ १०० ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वैश्वर्यप्रदायिनी तस्यै वै नमो नमः ॥ १०१ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वैश्वर्यप्रदायिनी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ १०१ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वज्ञानमयी तस्यै वै नमो नमः ॥ १०२ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वज्ञानमयी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ १०२ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वव्याधिविनाशिनी तस्यै वै नमो नमः ॥ १०३ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वव्याधिविनाशिनी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ १०३ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वाधारस्वरूपिणी तस्यै वै नमो नमः ॥ १०४ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वाधारस्वरूपिणी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ १०४ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वपापहरा तस्यै वै नमो नमः ॥ १०५ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वपापहरा हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ १०५ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वानन्दमयी तस्यै वै नमो नमः ॥ १०६ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वानन्दमयी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ १०६ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वरक्षास्वरूपिणी तस्यै वै नमो नमः ॥ १०७ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वरक्षास्वरूपिणी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ १०७ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वेप्सितफलप्रदा तस्यै वै नमो नमः ॥ १०८ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वेप्सितफलप्रदा (सभी इच्छित फल प्रदान करने वाली) हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ १०८ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ह्रीं क्लीं ब्लें त्रिपुरामालिनी नित्या तस्यै वै नमो नमः ॥ १०९ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती ह्रीं, क्लीं, ब्लें त्रिपुरामालिनी नित्या हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ १०९ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती प्राकाम्यसिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः ॥ ११० ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती प्राकाम्य सिद्धि हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ११० ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती क्रों महाङ्कुशमुद्रा तस्यै वै नमो नमः ॥ १११ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती क्रों महाङ्कुश मुद्रा हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ १११ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती वशिन्याद्यष्टकं तस्यै वै नमो नमः ॥ ११२ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती वशिनी आदि अष्टरूप हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ११२ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः वशिनी वाग्वादिनी देवता तस्यै वै नमो नमः ॥ ११३ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती अं, आं, इं, ईं, उं, ऊं, ऋं, ॠं, लृं, लॄं, एं, ऐं, ओं, औं, अं, अः वशिनी वाग्वादिनी देवता (देवी) हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ११३ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती कं खं गं घं ङं कलह्रीं कामेश्वरी वाग्देवता तस्यै वै नमो नमः ॥११४ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती कं, खं, गं, घं, ङं कलह्रीं कामेश्वरी वाग्देवता हैं, उन्हें नमस्कार है ॥११४ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती चं छं जं झं ञं क्लीं मोदिनी वाग्देवता तस्यै वै नमो नमः ॥११५ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती चं, छं, जं, झं, ञं क्लीं मोदिनी वाग्देवता हैं,उन्हें नमस्कार है ॥११५ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती टं ठं डं ढं णं ह्लूं विमला वाग्देवता तस्यै वै नमो नमः ॥ ११६ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती टं, ठं, डं, ढं, णं ह्लूं विमला वाग्देवता हैं, उन्हें नमस्कार है ॥११६ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती तं थं दं धं नं अरुणा वाग्देवता तस्यै वै नमो नमः ॥ ११७ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती तं थं दं धं नं अरुणा वाग्देवता हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ११७ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती पं फं बं भं मं हसलव्यूं जयिनी वाग्देवता तस्यै वै नमो नमः ॥११८ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती पं, फं, बं, भं, मं हसलव्यूं जयिनी वाग्देवता हैं, उन्हें नमस्कार है ॥११८ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती यं रं लं वं ह्स्म्यों सर्वेश्वरी तस्यै वै नमो नमः ॥ ११९ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती यं, रं, लं, वं ह्स्म्यों सर्वेश्वरी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ ११९ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती शं षं सं हं क्ष्वीं कौलिनी तस्यै वै नमो नमः ॥ १२० ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती शं,षं, सं, हं, क्ष्वीं कौलिनी रूप में हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ १२० ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ह्रीं श्रीं सौः सप्तमचक्रेश्वरी तस्यै वै नमो नमः ॥ १२१ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती ह्रीं, श्रीं, सौः सप्तमचक्रेश्वरी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ १२१ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती त्रिपुरा सिद्धा नित्या तस्यै वै नमो नमः ॥ १२२ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती त्रिपुरा, सिद्धा और नित्या हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ १२२ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती भुक्तिसिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः॥ १२३॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती भुक्तिसिद्धि हैं, उन्हें नमस्कार है॥ १२३॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ह्स्ख्फ्रें खेचरी तस्यै वै नमो नमः॥ १२४॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती ह्स्ख्फ्रें खेचरी हैं, उन्हें नमस्कार है॥ १२४॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती यां रां लां वां शां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः बाणस्तस्यै वै नमो नमः॥१२५॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती यां, रां, लां, वां, शां, द्रां, द्रीं, क्लीं, ब्लूं, सः बाण हैं, उन्हें नमस्कार है॥ १२५॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती धं थं सं मोहनकोदण्डरूपिणी तस्यै वै नमो नमः॥ १२६॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती धं, थं, सं मोहनकोदण्डरूपिणी हैं, उन्हें नमस्कार है॥ १२६॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती आं ह्रीं पाशरूपिणी तस्यै वै नमो नमः॥ १२७॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती आं, ह्रीं पाशरूपिणी हैं, उन्हें नमस्कार है॥ १२७॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती क्रों अङ्कुशरूपिणी तस्यै वै नमो नमः॥ १२८॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती क्रों अङ्कुशरूपिणी हैं, उन्हें नमस्कार है॥ १२८॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ह्सैं ह्स्लीं ह्सौः त्रिपुरजननी तस्यै वै नमो नमः॥ १२९॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती ह्सैं, ह्स्लीं, ह्सौः त्रिपुरजननी हैं, उन्हें नमस्कार है॥ १२९॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती इच्छासिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः॥ १३०॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती इच्छासिद्धि हैं, उन्हें नमस्कार है॥ १३०॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ह्सौं बीजमुद्रा तस्यै वै नमो नमः॥ १३१॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती ह्सौं बीजमुद्रा हैं, उन्हें नमस्कार है॥ १३१॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती कामेश्वर्यादिदेवतात्रयं तस्यै वै नमो नमः॥ १३२॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती कामेश्वरी आदि तीन देवतारूपधारिणी हैं, उन्हें नमस्कार है॥ १३२॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती वाग्भवकूटे कामेश्वरी तस्यै वै नमो नमः॥ १३३॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती वाग्भव कूट में स्थित कामेश्वरी हैं, उन्हें नमस्कार है॥ १३३॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती कामराजकूटे वज्रेश्वरी तस्यै वै नमो नमः॥ १३४॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती कामराज कूट में स्थित वज्रेश्वरी हैं, उन्हें नमस्कार है॥ १३४॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती शक्तिकूटे भगमालिनी तस्यै वै नमो नमः॥ १३५॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती शक्तिकूट में स्थित भगमालिनी हैं, उन्हें नमस्कार है॥ १३५॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती हसकलरडैं हसकलरडां हसकलरडैं तस्यै वै नमो नमः॥ १३६॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती हसकलरडैं, हसकलरडां, हसकलरडैं रूप हैं, उन्हें नमस्कार है॥१३६॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती प्राप्तिसिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः॥ १३७॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती प्राप्तिसिद्धि हैं, उन्हें नमस्कार है॥ १३७॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ऐं योनिमुद्रा तस्यै वै नमो नमः ॥ १३८ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती ऐं योनिमुद्रारूप हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ १३८ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ओंकारपीठदेवता तस्यै वै नमो नमः ॥ १३९ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती ओंकारपीठ देवता (देवी) हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ १३९ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वात्मकेन सर्वेश्वरी देवी तस्यै वै नमो नमः ॥ १४० ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वात्मकरूप से सर्वेश्वरी देवी हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ १४० ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वकामसिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः ॥ १४१ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वकामसिद्धिरूप हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ १४१ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती त्रिपुरसुन्दरी त्रिपुरवासिनी त्रिपुराश्रीस्त्रिपुरमालिनी त्रिपुरासिद्धिस्त्रिपुरजननी त्रिपुरभैरवी ताभ्यो वै नमो नमः ॥ १४२ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती त्रिपुरसुन्दरी, त्रिपुरवासिनी, त्रिपुराश्री, त्रिपुरमालिनी, त्रिपुरासिद्धि, त्रिपुरजननी, त्रिपुरभैरवी रूपों में हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ १४२ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती सर्वकामसिद्धिस्तस्यै वै नमो नमः ॥ १४३ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती सर्वकामसिद्धिरूप हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ १४३ ॥

ह्रीं श्रीं या वै शिवा भगवती ह्सौं त्रिखण्डमुद्रा तस्यै वै नमो नमः ॥ १४४ ॥

जो ह्रीं श्रीं अथवा शिवा भगवती ह्सौं त्रिखण्डमुद्रा रूप में हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ १४४ ॥

ब्रह्मब्रह्मविदित्येतैर्मन्त्रैर्भगवतीं यजेत्। इत्याह भगवान्। ततो देवी स्वात्मानं दर्शयति। तस्माद्य एतैर्मन्त्रैर्यजति स ब्रह्म पश्यति। स सर्वं पश्यति। सोऽमृतत्वं च गच्छति। य एवं वेद। इति महोपनिषत् ॥१४५ ॥

यह भगवान् ने कहा है कि ब्रह्मरूप जानकर इन मन्त्रों से भगवती का यजन करे। तब देवी अपना दर्शन देती हैं। इस प्रकार जो इन मन्त्रों से यजन-पूजन करता है, वह ब्रह्म का दर्शन (अनुभव) करता है। वह सब कुछ देखता है। वह अमरत्व प्राप्त करता है, जो ऐसा जानता है। यही महान् रहस्य (उपनिषद्) है ॥ १४५ ॥

॥ इत्याथर्वणद्वितीयोपनिषत् समाप्ता ॥

॥ आर्षेयोपनिषद् ॥

ॐ ऋषयो वै ब्रह्मोद्यमाह्वयित्वा ऊचुः परस्परमिवानुब्रुवाणाः। तेषां विश्वामित्रो विजितीयमिव मन्यमान उवाच। यदेतदन्तरे द्यावापृथिवी अनश्नुवदिव सर्वमश्नवद्यदिदमाकाश-मिवेतश्चेतश्च स्तनयन्ति विद्योतमाना इवावस्फूर्जयमाना इव तद्ब्रह्मेति। तस्योपव्याख्यानम्। यदिदमग्निभिर्ज्वलयन्ति पोप्लूययन्त्यद्भिरभिषीवयन्ति वद्ध्रीभिरभिग्रथ्नंति वरत्राभिरभिघ्नं-त्ययोघनैर्विध्यंति सूचीभिः निखानयंति शंकुभिरभितृन्दन्ति पड्वीशिकाभिरभिलिम्पन्ति मृत्स्नया तक्ष्णुवंति वासीभिः कृष्णंति फलिभिर्नैव शक्नुवत इति नास्येशीमहि नैनमतीयीमहि॥ १॥

एक बार ऋषियों ने ब्रह्म चर्चा का आह्वान किया। तब वे परस्पर अपना-अपना पक्ष रखते हुए कहने लगे। सबसे पूर्व विश्वामित्र ने अपनी बात को सबसे श्रेष्ठ मानते हुए कहा— कि द्यावापृथिवी को छोड़ शेष सब को व्याप्त करता हुआ यह आकाश तथा इसमें इधर-उधर गरजती चमकती हुई, स्फुरण करती सारी शक्तियाँ व तेज ही ब्रह्म है। उस (ब्रह्म) का व्याख्यान करते हैं। ये जो अग्नियों से जलाये जाते हैं। जलों से गलाये जाते हैं, दबाने से निचुड़ जाते हैं, रस्सियों से बँध जाते हैं, लोहे के घनों से टूट जाते हैं, सुइयों से बिंध जाते हैं, कीलों से खुद जाते हैं, चाबुकों से पीट दिये जाते हैं, मिट्टी से लीप दिये जाते हैं तथा पटासी (ठोंककर लकड़ी छीलने वाला औजार) से छील दिये जाते हैं) किन्तु ब्रह्म इन सबसे विकृत नहीं होता। (ये सभी नश्वर तत्त्व हैं)। न इसका कोई ईश्वर (स्वामी) है, न इसका कोई अतिक्रमण कर सकता है॥ १॥

तदु ह जमदग्निर्नानुमेने आर्तमिव वा एष तन्मेने यदिदमन्तरेणैनदुपयंति पर्यास इवैष दिवस्पृथिव्योरिति। स होवाच अन्तरिक्षं वा एतद्यदिदमित्थेत्थोपव्याख्ये इति। महिमानं त्वमुष्येह पश्यमीति यदिदमस्मिन्नन्वायत्तमिति। स यदिदमेतस्मिन्नन्वायत्तं वेदाथ तथोपास्तेऽन्वायत्तो हैवास्मिन् भवति। तदेतदविद्वानेवास्मिन्नन्वायत्तमुपास्ते वीवपद्यत् आर्तिमृच्छेत्। तस्मादेवमेवोपासीत॥ २॥

किन्तु इसे जमदग्नि ने स्वीकार नहीं किया। उन्होंने इसे असत्-तुच्छ माना। कहा—यह जो अन्तर से प्राप्त है, वह तो द्यौ-पृथिवी से सम्बन्ध रखने जैसा ही है। वे बोले— कि यह जो अन्तरिक्ष है, यही इत्थेत्थ है अर्थात् नेति-नेति के रूप में इसका व्याख्यान करते हैं। इसकी महिमा प्रत्यक्ष है; क्योंकि जो कुछ दृश्यमान है, वह सब इसके घेरे में है। जो इस दृश्यमान को इससे व्याप्त जानकर उपासना करता है, वह भी इसमें व्याप्त हो जाता है। जो अविद्वान् इससे व्याप्त को न समझकर उपासना करता है, वह विपत्ति में पड़ जाता है तथा अपूर्णता को प्राप्त होता है। अतः ऐसा मानकर ही उपासना करनी चाहिए॥ २॥

तमितरः पप्रच्छ। कतमत् त्वमनार्तं मन्यस इति। तं होवाच। यदिदमिति द्यावापृथिव्योरनारंभमिव नोपयन्ति नाभिचक्षते नाश्नुवन्ति। तस्योपव्याख्यानम्। यदिदमितश्चेतश्चाण्डकोशा उदयन्ति

नापद्यन्त इव न विस्रंसन्त इव न स्खलंतीव न पर्यावर्तन्त इव। न ह वा एनत्केचिदुपधावन्तो विन्द्न्ति नाभिपश्यन्ति। यदिदमेक इदप एवाहुस्तम एके ज्योतिरेकेऽवकाशमेके परमं व्योमैक आत्मानमेक इति॥ ३॥

दूसरे ने प्रश्न किया- फिर आपका अनार्त कौन है? अर्थात् आप किसे पूर्ण मानते हैं, तब वे बोले कि यह जो द्यावा-पृथिवी के आरम्भ से भी पूर्व विद्यमान है, जहाँ तक पहुँचा नहीं जा सकता, जिसे देखा नहीं जा सकता, जिसे प्राप्त नहां किया जा सकता, ऐसे उस (परम तत्त्व) का व्याख्यान करता हूँ। ये जो दृश्यमान इधर-उधर घूमते अण्डकोश (ब्रह्माण्ड) हैं, वे भी उदय होते हैं; तथापि न आपस में टकराते हैं, न गिरते हैं, न लौटते हैं, न कोई इस (ब्रह्म) को भाग कर पकड़ पाता है, न जान पाता है, न देख ही पाता है। वह ब्रह्म एक ही है, उसे कुछ लोग तम कहते हैं, तो कुछ ज्योति, कुछ अवकाश, कोई परमव्योम तथा कोई आत्मा नाम देकर इंगित करते हैं॥ ३॥

तदु ह भरद्वाजो नानुमेने। यदिह सर्वे वेत्थेत्थेति ह्यूदिरे नास्य तद्रूपं पर्याप्तमिति। स होवाच। आर्तमिवेदं ते विज्ञानमपि स्विदेनद्रोदस्योरेव पर्यायेणोपवन्वीमहि यदिदमित्थेत्थोपव्या-ख्यास्याम इति। महिमानं त्वेवास्योपासे। यदिदमत्रान्वायत्तमिति। स यदिदमत्रान्वायत्तं वेदाथ तथैवोपास्तेऽत्रैवान्वायत्तो भवति। स य इहान्वायत्तमिदमविद्वानेवैतदुपास्ते पापीयान् भवत्यार्तिमार्च्छत्यवम्रियते यदेवमेतदन्वायत्तमुपास्ते सर्वमायुरेति वसीयान् भवति। स य एतदेनमुपास्ते॥ ४॥

इसे भरद्वाज ने नहीं माना। यह जिसे सबने नेति-नेति कहा है, उसका वह रूप पर्याप्त नहीं है। यह अपूर्ण ही है। वे विज्ञान को भी सम्भवतः द्यावा-पृथिवी के पर्याय रूप में ही मानते हैं। इस नेति-नेति पदवाच्य की हम व्याख्या करते हैं। इसकी महिमा की उपासना करते हैं, जो यह दृश्यमान है, वह यहाँ (इस 'नेति' पदवाच्य में) संलग्न है। जो इस दृश्यमान में उसे संलग्न न जानकर इसकी उपासना करता है, वह पापी है, अपूर्ण है, मृतक जैसा है। जो इसमें (नेति पदवाच्य में) इस दृश्यमान को संलग्न जानकर उपासना करता है, वह पूर्ण आयु प्राप्त करता है। सुख से रहता है। जो इस प्रकार ब्रह्म की उपासना करता है, वही उपासक है ॥ ४॥

तमितरः पप्रच्छ। कतमत् त्वमनार्तं मन्यस इति। स होवाच। यदेतस्मिन् मण्डलेऽर्चिर्दीप्यते बंभ्रम्यमाणमिव चाकश्यमानमिव जाज्वल्यमानमिव देदीप्यमानमिव लेलिहानं तदेव मे ब्रह्म। तस्योपव्याख्यानं यदिदमद्धैव पराः परावतोऽभिपद्यंते संपन्नमेवैतत् संमितमेव यथोपयातमात्मैवाभिचक्षत इति। य एतदभिपद्येव गृह्णीयादथो विस्फुरन्तीव धावन्तीवोत्प्लवंतीवोपश्लिष्यंतीव न हैवाभिपद्यन्ते। तदिदमन्तिके दवीयो नेदीय इव दूरतो न वा अस्य महिमानं कश्चिदेतीति॥ ५॥

दूसरे किसी ऋषि ने प्रश्न किया- आप किसे अनार्त (पूर्ण) मानते हैं? वे बोले- कि इस मण्डल में जो यह अग्नि दीप्त है, जो घूमती सी, चकाचौंध करती सी, प्रज्वलित होती सी, देदीप्यमान होती सी, लपलपाती सी, अरूप भी दृश्यमान (सूक्ष्मरूप से) है, वही मेरा ब्रह्म है। इसका व्याख्यान इस प्रकार है— यह जो स्थूल है, वह उस परम में संलग्न है, इसके

(स्थूल के) उस ओर नहीं; प्रत्युत स्थूल में ही रमा हुआ (ब्रह्म) सूक्ष्मदर्शियों को प्राप्त होता है। वह स्थूल से सम्पन्न है, सम्मित है, यह आत्मा पदवाच्य है। जो इसको प्राप्त कर लेता है, उसे जो विस्फुरण करती, भागती, उछलती, समेटती, किरण रूपों में देखता व मानता है, वह उस आत्मा को प्राप्त नहीं कर सकता। वह ब्रह्म (आत्मा) पास या दूर अथवा दूर या पास नहीं है। न कोई इसकी महिमा को प्राप्त कर सकता है॥ ५॥

तदु ह न मेने गौतमो यदिदमार्तमिव स्तिमितमिव पर्यायेण पश्यन्तीवेमं मोघं संविदाना इति। य इमे पुण्ड्राः सुह्माः कुलुम्भा दरदा बर्बरा इति। न ह वा असंविदाना एव द्रागिवाभि तत्पद्यन्त इति। महिमानं त्वेवास्योपासे। य एतदस्मिन्नन्तरे हिरणमयः पुरुषो हिरण्यवर्णो हिरण्यश्मश्रुरानखाग्रेभ्यो दीप्यमान इव। स य एवमेनमुपास्तेऽतीव सर्वभूतानि तिष्ठंति सर्वमायुरेति वसीयान् भवति। न ह वा एष परमतीवोदेति। यस्त्वेनं परमतीवोद्यन्तं पश्यन्नुपास्ते पापीयान् भवति वीवपद्यत आर्तिमृच्छति। यस्त्वेनं परमनूद्यन्तं वेदाथ तथोपास्ते परं ज्योतिरुपसंपद्यते सर्वमायुरेति वसीयान् भवति। स य एवमेनमुपास्ते॥ ६॥

इसे गौतम ने नहीं माना, बोले- इस व्याख्या से भी यह ब्रह्म आर्तम् (अपूर्ण) सा, निश्चेष्ट सा पर्याय से देखा हुआ सा, झूठ-मूठ ही प्रत्यक्ष किया सा लगता है। जो ये पुण्ड्र सुह्म, कुलुम्भ, दरद, बर्बर हैं। ये न जानते हुए भी, न अनुभव किये भी, जो तत्काल प्रत्यक्ष हुआ है, वही कहते हैं। हम इसकी महिमा की उपासना करते हैं, यह जो इस अन्तराल में हिरण्यवर्णी पुरुष स्वर्णमय जो स्वर्णिम दाढ़ी-मूँछ, अँगुली, नखों वाला दीप्यमान है। वह जो इस प्रकार से सब भूत-प्राणियों का अतिक्रमण कर स्थित है, उसकी उपासना करने वाला पूर्ण आयु प्राप्त करता है, उत्तम ऐश्वर्य वाला होता है। यह दृश्यमान जगत्, सूर्य आदि इस परम सत्ता का अतिक्रमण करके उदय नहीं हो सकते। जो परम सत्ता का अतिक्रमण करके इनका उदय मानता है, देखकर उपासना करता है, वह पापी है, विपत्ति को प्राप्त करता है तथा अपूर्णता को प्राप्त करता है। जो इस (दृश्यमान) को परम का अतिक्रमण करके उदित न होने वाला मानता है, जानता है तथा उसी प्रकार उपासना करता है, वह परम ज्योति को प्राप्त होता है। पूर्ण आयु प्राप्त करता है, पूर्ण ऐश्वर्यशाली होता है॥ ६॥

तमितरः पप्रच्छ। कतमत् त्वमनार्तं मन्यस इति। तं होवाच। विस्फुरंतीरेवेमा लेलायन्तीरिव संजिहाना इव नेदीयसितमा इव दवीयसितमा एव दवीयसितमा इव नेदीयसितमा एवेति। यदपि बहुधाचक्षीरन्न किञ्च प्रतिपद्यत इति तन्मे ब्रह्मेति॥ ७॥

तब किसी अन्य ने प्रश्न किया कि आप किसे पूर्ण ब्रह्म मानते हैं। वे बोले— ये जो स्फुरण करती सी, लपलपाती सी, मुँह फैलाती सी अत्यन्त निकट, अन्यन्त दूर अथवा अत्यन्त दूर दिखाई पड़ती हुई भी अत्यन्त निकट रहने वाली जिसकी रश्मियाँ हैं, इन्हें अनेक प्रकार से अनेक नामों से कहा गया है; किन्तु इनका पकड़ पाना दुष्कर है। यही मेरा ब्रह्म है। यही मेरी ज्योति है॥ ७॥

तदु ह वसिष्ठो नानुमेने। यदिमा विस्फूर्जयत एवाभिपद्यन्ते वीवयन्ति मिथु चेति विचक्षतेऽकाण्ड

इवेमा न ह वै परमित्था कश्चनाश्रोत्यसंविदान इव। अप ये संविद्रते तदेतदन्तर्विचक्षत इति। महिम्नः पश्येमा विजान इति। स य एवमिमा महिम्न एवास्य पश्यन्नुपास्ते महिम्न एवाश्नोति सर्वमायुरेति वसीयान् भवति। यस्त्विमा अवयतीरेवोपास्ते न परा संपद्यमाना नो एव परेति पापीयान् भवति वीवपद्यते प्रमीयते। अथ य इमाः परा संपद्यमाना एवोपास्ते परैव संपद्यते सर्वमायुरेति वसीयान् भवति॥ ८॥

इसका भी वसिष्ठ ने अनुमोदन नहीं किया। बोले— कि ये रश्मियाँ स्फुरण करती हुई यदि प्राप्त -ग्रहण की जा सकती हैं, तो यह अप्रासंगिक है; क्योंकि उस परम को जो नेति-नेति रूप में वर्णित है, उसे कोई भी प्रत्यक्ष नहीं कर सकता। जो प्रत्यक्ष करते हैं, वे अपने अन्त:करण में ही उस दर्शन का अनुभव करते हैं। हम लोग इसको पूर्ण रूप से न जानते हुए भी इसकी महिमा को प्रत्यक्ष करते हैं। जो इसकी महिमा को देखकर ही इसकी उपासना करता है, महिमा को ही ग्रहण करता है, वह पूर्ण आयु पाकर सुखी रहता है। जो इन स्फुरणा करती रश्मियों की उपासना करता है, उनकी सूक्ष्मता को तथा उनके परमरूप को नहीं जानता, जो अनुभव नहीं करता, वह पापी है। वह विपत्ति में पड़ता है और जो इनसे परम की उपासना करता है, वह सारी आयु पूर्ण सुखी रहता है॥ ८॥

तमितरः पप्रच्छ। कतमत् त्वमनार्तं मन्यस इति। महाविज्ञानमिव प्रतिपदेनाध्यवसायमिव यत्रैतदित्थेत्थेत्यभिपश्यति। अथ नेति नेत्येतदित्थेत्थेति। स वा अयमात्मा अनन्तोऽजरोऽपारो न वा अरे बाह्यो नान्तरः सर्वविद्धारूपो विघसः प्रसारणोऽन्तर्ज्योतिर्विश्वभुक् सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः सर्वमभिक्षिपन्न तमश्नोति कश्चन॥ ९॥

इस पर अन्य ऋषि ने प्रश्न किया— तो फिर आप किसको अनार्त मानते हैं? वे बोले— जो इसे महाविज्ञान जैसा मानता है, पग-पग पर दृढ़ निश्चय से युक्त मानता है, उसे नेति-नेति रूप में देखता है (वही अनार्त है)। इस प्रकार यह नेति ही इत्थेत्थ (ऐसा है, ऐसा है) है। वह यह आत्मा अनन्त-अजर-अपार है। न वह बाहर है, न भीतर है। वह सबको जानने वाला, कान्ति, दीप्ति, तेजरूप, भुक्तशेष (सब खाने के बाद भी शेष रहा), सर्वत्र प्रसरणशील, अन्त:करण में ज्योतिस्वरूप, विश्व को खाने वाला अर्थात् उसके संहार में सक्षम, सब पर नियन्त्रण रखने वाला सबका स्वामी, सबको इधर-उधर करने में समर्थ है; किन्तु कोई भी उसे खा नहीं सकता अर्थात् उसको नियन्त्रण में नहीं ला सकता। उससे ऊपर नहीं हो सकता॥ ९॥

परोवरीयांसमभिप्रणुत्यमन्तर्जुषाणं भुवनानि विश्वा। यमश्नवन्न कुशिकासो अग्निं वैश्वानरमृतजातं गमध्ययी॥ १०॥

जो सबसे श्रेष्ठ है। सबके प्रणाम करने योग्य है। सारे भुवनों के अन्दर बैठा (सारे भुवन जिससे व्याप्त हैं), जिसे न कुशकास लेकर यज्ञ करने वाला, न सत्यज्ञान प्रदाता विश्वहितकारक अग्नि का उपासक ही और न निगम-आगम का स्वाध्याय करने वाला ही प्राप्त कर सकता है॥ १०॥

[यहाँ ऋषि का यह संकेत है कि ईश्वरप्राप्ति शुद्ध भाव से ही सम्भव है, केवल

भरेभरेषु तमुपह्वयाम प्रसासहिं युध्ममिन्द्रं वरेण्यम्। सत्रासा (ह) मवसे जनानां पुरुहूतमृभ्विणं विश्ववेदसम्॥ ११॥

समस्त लोकों से व्याप्त, सबका प्रशासन (नियन्त्रण) करने वाले, श्रेष्ठ योद्धा इन्द्र-शक्तिसम्पन्न का हम आह्वान करते हैं, जो विश्व भर का ज्ञान रखने वाला, भय से प्राणियों की रक्षा करने वाला, जन-जन का प्रिय एवं महातेजस्वी है॥ ११॥

अहिघ्नं तमर्णवे शयानं वावृहाणं तवसा परेण॥ १२॥

उस शेषशायी, क्षीर सागर में शयन करने वाले, महातेज से निरन्तर वर्धनशील देव (विष्णु) को नमस्कार है॥ १२॥

तदु ह प्रतिपेदिरे। ते वाभिवाद्यैवोपसमीयुः। नमोऽग्नये। नम इन्द्राय। नमः प्रजापतये। नमो ब्रह्मणे। नमो ब्रह्मणे॥ १३॥

इसे सभी ऋषियों ने स्वीकार किया।

तब सब अभिवादन करने उनके पास आये। फिर अग्निस्वरूप, इन्द्रस्वरूप, प्रजापतिस्वरूप परब्रह्म को बारम्बार नमन किया॥ १३॥

॥ इत्यार्षेयोपनिषत् समाप्ता॥

।। इतिहासोपनिषद् ।।

ॐ वृषादर्विकुलः ह वै शिबिकुलं बभूव। तस्यामितिहासः कुलविद्या बभूव। तद्यो ह स्मेममधीते स ह स्मै राजा भवति। स किंचित्प्राप्यान्तर्हितः। सोऽब्रवीत्। यो मामितिहासं ग्राहयेत्। वरमस्मै दद्यामिति। ततो ब्राह्मणः संयोगं संयुयुजे। तमादित्यात् पुरुषो भास्करवर्णो निष्क्रम्य स एनं ग्राह्याञ्चकार। तमपृच्छत्। कोऽसीति वा वृषादर्विरिति। तस्माद्य इममितिहासमधीते। आदित्यलोके स कामचारो भवति। तस्माद्य इममितिहासमुपनीतो माणवको गृह्णीयात्। गृहीत्वाऽथ ब्राह्मणाञ्छ्रावयेत्। मेधावी भवेत्। वर्षशतं च जीवेत्। षडङ्गं च वेदमवाप्नुयात्। तस्माद्य इममितिहासं पठन् पितृभ्य उदकाञ्जलिं दद्यात्। अपूपकूला नद्यः सर्पिष्पायसकर्दमा उपतिष्ठेरन्। तस्माद्य इममितिहासं पठन् पितृभ्यः श्राद्धं दद्यात्। तद्यथा स्थूलया गयाश्राद्धं कृतं भवेत्। स्वधा सह पितृणाम्। एवमस्य पितृणामनन्ता तृप्तिर्भवति। य एवं वेद। सोऽयमितिहासः धन्यः पुण्यः पुत्रीयः पशव्य आयुष्यः स्वर्ग्यः। सार्वकालिकसर्वभय प्रमोक्षणः। नाधिभ्यो भयं भवति। न चोरेभ्यः। न रक्षोभ्यः। नाध्वनि प्रमीयते। नाप्सु प्रमीयते। नाग्नौ प्रमीयते। नाप्सु न शस्त्रेण बध्यते। नानपत्यः प्रमीयते। सायं प्रयुञ्जानो दिवसकृतं पापं नाशयति। प्रातः प्रयुञ्जानो रात्रिकृतं पापं नाशयति। सायंप्रातः प्रयुञ्जानः पापोऽपापो भवति। पापभाजो हि श्रोतृणामनसूयावतां पापाः श्चापक्रामन्ति। एकशतं चान्ये साधव आगमाः। एतावती परिभाषा। अत ऊर्ध्वं विद्यात्॥ १ ॥

वृषादर्वि कुल ही शिबिकुल हो गया था [भागवत के अनुसार वृषादर्वि (वृषादर्भि) शिवि के पुत्र थे। इसीलिए शिबिकुल और वृषादर्वि कुल एक ही है।] उसका यह इतिहास कुलविद्या हो गया। जो कोई इस इतिहास को पढ़ता था, वही राजा श्रेष्ठ हो जाता था। वह (इस प्रसंग का पात्र-राजा) कुछ प्राप्त करके छिप गया। उसने कहा— जो कोई भी मुझे इतिहास दिलवा देगा, मैं उसे वरदान दूँगा। तब ब्राह्मण ने संयोग बिठाया। तत्पश्चात् सूर्य से एक तेजोमय पुरुष प्रकट हुआ और उसने उसे (राजा को) इतिहास ग्रहण करवा दिया। उस (राजा) से प्रश्न किया— तुम कौन हो अथवा तुम वृषादर्वि ही हो। अतः जो कोई इस इतिहास का अध्ययन करता है, वह आदित्यलोक में स्वच्छन्द भ्रमण करता है और (इसलिए) उपनयन संस्कार के पश्चात् जो कोई बालक इस इतिहास को ग्रहण करता है, ग्रहण करके ब्राह्मणों को इसे सुनाता है, वह मेधावी हो जाता है एवं शतायु हो जाता है अर्थात् सौ वर्षों तक जीवित रहता है। षडंग-वेद का ज्ञान उसे प्राप्त हो जाता है। अतएव जो इस इतिहास को पढ़ते हुए पितरों को जलाञ्जलि प्रदान करता है, अपूपकूल नदियाँ उसके लिए घृत व क्षीर से परिपूरित हो जाती हैं। अस्तु इस इतिहास को पढ़ते हुए पितरों को श्राद्ध प्रदान करना चाहिए। वह (इस प्रकार किया गया श्राद्ध) मानो गया-श्राद्ध करने का फल प्रदान करेगा। पितरों को वह स्वधा से तृप्त करना ही है। इस प्रकार श्राद्ध करने वाले के पितरों की अनन्त तृप्ति होती है। जो इस प्रकार जानता है, वही जानता है। अतः यह इतिहास धन, पुण्य, पुत्र (सन्तान), पशु, आयु एवं स्वर्ग को प्रदान करने वाला है। सर्वदा सब प्रकार के भय से मुक्त कराने वाला है। मानसिक रोगों से उसे भयभीत नहीं होना पड़ता। न कभी चोरों से ही भय होता है और न राक्षसों से ही। न कभी

मार्ग में मृत्यु होती है, न जल में ही अपघात होता है। न अग्नि के जलने से ही मृत्यु होती है। न शस्त्र से ही मारा जाता है। न नि:सन्तान रहकर ही मृत्यु होती है। सन्ध्या समय इस इतिहास का प्रपठन करने वाला दिनभर के पापों (दुष्कृत्यों) को नष्ट कर देता है। इसी प्रकार प्रात:काल पाठ करने वाला रात्रि में किये गये दुष्कृत्यों को नष्ट कर देता है। पाप कर्म करने वाला भी प्रात:- सायं दोनों समय इसका प्रयोग करके पापरहित हो जाता है। पाठक, श्रद्धापूर्वक सुनने वालों के पापों को भी (यदि वे पापी भी हैं तो) दूर कर देते हैं। श्रेष्ठ सौ आगम कहे गये हैं। इतनी ही परिभाषा है। अब आगे की विद्या (इतिहास)पर प्रकाश डालते हैं॥ १॥

जिह्वा रसं विजानाति हृदयं वेदयत् प्रियम्। चक्षुर्दिष्टः साक्षिभागो मनसा साधु पश्यति॥ २॥

जिह्वा रस को पहचान लेती है। हृदय प्रिय को बता देता है। साक्षी भाग को नेत्र बता देते हैं। मन के द्वारा ही किसी वस्तु का अच्छी तरह ज्ञान होता है॥ २॥

मनसा वाचं नयति चक्षुषा मीयते जगत्। भूतस्य कर्णौश्रोतारावन्नं प्राणेन संमितम्॥ ३॥

मन के साथ वाणी चलती है। नेत्रों के द्वारा ही जगत् के पदार्थों का ज्ञान होता है। घटित होने वाली घटनाओं को दोनों कान ही सुनते हैं। अन्न ही प्राण के तुल्य होता है॥ ३॥

अन्नं प्राणो वृषादर्विः पर्जन्यो दत्तवान्महत्। अग्निश्च हव्यवाहनस्तदिदं गाव इद्धविः॥ ४॥

हे वृषादर्वि! अन्न ही प्राण है। पर्जन्य ने बहुत अन्न दिया है। अग्नि (यज्ञरूप में) ही द्रव्य को देवताओं के पास पहुँचाता है। गौओं से ही दुग्ध (हवि रूप में) प्राप्त होता है, अत: गौएँ ही हवि हैं॥ ४॥

वित्तं बन्धुः प्रजातन्तुः कर्मरूपं बृहत्सखा। प्रज्ञा प्रतिष्ठा तन्तूनामिष्टापूर्तैः परायणम्॥ ५॥

वित्त ही बन्धु के सदृश सहायक होता है। कर्म-स्वरूप प्रजातन्तु [प्रजा को कर्म से जोड़े रखने वाला विचार तन्तु] ही मनुष्य का बड़ा मित्र है। सम्पूर्ण प्रतिष्ठा का आधार प्रज्ञा ही है। इष्टापूर्त (यज्ञादि धार्मिक कार्यों तथा कूप तडागादि निर्माण जैसे पारमार्थिक कृत्यों) का हेतु भी प्रज्ञा ही है॥ ५॥

सत्यं वदन्त्यनृतमुद्वहन्ति क्षीरं पिबन्ति मधु ते पिबन्ति। सोमं पिबन्त्यमृतेन सार्धं मृत्योः परस्तादमृता भवन्ति॥ ६॥

ये ब्राह्मणा ब्रह्मचर्यं चरन्त्यथो खल्वाहुर्वेदसंमितोऽयमितिहासः॥ ७॥

जो ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, वे सत्य भाषण करते हैं, असत्य को (असत्य प्रसंगों के सम्पर्क में आने पर उन्हें) भी सँभालते हैं। दुग्धपान करते हैं, मधु का भी सेवन करते हैं। अमृतपान के साथ ही सोमरस का भी पान करते हैं। मृत्यु के पश्चात् अमृत पद को प्राप्त कर लेते हैं। वास्तव में यह इतिहास वेद सम्मत है, वेद तुल्य ही है॥ ६-७॥

धर्मं चरति नाधर्मं सत्यं वदति नानृतम्। दीर्घं पश्यति मा ह्रस्वं परं पश्यति माऽपरम्॥ ८॥ ऋचो ह यो वेद स वेद देवान् यजूंषि यो वेद स वेद यज्ञम्। सामानि यो वेद स वेद सर्वं यो मानसं वेद स वेद ब्रह्म॥ ९॥

वह (ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण) धर्म का आचरण करता है, अधर्म का नहीं। वह सत्य भाषण करता है, असत्य नहीं। दूर दृष्टि रखता है तथा तात्कालिक लाभ को महत्त्व नहीं देता। परलोक को भी देखता है, केवल इसी लोक को नहीं देखता। जो ऋचाओं (ऋग्वेद) को समझता है, वह देवताओं को भी समझता है। जो यजुर्वेद के मन्त्रभाग को समझता है, वही यज्ञ के विषय में समझता है। जो सामवेद के मन्त्रों का भली प्रकार गान करता है, (वेद सम्मत आनुशासित कर्मों को करते समय दिव्य भावों में डूबा रहता है) वह सब कुछ समझता है। जो मन की शक्तियों को समझता है, वह ब्रह्म को भी जानता है॥ ८-९॥

यः क्रौद्धव्येन क्रुद्धस्तिष्ठति सोऽतिवाचं च दीक्षयति। योऽतिवाचं नयति स वै सर्वं द्विजः खलु मानसं वेदेति नः श्रुतम्॥ १०॥

जिस व्यक्ति पर क्रोध करना उचित है, उसके साथ जो कोई स्थायी रूप से रहता है (शालीनता-सहिष्णुतापूर्वक उसके साथ संगति बिठा लेता है, प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करता), वह वस्तुतः दूसरों को मौन की दीक्षा देता है। इस प्रकार जो मौन की साधना करता है, वह द्विज (संस्कारवान् व्यक्ति) समस्त मानसिक गतिविधियों को समझने में सक्षम हो जाता है। यही हमारा शास्त्रज्ञान है॥ १०॥

तपोऽवधिः परमा ब्राह्मणस्य श्रद्धा माता पितरंसत्यमाहुः। योग आत्मा चरणमस्य बन्धुर्दमः प्रतिष्ठा विदुषो न भूमिम्॥ ११॥

विद्वान् ब्राह्मण की परमोच्च स्थिति तप ही है। श्रद्धा ही ब्राह्मण की माता है, सत्य को ब्राह्मण का पिता कहा गया है। योगाभ्यास ही उसकी आत्मा है। ज्ञान प्रचार हेतु नित्य विचरण करना ही उसका बन्धु है। इन्द्रियों का निग्रह ही उसकी प्रतिष्ठा (आधार) भूमि नहीं है॥ ११॥

दुःखं जन्म जरा दुःखं दुःखं मृत्युः पुनःपुनः। संसारमण्डलं दुःखं पच्यन्ते यत्र जन्तवः॥ १२॥

(संसार में)जन्म लेना दुःखद है। जरावस्था भी कष्टप्रद होती है, बार-बार जन्म लेकर बार-बार मरना भी दुःखदायी है। यह संसार चक्र ही दुःख का स्वरूप है। यहाँ पर जन्म लेने वाले सभी प्राणी कर्मानुसार दुःख भोगते रहते हैं॥ १२॥

यो ब्राह्मणः पापकृत् मन्त्रकृच्च स जीवति। ब्रह्मण्यो ब्रह्मकृच्छश्वत् ब्रह्मलोके महीयते॥ १३॥

दुष्कर्म करने वाला जो ब्राह्मण पापी होता है, वह भी मन्त्रशक्ति के प्रयोग से जीवित रहता है (उसकी प्रगति नहीं होती)। तथापि ब्रह्मतत्त्व में लीन, तत्त्वदर्शियों के प्रति श्रद्धाभाव रखने वाला (ब्राह्मण साधक) वेदोक्त कर्म सन्ध्या, यज्ञादि करते हुए अन्त में ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित हो जाता है॥ १३॥

तृणानि हीच्छन्ति कुशत्वमेव वृक्षा यूपत्वं पशवश्च गोत्वम्। सर्वाः प्रजा ब्राह्मणत्वं नरेन्द्र न ब्राह्मणत्वात् परमस्ति किञ्चित्॥ १४॥

सभी प्रकार के तृण (घासें) कुश (यज्ञोपयोगी) होने की इच्छा करते हैं, सभी वृक्ष यूप (यज्ञोपयोगी बल्य पशु को बाँधने का खम्भा) बनना चाहते हैं। सभी पशु (यज्ञोपयोगी) गौ बनने की इच्छा रखते हैं। हे राजन्! सभी लोग ब्राह्मण बनने की कामना करते हैं; क्योंकि ब्राह्मणत्व प्राप्ति से श्रेष्ठ जगत् में कुछ भी नहीं है॥ १४॥

[यहाँ यह तथ्य स्पष्ट होता है कि ब्राह्मण होना जन्म पर निर्भर नहीं है, गुण परिष्कार से ब्राह्मण बना जा सकता है।]

शताहावशतशरः शतशक्रऋजीषिणाम्। शतं ब्रह्म तपस्विनां कूपोऽरण्यस्य तिष्ठति॥ १५॥

अकेला इन्द्र ही सोमयागों में सोमपान करने में सक्षम है। एक साथ सैकड़ों तीर चलाने वाला धनुर्धर ही असंख्य शत्रुओं से लोहा ले सकता है। अकेला ब्रह्मवेत्ता (वेदवेत्ता) अनेकों तपस्वियों की समानता करने में समर्थ होता है। इसी प्रकार अरण्यस्थित (वन में विद्यमान) अकेला कुआँ ही अनेकों की पिपासा शान्त करने का सौभाग्य प्राप्त करता है॥ १५॥

ऋतेनापिहिता गुहा श्रुतेनापिहिता गुहा। स्मृतेनापिहिता गुहा शमेनापिहिता गुहा॥ १६॥
दमेनापिहिता गुहा सत्येनापिहिता गुहा। आत्मनापिहिता गुहा ब्रह्मणापिहिता गुहा॥ १७॥

जिस गुहा में ब्रह्म की स्थिति मानी गई है, वह गुहा ऋत (शाश्वत नियम) से ढकी हुई है, श्रुत (ज्ञान) से ढकी हुई है, स्मृति (सिद्धान्तों) से ढकी हुई है तथा शम के द्वारा आवृत है। वह (ब्रह्म की गुहा) दम के द्वारा आवृत है, सत्य के द्वारा आवृत है। आत्मा (मन) के द्वारा ढकी हुई है तथा ब्रह्म (वेद ज्ञान) के द्वारा भी वह गुहा ढकी हुई है॥ १६-१७॥

[यहाँ यह तथ्य ध्यातव्य है कि शम, दम, सत्य और मन आदि को भी ब्रह्म की गुहा को आवृत करने वाला कहा गया है। वस्तुतः यह उलटवाँसी (रहस्यपूर्ण कथन) है, जिसमें यह तथ्य निहित है कि उपर्युक्त सभी माध्यम ब्रह्म की गुहा को अनावृत करने वाले हैं; क्योंकि जिस चाभी से ताला बन्द होता है, उसी से खुलता भी है।]

ब्रह्मन्निधिं मनसा वेदयन्तः पश्यन्तो गुह्यमपरं परं च। अनध्वगा अध्वसु पारयिष्णवः ब्राह्मणास्तु सदृशाः सूर्येण॥ १८॥

उस ब्रह्मरूप गुहा में छिपी हुई निधि को मन के द्वारा ज्ञात करके गुहानिहित तत्त्व को देखने वाली बुद्धि द्वारा ज्ञात तत्त्व (अपर) को देखते हुए, पर (बुद्धि से अगम्य) तत्त्व को भी देखने वाले स्वल्पमात्र तत्त्वान्वेषण करते हुए भी सम्पूर्ण विधियों में पारंगत ब्राह्मण (ब्रह्मतत्त्व में लीन) सूर्य के समान सम्पूर्ण लोक को प्रकाशित करते हैं॥ १८॥

यः च्छ्राद्धानि कुरुतेऽसंगतानि न देवयानेन पथा स याति। परिमुक्तं पिप्पलं बन्धनादिव स्वर्गाल्लोकाच्च्यवतेऽश्राद्धमित्रः॥ १९॥

जो पुरुष असंगत अर्थात् श्रद्धा-भाव रहित श्राद्ध करता है, वह देवयान मार्ग से नहीं जाता है। वह अश्राद्धमित्र तो स्वर्ग से उसी प्रकार पतित हो जाता है, जिस प्रकार पिप्पल (पीपल) वृक्ष का फल वृन्त (डण्ठल) से अलग होकर भूमि पर गिर जाता है॥ १९॥

यो यज्ञस्य प्रसाधनः तन्तुर्देवेष्वाहुतः। तमाहुतमशीमहि। नावेदविन्मनुतेदं बृहन्तम्। सर्वानुभूमात्मानꣳसंपराये। एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्य। न कर्मणा वर्धते नो कनीयान्। तस्यैवात्मा पदवित्तं विदित्वा। न कर्मणा लिप्यते पापकेन॥ २०॥

यज्ञ की सफलता के लिए जो तन्तु देवताओं के लिए आहुति द्वारा समर्पित किया जाता है, उस हुतशेष को हम ग्रहण करें (भक्षण करें)। जो वेदों के रहस्य को नहीं जानता है, वह इस ब्रह्म तत्त्व को नहीं मानता (उस पर श्रद्धा नहीं रखता), ऐसा व्यक्ति जीवन संघर्ष में सर्वान्तर्यामी आत्मा को प्रत्येक प्राणी में स्थित अर्थात् विराट् स्वरूप में नहीं जानता है। ब्रह्मतत्त्वज्ञ (ब्राह्मण) की यह सनातनी महिमा है। यह महिमा न तो कर्म (स्थूल कर्मकाण्ड) द्वारा बढ़ती है और न कम ही होती है। उसी (ब्राह्मण) का आत्मा (अन्त:करण) उस तत्त्व को जानकर पदवित् हो जाता है (परमपद को प्राप्त कर लेता है)। तत्पश्चात् वह दुष्कर्मों से लिप्त नहीं होता है॥ २०॥

अग्निहोत्रं बलीवृद्धाः काले चातिथिरागतः। बालाश्च कुलवृद्धाश्च निर्दहन्त्यवमानिताः॥ २१॥ संभोजनी नाम पिशाचभिक्षा नैषा पितॄन् गच्छति नोत देवान्। इहैव सा चरति क्षीणपुण्या शालान्तरे गौरिव नष्टवत्सा॥ २२॥

अग्निहोत्र न करने पर, बलवान् पुरुष का, समय पर आये हुए अतिथि का, बालकों का तथा कुल वृद्धों का अपमान करने पर व्यक्ति संकटग्रस्त हो जाता है। जबरन लूट कर खाने वाली संभोजनी संज्ञक पिशाच भिक्षा न तो पितरों को तृप्ति प्रदान करती है और न ही देवताओं को। नष्टवत्सा गौ के सदृश वह अपुण्यदायिनी आवासगृह में ही भ्रमण करती रहती है॥ २१-२२॥

[प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप छल-या बल से दूसरों का हक समेट लेने वालों के द्वारा दी गई भिक्षा-दानादि को पिशाच भिक्षा कहा गया है। जैसे- जिस गाय का बछड़ा मर गया हो, तो वह दूध नहीं देती इसी प्रकार पिशाच भिक्षा पितरों या देवों को तुष्ट नहीं करती।]

शूद्रायां सृजते रेतः श्राद्धं भुक्त्वाऽथ यो द्विजः। स शूद्रयोनिसञ्छिन्नं रेतसा सिञ्चते पितॄन्॥ २३॥

श्राद्ध में भोजन करके जो द्विज शूद्रा स्त्री से संगम करता है, वह शूद्रा की योनि से (संगम के समय) पतित वीर्य से अपने पितरों का सिंचन करता है अर्थात् उन्हें अपवित्र करता है॥ २३॥

यः काममोहितः शूद्र्यां पुत्रमुत्पाद्यते द्विजः। यावदुत्पाद्यते भूमौ तावत्तिष्ठेत् सुदारुणे॥ २४॥

जो द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य) कामातुर होकर शूद्र स्त्री से पुत्र उत्पन्न करता है। वह पुत्र जब तक भूमि पर रहता है, उतने समय तक वह द्विज (मरणोपरान्त) दारुण नरक में कष्ट पाता है॥ २४॥

अश्रोत्रियं ब्राह्मणं भोजयानस्य षोडश श्राद्धानि पितरो न भुञ्जते। ततो निराशाः पितरो भवन्ति सेन्द्राः स्म देवाः प्रहरन्ति वज्रम्॥ २५॥

जो श्राद्ध में अश्रोत्रिय (अज्ञानी एवं अवेदपाठी) ब्राह्मण को भोजन कराता है, उसके पितर सोलह श्राद्धों (महालय अथवा पितृपक्ष) में भोजन नहीं करते हैं और तब उसके पितर निराश हो जाते हैं। इन्द्र सहित सभी देवता उसे वज्र से (कठोरता पर्वक) कष्ट पहुँचाते हैं॥२५॥

यावतः खलु पिण्डान् स प्राश्नन्ति हविषो नृचः। तावतः शूलान् ग्रसति प्राप्य वैवस्वतं यमम्॥ २६॥

हविष्यान्न के जितने पिण्डों को अश्रोत्रिय द्विज ग्रहण करते हैं, वह (श्राद्ध कर्त्ता) विवस्वान् यम को प्राप्त कर उतने ही शूलों का भक्षण करता है (प्रत्यक्ष में वह उन्हें लाभ समझ कर प्राप्त कर लेता है, किन्तु वास्तव में वे उसकी अपात्रता के कारण उसके लिए कष्टकारक ही सिद्ध होते हैं।)॥ २६॥

छिन्दन्ति दातृहस्तं च जिह्वाग्रमितरस्य च। मन्त्रपूतं तु यच्छ्राद्धममन्त्राय प्रयच्छति॥ २७॥

यमराज के यहाँ पहुँचने पर दाता (भोजन कराने वाले) के हाथ काट दिये जाते हैं एवं भोक्ता की जीभ की नोक काट दी जाती है (अर्थात् दोनों की देने और पाने की शक्ति कुण्ठित कर दी जाती है)। इसी प्रकार मन्त्रपूत श्राद्ध में अश्रोत्रिय को भोजन कराना भी निन्दनीय है॥ २७॥

नियुक्तस्तु यतिः श्राद्धं देवे वा मांसमुत्सृजेत्। यावन्ति पशुरोमाणि तावन्नरकमृच्छति॥ २८॥

यदि यति (संन्यासी) को श्राद्ध में भोजन करने के लिए आमन्त्रित किया हो, तो मांस भोजन त्याज्य है। अन्यथा जितने पशु-शरीर में रोम होते हैं, उतने वर्षों तक नरक की यातना भोगनी पड़ती है॥ २८॥

यथेरिणे बीजमुप्तं नरेन्द्र नास्य वप्ता लभते बीजभागम्। एवं श्राद्धमप्रतिष्ठितं विनश्यति॥ २९॥

हे नरेन्द्र! यथा ऊसर में बोया हुआ बीज, बोने वाले को बीज मात्र भी नहीं दे पाता है, उसी प्रकार अप्रतिष्ठित श्राद्ध भी निष्फल होता है॥ २९॥

श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च सङ्गमं न समाचरेत्। पितरस्तस्य तन्मासं भवन्ते रेतभोजनाः॥ ३०॥

श्राद्ध करके और श्राद्ध में भोजन करके (उसी दिन) स्त्री संगम नहीं करना चाहिए, अन्यथा उसके पितर उस मास भर रेतस् (वीर्य का) भोजन करते हैं॥ ३०॥

श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च सपङ्क्तिः सहभोजनम्। षण्मासान् पितरोऽश्नन्ति कर्तुरुच्छिष्टभोजनम्॥ ३१॥

श्राद्ध करके, श्राद्ध में आमंत्रितों के साथ एक पंक्ति में सहभोजन करने पर छः माह तक श्राद्धकर्त्ता के पितर उसका उच्छिष्ट (जूठा) भोजन करते हैं (अर्थात् आमंत्रितों को श्रद्धापूर्वक भोजन कराने के बाद ही श्राद्ध कर्ता को भोजन करना चाहिए)॥ ३१॥

श्राद्धं भुक्त्वा पुनः श्राद्धं भुञ्जीयाल्लोभमोहितः। नष्टं भवति तच्छ्राद्धं रौरवं नरकं व्रजेत्॥ ३२॥

भोजन के लोभ से जो व्यक्ति एक बार श्राद्ध भोजन करके दूसरी जगह श्राद्ध भोजन करता है, तो वह श्राद्ध निष्फल हो जाता है तथा भोजन करने वाला भी रौरव नरक में जाकर कष्ट पाता है॥ ३२॥

श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च भारमुद्वहते द्विजः। पितरस्तस्य तन्मासं भवन्ते भारपीडिताः॥ ३३॥

जो द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) श्राद्ध करके अथवा श्राद्ध में भोजन करके भार ढोता है, उसके पितर उस मास में भार से पीड़ित होते हैं॥ ३३॥

श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च अध्वानं योऽधिगच्छति। पितरस्तस्य तन्मासं भवन्ते पांसुभोजनाः॥ ३४॥

श्राद्ध देकर या श्राद्ध में भोजन करके जो द्विज मार्ग में पैदल यात्रा करता है, उसके पितर उस मास में धूल खाते रहते हैं॥ ३४॥

[उक्त तीन (३२,३३,३४) मन्त्रों का भाव यह है कि किसी के यहाँ श्राद्ध भोजन लोभ या स्वाद के वशीभूत होकर न करें, अपने माध्यम से पितरों को तृप्त करने का भाव रखें तथा खाया हुआ वह भोजन पचने तक सम्बन्धित पितरों के कल्याण हेतु जप-तप करें।]

अनग्निकस्य वेदोऽग्निर्वेदहीनोऽप्यनग्निकः। साग्निकोऽप्यनधीतः स्यात् स एषोऽनग्निकः स्मृतः॥ ३५॥

अग्निहोत्र से रहित द्विज के लिए वेदाभ्यास ही अग्निहोत्र है। अग्निहोत्र करते हुए भी जो वेदाभ्यास नहीं करता, वह अनग्निक ही है अर्थात् अग्निहोत्र करते हुए भी न करने वाले जैसा ही कहा गया है॥ ३५॥

स्त्रीशूद्रबालिशादिभ्य उच्छिष्टं न प्रदापयेत्। यदि दद्यात् प्रमादेन न तद्गच्छति तान् पितृन्॥ ३६॥

श्राद्ध दिवस पर स्त्री-शूद्र व मूर्ख बालक आदि को जूठन नहीं दिलवानी चाहिए। यदि प्रमादवश इन्हें जूठन दी जाती है, तो वह (भोजन-दान) पितरों को प्राप्त नहीं होता अर्थात् उन्हें सन्तुष्ट नहीं करता॥ ३६॥

आहिताग्निः सदा पात्रं सदा पात्रं तु वेदवित्। पात्राणामुत्तमं पात्रं शूद्रान्नं यस्य नोदरे॥ ३७॥

(श्राद्ध में भोजन के लिए) आहिताग्नि (अग्निहोत्री) सर्वदा योग्य होता है। उसी प्रकार वेदपाठी भी सर्वदा योग्य होता है। वह भी श्राद्ध भोजन कराने के योग्य उत्तम पात्र (व्यक्ति) है, जिसने कभी शूद्र (अपवित्र) का भोजन न किया हो॥ ३७॥

पुनर्भोजनमध्वानं भाराध्ययनसङ्गमम्। दानं प्रतिग्रहं होमं श्राद्धं भुक्त्वाष्ट वर्जयेत्॥ ३८॥

श्राद्ध में भोजन करने वाले को आठ बातों का त्याग करना आवश्यक है- दुबारा भोजन, मार्ग में पैदल चलना, भार ढोना, अध्ययन करना, स्त्री गमन, दान देना, दान लेना एवं यज्ञ करना॥ ३८॥

दन्तधावनताम्बूलं नखकेशनिकृन्तनम्। कर्ता चैव तु पूर्वेद्युर्भोक्ता चैव परेऽहनि॥ ३९॥

दातौन करना, पान खाना, नाखून व बाल कटाना। श्राद्धकर्ता एक दिन पूर्व ही ये क्रियाएँ करें एवं श्राद्धभोजी दूसरे दिन॥ ३९॥

दन्तधावनताम्बूलं क्षौराभ्यङ्गनभोजनम्। रत्यौषधपरान्नं च श्राद्धकर्ता विवर्जयेत् ॥ ४०॥

दातौन, ताम्बूल, क्षौर कर्म (मुण्डन), अभ्यंगन (तैलमालिश), पुन: भोजन, मैथुन, औषधि एवं परान्न इन बातों का श्राद्धकर्ता को त्याग कर देना चाहिए॥ ४०॥

श्राद्धकर्ता परश्राद्धं यस्तु भुञ्जीत लोलुपः। नष्टं भवति तच्छ्राद्धं रौरवं नरकं व्रजेत्॥ ४१॥

जीभ के चटोरेपन के कारण जो श्राद्धकर्ता परश्राद्ध में भोजन करता है, उसका श्राद्ध करना निष्फल हो जाता है तथा उसे रौरव नरक की यातना भोगनी पड़ती है॥ ४१॥

निमन्त्रितेऽध्वानगते पुनर्भुक्त्वा तु वायसम्। करोति कर्म यत् गृध्रः ग्रामसूकरसङ्गमात्॥ ४२॥

(श्राद्ध भोजन करने के पश्चात् यात्रा कर) पुनर्भोजन से कौए की योनि प्राप्त होती है। भार ढोने के कर्म से गिद्ध, मैथुन से ग्रामशूकर की योनि प्राप्त होती है॥ ४२॥

प्रतिग्रहेषु दारिद्र्यं दानं निष्फलमेव च। होमे तु कुष्ठरोगी स्यात् स्वाध्यायैर्मृत्युमाप्नुयात्॥ ४३॥

(श्राद्ध भोजन करने के बाद) दान लेने से दरिद्रता प्राप्त होती है। दान देना निष्फल होता है। हवन करने से कोढ़ी हो जाता है। स्वाध्याय करने से मृत्युसम कष्ट होता है॥ ४३॥

[उपनिषद्कार का भाव यह है कि श्राद्ध भोजन करने वाला भोजन पचने तक आत्म कण्याण के लिए कोई प्रयास करता है, तो वह गलत है। उसे उस काल में केवल सम्बद्ध पितरों के हितार्थ ही सारी चेष्टाएँ करनी चाहिए]

यस्यानृचस्तु भुङ्क्ते तस्य विद्धि ब्रह्मैव वित्तं पुरुषस्य केवलम्। धर्मः स्वधायां चरते ददाति च सत्यं रसः स्वादुतमो रसानाम्। सत्यं श्रैष्ठ्यं व्याहृतीनां तथैव प्रज्ञानं सप्तमं जीवनानाम्॥ ४४॥

जिसके यहाँ श्राद्ध में अश्रोत्रिय भोजन करता है, उस पुरुष का केवल धन ही वेद (ईश्वर) है। (अर्थात् वह धन को ही सब कुछ मानता है। धन ही उसके लिए ईश्वर है)। पितरों को तृप्त करने वाली स्वधा का मुख्य साधन धर्म (आचार) ही है। वही सत्यरूपी रस को प्रदान करता है, जो कि सभी रसों में श्रेष्ठ रस है। व्याहृतियों (भू:, भुव:, स्व:, मह:, जन:, तप: और सत्यम्) में 'सत्य' ही श्रेष्ठ है एवं वही सम्पूर्ण जीवन का सप्तम प्रज्ञान है॥ ४४॥

ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति मूर्खो मन्त्रं विवर्जयेत्। ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते॥ ४५॥

ब्राह्मण का कोई अतिक्रमण कैसे कर सकता है। मूर्ख को मन्त्र का उच्चारण न करना ही उचित है। जलती हुई अग्नि को छोड़कर कोई भी भस्म में हवन नहीं करता॥ ४५॥

यः शतं च सहस्त्राणां सहस्त्रं श्राद्ध आचरेत्। एकस्मान्मन्त्रवित् पूतः सर्वमर्हति ब्राह्मणः॥ ४६॥

जो ब्राह्मण वेदाध्यायी और पवित्र है, वह ब्राह्मण सैकड़ों ही नहीं, हजारों-हजार श्राद्ध करवा सकता है॥ ४६॥

ब्राह्मणानां सहस्त्रेषु भुक्त्वा तु नव सप्त च। भवन्ति ज्ञायिके भूत्वा ध्यायिके च न संशयेत्॥ ४७॥

सहस्त्रों ब्राह्मणों में सात-नौ (अर्थात् बहुत कम संख्या में) ज्ञानी होकर ध्यानी होते हैं, इसमें संशय नहीं है॥ ४७॥

कुक्षौ तिष्ठति यस्यान्नं वेदाभ्यासेन जीर्यते। कुलं तारयते तेषां दशपूर्वां दशापराम्॥ ४८॥

जिसके पेट में खाया हुआ अन्न वेदाभ्यास द्वारा पचाया जाता है, वह अन्न भोजन कराने वाले पुरुष के इक्कीस कुलों का उद्धार कर देता है॥ ४८॥

ब्राह्मणो द्विपदां वरः। चतुष्पदां गौरुत्तमा। लोहानां काञ्चनं वरम्। तिलेषु तैलं दधनीव सर्पिः। यदापस्त्रोतस्सरण्योरिवाग्निः। एवमात्मात्मनि जायते॥४९॥

दो पैर वाले (मनुष्यों) में ब्राह्मण श्रेष्ठ है। चौपायों में गौ उत्तम है। धातुओं में सुवर्ण (सोना) श्रेष्ठ है। जिस प्रकार तिलों में तेल, दही में घी, स्त्रोत में जल और अरणियों में अग्नि सन्निहित रहती है, उसी प्रकार आत्मा (स्वयं) में आत्मा (परमात्मा) है॥ ४९॥

सत्येनैनं मनसा साधु पश्यति सत्येनैनं मनसा वाचं नयति॥ ५०॥

सत्य के आधार पर ही मनुष्य आत्मा का भली प्रकार दर्शन कर सकता है। सत्य मन से ही आत्मा का वाणी द्वारा वर्णन कर सकता है॥ ५०॥

प्राङ्मुखाश्च सुरा हव्यं पितरश्चाप्युदङ्मुखाः। प्रतिगृह्णन्ति संबाधमग्निना ब्राह्मणेन च॥ ५१॥

देवगण पूर्वाभिमुख होकर ही आहुति ग्रहण करते हैं। पितृगण उत्तराभिमुख होकर कव्य (पितरों के निमित्त दी जाने वाली अन्नाहुति) ग्रहण करते हैं। देवगण अग्नि के द्वारा और पितृगण ब्राह्मण के द्वारा ग्रहण करते हैं॥ ५१॥

वेदाध्यायीति यो विप्रः सततं ब्राह्मणः स्थितः। साचारः साग्निहोत्री च सोऽग्निर्वै कव्यवाहनः॥ ५२॥

जो विप्र प्रतिदिन वेदाभ्यास करता है, वह सदैव ब्राह्मणोचित कर्म करने के योग्य है। शुद्धाचरण करने वाला नित्य अग्निहोत्र करने वाला ब्राह्मण, पितृगणों को दिये जाने वाले कव्य को पितरों तक पहुँचाने में अग्नितुल्य

ही होता है। हव्यवाहन (अग्नि) के सदृश वह भी कव्यवाहन (पितरों के निमित्त दी गई आहुति को पितरों तक पहुचाने वाली अग्नि) ही है॥ ५२॥

विकिरं प्रकिरं दद्याद्विकिरं ह वै प्रकिरं भुञ्जीत। तृप्तिरूपाणि दर्शयन्॥ ५३॥

देवों या पितरों को मुक्तहस्त से ही देना चाहिए, इसी प्रकार सबको मिल बाँट कर ही भोजन करना चाहिए। जितना भी प्राप्त हो, उसी में तृप्त सन्तुष्ट होने का भाव प्रदर्शित करना चाहिए॥ ५३॥

परिश्रिते त्वेव दद्याद्ध्लीका हि पितरः स्मृताः। क्रव्यादाः पितरस्सर्वे तिलज्योतिर्घृतप्रियाः॥ ५४॥

पाक आदि तैयार होते ही पितरों को दे देना चाहिए; क्योंकि पितृगण लज्जाशील और भयाक्रान्त होते हैं। सभी क्रव्याद कहे जाने वाले पितरों को तिल, ज्योति एवं घृत प्रिय होते हैं॥ ५४॥

देशकालपात्रमन्त्राष्टशौचेप्साः कृष्णपक्षक्षयोत्सवाः॥ ५५॥

कृष्णपक्षक्षय अर्थात् अमावस्या का दिन पितरों के उत्सव का दिन होता है। पितृगण देश, काल, पात्र एवं मन्त्र आदि आठ प्रकार की शुद्धि चाहते हैं॥ ५५॥

उच्छिष्टं शिवनिर्माल्यं वमनं मृतकर्पटम्। श्राद्धे सप्त पवित्राणि दौहित्रः कुतपस्तिलाः॥ ५६॥

जो शिवजी को चढ़ाए गये पदार्थ हैं, यदि वे उच्छिष्ट (जूठे) कर दिये जाएँ, तो वमन एवं कफन तुल्य अशुद्ध हो जाते हैं। श्राद्ध में सात बातें पवित्र होती हैं, यथा- दौहित्र (पुत्री का पुत्र), कुतप (दिन का आठवाँ मुहूर्त्त) एवं तिल॥ ५६॥

[मंत्र क्र. ५६ की तीन बातें- मंत्र क्र. ५५ की चार बातें मिलकर सात हुईं, अमावस्या को जोड़ने से मंत्र क्र. ५५ के अनुसार आठ प्रकार की गणना पूरी हो जाती है।]

त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतपस्तिलाः। त्रीणि चात्र प्रशंसन्ति शौचमक्रोधमत्सराः॥ ५७॥

श्राद्ध में दौहित्र, कुतप और तिल ये तीन पदार्थ पवित्र माने गये हैं। श्राद्ध में पवित्रता, क्रोधहीनता एवं अद्वेष-इन तीनों की प्रशंसा की जाती है॥ ५७॥

दिवसस्याष्टमे भागे यदा मन्दायते रविः। स कालः कुतपो नाम पितृणां दत्तमक्षयम्॥ ५८॥

दिन के आठवें भाग में जब सूर्य का प्रकाश कुछ मन्द हो जाता है, वह समय कुतप कहलाता है। उस समय पितरों को दिया गया पदार्थ दान अक्षय हो जाता है॥ ५८॥

आरभ्य कुतपे श्राद्धं कुर्यादारोहणं बुधः। विधिज्ञा विधिमास्थाय रौहिणीं नैव लङ्घयेत्॥ ५९॥

कुतप काल (जिसका वर्णन पूर्व मंत्र में किया जा चुका है) में श्राद्ध कार्य आरम्भ करके बुद्धिमान को विधिपूर्वक श्राद्ध कर्म करते हुए अन्तरिक्ष में रोहिणी नक्षत्र के दर्शन के पहले-पहले श्राद्ध कर्म को सम्पन्न कर लेना चाहिए॥ ५९॥

रौहिणीं लङ्घयेद्यस्तु ज्ञानादज्ञानतोऽपि वा। आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं पितृणां नोपतिष्ठते॥ ६०॥

ज्ञानपूर्वक या अज्ञानवश, यदि कोई रोहिणी का उल्लंघन करता है, तो वह श्राद्ध पितरों को प्राप्त नहीं होता है। वह आसुरी श्राद्ध हो जाता है॥ ६०॥

यातुधानाश्च रक्षांसि पिशाचा असुरास्तथा। एते हरन्ति वै श्राद्धं दैवं यत्र निवर्तयेत्॥ ६१॥

दैव-पितृ काल के उल्लंघन के पश्चात् उस श्राद्ध का यातुधान राक्षस, पिशाच और असुर मिलकर हरण कर लेते हैं॥ ६१॥

राक्षसं भवति श्राद्धं दैवं यत्र निवर्तयेत्। तत्र रक्षांसि पैशाचा न च विद्वेष्टि यो जनः॥ ६२॥

दैव काल के समाप्त हो जाने पर वह श्राद्ध राक्षसी श्राद्ध हो जाता है। उसे राक्षस एवं पिशाच ही ग्रहण करते हैं। जो पुरुष इस (इस प्रकार के श्राद्ध) से विद्वेष नहीं करता, उसे भी श्राद्ध का फल प्राप्त नहीं होता॥ ६२॥

पुरो देवाः प्रपद्यन्ते पश्चाद्दैवं विसर्जयेत्। पक्षैस्तु कुक्कुटो हन्ति निकर्षेण तु सूकरः। आगतं गतया श्वानं चक्षुषा वृषलीपतिः॥ ६३॥

पहले तो श्रेष्ठ कार्य में देवता ही आते हैं, अतः पहले उनको विसर्जित कर देना चाहिए। मुर्गा पंखों से फड़फड़ाकर श्राद्ध को नष्ट कर देता है, शरीर एवं थूथन की रगड़ से सुअर श्राद्ध को नष्ट करता है। गमनागमन (आने-जाने) से कुत्ता श्राद्ध को नष्ट कर देता है तथा वृषलीपति (व्याख्या आगे है।) दृष्टिमात्र से श्राद्ध को नष्ट कर देता है॥ ६३॥

यस्य देशं न जानाति नामगोत्रे त्रिपूरुषम्। कन्यादानं पितृश्राद्धं नमस्कारं च वर्जयेत्॥ ६४॥

जिसकी तीन पीढ़ियों के नाम-गोत्र के बारे में ज्ञात न हो और जिसके आवासग्राम का पता भी ज्ञात न हो, उसे न कन्यादान करे, न उसका पितृश्राद्ध का कर्म कराये और न उसे नमस्कार ही करे॥ ६४॥

यस्य वेदश्च वेदी च विच्छिद्येते त्रिपूरुषम्। स वै दुर्ब्राह्मणो नाम सर्वकर्मबहिष्कृतः॥ ६५॥

जिसके तीन पूर्व पुरुषों (तीन पीढ़ियों) से वेद एवं यज्ञ की प्रक्रिया टूट चुकी है, वह ब्राह्मण दुर्ब्राह्मण कहलाता है। उसे समस्त ब्राह्मकर्म से बहिष्कृत समझना चाहिए॥ ६५॥

अष्टवर्षा भवेत् कन्या नववर्षा तु रोहिणी। दशवर्षा भवेत् गौरी ह्यत ऊर्ध्वं रजस्वला॥ ६६॥

आठ वर्ष की वय में लड़की कन्या कही जाती है, नौ वर्ष की उम्र में उसे रोहिणी की संज्ञा दी जाती है। दस वर्ष की उम्र में वह गौरी कहलाती है। इससे अधिक उम्र में रजस्वला कही जाती है॥ ६६॥

पितृगेहेषु या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता। सा कन्या वृषली नाम तत्पतिर्वृषलीपतिः॥ ६७॥

बिना संस्कारों के जो कन्या अपने पिता के घर में रजस्वला दिखाई देती है, उसे धर्मशास्त्र में वृषली की संज्ञा दी जाती है। उसी के पति को वृषलीपति कहा गया है॥ ६७॥

[स्वयं के श्रेष्ठ संस्कारों की कमी से अथवा पति के कुसंस्कारों से पीड़ित रजस्वला लड़की को यदि पिता के घर में शरण लेनी पड़ती है, तो वह वृषली कही जाती है। वृषली का पति हीन-संस्कारों के कारण श्राद्ध का पात्र नहीं होता।]

वृषलीपतिभुक्तानि श्राद्धानि च हवींषि च। पितरो न प्रतिगृह्णन्ति दाता स्वर्गं न गच्छति॥ ६८॥

वृषलीपति के द्वारा भुक्त (ग्रहण किया गया) श्राद्ध, प्रदत्त हवि, पितर स्वीकार नहीं करते हैं। श्राद्ध करने वाला स्वर्ग को प्राप्त नहीं करता है॥ ६८॥

महिषीत्युच्यते भार्या भगेनोपार्जितं धनम्। तद्द्रव्यमुपजीवन् यः स वै माहिषिकः स्मृतः॥ ६९॥

देह-व्यापार द्वारा धनोपार्जन करने वाली भार्या को महिषी भी कहा जाता है। जो पुरुष अपनी स्त्री के देह-व्यापार द्वारा अपनी आजीविका चलाता है, उसे माहिषिक नाम दिया गया है॥ ६९॥

समर्घं धनमुद्धृत्य महार्घं यः प्रयच्छति। स वै वार्धुषिको नाम ब्रह्मवादिषु गर्हितः॥ ७०॥

जो व्यक्ति सस्ते भावों (दामों) में प्राप्त वस्तुओं को अधिक महँगे भावों में बेचता है, उसे वार्धुषिक नाम से ज्ञानियों ने निन्दित कहा है॥ ७०॥

अग्रे माहिषिकं दृष्ट्वा मध्ये तु वृषलीपतिम्। अन्ते वार्धुषिकं दृष्ट्वा निराशाः पितरो गताः॥ ७१॥

आगे माहिषिक को, मध्य में वृषलीपति को तथा अन्त में वार्धुषिक को देखकर पितृगण निराश होकर लौट जाते हैं॥ ७१॥

श्वित्री कुष्ठी तथा चैव कुनखी श्यावदन्तकः। रोगी हीनातिरिक्ताङ्गः काणः पंगुः पुनर्भवः॥ ७२॥
अवकीर्णी कुण्डगोलावायुधी परदारगः। भृतकाध्यापकः क्लीबः कन्यादूष्यभिशस्तकः॥ ७३॥
मित्रध्रुक् पिशुनश्चैव विक्रयी वेदनिन्दकः। मातापितृगुरुत्यागी कुण्डाशी वृषलात्मजः॥ ७४॥
परपूर्वापरस्तेन शूद्रजः श्राद्धकर्मणि। रजस्स्त्रीसंगमी चैव परोपद्रवकारिणः॥ ७५॥
देवब्राह्मणघाती च तेषां द्रव्यापहारिणः। एते गुणा न वक्तव्याः श्राद्धकर्मबहिष्कृताः॥ ७६॥

सफेद दाग वाला, कोढ़ी, कुनखी (विकृत नाखून वाला), मटमैले दाँतवाला, रोगी, हीनांग, अधिकांग (अतिरिक्त अंगों वाला), काना, लूला, पुनर्भव (मरणासन्न होकर जीवित होने वाला) अवकीर्णी (ब्रह्मचर्य तोड़ने वाला असंयमी), कुंड (पति के रहते उपपति की सन्तान), गोलक (विधवा की अवैध सन्तान), शस्त्रधारी (शस्त्रों के द्वारा आजीविका चलाने वाला), परदारगामी, वेतन लेकर शिक्षा देने वाला, क्लीव (नपुंसक), कन्या दूषक (कन्या का कौमार्य भंग करने वाला), अभिशस्तक (मिथ्यादोषारोपित-बदनाम), मित्रद्रोही, पिशुन

(चुगलखोर), विक्रयी (विक्रय करके अनाप-शनाप धन कमाने वाला), वेदनिन्दक, माता-पिता व गुरु का त्याग करने वाला, कुण्डभोजी, (व्यभिचार से उत्पन्न सन्तान के यहाँ भोजन करने वाला), वृषलीपुत्र, रजस्वलागामी, उपद्रवकारी, देव-ब्राह्मण-घाती तथा उनके द्रव्य का अपहरण करने वाला; ये सभी श्राद्ध कर्म में शूद्रज कहे गये हैं। इनके गुणों को नहीं कहना चाहिए और न इन्हें श्राद्ध ग्रहण करने हेतु आमन्त्रित करना चाहिए; क्योंकि इन्हें श्राद्ध कर्म से बहिष्कृत किया गया है॥ ७२-७६॥

भ्रातन्वा भोजयेच्छ्राद्धं पुत्रं वाऽपि गुणान्वितम्। आत्मा च वाऽपि भुञ्जीत न विप्रं वेदवर्जितम्॥ ७७॥

श्राद्ध में गुणी भाई या गुणी पुत्र को भोजन कराए अथवा स्वयं भोजन करे, किन्तु वेदविहीन विप्र को भोजन न कराए॥ ७७॥

तेभ्यः श्राद्धं तु दत्तं चेत्तच्छ्राद्धं निष्फलं भवेत्। निराशाः पितरस्तस्य यान्ति देवाः सहर्षिभिः॥ ७८॥

(पूर्व श्लोकों में जिनका निषेध किया गया है) उनको श्राद्ध में भोजन नहीं कराए, अन्यथा श्राद्ध निष्फल हो जाता है। इन्हें श्राद्ध देने वाले के देव, ऋषि एवं पितर निराश होकर लौट जाते हैं॥ ७८॥

मदमोहेन यः शूद्र्यां पुत्रमुत्पाद्यते द्विजः। यावत्तिष्ठेत् स वै भूमौ तावत्तिष्ठेत् सुदारुणे॥ ७९॥

जो द्विज मदान्ध होकर शूद्री से पुत्र उत्पन्न करता है, वह जब तक पृथ्वी पर रहता है, तब तक दारुण दुःख भोगता है॥ ७९॥

क्षीरं वा दधि वा तैलं तक्रमाज्यं मधूनि च। एतेषां विक्रयी विप्रो रौरवं नरकं व्रजेत्॥ ८०॥

जो विप्र दूध, दही, छाछ, तैल-घी और शहद की बिक्री करता है, वह रौरव नरक में जाता है॥ ८०॥

यावदुष्णं भवत्यन्नं तावद्भुञ्जीत वाग्यतः। पितरस्तावदश्नन्ति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः॥ ८१॥

जब तक अन्न गर्म-गर्म रहे तभी तक मौन रहते हुए भोजन करे। मौन भोजन करते हुए तभी तक पितृगण भोजन करते हैं, जब तक भोजन के गुण-अवगुण का बखान नहीं किया जाता॥ ८१॥

हविर्गुणा न वक्तव्याः पितरो यावदर्पिताः। तृप्तैस्तु पितृभिः पश्चाद्वक्तव्यं शोभनं हविः॥ ८२॥

जब तक पितृगण तृप्त न हो जाएँ, तब तक भोजन के गुण का वर्णन न करे। पितृगणों के तृप्त होने के पश्चात् ही हविष्यान्न(समर्पित भोज्य पदार्थ)के विषय में 'शोभन' है (सुन्दर है), ऐसा कहना उचित है॥ ८२॥

य इमां देवीमिह वेद सर्वं सर्वेषु भूतेषु प्रतिष्ठितानाम्। सती नैनं पश्यन्ति हृदयं न शोकाः। न पुत्रदाराः पशुचोदमाहितम्॥ ८३॥

जो व्यक्ति सम्पूर्ण प्राणियों में प्रतिष्ठित इस दिव्य क्रियाशक्ति को जानता है, वह सब कुछ जानता है।

पाशविक प्रवृत्ति से प्रेरित होने पर इस (दिव्य क्रियाशक्ति) को न तो पतिव्रता स्त्री, न ही शोकाकुल पुत्र एवं न ही घर की अन्य स्त्रियाँ हृदय से देख पाती हैं॥ ८३॥

अपां रसो मधुनस्सर्पिषश्च क्षीरस्य चान्नस्य च संस्थितस्य। एते रसानां सरसेन श्राद्धं प्राप्नुवन्ति वाग्यतानां संयुतानाम्॥ ८४॥

मधुर पवित्र शुद्ध जल का, शहद का, घृत का, दूध का एवं भोजन बनाने के लिए उपयोगी अन्न का रस-स्वाद श्राद्ध में तभी प्रस्तुत रहता है, जब श्राद्ध भोजन करने वाले तृप्त होने तक मौन रहकर रस-स्वाद ग्रहण करते हैं, मौन भोजन करते हैं॥ ८४॥

उदेहि सूर्यं वरं वृणीष्वेति राजोवाच पञ्चेमानि रत्नानि गौर्मेऽजस्त्रंदुह्यति। हविर्मेऽजस्त्रं विलूहति। त्विषिर्मेऽजस्त्रं पिनष्टि। रथो मे सर्वान् समुद्रान् संयाति। आदित्यवर्णे इमे मणिकुण्डले इति। अथो ह्येवमेवैषामेकं वृणीष्वेति। ब्राह्मण उवाच। यावत्संपृच्छसीति भार्यां समपृच्छत्। हविर्गृहाणेति भार्योवाच। पुत्रं समपृच्छत्। रथं गृहाणेति पुत्र उवाच। कन्यां समपृच्छत्। मणिकुण्डले इति कन्योवाच। दासीं समपृच्छत्। दृषदं गृहाणेति दास्युवाच। अनुपेत्योवाच हविर्भार्या रथं पुत्रः कन्या मणिकुण्डले दासी दृषदमिच्छति। गामहं शिबिसत्तमे इति। सर्वाण्येवमेवैनं ददामीति होवाच वृषादर्विस्तदिदमितिहासो ब्रह्मादित्यः पुरोगाय। पुरोगः काश्यपाय। काश्यपो भरद्वाजाय। भरद्वाजः बहुभिः अनेकमहाराजाय। ततः प्रच्य ... धनपतेर्द्विजः ब्राह्मणकुले जातस्म ..... भवति॥ ८५॥

राजा ने कहा- सूर्य के सम्मुख उठो एवं वरदान माँगो। मेरे पास पाँच रत्न हैं। (क) मेरी गौ निरन्तर दूध देती है। (ख) हविष्यान्न मेरे पास पर्याप्त मात्रा में भरा रहता है। (ग) मेरी चक्की दिन-रात पीसती ही रहती है। (घ) सभी समुद्रों को अपनी गति से पार कर लेने वाला रथ मेरे पास है। (ङ) सूर्य के समान प्रकाशमान अथवा सूर्य वर्ण वाले मेरे ये रत्नजटित दो कुण्डल हैं। इस प्रकार हे द्विज! तुम इनमें से कोई भी एक वस्तु माँग लो। ब्राह्मण ने कहा- आप पूछ रहे हैं। अतः उसने अपनी धर्मपत्नी से पूछा- राजा से क्या माँगू? धर्मपत्नी ने कहा- (घर चलाने के लिए) हविष्यान्न माँग लो। पुत्र से पूछा, तो पुत्र ने कहा- रथ ले लो। कन्या से पूछा, तो कन्या ने कहा- रत्न जटित कुण्डल ले लो। दासी से पूछा, तो दासी ने कहा- पीसने की चक्की ले लो। पुनः राजा के पास आकर ब्राह्मण ने कहा—पत्नी हविष्यान्न को, पुत्र रथ को, कन्या रत्न-कुण्डलों को एवं दासी चक्की लेना चाहती है। हे शिबिसत्तम! परन्तु मैं स्वयं तो गाय को लेना चाहता हूँ। राजा वृषादर्वि ने कहा- इस याचक को मैं सभी (पाँचों ही) वस्तुओं को देता हूँ। तो यह इतिहास ब्रह्मादित्य ने पुरोग को, पुरोग ने काश्यप को, काश्यप ने भरद्वाज को तथा भरद्वाज ने अनेक महाराजाओं को प्रदान किया॥ ८५॥

नोट- ततः प्रच्य .... भवति, तक का अंश अस्पष्ट है, अतः इसका अर्थ नहीं किया गया।

सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते यस्तु पर्वभिः। कन्यागते यदा सूर्ये तिष्ठन्ति पितरो गृहे॥ ८६॥

जो पर्वों में श्राद्ध करता है, वह सात जन्मों में किये गये पापों से छूट जाता है। जब सूर्य कन्या राशि पर संक्रमण करता है, तब प्रत्येक कुल के पितर अपने कुल वालों के घर में उपस्थित रहते हैं॥ ८६॥

दिने दिने गयातुल्यं भरण्यां गयपञ्चके। दशतुल्यं व्यतीपाते पक्षमध्ये तु विंशतिः॥ ८७॥

उस समय (उपर्युक्त समय पर) किया गया प्रतिदिन का श्राद्ध गयाश्राद्ध के तुल्य फलवाला होता है। यदि उस श्राद्ध के दिन भरणी नक्षत्र भी हो, तो पाँच गया श्राद्ध के पुण्य के बराबर फलदायी होता है। यदि व्यतिपात योग हो, तो दस गया श्राद्ध के तुल्य फलदायी होता है॥ ८७॥

द्वादश्यां शतमित्याहुरमावास्यां सहस्रकम्। आश्वयुक्छुक्ल पक्षस्य द्वितीयामयुतं फलम्॥ ८८॥

द्वादशी तिथि हो, तो सौ गयाश्राद्ध के बराबर पुण्यफल होता है। यदि अमावास्या हो, तो सहस्र गयाश्राद्ध के बराबर पुण्य होता है। आश्विन शुक्ल द्वितीया में श्राद्ध हो, तो दस सहस्रगुना गयाश्राद्ध फल प्राप्त होता है॥ ८८॥

अन्नेन वाऽथवा येन शाकमूलफलेन वा। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कुर्याच्छ्राद्धं महालयम्॥ ८९॥

अन्न द्वारा या फल-मूल या शाक-आदि जो भी उपलब्ध हो, उसी से प्रयत्नपूर्वक महालय श्राद्ध करना चाहिए॥ ८९॥

शून्या प्रेतपुरी तत्र यावद्वृश्चिकदर्शनात्। वृश्चिका दर्शनं यान्ति निराशाः पितरो गताः॥ ९०॥
ततः स्वभवनं यान्ति शापं दत्वा सुदारुणम्। अहोवन्नवाच्यमिति केचित् पितरो वदन्ति॥ ९१॥

वृश्चिक की संक्रांति के पूर्व तक प्रेतपुरी पितरों से शून्य रहती है। यदि तब तक भी श्राद्ध भोजन नहीं मिले, तो पितर निराश होकर बुभुक्षित (भूखे) ही लौट जाते हैं। वे अपने कुल के जीवित लोगों को शाप देकर प्रेतपुरी (अपने स्थान) में लौट जाते हैं। कुछ पितर तो यह भी कह जाते हैं कि 'अरे बड़े दुःख की बात है, कुछ कहने लायक नहीं है'॥ ९०-९१॥

अपुत्राश्चैवापशवो लोके सन्ति च निन्दिताः। रौरवे नरके घोरे यावदाभूतसंप्लवात्॥ ९२॥

लोक में वे निन्दा के पात्र ही होते हैं, जो पुत्रहीन या पशुहीन होते हैं। सम्पूर्ण प्राणियों के प्रलय तक वे रौरव नरक में निवास करते हैं॥ ९२॥

एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्। यजेत वाऽश्वमेधं वा लीलं वा वृषमुत्सृजेत्॥ ९३॥

अतएव मनुष्य को बहुत से पुत्रों की कामना करनी चाहिए। ताकि कोई एक तो पिता का गयाश्राद्ध कर सके या अश्वमेध यज्ञ कर सके अथवा लील वृषभ (विशिष्ट लक्षणों वाला बैल) का उत्सर्ग कर सके॥ ९३॥

[इन श्लोकों में मध्य युगीन मान्यता की झलक दिखती है। उस समय की लोक मान्यता इस प्रकार रही होगी। सनातन पद्धति में तो भीष्म, शंकराचार्य जैसे पुत्रहीन अपने श्रेष्ठ आदर्शों के कारण उच्चतम गति के अधिकारी बनते हैं। जो केवल स्वार्थपूर्ण गृहस्थ जीवन जीते हैं, नई पीढ़ी गढ़ने के कर्त्तव्य को नकारते हैं, वे ही निन्दनीय होते हैं।]

श्वेतः खुरविषाणाभ्यां मुखे पुच्छे च पाण्डुरम्। रोहितो यस्तु वर्णेन स लीलो वृष उच्यते॥ ९४॥

जिस वृषभ के खुर और सींग सफेद हों, मुँह और पूँछ का रंग पीला हो, जिसके शरीर का रंग लाल हो; उस वृषभ को ही लील वृषभ कहा गया है॥ ९४॥

गौरीं वा वरयेत् कन्यां चरेद्वा श्रवणे .....न्ति जपति॥ ९५॥

कन्या अथवा गौरी (क्रमशः अष्ट वर्षीय और दस वर्षीय) का (भोजन दानादि हेतु) वरण करे।'चरेद्वा श्रवणे ....न्ति जपति' तक खण्डितपाठ होने के कारण अर्थ नहीं किया गया है॥ ९५॥

अथ संहितायां फलमवाप्नोतीत्याह भगवान् ब्रह्मा। अष्टौ ब्राह्मणान् सम्यक् ग्राहयेन्मेधावी भवेत्। वर्षशतं च जीवेत्। षडङ्गं च वेदमवाप्नुयात्॥ ९६॥

॥ इति इतिहासोपनिषत् सम्पूर्णा॥

॥ कौलोपनिषद् ॥

॥ शान्तिपाठः ॥

ॐ शन्नः कौलिकः शन्नो वारुणी शन्नः शुद्धिः शन्नोऽग्रिश्शन्नः सर्वं समभवत्॥

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

कौलिक(कुलमार्ग के प्रवर्तक परशिव), शं अर्थात् विघ्ननिराकरणपूर्वक स्वात्मानन्द की प्राप्ति कराने वाले हों। वारुणी (वरुण के द्वारा अधिष्ठित दिशा या उपदिष्ट विद्या) देवता भी पूर्ववत् कल्याणकारिणी हों। शुद्धिः (पवित्रता प्रदान करने वाली दैवीशक्ति) भी हमारा पूर्ववत् कल्याण करे। इसी प्रकार अग्रि अर्थात् तेज एवं अन्य सभी हमारे लिए कल्याणकारक हों। त्रिविध शान्ति हो।

नमो ब्रह्मणे नमः पृथिव्यै नमोऽद्भ्यो नमोऽग्रये नमो वायवे नमो गुरुभ्यः॥ त्वमेव प्रत्यक्षं सैवासि। त्वामेव प्रत्यक्षं तां वदिष्यामि॥

परब्रह्म को पृथिव्यादि चारों देवताओं-पृथिवी, जल, अग्रि और वायु को परम शिवादि स्वगुरुपर्यन्त सभी को नमस्कार है। ।प्रत्यक्षं अर्थात् अहं प्रत्यय (मैं पन) के रूप में सभी के द्वारा अनुभूयमान जो ब्रह्म है, वही तुम हो अर्थात् त्रिपुरसुन्दरीरूप कौलोपनिषद् तुम्हीं हो। अतएव हे कौलोपनिषद्! तुमको ही उससे अभिन्न कहूँगा।

ऋतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारम्। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

यहाँ पर ऋत शब्द ब्रह्मपरक है। सत्य शब्द भी उसी प्रकार का है। आदरार्थ दो बार प्रयोग किया गया है। हे कौलोपनिषद्! मैं तुम्हें ही सत्य कहता हूँ, अन्य किसी को नहीं। वह मेरी रक्षा करे, वक्ता की रक्षा करे। त्रिविध शान्ति के लिए ही ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः का प्रयोग किया गया है।

अथातो धर्म्मजिज्ञासा। ज्ञानं बुद्धिश्च। ज्ञानं मोक्षैककारणम्। मोक्षस्सर्वात्मतासिद्धिः। पञ्च विषयाः प्रपञ्चः ।तेषां ज्ञानस्वरूपाः। योगो मोक्षः॥

अब धर्मजिज्ञासा अर्थात् धर्म की विमर्श-शक्ति की जिज्ञासा अर्थात् ज्ञान के लिए विचार करते हैं। ज्ञानं बुद्धिश्च अर्थात् ज्ञान और बुद्धि। ये दोनों ही धर्म के स्वरूप हैं। ज्ञान ही मोक्ष का एकमात्र कारण (हेतु) है।

सब से स्वात्मा का अभेद ही सर्वात्मता है। इस भाव की सिद्धि इसका सतत बोध शब्द आदि पाँचों (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) विषयों से होने वाली अनुभूति ही प्रपञ्च है। यह उनके (इन्द्रियों के) ज्ञान का स्वरूप है। **योगो मोक्षः** अर्थात् वृत्ति निरोध योग है, वैसे ही मोक्ष भी योग है।

अधर्म्मकारणाज्ञानमेव ज्ञानम्। प्रपञ्च ईश्वरः। अनित्यं नित्यम्। अज्ञानं ज्ञानम्। अधर्म्म एव धर्म्मः। एष मोक्षः। पञ्च बन्धा ज्ञानस्वरूपाः। पिण्डाज्जननम्। तत्रैव मोक्षः।

एतज्ज्ञानम्। सर्वेन्द्रियाणां नयनं प्रधानम्। धर्म्मविरुद्धाः कार्य्याः। धर्म्मविहिता न कार्य्याः। सर्वं शाम्भवीरूपम्।

अधर्म का कारण अज्ञान है, ऐसा बोध होना, ही वस्तुतः ज्ञान है। प्रपञ्च जिसके कारण है, वही ईश्वर है। इसी प्रकार कारण रूप से अनित्य में नित्य, अज्ञान में ज्ञान, अधर्म में धर्म को समझा जा सकता है। यह बोध ही मोक्ष है। इसी तरह पाँचों (प्राणों-तन्मात्राओं) को जो बाँधे है, उसी चेतन को समझना ज्ञान का असली रूप है। जो ब्रह्माण्ड में वही पिण्ड में इस आधार पर पिण्ड से भी नया जन्म होता है। जहाँ जन्म बन्धन है, वही मोक्ष भी है। यह जो कहा गया है, वही ज्ञान है। ब्रह्म की ओर ले जाने के कारण इन्द्रियों में नयन (तथ्य का बोध कराने में सक्षम दृष्टि) ही प्रधान है। आगे के वाक्य उलट बाँसियों की तरह हैं, कार्य धर्म के विरुद्ध होते है अर्थात् धर्मभाव प्रधान है, जो लोग भाव की उपेक्षा करके केवल कर्मकाण्ड को मुख्य मानते हैं, वे धर्म विरुद्ध हैं। इसी प्रकार धर्म में विहित जो मूलभाव हैं, वे किसी कर्म से बँधे नहीं हैं। धर्म वास्तव में कल्याणकारी (शाम्भवी) रूप है।

आम्नाया न विद्यन्ते। गुरुरेक :। सर्वैक्यताबुद्धिमन्ते। आमन्त्रसिद्धेः। मदादिस्त्याज्यः॥

'आम्नाया न विद्यन्ते' उक्त संदर्भ में विदित होने के कारण उसके प्रति वेद की अनुमति भी आवश्यक नहीं है। इसीलिए अध्यास-भाष्य में भगवत्पाद ने यह कहा था कि शास्त्र भी अविद्या के समान ही विषय हैं। **गुरुरेकः।** गुरुतत्त्व भी (ईश्वर की तरह) एक ही है, जो शास्त्रोक्त लक्षणों के रूप में विभिन्न व्यक्तियों के माध्यम से व्यक्त होता रहता है। **'सर्वैक्यताबुद्धिमन्ते'** इस रीति से वर्तमान साधक भी अन्तकाल के समय भी अद्वैतबुद्धि को प्राप्त करता है। **'आमन्त्रसिद्धेः'** यह अधिकार सूत्र है। यहाँ से लेकर मन्त्रसिद्धि होने के पूर्व तक जिन नियमों का अनुष्ठान कर्त्तव्य है, वे ही धर्म कहलाते हैं। **'मदादिस्त्याज्यः'**। मादक द्रव्यों के सेवन से उत्पन्न विकार ही मद है। आदिपद से अन्य विकारों का ग्रहण किया गया है अर्थात् वे भी मदवत् ही त्याज्य हैं। काम, क्रोध आदि छः शत्रुओं का त्याग भी अनिवार्य है।

प्राकट्यं न कुर्य्यात्। न कुर्य्यात्पशुसम्भाषणम्। अन्यायो न्यायः।

प्राकट्यं न कुर्य्यात्। साधना काल में जो अनुभूतियाँ होती हैं, उन्हें कौतुकवश या आत्म प्रशंसा की कामना से जहाँ-तहाँ प्रकट नहीं करना चाहिए। केवल उपयुक्त मार्ग दर्शक से ही उनके सन्दर्भ में परामर्श उचित है।

न कुर्यात् पशु सम्भाषणम्। पशुओं को ज्ञान सुनाना निरर्थक है, क्योंकि वे उसे समझ नहीं सकते। इसी प्रकार जिनमें ग्रहणशीलता नहीं है, उनसे सम्भाषण करना अपना समय नष्ट करना ही है। अथवा जो केवल बोलने के लिए ही बोलते हैं उनसे भी बहस या चर्चा करना व्यर्थ है। ऐसा करने का निषेध है। विद्यारहित होने से बहिर्मुख सभी जन पशु होते हैं, अतः उनसे सम्भाषण नहीं करना चाहिए; क्योंकि यह उपासना ही वस्तुतः विद्या है। शिल्प आदि कलाओं के विशेषज्ञ को विद्वान् (विद्यावान्) नहीं कहा जाता है। अतः इन बहिर्मुख लोगों के साथ भली-भाँति अपने हार्दिक भावों को प्रकट करने सम्बन्धी बातचीत नहीं करनी चाहिए। वैसे आपात भाषण का निषेध नहीं है। **अन्यायो न्यायः।** न्याय दर्शन में विभिन्न सूत्रों पर तर्क प्रस्तुत किये

गये हैं। इस सूत्र का अर्थ है कि कहीं-कहीं तर्क नहीं करना ही न्याय संगत है। एक तो ऊपर कहे अनुसार पशु तुल्य व्यक्तियों से तर्क न करना और दूसरे श्रद्धास्पद सिद्ध पुरुषों के निर्देशों में तर्क बुद्धि न लगाना ही उचित है, न्याय संगत है।

न गणयेत्कमपि। आत्मरहस्यं न वदेत्। शिष्याय वदेत्। अन्तः शाक्तः। बहिः शैवः। लोके वैष्णवः। अयमेवाचारः। आत्मज्ञानान्मोक्षः।

न गणयेत्कमपि। अपने सिद्धान्त के विरोध में बोलने वाला यदि ब्रह्मा भी हो, तो उसको नहीं मानना चाहिए अर्थात् अपने सिद्धान्त पर दृढ़ विश्वास होना चाहिए। **आत्मरहस्यं न वदेत्।** उपासनात्मक रहस्य का प्रकट करना आपत्तिजनक है, अतः मित्र को भी नहीं बताना चाहिए। **शिष्याय वदेत्**- शिष्य को ही बताना चाहिए। स्मृति भी यही बताती है कि उपदेश की कर्ण परम्परा (श्रवण परम्परा) से ही यह रहस्य धरती पर अवतरित हुआ है। **अन्तः शाक्तः बहिः शैवः। लोके वैष्णवः।** अन्तः में सभी के शक्ति विद्यमान है,अतः सभी शाक्त हैं। शक्ति को बाहर कल्याणकारी रूप में ही प्रकट किया जाना चाहिए।इस शिव प्रयोग के कारण बाहर सभी शैव हैं। लोक में उस शक्ति के प्रकट प्रवाह का उपयोग पोषण के निमित्त होना चाहिए, इस आधार पर लोक में सभी वैष्णव हैं। **अयमेवाचारः** रहस्यसहस्रनाम में विष्णु-शिव-शक्ति इन तीनों का उत्तरोत्तर अधिक फल, उत्तरोत्तर रहस्य की अधिकता के अभिप्राय से ही स्पष्ट किया गया है। यही परम्परागत सम्प्रदायाचार है। **आत्मज्ञानान्मोक्षः।** इस प्रकार आत्मज्ञान के द्वारा ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

लोकान्न निन्द्यात्। इत्यध्यात्मम्। व्रतं न चरेत्। न तिष्ठेन्नियमेन। नियमान्न मोक्षः। कौलप्रतिष्ठां न कुर्य्यात्। सर्वसमो भवेत्। स मुक्तो भवति।

लोकान्न निन्द्यात्। प्रवाहण आदि रूप वाले अनेक प्रकार के दर्शन हैं, वे सभी अपने-अपने अधिकारिभेद के आधार पर प्रमाणरूप ही हैं। अपने मत से भिन्न दिखने के कारण उनकी निन्दा कदापि नहीं करनी चाहिए। **न बुद्धिभेदं इति अध्यात्मम्।** आत्मवत्सर्वभूतेषु की अनुभूति होने पर निन्दा बुद्धि या भेद बुद्धि नहीं रह जाती। यही अध्यात्म है। **व्रतं न चरेत्।** व्रतों के माध्यम से आत्मा पर छाये मल-अवरोधों को दूर किया जाता है। आत्म-प्रतिष्ठित हो जाने पर, उस स्तर के साधक को परम्परागत व्रतों के आचरण की जरूरत नहीं रह जाती। उन्हें उनके लिए आग्रह नहीं रखना चाहिए। **न तिष्ठेन्नियमेन।** उस स्थिति में लौकिक नियमों की आवश्यकता भी नहीं रह जाती। उसी का यह विवरण है। अतः नियम के निश्चित बन्धनरूप होने से आत्मानुसन्धान में बाधा उत्पन्न होती है। **नियमान्नमोक्षः।** आत्मानुसन्धान के अभाव में मोक्ष में विलम्ब होता है, इसी का हेत्वर्थक यह सूत्र दिया है। **कौल प्रतिष्ठां न कुर्य्यात्।** यदि कोई व्यक्ति जो न्याय को प्रस्तुत करने में निपुण है और श्रेष्ठ न्यायों के द्वारा कौलमार्ग की स्थापना करने में समर्थ हो, उसे भी इस मार्ग की प्रतिष्ठा नहीं करनी चाहिए; क्योंकि ऐसा करने से प्राकट्य भंग होने की आपत्ति आएगी, इसीलिए इस शास्त्र के विषय में ग्रन्थकार के भी कौलप्रतिष्ठारूप होने से वहाँ भी निषेध प्रवृत्ति होने से साम्प्रदायिकों के लिए भी कतिपय अंशों के प्रकट न करने के लिए गुरुमुख से ही ज्ञेय मानकर स्थान-स्थान पर लेख मिलता है। **सर्वसमोभवेत्।** शास्त्रों में विहित आचरणों का ही यह निष्कर्ष है कि सम्पूर्ण प्राणियों में तथा सभी जड़ पदार्थों में समभाव रखकर व्यवहार करना चाहिए। **स मुक्तो भवति।** इस प्रकार आत्म साधना करने वाला तुरन्त मुक्त हो जाता है। जो कुछ कमी वाले हैं, वे भी शनैः-शनैः मुक्त हो जाते हैं, यही भाव है।'

पठेदेतानि सूत्राणि प्रातरुत्थाय देशिकः। आज्ञासिद्धिर्भवेत्तस्य इत्याज्ञा पारमेश्वरी॥

जो प्रातः उठकर अर्थानुसन्धानपूर्वक इन कौल सूत्रों को पढ़ता है वही देशिक है, उसी को आज्ञासिद्धि (आज्ञा चक्र की सिद्धि अथवा आदेश की सिद्धि) प्राप्त होती है। उसी को शिवभाव (कल्याणकारी भाव) की सिद्धि होती है। ऐसी परमेश्वर की आज्ञा है, अतएव अविश्वास नहीं करना चाहिए।

यश्चाचार विहीनोऽपि यो वा पूजां न कुर्वते। यदि ज्येष्ठं न मन्येत, नन्दते नन्दने वने॥

पूर्वोक्त आचरणों का जो अनुष्ठान नहीं करता है, संशयात्मा होकर जो उक्त प्रकार की पूजा नहीं करता है अथवा यही मार्ग सर्वोत्तम है, ऐसा न मानते हुए जो नाममात्र का उपासक है, वह उपर्युक्त फल न पाते हुए भी स्वर्गमात्र तो प्राप्त कर ही लेता है। फिर जो विधिवत् उपासना करता है, उसको तो यथोक्तफल प्राप्ति में कोई संशय है ही नहीं, यही अभिप्राय है । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

॥ ॐ शन्न कौलिकः ....इति शान्तिः ॥

॥ इति कौलोपनिषत्समाप्त ॥

॥ गणेशपूर्वतापिन्युपनिषद् ॥

गणेशं प्रमथाधीशं निर्गुणं सगुणं विभुम्।
योगिनो यत्पदं यान्ति तं गौरीनन्दनं भजे॥

ॐ नमो वरदाय विघ्नहर्त्रे॥ अथातो ब्रह्मोपनिषदं व्याख्यास्यामः। ब्रह्मा देवानां सवितुः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम्। धाता वसूनां सुरभिः सृजानां नमो ब्रह्मणेऽथर्वपुत्राय मीढुषे॥ धाता देवानां प्रथमं हि चेतो मनो वनानीव मनसाऽकल्पयद्यः। नमो ब्रह्मणे ब्रह्मपुत्राय तुभ्यं ज्येष्ठायाथर्वपुत्राय धन्विने॥ १॥

मङ्गलाचरणः- प्रमथादि गणों के स्वामी जो निर्गुण एवं सगुणरूप हैं, योगिजन जिनको पाने की कामना करते हैं, उन गौरी-पुत्र गणेश की वन्दना करता हूँ।

विघ्नहर्त्ता, वरदाता, श्रीगणपति को नमस्कार है। अब ब्रह्मोपनिषद् की व्याख्या करते हैं।

देवताओं में ब्रह्मा के सदृश, कवियों के सृजनकर्त्ता, विप्रों में ऋषितुल्य, पशुओं में महिषतुल्य, वसुओं में धातासम, सृजनकर्त्ताओं में सुरभि तुल्य ऐसे अथर्वपुत्र मीढ़वान् ब्रह्म को प्रणाम है। सर्वप्रथम चित्त ही देवताओं की उत्पत्ति करने वाला है। जिसने अपने मन के द्वारा ही जल के समान मन की रचना की, उन ज्येष्ठ अथर्वपुत्र ब्रह्मरूप ब्रह्मपुत्र धनुर्धर! आपको प्रणाम है॥ १॥

ॐ प्रजापतिः प्रजा असृजत। ताः सृष्टा अब्रुवन् कथमन्नाद्या अभवन्निति। स त्रेधा व्यभजद्भूर्भुवः स्वरिति। स तपोऽतप्यत। स ब्रह्मा स विष्णुः स शिवः स प्रजापतिः सेन्द्रः सोऽग्निः समभवत्। स तूष्णीं मनसा ध्यायन् कथमिमेऽन्नाद्याः स्युरिति। सोऽपश्यदात्मनाऽऽत्मानं गजरूपधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजं यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते यतो वायन्ति यत्रैव यन्ति च। तदेतदक्षरं परं ब्रह्म। एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च। खं वायुरापो ज्योतिः पृथिवी विश्वस्य धारिणी। पुरुष एवेदं विश्वं तपो ब्रह्म परामृतमिति॥ २॥

प्रजापति ने प्रजाओं की सृष्टि की। उत्पन्न होकर उन्होंने कहा, अन्न आदि किस प्रकार उत्पन्न हुए। प्रजापति ने भूः, भुवः एवं स्वः लोक के रूप में सृष्टि को तीन भागों में बाँट दिया। प्रजापति ने तप किया। तप के प्रभाव से वह ब्रह्मा, वही विष्णु, वही शिव, वही इन्द्र, वही अग्नि रूप में हो गये। उनने मौन मन से चिन्तन किया कि ये अन्न आदि किस प्रकार उत्पन्न हों। तब उन प्रजापति ने स्वयं ही स्वयं को गजरूपधारी गणपति के रूप में देखा, जिनका चन्द्र के समान निर्मल, स्वच्छ, श्वेत-गौर वर्ण था। चार भुजाएँ थीं। जिससे ये समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, जहाँ से आते हैं और जिसमें ही लीन हो जाते हैं, वही वह अक्षर ब्रह्म है। प्राण, मन एवं समस्त इन्द्रियाँ भी इसी से उत्पन्न होते हैं। आकाश, वायु, जल, तेज, विश्वधात्री पृथिवी, यह सब विश्व, पुरुष ही है; तप ही ब्रह्म है, वही परम अमृत है॥ २॥

सोऽस्तुवत नमो ब्रह्मणे नमो ब्राह्मणेभ्यो नमो वेदेभ्यो नमो देवेभ्यो नम ऋषिभ्यो नमः कुल्येभ्यः प्रकुल्येभ्यो नमः सवित्रे प्रसवित्रे नमो भोज्याय प्रकृष्टाय कपर्दिने चक्राय चक्रधरायान्नायान्नपतये शिवाय सदाशिवाय तुर्याय तुरीयाय भूर्भुवः स्वः पते रायस्पते वाजिपते गोपते ऋग्यजुःसामाथर्वाङ्गिरःपते नमो ब्रह्मपुत्रायेति॥ ३॥

प्रजापति ने स्तुति की- ब्रह्म को नमन करता हूँ, ब्रह्मज्ञानियों को नमस्कार करता हूँ। वेदों को नमस्कार है, देवों को नमस्कार है, ऋषियों को नमस्कार है, कुल्यों (प्रतिष्ठित मनुष्यों) को नमस्कार है, प्रकुल्यों (उत्कृष्ट प्रतिष्ठितों) को नमस्कार है, सविता को नमस्कार है, प्रसविता को नमस्कार है, भोज्य को नमस्कार है, प्रकृष्ट को नमस्कार है, कपर्दी को नमस्कार है, चक्र को नमस्कार है, चक्रधर को नमस्कार है, अन्न को नमस्कार है, अन्नपति को नमस्कार है। शिव को नमस्कार है, सदाशिव को नमस्कार है। तुर्य को नमस्कार है, तुरीया को नमस्कार है। भूर्भुवः स्वः पति को नमस्कार है, रायस्पति को नमस्कार है, वाजिपति को नमस्कार है, गोपति को नमस्कार है, ऋग्यजुः सामाथर्वाङ्गिरः पति को नमस्कार है। ब्रह्मपुत्र को नमस्कार है॥ ३॥

सोऽब्रवीद्वरदोऽस्म्यहमिति। स प्रजापतिरब्रवीत्कथमिमेऽन्नाद्याः स्युरिति। स होवाच ब्रह्मपुत्रस्तपस्तेपे सिद्धक्षेत्रे महायशाः। स सर्वस्य वक्ता सर्वस्य ज्ञातासीति। स होवाच तपस्यन्तं सिद्धारण्ये भृगुपुत्रं पृच्छध्वमिति। ते प्रत्याययुः। स होवाच किमेतदिति। ते होचुः कथं वयमन्नाद्या भवाम इति। स तूष्णीं मनसा ध्यायन् कथमिमेऽन्नाद्याः स्युरिति स एतमानुष्टुभं मन्त्रराजमपश्यत्। यदिदं किञ्च सर्वमसृजत। तस्मात्सर्वमानुष्टुभमित्याचक्षते यदिदं किञ्च। अनुष्टुभा वा इमानि भूतानि जायन्ते। अनुष्टुभा जातानि जीवन्त्यनुष्टुभं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तस्यैषा भवति- अनुष्टुप्प्रथमा भवत्यनुष्टुबुत्तमा भवति। वाग्वा अनुष्टुब्वाचैव प्रयन्ति वाचैवोद्यन्ति। परमा वा एषा छन्दसां यदनुष्टुप्। सर्वमनुष्टुप्। एतं मन्त्रराजं यः पश्यति स पश्यति। स भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति। तेन सर्वज्ञानं भवति। तदेतन्निदर्शनं भवति- एको देवः प्रापको यो वसूनां श्रिया जुष्टः सर्वतोभद्र एषः। मायादेवो बलगहनो ब्रह्मारातीस्तं देवमीडे दक्षिणास्यम्॥ आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सङ्गृभाय। महाहस्ती दक्षिणेन॥ इति सहस्रकृत्वस्तुष्टाव॥ ४॥

स्तुति सुनकर गणपति ने कहा- मैं वर प्रदान करता हूँ। प्रजापति ने कहा- ये अन्न आदि कैसे होंगे? तब गणपति ने कहा- सिद्धक्षेत्र में महायशस्वी ब्रह्मपुत्र ने तप किया है। वे सब कुछ बताने वाले हैं, वे ही सब कुछ जानते हैं। उन्होंने कहा सिद्धारण्य में तपस्या करने वाले भृगुपुत्र से ही पूछो। तब वे वापस लौटकर आए। भृगुपुत्र ने कहा— क्या बात है? उन्होंने उत्तर में कहा- हम किस प्रकार अन्न आदि हो सकते हैं? भृगुपुत्र ने मौन धारण कर ध्यान किया, सोचा कि ये अन्न आदि कैसे हो सकते हैं? तब उन्होंने आनुष्टुभ मन्त्रराज (अनुष्टुप छन्द में आबद्ध मंत्र 'ॐ उग्रवीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम्' आदि जो त्रिपाद विभूति महानारायणोपनिषद् ७/४० में वर्णित है।) को ध्यान में देखा कि इसी ने सम्पूर्ण विश्व का सृजन किया है। इसलिए जो कुछ भी है, वह सब आनुष्टुभ कहा जाता है। अनुष्टुभ् से ही ये सब प्राणी जन्म लेते हैं, जन्म लेकर अनुष्टुभ् से ही जीवित रहते हैं, अनुष्टुभ् की ओर ही प्रयाण करते हैं, गतिशील होते हैं तथा अन्त में अनुष्टुभ् में ही समा (विलीन) जाते हैं। उस

प्रजापति की यह अनुष्टुभ् ही प्रथम वाणी है। यही अनुष्टुभ् उसकी उत्तम वाणी है, वस्तुतः वाक् ही अनुष्टुभ् है। वाणी के द्वारा ही प्रयाण करते हैं। वाणी के द्वारा ही उन्नति करते हैं। छन्दों में अनुष्टुभ् ही परम श्रेष्ठ है। अनुष्टुभ् ही यह सब कुछ है। इस प्रकार जो मन्त्रराज को देखता है, वही वास्तव में देखता है। वही भुक्ति एवं मुक्ति को प्राप्त करता है। इसी से सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है। उदाहरण दिया गया है- **एको देवः........ दक्षिणेन** अर्थात् विश्व को महान् सम्पत्तियों को प्राप्त कराने वाला एक ही देव है, यही सब प्रकार का कल्याण करने वाला एवं श्रीसम्पन्न है। गुप्त हिंसकों को विनष्ट करने वाला जो मायामति एवं अजन्मा है, आसुरी वृत्तियों को नष्ट करने वाले इस दक्षिणामुख देवता की (हम) स्तुति करते हैं।

महान् भुजाओं वाले हे इन्द्रदेव! आप हमें न्यायोपार्जित, प्रशंसनीय ऐश्वर्य दाहिने हाथ से ससम्मान प्रदान करें। इस प्रकार सहस्र बार स्तुति की॥ ४॥

अथापश्यन्महादेवं श्रिया जुष्टं मदोत्कटम्। सनकादिमहायोगिवेदविद्भिरुपासितम्॥ द्रुहिणादिमदेवेशषट्पदालिविराजितम्। लसत्कर्णं महादेवं गजरूपधरं शिवम्॥ स होवाच वरदोऽस्मीति। स तूष्णीं मनसा वव्रे। स तथेति होवाच। तदेष श्लोकः- स संस्तुतो दैवतदेवसूनुः सुतं भृगोर्वाक्यमुवाच तुष्टः। अवेहि मां भार्गव वक्रतुण्डमनाथनाथं त्रिगुणात्मकं शिवम्॥ अथ तस्य षडङ्गानि प्रादुर्बभूवुः। स होवाच जपध्वमानुष्टुभं मन्त्रराजं षट्पदं सषडक्षरम्। इति यो जपति स भूतिमान् भवतीति यूयमन्नाद्याभवेयुरिति। तदेतन्निदर्शनम्-गणानां त्वा गणनाथं सुरेन्द्रं कविं कवीनामतिमेधविग्रहम्। ज्येष्ठराजं वृषभं केतुमेकं सा नः शृण्वन्नूतिभिः सीद शश्वत्॥ ५॥

तब लक्ष्मी द्वारा सेवित मदोत्कट, सनकादि महायोगियों से उपासित, ब्रह्मादि देवों से एवं भ्रमरालि (भ्रमर पंक्ति) से सुसेवित, विशालकर्ण, गजरूपधारी, कल्याणकर महान् देव (गणपति) का दर्शन किया। देव ने कहा- मैं वरदाता हूँ। तब उसने मौन होकर वरदान माँग लिया, देव ने तथास्तु कहकर वरदान दे दिया। स्तुति से सन्तुष्ट होकर देवाधिदेवसुत गणराज ने भृगु के पुत्र से कहा- हे भार्गव! अनाथों के नाथ, त्रिगुण स्वरूप वक्रतुण्ड मुझे ही जानो। फिर उसके छः अंग प्रकट हुए, तब उसने कहा- छः अक्षरों वाले आनुष्टुभ मन्त्रराज षट्पद का जप करो। जो इसका जप करता है, वह ऐश्वर्यशाली हो जाता है। अतः तुम भी अन्नादिरूप हो जाओगे। उदाहरण भी है- **गणानां त्वा..... सीद शश्वत्** अर्थात् हे गणों के अधिपति, सुरश्रेष्ठ, ज्ञानियों के ज्ञानी अतिमेधावी, देवों में ज्येष्ठ (प्रथम पूज्य), श्रेष्ठ, एकमात्र ज्ञानी वे देव हमारी प्रार्थना पर ध्यान देते हुए अपनी रक्षाशक्तियों के साथ हम पर सदैव प्रसन्न रहें या यहाँ विराजमान रहें॥ ५॥

ते होचुः कथमानुष्टुभं मन्त्रराजमभिजानीम इति। स एतमानुष्टुभं षट्पदं मन्त्रराजं कथयाञ्चक्रे। स साम भवति। ऋग्वै गायत्री यजुरुष्णिगनुष्टुप्साम। स आदित्यो भवति। ऋग्वै वसुर्यजू रुद्राः सामादित्या इति। स षट्पदो भवति। साम वै षट्पदः। ससागरां सप्तद्वीपां सपर्वतां वसुन्धरां तत्साम्नः प्रथमं पादं जानीयाद्रायस्पोषस्य दातेति। तेन सप्तद्वीपाधिपो भवति। भूः पतित्वं च गच्छति। यक्षगन्धर्वाप्सरोगणसेवितमन्तरिक्षं द्वितीयं पादं जानीयान्निधिदातेति। तेन

धनदादिकाष्ठापतिर्भवति भुवःपतित्वं च गच्छति। वसुरुद्रादित्यैः सर्वैर्देवैः सेवितं दिवं तत्साम्नस्तृतीयं पादं जानीयादन्नदो मत इति। तेन देवाधिपत्यं स्वः पतित्वं च गच्छति ऋग्यजुः सामाथर्वाङ्गिरोगण सेवितं ब्रह्मलोकं तुर्यं पादं जानीयाद्रक्षोहण इति। तेन देवाधिपत्यं ब्रह्माधिपत्यं च गच्छति। वासुदेवादिचतुर्व्यूहसेवितं विष्णुलोकं तत्साम्नः पञ्चमं पादं जानीयाद्बलगहन इति। तेन सर्वदेवाधिपत्यं विष्णुलोकाधिपत्यं च गच्छति। ब्रह्मस्वरूपं निरञ्जनं परमव्योम्निकं तात्साम्नः षष्ठं पादं जानीयात्। तेन वक्रतुण्डाय हुमिति यो जानीयात्सोऽमृतत्वं च गच्छति। सत्यलोकाधिपत्यं च गच्छति॥ ६॥

तब उन्होंने कहा आनुष्टुभ मन्त्रराज को हम कैसे जान सकेंगे?। तब उसने षट्पद आनुष्टुभ मन्त्रराज बतलाया। वही साम है। ऋग्वेद गायत्री है। यजुर्वेद उष्णिक् है, अनुष्टुप् साम है। वही आदित्य हो जाता है। ऋग्वेद वसु है। यजुर्वेद रुद्र है। साम आदित्य है, वही षट्पद होता है। साम ही षट्पद है। सागरों सहित, सप्तद्वीपों सहित, पर्वतों सहित जो वसुन्धरा है, उसे साम का प्रथम चरण जानना चाहिए। वही पशु आदि सम्पत्तियों का प्रदाता है। इसी से सप्तद्वीपों का स्वामित्व प्राप्त होता है। पृथिवी का स्वामित्व प्राप्त होता है। यक्ष, गन्धर्व एवं अप्सराओं से सेवित अन्तरिक्ष ही साम का द्वितीय पाद जानना चाहिए, जो निधिप्रदाता है। उससे कुबेर की दिशा का स्वामित्व प्राप्त होता है। भुवः लोक का स्वामित्व प्राप्त होता है। वसु-रुद्र एवं आदित्यों आदि सभी देवों से सेवित द्युलोक ही साम का तृतीय पाद है, ऐसा जानना चाहिए। यह अन्नदाता माना गया है। इससे देवाधिपतित्व एवं स्वर्गाधिपतित्व प्राप्त हो जाता है। ऋग्, यजुः, साम एवं अथर्व-अंगिरादि से सेवित ब्रह्मलोक ही साम का चतुर्थ पाद है- ऐसा जानना चाहिए। यही राक्षसों का विनाशक है। इसी तुर्यपाद से देवाधिपतित्व एवं ब्रह्माधिपतित्व भी प्राप्त हो जाता है।

वासुदेवादि चतुर्व्यूह से सेवित विष्णुलोक ही साम का पञ्चम पाद है-ऐसा जानना चाहिए। यही बलगहन है। इसी से सर्वदेवाधिपतित्व एवं विष्णुलोकाधिपतित्व भी प्राप्त हो जाता है। परम-व्योम में स्थित निरञ्जन ब्रह्मस्वरूप ही साम का छठा पाद है, ऐसा जानना चाहिए। इस प्रकार जो 'वक्रतुंडाय हुम्' इस षडक्षर को जानता है, अमृतत्व को प्राप्त कर लेता है। सत्यलोक के स्वामित्व को प्राप्त कर लेता है॥ ६॥

ऋग्यजुः सामाथर्वाश्चत्वारः पादा भवन्ति। रायस्पोषस्य दाता चेति प्रथमः पादो भवति, ऋग्वै प्रथमः पादः। निधिदाताऽन्नदो मत इति द्वितीयः पादः, यजुर्वै द्वितीयः पादः। रक्षोहणो वो बलगहन इति तृतीयः पादः, साम वै तृतीयः पादः। वक्रतुण्डाय हुमिति चतुर्थः पादः अथर्वश्चतुर्थः पादोऽथर्वश्चतुर्थः पाद इति॥ ७॥

ऋग्, यजुः, साम एवं अथर्व ये चार पाद होते हैं। प्रथमपाद पशु आदि सम्पत्तियों का प्रदाता है। ऋग्वेद ही प्रथम पाद है। निधिदाता-अन्नप्रदाता द्वितीय पाद माना गया है। यजुः ही द्वितीय पाद है। रक्षोहन्ता (राक्षसों का नाशक) एवं बलगहन (शत्रु-नाशक) तृतीय पाद होता है। साम ही तृतीय पाद है। वक्रतुंडाय हुम् यह चतुर्थपाद है। अथर्व ही चतुर्थ पाद है (दुबारा लिखा गया- **अथर्वश्चतुर्थः पादः** मन्त्र व प्रथम उपनिषद् समाप्ति का सूचक है।)॥ ७॥

॥ इति गणेशपूर्वतापिन्युपनिषत्सु प्रथमोपनिषद्॥

स होवाच प्रजापतिरग्निर्वै वेदा इदं सर्वं विश्वानि भूतानि विराट् स्वराट् सम्राट् तत्साम्नः प्रथमं पादं जानीयात्। ऋग्यजुःसामाथर्वरूपः सूर्योऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषस्तत्साम्नो द्वितीयं पादं जानीयात्। य ओषधीनां प्रभविता तारापतिः सोमस्तत्साम्नस्तृतीयं पादं जानीयात्। यो ब्रह्मा तत्साम्नश्चतुर्थं पादं जानीयात्। यो हरिस्तत्साम्नः पञ्चमं पादं जानीयात्। यः शिवः स परं ब्रह्म तत्साम्नोऽन्त्यं पादं जानीयात्। यो जानीते सोऽमृतत्वं च गच्छति परं ब्रह्मैव भवति। तस्मादिदमानुष्टुभं साम यत्र क्वचिन्नाचष्टे। यदि दातुमपेक्षते पुत्राय शुश्रूषवे दास्यत्यन्यस्मै शिष्याय वेति॥ १॥

तब प्रजापति ने कहा- अग्नि ही वेद है। यह सब कुछ, सम्पूर्ण प्राणी, विराट्-स्वराट्-सम्राट् इन सबको साम का प्रथम पाद जानना चाहिए। ऋक्, यजु, साम एवं अथर्व, सूर्य आदित्य मण्डलस्थ हिरण्यगर्भ पुरुष, इन सबको साम का द्वितीय पाद जानना चाहिए। जो औषधियों के उत्पादक तारापति सोम हैं, उनको साम का तृतीय पाद जानना चाहिए। जो ब्रह्मा हैं, उनको साम का चतुर्थ पाद जानना चाहिए। जो हरि अर्थात् विष्णु हैं, उनको साम का पञ्चम पाद जानना चाहिए। जो शिव हैं, वही परब्रह्म हैं। उनको साम का अन्तिम पद जानना चाहिए। जो इस रहस्य को जानता है, वह अमृत पद को प्राप्त करता है, वह परब्रह्म ही हो जाता है। इसलिए यही आनुष्टुभ साम है, जिसके विषय में कहीं पर भी कुछ नहीं कहा जाता है। यदि देना अपेक्षित हो, तो सेवा करने वाले पुत्र अथवा सेवाभावी शिष्य को ही दिया जाए॥ १॥

तस्य हि षडङ्गानि भवन्ति – ॐ हृदयाय नमः शिरसे स्वाहा, शिखायै वषट्, कवचाय हुं। नेत्रत्रयाय वौषट्, अस्त्राय फडिति प्रथमं प्रथमेन द्वितीयं द्वितीयेन तृतीयं तृतीयेन चतुर्थं चतुर्थेन पञ्चमं पञ्चमेन षष्ठं षष्ठेन प्रत्यक्षरमुभयतो माया लक्ष्मीश्च भवति। माया वा एषा वैनायकी सर्वमिदं सृजति, सर्वमिदं रक्षति, सर्वमिदं संहरति, तस्मान्मायामेतां शक्तिं वेद। स मृत्युं जयति। स पाप्मानं तरति। स महतीं श्रियमश्नुते। सोऽभिवादी षट्कर्मसंसिद्धो भवत्यमृतत्वं च गच्छति। मीमांसन्ते ब्रह्मवादिनो ह्रस्वा वा दीर्घा वा प्लुता वेति। यदि ह्रस्वा भवति सर्वपाप्मानं तरत्यमृतत्वं च गच्छति। यदि दीर्घा भवति महतीं श्रियमाप्नुयादमृतत्वं च गच्छति। यदि प्लुता भवति ज्ञानवान् भवत्यमृतत्वं च गच्छति। तदेतदृषिणोक्तं निदर्शनम्– स ईं पाहि य ऋजीषी तरुद्रः स श्रियं लक्ष्मीमौपलाम्बिकां गाम्। षष्ठीं च यामिन्द्रसेनेत्युत आहुस्तां विद्यां ब्रह्मयोनिस्वरूपाम्॥ तामिहायुषे शरणं प्रपद्ये। क्षीरोदार्णवशायिनं कल्पद्रुमाधःस्थितं वरदं व्योमरूपिणं प्रचण्डदण्डदोर्दण्डं वक्रतुण्डस्वरूपिणं पार्श्वाधःस्थितकामधेनुं शिवोमातनयं विभुम्। रुक्माम्बरनिभाकाशं रक्तवर्णं चतुर्भुजम्। कपर्दिनं शिवं शान्तं भक्तानामभयप्रदम्॥ उन्नतप्रपदाङ्गुष्ठं गूढगुल्फं सपार्ष्णिकम्। पीनजंघं गूढजानुं स्थूलोरुं प्रोन्नमत्कटिम्॥ निम्ननाभिं कम्बुकण्ठं लम्बोष्ठं लम्बनासिकम्। सिद्धिबुद्ध्युभयाश्लिष्टं प्रसन्नवदनाम्बुजम्॥ इति संसर्गः॥ २॥

इसके भी छः अंग होते हैं। यथा— ॐ हृदयाय नमः, शिरसे स्वाहा, शिखायै वषट्, कवचाय हुं, नेत्रत्रयाय वौषट् एवं अस्त्राय फट्। प्रथम को प्रथम से, द्वितीय को द्वितीय से, तृतीय को तृतीय से, चतुर्थ को चतुर्थ से, पञ्चम को पञ्चम से, षष्ठ को षष्ठ (अक्षर) से युक्त करें। प्रत्येक अक्षर के दोनों ओर माया एवं लक्ष्मी बीज

से संपुटित करना चाहिए। माया अथवा यह वैनायकी शक्ति ही इस सब जगत् की सृष्टि करती है, इस सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करती है। इस सम्पूर्ण जगत् का संहार करती है। इसीलिए जो इस माया को ही शक्ति जानता है, वह मृत्यु को जीत लेता है। वह पापों से तर जाता है। वह अनन्त श्री का उपभोग करता है। वह वादी को वश में कर लेता है। वह षट्कर्म सिद्ध हो जाता है। वह अमृतत्व को प्राप्त कर लेता है। ब्रह्मवादी मनीषी मीमांसा करते हैं कि ह्रस्व है, दीर्घ है अथवा प्लुत है ? यदि (यह माया) ह्रस्व होती है, तो साधक पापों से तर जाता है, अमृतत्व को प्राप्त कर लेता है। यदि दीर्घ होती है, तो महालक्ष्मी प्राप्त करता है एवं अमृतत्व को प्राप्त कर लेता है। यदि प्लुत होती है, तो साधक ज्ञानवान् हो जाता है तथा अमृतपद को भी प्राप्त कर लेता है। ऋषि विशेष ने कहा है— **स ईं पाहि .... शरणं प्रपद्ये ॥**

क्षीरोदधि में शयन करने वाले, कल्पवृक्ष के नीचे बैठने वाले, वरदाता, व्योमस्वरूप, विकट बाहुओं में भीषण दण्डधारण करने वाले, वक्रतुण्डस्वरूप, जिनके समीप भूमि पर कामधेनु बैठी हुई है, शिव एवं उमा के सुपुत्र स्वर्णाभवस्त्रधारी, रक्तवर्ण, चतुर्भुज, जटाधर, कल्याणकारी, शान्त, भक्तरक्षक, जिनके पैरों के अँगूठे ऊँचे उठे हुए हैं, गूढ़ गुल्फ सहित पार्ष्णि (एड़ी) वाले, स्थूल जंघा वाले, गूढ़ जानु वाले, स्थूल उरु वाले, उन्नतकटि वाले, निम्ननाभि वाले, कम्बुकंठ, लम्बोष्ठ, लम्बनासिक, सिद्धि-बुद्धि के मध्य विराजमान जिनका मुखकमल खिला हुआ है। इस प्रकार परिचय सम्पन्न हुआ॥ २॥

अथ छन्दोदैवतम्। अनुष्टुप्छन्दो भवति, द्वात्रिंशदक्षरानुष्टुब भवति। अनुष्टुभा सर्वमिदं सृष्टमनुष्टुभा सर्वमुपसंहृतम्। शिवोमायुतः परमात्मा वरदो देवता। ते होचुः कथं शिवोमायुत इति। स होवाच भृगुपुत्रः प्रकृतिपुरुषमयो हि स धनद इति, प्रकृतिर्माया पुरुषः शिव इति। सोऽयं विश्वात्मा देवतेति। तदेतन्निदर्शनम्— इन्द्रो मायाभिः पुरुहूत ईडे शर्वो विश्वं मायया स्विद्दधार। सोऽजः शेते मायया स्विद्गुहायां विश्वं न्यस्तं विष्णुरेको विजज्ञे॥ तदेतन्माया हंसमयी देवानाम्॥ सर्वेषां वा एतद्भूतानामाकाशः परायणम्। सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव जायन्ते जातानि जीवन्त्याकाशं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तस्मादाकाशबीजं शिवो विद्यात्। तदेतन्निदर्शनम्— हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्। नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहदिति॥ ३॥

अब छन्द का वर्णन प्रारम्भ होता है। अनुष्टुप् छन्द है। अनुष्टुप् ३२ अक्षरों वाला छन्द है। अनुष्टुप् से ही यह सब सृष्टि बनी है, अनुष्टुप् से ही इसका संहार होता है। शिव (पुरुष) और उमा (प्रकृति) से संयुक्त वरदायी देवता हैं। उन्होंने पूछा- शिव उमायुत कैसे ? उस भृगु-पुत्र ने कहा— वह प्रकृति पुरुषमय धनदायी है। प्रकृति माया है। पुरुष ही शिव है। वह यही विश्वस्वरूप देवता है। इस सन्दर्भ में यह उदाहरण है— **इन्द्रो मायाभिः ....विष्णुरेको विजज्ञे॥** अर्थात् जो इन्द्र हैं, वही रुद्र हैं, वे ही श्रीं की, लक्ष्मी की आलम्बनवती पृथ्वी की रक्षा करते हैं। छठी शक्ति जिसे इन्द्रसेना कहते हैं, ब्रह्म से उत्पन्न होने वाली उस महाविद्या की शरण में हम जा रहे हैं; क्योंकि वह हमें दीर्घायुष्य प्रदान करने वाली है।

देवताओं की यह माया हंसमयी है। आकाश ही इन सब प्राणियों की परमगति है। ये सभी प्राणी आकाश से ही उत्पन्न हुए हैं। जन्म लेकर आकाश में ही जीवित रहते हैं। आकाश की ओर ही प्रयाण करते हैं, अन्त में आकाश में ही विलीन हो जाते हैं। अतः शिव को आकाशबीज समझना चाहिए। इस सम्बन्ध में वैदिक उदाहरण

यह है —**हंसः शुचिषत् ....बृहदिति**॥ अर्थात् आप पवित्र शुद्ध आचरण वाले, प्रजापालक अन्तरिक्ष में वायु के रूप में स्थित होकर पालन करने वाले, देवों को यज्ञाहुति देने वाले यज्ञ स्थल पर प्रतिष्ठित तथा अतिथि के सर्वत्र पूजनीय हैं। आप ही कष्ट सहन करते हुए भी घर में विद्यमान, नेतृत्व करने वालों में प्रतिष्ठित, सत्य पर आश्रित, श्रेष्ठ पदार्थों में सन्निहित तथा आकाश में विद्यमान हैं। आप जल के उत्पादक, विशेष सामर्थ्यवान् , ज्ञानवान्, विदीर्ण न होने वाले बल से सम्पन्न, महान् और सत्य रूप बल-वीर्य को धारण करने वाले हैं। (यजु० १०.२४, १२.१४)॥ ३॥

अथाधिष्ठानम् – मध्ये बिन्दुं त्रिकोणं तदनु ऋतुगणं वसुदलं द्वादशारं षोडशकर्णिकेति। मध्ये बीजात्मकं देवं यजेत्। वामदक्षिणे सिद्धिर्बुद्धिः। अग्रे कामदुघा षट्कोणे सुमुखादयः षड्विनायकाः। वसुदले वक्रतुण्डाद्यष्टविनायकाः द्वादशारे बटुको वामनो महादशकमहोदरौ सुभद्रो माली वरो राम उमा शिवः स्कन्दो नन्दी। तद्बाह्येऽणिमादिसिद्धयः। षोडशारे दिक्पालाः सायुधा इति॥ ४॥

यन्त्र में स्थिति— मध्य केन्द्र में बिन्दु त्रिकोण तद्बाह्य षड्दल, अष्टदल, द्वादशदल, षोडशकर्णिका है। केन्द्र में बीजात्मक शिव का पूजन करना चाहिए। बाएँ, दाएँ, सिद्धि-बुद्धि का अर्चन करे। आगे कामधेनु षट्कोण में सुमुखादि छः विनायकों का अर्चन करे। अष्टदल में वक्रतुण्ड आदि अष्ट-विनायकों का पूजन करे। द्वादशदल में क्रमशः बटुक, वामन, महादशक, महोदर, सुभद्र, माली, वर, राम, उमा, शिव, स्कन्द, नन्दी का पूजन करे, उसके बाह्यभाग में अणिमादि सिद्धियों का अर्चन करे। षोडशदल कमल में दिक्पालों का आयुधसहित पूजन करना चाहिए॥ ४॥

अथ प्रसारः– य एतेन चतुर्थीषु पक्षयोरुभयोरपि। लक्षं जुहुयादपूपानां तत्क्षणाद्धनदो भवेत्। सिद्धौदनं त्रिमासं तु जुह्वदग्रावनन्यधीः। तावज्जुह्वत्पृथुकान्हि साक्षाद्वैश्रवणो भवेत्॥ उच्चाटयेद्विभीतैश्च मारयेद्विषवृक्षजैः। वश्याय पङ्कजैर्विद्वान्धनार्थी मोदकैर्हुनेत्॥ एवं ज्ञात्वा कृतकर्मा भवति कृतकर्मा भवतीति॥ ५॥

अथ प्रसार— जो इस प्रकार का पूजन करके चतुर्थी तिथि में मंत्र द्वारा दोनों पक्षों की एक लाख आहुतियाँ (अपूपों के द्वारा) प्रदान करता है। वह शीघ्र ही कुबेरवत् धनाढ्य हो जाता है। तीन मास तक सिद्धौदन से आहुतियाँ देने पर कुबेर जैसा ही धनी हो जाता है। विभीतक की आहुतियों से शत्रु का उच्चाटन कर सकता है। विषवृक्ष के फलों से शत्रु का मारण कर सकता है। वशीकरण के लिए कमलपुष्पों से हवन करना चाहिए। इसी प्रकार धन की कामना पूर्ति के लिए मोदक से हवन करना चाहिए। यह रहस्य जान लेने पर साधक कृतकृत्य हो जाता है, कृतकृत्य हो जाता है॥ ५॥

॥ इति गणेशपूर्वतापिन्युपनिषत्सु द्वितीयोपनिषद्॥

अथ होवाच भृगुपुत्रस्तन्त्रं विजिज्ञासितव्यमिति। मूले शून्यं विजानीयात्। शून्यं वै परं ब्रह्म। तत्र सतारं समायं साम न्यसेत्त्रिरेखं भवति, त्रयो हीमे लोकास्त्रयो हीमे वेदाः। ऋग्वै भूः सा माया भवति। यजुर्वै भुवः स शिवो भवति। साम वै स्वः स हिरण्यगर्भो भवति। षट्कोणं भवति षड् हीमे लोकाः षड्वा ऋतवो भवन्ति। तत्रतारमायारमामारविश्वेशधरणीक्रमान्न्यसेत्। अष्टपत्रं भवत्यष्टाक्षरा गायत्री भवति ब्रह्मगायत्रीं न्यसेत्। द्वादशपत्र भवति द्वादशादित्या भवन्ति ते स्वरा भवन्ति। स्वरान् ज्ञात्वादित्यलोकमश्नुते। षोडशपत्रं भवति षोडशकलो वै पुरुषो वर्णो ह वै पुरुषः स लोकाधिष्ठितो भवत्यनुष्टुब् वै पुरुषः ॥ १ ॥

तब भृगु पुत्र ने कहा— तन्त्र की जिज्ञासा करनी चाहिए। मूल में शून्य है, ऐसा जानना चाहिए। शून्य ही परब्रह्म है। वहाँ तार (ॐ) एवं माया (ह्रीं) सहित सोम का न्यास करे। इस प्रकार तीन रेखाएँ होती हैं। तीन ही ये लोक हैं। तीन ही ये वेद हैं। ऋग्वेद भूः है, वही माया है। यजुर्वेद ही भुवः है, वही शिव है। साम ही स्वः है, वही हिरण्यगर्भ हो जाता है। यन्त्र में छः कोण होते हैं। ये ही छः लोक हैं। यही छः प्रकार की ऋतुएँ होती हैं। उन छः कोणों में क्रमशः तार (ॐ), माया (ह्रीं), रमा (श्रीं), मार (क्लीं कं), विश्वेश (अं) एवं धरणी (लं) बीज मन्त्रों का न्यास करे। आठ पत्र हैं। अष्टाक्षरा ही गायत्री होती है। ब्रह्मगायत्री का न्यास करे। द्वादशदल हैं। द्वादश ही आदित्य हैं, वे द्वादश ही स्वर होते हैं। स्वरों के रहस्य को जानकर (जानने वाला) आदित्यलोक को प्राप्त करता है। षोडश-पत्र होते हैं। पुरुष भी सोलह कलाओं वाला है। वर्ण ही पुरुष है। वही लोकाधिष्ठित हो जाता है। अनुष्टुप् ही पुरुष है ॥ १ ॥

स होवाच भृगुपुत्र एतमानुष्टुभं मन्त्रराजं साङ्गं सप्रसृतिकं समायं साधिष्ठानं सतन्त्रं यो जानाति स भूतिमान् भवति सोऽमृतत्वं च गच्छति सोऽमृतत्वं च गच्छतीति॥ २ ॥

तब भृगुपुत्र ने कहा- सांग, सप्रसृतिक समाय, साधिष्ठान, इस आनुष्टुभ मन्त्रराज को जो सतन्त्र जानता है, वही ऐश्वर्यशाली हो जाता है, वही अमरत्व को प्राप्त हो जाता है, वही अमरत्व को प्राप्त हो जाता है॥ २ ॥

॥ इति गणेशपूर्वतापिन्युपनिषत्सु तृतीयोपनिषद्॥

॥ इति गणेशपूर्वतापिन्युपनिषत् समाप्ता॥

॥ गणेशोत्तरतापिन्युपनिषद् ॥

॥ शान्तिपाठः ॥

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वीनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

ॐ॥ ओमित्येकाक्षरं ब्रह्मेदं सर्वम्। तस्योपव्याख्यानम्। सर्वं भूतं भव्यं भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव। एतच्चान्यच्च त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव। सर्वं ह्येतद्गणेशोऽयमात्मा ब्रह्मेति। सोऽयमात्मा चतुष्पात्। जागरितस्थानो बहिः प्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः। स्वप्नस्थानोऽन्तः प्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः प्रविविक्तभुक् तैजसो द्वितीयः पादः। यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम्। सुषुप्तिस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दभुक् चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः। एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम्। नान्तःप्रज्ञं न बहिः प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञं नाप्रज्ञं न प्रज्ञानघनमदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्य-मैकात्म्यप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स गणेश आत्मा विज्ञेयः। सदोज्ज्वलो विद्यातत्कार्यहीनः स्वात्मबन्धरहितः सर्वदोषरहित आनन्दरूपः सर्वाधिष्ठानः सन्मात्रो निरस्ताविद्यातमोमोहमेवेति सम्भाव्याहमों तत्सत्परं ब्रह्म विघ्नराजश्चिदात्मकः सोऽहमों तद्विनायकं परं ज्योती रसोऽहमित्यात्मानमादाय मनसा ब्रह्मणैकीकुर्यात्। विनायकोऽहमित्येतत्तत्त्वतः प्रवदन्ति ये। न ते संसारिणो नूनं प्रमोदो वै न संशयः॥ इत्युपनिषत्। य एवं वेद स मुख्यो भवतीति याज्ञवल्क्य इति याज्ञवल्क्य इति। एतदेव परं ध्यानमेतदेव परं तपः। विनायकस्य यज्ज्ञानं पूजनं भवमोचनम्। अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च। एकस्य ध्यानयोगस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ १॥

ॐ यही ओम् एकाक्षर ब्रह्म है, जो सब कुछ है। उसका उपव्याख्यान है कि भूत, भव्य (वर्तमान) एवं भविष्यत् सब कुछ ओंकार ही है। यह तथा अन्य भी त्रिकालातीत जो कुछ है, सभी ओंकार ही है। यह सब कुछ गणेश ही है, जो कि 'अयमात्मा ब्रह्म' ही है (यहाँ काया में स्थित अयमात्मा को ही गणेश कहा गया है। काया में १० इन्द्रियों ५ तन्मात्राओं और ४ अन्तःकरण चतुष्टय का जो गण-समूह है, इस गण का स्वामी, गणपति आत्मा ही है। यह संख्या मिलकर १९ हो जाती है, इसीलिए आगे उसे १९ मुख वाला कहा है।)

यह आत्मा भी चार पाद वाला है। जागरित स्थान वाला बहिःप्रज्ञ, सप्तांग, उन्नीस मुख वाला, स्थूलभुक् (स्थूल पदार्थों का भोग करने वाला) वैश्वानर इसका प्रथम पाद है। स्वप्न स्थान वाला अन्तःप्रज्ञ,

सप्तांग, उन्नीस मुख वाला प्रविविक्तभुक्, तैजस ही इसका द्वितीय पाद है। जब सोया हुआ जीव न तो किसी इच्छा की कामना करता है और न ही किसी स्वप्न को ही देखता है, वही सुषुप्त है। सुषुप्ति स्थान वाला एकीभूत प्रज्ञानघन आनन्दभोगी चेतोमुख, प्राज्ञ ही इसका तृतीय पाद है। यह (प्राज्ञ) ही सबका स्वामी, सर्वज्ञाता है। यही अन्तर्यामी है, यही सबको उत्पन्न करने वाला है। सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति एवं विनाश भी यही है। जो न अन्तःप्रज्ञ है और न ही बहिःप्रज्ञ है तथा न ही उभयतःप्रज्ञ ही है, न तो प्रज्ञ है और न ही अप्रज्ञ है, न प्रज्ञानघन है, न दृष्ट है न ही व्यवहार योग्य है, न तो ग्रहण योग्य है न ही लक्षणयुक्त है, न चिन्तन योग्य है, न व्यपदेश्य है। जो ऐकात्म्य प्रत्यय का सार है। जहाँ सम्पूर्ण प्रपञ्च का उपशमन हो जाता है। जो अद्वैत शिव तत्त्व है, उसे ही चतुर्थ पाद माना गया है।

वह आत्मा ही गणेश है, ऐसा जानना चाहिए। (जो) सदा प्रकाशमय, विद्या एवं उसके कार्य से रहित, स्वात्मबन्धन से रहित, समस्त दोषों से मुक्त, आनन्दस्वरूप सबका अधिष्ठान, सन्मात्र, अविद्यारूपी तम एवं मोह से रहित है, ऐसी भावना करके (सोचे कि) मैं ही (वह) ॐ तत्सत् परब्रह्म हूँ, चिदात्मक विघ्नराज मैं ही हूँ। वह विनायक परम ज्योति रस मैं ही हूँ। इस प्रकार आत्मा (अपने) को लेकर ब्रह्म से एकीकरण करना चाहिए।

मैं ही विनायक हूँ-ऐसा जो तत्त्वतः जानते हैं, वे संसारी नहीं होते हैं। आनन्द ही आनन्द है, इसमें संशय नहीं है। इत्युपनिषत्-इस रहस्य विद्या को जो जानता है, वह मुख्य (गणपति) हो जाता है। याज्ञवल्क्य मत यही है, यही याज्ञवल्क्य मत है। विनायक का ज्ञान एवं पूजन जो कि भवमोचन (संसार से मुक्ति दिलाने वाला) है, यही परम ध्यान है, यही परम तप है। एक ध्यानयोग- मात्र की सोलहवीं (एक) कला की तुलना सहस्रों अश्वमेध एवं सैकड़ों वाजपेय यज्ञ भी नहीं कर सकते हैं॥ १ ॥

इति गणेशोत्तरतापिन्युपनिषत्सु प्रथमोपनिषत्॥ १ ॥

ॐ॥ स विष्णुः स शिवः स ब्रह्मा सेन्द्रः सेन्दुः स सूर्यः स वायुः सोऽग्निः स ब्रह्मायमात्मने सर्वदेवाय आत्मने भूताय आत्मन इति मन्यन्ते। ॐ सोऽहं ॐ सोऽहं ॐ सोहऽमिति। ॐ ब्रह्मन् ॐ ब्रह्मन् ॐ ब्रह्मन्निति। ॐ शिवं ॐ शिवं ॐ शिवमिति। तं गणेशं तं गणेशमिदं श्रेष्ठम्। ॐ गणानां त्वा गणपतिः। सप्रियाणां त्वा प्रिय पतिः। सनिधीनां त्वा निधिपतिः। ॐ तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्। ॐ तद्गणेशः। ॐ सद्गणेशः। ॐ परं गणेशः। ॐ ब्रह्म गणेशः। गणनाकारो नादः। एतत्सर्वो नादः। सर्वाकारो नादः। एतदाकारो नादः। महान्नादः। स गणेशो महान् भवति। सोऽणुर्भवति। स वन्द्यो भवति। स मुख्यो भवति। स पूज्यो भवति। रूपवान् भवति। अरूपवान् भवति। द्वैतो भवति। अद्वैतो भवति। स्थावरस्वरूपवान् भवति। जङ्गम स्वरूपवान् भवति। सचेतनविचेतनो भवति। सर्वं भवति। स गणेशोऽव्यक्तो योऽणुर्यः श्रेष्ठः स वै वेगवत्तरः। अह्रस्वाह्रस्वश्च। अतिह्रस्वातिह्रस्वातिह्रस्वश्च। अस्थूलास्थूलास्थूलश्च। ॐ न वायुर्नाग्निर्नाकाशो नापः पृथिवी न च। न दृश्यं न दृश्यं न दृश्यम्। न शीतं नोष्णं न वर्षं च। न पीतं न पीतं न पीतम्। न श्वेतं न श्वेतं न श्वेतम्। न रक्तं न रक्तं न रक्तम्। न कृष्णं न कृष्णं न कृष्णम्। न रूपं न नाम न गुणम्। न प्राप्यं गणेशं मन्यन्ते। स शुद्धः स शुद्धः स शुद्धो गणेशः। स ब्रह्म स ब्रह्म स ब्रह्म गणेशः।

स शिवः स शिवः स शिवो गणेशः। इन्द्रो गणेशो विष्णुर्गणेशः सूर्यो गणेश एतत्सर्वं गणेशः। स निर्गुणः स निरहङ्कारः स निर्विकल्पः स निरीहः स निराकार आनन्दरूपस्तेजोरूपमनिर्वाच्यमप्रमेयः पुरातनो गणेशो निगद्यते। स आद्यः सोऽक्षरः सोऽनन्तः सोऽव्ययो महान्पुरुषः। तच्छुद्धं तच्छबलं ततः प्रकृतिमहत्तत्त्वानि जायन्ते। ततश्चाहङ्कारादिपञ्चतन्मात्राणि जायन्ते। ततः पृथ्व्यप्तेजोवाय्वाकाशपञ्चमहद्भूतानि जायन्ते। पृथिव्या ओषधय ओषधीभ्योऽन्नमन्नाद्रेतस्ततः पुरुषस्ततः सर्वं ततः सर्वं ततः सर्वं जगत्। सर्वाणि भूतानि जायन्ते। देवा नु जायन्ते। तरुश्च जीवन्ति। देवा नु जीवन्ति। यज्ञा नु जीवन्ति। सर्वं जीवति। स गणेश आत्मा विज्ञेयः। इत्युपनिषत्। य एवं वेद स मुख्यो भवतीति याज्ञवल्क्य इति याज्ञवल्क्य इति॥ २॥

ॐ वही विष्णु है, वही शिव है, वही ब्रह्मा है, वही इन्द्र है, वही चन्द्र है, वही सूर्य है, वही वायु है, वही अग्नि है, वही ब्रह्म है। यही आत्मरूप सर्वदेव तथा आत्मरूप सर्वभूतों के विषय में मानते हैं, जानते हैं। ॐकार ही सोऽहं है। ओंकार ही सोऽहं है। ॐ कार ही सोऽहं है। ओंकार ही ब्रह्म है, ओंकार ही ब्रह्म है, ओंकार ही ब्रह्म है। ओंकार ही शिव है, ओंकार ही शिव है, ओंकार ही शिव है। उसे ही गणेश समझो, उसे ही गणेश समझो, यही श्रेष्ठ मत है।

[तथ्य को अधिक महिमामण्डित करने के लिए एक तथ्य को तीन बार लिखा गया है]

समस्त गणों के स्वामी आप गणेश ही हैं। आप ही सम्पूर्ण प्रियों के प्रियतमों के भी स्वामी हैं, हे गणेश! आप ही सम्पूर्ण निधियों के भी स्वामी हैं। हम उन वक्रतुण्ड महापुरुष की वन्दना करते हैं, ध्यान करते हैं, वे एकदन्त हमें (जीवन के) लक्ष्य की ओर बढ़ने की प्रेरणा प्रदान करें। श्री गणेश ही तत्स्वरूप हैं। श्रीगणेश ही सत्स्वरूप हैं तथा वे ही परब्रह्मरूप हैं। नाद ही गणनाकार है, यह सब नाद ही है। नाद ही सबका आकार है। नाद इसी आकार वाला है। नाद ही महान् है। इसी से वे गणेश भी महान् हैं। वे ही अणु हो जाते हैं, वे ही वन्दनीय हो जाते हैं। वे ही मुख्य हो जाते हैं, वे ही पूज्य हो जाते हैं। वे ही रूपवान् (साकार) हो जाते हैं, वे ही अरूप (निराकार) हो जाते हैं। वे ही द्वैत (दो रूप वाले) हो जाते हैं। वे ही अद्वैत हो जाते हैं। वे ही स्थावर रूपवान् हो जाते हैं। जंगमरूप भी वे (गणेश) ही हो जाते हैं। वे ही सचेतन हैं, वे ही अचेतन भी हैं। वे ही सर्वरूप हो जाते हैं। वे गणेश ही अव्यक्तरूप हैं। जो अणु हैं, जो श्रेष्ठ हैं, वे ही अत्यन्त वेगवान् हैं। वे अह्रस्व से भी अह्रस्व हैं, वे ही अतिह्रस्व से भी अतिह्रस्व हैं। वे ही अस्थूल (सूक्ष्म) से भी अस्थूल हैं, उससे भी सूक्ष्मतम हैं।

न वायु ही वायु है, न अग्नि ही अग्नि है, न आकाश ही आकाश है, न जल ही जल है, न पृथिवी ही पृथिवी है। न दृश्य ही दृश्य है। न शीत ही शीत है। न उष्ण ही उष्ण है। न वर्षा ही वर्षा है। न पीत ही पीतवर्ण है। न श्वेत ही श्वेत है। न लाल ही वस्तुतः लाल रंग है। न कृष्णवर्ण ही वस्तुतः कृष्णवर्ण है। न रूप ही तत्त्वतः रूप है। न नाम ही वस्तुतः नाम होता है। न गुण ही वास्तव में गुण है। सब कुछ वे अगम्य गणेश ही माने जाते हैं। वे गणेश ही शुद्धतत्त्व हैं। वे गणेश ही ब्रह्म हैं। वे गणेश ही शिव हैं। वे गणेश ही इन्द्र हैं। गणेश ही विष्णु हैं। गणेश ही सूर्य हैं। जो कुछ भी है, वह सब गणेश ही हैं। वे ही निर्गुण हैं, वे ही निरहंकार हैं। वे ही निर्विकार हैं। वे ही निरीह हैं। वे ही निराकार ब्रह्म हैं। वे ही आनन्दरूप हैं। वे ही तेजस्वरूप हैं। वे ही अनिर्वचनीय हैं। वे ही अप्रमेय हैं। वे ही अत्यन्त पुरातन आदिदेव गणेश कहे गये हैं। वे ही आद्य हैं। वे ही अक्षर हैं। वे ही अनन्त

हैं। वे ही अव्यय हैं। वे ही महान् पुरुष (आत्मा) हैं। वे ही शुद्ध ब्रह्म हैं। वे ही शबलब्रह्म हैं। उन्हीं से प्रकृति एवं महत् तत्त्वादि का जन्म होता है। उन्हीं से अहंकारादि तथा पञ्च- तन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं। उन्हीं से पृथिवी, जल, तेज, वायु आदि पंचमहाभूत उत्पन्न होते हैं। पृथिवी से औषधियाँ, औषधियों से अन्न, अन्न से रेतस्, रेतस् से पुरुष तथा पुरुष से यह सब अर्थात् उन्हीं गणेश से यह सब, यह सब, यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न होता है। उन्हीं से समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं। उन्हीं से सभी देवता उत्पन्न होते हैं। उन्हीं से सम्पूर्ण प्राणी जीवित रहते हैं। उन्हीं से सभी देवता जीवित रहते हैं। उन्हीं से सम्पूर्ण यज्ञ जीवित रहते हैं। सम्पूर्ण विश्व उन्हीं से जीवित है। उन गणेश को ही परमात्मा जानना चाहिए। इत्युपनिषत् अर्थात् यह रहस्यमयी विद्या है। जो इसे जानता है, वह प्रमुख पद प्राप्त करता है। यही महर्षि याज्ञवल्क्य का मत है, यही महर्षि याज्ञवल्क्य का मत है॥ २॥

इति गणेशोत्तरतापिन्युपनिषत्सु द्वितीयोपनिषत्॥ २॥

ॐ॥ गणेशो वै ब्रह्म तद्विद्यात्। यदिदं किञ्च सर्वं भूतं भव्यं जायमानं च तत्सर्वमित्याचक्षते। अस्मान्नातः परं किञ्चित्। यो वै वेद स वेद ब्रह्म ब्रह्मैवोपाप्नोति। तत्सर्वमित्याचक्षते। ब्रह्मविष्णवादिगणानामीशभूतमित्याह तद्गणेश इति। तत्परमित्याह यमेते नाप्नुवन्ति पृथिवी सुवर्चा युवतिः सजोषाः। यद्वै वाङ्नाक्रामति मनसा सह नाग्निर्न पृथिवी न तेजो न वायुर्न व्योम न जलमित्याह। नेन्द्रियं न शरीरं न नाम न रूपम्। न शुक्लं न रक्तं न पीतं न कृष्णमिति। न जाग्रन्न स्वप्नो न सुषुप्तिर्न वै तुरीया। तच्छुद्धमप्राप्यमप्राप्यं च। अज्ञेयं चाज्ञेयं च। विकल्पासहिष्णु तत्सशक्तिकं गजवक्त्रं गजाकारं जगदेवावरुन्धे। दिवमनन्तशीर्षैर्दिशमनन्तकरैर्व्योमानन्त-जठरैर्महीमनन्तपादैः स्वतेजसा बाह्यान्तरीयान्व्याप्य तिष्ठतीत्याह। तद्वै परं ब्रह्म गणेश इत्यात्मानं मन्यन्ते। तद्वै सर्वतः पश्यति स्म न किञ्चिद्ददर्श। ततो वै सोऽहमभूत्। नैकाकिता युक्तेति गुणान्निर्ममे। नाभे रजः स वै ब्रह्मा। मुखात्सत्त्वं स वै विष्णुः। नयनात्तमः स वै हरः। ब्रह्माणमुपदिशति स्म ब्रह्मन् कुरु सृष्टिम्। ब्रह्मोवाच नाहं वेद्मि। गणेश उवाच मद्देहे ब्रह्माण्डान्तर्गतं विलोकय तथाविधामेव कुरु सृष्टिम्। अथ ब्रह्मा जन्मद्वारेण ब्रह्माण्डान्तर्गतं विलोकयति स्म। समुद्रान् सरितः पर्वतान् वनानि महीं दिवं पातालं च नरान् पशून्मृगान्नागान् हयान् गोव्रजान् सूर्याचन्द्रमसौ नक्षत्राण्यग्नीन् वायून्दिशस्ततो वै सृष्टिमचीकरत्। ततश्चात्मानमिति मन्यते स्म। न वै मत्तः परं किञ्चिदहमेव सर्वस्येश इति यावद्वदति तावत्क्रूरा अजायेरन्। महद्देहा जिह्वया भुवं लिहाना दंष्ट्राव्याप्ताकाशा महच्छब्दा ब्रह्माणं हन्तुमुद्युक्ताः। तान्दृष्ट्वाबिभ्यत्तत्संस्मार। ततश्चाग्रे कोटिसूर्यप्रतीकाशमानन्दरूपं गजवक्त्रं विलोकयति स्म। तुष्टावाथ गणेश्वरम्। त्वं निर्माता क्ष्माभृतां सरितां सागराणां स्थावराणां जङ्गमानां च। त्वत्तः परतरं किञ्चिन्नैवास्ति जगतः प्रभो। कर्त्ता सर्वस्य विश्वस्य पातसंहारकारकः। भवानिदं जगत्सर्वं व्याप्यैव परितिष्ठति॥ इति स्तुत्वा ब्रह्माणं तदुवाच

ब्रह्मंस्तपस्व तपस्वेत्युक्त्वाऽन्तर्हिते तस्मिन् ब्रह्मा तपश्चचार। कियत्स्वतीतेष्वनेहःसु तपसि स्थिते ब्रह्मणि पुरो भूत्वोवाच। प्रसन्नोऽहं प्रसन्नोऽहं वरान् वरय। श्रुत्वैवं वचोन्मील्य नयने यावत्पुरः पश्यति तावद्गणेशं ददर्श। स्तौति स्म। त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णुस्त्वं हरस्त्वं प्रजापतिस्त्वमिन्द्रस्त्वं सूर्यस्त्वं गणेशः। त्वया व्याप्तं चराचरं त्वदृते न हि किञ्चन। ततश्च गणेश उवाच। त्वं चाहं च न वै भिन्नौ कुरु सृष्टिं प्रजापते। शक्तिं गृहाण मद्दत्तां जगत्सर्जनकर्मणि॥ ततो वै गृहीतायां शस्त्वा ब्राह्मणः सृष्टिरजायत। ब्राह्मणो वै मुखाज्जज्ञे बाह्वोः क्षत्रमूर्वोर्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रश्चक्षुषो वै सूर्यो मनसश्चन्द्रमा अग्निर्वै मुखात्प्राणाद्वायुर्नाभेर्व्योम शीर्ष्णो द्यौः पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्। तथा लोकानकल्पयन्निति। ततो वै सत्त्वमुवाच त्वं वै विष्णुः पाहि पाहि जगत्सर्वम्। विष्णुरुवाच न मे शक्तिः। सोवाच गृहाणेमां विद्याम्। ततो वै सत्त्वं तामादाय जगत्पाति स्म। हरमुवाच कुरु हर संहारम्। जगद्धरणाद्धरो भव। हरश्चात्मानमित्यवैति स्म न वै मत्परं किञ्चिद्विश्वस्यादिरहं हर इति गर्वं दधौ यावत्तावद्व्याप्तं व्योम गजवक्त्रैर्महच्छब्दैर्हरं हर्तुमुद्युक्तैः। हरो वै विलोक्य रुदति स्म। रोदनाद्रुद्रसंज्ञः। ततस्तं पुरुषं स्मृत्वा तुष्टाव त्वं ब्रह्मा त्वं कर्त्ता त्वं प्रधानं त्वं लोकान् सृजसि रक्षसि हरसि। विश्वाधारस्त्वमनाधारोऽनाधेयोऽनिर्देश्योऽप्रतर्क्यो व्याप्येदं सर्वं तिष्ठसीति स्तवनाद्विनायकं ददर्श। ततश्च तं ननाम। गणेश उवाच कुरु हर हरणम्। तद्वै संहर्ताऽभूद्रुद्रः। य एवं वेद स गणेशो भवति। इत्युपनिषत्॥ ३॥

ॐ गणेश ही ब्रह्म है, यह जानना चाहिए। भूत, भव्य (वर्तमान) और भविष्यत्-यह जो कुछ भी है, वह सब कुछ गणेश ही है, ऐसा कहते हैं। इनसे परे कुछ भी नहीं है। जो निश्चित रूप से यह जानता है, वह ब्रह्म को जानता है। वह ब्रह्म की निकटता प्राप्त कर लेता है। कहते हैं कि वह सब कुछ प्राप्त कर लेता है। ब्रह्मा, विष्णु इत्यादि गणों का भी जो ईश्वर है, वही गणेश है। वही पर (श्रेष्ठ) तत्त्व है, जिसे ये ब्रह्मा, विष्णु भी नहीं प्राप्त करते हैं, जिस तक ये नहीं पहुँच पाते हैं। यह चमकती हुई प्रेमवती युवतिवत् पृथिवी भी जहाँ नहीं पहुँचती है। वाणी जहाँ नहीं पहुँचती है, मन की जहाँ गति नहीं है, न अग्नि, न पृथ्वी, न तेज, न वायु, न आकाश और न जल की ही जहाँ तक पहुँच है। जहाँ न इन्द्रियों, न शरीर की पहुँच है। जिसका न कोई नाम है न रूप है। जो न शुक्ल है, न रक्त है, न पीला है, न काला है। न जाग्रत्, न स्वप्न, न सुषुप्ति और न तुरीयावस्था है। वह ऐसा शुद्ध है। वह अप्राप्य है, अप्राप्य है। वह अज्ञेय है, अज्ञेय है। वह सम्पूर्ण विकल्पों से रहित है, वह शक्ति समेत है, वह गजानन है, वह गजाकार है, जिसने इस सम्पूर्ण जगत् को स्वयं में समेट रखा है। अपने अनन्त सिरों से आकाश को, अनन्त हाथों से दिशाओं को, अपने अनन्त जठरों से महाव्योम को, अपने अनन्त पैरों से पृथिवी को व्याप्त किया है। जिसने अपने तेज से बाह्य एवं आन्तरिक सम्पूर्ण पदार्थों को व्याप्त कर रखा है। वही गणेश है। ऐसा जो स्वयं को मानते हैं, वही परब्रह्म गणेश है।

सर्वत्र उसी की दृष्टि थी; किन्तु स्वेतर (अपने अतिरिक्त) कुछ भी नहीं देख पा रहा था। तब वह सोऽहं हो गया। एकाकीपन उपयुक्त नहीं है, अतः उसने गुणों की रचना की। उसने नाभि से रजोगुण की रचना की, वही ब्रह्मा हुए। मुख से सत्त्व का निर्माण किया, वही विष्णु हुए। नेत्र से तमोगुण की रचना की, वही शंकर हो गये। फिर ब्रह्मा को आदेश दिया— आप सृष्टि का सृजन करें। ब्रह्मा ने कहा— मुझे रचना का ज्ञान नहीं है। तब गणेश

ने कहा— मेरी देह में अवस्थित ब्रह्माण्ड को देखो और वैसी ही सृष्टि का सृजन करो। तब ब्रह्मा ने जन्म के द्वारा आन्तरिक ब्रह्माण्ड का अवलोकन किया। उन्होंने समुद्रों, सरिताओं, पर्वतों, वनों को देखा। पृथ्वी, स्वर्ग और पाताल को देखा। मनुष्यों, पशुओं, मृगों, हाथियों, घोड़ों एवं गायों के झुंडों को देखा। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रों, अग्नियों, वायुओं और दिशाओं को देखा। तब वैसी ही सृष्टि की रचना की।

तब वे स्वयं को ही कर्त्ता मानने लगे कि मेरे अतिरिक्त और कोई श्रेष्ठ नहीं है, मैं ही सबका स्वामी हूँ। ज्यों ही ब्रह्मा ने यह कहा, त्यों ही क्रूर राक्षस उत्पन्न हो गये। उनके विशाल शरीर थे। वे अपनी जिह्वा से पृथिवी को चट कर रहे थे। उनकी डाढ़ें आकाश को व्याप्त कर रही थीं। वे घोर गर्जना करते हुए ब्रह्मा को मारने के लिए उद्यत हो गये। उन्हें देखकर ब्रह्मा ने भयभीत होकर गणेश का स्मरण किया। तब अपने सम्मुख करोड़ों सूर्यों के सदृश देदीप्यमान, आनन्दरूप गणेश का दर्शन किया। तब गणेश की विविध प्रकार से स्तुति की। पर्वतों, सरिताओं, सागरों, स्थावर जंगम चराचरों के रचयिता आप ही हैं। हे जगत् के स्वामी! आपसे बढ़कर अन्य कोई नहीं है। सम्पूर्ण विश्व के रचयिता आप ही हैं। संहार करने वाले भी आप ही हैं। आप ही इस समस्त जगत् में व्याप्त होकर स्थित हैं। स्तुति सुनकर गणेश ने ब्रह्मा से कहा— हे ब्रह्मन्! तप करो, तप करो। इतना कहकर अन्तर्हित हो जाने पर ब्रह्मा ने तप किया। कितने ही काल तक ब्रह्मा के तपश्चर्या करने पर, सम्मुख प्रकट होकर गणेश ने उनसे कहा— मैं प्रसन्न हूँ, मैं प्रसन्न हूँ, वरदान माँगो। इन वचनों को सुनकर, आँखें खोलकर जैसे ही (वे) देखने लगे, सामने ही गणेश को देखा। देखकर स्तुति करने लगे— आप ही ब्रह्मा हैं, आप ही विष्णु हैं, आप ही शिव हैं, आप ही प्रजापति हैं, आप ही इन्द्र हैं, आप ही सूर्य हैं, आप ही चन्द्र हैं। हे गणेश! आप ही चराचर में व्याप्त हैं। आप के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। तब श्री गणेश ने कहा— तुम और मैं भिन्न-भिन्न नहीं हैं, आप सृष्टि-रचना कीजिए। हे प्रजापते! जगत् के सृजन कर्म के लिए मुझसे शक्ति प्राप्त करो और सृष्टि रचना आरम्भ कर दो। तब श्री गणेश से शक्ति ग्रहण करने पर ब्रह्मा द्वारा इस सृष्टि की रचना हुई। मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, ऊरु से वैश्य, पैरों से शूद्र, चक्षु से सूर्य, मन से चन्द्रमा, मुख से अग्नि, प्राण से वायु, नाभि से व्योम, सिर से स्वर्ग, पैरों से भूमि, कानों से दिशाएँ तथा लोकों की रचना की गई।

तब सत्त्व गुण से कहा— तुम ही विष्णु हो, इस सम्पूर्ण जगत् का पालन करो, पालन करो। विष्णु ने कहा— मुझमें शक्ति नहीं है। उन्होंने कहा- इस विद्या को ग्रहण करो। तब उस विद्या को ग्रहण कर सत्त्व (विष्णु) जगत् का पालन करने लगे। शिव से कहा— हे हर! आप संहार करो। जगत् का हरण (विनाश) करने के कारण ही आप हर बनोगे। परन्तु हर (शिव) तो स्वयं यही जानते थे कि मेरे अतिरिक्त तो कुछ भी नहीं है। मैं ही तो विश्व का आदि हूँ। हर को इस प्रकार गर्व हो गया। जैसे ही हर को यह गर्व हुआ, वैसे ही सम्पूर्ण व्योम गणेश के अनन्तमुखों से व्याप्त हो गया तथा हर को महाहुंकार शब्द करते हुए मारने के लिए उद्यत हो गया। यह देखकर 'हर' रोने लगे, इसीलिए उनका नाम रुद्र पड़ गया। तब उस पुरुष की स्तुति करने लगे। आप ही ब्रह्मा हैं, आप ही सृष्टिकर्त्ता हैं, आप ही प्रधान (प्रकृति) हैं, आप ही लोकों की रचना करने वाले हैं। आप ही पालन करते हैं, आप ही विनाश करते हैं। आप ही विश्व के आधार हैं, आप तो निराधार हैं, आप अनाधेय हैं, आप अनिर्देश्य हैं, आप अप्रतर्क्य हैं। आप ही इस विश्व में व्याप्त होकर स्थित हैं। स्तुति करने पर विनायक के दर्शन हुए। तब उनको प्रणाम किया। तब गणेश ने कहा— हे हर! संहार करो। तभी रुद्र इस विश्व के संहर्त्ता हुए। जो इस प्रकार जानता है, गणेश ही हो जाता है। इत्युपनिषत् अर्थात् यही रहस्य है॥ ३॥

॥ इति गणेशोत्तरतापिन्युपनिषत्सु तृतीयोपनिषत्॥ ३॥

ॐ॥ गणेशो वै सदजायत तद्वै परं ब्रह्म। तद्विदाप्नोति परम्। तदेषाभ्युक्ता यदनादिभूतं यदनन्तरूपं यद्विज्ञानरूपं यद्देवाः सर्वे ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते न वै कार्यं करणं न तत्समश्चाधिकश्च दृश्यः। सूर्योऽस्माद्भीत उदेति। वातोऽस्माद्भीतः पवते। अग्निर्वै भीतस्तिष्ठति। तच्चित्स्वरूपं निर्विकारमद्वैतं च। तन्मायाशबलमजनीत्याह। अनेन यथा तमस्ततश्चोमिति ध्वनिरभूत्। स वै गजाकारः। अनिर्वचनीया सैव माया जगद्बीजमित्याह। सैव प्रकृतिरिति गणेश इति प्रधानमिति च मायाशबलमिति च। एतस्माद्वै महत्तत्त्वमजायत। ततः कराग्रेणाहङ्कारं सृष्टवान्। स वै त्रिविधः सात्त्विको राजसस्तामसश्चेति। सात्त्विकी ज्ञानशक्तिः। राजसी क्रियाशक्तिः। तामसी द्रव्यशक्तिः। तामस्याः पञ्चतन्मात्रा अजायन्त पञ्चभूतान्यजायन्त। राजस्याः पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि पञ्च वायवश्चाजायन्त। सात्त्विक्यादिशो वायुः सूर्यो वरुणोऽश्विनाविति ज्ञानेन्द्रियदेवता अग्निरिन्द्रो विष्णुः प्रजापतिर्मित्र इति कर्मेन्द्रियदेवताः। इदमादिपुरुषरूपम्। परमात्मनः सूक्ष्मशरीरमिदमेवोच्यते। अथ द्वितीयम्। पञ्चतन्मात्राः पञ्चसूक्ष्मभूतान्युपादाय पञ्चीकरणे कृते पञ्चमहाभूतान्यजायन्त। अवशिष्टानां पञ्च पञ्चाशानां कल्पारम्भसमये भूतविभागे चैतन्यप्रवेशादहमित्यभिमानः। तस्मादादिगणेशो भवानुच्यते। ततो वै भूतेभ्यश्चतुर्दश लोका अजायेरन्। तदन्तर्गतजीवराशयः स्थूलशरीरैः सह विराडित्युच्यते। इति द्वितीयम्। राजसो ब्रह्मा सात्त्विको विष्णुस्तामसो वै हरः। त्रयं मिलित्वा परस्परमुवाच अहमेव सर्वस्येश इति। ततो वै परस्परमसहमानाश्चोर्ध्वं जग्मुः। तत्र न किञ्चिद्ददृशुः। ततश्चाधः प्रदेशे दशदिक्षु भ्रमन्तो न किञ्चित्पश्यन्ति स्म। ततो वै ध्यानस्थिता अभूवन्। ततश्च हृद्देशे महान्तं पुरुषं गजवक्त्रमसंख्यशीर्षमसंख्यपादमनन्तकरं तेजसा व्याप्ताखिललोकं ब्रह्ममूर्धानं दिक्श्रवणं ब्रह्माण्डगण्डं चिद्व्योमतालुकं सत्यजननं च जगदुत्पत्त्यपायोन्मेषनिमेषं सोमार्काग्निनेत्रं पर्वतेशरदं पुण्यापुण्योष्ठं ग्रहोडुदशनं भारतीजिह्वं शक्रघ्राणं कुलगोत्रांसं सोमेन कण्ठं हरशिरोरुहं सरिन्नदभुजमुरगाङ्गुलिकमृक्षनखं श्रीहृत्कमाकाशनाभिकं सागरोदरं महीकटिदेशं सृष्टिलिङ्गकं पर्वतेशोरुं दस्रजानुकं जठरान्तःस्थितयक्षगन्धर्वरक्षः किन्नरमानुषं पातालजंघकं मुनिचरणं कालाङ्गुष्ठकं तारकाजाललाङ्गुलं दृष्ट्वा स्तुवन्ति स्म। यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते यतोऽग्निः पृथिव्यप्तेजो वायुर्यत्कराग्राद्ब्रह्मविष्णुरुद्रा अजायन्त यतो वै समुद्राः सरितः पर्वताश्च यतो वै चराचरमिति स्तवनात्प्रसन्नो भूत्वोवाचाऽहं सर्वस्येशो मत्तः सर्वाणि भूतानि मत्तः सर्वं चराचरं भवन्तो वै न मद्भिन्ना गुणा मे वै न संशयः। गुणेशं मां हृदि संचिन्त्य राजस त्वं जगत्कुरु सात्त्विक त्वं पालय तामस त्वं हरेत्युक्त्वान्तर्हितः। स वै गणेशः सर्वात्मा विज्ञेयः सर्वदेवात्मा वै स एकः। य एवं वेद स गणेशो भवति। इत्युपनिषत्॥ ४॥

ॐ गणेश ही सत् स्वरूप हो गये। वे ही परब्रह्म हैं। उनके रहस्य को जानने वाला परम पद को प्राप्त कर लेता है। यह अभ्युक्ति है कि जो अनादिभूत है, जो अनन्तरूप वाला है, जो विज्ञानरूप है, सभी देवता भी जिनकी ब्रह्मरूप में उपासना करते हैं। न उनका कोई कार्य है, न उनका कोई कारण ही है। न कोई उनके समान

है और न ही कोई उनसे बढ़कर दिखाई देता है। सूर्य उनके भय से ही उदय होता है। पवन उनके भय से ही बहता है। अग्नि उनसे भयभीत होकर रहता है। वही चित्स्वरूप हैं। वे ही निर्विकार हैं। वे ही अद्वैत हैं। कहा जाता है— उनसे ही (उसी प्रकार) माया-शबल ब्रह्म (ईश्वर) हुआ है, जिस प्रकार उन्हीं से तमोगुण एवं तत्पश्चात् ओंकार की ध्वनि उत्पन्न हुई। वे ही गजाकार हैं। उनकी अनिर्वचनीय माया ही जगत् का कारण है, ऐसा कहते हैं। वही प्रकृति है, वही गणेश है, वही प्रधान है, वही माया-शबल ईश्वर है। इन्हीं से महत्तत्त्व का जन्म हुआ। फिर हाथ की अँगुलियों से अहंकार की रचना की। वे ही सात्त्विक, राजस एवं तामस हैं। ज्ञानशक्ति सात्त्विक है। क्रियाशक्ति राजस है तथा द्रव्यशक्ति तामस है। तामसी शक्ति से पाँच तन्मात्राएँ उद्‌भूत हुईं तथा पंचभूतों की उत्पत्ति हुई। राजसी शक्ति से पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ एवं पाँच वायु (प्राण) उत्पन्न हुए। सात्त्विकी शक्ति से दिशाएँ, वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनीकुमार, इन पाँच ज्ञानेन्द्रिय देवताओं की उत्पत्ति हुई। अग्नि, इन्द्र, विष्णु, प्रजापति और मित्र— ये पाँच कर्मेन्द्रियों के देवता हैं। यही आदिपुरुष का स्वरूप है। यही परमात्मा का सूक्ष्म शरीर कहलाता है। इसकी दूसरी प्रक्रिया इस प्रकार है—

पञ्च-तन्मात्राओं तथा पाँच सूक्ष्मभूतों को लेकर पञ्चीकरण किये जाने पर, पाँच महाभूतों की उत्पत्ति हुई थी। कल्प के आरम्भ के समय अवशिष्ट पाँच-पाँच अंशों के भूत विभाग में चैतन्य के प्रवेश से 'अहं' इस प्रकार का अभिमान उत्पन्न हुआ। इसीलिए आप ही आदिगणेश कहे जाते हैं। तत्पश्चात् पञ्चमहाभूतों से चौदह लोकों की सृष्टि हुई। उन चौदह लोकों के भीतर जो स्थूल शरीर वाली जीव राशियाँ हैं, वे ही विराट् कही जाती हैं। यही दूसरी प्रक्रिया है। ब्रह्मा राजस हैं, विष्णु सात्त्विक हैं तथा शंकर तामस हैं। तीनों मिलकर परस्पर कहने लगे— मैं ही सर्वेश्वर हूँ। इस प्रकार विवाद करते हुए तीनों ही ऊर्ध्व लोक में पहुँच गये। वहाँ उन्होंने किसी को नहीं देखा अर्थात् वहाँ भी उन्हें कुछ भी दिखाई नहीं दिया। तब नीचे के प्रदेश में उतर कर दसों दिशाओं में भ्रमण करने लगे; परन्तु फिर भी उन्हें कुछ दिखाई नहीं दिया। तब हारकर वे ध्यानस्थ हो गये।

ध्यानस्थ होने पर उन्हें अपने हृदय-प्रदेश में गजानन-स्वरूप महान् पुरुष दिखाई दिया— जिसके अनन्त सिर थे, असंख्य चरण थे, अगणित हाथ थे, जिसने अपने तेज से सम्पूर्ण लोकों को व्याप्त कर लिया था; ब्रह्मलोक जिसका सिर था, दिशाएँ जिसके कान थीं, ब्रह्माण्ड जिसका गंडस्थल था। चिदाकाश ही जिसका तालु था। सत्य ही जिसका लिंग था, जगत् की उत्पत्ति एवं विनाश ही जिसके उन्मेष एवं निमेष थे, चन्द्र, सूर्य एवं अग्नि ही जिसके तीन नेत्र थे, सुमेरु ही जिसके दाँत थे, पुण्य व पाप ही जिसके होठ थे, ग्रह-नक्षत्र ही जिसके दाँत थे,सरस्वती जिसकी जिह्वा थी, इन्द्र जिसकी नासिका थे, कुल-गोत्र ही जिसके कंधे थे, सोमरस से जिसका कण्ठ सुशोभित था, हर (शिव) ही जिसके केश थे, सरिताएँ एवं नद ही जिसकी भुजाएँ थे, सर्प जिसकी अँगुलियाँ थे, रीछ ही जिसके नख थे, लक्ष्मी जिसका हृदय थीं। आकाश जिसकी नाभि था, समुद्र जिसका उदर था, पृथ्वी ही जिसका कटिप्रदेश था, सृष्टि ही जिसका लिङ्ग था, सुमेरु जिसकी ऊरु था, अश्विनीकुमार जिसके घुटने थे, जिसके पेट में यक्ष, गन्धर्व, किन्नर एवं राक्षस सभी समाये हुए थे, पाताल ही जिसकी जंघाएँ था, मुनि ही जिसके चरण थे, कान ही जिसका अँगूठा था, तारकाजल ही जिसकी पूँछ था, ऐसे उस महापुरुष को देखकर, वे (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) उसकी स्तुति इस प्रकार करने लगे— जिससे ये सम्पूर्ण प्राणी उत्पन्न होते हैं, जिससे अग्नि, पृथिवी, जल, तेज, वायु उत्पन्न हुए हैं, जिसके कराग्र से ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र उत्पन्न हुए थे, जिससे ही सागर, सरिताएँ एवं पर्वत उत्पन्न हुए थे, जिससे यह चराचर जगत् उत्पन्न हुआ है, वह आप ही हैं। स्तुति से प्रसन्न होकर वे बोले— मैं ही सबका स्वामी हूँ, मुझसे ही सम्पूर्ण प्राणी, मुझसे ही सम्पूर्ण चराचर, मुझसे ही आप तीनों उत्पन्न हुए हैं। मुझसे गुण भिन्न नहीं हैं। इसमें संशय नहीं है। मुझ गुणेश्वर का हृदय में चिन्तन करके हे राजस!

तुम सृष्टि की रचना करो, मेरा हृदय में चिन्तन करके हे सात्त्विक! तुम सृष्टि का पालन करो, मेरा हृदय में चिन्तन करके हे तामस! तुम जगत् का संहार करो, इतना कहकर वे महान् पुरुष अन्तर्हित हो गये। वे ही वस्तुतः गणेश हैं। वे ही सर्वात्मा हैं, वे ही सर्वदेवमय हैं- ऐसा ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। वे एक ही हैं। जो ऐसा जान लेता है, वह गणेश हो जाता है, तद्रूप हो जाता है। इत्युपनिषत् अर्थात् यही रहस्य है॥ ४॥

इति गणेशोत्तरतापिन्युपनिषत्सु चतुर्थोपनिषत्॥ ४॥

ॐ॥ देवा ह वै रुद्रमब्रुवन् कथमेतस्योपासनम्। स होवाच रुद्रो गणको निचृद्गायत्री श्रीगणपतेरेनं मन्त्रराजमन्योन्याभावात्प्रणवस्वरूपस्यास्य परमात्मनोऽङ्गानि जानीते स जानाति सोऽमृतत्वं च गच्छति। योऽधीते स सर्वं तरति। य एनं मन्त्रराजंगणपतेः सर्वदं नित्यं जपति सोऽग्निं स्तम्भयति स उदकं स्तम्भयति स वायुं स्तम्भयति स सूर्यं स्तम्भयति स सर्वान्देवान्स्तम्भयति स विषं स्तम्भयति स सर्वोपद्रवान्स्तम्भयति। इत्युपनिषत्। य एनं मन्त्रराजं नित्यमधीते स विघ्नानाकर्षयति देवान्यक्षान् रोगान् ग्रहान्मनुष्यान् सर्वानाकर्षयति। स भूर्लोकं जयति स भुवर्लोकं जयति स स्वर्लोकं स महर्लोकं स जनोलोकं स तपोलोकं स सत्यलोकं स सप्तलोकं स सर्वलोकं जयति। सोऽग्निष्टोमेन यजते सोऽत्यग्निष्टोमेन स उक्थ्येन स षोडशीयेन स वाजपेयेन सोऽतिरात्रेण सोऽप्तोर्यामेण स सर्वैः क्रतुभिर्यजते। य एनं मन्त्रराजं वैघ्नराजं नित्यमधीते स ऋचोऽधीते स यजूंष्यधीते स सामान्यधीते सोऽथर्वणमधीते सोऽङ्गिरसमधीते स शाखा अधीते स पुराणान्यधीते स कल्पानधीते स गाथा अधीते स नाराशंसीरधीते स प्रणवमधीते। य एनं मन्त्रराजं गाणेशं वेद स सर्वं वेद स सर्वं वेद। स वेदसमः स मुनिसमः स नागसमः स सूर्यसमः सोऽग्निसम इति। उपनीतैकाधिकशतं गृहस्थैकाधिकशतं वानप्रस्थकाधिकशतं रुद्रजापकसमम्। यतीनामेकाधिकशतमथर्व शिरः शिखाध्यापकसमम्। रुद्रजापकैकाधिकशतमथर्वशिरःशिखाध्यापकैकाधिकशतं गाणेशतापिनीयोपनिषदध्यापकसमम्। मन्त्रराज जापकस्य यत्र रविसोमौ न तपतो यत्र वायुर्नक्षत्राणि न वाति भान्ति यत्राग्निर्मृत्युर्न दहति प्रविशति यत्र मोहो न दुःखं सदानन्दं परानन्दं समं शाश्वतं सदाशिवं परं ब्रह्मादिवन्दितं योगिध्येयं परमं पदं चिन्मात्रं ब्रह्मणस्पतिमेकाक्षरमेवं परमात्मानं बाह्यान्ते लब्धांशं हृदि समावेश्य किञ्चिज्जप्त्वा ततो न जपो न माला नासनं न ध्यानावाहनादि। स्वयमवतीर्णो ह्ययमात्मा ब्रह्म सोऽहमात्मा चतुष्पात्। बहिः प्रज्ञः प्रविविक्तभुक् तैजसः। यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम्। तत्रैकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दभुक् चेतोमुखःप्राज्ञः। एष सर्वेश्वरः सर्वान्तर्यामी एष योनिः सर्वभूतानाम्। न बहिः प्रज्ञं नान्तःप्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञानघनमव्यपदेश्यमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमैकात्म्यप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शिवमद्वैतमेवं चतुष्पादं ध्यायन् स एवात्मा भवति। स आत्मा विज्ञेयः

सदोज्ज्वलोऽविद्यातत्कार्यहीनः स्वात्मबन्धरहितो द्वैतरहितो निरस्ताविद्यातमोमोहाहङ्कार-प्रधानमहमेव सर्वमिति सम्भाव्य विघ्नराजब्रह्मण्यमृते तेजोमये परंज्योतिर्मये सदानन्दमये स्वप्रकाशे सदोदिते नित्ये शुद्धे मुक्ते ज्ञेश्वरे परे ब्रह्मणि रमते रमते रमते रमते। य एवं गणेशतापनीयोपनिषदं वेद स संसारं तरति घोरं तरति दुःखं तरति विघ्नांस्तरति महोपसर्गं तरति। आनन्दो भवति स नित्यो भवति स शुद्धो भवति स मुक्तो भवति स स्वप्रकाशो भवति स ईश्वरो भवति स मुख्यो भवति स वैश्वानरो भवति स तैजसो भवति स प्राज्ञो भवति स साक्षी भवति स एव भवति स सर्वो भवति स सर्वो भवतीति इत्युपनिषत्॥ ॐ सह नाववतु॥ ५॥

ॐ देवों ने रुद्र से प्रश्न किया— इनकी उपासना की विधि क्या है? तब उन रुद्र ने गिनकर कहा— श्रीगणपति के मन्त्रराज का छन्द निचृत् गायत्री है, यह अन्योन्याभाव से प्रणवस्वरूप है, अतः जो तत्त्वज्ञ पुरुष परमात्मारूप के अंगों को जानता है, वही वस्तुतः ज्ञानी है। वही अमृतपद को प्राप्त करता है। जो इसका अध्ययन (विधिपूर्वक चिन्तन-स्मरण) करता है, वह इस भवसागर से पार हो जाता है। जो पुरुष या स्त्री इस सर्वप्रदाता मन्त्रराज का नित्य जप करता है, वह अग्नि को स्तम्भित कर सकता है, वह जल को स्तम्भित कर सकता है। वह वायु को स्तम्भित कर सकता है, वह सूर्य को स्तम्भित कर सकता है, वह सभी देवताओं को स्तम्भित कर सकता है। वह विष को स्तम्भित कर सकता है, वह समग्र उपद्रवों को स्तम्भित कर सकता है। यह रहस्य है। जो कोई नित्य ही इस मन्त्रराज की उपासना करता है, वह विघ्नों को वश में कर लेता है, वह देवों को वश में कर लेता है, वह यक्षों को वश में कर लेता है, वह रोगों को वश में कर लेता है, वह ग्रहों एवं सभी मनुष्यों को वश में कर सकता है। वह भूलोक को जीत लेता है, वह भुवः लोक, स्वः लोक, महर्लोक, जनोलोक, तपोलोक, सत्यलोक आदि सभी लोकों को जीत लेता है। वह अग्निष्टोम यज्ञ का फल प्राप्त करता है, वह अत्यग्निष्टोम यज्ञ का फल प्राप्त करता है, वह उक्थ्य का, षोडशीय यज्ञ का , वाजपेय यज्ञ का, अतिरात्र यज्ञ का, अप्तोर्याम का, सभी यज्ञों का फल प्राप्त कर लेता है। जो कोई इस वैघ्नराज मन्त्र का नित्य जप करता है, वह ऋग्वेद के अध्ययन का फल पाता है, वह यजुर्वेद के अध्ययन का फल प्राप्त करता है, वह सामवेद के अध्ययन का फल प्राप्त करता है। वह अथर्ववेद के अध्ययन का फल प्राप्त करता है, वह आंगिरस के अध्ययन का फल प्राप्त कर लेता है, वह वैदिक शाखाओं के, पुराणों के, कल्पों के, गाथाओं के, पितृगणों से सम्बन्धित मन्त्रों के तथा प्रणव के अध्ययन का फल प्राप्त कर लेता है।

जो इस मन्त्रराज (गणेश के निचृत्-गायत्री मन्त्र) को जानता है, वह समग्र ज्ञान का भागी बनता है, वह सर्वज्ञ हो जाता है। वह वेदतुल्य, वह मुनि-तुल्य, वह बल में गजतुल्य, प्रकाश में सूर्यतुल्य, वर्चस् में अग्नितुल्य हो जाता है। वह एक सौ एक वटुकों का उपनयन करने वाले के समान, एक सौ एक गृहस्थों से बढ़कर, एक सौ एक वानप्रस्थों से भी श्रेष्ठ, रुद्रपाठ करने वाले के तुल्य हो जाता है। वह एक सौ एक संन्यासियों के समान, अथर्वशिरः शिखा का अध्यापन करने वाले विद्वान् के तुल्य हो जाता है। वह एक सौ एक रुद्रपाठकों के तुल्य, एक सौ एक अथर्वशिरः शिखाध्यापक के समान, गणेशतापिनी उपनिषद् के अध्यापक के समान हो जाता है। मन्त्रराज के जापक का, जहाँ सूर्य-चन्द्र प्रकाशित नहीं होते हैं, जहाँ हवा भी प्रवेश नहीं करती है, जहाँ नक्षत्र भी नहीं चमकते हैं, जहाँ अग्नि नहीं जलती है, जहाँ मृत्यु का प्रवेश नहीं होता है, जहाँ मोह नहीं है, जहाँ दुःख नहीं है, ऐसे सदानन्द, परानन्द, सम, शाश्वत, सदाशिव, परब्रह्मादि से वन्दित, योगियों द्वारा ध्यानगम्य, परम-पद चिन्मात्र, ब्रह्मणस्पति, एकाक्षर, बाहर भीतर अवस्थित परमात्मा (से सम्बन्ध स्थापित हो जाता है) है।

ऐसे उस परमात्मा को हृदय में समाविष्ट कर मन्त्रराज का सामान्य जप करके उसे (जापक को) जप, माला, आसन, ध्यानादि की आवश्यकता नहीं होती है। क्योंकि यह जो ब्रह्मरूप आत्मा है,वही स्वयं अवतीर्ण हो चुका है, वही चतुष्पात् सोऽहं आत्मा है; जो बहिः प्रज्ञ, प्रविविक्तभुक् तैजस है।

जब सोया हुआ जीव न किसी वस्तु की इच्छा करता है, न कोई स्वप्न ही देखता है, वही सुषुप्तावस्था है। वहाँ पर एकीभूत प्रज्ञानघन ही आनन्द का भोक्ता चेतोमुख प्राज्ञ है। यही सर्वेश्वर एवं सर्वान्तर्यामी है। यही समग्र प्राणियों का जन्मदाता है। यह न तो बहिः प्रज्ञ है, न अन्तः प्रज्ञ है, न उभयतः प्रज्ञ है और न प्रज्ञानघन ही है। यह तो व्यपदेश्य है, न व्यवहार्य है, न ग्राह्य है, न इसका कोई लक्षण है। यह अचिन्तनीय, ऐकात्म्यविश्वास का सार, सम्पूर्ण प्रपंचों से शान्त, अद्वैत ही चतुष्पात् शिव (ब्रह्म) है, जिसका ध्यान करते हुए वह आत्मा ही अद्वैत ब्रह्म हो जाता है। ऐसी उस आत्मा को सदा प्रकाशमय अविद्या तथा अविद्या के कार्यों से रहित, मन के बन्धन से रहित, द्वैतरहित, अविद्या के अंधकार, मोह तथा अहंकार से रहित मानकर यह अनुभव करना चाहिए कि मैं ही वह अव्यक्त प्रधान हूँ। ऐसी भावना करने वाला अमृतमय, तेजोमय, परमज्योतिर्मय, सदानन्दमय,स्वप्रकाश-रूप, सदा उदीयमान, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, ज्ञानरूप ब्रह्म में रमण करता है, रमण करता है, रमण करता है।

जो इस प्रकार गणेशतापिनी उपनिषद् को समझ लेता है, वह संसार से तर जाता है, घोर कष्ट से मुक्त हो जाता है, दुःख से छूट जाता है, विघ्नों से मुक्त हो जाता है। महासंकट से पार हो जाता है। वह आनन्दरूप हो जाता है।। वह नित्यस्वरूप हो जाता है। वह शुद्ध हो जाता है। वह मुक्त हो जाता है। वह स्वयं प्रकाशरूप हो जाता है। वह ईश्वररूप हो जाता है। वह मुख्य हो जाता है। वह अग्निरूप हो जाता है। वह तेजोरूप हो जाता है। वह प्राज्ञ हो जाता है। वह साक्षी हो जाता है। वह वही हो जाता है। वह सर्वरूप हो जाता है। वह सर्वरूप हो जाता है। इत्युपनिषत् अर्थात् यही रहस्य है॥ ॐ सहनाववतु (अन्त में 'सहनाववतु' सहकार भावना का सूचक है) ॥५॥

॥ इति गणेशोत्तरतापिन्युपनिषत्सु पञ्चमोपनिषत्॥ ५॥

ॐ॥ अथोवाच भगवती गौरी ह वै रुद्रमेतस्य मन्त्रराजस्यानुष्ठानविधिं मे ब्रूहीति। स होवाच रुद्रो विधिं लब्ध्वांशं गुरुदेवतयोरालभ्य मनसा पुष्पं निवेद्योपक्रम्य भूतोत्सारणमासनबन्धाद्यात्मरक्षासुनियमभूतशुद्धिप्राणस्थापनप्रणवावर्तनमातृपूजनान्तर्मातृकान्तर्यागादि सम्पाद्यात्र केचन समन्त्रं मूलवैदिककल्पैरुपक्रमं ग्रहणसमर्पणनिवेदनानि बाह्येऽन्यथेति महार्घ्यं शंखं त्रिपाद्योर्गन्धादिना पूजितयोः स्थाप्य पात्रासादनं दक्षिणोपक्रमेण पाद्यार्घ्याचमनमधुपर्क-पुनराचमननिवेदनपात्राणि संस्थासु यथोपदिष्टं चतुर्थ्योः पर्वणि संस्थासु यथाविधि स्थाप्य निवेदने प्रक्षालनमेव ततोऽर्वाक् पञ्चामृतपात्राणि रिक्तं च मूलेनालभ्य निवेदिन्यार्घ्यो-दकेनात्मानं पात्राणि सम्भारं च प्रोक्ष्य पात्रातिरिक्तानि महार्घ्योदकेन सर्वनिवेदनं करशुद्धिं मूलासुनियमं यथोक्तर्षिच्छन्दोदैवतं स्मृत्वा विनियोगश्च नित्ये पूजाङ्गो जपो जपाङ्गा पूजा जप इत्यङ्गुष्ठव्यापकस्वान्ताष्टाङ्गदण्डिमुण्डिन्यासादि कृत्वा मुखमवेक्ष्यात्मानं देवरूपिणं सम्भाव्यमूर्ध्नि पुष्पं दत्त्वा पीठं सम्पूज्यासनं दत्त्वा ऋष्यादि कृत्वा ध्यात्वा हृदयाम्भोजे योगिनोऽत्र जपन्ति। स्वान्ताम्भोजाद्देवमावाह्य मुद्रां दर्शयित्वा देवस्य सकलीकरणाङ्गुष्ठहृद-यार्पिन्या स्वान्ते

मुद्रां निवेद्य पात्राणि च मूलेन दत्त्वा रिक्ते पञ्चामृतं संयोज्य तेन पञ्चवारं सकृद्वाऽभिषिच्य नित्येन संतर्प्य कल्पस्तवनादिपुरुषसूक्तरुद्राध्यायघोषशान्त्यादिना मूलेन चाभिषिच्य सर्वपूजां निवेद्य दीपं त्रिर्भ्राम्य सव्येनाप्लाव्य महानैवेद्यपीठावरणान्युपसंहृत्य दर्शयेत्। ताम्बूलान्ते किञ्चिन्मूलमावर्त्य पुनर्धूपादित्रयभक्ष्यादि निवेद्य मुद्राः सर्वोपचारस्य दर्शयित्वा निवेदनमिदमासनं नमः पाद्ये एषोऽर्घ्यः स्वाहेति दक्षिणकरेऽर्घ्ये इदं स्वधेति पुरस्त्रिके मुखे नम इति स्नानेष्वेष गन्धो नमोऽक्षतेषु ॐ पुष्पाणि नमः पुष्पेष्वेष धूपो दीपो नमो धूपदीपयोः समर्पयामीति नैवेद्यफलताम्बूलेषु निवेदयामि नमो हिरण्ये एष पुष्पाञ्जलिर्नम इति मालायामिति परमं रहस्यमप्रकाश्यं बीजं य एवं वेद स सर्वं वेद स सर्वं वेद। वर्णार्थं लब्धांशेन मन्त्रार्थेन च पीठावरणदेवतावधानेन वा जपति स जपति। मुख्यं लब्धांशमासनं मृदुलं भुक्तरिक्तवासः कौसुम्भमाञ्जिष्ठरक्तकम्बलचित्रमृगव्याघ्राजिनं वा यथोक्तमुक्तान्यतरैरासनान्तरयोजना-स्फटिककमलभद्राक्षमणिमुक्ताप्रवालरुद्राक्षकुशग्रन्थिषु वा जपति स जपति। कुशमयी नित्याक्षालनं चन्दनालेपो धूपेनाभिमन्त्र्य पृथगभिमन्त्रणं सद्योजातैः पञ्चभिः प्राणस्थापन-जीवनतर्पणगुप्तानि च स्वमूले गुह्यं वामेन स्पृशेन्न दर्शयेत्। एवं श्रावणे पवित्रेण मधौ दमनेन जपमालया महानवम्यां तापस्यां चतुर्थ्यां तिललड्डुकैः सप्तम्यां शीतलचन्दनेन शिवरात्र्यां बिल्वदलमालयाऽन्यस्मिन्पर्वणि महत्यार्चयन्ति तेऽर्चयन्ति। मोदकपृथुकलाजसक्तुरम्भा-फलेक्षुनारीकेलापूपानन्यानि च यथोपदिष्टमाहुतिभिर्जुहोति। जपश्च प्राक्प्रवणे होमोऽन्यथो-पास्यः। एवं यः करोति सोऽमृतत्वं विन्दति स प्रतिष्ठां प्राप्नोति मुक्तिं विन्दति भुक्तिं भुनक्ति वाचं वदति यशो लभते। इदं रहस्यं यो जानाति स जानाति योऽधीते सोऽधीते स आनन्दो भवति स नित्यो भवति स विशुद्धो भवति स मुक्तो भवति स प्रकाशो भवति स दयावान्भवति ज्ञानवान्भवत्यानन्दवान्भवति विज्ञानवान्भवति विज्ञानानन्दो भवति सोऽमृतत्वं भवत्यमृतत्वं भवतीति॥ ६ ॥

ॐ भगवती पार्वती ने भगवान् शंकर से कहा- भगवन्! मुझे इस विघ्नराज-मन्त्र के अनुष्ठान की विधि बतलाइये। तब भगवान् शंकर ने कहा- लब्धांश विधि यही है कि मन से गुरुदेव एवं देवता का स्पर्श एवं पुष्प निवेदन करके विधिपूर्वक भूतों का उत्सारण करे। आसन जमाकर आत्मरक्षार्थ भूतशुद्धि की प्रक्रिया करे। तदनन्तर प्राण-प्रतिष्ठा की क्रिया सम्पन्न करे। फिर प्रणव का दीर्घ उच्चारण करे। तब मातृका-पूजन के अन्तर्गत मातृकान्तर्यागादि विधिवत् सम्पन्न करे। यहाँ पर कतिपय साधकों का विचार है कि वैदिक कल्पसूत्रों के अनुसार समन्त्रक पूजन आरम्भ करके विधिवत् ग्रहण, समर्पण एवं निवेदन करना चाहिए। यह बाह्यपूजन है। अन्यथा दो तिपाइयों का गन्धादि से पूजन करके उनपर महाअर्घपात्र तथा शंख की स्थापना करनी चाहिए। फिर दक्षिणावर्तन क्रम से पूजोपयोगी सभी पात्रों की स्थापना करनी चाहिए। जैसे पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क, पुनराचमनीय, नैवेद्यपात्र आदि; जैसा कि संस्थाओं में निर्देश दिया गया है। दोनों पक्ष की चतुर्थी तिथियों में या पर्वों पर संस्थाओं में विधिवत् स्थापना करके दो बार नैवेद्य समर्पित कर पात्रों का प्रक्षालनादि करना चाहिए। उसके बाद पञ्चामृत पात्रों की स्थापना करे। प्रत्येक रिक्त पात्र को मूलमन्त्र से स्पर्श करके निवेदिनी से किंवा

अर्घ्योदक से ही स्वयं का, उपस्थित पात्रों का तथा पूजा सामग्री का प्रोक्षण (मार्जन) करे। पूजापात्रों के अतिरिक्त सहायक पात्रों का महाअर्घ्यपात्र के जल से प्रक्षालन करे। विधिवत् सब सामग्री का निवेदन-समर्पण करे।

भली प्रकार करशुद्धि करके प्राणायाम करना चाहिए। तब यथोक्त ऋषि, छन्द एवं देवता के स्मरण के साथ विनियोग करना चाहिए। दैनिक पूजन कार्यक्रम का ही अंग जप होता है। इसी प्रकार पूजा भी जप का अङ्ग होती है अर्थात् जप एवं पूजन दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। अंगुष्ठव्यापक स्वान्त:करण में अष्टांग दण्डिन्यास-मुण्डिन्यास करके मुख देखकर, आत्मा (स्वयं) को देवरूप में मानकर, अपने सिर पर एक पुष्प रखकर पीठ का पूजन करना चाहिए। आसन देकर ऋष्यादि न्यास करके हृदयकमल में ध्यान करना चाहिए। योगिजन इसी प्रकार मन्त्रजाप करते हैं। हृदयकमल से देव का आवाहन करके मुद्रा प्रदर्शन करना चाहिए। हृदय को अंगुष्ठ से छूकर फिर सकलीकरण मुद्रा दिखाये।

मुद्रा निवेदन के पश्चात् मूलमन्त्र से सभी पात्र स्थापित करे। रिक्त पात्र में पञ्चामृत तैयार करे। उस पञ्चामृत से एक बार या पाँच बार अभिषेक करे। फिर नित्यवत् देव का तर्पण करे। कल्पोक्त स्तवनादि करे, पुरुष सूक्त का या रुद्राध्याय का पाठ करते हुए मूलमन्त्र के साथ देव का अभिषेक करना चाहिए। तत्पश्चात् विधिवत् पूजन करे। तीन बार आरती दीप को घुमावे। बाईं ओर से आप्लवन कर महानैवेद्य तथा पीठ के आवरणों को इकट्ठा कर देव को दिखाये। फिर ताम्बूल समर्पित करे। फिर कुछ मूल का आवर्तनकर धूप, दीप, नैवेद्य निवेदन करना चाहिए। सभी उपचारों की मुद्राएँ भी प्रदर्शित करनी चाहिए। मूल मन्त्र के साथ 'नम:' का उच्चारण करते हुए ही आसन, पाद्य, अर्घ्य आदि देना चाहिए। स्वाहा के साथ मन्त्र से दाहिने हाथ में (जल लेकर) अर्घ्य समर्पित करे। नम: के साथ ही स्नान, गन्ध, अक्षत, पुष्प एवं धूप-दीप समर्पित करे। समर्पयामि नम: कहकर धूप-दीप तथा निवेदयामि नम: कहकर नैवेद्य, फल एवं ताम्बूल समर्पित करे। नमो हिरण्य इत्यादि मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित करे। पुष्पाञ्जलि मालारूप में ही समर्पित करनी चाहिए। यह परम रहस्य है, जो प्रकट करने योग्य नहीं है। जो इस बीज को जानता है, वह सब कुछ जान लेता है, सब कुछ जान लेता है। गुरु द्वारा प्राप्त मन्त्रार्थ के साथ वर्णरूप मन्त्र का जप किया जाता है अथवा फिर पीठ आवरण देवता के ध्यान के साथ मन्त्र का जप किया जाता है। वही वास्तविक जप है।

लब्धांश आसन ही मुख्य होता है- वह कोमल होना चाहिए। उपभोग में लाये हुए वस्त्र का आसन त्याज्य है। कौसुम्भ, मजीठ से रंगा हुआ हो। लाल कम्बल का हो, चित्रमृग या बाघ के चमड़े का हो। उपर्युक्त किसी भी प्रकार का आसन उपयुक्त होता है। स्फटिक, कमलगट्टा, भद्राक्ष, रुद्राक्ष, मोती, प्रवाल या कुश की गाठों वाली माला काम में लाई जाती है। इन्हीं पर जप करना श्रेष्ठ है। कुशग्रन्थि की माला हो, तो प्रतिदिन उसका जल से प्रक्षालन आवश्यक है। चन्दन का लेप व धूप देना चाहिए। सद्योजात इत्यादि पाँच मन्त्रों से माला के पाँच संस्कार करे। बाएँ पैर से गुह्य का स्पर्श करे, दिखाये नहीं। इस प्रकार श्रावण मास में पवित्र से; चैत्र मास में दमन से, महानवमी पर जपमाला से, माघ की चतुर्थी को तिल के लड्डुओं से; शीतलासप्तमी को शीतल चन्दन से; शिवरात्रि को बिल्वपत्र की माला से तथा अन्य पर्वोत्सव पर महती से अर्चना करना श्रेष्ठ है। मोदक, पृथुक, लाजा, सत्तू, कदलीफल (केला), गन्ना, नारियल, मालपुओं से या अन्य शास्त्रोक्त विधानों से आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिए। जप भी अवश्य करना चाहिए। होम की वेदी पूर्व की ओर ढालू (ढलवाँ) होनी चाहिए। अन्य प्रकार से भी उपासना की जाये। इस प्रकार जो जप करता है, वह अमृतत्व को पाता है, वह प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है, वह मुक्तिलाभ पाता है, वह भोगों को भोगता है, वह मधुर वाणी बोलता है, वह यश को प्राप्त

करता है। जो इस रहस्य को जानता है, वही ज्ञानी है। जो इसका अध्ययन विधिवत् करता है, वही अध्ययनशील है। वह आनन्दरूप हो जाता है, वह नित्यस्वरूप हो जाता है। वह विशुद्धरूप हो जाता है, वह मुक्तस्वरूप हो जाता है। वह प्रकाशित हो जाता है, वह दयावान् हो जाता है, ज्ञानवान् हो जाता है, आनन्दपूर्ण हो जाता है, विज्ञानवान् हो जाता है, वह विज्ञानानन्दरूप हो जाता है, वह अमरत्व को प्राप्त कर लेता है, वह अमरत्व को प्राप्त कर लेता है।

इति गणेशोत्तरतापिन्युपनिषत्सु षष्ठोपनिषत्॥ ६॥

॥ ॐ सह नाववतु............ इति शान्तिः ॥

इति गणेशोत्तरतापिन्युपनिषत्समाप्ता॥

॥ गर्भोपनिषद् ॥

॥ शान्तिपाठः ॥

ॐ सह नाववतु.................. इति शान्तिः ॥ (द्रष्टव्य- गणेशोत्तरतापिन्युपनिषद्)

यह उपनिषद् कृष्णयजुर्वेद से सम्बद्ध है। इसमें कुल २२ मन्त्र हैं, जिसमें गर्भस्थ शिशु के विकास की प्रक्रिया का विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

इस उपनिषद् के प्रमुख विषय इस प्रकार हैं— सर्वप्रथम शरीर का लक्षण दिया गया है, तदुपरान्त शरीर का पंचभूतात्मक होना, शरीर का पाँचों भूतों में विद्यमान होना, शरीर के छः आश्रय और षड्गुणों का योग, शरीर का सात धातु वाला होना, मास के क्रम से गर्भस्थ शिशु का विकास, स्त्री-पुरुष-नपुंसक शरीर होने के कारण, गर्भ में चेतना का संचार, जन्म लेने के पहले पूर्वजन्म का स्मरण, जन्म के बाद उसका विस्मरण, शरीर के तीन मल, शरीर का यज्ञीय स्वरूप, शरीर का परिमाण अर्थात् शरीर में प्रत्येक तत्त्व कितनी मात्रा में है-इत्यादि विषयों का विशद वर्णन किया गया है।

ॐ पञ्चात्मकं पञ्चसु वर्तमानं षडाश्रयं षड्गुणयोगयुक्तम्। तंसप्तधातुं त्रिमलं द्वियोनिं चतुर्विधाहारमयं शरीरम् भवति ॥ १ ॥

यह शरीर पञ्चात्मक (पाँच तत्त्वों से युक्त) है, पाँचों में वर्तमान एवं छः आश्रयों से युक्त है। यह शरीर छः गुणों के योग से सम्पन्न, सात धातुओं के द्वारा निर्मित, तीन मलों (वात, पित्त, कफ) के दोष से दूषित, दो (स्त्री-पुरुष) योनियों से युक्त एवं चतुर्विध (भोज्य, लेह्य, चोष्य एवं पेय अर्थात् चबाने योग्य, चाटने योग्य, चूसने योग्य और पीने योग्य) आहार द्वारा पोषित होता है ॥ १ ॥

पञ्चात्मकमिति कस्मात्, पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशमित्यस्मिन्पञ्चात्मके शरीरे का पृथिवी का आपः किं तेजः को वायु किमाकाशमित्यस्मिन्पञ्चात्मके शरीरे यत्कठिनं सा पृथिवी यद्द्रवं ता आपो यदुष्णं तत्तेजो यत्संचरति स वायुः यत्सुषिरं तदाकाशमित्युच्यते ॥ २ ॥

यह (शरीर) पञ्चात्मक किस प्रकार है ? पृथिवी, जल, तेज (अग्नि), वायु, आकाश आदि पञ्च तत्त्वों द्वारा रचित होने के कारण पञ्चात्मक कहलाता है। इस देह (पिण्ड) में पृथिवी क्या है ? जल क्या है ? तेज (अग्नि) क्या है ? वायु क्या है ? तथा आकाश क्या है ? इस (शरीर) में जो कठिन तत्त्व है, वह पृथिवी है; जो द्रव है, वही जल है; जो उष्णता है, वही तेज (अग्नि) है; जो सञ्चार करता है, वह वायु है और जो छिद्र (रिक्त स्थान) है, वही आकाश तत्त्व कहलाता है ॥ २ ॥

तत्र पृथिवी धारणे आपः पिण्डीकरणे तेजः प्रकाशने वायुर्व्यूहने आकाशमवकाश प्रदाने॥ ३॥

इनमें पृथिवी (तत्त्व) धारण करने का कार्य करती है, जल तत्त्व एकत्रित करता है, तेज (अग्नि तत्त्व) प्रकाशित करता है, वायु तत्त्व व्यूहन अर्थात् अवयवों को यथास्थान प्रतिष्ठित करता है और आकाश तत्त्व का कार्य अवकाश प्रदान करना है॥ ३॥

पृथुस्तु श्रोत्रे शब्दोपलब्धौ त्वक् स्पर्शे चक्षुषी रूपे जिह्वा रसने नासिकाघ्राणे उपस्थश्चानन्दनेऽपानमुत्सर्गे बुद्ध्या बुध्यति मनसा संकल्पयति वाचा वदति॥ ४॥

इसके अलावा इस देह (पिण्ड) में श्रोत्र शब्द को ग्रहण करने का कार्य करता है; त्वचा 'स्पर्श' करने का कार्य, नेत्र रूप देखने का कार्य, जिह्वा 'रसास्वादन का', नासिका सूँघने का तथा गुदा मल निष्कासन का कार्य करती है। जीव 'बुद्धि' से ज्ञान की प्राप्ति करता है, 'मन' के द्वारा संकल्पित होता है और वागेन्द्रिय के द्वारा बोलने का कार्य करता है॥ ४॥

षडाश्रयमिति कस्मात्? मधुराम्ललवणतिक्तकटुकषायरसान्विन्दते॥ ५॥

(यह) शरीर छः आश्रयों से युक्त कैसे? वह इसलिए कि मधुर, खट्टा, लवण, कटु (कड़ुआ), कषाय एवं तिक्त, इन छः रसों का स्वाद ग्रहण करता है॥ ५॥

षड्जऋषभगान्धारमध्यमपञ्चमधैवतनिषादाश्चेतीष्टानिष्टशब्दसंज्ञाः प्रणिधानाद्दशविधा भवन्ति॥ ६॥

संगीत के ये सात स्वर षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत एवं निषाद कहे गये हैं। इनके अतिरिक्त इष्ट, अनिष्ट एवं प्रणिधानकारक (ॐकारादि) शब्दों को मिलाकर ये दस प्रकार के शब्द (स्वर) हो जाते हैं॥ ६॥

शुक्लो रक्तः कृष्णो धूम्रः पीतः कपिलः पाण्डुर इति। सप्तधातुकमिति कस्मात्? यदा देवदत्तस्य द्रव्यादिविषया जायन्ते। परस्परं सौम्यगुणत्वात्। षड्विधो रसः रसाच्छोणितं शोणितान्मांसं मांसान्मेदो मेदसः स्नायवः स्नायुभ्योऽस्थीनि अस्थिभ्यो मज्जा मज्जायाः शुक्रं शुक्रशोणितसंयोगादावर्तते गर्भो हृदि व्यवस्थां नयति। हृदयेऽभ्यन्तराग्निः अग्निस्थाने पित्तं पित्तस्थाने वायुः वायुस्थाने हृदयं प्राजापत्यात्क्रमात्॥ ७॥

इसमें सप्तरूप—श्वेत, लाल, काला, धूँधल (ललाई लिए काला रंग), पीला, कपिल (भूरा बादामी रंग) एवं पाण्डुर रंग सन्निहित है। (यह शरीर) सप्तधातुओं से किस प्रकार निर्मित है? जब (किसी) देवदत्त (दैव निर्मित काया) को द्रव्यादि भोग्य विषय उपलब्ध होते हैं, तब उनके आपस में अनुकूल रहने के कारण षड्रस व्यञ्जनों की प्राप्ति होती है। इन व्यञ्जनों से ही रस बनता है। रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद से स्नायु, स्नायुओं से अस्थियाँ, अस्थियों से मज्जा तथा मज्जा से शुक्रादि ये सप्त धातुएँ प्रादुर्भूत होती हैं। पुरुष के शुक्र एवं शुक्र शोषित अर्थात् रज के संसर्ग से गर्भ का प्राकट्य होता है। ये सभी धातुएँ हृदय में स्थित रहती हैं। हृदय में

अन्तराग्नि प्रादुर्भूत होती है, अग्नि के स्थान में पित्त, पित्त के स्थान में वायु एवं वायु द्वारा हृदय का विकास-सृजन क्रमशः पूर्ण होता है॥ ७॥

ऋतुकाले संप्रयोगादेकरात्रोषितं कलिलं भवति सप्तरात्रोषितं बुद्‌बुदं भवति। अर्धमासाभ्यन्तरेणमांसपिण्डो भवति। मासाभ्यन्तरेण कठिनो भवति। मासद्वयेन शिरः संपद्यते। मासत्रयेण पादप्रदेशो भवति। अथ चतुर्थे मासेगुल्फजठरकटिप्रदेशा भवन्ति। पञ्चमे मासे पृष्ठवंशो भवति। षष्ठे मासे मुखनासिकाक्षिश्रोत्राणि भवन्ति। सप्तमे मासे जीवेन संयुक्तो भवति। अष्टमे मासे सर्वलक्षणसंपूर्णो भवति॥ ८॥

ऋतुकाल में सम्यक् रूप से गर्भाधान होने के पश्चात् एक रात्रि में शुक्र-शोणित के मिलने से कलल बनता है। सात रात्रियों में बुद्‌बुद बनता है। आधे महीने अर्थात् एक पक्ष (१५ दिन) में उसका पिण्ड अर्थात् स्थूल-आकार-प्रकार बन जाता है और एक महीने में वह कठिन (कड़ा) हो जाता है। दो मास में सिर बन जाता है, तीन मास में पैर बन जाते हैं तथा इसके बाद चौथे मास में गुल्फ (पैर के घुटने), पेट एवं कटि-प्रदेश विनिर्मित हो जाते हैं। पाँचवें मास में पृष्ठभाग (पीठ) की रीढ़ बन जाती है। छठे मास में मुख, आँख, नाक एवं कान बनकर तैयार हो जाते हैं। सातवें मास में (गर्भ स्थित पिण्ड) जीव से युक्त हो जाता है। आठवें मास में वह समस्त लक्षणों से परिपूर्ण हो जाता है॥ ८॥

पितुः रेतोऽतिरेकात्पुरुषोभवति। मातुः रेतोऽतिरिक्तात्स्त्रियो भवन्त्युभयोर्बीजतुल्यत्वान्नपुंसको भवति। व्याकुलितमनसोऽन्धाः खञ्जाः कुब्जा वामना भवन्ति। अन्योन्यवायुपरिपीडित-शुक्रद्वैविध्याद्विधा तनूः स्यात्ततो युग्माः प्रजायन्ते॥ ९॥

पिता के वीर्य (शुक्राणु) की अधिक सक्रियता से पुत्र की प्राप्ति होती है और माता के रज (डिम्बाणु) की अधिक सक्रियता से पुत्री की प्राप्ति होती है। इसके अतिरिक्त जब दोनों (शुक्र एवं डिम्ब) की सक्रियता बराबर होती है, तब नपुंसक सन्तान की प्राप्ति होती है। मन में व्याकुलता होने की स्थिति में समागम करने पर अन्धी, बौनी, कुबड़ी तथा खोड़ी (विकलाङ्ग) सन्तान पैदा होती है। जब आपस में वायु के संघर्ष से शुक्र दो भागों में विभक्त होकर सूक्ष्म हो जाता है, तब जुड़वाँ सन्तान उत्पन्न होती है॥ ९॥

पञ्चात्मकः समर्थः पञ्चात्मिका चेतसा बुद्धिर्गन्धरसादिज्ञानाक्षरमक्षरमोङ्कारं चिन्तयतीति तदेतदेकाक्षरं ज्ञात्वाऽष्टौ प्रकृतयः षोडश विकाराः शरीरे तस्यैव देहिनाम्। अथ मात्राऽशितपीतनाडीसूत्रगतेन प्राण आप्यायते। अथ नवमे मासि सर्वलक्षणज्ञानकरणसंपूर्णो भवति पूर्वजातिं स्मरति शुभाशुभं च कर्म विन्दति॥ १०॥

पञ्चभूतात्मक शरीर जब स्वस्थ एवं समर्थ होता है, तब चेतना में पञ्च ज्ञानेन्द्रियात्मक बुद्धि उत्पन्न होती है, उसी से गन्ध, रस आदि के ज्ञान की प्राप्ति होती है। जब वह गर्भस्थित जीवात्मा अविनाशी ॐकार का चिन्तन करता हुआ इस एकाक्षर को जान लेता है, तब उस चैतन्य शरीर में आठ प्रकृतियाँ यथा-प्रकृति, महत्-तत्त्व, अहंकार एवं पाँच तन्मात्राएँ और सोलह विकार (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच स्थूलभूत एवं मन)

होते हैं। इसके बाद माता के द्वारा खाया-पिया अन्न एवं जल नाड़ी-सूत्रों के द्वारा पहुँच कर गर्भस्थ शिशु के प्राणों को तृप्त करता है। इसके अनन्तर नवें मास में वह ज्ञानेन्द्रिय आदि सभी लक्षणों से परिपूर्ण हो जाता है। उस समय वह अपने पूर्व जन्म का स्मरण करता है, तभी उसके शुभ एवं अशुभ कर्म भी उसके समक्ष आ जाते हैं॥ १०॥

पूर्वयोनिसहस्राणि दृष्ट्वा चैव ततो मया। आहारा विविधा भुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः॥ ११॥

तब उस समय गर्भ में स्थित जीव सोचने लगता है कि 'मैंने हजारों पूर्व-जन्मों को देखा', उन जन्मों में भिन्न-भिन्न तरह के भोजन ग्रहण किये एवं विभिन्न योनियों में जन्म लेकर विविध स्तनों का पान किया॥ ११॥

जातश्चैव मृतश्चैव जन्म चैव पुनःपुनः। यन्मया परिजनस्यार्थे कृतं कर्म शुभाशुभम्। एकाकी तेन दह्यामि गतास्ते फलभोगिनः। अहो दुःखोदधौ मग्नो न पश्यामि प्रतिक्रियाम्॥ १२-१३॥

मैंने अनेक बार जन्म लिया और मृत्यु को प्राप्त हुआ। उन पूर्व जन्मों में अपने परिवारी जनों के प्रति मैंने जो शुभ एवं अशुभ कर्म किये हैं, उन्हीं कर्मों को सोच-सोचकर मैं आज यहाँ पर एकाकी ही जल रहा हूँ। उन भोगों का उपभोग करने वाले तो चले गये, किन्तु मैं यहाँ इस दुःख रूपी समुद्र में पड़ा हूँ। इससे निकलने का कोई उपाय नहीं देख रहा हूँ॥ १२-१३॥

यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत्प्रपद्ये महेश्वरम्। अशुभक्षयकर्तारं फलमुक्तिप्रदायकम्॥ १४॥

यदि मैं इस योनि से छूट जाऊँ अर्थात् यदि इस गर्भ से बाहर निकल जाऊँ, तो अशुभ कर्मों का विनाश करने वाले एवं मुक्तिरूप फलप्रदाता भगवान् महेश्वर के श्री चरणों का आश्रय ग्रहण कर लूँगा॥ १४॥

यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत्प्रपद्ये नारायणम्। अशुभक्षयकर्तारं फलमुक्तिप्रदायकम्॥ १५॥

यदि मैं इस योनि से छूट जाऊँगा, तो अशुभ कार्यों को विनष्ट करने वाले एवं मुक्तिरूप फलप्रदाता भगवान् श्रीमन्नारायण की शरण प्राप्त कर लूँगा॥ १५॥

यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत्साङ्ख्यं योगमभ्यसे। अशुभक्षय कर्तारं फल मुक्ति प्रदायकम्॥ १६॥

यदि मैं इस योनि से छूट जाऊँगा, तो निश्चित रूप से अशुभ कर्मों का विनाश करने वाले एवं मुक्तिरूप फल प्रदान करने वाले सांख्य शास्त्र एवं योग शास्त्र का सतत अभ्यास करता रहूँगा॥ १६॥

यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं ध्याये ब्रह्म सनातनम्॥ १७॥

यदि मैं इस बार इस योनि से मुक्त हो गया, तो निरन्तर सनातन ब्रह्म का ही चिन्तन करता रहूँगा॥ १७॥

अथ योनिद्वारं सम्प्राप्तो यन्त्रेणापीड्यमानो महता दुःखेन जातमात्रस्तु वैष्णवेन वायुना संस्पृष्टस्तदा न स्मरति जन्ममरणानि न च कर्म शुभाशुभं विदन्ति॥ १८॥

इसके पश्चात् वह गर्भस्थ जीव योनिद्वार को प्राप्त करके योनिरूपी यन्त्र से दबाया जाता हुआ बड़े कष्ट से जन्म प्राप्त करता है। गर्भ से बाहर आते ही वह वैष्णवी वायु (माया) के स्पर्श से अपने पूर्व जन्मों एवं मृत्युओं को भूल जाता है तथा उसके द्वारा किये हुए शुभ एवं अशुभ कर्म भी सामने से अलग हो जाते हैं॥ १८॥

शरीरमिति कस्मात्? अग्नयोह्यत्र श्रियन्ते ज्ञानाग्निर्दर्शनाग्निः कोष्ठाग्निरिति। तत्रकोष्ठाग्निर्नामाशितपीतलेह्यचोष्यं पाचयति। दर्शनाग्नी रूपादीनां दर्शनं करोति। ज्ञानाग्निः शुभाशुभं च कर्म विन्दति॥ १९॥

इस देह का 'शरीर' नाम कैसे हुआ? यह इसलिए कि ज्ञानाग्नि, दर्शनाग्नि एवं कोष्ठाग्नि (जठराग्नि) के रूप में अग्नि इस देह में आश्रय ग्रहण करता है। इसमें जो खाये, पिये, चाटे एवं चूसे हुए पदार्थों को पचाता है, वही कोष्ठाग्नि (जठराग्नि) है। जो रूपों का दर्शन कराता है, वह दर्शनाग्नि है और जो शुभ एवं अशुभ कर्मों को सामने उपस्थित कर देता है, वही ज्ञानाग्नि कहलाता है॥ १९॥

त्रीणि स्थानानि भवन्ति मुखे आहवनीय उदरे गार्हपत्योहृदि दक्षिणाग्निः आत्मा यजमानो मनो ब्रह्मा लोभादयः पशवो धृतिर्दीक्षा संतोषश्च बुद्धीन्द्रियाणि यज्ञपात्राणि हवींषि कर्मेन्द्रियाणि शिरः कपालं केशा दर्भा मुखमन्तर्वेदिः चतुष्कपालं शिरः षोडश पार्श्वदन्तपटलानि सप्तोत्तरं मर्मशतं साशीतिकं संधिशतं सनवकं स्नायुशतं सप्त शिराशतानि पञ्च मज्जाशतानि अस्थीनि च ह वै त्रीणि शतानि षष्टीः सार्धचतस्रो रोमाणि कोट्यो हृदयं पलान्यष्टौ द्वादश पलानि जिह्वा पित्तप्रस्थं कफस्याढकं शुक्रं कुडुबं मेदः प्रस्थौ द्वावनियतं मूत्रपुरीषमाहारपरिमाणात् ॥ २०-२१॥

इस देह में अग्नि के तीन स्थान बतलाये गये हैं। जिनमें प्रथम आहवनीय है, जो मुख में निवास करता है और द्वितीय गार्हपत्य अग्नि है, जो उदर में निवास करता है और तृतीय दक्षिणाग्नि है, जो हृदय में निवास करता है। आत्मा यजमान एवं मन ब्रह्मा है। लोभादि (विकार) पशु हैं, (जहाँ यज्ञ में पशुबलि का उल्लेख है, वहाँ इन विकारों को नष्ट करने का भाव लिया जाना उचित है) धैर्य और संतोष दीक्षा हैं, ज्ञानेन्द्रियाँ यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले पात्र हैं, कर्मेन्द्रियाँ हवि (हवन करने की सामग्री) हैं, सिर कपाल (यज्ञोपयोगी-कपाल) एवं केश दर्भ (कुश) हैं। मुख अन्तर्वेदिका है, सिर चतुष्कपाल है, पार्श्व की दन्तपंक्तियाँ ही षोडश कपाल मानी गयी हैं। एक सौ सात मर्मस्थल हैं, एक सौ अस्सी संधियाँ (जोड़) हैं, एक सौ नौ स्नायु हैं, सात सौ शिराएँ हैं, पाँच सौ मज्जाएँ एवं तीन सौ साठ अस्थियाँ बतलाई गई हैं। साढ़े चार करोड़ रोम हैं, आठ पल (तोला) हृदय है, द्वादश पल (तोला) जिह्वा है। प्रस्थमात्र (एक सेर) पित्त, आढ़कमात्र (ढाई सेर) कफ, कुडवमात्र (पावभर) शुक्र तथा दो प्रस्थ (दो सेर) मेद है। इन सबके अतिरिक्त इस देह में आहार के परिमाण से मल-मूत्र का परिमाण होता है। यह अनियत है, अतः सभी में एक समान नहीं होता॥ २०-२१॥

पैप्पलादं मोक्षशास्त्रं पैप्पलादं मोक्षशास्त्रमिति॥ २२॥

इसे (इस उपनिषद् को) मोक्ष शास्त्र कहा गया है। यह पिप्पलाद ऋषि के द्वारा प्रकट किया गया है, इस कारण इसे पैप्पलाद मोक्षशास्त्र कहते हैं॥ २२॥

ॐ सह नाववतु.......................... इति शान्तिः॥

॥ इति गर्भोपनिषत्समाप्त॥

॥ गुह्यकाल्युपनिषद् ॥

अथर्ववेदमध्ये तु शाखा मुख्यतमा हि षट्। स्वयंभुवा याः कथिताः पुत्रायाथर्वणे पुरा॥ १ ॥
तासु गुह्योपनिषदस्तिष्ठन्ति वरवर्णिनि। नामानि शृणु शाखानां तत्राद्या वारतन्तवी॥ २ ॥
मौञ्जायनी द्वितीया तु तृतीया तार्णबैन्दवी। चतुर्थी शौनकी प्रोक्ता पञ्चमी पैप्पलादिका॥ ३ ॥
षष्ठी सौमन्तवी ज्ञेया सारात् सारतमा इमाः। गुह्योपनिषदो गूढाः सन्ति शाखासु षट्स्वपि॥ ४ ॥

ॐ प्राचीन काल में ब्रह्माजी ने अपने पुत्र अथर्वा को बताया था कि अथर्ववेद में मुख्य शाखाएँ छः हैं। हे प्रिये (पार्वती)! उनमें ही गुह्य उपनिषदें अन्तर्हित हैं। उन शाखाओं के नाम सुनो-पहली शाखा वारतन्तवी (वरतन्तु ऋषि प्रणीत), दूसरी मौञ्जायनी, (मुञ्जायनकृत) तीसरी तार्णबैन्दवी (तृणबिन्दुरचित), चौथी शौनकी शाखा है। पाँचवीं शाखा का नाम पैप्पलादी है एवं छठी शाखा को सौमन्तवी (सुमन्तुकृत) जानो। यह रहस्यों का भी रहस्य, सारों का भी सार है। सभी छः शाखाओं में गुह्य उपनिषदें छिपी हुई हैं॥ १-४॥

ता एकीकृत्य सर्वास्तु मयाऽस्यां विनिवेशिताः। संहितायां साधकानामुद्धाराय वरानने॥ ५ ॥
तास्ते वदामि यत् प्रोक्तं ध्यानं कुर्वन्ति देवताः। विराट्ध्यानं हि तज्ज्ञेयं महापातकनाशनम्॥ ६ ॥
ब्रह्माण्डाद्बहिरूर्ध्वं हि महत्तत्त्वमहंकृतिः। रूपाणि पञ्च तन्मात्राः पुरुषः प्रकृतिर्नव॥ ७ ॥

उन सबको एकत्रित करके साधकों के उद्धार के लिए मैंने इसी संहिता में सम्मिलित रूप से रख दिया है, हे सुन्दरी (पार्वती)! मैं अब तुम्हें बतलाता हूँ। जिस ध्यान का अभ्यास देवता करते हैं, उस ध्यान को विराट्ध्यान कहते हैं। वह महापापों का नाश करने वाला है। इस ब्रह्माण्ड में सुदूर ऊपर महत्तत्त्व है, अहंकार है, पाँच प्रकार की तन्मात्राएँ हैं, पुरुष है तथा प्रकृति है, इस प्रकार कुल नौ तत्त्व हैं॥ ५-७॥

महापातालपादान्तलम्बा तस्या जयं स्मरेत्। ब्रह्माण्डार्धं कपालं हि शिरस्तस्या विभावयेत्॥ ८ ॥
देवलोको ललाटं च षट्त्रिंशल्लक्षयोजनम्। मेरुः सीमन्तदण्डोऽस्या ग्रहरत्नसमाकुलः॥ ९ ॥

यह प्रकृति महापाताल के पादान्त तक विस्तृत है। इसकी जय-जयकार करना चाहिए। ऊपर वाले आधे ब्रह्माण्ड को उस शक्ति का सिर मानना चाहिए, छत्तीसलाख योजन विस्तीर्ण देवलोक उस शक्ति का ललाट है। ग्रहरत्नों से अलंकृत मेरुपर्वत उस महाशक्ति का सीमन्त है॥ ८-९॥

अन्तर्वीथी नागवीथी भ्रुवावस्याः प्रकीर्तिते। शिवलोकश्च वैकुण्ठलोकः कर्णावुभौ मतौ॥१०॥
लोहितं तिलकं ध्यायेन्नासा मन्दाकिनी तथा। चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ च पक्ष्माणि किरणास्तथा॥११॥

अन्तर्वीथी एवं नागवीथी ये उसकी दो भौंहें हैं। शिवलोक तथा वैकुण्ठ लोक उसके दो कान कहे गये हैं। लोहितनद को तिलक के रूप में ध्यान करना चाहिए। मन्दाकिनी नासिका है। चन्द्र-सूर्य दो नेत्र हैं। किरणें पलकें हैं॥ १०-११॥

गण्डौ स्यातां तपोलोकसत्यलोकौ यथाक्रमम्। जनोलोकमहर्लोकौ कपोलौ परिकीर्तितौ ॥१२॥
स्यातां हिमाद्रिकैलासौ तस्या देव्यास्तु कुण्डले। स्वर्लोकश्च भुवर्लोको देव्या ओष्ठाधरौ मतौ॥ १३॥
दिक्पतीनां ग्रहाणां च लोकाश्चाथ रदावली। गन्धर्वसिद्धसाध्यानां पितृकिन्नररक्षसाम्॥ १४॥
पिशाचयक्षाप्सरसां मरीचीयायिनां तथा। विद्याधराणामाज्योष्मपाणां सोमैकपायिनाम्॥१५॥
सप्तर्षीणां ध्रुवस्यापि लोका ऊर्ध्वरदावली। मुखं च रोदसी ज्ञेयं द्यौर्लोकश्चिबुकं तथा॥ १६॥

तपोलोक एवं सत्यलोक क्रमशः गंडस्थल हैं। जनोलोक एवं महर्लोक उस महाशक्ति के दो कपोल हैं। हिमालय एवं कैलाश पर्वत उन देवी के दो कुण्डल हैं। स्वर्लोक एवं भुवर्लोक उन देवी के ओष्ठ एवं अधर हैं। दिक्पालों और ग्रहों के लोक दन्तपंक्तियाँ हैं। गन्धर्वों, सिद्धों एवं साध्यों के लोक, पितरों, किन्नरों एवं राक्षसों के लोक, पिशाचों, यक्षों एवं अप्सराओं के लोक, मरीचि (कान्ति) सम्पन्नों, विद्याधरों, आज्योष्मपायियों, सोमपायियों, सप्तऋषियों तथा ध्रुव के लोक ऊपर की दन्तपंक्ति है। रोदसी (द्यु एवं पृथिवी) उनका मुख है, द्यौलोक चिबुक (ठोड़ी) है॥ १२-१६॥

ब्रह्मलोको गलः प्रोक्तो वायवः प्राणरूपिणः। वनस्पतय ओषध्यो लोमानि परिचक्षते॥ १७॥
विद्युद्दृष्टिरहोरात्रं निमेषोन्मेषसंज्ञकम्। विश्वं तु हृदयं प्रोक्तं पृथिवी पाद उच्यते॥ १८॥

ब्रह्मलोक उनका गला है। वायु प्राणरूप है। वनस्पतियाँ एवं औषधियाँ उनके लोम हैं। विद्युत् उनकी दृष्टि है। अहोरात्र उनके निमेष-उन्मेष हैं। विश्व उनका हृदय है। पृथिवी उनका पैर है॥ १७-१८॥

तलं तलातलं चैव पातालं सुतलं तथा। रसातलं नागलोकाः पादाङ्गुल्यः प्रकीर्तिताः॥ १९॥
वेदा वाचः स्यन्दमाना नदा नद्योऽमिता मताः। कलाः काष्ठा मुहूर्ताश्च ऋतवोऽयनमेव च॥ २०॥
पक्षा मासास्तथा चाब्दाश्चत्वारोऽपि युगाः प्रिये। कफोणिर्मणिबन्धश्च तदूरुकटिबन्धनाः॥२१॥
प्रपदाश्च स्फिचश्चैव सर्वाङ्गानि प्रचक्षते। वैश्वानरः कालमृत्युर्जिह्वात्रयमिदं स्मृतम्॥ २२॥

तललोक, तलातल, पाताल, सुतल, रसातल, नागलोक ये सभी पैरों की अँगुलियाँ हैं। वेद ही उनकी वाणी हैं। प्रवाहशील नद एवं अनेक नदियाँ ही उनकी कलाएँ हैं। चारों युग वर्ष, मास, ऋतुएँ, पक्ष, अयन एवं मुहूर्त ही उनकी कोहनियाँ, मणिबन्ध, ऊरु, कटिबन्ध प्रपद एवं कूल्हे आदि सभी अङ्ग हैं। काल, मृत्यु एवं वैश्वानर, ये तीनों उनकी जिह्वाएँ हैं॥ १९-२२॥

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं तनुमस्याः प्रचक्षते। प्रलयो भोजने कालस्तृप्तिस्तेन च नासिका॥ २३॥
ज्ञेयः पार्श्वपरीवर्तो महाकल्पान्तरोद्भवः। विराड्रूपस्य ते ध्यानमिति संक्षेपतोऽर्पितम्॥ २४॥
तस्याः स्वरूपविज्ञानं सपर्या परिकीर्तिता। तदेव हि श्रुतिप्रोक्तमवधारय पार्वति॥ २५॥
यथोर्णनाभिः सूत्राणि सृजत्यपि गिलत्यपि। यथा पृथिव्यामोषध्यः संभवन्ति गिलन्त्यपि॥२६॥

उनका शरीर आब्रह्म-स्तम्ब पर्यन्त विस्तृत है, प्रलय ही भोजन का समय है। उससे तृप्ति ही उनकी नासिका है। दो महाकल्पों के बीच का समय ही उनका करवट बदलना है। हे पार्वती! मैंने तुम्हें उनके विराट् रूप

का ध्यान संक्षेप में बताया है। उन महामाया के स्वरूप का ज्ञान ही उनकी अर्चना है। वेदों में भी यही कहा गया है। जिस प्रकार मकड़ी अपने मुँह से सूत (तार) उगलती है तथा फिर उसे निगलती भी है। जैसे पृथिवी से ही औषधियाँ उत्पन्न होती हैं तथा पृथिवी में ही विलीन भी हो जाती हैं॥ २३-२६ ॥

पुरुषात् केशलोमानि जायन्ते च क्षरन्त्यपि। उत्पद्यन्ते विलीयन्ते तथा तस्यां जगत्यपि॥ २७॥

जैसे पुरुष से ही केश एवं रोम उत्पन्न होते एवं नष्ट भी हो जाते हैं, उसी प्रकार उस महाकाली से अनेक विश्व उत्पन्न भी होते हैं तथा उसी में विलीन भी हो जाते हैं॥ २७॥

ज्वलत: पावकाद्यद्वत् स्फुलिङ्गा: कोटिकोटिश:।
निर्गत्य च विनश्यन्ति विश्वं तस्यास्तथा प्रिये॥ २८॥

जिस प्रकार जाज्वल्यमान अग्नि से करोड़ों चिनगारियाँ निकलती हैं तथा उसी में पुन: समा जाती हैं, उसी प्रकार हे प्रिये! विश्व भी उसी से उत्पन्न होकर, उसी में लीन हो जाता है॥ २८॥

ऋचो यजूंषि सामानि दीक्षा यज्ञा: सदक्षिणा:। अध्वर्युर्यजमानश्च भुवनानि चतुर्दश॥ २९॥
ब्रह्मविष्ण्वादिका देवा मनुष्या: पशवो यत:। प्राणापानौ व्रीहयश्च सत्यं श्रद्धा विधिस्तप: ॥३०॥
समुद्रा गिरयो नद्य: सर्वे स्थावरजङ्गमा:। विसृज्येमानि सर्गादौ त्वं प्रकाशयसे तत:॥ ३१॥

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, दीक्षा, यज्ञ, दक्षिणा, अध्वर्यु, यजमान, चौदह भुवन, ब्रह्मा, विष्णु आदि देव, मनुष्य, पशु, प्राण-अपान, व्रीहि, सत्य, श्रद्धा, विधि (श्राद्ध), तप, समुद्र, पर्वत, नदियाँ सभी चर-अचर का सृष्टि के आरम्भ में सृजन करके, तुम्हीं प्रकाशित होती हो॥ २९-३१॥

जङ्गमानि विधायान्धे विशत्यप्रतिभूतकम्। नवद्वारं पुरं कृत्वा गवाक्षाणीन्द्रियाण्यपि॥ ३२॥
सा पश्यत्यत्ति वहति स्पृशति क्रीडतीच्छति। शृणोति जिघ्रति तथा रमते विरमत्यपि॥ ३३॥
तया मुक्तं पुरं तद्धि मृतमित्यभिधीयते॥ ३४॥
ये तप: क्षीणदोषास्ते नैव पश्यन्ति भाविताम्। ज्योतिर्मयीं शरीरेऽन्तर्ध्यायमानां महात्मभि:॥ ३५॥

उनसे फिर जंगम पदार्थों की रचना करके (वह) स्वयं तम में प्रविष्ट हो जाती है **'प्रतिभूतकम्'** (पंचभूतात्मक) नौ द्वार वाला नगर बनाकर इन्द्रियों के झरोखों से वह देखती है, खाती है, वहन करती है, स्पर्श करती है, खेलती है, चाहती है, सुनती है, सूँघती है, रमण करती है एवं विश्राम करती है। उसके द्वारा छोड़ दिये जाने पर यह पुर (शरीर) मृत कहलाता है। महात्माओं के द्वारा शरीर के भीतर ही ज्योति: स्वरूप ध्यान योग्य उस शक्ति को (जो भावनामयी है), तप से क्षीण दोष वाले नहीं देख पाते हैं॥ ३२-३५॥

बृहच्च तद्दिव्यमचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्च तत् सूक्ष्मतरं विभाति।
दूरात् सुदूरे तदिहास्ति किञ्चित् पश्येत्त्विहैतन्निहितं गुहायाम्॥ ३६॥

वह बृहत् है, वह दिव्य (प्रकाशमय) है, वह अचिन्तनीय है, वह सूक्ष्म से भी अतिसूक्ष्म प्रतीत होता है, वह दूर से भी अतिदूर है, वह यहाँ भी है, यदि कोई देखना चाहे, तो वह गुहा (अन्तरंग अनुभूति) में छिपा हुआ है (अतएव उसका सहज अनुभव नहीं होता)॥ ३६॥

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्योगैर्न हि सा कर्मणा वा।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वः ततस्तु तां पश्यति निष्कलां च॥ ३७॥

वह न तो नेत्रों से दिखाई देती है, न वाणी से बताई जा सकती है, न अन्य इन्द्रियादि द्वारा ज्ञात हो सकती है, न योगादि क्रियाओं से पकड़ने में आ सकती है, न किसी कर्म द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। जिसका अन्त:करण ज्ञान के प्रसाद से निर्मल हो चुका है, वही उस कलाहीन शक्ति को देख सकता है॥ ३७॥

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे गच्छन्त्यस्तं नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान् नामरूपाद्विमुक्तः। परात् परां जगदम्बामुपैति॥ ३८॥

जिस प्रकार नदियाँ बहती हुई सागर में मिलकर अपने नाम-रूप का त्याग कर देती हैं, उसी प्रकार तत्त्वज्ञ पुरुष अपने नाम-रूप से विमुख होकर उस परात्पर जगदम्बा को प्राप्त हो जाता है॥ ३८॥

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि॥ ३९॥ सैवैतत्॥
एषैवालम्बनं श्रेष्ठं सैषैवालम्बनं परम्। एषैवालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते॥ ४०॥

समस्त वेद जिस पद का आम्नाय (कथन) करते हैं। सम्पूर्ण तप जिसके लिए किये जाते हैं। जिसकी इच्छा से ब्रह्म (वेद) का अभ्यास करने के लिए ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हैं, उसी पद को मैं संक्षेप से बता रहा हूँ- वही वह (जगदम्बा) है। यही श्रेष्ठ आलम्बन है, यह (जगदम्बा) ही परम आलम्बन है, एकमात्र इसी (जगदम्बा) का आश्रय ग्रहण कर पुरुष ब्रह्मलोक में भी पूजित होता है॥ ३९-४०॥

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था ह्यर्थेभ्यश्च परं मनः। मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः॥ ४१॥

विषय-इन्द्रियों से पर (श्रेष्ठ) हैं। मन विषयों से भी पर (बलवान्) है। मन से भी बुद्धि अधिक बलवती है तथा आत्मा तो बुद्धि से भी पर (श्रेष्ठ) है। आत्मा महान् है॥ ४१॥

महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः। पुरुषात्तु परा देवी सा काष्ठा सा परा गतिः॥ ४२॥

महत् तत्त्व से अव्यक्त पर है। पुरुष अव्यक्त से भी पर है। देवी पुरुष से भी पर है। वही अन्तिम लक्ष्य है, वही परम गति है॥ ४२॥

यथोदकं गिरौ सृष्टं समुद्रेषु विधावति। एवं धर्मान् पृथक् पश्यंस्तामेवानुविधावति॥ ४३॥

पहाड़ पर बरसने वाला पानी अन्त में सागर में ही दौड़कर मिल जाता है, इसी प्रकार भिन्न-भिन्न धर्मों का पालन करते हुए भी अन्त में उस पराशक्ति को ही प्राप्त करता है॥ ४३॥

एका गुह्या सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा या करोति। तामात्मस्थां येऽनुपश्यन्ति धीराः तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्॥ ४४॥

सम्पूर्ण प्राणियों के अन्त:करण में छिपकर बैठी हुई एक ही शक्ति है, जो एकरूपा होकर भी अनन्तरूपों में प्रतिभासित हो रही है, उस महाशक्ति को जो धीर पुरुष अपने भीतर (हृदयगुहा में) देख लेते हैं, (अनुभव कर लेते हैं), उन्हीं को शाश्वत सुख की (अमृतत्व की) प्राप्ति होती है, अन्यों को नहीं॥ ४४॥

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः। तामेव भान्तीमनुभाति सर्वं तस्या भासा सर्वमिदं विभाति॥ ४५॥

यस्याः परं नापरमस्ति किञ्चित् यस्या नाणीयो न ज्यायोऽस्ति किञ्चित्। वृक्ष इव स्तब्धा दिवि तिष्ठत्येका यदन्तः पूर्णामवगत्य पूर्णः॥ ४६॥

वहाँ न सूर्य प्रकाशित होता है, न चाँद और तारे। न वहाँ बिजलियाँ चमकती हैं, तो अग्नि कैसे चमक सकती है ? उस (पराशक्ति) के प्रकाश से सभी कुछ प्रकाशित है, उसकी ही कान्ति से सभी कुछ कान्तिमान् है। जिससे न कुछ पर है, न कुछ अपर है, जिससे लघु कोई तत्त्व नहीं है, जिससे बड़ा या श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है, जो एकमात्र शक्ति द्युलोक में वृक्ष (अश्वत्थ) की तरह स्थित है, जिस पूर्ण को अन्तरंग में जानकर मनुष्य स्वयं भी पूर्ण हो जाता है॥ ४५-४६॥

सर्वाननशिरोग्रीवा सर्वभूतगुहाशया। सर्वत्रस्था भगवती तस्मात् सर्वगता शिवा॥ ४७॥

सम्पूर्ण सिर, ग्रीवा एवं मुखाकृतियाँ उसी परम शक्ति की हैं। सम्पूर्ण प्राणियों की हृदय गुहा में (भावना रूप से) उसी महाशक्ति का निवास है। अस्तु, सम्पूर्ण विश्व के कण-कण में उसी भगवती का अस्तित्व होने से वह शिवा (कल्याणी) सम्पूर्ण विश्व के प्रत्येक चर-अचर पदार्थ में समाहित है॥ ४७॥

सर्वतः पाणिपादान्ता सर्वतोऽक्षिशिरोमुखा। सर्वतः श्रुतिमत्येषा सर्वमावृत्य तिष्ठति॥ ४८॥
सर्वेन्द्रियगुणाभासा सर्वेन्द्रियविवर्जिता। सर्वेषां प्रभुरीशानी सर्वेषां शरणं सुहृत्॥ ४९॥
नवद्वारे पुरे देवी हंसी लीलायतां बहिः। ध्येया सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्य चरस्य च॥ ५०॥

उस महाशक्ति के हाथ-पैर सभी जगह विद्यमान हैं। उसके नेत्र, सिर, श्रोत्र आदि करण, सर्वत्र उपस्थित हैं। सम्पूर्ण विश्व को आवृत कर वह महाशक्ति उपस्थित है। यद्यपि वह महाशक्ति सम्पूर्ण इन्द्रियों से रहित है, तथापि उसमें सम्पूर्ण इन्द्रियों के गुणों का आभास होता है। वह महाशक्ति सम्पूर्ण विश्व का शासन करने वाली एवं मित्र है। नवद्वारों वाले पुर (शरीर) में **'हंसः', 'सोहं'** के स्वर में अन्दर-बाहर वही लीला करती रहती है। वह स्थावर-जंगम समग्र विश्व के ध्यान करने योग्य है॥ ४८-५०॥

अपाणिपादा जननी ग्रहीत्री पश्यत्यचक्षुः सा शृणोत्यकर्णा। सा वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्तु वेत्ता। तामाहुरग्र्यां महतीं महीयसीम्॥ ५१॥

वह महाशक्ति हाथ-पैरों वाली दिखाई नहीं देती, फिर भी वह अत्यन्त गतिशील है, अत्यन्त ग्रहणशील है। वह नेत्र के बिना भी विश्व को देखने में समर्थ है, श्रोत्र के बिना भी वह श्रवण करने में समर्थ है। सम्पूर्ण ज्ञेय भावों-विचारों एवं पदार्थों को जान लेती है, उसको पूर्णतः कोई नहीं जान पाता है। उसे ही महान् से महीयान् एवं सर्वादिशक्ति कहते हैं॥ ५१॥

सा चैवाग्निः सा च सूर्यः सा वायुः सा च चन्द्रमाः। सा चैव शुक्रः सा ब्रह्म सा चापः सा प्रजापतिः। सा चैव स्त्री सा च पुमान् सा कुमारः कुमारिका॥ ५२॥

वही अग्नि है, वही सूर्य है, वही वायु है, वही चन्द्रमा है, वही शुक्र है, वही ब्रह्म है, वही जल है, वही प्रजापति है, वही स्त्री है, वही पुरुष है, वही कुमार है, वही कुमारी है॥ ५२॥

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्यां देवा अधिरुद्रा निषेदुः। यस्तां न वेद किमृचा करिष्यति ये तां विदुस्त इमे समासते॥ ५३॥

परम व्योम में स्थित ऋचाएँ भी वही है। जहाँ रुद्रादि देव निवास करते हैं (परमाकाश में), उस परमशक्ति के विषय में जो नहीं जानता है, वह सम्पूर्ण ऋचाओं को जानकर भी क्या हित करेगा? जो उस परम शक्ति को जान लेते हैं, वे ही इस लोक में भलीभाँति प्रतिष्ठित हो जाते हैं॥ ५३॥

छन्दांसि यज्ञाः क्रतवो व्रतानि भूतं भव्यं यच्च वेदा वदन्ति। सर्वं देवी सृजते विश्वमेतत् तस्याश्चान्यो मायया संनिरुद्धः॥ ५४॥

छन्दों, यज्ञों, क्रतुओं, व्रतों आदि के विषय में, भूत एवं भविष्य के विषय में वेद जो कुछ भी बतलाते हैं, उन सबका सृजन वह महाशक्ति ही करती है। उससे भिन्न यदि कुछ भी है, तो वह सब कुछ माया से परिच्छिन्न है॥ ५४॥

मायां तु प्रकृतिं विद्यात् प्रभुं तस्या महेश्वरीम्। अस्या अवयवैः सूक्ष्मैर्व्याप्तं सर्वमिदं जगत्॥ ५५॥
या देवानां प्रभवा चोद्भवा च विश्वाधिपा सर्वभूतेषु गूढा। हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं सा नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु॥ ५६॥
सूक्ष्मातिसूक्ष्मं सलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्त्रष्ट्रीमनेकाननाख्याम्। विश्वस्य चैकां परिवेष्टयित्रीं ज्ञात्वा गुह्यां शान्तिमत्यन्तमेति॥ ५७॥

माया ही प्रकृति है, ऐसा समझो; उसकी स्वामिनी यह महाशक्ति है। इसी के सूक्ष्म अवयवों से यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो रहा है। जो देवताओं को उत्पन्न करने वाली मूल कारण है, जो समग्र प्राणियों में गुप्त रहकर विश्व का आधिपत्य करती है, जिसने सृष्टि से पहले हिरण्यगर्भ को प्रकट किया, वह महेश्वरी हमें सद्बुद्धि से

सम्पन्न करे; जो सूक्ष्म से भी सूक्ष्म जल (ब्रह्माण्ड का प्रथम सक्रियतत्त्व आपः) में ही विश्व का सृजन करती है, जो अनन्त रूपों वाली है, जो सम्पूर्ण विश्व को अकेली ही आवृत कर लेती है, उस गुह्यतम महाशक्ति को जान लेने पर परम शान्ति प्राप्त होती है॥ ५५-५७॥

सा ह्येव काले भुवनस्य गोप्त्री विश्वाधिपा सर्वभूतेषु गूढा।
यस्यां मुक्ता ब्रह्मर्षयोऽपि देवाः ज्ञात्वा तां मृत्युपाशाञ्छिनत्ति॥ ५८॥

वह विश्वेश्वरी समग्र प्राणियों के भीतर गुप्तरूप से निवास करती हुई, समय-समय पर सभी लोकों (चौदह भुवनों) का संरक्षण करती है। ब्रह्मर्षि एवं देवगण जिसकी कृपा से मुक्ति प्राप्त करते हैं, उस महेश्वरी को जान लेने पर साधक मृत्यु के पाशों को तोड़ने में समर्थ हो जाता है॥ ५८॥

घृतात् परं मण्डमिवातिसूक्ष्मं ज्ञात्वा कालीं सर्वभूतेषु गूढाम्।
कल्पान्ते वै सर्वसंहारकर्त्रीं ज्ञात्वा गुह्यां मुच्यते सर्वपापैः॥ ५९॥

जो घृत के फेन से भी अत्यन्त सूक्ष्म है, जो कल्पान्त में समग्र विश्व का संहार करती है, सम्पूर्ण प्राणियों के अन्तस्तल में छिपी हुई उस गुह्यकाली को जान लेने पर साधक समस्त पापों से मुक्त हो जाता है॥ ५९॥

एषा देवी विश्वयोनिर्महात्मा सदा जनानां हृदि सन्निविष्टा।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्ता ये तां विदुरमृतास्ते भवन्ति॥ ६०॥

सदैव प्राणियों के हृदय में निवास करने वाली, विश्व को जन्म देने वाली यह देवी महान् आत्मस्वरूपा है। जो हृदय एवं मन अर्थात् भावों एवं विचारों से समर्थ बुद्धिरूपा है, जो उस महाशक्ति को जान लेते हैं, वे अमर हो जाते हैं॥ ६०॥

यदा तमस्तत्र दिवा न रात्रिः न सन्न चासद्भगवत्येव गुह्या।
तदक्षरं तत्सवितुर्वरेण्यं प्रज्ञा च तस्याः प्रसृता परा सा॥ ६१॥

जब आदिकाल में सर्वत्र तम ही तम था, न कहीं दिन था और न कहीं रात्रि ही थी। न तब कहीं सत् था, न कहीं असत्। सर्वत्र केवल भगवती गुह्यकाली ही थी। वही अक्षर ब्रह्म थी, वही सविता का वरेण्य स्वरूप थी; उसी की प्रज्ञा सर्वत्र व्याप्त थी, वही पराशक्ति थी॥ ६१॥

नैनामूर्ध्वं न तिर्यक् च न मध्यं परिजग्रभत्। न तस्याः प्रतिमाभिश्च तस्या नाम महद्यशः॥ ६२॥

न उस महाशक्ति के ऊर्ध्वभाग में, न आड़े भाग में, न मध्यभाग में ही कोई ग्रहण कर सकता है। उसकी कोई उपमा नहीं मिलती है, उसका नाम (परिचायक) केवल महत् यश ही है॥ ६२॥

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्याः न चक्षुषा पश्यति कश्चिदेनाम्।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तां य एनां विदुरमृतास्ते भवन्ति॥ ६३॥

इस महाशक्ति का स्वरूप दर्शनार्थ कहीं उपलब्ध नहीं होता है। इसे कोई अपने नेत्रों से देख नहीं सकता है। हृदय (भाव) मन (विचारों) के साथ बुद्धि से गम्य इस महाशक्ति को जो जान लेते हैं, वे अमर हो जाते हैं॥ ६३॥

भूयश्च सृष्ट्वा त्रिदशानथेशी सर्वाधिपत्यं कुरुते भवानी।
सर्वा दिशश्चोर्ध्वमधश्च तिर्यक् प्रकाशयन्ती भ्राजते गुह्यकाली॥ ६४॥

यही भवानी-गुह्यकाली महाशक्ति फिर देवों का सृजन करती है, तब स्वयं सारे विश्व की अधिपति बन जाती है। तब ऊपर, नीचे, तिरछी सभी दिशाओं में प्रकाशित होकर सुशोभित होती है॥ ६४॥

नैव स्त्री न पुमानेषा नैव चेयं नपुंसका। यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेनैव युज्यते॥ ६५॥

वस्तुतः यह महाशक्ति न तो पुरुष है, न स्त्री है, न नपुंसक ही है; परन्तु जिस-जिस शरीर को भी धारण कर लेती है, उसी-उसी से संयुक्त दिखाई देने लगती है॥ ६५॥

धर्मावहां पापनुदां भगेशीं ज्ञात्वात्मस्थाममृतां विश्वमातरम्।
तामीश्वराणां परमां महेश्वरीं तां देवतानां परदेवतां च।
पतिं पतीनां परमां पुरस्तात् विद्यावतां गुह्यकालीं मनीषाम्॥ ६६॥

पापों का नाश करने वाली, धर्म की वृद्धि करने वाली, समग्र ऐश्वर्य की स्वामिनी, ऐश्वर्यशालियों की ईश्वरी, देवताओं की भी परम पूजनीया, समग्र अधिपतियों की भी अधिपति, विद्याविशारदों की मनीषा स्वरूपा, विश्वजननी अमृतारूपा, गुह्यकाली को जानकर कुछ ज्ञातव्य शेष नहीं रहता है॥ ६६॥

तस्या न कार्यं करणं च विद्यते न तत्समा चाप्यधिका च दृश्यते।
परास्याः शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥ ६७॥
कश्चिन्न तस्याः पतिरस्ति लोके न चेशिता नैव तस्याश्च लिङ्गम्।
सा कारणं कारणकारणाधिपा नास्याश्च कश्चिज्जनिता न चाधिपः॥ ६८॥

उस महाशक्ति का न कोई कार्य है, न उस महाशक्ति का कोई करण है। इसकी पराशक्ति विविध प्रकार की है। ऐसा सुना जाता है। उसमें स्वभाव से ही ज्ञान, शक्ति एवं क्रिया सम्पन्न होती रहती है। संसार में उसका पति (रक्षक) कोई अन्य नहीं है, उस पर शासन करने वाला तदन्य कोई नहीं है। उसका कोई प्रतीक चिह्न भी नहीं है। समस्त कारणों का भी कारण है, न कोई उसको जन्म देने वाला है और न कोई उसका अधिपति ही है॥ ६७-६८॥

एका देवी सर्वभूतेषु गूढा व्याप्नोत्येतत् सर्वभूतान्तरस्था।
कर्माध्यक्षा सर्वभूताधिवासा साक्षिण्येषा केवला निर्गुणा च॥ ६९॥
वशिन्येका निष्क्रियाणां बहूनां एकं बीजं बहुधा या करोति।
नानारूपा दशवक्त्रं विधत्ते नानारूपान् या च बाहून् बिभर्ति॥ ७०॥

नित्या नित्यानां चेतना चेतनानां एका बहूनां विदधाति कामान्।
तत्कारणं साङ्ख्ययोगाधिगम्यं ज्ञात्वा देवीं मुच्यते सर्वपाशैः॥ ७१॥
या वै विष्णुं पालने संनियुङ्क्ते रुद्रं देवं संहृतौ चापि गुह्या।
तां वै देवीमात्मबुद्धिप्रकाशां मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥ ७२॥

समस्त प्राणियों के अन्तस् में एकमात्र वह महाशक्ति ही गुप्तरूप में अवस्थित है। समग्र विश्व में वही व्याप्त है। समस्त प्रकार के कार्यों की वही अध्यक्षा है। समग्र प्राणियों के अन्तरंग में स्थित वही एकमात्र साक्षी है, वही गुणों से परे है। अनेक निष्क्रिय (जड़ पदार्थों) की वही एक स्वामिनी है। जो एक बीज को अनन्तरूपों में उत्पन्न कर देती है। अनन्तरूपा होकर भी जो दस मुख वाली (कालिका) है तथा अनन्तस्वरूप वाले बाहुओं को धारण करती है। जो नित्य पदार्थों से भी नित्य है, जो चेतन जीवों की भी मूल चेतना है। जो अकेली ही अनेकों की इच्छाओं को पूर्ण कर देती है। सांख्ययोग के द्वारा जो कारणरूप में समझ में आती है। उस देवी गुह्यकाली को जानकर, साधक जगत् के समग्र बन्धनों से मुक्त हो जाता है। जो देवी विश्वपालन के लिए विष्णु को नियुक्त करती है, जो जगत् के संहार हेतु रुद्र को आदेश देती है, आत्म बुद्धि से प्रकाशित होने वाली उस देवी की शरण में मुमुक्षु होकर मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ॥ ६९-७२॥

निष्कलां निष्क्रियां शान्तां निरवद्यां निरञ्जनाम्। बह्वाननकरां देवीं गुह्यामेकां समाश्रये॥ ७३॥

निष्कल, निष्क्रिय, शान्त, निर्मल, निर्लेप स्वरूप वाली, अनेक मुख-हाथ वाली गुह्यकाली देवी का आश्रय लेता हूँ॥ ७३॥

इयं हि गुह्योपनिषत् सुगूढा यस्या ब्रह्मा देवता विश्वयोनिः।
एतां जपंश्चान्वहं भक्तियुक्तः सत्यं सत्यं ह्यमृतः संबभूव॥ ७४॥

यह अत्यन्त गूढ़ गुह्य उपनिषद् है, विश्व स्रष्टा ब्रह्मा जिसके देवता हैं। भक्तिपूर्वक इसका नित्य जप करने वाला सचमुच अमर हो जाता है॥ ७४॥

वेदवेदान्तयोर्गुह्यं पुराकल्पे प्रचोदितम्। नाप्रशान्ताय दातव्यं नाशिष्याय च वै पुनः॥ ७५॥
यस्य देव्यां परा भक्तिर्यथा देव्यां तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥ ७६॥

प्रथम कल्प में प्रकाशित यह उपनिषद् वेद-वेदान्त में गोपनीय कही जाती है। यह अप्रशान्त चेता मनुष्य को नहीं दी जानी चाहिए और न ही अनुशासनहीन शिष्य को ही देय है। इस उपनिषद् में बताये हुए रहस्य उसी के लिए प्रकट होते हैं, जिसकी देवी में परम भक्ति है तथा वैसी ही गुरु के प्रति अविचल निष्ठा है॥ ७५-७६॥

महाकाल उवाच—

गुह्योपनिषदित्येषा गोप्यात् गोप्यतरा सदा। चतुर्भ्यश्चापि वेदेभ्य एकीकृत्यात्र योजिता॥ ७७॥
उपदिष्टा च सर्गादौ सर्वानेव दिवौकसः। एवंविधं च यद्ध्यानमेवंरूपं च कीर्तितम्॥ ७८॥
सा सपर्या परिज्ञेया विधानमधुना शृणु। सोऽहमस्मीति प्रथमं सोऽहमस्मि द्वितीयकम्॥ ७९॥
तदस्म्यहं तृतीयं च महावाक्यत्रयं भवेत्। आद्यान्येतानि वाक्यानि छन्दांसि परिचक्षते॥ ८०॥
देवता गुह्यकाली च रजः सत्त्वतमोगुणाः। सर्वेषां प्रणवो बीजं हंसः शक्तिः प्रकीर्तिता॥ ८१॥
मकारश्चाप्यकारश्च ह्युकारश्चेति कीलकम्। एभिर्वाक्यत्रयैः सर्वं कर्म प्रोतं विधानतः॥ ८२॥
अनुक्षणं जपंश्चैव निश्चयः परिकीर्तितः। द्वितीयोपासकानां हि परिपाटीयमीरिता॥ ८३॥
एवं चाप्यातुरो यस्तु मनुष्यो भक्तिभावितः। विमुक्तः सर्वपापेभ्यः कैवल्यायोपकल्पते।
सर्वाभिः सिद्धिभिस्तस्य किं कार्यं कमलानने॥ ८४॥

महाकाल ने कहा—

यह गुह्यकाली उपनिषद् गोपनीय से भी अत्यन्त गोपनीय है। इसे चारों वेदों से एकत्र करके बनाया गया है। सृष्टि के आदि काल में सभी देवताओं को इसका उपदेश दिया गया था। गुह्यकाली का इस प्रकार का स्वरूप तथा इस प्रकार का जो ध्यान बताया गया है, उसे ही उस महाशक्ति की पूजाविधि समझना चाहिए। **'सोऽहमस्मि'** यह प्रथम वाक्य है। 'सोऽहमस्मि' यह द्वितीय वाक्य है। 'सोऽहमस्मि' यह तृतीय वाक्य है। ये तीन महावाक्य होते हैं। ये तीनों आदिवाक्य ही छन्द कहलाते हैं। (इस उपनिषद् की) देवता गुह्यकाली हैं। रजोगुण, सत्त्वगुण एवं तमोगुण ये गुण हैं। इन सबका प्रणव ही बीज है। हंसः शक्ति कही गई है, मकार, अकार, एवं उकार कीलक है। विधान का सभी कर्म इन तीन वाक्यों से सम्पन्न होता है। प्रतिक्षण जप करना ही निश्चय कहा गया है। द्वितीय उपासकों की यही परिपाटी कही गई है। इस प्रकार जो आतुर मनुष्य भक्तिभावपूर्वक उपासना करता है, वह समग्र पापों से विमुक्त होकर कैवल्यपद प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है। हे पद्मानने पार्वति! फिर उसे अन्य सभी सिद्धियों से क्या काम ? अर्थात् कोई प्रयोजन नहीं॥ ७७-८४॥

॥ इति गुह्यकाल्युपनिषत् समाप्ता॥

॥ गुह्यषोढान्यासोपनिषद् ॥

अथ गुह्यां न्यसेत्। शिवो भवेत्। शक्तिरूपो भवेत्। विद्याराज्ञीन्यासमेवं चरेत्। न जपो न पूजा न साधनं न कालनियमो न दिवा न रात्रिः। सर्वकालं न्यसेत्। शक्तियुक्तो भवेत्। यथाधिकारवान् न्यसेत्। पूर्णदीक्षां लभेत्। षोढारूपो भवेत्। चिन्तामणिर्भवेत्। क्रीं मातृस्थाने न्यसेत्। परात् परतरो भवेत्। शिवो भवेदित्येकः। अथ ताराद्वयपुटितां मातृकां मातृकापुटितां तां मातृकास्थाने न्यसेत्। परातीतारूपो भवेदिति द्वितीयः।

गुह्यषोढा का न्यास करना चाहिए। इस न्यास के प्रभाव से साधक शिवरूप हो जाता है। शक्तिरूप हो जाता है। इसी प्रकार विद्याराज्ञी न्यास करना चाहिए। (यह न्यास करने वालों को) न जप की आवश्यकता है, न पूजा ही आवश्यक है, न साधन अपेक्षित है, न विशेष समय का निर्धारण है, न विशेष नियम का पालन ही आवश्यक है। न दिन का नियम है, न रात का ही। सभी समय न्यास किया जा सकता है। न्यास के प्रभाव से साधक शक्तिमान् हो जाता है। यदि अधिकारी होकर न्यास करेगा, तो पूर्णदीक्षा का फल प्राप्त करेगा। षोढास्वरूप ही हो जायेगा। चिन्तामणिरूप हो जाएगा। मातृकास्थान में क्रीं का न्यास करे। ऐसा करने से परात्पररूप हो सकता है। यह प्रथम न्यास है, जिससे साधक शिवस्वरूप हो जाता है। तारामन्त्रद्वय से मातृका तथा मातृकाद्वय से संपुटित उसका मातृका स्थानों में न्यास करे। (इससे साधक) परातीतास्वरूप हो जाता है, यह न्यास का द्वितीयरूप है अर्थात् यह द्वितीय न्यास है।

अथ शक्तिकाद्वयपुटितां मातृकां मातृकापुटितां तां न्यसेत्। तुर्यारूपो भवेत्। तृतीयकलारूपो भवेत्। कालसंकलनात् काली। सहेलं सलीलं वा स्मरणाद्वरदानेषु चतुरा। तेनेयं दक्षिणा। संबोधनद्वयपुटितां मातृकां मातृकापुटितं नामद्वयं लिपिस्थाने न्यसेत्। तुर्यात् परारूपो भवेत्। चतुर्थीकलारूपो भवेत्। लोकपालसंवादिनी चतुर्थी। अथ पञ्चमीं कलां न्यसेत्। पञ्चमीकलारूपो भवेत्।

शक्तिबीजद्वय से संपुटित मातृका का न्यास करे, तब मातृका से संपुटित शक्ति का न्यास करे। इससे साधक तुरीयास्वरूप हो जाता है। तृतीय कलारूप हो जाता है। काल का संकलन (नियमन) करने के कारण ही काली कही जाती है। खेल-खेल में बिना प्रयास-विशेष के ही स्मरण हो जाने से भी वरदान देने के कारण वह चतुरा कही जाती है तथा इसी से वह दक्षिणा भी कहलाती है। सम्बोधनद्वय से संपुटित मातृका का न्यास करे, फिर मातृका से पुटित नामद्वय का लिपिस्थानों में न्यास करना चाहिए। इससे साधक तुर्य से भी परारूप हो जाता है। वह चतुर्थी

कलारूप को प्राप्त कर लेता है। चतुर्थी कला लोकपाल- संवादिनी होती है। अब पाँचवीं कला का न्यास करे, इससे साधक पञ्चमी कलारूप हो जाता है।

सुभगात्रयं कूर्चवह्निललनां वह्नेस्त्रिकोणदैवतस्य लालनाच्छ्रीकण्ठरूपस्तुर्या परातीता। एतत्पुटितमातृकापुटितमेतन्मन्त्रं मातृकास्थाने न्यसेदिति पञ्चमी। शिवत्वं गच्छति। स सर्वरूपो भवेत्। अथ षष्ठीं कलां न्यसेत्। पूर्णां विद्याराज्ञीं लिपिस्थाने न्यसेद्व्यापयेत्। स शिवो भवेत्। स सर्वज्ञत्वं गच्छति। स कविर्भवेत्। स संन्यासी भवेत्। देवो ह वै भवेत्। विश्वरूपो भवेत्। अयुतं न्यसेत्। ऋषिच्छन्दादि पूर्ववद्भवेत्। ब्रह्माण्डगोलकेऽपि या जगतीतले तां सर्वां भुनक्ति। यस्याः स्मरणात् सिद्धो निदेशवर्ती च भवेत् तां न्यसेत्। न्यसनं न्यासः। सम्यक् न्यासः संन्यासः। न तु मुण्डितमुण्डः। तस्य देवादयो नमस्यन्तीति प्रोतं वेद। ॐ शिवम्।

सुभग बीजत्रय तदनन्तर कूर्चबीज, वह्निबीज, तब वह्नि ललना (स्वाहा) त्रिकोण देवता के लालन से श्रीकण्ठरूप होना ही परातीत तुर्या होती है। इससे पुटित मातृका से पुटित इस मन्त्र का मातृका स्थान में न्यास करना चाहिए, यही पञ्चमी (कला) है। इस न्यास द्वारा साधक शिवत्व को प्राप्त हो जाता है। वह सर्वरूप हो जाता है। अब षष्ठी कला का न्यास करे। अब पूर्ण विद्याराज्ञी का लिपि स्थानों पर न्यास करे तथा उसी से व्यापक भी करे। इससे साधक शिवरूप हो जाता है। वह सर्वज्ञता की शक्ति प्राप्त कर सकता है। वह कवि हो जाता है, वह संन्यासी हो जाता है। वह देवरूप हो जाता है। विश्वरूप हो जाता है। अयुत न्यास करे। ऋषि, छन्द आदि का पूर्ववत् विनियोग करे। इस ब्रह्माण्डगोलक में या पृथिवी तल पर जितनी लक्ष्मी है, सबका उपभोग करने में समर्थ हो सकता है। उसका न्यास करे, जिसके स्मरण से सिद्ध (योगी) भी आज्ञावर्ती हो जाता है। न्यसन ही न्यास है। अतः सम्यक् न्यास ही वस्तुतः संन्यास है, न कि सिर मुड़ाना संन्यास है। उसको (सम्यक् न्यास करने वाले को) देवता आदि भी प्रणाम करते हैं। इस रहस्य को भी वह जान लेता है। ॐ शिवम्॥

॥ इति गुह्यषोढान्यासोपनिषत् समाप्ता॥

॥ गोपालोत्तरतापिन्युपनिषद् ॥

॥ शान्तिपाठः ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः............ इति शान्तिः ॥ (द्रष्टव्य- अथर्वशिखोपनिषद्)

ॐ सच्चिदानन्दरूपाय कृष्णायाक्लिष्टकर्मणे।
नमो वेदान्तवेद्याय गुरवे बुद्धिसाक्षिणे॥

अक्लिष्ट कर्म करने वाले सच्चिदानन्दरूप भगवान् श्रीकृष्ण को एवं वेदान्त जानने वाले, बुद्धि के साक्षी गुरुदेव को नमस्कार है।

ॐ एकदा हि व्रजस्त्रियः सकामाः शर्वरीमुषित्वा सर्वेश्वरं गोपालं कृष्णमूचिरे। उवाच ताः कृष्णः। अमुकस्मै ब्राह्मणाय भैक्षं दातव्यमिति दुर्वासस इति॥ १ ॥

एक बार ब्रज की समस्त गोपस्त्रियाँ भगवान् श्रीकृष्ण से मिलन की इच्छा से उनके साथ रात्रि व्यतीत करने के पश्चात् प्रातःकाल उन सर्वेश्वर गोपाल से बोलीं- हे श्याम सुन्दर! आप यह बतलाएँ कि हमें अपनी अभीष्ट सिद्धि हेतु इस समय किस ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए? गोपियों का यह प्रश्न श्रवण कर योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया कि इस समय महर्षि दुर्वासा को भोजन ग्रहण कराना उचित होगा॥ १ ॥

कथं यास्यामो जलं तीर्त्वा यमुनायाः यतः श्रेयो भवति। कृष्णेति ब्रह्मचारीत्युक्त्वा मार्गं वो दास्यति यं मां स्मृत्वाऽगाधा गाधा भवति यं मां स्मृत्वाऽपूतः पूतो भवति यं मां स्मृत्वाऽव्रती व्रती भवति यं मां स्मृत्वा सकामो निष्कामो भवति यं मां स्मृत्वाऽश्रोत्रियः श्रोत्रियो भवति यं मां स्मृत्वाऽगाधतलस्पर्शरहिता अपि सर्वा सरिद्गाधा भवन्ति॥ २ ॥

तदनन्तर गोपियों ने पुनः प्रश्न किया कि हे प्यारे! हमारे जहाँ जाने से कल्याण होगा, उन मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा जी का आश्रम तो यमुना के उस पार है। उस अगाध जलराशि को पार किये बिना हम वहाँ कैसे पहुँच पायेंगी? भगवान् ने कहा- तुम सभी लोग यमुना के किनारे पहुँचकर यह कहना कि श्रीकृष्ण नाम से प्रख्यात हमारे श्यामसुन्दर पूर्ण ब्रह्मचारी हैं। ऐसा कहने पर यमुना तुम्हें उस पार जाने के लिए अवश्य ही मार्ग प्रदान कर देंगी। मैं वह परम तत्त्व हूँ, जिसके स्मरण मात्र से सभी की प्रोन्नति होती है। मैं वह परम तत्त्व हूँ, जिसके स्मरण मात्र से अथाह की भी थाह प्राप्त हो जाती है। मैं वह परम तत्त्व हूँ, जिसके स्मरण मात्र से अपवित्र पवित्र हो जाता है। मैं वह परम तत्त्व हूँ, जिसके स्मरण मात्र से व्रतरहित भी व्रतधारी हो जाता है। मैं वह परम तत्त्व हूँ, जिसके स्मरण से कामनारहित आत्माराम भी कामनायुक्त हो जाता है और मैं वह परम तत्त्व हूँ, जिसके स्मरण मात्र से वेद-ज्ञान से हीन मनुष्य भी वेदों का ज्ञाता हो जाता है॥ २ ॥

श्रुत्वा तद्वाक्यं हि वै रौद्रं स्मृत्वा तद्वाक्येन तीर्त्वा तत्सौर्यां हि वै गत्वाऽऽश्रमं पुण्यतमं हि वै नत्वा मुनिं श्रेष्ठतमं हि वै रौद्रं चेति दत्त्वाऽस्मै ब्राह्मणाय क्षीरमयं घृतमयमिष्टतमं हि वै मृष्टतमं हि तुष्टः स्नात्वा भुक्त्वा हित्वाऽऽशिषं प्रयुज्यानुज्ञां त्वदात्॥ ३॥

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण का यह कथन श्रवण करके वे गोपस्त्रियाँ महादेव जी के अंशावतार दुर्वासाजी को याद करके तथा उन्हीं को अपना लक्ष्य बनाकर चलीं। भगवान् श्रीकृष्ण के कथन को दुहराकर सूर्यतनया यमुना को पार करके मुनि दुर्वासा के परम पावन आश्रम में पहुँच गयीं। तत्पश्चात् उन अतिश्रेष्ठ मुनि दुर्वासा को प्रणाम करके दूध एवं घृत से निर्मित मिष्टान्न एवं पक्वान्न ग्रहण कराकर उन गोपस्त्रियों ने संतुष्ट किया। महर्षि दुर्वासा ने गोपस्त्रियों के द्वारा प्रदत्त प्रिय पक्वान्न ग्रहण करके प्रसन्न होकर उन गोपस्त्रियों को आशीर्वाद प्रदान कर घर लौट जाने की आज्ञा प्रदान की॥ ३॥

ता ऊचुः- कथं यास्यामो वयं सौर्यां तीर्त्वा। स होवाच मुनिः- दूर्वाशिनं मां स्मृत्वा वो दास्यतीति मार्गम्॥ ४॥

उन गोपस्त्रियों ने पूछा- 'हम सूर्य कन्या यमुना को पुनः किस तरह से पार करके जायेंगी?' तदनन्तर वे मुनिश्रेष्ठ बोले कि मैं निरन्तर दूर्वा (दूब-घास) का भोजन ग्रहण करने वाला हूँ, इस रूप में हमारा स्मरण करने से सूर्यतनया तुम्हें मार्ग प्रदान कर देंगी।।४॥

तासां मध्ये हि श्रेष्ठा गान्धर्वी ह्युवाच तं हि वै ताभिरेवं कथं कृष्णो ब्रह्मचारी कथं दूर्वाशनो मुनिः। तां हि मुख्यां विधाय पूर्वमनुकृत्वा तूष्णीमासुः॥ ५॥

उन गोपस्त्रियों में सुन्दर गुणों से युक्त एवं स्वभाव की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ गान्धर्वी श्रीराधाजी थीं। उन्होंने वहाँ पर आयी हुई समस्त गोपस्त्रियों से विचार-विमर्श करने के उपरान्त महर्षि दुर्वासा जी से इस प्रकार पूछा- हमारे साथ प्रतिदिन विहार करने वाले श्रीकृष्ण कैसे ब्रह्मचारी हैं? तथा अभी-अभी इतना पकवान (भोजन) ग्रहण करने वाले मुनिवर दुर्वासा आप किस तरह मात्र दूर्वा ही खाते हैं? ऐसा कहकर उत्तर की प्रतीक्षा में सभी गोपस्त्रियाँ श्रीराधाजी को प्रधान बनाकर उनके पीछे शान्तभाव से खड़ी हो गईं॥ ५॥

शब्दवानाकाशः। शब्दाकाशाभ्यां भिन्नः। तस्मिन्नाकाशस्तिष्ठति। आकाशे तिष्ठति। स ह्याकाशस्तं न वेद। स ह्यात्माऽहं कथं भोक्ता भवामि॥ ६॥

महर्षि दुर्वासा ने उत्तर देते हुए कहा- 'हे गोपियो! सुनो, आकाश शब्दगुणसम्पन्न है; किन्तु परमात्मा आकाश एवं शब्द दोनों से पृथक् है। फिर भी वह उपर्युक्त गुण से युक्त आकाश में उसका अन्तर्यामी आत्मा होकर के स्थित है। वह शब्दवान् आकाश उस अन्तर्यामी परमात्मा को नहीं जानता; वही परमात्मतत्त्वरूप आत्मा मैं हूँ। अतः फिर मैं भोजन करने वाला किस प्रकार हो सकता हूँ?॥ ६॥

स्पर्शवान् वायुः। स्पर्शवायुभ्यां भिन्नः। तस्मिन्वायुस्तिष्ठति। वायौ तिष्ठति। वायुस्तं न वेद। स ह्यात्माऽहं कथं भोक्ता भवामि॥ ७॥

वायु तत्त्व स्पर्श-गुण से सम्पन्न है; किन्तु परमात्मा स्पर्श एवं वायु दोनों से पृथक् है, फिर भी वह वायु में उसके अन्तर्यामी आत्मारूप से निवास करता है। उस अन्तर्यामी परमात्मा को वह स्पर्शवान् वायु तत्त्व नहीं जानता। वही परम पवित्र आत्मा मैं भी हूँ। इस कारण से मैं भोगने वाला किस प्रकार हो सकता हूँ?॥ ७॥

रूपवदिदं तेजः। रूपाग्निभ्यां भिन्नः। तस्मिन्नग्निस्तिष्ठति। अग्नौ तिष्ठति। अग्निस्तं न वेद। स ह्यात्माऽहं कथं भोक्ता भवामि॥ ८॥

तेज (प्रकाश तत्त्व) रूप एवं गुण से सम्पन्न है, परन्तु परमात्मा रूप एवं तेज दोनों से पृथक् है। फिर भी वह अग्नि में उसके अन्तर्यामी आत्मारूप से अवस्थित रहता है। वह अग्नि उस अन्तर्यामी परमात्मा को विस्मृत कर देता है। वह पूर्णतः शुद्ध आत्मा मैं ही हूँ। इस कारण से मैं भोगने वाला किस प्रकार हो सकता हूँ?॥ ८॥

रसवत्य आपः। रसाद्भ्यो भिन्नः। तस्मिन्नापस्तिष्ठन्ति। अप्सु तिष्ठति। आपस्तं न विदुः। स ह्यात्माऽहं कथं भोक्ता भवामि॥ ९॥

जल तत्त्व रस एवं गुण से सम्पन्न है; परन्तु परमात्मा रस एवं जल दोनों से पृथक् है। फिर भी वह (परमात्मा) उस जल में अन्तर्यामी आत्मारूप से अवस्थित रहता है। जल उस अन्तर्यामी परमात्मदेव को नहीं जानता वह विशुद्ध आत्मा मैं ही हूँ; इसलिए मैं भोगने वाला कैसे हो सकता हूँ?॥ ९॥

गन्धवतीयं भूमिः गन्धभूमिभ्यां भिन्नः। तस्मिन् भूमिस्तिष्ठति। भूमौ तिष्ठति। भूमिस्तं न वेद। स ह्यात्माऽहं कथं भोक्ता भवामि॥ १०॥

पृथिवी तत्त्व गन्ध एवं गुण से सम्पन्न है; परन्तु परमात्मा गन्ध एवं पृथिवी दोनों से पृथक् है। फिर भी वह (परमात्मा) भूमि में उसके अन्तर्यामी आत्मारूप से स्थित रहता है। भूमि उस अन्तर्यामी परमात्मा को नहीं जानती। वह विशुद्ध आत्मा मैं ही हूँ; इसलिए मैं भोगने वाला कैसे हो सकता हूँ?॥ १०॥

इदं हि मन एवेदं मनुते। तानीदं हि गृह्णाति। यत्र सर्वमात्मैवाभूत्तत्र वा कुत्र मनुते क्व वा गच्छतीति। स ह्यात्माऽहं कथं भोक्ता भवामि॥ ११॥

यह मन ही उन आकाशादि के सन्दर्भ में संकल्प- विकल्प करता रहता है। यही (मन) उन विषय-भोगों को ग्रहण करता है। जब सभी कुछ आत्मामय ही हो गया है, तब किन विषय भोगों का आश्रय प्राप्त करके यह मन संकल्प-विकल्प करे। अर्थात् किस विषय की ओर जाय? अतः मैं ही वह पूर्णरूप से पवित्र आत्मा हूँ; फिर मैं किस प्रकार भोगने वाला हो सकता हूँ॥ ११॥

अयं हि कृष्णो यो वो हि प्रेष्ठः शरीर द्वयकारणं भवति॥ १२॥

यह भगवान् श्रीकृष्ण जहाँ तुम्हारे प्रियतम हैं, वहीं वे व्यष्टि एवं समष्टि के स्थूल एवं सूक्ष्म दोनों ही शरीरों के कारण हैं॥ १२॥

द्वा सुपर्णौ भवतो ब्रह्मणोऽहं संभूतस्तथेतरो भोक्ता भवति। अन्यो हि साक्षी भवतीति। वृक्षधर्मे तौ तिष्ठत:। अतो भोक्तृभोक्तारौ। पूर्वो हि भोक्ता भवति। तथेतरोऽभोक्ता कृष्णो भवतीति॥ १३॥

सदैव एक साथ रहने वाले दो पक्षियों की भाँति जीवात्मा और परमात्मा एक दूसरे के नित्य सहचर हैं। इनमें से जो परमात्म-तत्त्व का अंशभूत इतर जीव है, वह तो मात्र भोगने वाला होता है तथा उससे पृथक् साक्षात् परब्रह्म (भगवान् श्रीकृष्ण) साक्षी मात्र होते हैं। वृक्षवत् धर्मवाले नश्वर शरीर में वे दोनों रहते हैं, इनमें से एक भोक्ता और दूसरा अभोक्ता है। प्रथम (जीवात्मा) भोक्ता है और द्वितीय स्वतन्त्र रहने वाला ईश्वर ही अभोक्ता है। यह अभोक्ता परमात्मा ही भगवान् श्रीकृष्ण हैं॥ १३॥

यत्र विद्याऽविद्ये न विदामो विद्याऽविद्याभ्यां भिन्नो विद्यामयो हि य: स कथं विषयो भवति॥ १४॥

जहाँ हम मोक्ष एवं बन्धन प्रदान करने वाली विद्या और अविद्या के अस्तित्व को नहीं जानते और जो विद्या एवं अविद्या से विलक्षण हैं तथा जो स्वयं विद्यामय हैं, वे भगवान् श्रीकृष्ण विषयी (विषय वासनाओं से युक्त) किस प्रकार हो सकते हैं?॥ १४॥

यो ह वै कामेन कामान् कामयते स कामी भवति। यो ह वै त्वकामेन कामान् कामयते सोऽकामी भवति। जन्मजराभ्यां भिन्न: स्थाणुरयमच्छेद्योऽयम्। योऽसौ सूर्ये तिष्ठति योऽसौ गोषु तिष्ठति योऽसौ गोपान् पालयति योऽसौ सर्वेषु देवेषु तिष्ठति योऽसौ सर्वैं र्देवैर्गीयते योऽसौ सर्वेषु भूतेष्वाविश्य भूतानि विदधाति स वो हि स्वामी भवति॥ १५॥

जो विषय भोगों की कामना से विभिन्न तरह के भोगों की अभिलाषा करता है, वह कामी होता है; किन्तु दृढ़ निश्चयी होकर कामना के बिना ही मात्र प्रेमी भक्तों के प्रेमवश उनके द्वारा अर्पित भोगों को प्राप्त करने की इच्छा रखता है, वह बिना कामना वाला होता है। उसे कामना एवं आसक्ति से दूर माना जाता है। ये भगवान् श्रीकृष्ण जन्म एवं वृद्धावस्था आदि शारीरिक धर्मों से विहीन हैं। ये (भगवान् श्रीकृष्ण) स्थिर हैं, नित्य हैं, इनका भेदन नहीं हो सकता। जो सूर्य मण्डल के मध्य में अवस्थित हैं, जो गौओं में निवास करते और उनकी रक्षा करते हैं, जो ग्वालों के अन्त:करण में स्थित हैं, जो समस्त देवताओं में भी अन्तर्यामी रूप से विद्यमान हैं, वेदों के द्वारा जिनकी महिमा का गायन किया जाता है, जो समस्त चर-अचर भूत-प्राणियों में संव्याप्त होकर प्रतिष्ठित रहते हैं और जो प्राणियों की संरचना (सृष्टि) भी करते हैं, वे भगवान् ही तुम्हारे स्वामी हैं॥ १५॥

सा होवाच गान्धर्वी- कथं वास्वस्मासु जातो गोपाल:। कथं वा ज्ञातोऽसौ त्वया मुने कृष्ण:। को वाऽस्य मन्त्र:। किं स्थानम्। कथं वा देवक्यां जात:। को वाऽस्य जायाग्रामो भवति। कीदृशी पूजाऽस्य गोपालस्य भवति। साक्षात्प्रकृतिपरोऽयमात्मा गोपाल: कथं त्ववतीर्णो भूम्याम्। सा गान्धर्वी हि वै मुनिमुवाच॥ १६॥

ऐसा श्रवण करने के पश्चात् गान्धर्वी के नाम से प्रख्यात श्रीराधा जी ने कहा— हे महर्षे! ऐसे अद्वितीय चिन्तन से परे महान् महिमा वाले गोपाल श्रीकृष्ण हम लोगों के यहाँ किस प्रकार अवतीर्ण हो गये? आपने उन भगवान् श्रीकृष्ण को कैसे जाना? उनकी प्राप्ति का साधनभूत मन्त्र कौन सा है? उन भगवान् का निवास-स्थल

कहाँ पर है? वे भगवान् माता देवकी के गर्भ से कैसे आविर्भूत हुए? इनके बड़े भाई बलराम जी कौन हैं? इन गोपाल की पूजा किस प्रकार होती है? प्रकृति से परे जो ये स्वयं साक्षात् परब्रह्म गोपाल हैं, वे कैसे इस पृथिवी पर अवतरित हुए? यह सभी साफ-साफ विस्तार से बताने का अनुग्रह करें। तदनन्तर उन प्रसिद्ध मुनि दुर्वासा ने श्रीराधाजी से विस्तारपूर्वक कहना प्रारम्भ किया॥ १६॥

स होवाच तां हि वै— पूर्वं नारायणो यस्मिँल्लोका ओताश्च प्रोताश्च तस्य हृत्पद्माज्जातोऽब्ज-योनिस्तपस्तप्त्वा तस्मै ह वरं ददौ। स कामप्रश्नमेव वव्रे। तं हास्मै ददौ॥ १७॥

यह सभी को मालूम है कि सृष्टि के प्रारम्भ में एकमात्र भगवान् श्रीनारायण ही विद्यमान थे, जिनमें ये समस्त लोक ओत-प्रोत हैं। श्रीनारायण के मानसिक संकल्प से नाभि में से जिस कमल का प्राकट्य हुआ था, उसी से कमलयोनि ब्रह्माजी का प्रादुर्भाव हुआ। श्रीनारायण ने ब्रह्माजी से तप सम्पन्न कराके, उन्हें वर प्रदान किया। ब्रह्माजी ने अपनी इच्छा से ही प्रश्न पूछने का वर माँगा तथा श्रीनारायण ने उनकी इच्छानुसार ही उन्हें वर प्रदान कर दिया॥ १७॥

स होवाचाब्जयोनिः यो वाऽवताराणां मध्ये श्रेष्ठोऽवतारः को भवति येन लोकास्तुष्टा भवन्ति यं स्मृत्वा मुक्ता अस्मात् संसाराद्भवन्ति कथं वाऽस्यावतारस्य ब्रह्मता भवति॥ १८॥

इसके पश्चात् ब्रह्माजी ने प्रश्न किया कि हे भगवान्! सभी अवतारों में से कौन-सा अवतार सर्वश्रेष्ठ है, जिससे सम्पूर्ण लोक सन्तुष्ट हों, समस्त देवगण भी सन्तुष्ट हों, जिनके चिन्तन मात्र से मनुष्य इस नश्वर जगत् से मुक्त हो जाते हैं? और इस अत्यन्त श्रेष्ठ अवतार की परब्रह्मरूपता किस प्रकार सिद्ध होती है?॥ १८॥

स होवाच तं हि वै नारायणो देवः— सकाम्या मेरोः शृङ्गे यथा सप्तपुर्यो भवन्ति तथा निष्काम्याः सकाम्या भूगोलचक्रे सप्तपुर्यो भवन्ति। तासां मध्ये साक्षाद्ब्रह्म गोपालपुरी भवति॥ १९॥

इस प्रश्न का समाधान करते हुए भगवान् नारायण ने ब्रह्माजी से कहा— 'हे वत्स! जिस प्रकार मेरु-शिखर पर (यम के अतिरिक्त सात लोकपालों की) सात पुरियाँ हैं, जिनको सकाम भावना से युक्त हो पुण्य करने वाले मनुष्य प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार इस भूगोल-चक्र में सात पुरियाँ [अयोध्या, मथुरा, माया (हरिद्वार), काशी, काञ्ची, अवन्तिका (उज्जैनी) एवं द्वारिकापुरी] हैं। ये पुरियाँ निष्काम एवं सकाम सभी तरह के लोगों द्वारा सेवनीय हैं। उन सभी के बीच में साक्षात् परमेश्वर श्रीगोपाल की पुरी मथुरा है॥ १९॥

सकाम्या निष्काम्या देवानां सर्वेषां भूतानां भवति। अथास्य भजनं भवति। यथा हि वै सरसि पद्मं तिष्ठति तथा भूम्यां तिष्ठति चक्रेण रक्षिता मथुरा तस्माद्गोपालपुरी भवति॥ २०॥

वह (मथुरापुरी) समस्त देवों एवं समस्त प्राणियों के लिए भी कामना पूर्ण करने वाली तथा मोक्ष प्रदायिनी है। यह निश्चय ही है कि जैसे सरोवर में कमल अवस्थित रहता है, वैसे ही इस पृथिवी पर यह (मथुरा) पुरी स्थित है। यह मथुरापुरी श्रीगोपाल के चक्र से सुरक्षित है, इस कारण से वह गोपालपुरी के नाम से प्रख्यात है॥ २०॥

बृहद्बृहद्वनं मधोर्मधुवनं तालस्तालवनं काम्यं काम्यवनं बहुला बहुलवनं कुमुदः कुमुदवनं खदिरः खदिरवनं भद्रो भद्रवनं भाण्डीर इति भाण्डीरवनं श्रीवनं लोहवनं बृन्दावनमेतैरावृता पुरी भवति॥ २१ ॥

यह मथुरा नगरी बारह प्रकार के वनों से आवृत है, जिनमें प्रथम-विशाल बृहद् वन जिसे महावन भी कहते हैं। द्वितीय मधु दैत्य के नाम से प्रख्यात मधुवन, तृतीय-ताड़-वृक्षों से शोभनीय तालवन, चतुर्थ- कमनीय भगवान् श्रीकृष्ण की विहार स्थली काम्यवन (कामवन), पञ्चम-बहुला के नाम से प्रख्यात बहुलावन, षष्ठ-कुमुद वृक्षों से उपलक्षित कुमुदवन, सप्तम- खदिर वृक्षों की बहुलता के कारण प्रसिद्ध खदिरवन, अष्टम-जहाँ पर बलभद्र जी विचरण करते हैं- वह भद्रवन, नवम- 'भाण्डीर' नामक वट से युक्त भाण्डीरवन, दशम-लक्ष्मीजी का निवास स्थल श्रीवन, एकादश-लौहगन्ध की तपस्या का स्थान-लौहवन और द्वादश-वृन्दादेवी से उपकृत हुआ वृन्दावन है॥ २१ ॥

तत्र तेष्वेव गगनेष्वेवं देवा मनुष्या गन्धर्वा नागाः किंनरा गायन्ति नृत्यन्तीति॥ २२ ॥

वहाँ उस मथुरा नगरी के अन्तर्गत उपर्युक्त वनों में ही देवगण, मानव, गन्धर्व, नाग और किन्नर (भगवान् श्रीकृष्ण-प्रेम से उन्मत्त होकर) गायन एवं नर्तन करते हैं॥ २२ ॥

तत्र द्वादशादित्या एकादश रुद्रा अष्टौ वसवः सप्त मुनयो ब्रह्मा नारदश्च पञ्च विनायका विश्वेश्वरो रुद्रेश्वरोऽम्बिकेश्वरो गणेश्वरो नीलकण्ठेश्वरो वीरेश्वरो गोपालेश्वरो भद्रेश्वर इत्यष्टावन्यानि लिङ्गानि चतुर्विंशतिर्भवन्ति॥ २३ ॥

(मथुरा नगरी में स्थित उन द्वादश वनों में) बारह आदित्य (वरुण, सूर्य, यम, वेदाङ्ग, भानु, इन्द्र, रवि, गभस्ति, हिरण्यरेता, दिवाकर, मित्र एवं विष्णु), ग्यारह रुद्र (वीरभद्र, शम्भु, गिरीश, अज-एकपाद, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, भुवन-अधीश्वर, कपाली, दिशापति, स्थाणु और भव)। आठ वसु (ध्रुव, धर, सोम, आपः (जल), अनल, अनिल, प्रत्यूष और प्रभास), सप्तऋषि (कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और वशिष्ठ), ब्रह्मा, नारद, पाँच विनायक (मोद, प्रमोद, आमोद, सुमुख एवं दुर्मुख) तथा वीरेश्वर, रुद्रेश्वर, अम्बिकेश्वर, गणेश्वर, नीलकण्ठ, विश्वेश्वर, गोपालेश्वर तथा भद्रेश्वर आदि आठ लिङ्गों सहित चौबीस शिवलिङ्गों का निवास कहा गया है॥ २३ ॥

[मंत्र क्र० २३ की व्याख्या में वर्णित नामों का निर्धारण अड्यार पुस्तकालय से सम्बद्ध महादेव शास्त्री द्वारा सम्पादित वैष्णव उपनिषद् के अनुसार किया गया है।]

द्वे वने स्तः कृष्णवनं भद्रवनम्। तयोरन्तर्द्वादश वनानि पुण्यानि पुण्यतमानि। तेष्वेव देवास्तिष्ठन्ति सिद्धाः सिद्धिं प्राप्ताः॥ २४॥

इस मथुरा नगरी में दो प्रमुख वन- कृष्णवन एवं भद्रवन हैं। इन्हीं दोनों के मध्य में पूर्व में कहे हुए बारह वन हैं, जो पूर्णशुद्ध तथा पुण्य प्रदान करने वाले हैं, उन्हीं दोनों वनों में देवगण निवास करते हैं। सिद्धगण भी वहाँ तपस्या करके सिद्धि को प्राप्त हुए हैं॥ २४॥

तत्र हि रामस्य राममूर्तिः प्रद्युम्नस्य प्रद्युम्नमूर्तिरनिरुद्धस्यानिरुद्धमूर्तिः कृष्णस्य कृष्णमूर्तिः॥ २५॥

उन्हीं दोनों वनों में राम (बलराम जी) की राममूर्ति, प्रद्युम्न की प्रद्युम्नमूर्ति, अनिरुद्ध की अनिरुद्धमूर्ति एवं भगवान् श्रीकृष्ण की श्रीकृष्णमूर्ति सुशोभित होती है॥ २५॥

वनेष्वेवं मथुरास्वेवं द्वादश मूर्तयो भवन्ति। एकां हि रुद्रा यजन्ति द्वितीयां हि ब्रह्मा यजति तृतीयां ब्रह्मजा यजन्ति चतुर्थीं मरुतो यजन्ति पञ्चमीं विनायका यजन्ति षष्ठीं च वसवो यजन्ति सप्तमीमृषयो यजन्ति अष्टमीं गन्धर्वा यजन्ति नवमीमप्सरसो यजन्ति दशमी वै ह्यन्तर्धाने तिष्ठति एकादशमिति स्वपदानुगा द्वादशमिति भूम्यां तिष्ठति। तां हि ये यजन्ति ते मृत्युं तरन्ति मुक्तिं लभन्ते गर्भजन्मजरामरणतापत्रयात्मकदुःखं तरन्ति॥ २६॥

इस प्रकार मथुरा नगरी के अन्तर्गत बारह वनों में भगवान् की बारह मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। जिनमें से प्रथम मूर्ति का पूजन रुद्रगण करते हैं। द्वितीय प्रतिमा की पूजा स्वयं भगवान् ब्रह्मा जी करते हैं। तीसरी मूर्ति की पूजा ब्रह्मा जी के द्वारा प्रादुर्भूत सनकादि मुनि करते हैं। चौथी प्रतिमा का पूजन मरुद्गण करते हैं। पाँचवें विग्रह की आराधना विनायक गण करते हैं। छठे विग्रह की पूजा वसुगण करते हैं। सातवें की अर्चना समस्त ऋषिगण करते हैं। आठवीं प्रतिमा का पूजन गन्धर्व करते हैं। नवें स्वरूप की आराधना अप्सराएँ सम्पन्न करती हैं। दसवीं प्रतिमा आकाश में गुप्त रूप से प्रतिष्ठित है। ग्यारहवीं मूर्ति अन्तरिक्ष में प्रतिष्ठित है तथा बारहवीं मूर्ति भूगर्भ में प्रतिष्ठित है। इन प्रतिमाओं का जो लोग यजन-पूजन करते हैं, वे मृत्यु से तर कर मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। गर्भवास, जन्म, जरावस्था, मृत्यु एवं आध्यात्मिक आदि तीन प्रकार के तापरूपी दुःखों को पार कर जाते हैं॥ २६॥

तदप्येते श्लोका भवन्ति— इस सन्दर्भ में ये निम्न श्लोक हैं,

संप्राप्य मथुरां रम्यां ब्रह्मरुद्रादिवन्दिताम्। शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गरक्षितां मुसलादिभिः॥ २७॥

जो ब्रह्मा एवं रुद्रादि देवगणों के द्वारा वन्दित (पूजित) है। शङ्ख, चक्र, गदा एवं शार्ङ्ग धुनष आदि आयुध सदैव जिसकी सुरक्षा में रहते हैं। जो बलभद्रजी के मुसल आदि शस्त्रों से भी निरन्तर संरक्षित है, उस परम रमणीय मथुरा नगरी को प्राप्त करके श्रीकृष्ण का सतत चिन्तन करते रहना चाहिए॥ २७॥

यत्रासौ संस्थितः कृष्णः स्त्रीभिः शक्त्या समाहितः।
रामानिरुद्धप्रद्युम्नै रुक्मिण्या सहितो विभुः॥ २८॥
चतुःशब्दो भवेदेको ह्योंकारस्य उदाहृतः॥ २९॥

यहाँ (मथुरा पुरी में) भगवान् श्रीकृष्ण अपने तीन अन्य आत्मीय बलराम, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध तथा अपनी अन्तरङ्गा शक्ति श्रीरुक्मिणी जी के साथ सतत प्रतिष्ठित रहते हैं। श्रीकृष्ण ही एकमात्र पूर्ण परब्रह्म हैं, फिर भी वे ॐकार की मात्रा-भेद से चार नामों (अ, उ, म् एवं अर्धमात्रा) से प्रसिद्ध हैं। इनमें अकारात्मक विश्वस्वरूप बलराम जी हैं, उकारात्मक तैजसरूप प्रद्युम्न जी हैं, मकारात्मक प्राज्ञरूप अनिरुद्ध जी और अर्द्धमात्रात्मक तुरीयरूप भगवान् श्रीकृष्ण जी हैं॥ २८-२९॥

तस्मादेव परो रजसेति सोऽहमित्यवधार्यात्मानं गोपालोऽहमिति भावयेत्। स मोक्षमश्नुते। स ब्रह्मत्वमधिगच्छति। स ब्रह्मविद्भवति। स गोपान् जीवानात्मत्वेन सृष्टिपर्यन्तमालाति। स गोपालो भवति ह्यों तत् सत् सोऽहम् । परं ब्रह्म कृष्णात्मको नित्यानन्दैकस्वरूपः सोऽहम्। ओं तत् सद्गोपालोऽहमेव। परं सत्यमबाधितं सोऽहमित्यात्मानमादाय मनसैक्यं कुर्यात्। आत्मानं गोपालोऽहमिति भावयेत्। स एवाव्यक्तोऽनन्तो नित्यो गोपालः॥ ३०॥

रजोगुण अर्थात् त्रिगुणमयी माया (प्रकृति) से परे जो भगवान् गोपाल हैं, 'वही मैं हूँ' ऐसा निश्चय करके अपनी आत्मा में भगवान् गोपाल की ही भावना करे। जो पुरुष ऐसा करता है, वह मुक्ति की आनन्दानुभूति करता है। वह ब्रह्मभाव को प्राप्त करके ब्रह्मवेत्ता हो जाता है। जो भगवान् गोपों-जीवात्माओं की सृष्टि से लेकर प्रलय पर्यन्त आत्मीय मानकर स्वीकार करके निरन्तर उनकी रक्षा एवं पालन में लगे रहते हैं, ऐसे वे प्रणववाची भगवान् ही गोपाल हैं, वे तत् एवं सत् स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण ही हमारे आत्मा हैं; नित्य, आनन्दमय, एकरूप जो भगवान् गोपाल हैं, वही मैं हूँ। ॐ वे गोपाल देव ही तीनों कालों में बाधारहित परम सत्य हैं। वह (परमतत्त्व) मैं ही हूँ। इस तरह से स्वतः को लेकर अन्तर्मुखी होकर पूर्ण मनोयोगपूर्वक भगवान् के साथ एकाकार होने का प्रयास करे। अपने को स्वयं इस भाव से देखे और यह निश्चय करे कि 'मैं गोपाल हूँ'। वे वही गोपाल हैं, जो अव्यक्त, अन्तरहित तथा नित्य हैं॥ ३०॥

मथुरायां स्थितिर्ब्रह्मन् सर्वदा मे भविष्यति। शङ्खचक्रगदापद्मवनमालाधरस्य वै॥ ३१॥

पुनः भगवान् श्रीनारायण कहने लगे- हे ब्रह्मन्! मथुरा नगरी में हमारा निवास सतत बना रहेगा। अवश्य ही मैं वहाँ पर शंख, चक्र, गदा, पद्म एवं वनमाला से सुशोभित होकर निवास करूँगा॥ ३१॥

विश्वरूपं परं ज्योतिः स्वरूपं रूपवर्जितम्। मथुरामण्डले यस्तु जम्बूद्वीपस्थितोऽपि वा। योऽर्चयेत् प्रतिमां मां च स मे प्रियतरो भुवि॥ ३२॥

हे ब्रह्मन्! हमारा स्वरूप चिन्मय है, सर्वश्रेष्ठ, विश्वरूप एवं स्वयं प्रकाश स्वरूप है। इसमें प्रकृति रूप की गन्ध लेशमात्र भी नहीं है। जो मनुष्य इस तरह से निरन्तर मेरे स्वरूप का ध्यान करता है, वह अवश्य ही मेरे अविनाशी परमधाम को प्राप्त करता है। जो मुख्यरूप से मथुरा मण्डल अथवा जम्बूद्वीप के किसी भी प्रदेश में रहते हुए हमारी प्रतिमा का अर्थात् मेरा मांगलिक पदार्थों से यजन-पूजन करता है, वह इस पृथिवी पर मुझे सबसे अधिक प्रिय है॥ ३२॥

तस्यामधिष्ठितः कृष्णरूपी पूज्यस्त्वया सदा। चतुर्धा चास्यावतारभेदत्वेन यजन्ति माम्॥ ३३॥ युगानुवर्तिनो लोका यजन्तीह सुमेधसः। गोपालं सानुजं कृष्णं रुक्मिण्या सह तत्परम्॥ ३४॥

हे ब्रह्मन्! मैं मथुरापुरी में सदैव श्रीकृष्णरूप से ही निवास करता हूँ। इसलिए वहाँ पर तुम्हें उसी कृष्णरूप का यजन-पूजन करना चाहिए। अवतार भेद से अलग-अलग युगों में विद्यमान श्रेष्ठ बुद्धि सम्पन्न भक्तगण मेरी उपासना-आराधना चार रूपों में करते हैं। वे बाद में प्रकट हुए प्रद्युम्न और अनिरुद्ध के साथ श्रीकृष्ण तथा बलरामजी का यजन-पूजन करते हैं। इसके अतिरिक्त देवी रुक्मिणी के सहित उनके परम प्रिय भगवान् वासुदेव का भी पूजन करते हैं॥ ३३-३४॥

गोपालोऽहमजो नित्यः प्रद्युम्नोऽहं सनातनः। रामोऽहमनिरुद्धोऽहमात्मानं ह्यर्चयेद्बुधः॥ ३५॥

विद्वान् महापुरुषों को ध्यान के द्वारा निरन्तर यह भावना करनी चाहिए कि मैं स्वयं नित्य, अजन्मा, गोपाल हूँ, सनातन प्रद्युम्न हूँ, बलराम हूँ और अनिरुद्ध हूँ। इस तरह से अपने आत्मारूप से भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए उनका यजन-पूजन सतत करता रहे॥ ३५॥

मयोक्तेन स धर्मेण निष्कामेन विभागशः। तैरहं पूजनीयो वै भद्रकृष्णनिवासिभिः॥ ३६॥

मैंने (श्रीनारायण ने) वेदों एवं अन्यान्य शास्त्रों में जो विभागानुसार वर्णाश्रम-धर्म का उपदेश प्रदान किया है, उसके मतानुसार कामनारहित भाव से अपने धर्म का अनुष्ठान करते हुए उसके द्वारा मेरा (श्रीकृष्ण का) यजन-पूजन सम्पन्न करना चाहिए। भद्रवन और कृष्णवन के निवासियों को वहाँ विद्यमान मेरे स्वरूप की निरन्तर आराधना करते रहनी चाहिए॥ ३६॥

तद्धर्मगतिहीना ये तस्यां मयि परायणाः। कलिना ग्रसिता ये वै तेषां तस्यामवस्थितिः॥ ३७॥

जो मनुष्य (कामनायुक्त अथवा कामनारहित) धर्माचरण से मिलने वाली (स्वर्ग-अपवर्ग रुचि) सद्गति से वञ्चित हो जाते हैं अर्थात् मनुष्य रूप में जन्म लिया है, कलिकाल ने जिन्हें अपना ग्रास बना लिया है और जो मथुरा नगरी में रहते हुए हमारे भजन में निरन्तर लगे रहते हैं, उनकी वहाँ पर निश्चय ही अवस्थिति होती है अर्थात् अभीष्ट सिद्धि की प्राप्ति होती है॥ ३७॥

यथा त्वं सह पुत्रैस्तु यथा रुद्रो गणैः सह। यथा श्रियाऽभियुक्तोऽहं तथा भक्तो मम प्रियः॥ ३८॥

हे ब्रह्मन्! जिस प्रकार तुम अपने सनक-सनन्दन आदि पुत्रों के साथ वात्सल्य प्रेम- सम्बन्ध रखते हो, जिस तरह से भगवान् रुद्र अपने प्रमथगणों के साथ स्नेह-सम्बन्ध रखते हैं और जिस प्रकार लक्ष्मी के साथ मेरा प्रेमपूर्ण सम्बन्ध रहता है, उसी प्रकार मेरा भक्त भी मुझे परम प्रिय है॥ ३८॥

स होवाचाब्जयोनिश्चतुर्भिर्देवैः कथमेको देवः स्यात्। एकमक्षरं यद्विश्रुतमनेकाक्षरं कथं संभूतम्॥ ३९॥

इसके पश्चात् उन पद्मनाभ ब्रह्माजी ने पुनः प्रश्न किया— हे भगवान्! आप एक ही देव-परमेश्वर चार देवगणों (चतुर्व्यूहों) के रूप में किस प्रकार से हो गये? और इसी तरह जो एक अक्षर के रूप में प्रख्यात ॐकार है, वह अनेक अक्षर-अकार, उकार, मकार एवं अर्धमात्रा के रूप में किस प्रकार हो गया?॥ ३९॥

स होवाच तं हि - पूर्वमेकमेवाद्वितीयं ब्रह्मासीत्। तस्मादव्यक्तमेकाक्षरम्। तस्मादक्षरान्महत्। महतोऽहंकारः। तस्मादहंकारात्। पञ्च तन्मात्राणि। तेभ्यो भूतानि। तैरावृतमक्षरम्। अक्षरोऽहमोंकारोऽहमजरोऽमरोऽभयोऽमृतो ब्रह्माभयं हि वै। स मुक्तोऽहमस्मि। अक्षरोऽहमस्मि॥ ४०॥

यह प्रश्न श्रवण कर भगवान् श्रीनारायण ने ब्रह्माजी से कहा- हे ब्रह्मन्! सृष्टि के प्रारम्भ में एकमात्र ब्रह्म ही सभी जगह विद्यमान था। सर्ग के प्रारम्भिक समय में उस ब्रह्म से अव्यक्त अर्थात् अव्याकृत मूल प्रकृति का प्राकट्य हुआ। अव्यक्त (प्रकृति) भी अक्षर (ब्रह्म) ही है। उस अक्षर (अव्यक्त प्रकृति से) महत्तत्त्व का प्रादुर्भाव हुआ। महत्तत्त्व से (सात्त्विक, राजस और तामस भेद वाला त्रिविध) अहंकार उत्पन्न हुआ। उस (तामस) अहंकार से शब्द आदि पाँचों तन्मात्राएँ प्रकट हुईं तथा उन्हीं से क्रमशः आकाशादि पाँचों महाभूतों की संरचना हुई। इस प्रकार शरीरेन्द्रिय आदि के रूप में अवस्थित उन महत्तत्त्व आदि से और भूतों के द्वारा वह अक्षरस्वरूप परमात्मा आवृत है।

'मैं अक्षर हूँ' अर्थात् मैं साक्षात् अविनाशी परमात्मा हूँ, जो परमात्मा-वाची प्रणव (ॐ) अक्षर है, वह भी मैं ही हूँ। इसी तरह मैं अमर हूँ, भयरहित हूँ तथा अमृत भी मैं ही हूँ। वह जो भयरहित ब्रह्म है, अवश्य ही वह मैं हूँ। मैं मुक्त हूँ तथा अक्षर भी मैं ही हूँ॥ ४०॥

सत्तामात्रं चित्स्वरूपं प्रकाशं व्यापकं तथा। एकमेवाद्वयं ब्रह्म मायया च चतुष्टयम्॥ ४१॥

सत्ता-मात्र ही जिसका अविनाशी स्वरूप है। सम्पूर्ण संसार ही जिसका आकार है और स्वयं प्रकाशरूप एवं सर्वत्र संव्याप्त है, वह एकमात्र अनुपम ब्रह्म अपनी लीला द्वारा व्यूहों के स्वरूप में आलोकित हो रहा है॥ ४१॥

रोहिणीतनयो विश्व अकाराक्षरसंभवः। तैजसात्मकः प्रद्युम्न उकाराक्षरसंभवः॥ ४२॥

रोहिणी के पुत्र बलराम जी ॐकार के 'अ' अक्षर द्वारा प्रतिपादित हैं। जाग्रत् अवस्था के अभिमानी होने के कारण इन्हें 'विश्व' कहा गया है। प्रद्युम्न जी स्वप्नावस्था के अभिमानी होने के कारण 'तैजस' कहे गये हैं। इनका बोध ॐकार के 'उ' नामक अक्षर से होता है॥ ४२॥

प्राज्ञात्मकोऽनिरुद्धोऽसौ मकाराक्षरसंभवः। अर्धमात्रात्मकः कृष्णो यस्मिन् विश्वं प्रतिष्ठितम्॥ ४३॥

अनिरुद्ध जी सुषुप्ति के अभिमानी 'प्राज्ञ' से सम्बोधित किये गये हैं। इनको प्रणवाक्षर 'म' से प्रतिपादित किया गया है। जहाँ पर सम्पूर्ण संसार अधिष्ठित है, वे श्रीकृष्ण ही वहाँ पर तुरीय तत्त्व हैं। इन्हें अर्धमात्रारूप नाद या ॐकार का पूर्णरूप कहा गया है। विश्व इन्हीं में प्रतिष्ठित-सन्निहित है॥ ४३॥

कृष्णात्मिका जगत्कर्त्री मूलप्रकृति रुक्मिणी॥ व्रजस्त्रीजन संभूतश्रुतिभ्यो ब्रह्मसंगतः। प्रणवत्वेन प्रकृतित्वं वदन्ति ब्रह्मवादिनः॥ ४४॥

सम्पूर्ण विश्व की संरचना करने वाली मूल-प्रकृतिरूपा रुक्मिणी देवी श्रीकृष्ण की अन्तरङ्गा शक्ति हैं, अतः वे श्रीकृष्णमय ही हैं, उनकी अपेक्षा ॐकार के सहित ब्रह्म का सर्वाधिक आत्मीय सम्बन्ध है। श्रुतियाँ एवं श्रुतिरूपा गोपियाँ दूर से ही श्रीकृष्ण की आराधना करती रहती हैं, प्रणव और रुक्मिणी आदि समस्त शक्तियाँ ब्रह्म के साथ एकात्मता स्थापित किये रहती हैं। इसलिए ब्रह्म का साक्षात् वाचक प्रणव जिस तरह ब्रह्म की प्रकृति है, उसी तरह रुक्मिणी को भी ब्रह्म से समीपता बनाये रखने के कारण ब्रह्मवादीजन प्रकृति ही बतलाते हैं॥ ४४॥

तस्मादोंकारसंभूतो गोपालो विश्वसंस्थितः। क्लीमोंकारस्य चैकत्वं वदन्ति ब्रह्मवादिनः। मथुरायां विशेषेण मां ध्यायन् मोक्षमश्नुते॥ ४५ ॥

सम्पूर्ण जगत् के आश्रयभूत ॐकार रूप में भगवान् गोपाल ही स्थित हैं। ब्रह्मवादीजन 'क्लीम्' एवं ॐकार का समान अर्थ में पाठ करते हैं। विशेषतया मथुरा नगरी में जो मेरा चतुर्भुजरूप में चिन्तन करता है, वह मोक्ष की आनन्दानुभूति करता है॥ ४५ ॥

अष्टपत्रं विकसितं हृत्पद्मं तत्र संस्थितम्। दिव्यध्वजातपत्रैस्तु चिह्नितं चरणद्वयम्॥ ४६ ॥

भगवान् का निरन्तर ध्यान करने से (भक्त का) अष्टदल हृदय-कमल प्रसन्नतापूर्वक पूर्णरूपेण विकसित है। वहाँ (उसके हृदय-कमल में) भगवान् प्रतिष्ठित हैं। उनके दोनों चरण-कमल शङ्ख, ध्वजा एवं छत्रादि के चिह्नों द्वारा शोभायमान हैं॥ ४६ ॥

श्रीवत्सलाञ्छनं हृत्स्थं कौस्तुभप्रभयायुतम्। चतुर्भुजं शङ्खचक्रशार्ङ्ग-पद्मगदाऽन्वितम्॥ ४७ ॥

वहाँ श्रीवत्स-नामक चिह्न सुशोभित हो रहा है। वहीं पर कौस्तुभमणि अपनी अद्वितीय कान्ति से आलोकित हो रही है। चतुर्भुज- स्वरूप भगवान् के हाथों में शंख, चक्र, शार्ङ्गधनुष, पद्म एवं गदा आदि आयुध सुशोभित हो रहे हैं॥ ४७ ॥

सुकेयूरान्वितं बाहुं कण्ठमालासुशोभितम्। द्युमत्किरीटमुभयं स्फुरन्मकरकुण्डलम्॥ ४८ ॥

भुजाओं में भुजबंध शोभायमान हैं। गले में धारण की हुई वनमाला भगवान् की सहज शोभा को प्रवर्द्धित कर रही है। मस्तक में किरीट द्युतिमान् हो रहा है और कलाइयों में सुन्दर कङ्कण सुशोभित हो रहे हैं। दोनों कानों में मकराकृति कुण्डल स्फुरित हो रहे हैं॥ ४८ ॥

हिरण्मयं सौम्यतनुं स्वभक्तायाभयप्रदम्। ध्यायेन्मनसि मां नित्यं वेणुश्रृङ्गधरं तु वा ॥ ४९ ॥

स्वर्ण सदृश पीताम्बर को धारण किये हुए श्याम सुन्दर श्री-विग्रह है। भगवान् इस तरह की मुद्रा में प्रतिष्ठित हैं, जैसे कि अपने भक्तों को अभय प्रदान कर रहे हैं। इस प्रकार नित्य प्रति मेरे चतुर्भुज स्वरूप का अपने मन में निरन्तर चिन्तन करता रहे अथवा मुरली और शृंग (वाद्ययन्त्र) धारण किये हुए मेरे द्विभुज रूप का निरन्तर चिन्तन करते रहना चाहिए॥ ४९ ॥

मथ्यते तु जगत्सर्वं ब्रह्मज्ञानेन येन वा । मत्सारभूतं यद्यत्स्यान्मथुरा सा निगद्यते॥ ५० ॥

जिस ब्रह्मज्ञान के द्वारा समस्त विश्व को मथ डाला जाता है, उसके साररूप-लीला पुरुषोत्तम जिस पुरी में विद्यमान रहते हैं, उसे ही मथुरा-नगरी कहते हैं॥ ५० ॥

अष्टदिक्पालभिर्भूमिपद्मं विकसितं जगत्। संसारार्णवसंजातं सेवितं मम मानसे॥ ५१॥

वहाँ (मथुरा नगरी में) आठ दिक्पालरूपी दलों से शोभायमान मेरा यह भूमिरूपी कमल विश्व के रूप में आलोकित हो रहा है। यह कमल इस संसार-सागर से ही प्रादुर्भूत हुआ है और जिनका अन्तःकरण राग-द्वेषादि से रहित पूर्णतः समान है, वे ही हंस अथवा भ्रमर के रूप में उस कमल का उपयोग करते हैं॥ ५१॥

चन्द्रसूर्यत्विषो दिव्या ध्वजा मेरुर्हिरण्मयः। आतपत्रं ब्रह्मलोकमथोर्ध्वं चरणं स्मृतम्॥ ५२॥

चन्द्रमा एवं सूर्य की दिव्य रश्मियाँ ही पताकाएँ हैं और स्वर्ण सदृश पर्वत मेरु ही मेरा ध्वज है। ब्रह्मलोक मेरा छत्र तथा अधः-ऊर्ध्व के क्रमानुसार स्थित सात पाताल लोक मेरे चरण हैं॥ ५२॥

श्रीवत्सं च स्वरूपं च वर्तते लाञ्छनैः सह। श्रीवत्सलक्षणं तस्मात् कथ्यते ब्रह्मवादिभिः॥ ५३॥

लक्ष्मीजी का आश्रयभूत जो श्रीवत्स है, वही मेरा स्वरूप है। वह लाञ्छन (चन्द्राकृति) रोमपंक्ति के चिह्न से चिह्नित है। इस कारण ब्रह्मवादीजन उसे ही श्रीवत्स-लक्षण के नाम से सम्बोधित करते हैं॥५३॥

येन सूर्याग्निवाक्चन्द्रतेजसा स्वस्वरूपिणा। वर्तते कौस्तुभाख्यं मणिं वदन्तीशमानिनः॥ ५४॥

भगवत् स्वरूप भूत जिस प्रकाश से सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि एवं वाक् आदि तेज भी आलोक पाते हैं, उस चिन्मय शाश्वत प्रकाश को परब्रह्म के भक्तजन कौस्तुभमणि के नाम से जानते हैं॥ ५४॥

सत्त्वं रजस्तम इति अहंकारश्चतुर्भुजः। पञ्चभूतात्मकं शङ्खं करे रजसि संस्थितम्॥ ५५॥

मेरी चारों भुजाएँ- सत, रज, तम एवं अहंकार ही हैं। मेरे रजोगुणरूपी हाथ में पञ्चभूतात्मक पाञ्चजन्य नामक शङ्ख प्रतिष्ठित है॥ ५५॥

बालस्वरूपमित्यन्तं मनश्चक्रं निगद्यते। आद्या माया भवेच्छार्ङ्गं पद्मं विश्वकरे स्थितम्॥ ५६॥

अत्यधिक गतिशील, बालस्वरूप समष्टि-मन ही मेरे हाथ में चक्र-रूप से जाना जाता है, आदिमाया ही शार्ङ्ग धनुष के रूप में मेरे पास है और सम्पूर्ण जगत् ही मेरे हस्त कमल के रूप में स्थित है॥ ५६॥

आद्या विद्या गदा वेद्या सर्वदा मे करे स्थिता। धर्मार्थकामकेयूरैर्दिव्यैर्दिव्य मयीरितैः॥ ५७॥

आदिविद्या को गदा के रूप में जानना चाहिए, जो सदैव मेरे हाथ में प्रतिष्ठित रहती है। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षरूपी चार दिव्य केयूरों (भुजबन्धों) से मेरी भुजाएँ सुशोभित हैं॥ ५७॥

कण्ठं तु निर्गुणं प्रोक्तं माल्यते आद्ययाऽजया। माला निगद्यते ब्रह्मंस्तव पुत्रैस्तु मानसैः॥ ५८॥

हे ब्रह्मन्! मेरा कण्ठ निर्गुण-तत्त्वरूप से जाना जाता है; वह जन्मरहित माया के द्वारा आवृत रहता है। इस कारण तुम्हारे मानसपुत्र सनकादि मुनि उस अविद्या को ही हमारी माला बतलाते हैं॥ ५८॥

कूटस्थं सत्त्वरूपं च किरीटं प्रवदन्ति माम्। क्षीरोत्तरं प्रस्फुरन्तं कुण्डलं युगलं स्मृतम्॥ ५९ ॥

मेरा कूटस्थ जो सत्त्व (सत्य) रूप है, उस रूप में मुझे ही किरीट कहते हैं। 'क्षर' अर्थात् नाशवान् शरीर और उत्तम (जीव), ये दोनों ही मेरे कानों में झिलमिलाते हुए दो युगल कहे गये हैं॥ ५९ ॥

ध्यायेन्मम प्रियं नित्यं स मोक्षमधिगच्छति। स मुक्तो भवति तस्मै स्वात्मानं तु ददामि वै॥ ६० ॥

इस प्रकार से नित्य- प्रति जो मनुष्य मेरा चिन्तन निरन्तर एकाग्र मन होकर करता है, वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है। वह मुक्ति को प्राप्त हो जाता है, निश्चय ही उसे मैं अपने-आप को समर्पित कर देता हूँ॥ ६० ॥

एतत्सर्वं भविष्यद्वै मया प्रोक्तं विधे तव। स्वरूपं द्विविधं चैव सगुणं निर्गुणात्मकम्॥ ६१ ॥

हे ब्रह्मन्! मैंने आप से जो कुछ निर्गुण एवं सगुण-द्विविध स्वरूप के सन्दर्भ में कहा है, वह सभी कुछ सत्य-शाश्वत है तथा भविष्य में सम्पन्न होने वाला है॥ ६१ ॥

स होवाचाब्जयोनिः—व्यक्तीनां मूर्तीनां प्रोक्तानां कथं त्वाभरणानि भवन्ति कथं वा देवा यजन्ति रुद्रा यजन्ति ब्रह्मा यजति ब्रह्मजा यजन्ति विनायका यजन्ति द्वादशादित्या यजन्ति वसवो यजन्ति गन्धर्वा यजन्ति सपदानुगा अन्तर्धाने तिष्ठन्ति कां मनुष्या यजन्ति॥ ६२ ॥

तत्पश्चात् कमलजन्मा ब्रह्माजी ने पुनः पूछा— 'हे भगवन्! आपके द्वारा प्रतिपादित जो आपकी व्यक्त प्रतिमाएँ हैं, उनकी अवधारणा किस प्रकार से हो सकती है? देवगण उनका किस प्रकार पूजन सम्पन्न करते हैं? रुद्रगण किस प्रकार पूजन सम्पन्न करते हैं? ब्रह्मा किस प्रकार पूजन सम्पन्न करते हैं? ब्रह्मा से उत्पन्न (मानसपुत्र) किस प्रकार से पूजन सम्पन्न करते हैं? विनायकगण किस प्रकार पूजन करते हैं? द्वादश आदित्य किस प्रकार पूजन करते हैं? अष्टवसु किस प्रकार पूजन करते हैं? गन्धर्व (एवं अप्सराएँ) किस प्रकार पूजन करते हैं? जो अपने स्वयं के पैरों पर ही स्थित रहकर अदृश्यरूप से प्रतिष्ठित है, वह कौन है तथा उसकी पूजा किस तरह से होती है? समस्त मानव समुदाय किसकी और किस तरह से पूजा सम्पन्न करे॥ ६२ ॥

स होवाच तं हि वै नारायणो देवः— आद्या व्यक्ता द्वादश मूर्तयः सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु देवेषु सर्वेषु मनुष्येषु तिष्ठति रुद्रेषु रौद्री ब्रह्मणीयेषु ब्राह्मी देवेषु दैवी मनुष्येषु मानवी विनायकेषु विघ्नविनाशिनी आदित्येषु ज्योतिर्गन्धर्वेषु गान्धर्वी अप्सरःस्वेवं गौर्वसुष्वेवं काम्या अन्तर्धानेष्वप्रकाशिनी आविर्भावतिरोभावा स्वपदे तिष्ठति तामसी राजसी सात्त्विकी मानुषी विज्ञानघन आनन्दघनः सच्चिदानन्दैकरसे भक्तियोगे तिष्ठति॥ ६३ ॥

तदनन्तर उन प्रसिद्ध भगवान् श्रीनारायण ने ब्रह्माजी का समाधान करते हुए कहा- 'हे ब्रह्मन्! मेरी द्वादश मूर्तियाँ अव्यक्त रूप में हैं, जो सभी की आदिभूता हैं। वे सम्पूर्ण लोकों में, समस्त देवगणों में और सभी मनुष्यों में प्रतिष्ठित हैं। रुद्रों में रौद्री मूर्ति, ब्रह्मा में ब्राह्मी मूर्ति, देवों में दैवी मूर्ति, मनुष्यों में मानुषी मूर्ति, विनायकों में विघ्ननाशिनी मूर्ति, द्वादश आदित्यों में ज्योतिर्मूर्ति, गन्धर्वों में गान्धर्वी मूर्ति, अप्सराओं में गौ, वसुओं में काम्या और अन्तर्धान में अप्रकाशिनी मूर्ति है। इसके अतिरिक्त जो आविर्भाव एवं तिरोभाव-स्वरूपा केवला मूर्ति है, वह

अपनी महिमा मूर्ति सात्त्विकी, राजसी, तामसी भेद से तीन प्रकार की होती है। एकमात्र सच्चिदानन्द एकरसरूप भक्ति में ही विज्ञानघन एवं आनन्दघन मूर्ति स्थित है ॥ ६३ ॥

ॐ प्राणात्मने ॐ तत्सद्भूर्भुवः सुवस्तस्मै वै प्राणात्मने नमो नमः। ॐ श्रीकृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय ॐ तत्सद्भूर्भुवः सुवस्तस्मै वै नमो नमः। ॐ अपानात्मने ॐ तत्सद्भूर्भुवः सुवस्तस्मै वा अपानात्मने नमो नमः। ॐ श्री कृष्णायानिरुद्धाय ॐ तत्सद्भूर्भुवः सुवस्तस्मै वै नमो नमः। ॐ व्यानात्मने ॐ तत्सद्भूर्भुवः सुवस्तस्मै वै व्यानात्मने नमो नमः। ॐ श्रीकृष्णाय रामाय ॐ तत्सद्भूर्भुवः सुवस्तस्मै वै नमो नमः। ॐ उदानात्मने ॐ तत्सद्भूर्भुवः सुवस्तस्मै वा उदानात्मने नमो नमः। ॐ श्रीकृष्णाय देवकीनन्दनाय ॐ तत्सद्भूर्भुवः सुवस्तस्मै वै नमो नमः। ॐ समानात्मने ॐ तत्सद्भूर्भुवः सुवस्तस्मै वै समानात्मने नमो नमः। ॐ श्री गोपालाय निजस्वरूपाय ॐ तत्सद्भूर्भुवः सुवस्तस्मै वै नमो नमः। ॐ योऽसौ प्रधानात्मा गोपाल ॐ तत्सद्भूर्भुवः सुवस्तस्मै वै नमो नमः। ॐ योऽसाविन्द्रियात्मा गोपाल ॐ तत्सद्भूर्भुवः सुवस्तस्मै वै नमो नमः। ॐ योऽसौ भूतात्मा गोपाल ॐ तत्सद्भूर्भुवः सुवस्तस्मै वै नमो नमः। ॐ योऽसावुत्तमपुरुषो गोपाल ॐ तत्सद्भूर्भुवः सुवस्तस्मै वै नमो नमः। ॐ योऽसौ ब्रह्मापरं वै ब्रह्म ॐ तत्सद्भूर्भुवः सुवस्तस्मै वै नमो नमः। ॐ योऽसौ सर्वभूतात्मा गोपाल ॐ तत्सद्भूर्भुवः सुवस्तस्मै वै नमो नमः। ॐ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुरीयतुरीयातीतोऽन्तर्यामी गोपाल ॐ तत्सद्-भूर्भुवः सुवस्तस्मै वै नमो नमः॥ ६४॥

ॐ (सत् चित् आनन्दमय) प्राणात्मन् को नमस्कार है। 'ॐ, तत्, सत्' रूप इन तीनों नामों से सम्बोधित होने वाले 'भूर्भुवः स्वः' रूपी इन तीनों लोकरूप प्राणात्मन् परब्रह्म को बारम्बार नमन वंदन है। सब का आकर्षण करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण, गौओं के स्वामी गोविन्द और गोपिकाओं के प्राणवल्लभ उन श्याम सुन्दर को बारम्बार नमन है, जो 'ॐ तत् सत्' इन तीनों लोकों के रूप में प्रादुर्भूत हैं। 'ॐ तत् सत्' ये तीन जिन (परमात्मा) के नाम हैं और 'भूः, भुवः, स्वः' ये तीनों ही जिनके स्वरूप हैं, उन अपान-वायुरूपी अपानात्मा परब्रह्म को नमन है। 'ॐ, तत्, सत्' इन तीनों नामों से संबोधित होने वाले 'भूर्भुवः स्वः' रूप उन भगवान् श्री कृष्ण एवं अनिरुद्ध को बारम्बार नमन-वन्दन है। 'ॐ, तत्, सत्' इन तीनों नामों से युक्त एवं 'भूः, भुवः और स्वः स्वरूप उन व्यान-वायुरूप व्यानात्मा परब्रह्म परमेश्वर को प्रणाम है। 'ॐ, तत्, सत्' इन तीनों नामों से सम्बोधित किये जाने वाले पृथ्वीतल, अन्तरिक्ष और स्वर्ग सदृश उन भगवान् श्रीकृष्ण एवं बलराम को अवश्य ही अनेकों नमन हैं। 'ॐ, तत्, सत्' इन तीनों नामों से कहे जाने वाले, 'भूर्भुवः स्वः' रूप उन उदान वायु के रूप में प्रकट उदानात्मा परब्रह्म परमेश्वर को प्रणाम है। 'ॐ, तत्, सत्' इन तीनों नामों से युक्त उन सत्, चित्, आनन्द स्वरूप देवकीनन्दन श्रीकृष्ण को निश्चय ही बारम्बार नमन वंदन है। 'ॐ, तत्, सत्' इन नामों से कहे जाने वाले 'भूर्भुवः स्वः' रूप उन समान-वायुस्वरूप समानात्मा परमेश्वर को प्रणाम है। 'ॐ, तत्, सत्' इन तीन प्रकार के नामों से सम्पन्न एवं 'भूर्भुवः स्वः' रूपों से युक्त उन स्वरूपभूत परमात्मा गोपाल, अनिरुद्ध को अवश्य ही बारम्बार प्रणाम है। ॐ जो वे प्रधानात्मा गोपाल हैं, वे ही 'ॐ, तत्, सत्' नाम से सम्बोधित होने वाले एवं 'भूर्भुवः स्वः' रूप तीनों लोकों के रूप में उत्पन्न हैं; उन्हें निश्चय ही बारम्बार नमन है। ॐ वे जो इन्द्रिय-आत्मारूप गोपाल हैं, वे

ही 'ॐ, तत्, सत्' नामों से प्रख्यात हैं तथा वे ही पृथिवीतल, अन्तरिक्ष एवं स्वर्गमय हैं, उन्हें निश्चय ही बारम्बार नमन-वंदन है।

ॐ जो प्राणियों की आत्मा गोपाल हैं, वे ही 'ॐ, तत्, सत्' नामों से प्रख्यात हैं तथा वे ही पृथिवी तल, अन्तरिक्ष और स्वर्गमय हैं, उन्हें अवश्य ही बारम्बार नमन वंदन है। ॐ वे जो पुरुषोत्तम गोपाल हैं, वे ही 'ॐ, तत्, सत्' इन त्रिविध नामों से सम्बोधित किये जाने वाले तथा पृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्गमय हैं; उनके लिए बारम्बार नमन वंदन है।

ॐ वे जो परब्रह्म (गोपाल) हैं, वे ही 'ॐ, तत्, सत्' इन तीनों नामों को धारण करते हैं और वे ही 'भूर्भुवः स्वः' स्वरूप तीनों लोकों के रूप में उत्पन्न होते हैं, उन्हें अवश्य ही बारम्बार नमन-वंदन है।

ॐ वे समस्त भूतों की आत्मा गोपाल हैं, वे ही 'ॐ, तत्, सत्' इन त्रिविध नामों को धारण करते हैं और वे ही 'भूर्भुवः स्वः'- इन तीनों लोकों के रूप में उत्पन्न होते हैं, उनके लिए अवश्य ही मेरा बारम्बार प्रणाम है। ॐ वे जो जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्ति-इन तीनों अवस्थाओं को पार करके तुरीय पद से भी परे भगवान् गोपाल हैं, वे ही 'ॐ, तत्, सत्' कहे जाते हैं और वे ही पृथिवीतल, अन्तरिक्ष एवं स्वर्गरूप हैं। उन परमेश्वर को बारम्बार हमारा नमन-वंदन है॥ ६४॥

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा। कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥ ६५॥

वे एक देव (भगवान् गोपाल) ही सभी प्राणियों में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान हैं। वे सर्वत्र संव्याप्त हैं और सभी प्राणियों के अन्तरात्मा हैं। वे सभी कर्मों के अध्यक्ष, सभी प्राणियों के आश्रयस्थल, सभी के साक्षी, चैतन्यरूप, केवल एवं गुणरहित हैं॥ ६५॥

रुद्राय नमः। आदित्याय नमः। विनायकाय नमः। सूर्याय नमः। विद्यायै नमः। इन्द्राय नमः। अग्नये नमः। यमाय नमः। निर्ऋतये नमः। वरुणाय नमः। वायवे नमः। कुबेराय नमः। ईशानाय नमः। सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः॥ ६६॥

रुद्र को नमन है। आदित्य को नमन है। विनायक को नमन है। सूर्य को नमन है। विद्या को नमन है। इन्द्र को नमन है। अग्नि को नमन है। यम को नमन है। निर्ऋति को नमन है। वरुण को नमन है। मरुत् को नमन है। कुबेर को नमन है। ईशान (महादेवजी) को नमन-वन्दन है। समस्त देवगणों को नमन-वंदन है॥ ६६॥

दत्त्वा स्तुतिं पुण्यतमां ब्रह्मणे स्वस्वरूपिणे। कर्तृत्वं सर्वभूतानामन्तर्धाने बभूव सः॥ ६७॥

महर्षि दुर्वासा जी ने कहा- हे राधिके! इस तरह से वे भगवान् श्रीनारायण अपने ही निज-रूपभूत ब्रह्माजी को यह परम पवित्र गोपालोत्तरतापिनी स्तुति देकर तथा समस्त प्राणियों की संरचना की शक्ति प्रदान करके वहाँ से तिरोहित हो गये॥ ६७॥

ब्रह्मणो ब्रह्मपुत्रेभ्यो नारदात्तु श्रुतं मुनेः। तथा प्रोक्तं तु गान्धर्वि गच्छध्वं स्वालयान्तिकम्॥ ६८॥

हे राधिके! मैंने ब्रह्माजी से, ब्रह्मा के मानस पुत्र सनकादि मुनियों से और नारद जी से भी जिस प्रकार श्रवण किया था, उसी प्रकार यहाँ तुमसे बतला दिया। अब तुम अपने आश्रमस्थल (घर) की तरफ प्रस्थान कर जाओ॥ ६८॥

॥ ॐ भद्रं कर्णेभिः..................... इति शान्तिः॥

॥ इति गोपालोत्तरतापिन्युपनिषत्समाप्ता॥

॥ गोपीचन्दनोपनिषद् ॥

॥ शान्तिपाठः ॥

॥ ॐ भद्रं कर्णेभिः........... इति शान्तिः ॥ (द्रष्टव्य- अथर्वशिखोपनिषद्)

गोपिकास्वान्तसंलीनं श्रीकृष्णाख्यं परं महः।
ब्रह्मानन्दस्वरूपं तत्स्वमात्रिमिति चिन्तये॥

गोपिकाओं के अन्त:करण में समाहित श्रीकृष्ण नामक सबसे महान् ब्रह्मानन्द स्वरूप, इस गोपीचन्दनाख्य उपासना ज्ञान का मैं वर्णन करता हूँ।

[यहाँ पर उपासक प्रश्न करता है और ब्रह्मवेत्ता विद्वान् उसका समाधान करता है, इस प्रश्नोत्तर शैली में प्रस्तुत यह उपनिषद् बड़ी ही मनोरम है।]

गोपी का नाम? संरक्षणी। कुतः संरक्षणी? लोकस्य नरकान्मृत्योर्भयाच्च संरक्षणी। चन्दनं तुष्टिकारणं च। किं तुष्टिकारणम्? ब्रह्मानन्दकारणम्। य एवंविद्वानेतदाख्यापयेद्य एतच्च धारयेद्गोपीचन्दनमृत्तिकाया निरुक्त्या धारणमात्रेण च ब्रह्मलोके महीयते ब्रह्मलोके महीयत इति॥ १ ॥

इस उपनिषद् में गोपी किसे कहा गया है ? संरक्षणी को। वह संरक्षणी क्यों कहलाती है ? मानव समुदाय का नरक और मृत्यु के भय से संरक्षण करने से। चन्दन से क्या तात्पर्य है ? सन्तुष्टि के कारण को यहाँ चन्दन कहा गया है। सन्तुष्टि का कारण क्या है ? ब्रह्मानन्द ही सन्तुष्टि का कारण है। जो विद्वान् इस प्रकार से इसकी व्याख्या करे और धारण करे, वह इस निरुक्ति और धारण मात्र से ब्रह्मलोक में अवश्य ही आदर प्राप्त करता है॥ १ ॥

गोप्यो नाम विष्णुपत्न्यः स्युस्तासां चन्दनमाह्लादनम्। कश्चाह्लादः। एष ब्रह्मानन्दरूपः। काश्च विष्णुपत्न्यो गोप्यो नाम। या आत्मना ब्रह्मानन्दैकरूपं कृष्णाख्यं परं धामाजयंस्ता जगत्सृष्टिस्थित्यन्तकारिण्यः प्रकृतिमहदहमाद्या महामायाः। कश्च विष्णुः। परं ब्रह्मैव विष्णुः। कश्चाह्लादः। गोपीचन्दनसंसक्तमानुषाणां पापसंहरणाच्छुद्धान्तःकरणानां ब्रह्मज्ञानप्राप्तिश्च। य एवं वेदेत्युपनिषत्॥ २ ॥

गोपियों को विष्णुपत्नी के रूप में स्वीकार किया गया है। उनकी प्रसन्नता को यहाँ पर चन्दन कहा गया है। (चन्दन और आह्लाद समानार्थक शब्द हैं। आह्लाद का अर्थ प्रसन्नता है)। आह्लाद क्या है ? यह ब्रह्मानन्द स्वरूप है। गोपी नामक विष्णु-पत्नियाँ कौन हैं ? जिन्होंने स्वयम् ब्रह्मानन्दस्वरूप कृष्णाख्य परमधाम को प्राप्त किया, वे जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलयकारिणी हैं। प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंतत्त्व, आद्या और महामाया हैं। विष्णु कौन हैं ? परब्रह्म ही विष्णु हैं। आह्लाद क्या है ? गोपीचन्दनयुक्त, पापरहित होने से शुद्ध अन्त:करण वाले मनुष्यों को होने वाली ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति ही 'आह्लाद' है। जो इस प्रकार जानता है, वह ब्रह्म के समीप है (यही रहस्य है)॥ २ ॥

गोपीत्यग्र उच्यतां चन्दनं तु ततः पश्चात्। गोपीत्यक्षरद्वयं चन्दनं तु त्रियक्षरं तस्मादक्षरपञ्चकम्। य एवं विद्वान् गोपीचन्दनं धारयेदक्षयं पदमाप्नोति, पञ्चत्वं न स पश्यति, ततोऽमृतत्वमश्नुते, ततोऽमृतत्वमश्नुत इति॥ ३॥

गोपी शब्द पहले और चन्दन शब्द उसके बाद बोला जाय, ऐसा क्यों? 'गोपी' शब्द दो अक्षर वाला है और चन्दन तीन अक्षरों वाला है, कुल पाँच अक्षरों का समूह है। जो विद्वान् इस प्रकार से गोपीचन्दन को धारण करे, वह अक्षय पद को प्राप्त करता है, वह अल्पमृत्यु को नहीं देखता है, वह निश्चित ही जन्म-मृत्यु के बन्धन से छूट जाता है, तत्पश्चात् निश्चित ही अमृतत्व का उपभोग करता है॥ ३॥

अथ मायाशबलितं ब्रह्मासीत्ततश्च महदाद्या ब्रह्मणो महामायासम्मिलितात्। पञ्चभूतेषु गन्धवतीयं पृथिव्यासीत्। पृथिव्याश्च वैभवाद्वर्णभेदाः। पीतवर्णा मृदो जायन्ते लोकानुग्रहार्थम्। मायासहितब्रह्मसम्भोगवशादस्य चन्दनस्य वैभवम्। य एवं विद्वान्यतिहस्ते दद्यादनुपप्लवः सर्वमायुरेति। ततः प्राजापत्यं रायस्पोषं गौष्पत्यं च। य एतद्रहस्यं सायंप्रातर्ध्यायेदहोरात्रकृतं पापं नाशयति, मृतो मोक्षमश्नुत इति॥ ४॥

इसके पश्चात् यह जानना चाहिए कि सर्वप्रथम यहाँ पर मायासेवित ब्रह्म ही था। तत्पश्चात् ब्रह्म और महामाया के सम्मिलित अंश से आदि प्रकृति, उससे पंचमहाभूत और पंचमहाभूतों से यह गन्धवती पृथिवी थी अर्थात् उत्पन्न हुई और पृथिवी के वैभव से रंगों के भेद दिखाई पड़ते हैं। उनमें पीत वर्ण वाले पदार्थ पृथिवी से लोकानुग्रहार्थ अर्थात् लोक कल्याण के लिए उत्पन्न होते हैं। माया और ब्रह्म के साहचर्य से इस चन्दन का वैभव है अर्थात् अत्यन्त महत्त्व है। इस प्रकार जो विद्वान् गोपीचन्दन को यति के हाथों में देता है, तो वह निर्विघ्न होकर सम्पूर्ण आयु को प्राप्त होता और क्रमशः उत्तम सन्तानों, श्रेष्ठ धन-धान्य और गौ आदि पशुओं को प्राप्त करता है। जो इस रहस्य का प्रातः-सायं ध्यान करता है, वह दिन-रात में किये हुए अपने पाप का नाश कर देता है। मृत होने पर मोक्ष की प्राप्ति करता है॥ ४॥

[गोपीचन्दन प्रतीक है, संरक्षणी प्रकृति के आह्लाद का। इस तथ्य को हृदयंगम कराकर, स्थूल के संसर्ग से सूक्ष्म-भाव को धारण करने कराने से ही उक्त तथा आगे के मंत्रों में वर्णित लाभ प्राप्त हो सकते हैं। सम्भवतः उपर्युक्त मन्त्रों में वर्णित लाभों की प्राप्ति का अगले मन्त्रों में विस्तार है, सम्भवतः इसी कारण आगे के मन्त्रों का क्रमांक पुनः १ से प्रारम्भ किया गया है]

गोपीचन्दनपङ्केन ललाटं यस्तु लेपयेत्। एकदण्डी त्रिदण्डी वा स वै मोक्षं समश्नुते॥ १॥

ब्रह्मतत्त्ववेत्ता इसका महत्त्व इस प्रकार बताते हैं कि जो गोपीचन्दन पङ्क (लेप) से अपने ललाट का लेपन करे, वह चाहे एक दण्डी हो, चाहे त्रिदण्डी हो, निश्चित ही मोक्ष का उपभोग करता है॥ १॥

गोपीचन्दनलिप्ताङ्गो यं यं पश्यति चक्षुषा। तं तं पूतं विजानीयाद्राजभिः सत्कृतो भवेत्॥ २॥

गोपीचन्दन लगाये हुए पुरुष अपनी दृष्टि से जिसको-जिसको देखता है, उसको-उसको पवित्र हुआ जानना चाहिए और उसे राजाओं द्वारा सत्कृत होना चाहिए॥ २॥

ब्रह्महन्ता कृतघ्नश्च गोघ्नश्च गुरुतल्पगः। तेषां पापानि नश्यन्ति गोपीचन्दनधारणात्॥ ३॥

जो ब्रह्महन्ता, कृतघ्न, गो हत्यारे तथा गुरु से नीचता करने वाले हैं, उनके सभी पाप गोपीचन्दन के धारण करने से नष्ट हो जाते हैं॥ ३॥

गोपीचन्दनलिप्ताङ्गो म्रियते यत्र कुत्रचित्। अभिव्याप्यायतो भूत्वा देवेन्द्रपदमश्नुते॥ ४॥

गोपीचन्दन से लिप्ताङ्ग मनुष्य जहाँ कहीं मरता है, वह अभिव्याप्यायत होकर देवेन्द्र पद को प्राप्त करता है॥ ४॥

गोपीचन्दनलिप्ताङ्गं पुरुषं य उपासते। एवं ब्रह्मादयो देवास्तन्मुखास्तानुपासते॥ ५॥

गोपीचन्दन सुभूषित की जो उपासना करते हैं, उनकी ओर मुख करके ब्रह्मा आदि देवता (उनकी) स्तुति करते हैं॥ ५॥

गोपीचन्दन लिप्ताङ्गः पुरुषो येन पूज्यते। विष्णुपूजितभूतित्वाद्विष्णुलोके महीयते॥ ६॥

गोपीचन्दनयुक्त पुरुष जिसके द्वारा पूजा जाता है, वह भगवान् विष्णु का प्रिय होकर उनके लोक में आदर प्राप्त करता है॥ ६॥

सदाचारः शुभाकल्पो मिताहारो जितेन्द्रियः। गोपीचन्दनलिप्ताङ्गः साक्षाद्विष्णुमयो भवेत्॥ ७॥

सदाचारवान्, शुभ संकल्प वाला, मिताहारी और जितेन्द्रिय गोपीचन्दन से सुशोभित पुरुष साक्षात् विष्णुस्वरूप होता है॥ ७॥

गोपीचन्दनलिप्ताङ्गो व्रतं यस्तु समाचरेत्। ततः कोटिगुणं पुण्यमित्येवं मुनिरब्रवीत्॥ ८॥

गोपीचन्दन संयुक्त होकर जो मनुष्य व्रत का पालन करे, उस व्रत से वह करोड़ों गुने पुण्य को प्राप्त होता है। ऐसा मुनि ने कहा है॥ ८॥

गोपीचन्दनलिप्ताङ्गैर्जपदानादि यत्कृतम्। न्यूनं संपूर्णतां याति विधानेन विशेषतः॥ ९॥

गोपीचन्दन लिप्ताङ्गों द्वारा जो जप-दानादि न्यून भी किया गया है, वह इस विधान द्वारा विशेष रूप से सम्पूर्णता को प्राप्त होता है॥ ९॥

गोपीचन्दनमायुष्यं बलारोग्यविवर्धनम्। कामदं मोक्षदं चैव इत्येवं मुनयोऽब्रुवन्॥ १०॥

गोपीचन्दन आयु, बल और आरोग्य को बढ़ाने वाला है और काम तथा मोक्ष को देने वाला है। ऐसा मुनियों ने कहा है॥ १०॥

अग्निष्टोमसहस्राणि वाजपेयशतानि च। तेषां पुण्यमवाप्नोति गोपीचन्दनधारणात्॥ ११॥

हजारों अग्निष्टोम और सैकड़ों वाजपेय यज्ञों का पुण्य गोपीचन्दन धारण से प्राप्त होता है॥ ११॥

गोपीचन्दनदानस्य नाश्वमेधकृतः फलम्। न गङ्गया समं तीर्थं न शुद्धिर्गोपिचन्दनात्॥ १२॥

गोपीचन्दन के दान के समान न अश्वमेध यज्ञ का फल है। न गंगा के समान कोई तीर्थ है और न गोपीचन्दन के धारण से बढ़कर कोई शुद्धि है॥ १२॥

बहुनाऽत्र किमुक्तेन गोपीचन्दनमण्डनम्। न तत्तुल्यं भवेल्लोके नात्र कार्या विचारणा॥ १३॥

इसके सम्बन्ध में बहुत कहने से क्या लाभ है? गोपीचन्दन के मण्डन (भूषण) से बढ़कर लोक में और कोई मण्डन हो ही नहीं सकता, इस विषय में कोई अन्य विचारणा करनी ही नहीं चाहिए॥ १३॥

चन्दनं चापि गोपीनां केलिकुङ्कुमसम्भवम्। मण्डनात्पावनं नृणां भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥ १४॥

यह चन्दन गोपियों की क्रीड़ा रूपी कुङ्कुम से उत्पन्न हुआ है। इसके लगाने से मनुष्यों को मुक्ति और भुक्ति का पावन फल प्राप्त होता है॥ १४॥

कृष्णगोपीरतोद्भूतं पापघ्नं गोपिचन्दनम्। तत्प्रसादात्सर्वदैव चतुर्वर्गफलप्रदम्। तिलमात्रप्रदानेन काञ्चनाद्रिसमं फलम्॥ १५॥

कृष्ण और गोपियों के साहचर्य से उत्पन्न गोपीचन्दन पापों का नाश करने वाला है। इसका सर्वदा सेवन धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष फलों को देने वाला है। यदि इसका तिलमात्र भी दान करे, तो स्वर्ण राशि के समान फल प्राप्त होता है॥ १५॥

कुङ्कुमं कृष्णगोपीनां जलक्रीडासु सम्भृतम्। गोपीचन्दनमित्युक्तं द्वारवत्यां सुरेश्वरैः॥ १६॥

देवता कहते हैं- द्वारिकापुरी में कृष्ण और गोपियों की जल क्रीड़ाओं में उत्पन्न कुङ्कुम ही गोपीचन्दन है॥ १६॥

कृष्णगोपीजलक्रीडाकुङ्कुमं चन्दनैर्युतम्। तिलमात्रं प्रदायेदं पुनात्या दशमं कुलम्॥ १७॥

कृष्ण और गोपियों की जलक्रीड़ा से उत्पन्न कुङ्कुमयुक्त चन्दन का (इस गोपीचन्दन का) तिलमात्र दान करके दस कुलों तक वंशजों को पवित्र किया जाता है॥ १७॥

गोपीचन्दनखण्डं तु चक्राकारं सुलक्षणम्। विष्णुरूपमिदं पुण्यं पावनं पीतवर्णकम्॥ १८॥

गोपीचन्दन का खण्ड तो चक्राकार और सुलक्षण होता है। यह पीतवर्ण वाला, विष्णुस्वरूप, पुण्य और पावन है॥ १८॥

आपो वा अग्र आसन्। तत्र प्रजापतिर्वायुर्भूत्वाऽश्राम्यतेदं सृजेयमिति। स तपोऽतप्यत। तत ओङ्कारमपश्यत्। ततो व्याहृतीस्ततो गायत्रीम्। गायत्र्या वेदास्तैरिदमसृजत्। धूममार्गविस्तृतं हि वेदार्थमभिसन्धाय चतुर्दश लोकानसृजत्। तत उपनिषदः श्रुतय आविर्बभूवुः। अर्चिर्मार्गविस्तृतं वेदार्थमभिसन्धाय सर्वान्वेदान्सरहस्योपनिषदङ्गान्ब्रह्मलोके स्थापयामास। ताश्चोपादिशद्वैवस्वतेऽन्तरे सगुणं ब्रह्म चिद्घनानन्दैकरूपं पुरुषोत्तमरूपेण मथुरायां वसुदेवसद्मन्याविर्भविष्यति। तत्र भवत्यः सर्वलोकोत्कृष्टसौन्दर्यक्रीडाभोगा गोपिकास्वरूपैः परब्रह्मानन्दैकरूपं कृष्णं भजिष्यथ। तत्र श्लोकाः-इति ब्रह्मवरं लब्ध्वा श्रुतयो ब्रह्मलोकगाः। कृष्णमाराधयामासुर्गोकुले धर्मसङ्कुले॥ १९॥

ब्रह्मवेत्ता सृष्टिक्रम का वर्णन करते हुए आगे कहते हैं कि सर्वप्रथम यहाँ जल था, उसमें प्रजापति ने वायु होकर आश्रय लिया और संकल्प किया कि मैं इसका सृजन करूँ। तत्पश्चात् उन्होंने तप किया। उससे उन्होंने ओङ्कार का दर्शन किया। उससे (ओङ्कार से) 'भूर्भुवः स्वः' इन तीन व्याहृतियों तथा गायत्री का साक्षात्कार किया और गायत्री से वेद उत्पन्न हुए, उनसे इस (जगत्) का सृजन किया। उन्होंने धूममार्ग से विस्तृत वेदार्थ का अभिसन्धान करके चौदह लोकों की रचना की। उस वेदार्थ से उपनिषद् की श्रुतियाँ आविर्भूत हुईं। विस्तृत उपासना मार्ग वाले वेदार्थ का अभिसन्धान करके रहस्य, उपनिषद् और अङ्गों सहित वेदों को प्रजापति ने ब्रह्मलोक में स्थापित कर दिया। उन्होंने उन श्रुतियों को उपदेश दिया कि वैवस्वत मन्वन्तर में चिदानन्दैकरूप सगुण ब्रह्म, पुरुषोत्तम कृष्ण रूप से मथुरा में वसुदेव के भवन में जन्म लेंगे। वहाँ पर सम्पूर्ण जगत् के उत्कृष्ट सौन्दर्य से समन्वित क्रीड़ाभोग करती हुई आप गोपिका स्वरूपों के द्वारा परब्रह्मानन्दैकरूप कृष्ण की सेवा करेंगी। साहचर्य प्राप्त करेंगी।

इस प्रकार प्रजापति से ब्रह्मवर प्राप्त करके श्रुतियाँ ब्रह्मलोक को गमन कर गईं। समय आने पर उन्हीं श्रुतियों ने धर्मसङ्कुल गोकुल में कृष्ण की आराधना की॥ १९॥

श्रीकृष्णाख्यं परं ब्रह्म गोपिकाः श्रुतयोऽभवन्। एतत्सम्भोगसम्भूतं चन्दनं गोपीचन्दनं चन्दनं गोपीचन्दनमित्युपनिषत्॥ २०॥

सगुण परब्रह्म श्रीकृष्ण नाम से प्रकट हुए और श्रुतियाँ गोपिकाओं के रूप में अवतरित हुईं। इन दोनों के साहचर्य से उत्पन्न चन्दन 'गोपीचन्दन' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यही गोपीचन्दन उपनिषद् है। यही गोपीचन्दन का रहस्य है॥ २०॥

॥ ॐ भद्रं कर्णेभिः.................. इति शान्तिः॥

॥ इत्याथर्वणीया गोपीचन्दनोपनिषत्समाप्ता॥

॥ चित्युपनिषद् ॥

॥ अथ प्रथमः खण्डः ॥

तच्छंयोरावृणीमहे। गातुं यज्ञाय। गातुं यज्ञपतये। दैवी स्वस्तिरस्तु नः। स्वस्तिर्मानुषेभ्यः। ऊर्ध्वं जिगातुभेषजं। शन्नो अस्तु द्विपदे। शं चतुष्पदे। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

हम शंयु (शान्ति-कल्याण) का वरण करते हैं। हमारी प्रार्थना यज्ञ (श्रेष्ठतम कर्म) एवं यज्ञपति (यज्ञफलदाता) के लिए है। हमारे ऊपर कल्याणमयी दैवी कृपा बरसती रहे। सभी मनुष्यों का कल्याण हो। ओषधियाँ जयशील (अत्यधिक प्रभावशाली) हों। मनुष्यों एवं पशुओं का कल्याण हो। त्रय तापों (आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक) की शान्ति हो।

[यह सृष्टि यज्ञमय है। उपनिषद्कार आगे के क्रम में साधक के अंतरंग में आध्यात्मिक यज्ञ के स्वरूप का खुलासा करते हुए प्रकृति चक्र में चलते रहने वाले विविध यज्ञरूप कर्मों की व्याख्या करते हैं]

ॐ चित्ति स्त्रुक्। चित्तमाज्यं। वाग्वेदिः। आधीतं बर्हिः। केतो अग्निः। विज्ञातमग्निः। वाक्पतिर्होता। मन उपवक्ता। प्राणो हविः। सामाध्वर्युः। वाचस्पते विधे नामन्। विधेमते नाम। विधेस्त्वमस्माकं नाम। वाचस्पतिः सोमं पिबतु। आस्मासु नृम्णं धात् स्वाहा॥ अध्वर्युः पञ्च च॥ १॥

आध्यात्मिक यज्ञ में चित्ति ही स्त्रुचिरूप है। इस स्त्रुचि में आहुति हेतु भरा जाने वाला चित्त ही आज्य है। इस यज्ञ की वेदी वाणी है। अभीष्ट अभिप्राय ही बर्हि है। इसमें वेद-ज्ञानरूप अग्नि है। यह विशेष ज्ञान ही अग्निरूप है। वाक्पति अर्थात् इस वेदवाणी के मर्मज्ञ विद्वान् ही 'होता' हैं। मन जो शिव संकल्पवान् है, वही उपवक्ता है। प्राण ही आहवनीय हवि है। साम की ऋचाएँ ही अध्वर्यु हैं। हम वाचस्पति महोदय से प्रार्थना करते हैं कि वे हमारी संज्ञा का निर्धारण करें, उनका आदेश हुआ कि हम तुम्हारे नाम का निर्धारण करते हैं। हम वाचस्पति महोदय से प्रार्थना करते हैं कि वे सोमपान करने का अनुग्रह करें। प्रजापति यज्ञ प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि वे हमें सैनिक बल से सुसम्पन्न करें। इस निमित्त ही यह आहुति समर्पित करते हैं। अध्वर्यु पाँच बार आहुति समर्पित करे॥ १॥

पृथिवी होता। द्यौरध्वर्युः। रुद्रोऽग्नीत्। बृहस्पतिरुपवक्ता। वाचस्पते वाचोवीर्येण। सम्भृततमेनायक्ष्यसे। यजमानाय वार्यं। आसुवस्करस्मै। वाचस्पतिः सोमं पिबति। जजनदिंद्रमिन्द्रियाय स्वाहा। पृथिवी होतादश॥ २॥

इस यज्ञ में पृथिवी होता है, स्वर्ग अध्वर्यु है, रुद्रदेव अग्नीत् (आग्नीध्र) हैं, बृहस्पति जी उपवक्ता हैं। हे वाचस्पति जी! आप अपनी वाणी के पराक्रम से यज्ञ करेंगे, जो जाज्वल्यमान एवं अत्यन्त समृद्ध है। यज्ञ के द्वारा यजमान को श्रेष्ठ फल प्राप्त कराइये। (अब) सोम सवन (सोम निचोड़ने की क्रिया) की प्रक्रिया भलीप्रकार सम्पन्न की जाती है। (तत्पश्चात्) वाचस्पतिदेव सोमपान करते हैं। सोम के लिए अन्तरिक्ष स्थानीय ओजस्वी

देवता-इन्द्र को उत्पन्न किया, एतदर्थ यह आहुति समर्पित की गई है। यहाँ पर पृथिवी दस बार होतृ-कार्य सम्पन्न करती है॥ २॥

अग्निर्होता। अश्विनाध्वर्यू। त्वष्टाऽऽग्नीत्। मित्र उपवक्ता। सोमः सोमस्यपुरोगाः। शुक्रः शुक्रस्य पुरोगाः। श्रातास्त इन्द्र सोमाः। वातापेर्हवनश्रुतः स्वाहा॥ अग्निर्होताष्टौ॥ ३॥

इस यज्ञ में अग्निदेव स्वयं ही होता हैं, दोनों अश्विनीकुमार अध्वर्यु हैं, त्वष्टा अग्नीत् (आग्नीध्र) हैं, मित्रदेवता उपवक्ता हैं, सोमयाग में सोम ही सर्वत्र प्रमुख है, इसी प्रकार शुक्र आकाशीय ग्रहों में प्रमुख है। हे इन्द्रदेव! यहाँ आपके पान करने के लिए सोमरस पकाकर तैयार कर लिया गया है। इन्द्रदेव के आवाहन को सुनकर यह आहुति समर्पित की गई है। अग्निदेव आठ बार आहुति समर्पित करते हैं॥ ३॥

सूर्यं ते चक्षुः। वातं प्राणः। द्यां पृष्ठं । अन्तरिक्षमात्मा। अंगैर्यज्ञं। पृथिवीꣳ शरीरैः। वाचस्पते छिद्रया वाचा। अछिद्रया जुह्वा। दिविदेवावृधꣳ होत्रामेरयस्व स्वाहा। सूर्यं ते नव॥ ४॥

हे परमात्मन्! सूर्य आपका नेत्र है, वायु आपका प्राण है, आकाश आपका पृष्ठभाग है, अन्तरिक्ष आपका आत्मा है, आपके अंगों से यज्ञ सम्पन्न होता है। पृथिवी आपका एक शरीर है। हे वाचस्पति जी! आपकी वाणी अत्यन्त तीक्ष्ण छेद करने वाली (गहराई तक प्रवेश करने में समर्थ) है। आहुति के लिए प्रयोग में आने वाली जुहू अछिद्र होती है। हे अग्निरूप होता! आप हमें स्वर्ग के प्रकाशमान देवताओं के समान समृद्ध होने की प्रेरणा प्रदान करें। एतदर्थ यह आहुति समर्पित है। (इस प्रकार) सूर्य आदि आपके नौ अवयव हैं॥ ४॥

महाहविर्होता। सत्यहविरध्वर्यु। अच्युतपाजा अग्नीत्। अच्युतमना उपवक्ता। अनाधृष्यश्चाप्रति धृष्यश्च यज्ञस्याभिगरौ। अयास्य उद्गाता। वाचस्पते हृद्विधे नामन्। विधेमते नाम। विधेस्त्वमस्माकं नाम। वाचस्पतिः सोममपात्। मादैव्यस्तं तुश्छेदिमामनुष्यः। नमो दिवे। नमः पृथिव्यै स्वाहा। अपात्रीणि च॥ ५॥

महाहवि अर्थात् विष्णु इस यज्ञ के होता हैं। सत्यहवि, इसके अध्वर्यु हैं। जिनका बल कभी घटता नहीं है, ऐसे अच्युतपाजा इसके अग्नीत् हैं। जिनका मन कभी दुर्बल नहीं होता है, ऐसे अच्युतमनस् इसके उपवक्ता (उपदेशक) हैं। अनाधृष्य तथा अप्रतिधृष्य इस यज्ञ के दो आक्रोश करने वाले ऋत्विज् हैं। अयास्य (स्थिर चित्त) नामक ऋषि इसके उद्गाता हैं। वाचस्पति जी! अब आप इसका नामकरण करें। वे बोले हम आपका नामकरण करते हैं। ठीक है, आप हमारा नामकरण कीजिए। तब वाचस्पति जी ने सोमपान किया। मनुष्य एवं देवताओं के बीच जो याज्ञिक सम्बन्ध का तन्तु है, वह कभी नहीं टूटना चाहिए। स्वर्ग के लिए हम नमन करते हैं, इस धरित्री को भी हम नमन करते हैं। एतदर्थ यह आहुति समर्पित है। इस यज्ञीय प्रयोग से तीनों लोकों की रक्षा की गई॥ ५॥

वाग्घोता। दीक्षा पत्नी। वातोऽध्वर्युः। आपोभिगरः। मनो हविः। तपसि जुहोमि। भूर्भुवः सुवः। ब्रह्मस्वयंभु। ब्रह्मणे स्वयंभुवे स्वाहा। वाग्घोता नव॥ ६॥

इस यज्ञ में वाणी होता है, दीक्षा पत्नी है, वायुदेव अध्वर्यु हैं, जल (वरुणदेव) आक्रोश करने वाले ऋत्विज् हैं। मन हविष्य है, तप की अग्नि में हम आहुति दे रहे हैं। इसी से तीनों लोकों की स्थिति यथावत् है। स्वयंभू ब्रह्म हैं, उन्हीं स्वयंभू ब्रह्म के लिए यह आहुति समर्पित है। (इस प्रकार) वाक् आदि नौ होता (से सम्बद्ध) हैं॥ ६॥

ब्राह्मण एक होता। स यज्ञः। स मे ददातु प्रजां पशून् पुष्टिं यशः। यज्ञश्च मे भूयात्। अग्निर्द्विहोता। स भर्त्ता। स मे ददातु प्रजां पशून्पुष्टिं यशः। भर्त्ता च मे भूयात्। पृथिवी त्रिहोता। स प्रतिष्ठा। स मे ददातु प्रजां पशून्पुष्टिं यशः। प्रतिष्ठा च मे भूयात्। अन्तरिक्षं चतुर्होता। स विष्ठाः। स मे ददातु प्रजां पशून्पुष्टिं यशः। विष्ठाश्च मे भूयात्। वायुः पञ्च होता। स प्राणः। स मे ददातु प्रजां पशून्पुष्टिं यशः। प्राणश्च मे भूयात्। चन्द्रमाः षड्ढोता। स ऋतून्कल्पयति। स मे ददातु प्रजां पशून्पुष्टिं यशः। ऋतवश्च मे कल्पन्ताम्। अन्नꣳ सप्त होता। स प्राणस्य प्राणः। स मे ददातु प्रजां पशून्पुष्टिं यशः। प्राणस्य च मे प्राणो भूयात्। द्यौरष्ट होता। सोऽनाधृष्यः। स मे ददातु प्रजां पशून्पुष्टिं यशः। अनाधृष्यश्च भूयासम्। आदित्यो नव होता। स तेजस्वी। स मे ददातु प्रजां पशून्पुष्टिं यशः। तेजस्वी च भूयासम्। प्रजापतिर्दश होता। स इदꣳ सर्वम्। स मे ददातु प्रजां पशून्पुष्टिं यशः। सर्वं च मे भूयात्। प्रतिष्ठा प्राणश्च मे भूयादनाधृष्यः सर्वं च मे भूयात्॥ ७॥

इस यज्ञ में ब्रह्मतत्त्व का ज्ञाता ब्राह्मण ही एकमात्र होता है। वह ही यज्ञरूप है। वह यज्ञ हमें सन्तान, पशुओं, समृद्धि एवं सुयश से सम्पन्न करे। हम निरन्तर इस यज्ञ का अनुष्ठान करते रहें। अग्नि के दो होता हैं। वे अग्निदेव ही हमारे पोषक हैं। वे हमें सन्तान, पशुओं, स्वास्थ्य एवं सुयश से सम्पन्न करें। वे सदैव हमारे पोषक बने रहें। पृथिवी के तीन होता हैं। वही पृथिवी हमारी प्रतिष्ठा है। वह हमें प्रजा से, पशुओं से, स्वास्थ्य एवं बल से तथा सुयश से सम्पन्न करे। हमें वह प्रतिष्ठा प्राप्त हो। अन्तरिक्ष के चार होता हैं। वह अन्तरिक्ष ही स्थावर-जंगम जगत् का आधार है। वह हमें प्रजा से, पशुओं से, बल से एवं सुयश से सम्पन्न करे। वह स्थावर-जंगम जगत् हमारे लिए कल्याणकारी हो। वायु के पाँच होता हैं। वह जगत् का प्राण है। वह हमें प्रजा से, पशुओं से, बल से एवं सुयश से सम्पन्न करे। प्राणवायु हमारे लिए कल्याणकारी हो। चन्द्रमा के छः होता हैं। वह चन्द्रमा ही ऋतुओं का निर्माण करता है। वह हमारे लिए सन्तानदाता, पशुप्रदाता, पुष्टिकारक एवं यशप्रदाता बना रहे। हमारे लिए सभी ऋतुएँ कल्याणकारी हों। अन्न के सात होता हैं। वह अन्न ही प्राणों का भी प्राण है, अन्न से ही हमारे प्राण सुरक्षित हैं। वह प्राण हमारे लिए सन्तानदायक पशुप्रदाता, बलप्रदाता एवं सुयशोदायी हो। वह हमारे जीवन का आधार बना रहे। आकाश के आठ होता हैं। वह अनाधृष्य (अजेय) है। उसे कोई वश में नहीं कर सकता है। वह हमें सन्तान प्रदान करे, पशु प्रदान करे, पुष्टि एवं सुयश प्रदान करे। हम भी अनाधृष्य (अजेय) रहें। हमें कोई किसी प्रकार नहीं दबा सके। आदित्य के नौ होता हैं। वही वस्तुतः तेजस्वी एवं तेजस् वर्चस् का स्रोत है। वह हम पर प्रसन्न होकर हमें प्रजाओं से, पशुओं से, बलवीर्य से एवं श्रेष्ठ यश से सम्पन्न करे। प्रजापति के दस होता हैं। वह प्रजापति ही सर्वस्व है, वही सर्वत्र है। वह हमें सन्तान से, पशुओं से, पुष्टि से एवं यश से सम्पन्न बनाए। हमें सभी साधन प्राप्त हों। हम प्रतिष्ठा प्राप्त करें। विशिष्ट प्राणवान् हों एवं हमें तथा हमारे साधनों पर किसी का प्रभाव,दबाव या अधिकार न हो सके॥ ७॥

ब्राह्मणो यज्ञोऽग्निर्भर्त्ता पृथिवी प्रतिष्ठान्तरिक्षं विष्ठावायुः प्राणश्चन्द्रमा स ऋतूनन्नꣳ स प्राणस्य प्राणो द्यौरनाधृष्य आदित्यः स तेजस्वी प्रजापतिः स इदꣳ सर्वꣳ सर्वं च मे भूयात्। अग्निर्यजुर्भिः। सवितास्तोमैः। इन्द्र उत्छामदैः। मित्रावरुणावाशिषा। अंगिरसोऽधिष्ठ्यैरग्निभिः। मरुतः सदो हविर्द्धानाभ्याम्। आपः प्रोक्षणीभिः। ओषधयो बर्हिषा। अदितिर्वेद्या। सोमो दीक्षया। त्वष्टेध्मेन। विष्णुर्यज्ञेन। वसव आज्येन। आदित्या दक्षिणाभिः। विश्वेदेवा ऊर्जा। पूषास्वगाकारेण। बृहस्पतिः पुरोधया। प्रजापतिरुद्गीथेन। अन्तरिक्षं पवित्रेण। वायुः पात्रैः। अहꣳश्रद्धया। दीक्षया पात्रैरेकं च॥ ८॥

ब्राह्मण ही यज्ञ है, अग्नि ही भरण-पोषण करने वाला है, पृथिवी ही वस्तुतः प्रतिष्ठा है, अन्तरिक्ष ही विष्ठा है, वायु ही प्राण है, चन्द्रमा ही ऋतु है, अन्न ही प्राणों का भी प्राण है। आकाश ही अनाधृष्य (अजेय) है। आदित्य ही तेजस्वी है। प्रजापति ही यह सब कुछ है। ये सभी पदार्थ हमारे लिए कल्याणकारी हों। अग्नि का याजुष मन्त्रों से, सविता का स्तोममन्त्रों से, इन्द्र का उक्थ-साममन्त्रों से, मित्र एवं वरुण का आशिष् से, अंगिरस का प्रतिष्ठित अग्नियों से, देवसभा का हवि एवं धाना (भुना हुआ धान-खील) से, जल का प्रोक्षणी से, ओषधियों का बर्हि से, अदिति का वेदी से, सोम का दीक्षा से, त्वष्टा का इध्म से, विष्णु का यज्ञ से, वसुओं का आज्य से, आदित्यों का दक्षिणा से, विश्वेदेवों का ऊर्जा से, पूषा का स्वगाकार से, बृहस्पति का पौरोहित्य से, प्रजापति का उद्गीथ से, अन्तरिक्ष का पवित्रों से, वायु का पात्रों से, अहंतत्त्व का श्रद्धा से तथा पात्र व्यक्तियों का दीक्षा से नित्य सम्बन्ध है॥ ८॥

सेनेन्द्रस्य। धेना बृहस्पतेः। पथ्या पूष्णः। वाग्वायोः। दीक्षा सोमस्य। पृथिव्यग्नेः। वसूनां गायत्री। रुद्राणां त्रिष्टुप्। आदित्यानां जगती। विष्णोरनुष्टुप्। वरुणस्य विराट्। यज्ञस्य पंक्तिः। प्रजापतेरनुमतिः। मित्रस्य श्रद्धा। सवितुः प्रसूतिः। सूर्यस्य मरीचिः। चन्द्रमसो रोहिणी। ऋषीणामरुन्धती। पर्जन्यस्य विद्युत्। चतस्त्रो दिशः। चतस्त्रोऽवान्तरदिशाः। अहश्चरात्रिश्च। कृषिश्चवृष्टिश्च। त्विषिश्चापचितिश्च। आपश्चौषधयश्च। ऊर्क्च सूनृता च देवानां पत्नयः। अनुष्टुप् दिशः षट् च॥ ९॥

सेना इन्द्र की पत्नी है, धेना बृहस्पति की पत्नी है, अन्तरिक्ष पूषा की पत्नी है, वाणी वायु की पत्नी है। सोम की पत्नी दीक्षा है। अग्नि की पत्नी पृथिवी है। वसुओं की पत्नी गायत्री छन्द है। त्रिष्टुप् छन्द रुद्रों की पत्नी है। जगती छन्द आदित्यों की पत्नी है। अनुष्टुप् विष्णु की पत्नी है। विराट् वरुण की पत्नी है। पंक्ति छन्द यज्ञ की पत्नी है। अनुमति प्रजापति की पत्नी है। श्रद्धा मित्र देवता की पत्नी है। प्रसूति सविता की पत्नी है। मरीचि (किरण) सूर्य की पत्नी है। रोहिणी चन्द्रमा की पत्नी है। अरुन्धती ऋषियों की पत्नी है। विद्युत् मेघ की पत्नी है। चार दिशाएँ हैं। चार ही अवान्तर दिशाएँ हैं। रात्रि और दिन का भी जोड़ा है। कृषि और वृष्टि का भी जोड़ा है। त्विषि (प्रकाश की किरण) एवं अपचिति (पूजन) का भी परस्पर सम्बन्ध है। जल एवं औषधियों का भी परस्पर अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। ऊर्जा एवं सुन्दर सत्य-मधुर वाणी ही देवत्व सम्पन्न लोगों की पत्नी है। अनुष्टुप् एवं छः दिशाओं का भी परस्पर सम्बन्ध है॥ ९॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे। अश्विनोर्बाहुभ्यां। पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि। राजा त्वा वरुणो नयतु देवि दक्षिणेग्नये हिरण्यं। ते नामृतत्वमश्यां। वयोदात्रे। मयोमह्यमस्तु प्रतिग्रहीत्रे। क इदं कस्मा अदात्। कामः कामाय। कामोदाता। कामः प्रतिग्रहीता। कामꣳ समुद्रमाविश। कामेन त्वा प्रतिगृह्णामि। कामैतत्ते। एषा ते काम दक्षिणा। उत्तानस्त्वांगीरसः प्रतिगृह्णातु। सोमायवासः। रुद्रायगां। वरुणायाश्वं। प्रजापतये पुरुषं। मनवे तल्पं। त्वष्ट्रेऽजां। पूष्णेऽविं निर्ऋत्या अश्वतर गर्दभौ। हिमवतो हस्तिनं। गंधर्वाप्सराभ्यः स्रगलंकरणे। विश्वेभ्योदेवेभ्यो धान्यं। वाचेऽन्नं। ब्रह्मण ओदनं। समुद्रायापः। उत्तानायांगीरसायानः। वैश्वानराय रथं। वैश्वानरः प्रत्नथानाकमारुहत्। दिवः पृष्ठं भंदमानः सुमन्मभिः। स पूर्ववज्जनयज्जंतवेधनं। समानमज्मापर्येति जागृविः। राजा त्वा वरुणो नयतु देविदक्षिणे वैश्वानरायरथं। तेनामृतत्वमश्यां। वयो दात्रे। मयोमह्यमस्तु प्रतिग्रहीत्रे। क इदं कस्मा अदात्। कामः कामाय। कामोदाता। कामः प्रतिग्रहीता। काꣳसमुद्रमाविश। कामेन त्वा प्रतिगृह्णामि। कामैतत्ते। एषा ते कामदक्षिणा। उत्तानस्त्वांगीरसः प्रतिगृह्णातु। दातापुरुषमापः प्रतिग्रहीत्रेन वचः॥ १०॥

हे देवि दक्षिणे! सविता देवता की प्रेरणा से, दोनों अश्विनीकुमारों की भुजाओं से तथा पूषा देवता के दोनों हाथों से हम तुम्हें ग्रहण करते हैं। वरुणदेव जो हमारे राजा हैं, वे तुम्हें ले जाएँ। वे अग्निदेव के लिए सुवर्ण प्रदान करें। इसी प्रकार हम अमृतत्व का उपभोग करें। हम तो केवल उम्र काटने वाले हैं, हम सादर ग्रहण करते हैं- हमें सुख की प्राप्ति हो। किसने (किस दाता ने) यह दान, किस प्रतिग्रहीता को प्रदान किया? काम ने काम को ही प्रदान किया है। दानदाता भी काम है एवं प्रतिग्रहण करने वाला भी काम ही है। कामरूप समुद्र में ही आप प्रवेश करें। हम काम के द्वारा ही आपका प्रतिग्रहण करते हैं। यह भी आपका काम ही है। यही आपकी काम दक्षिणा है। आंगीरस उत्तानकारों से इसे प्रतिगृहीत करें। सोम देवता के लिए वस्त्र समर्पित है, रुद्र के लिए गौ, वरुण के लिए अश्व, प्रजापति के लिए पुरुष, मनु के लिए शैया, त्वष्टा के लिए अजा (बकरी), पूषा के लिए अवि (भेड़), निर्ऋति के लिए खच्चर और गधा, हिमवान् के लिए हाथी, गन्धर्व-अप्सराओं के लिए माला और आभूषण, विश्वेदेव के लिए धान्य, वाक् देवी के लिए अन्न, ब्रह्मा के लिए ओदन (भात), समुद्र के लिए आपः (जल), ऊर्ध्वमुखी अग्नि के लिए यान तथा वैश्वानर के लिए रथ समर्पित है। उत्तम स्तोत्रों से स्तुत्य ये वैश्वानर अग्निदेव अन्तरिक्ष में होते हुए द्युलोक के पृष्ठ पर आरूढ़ होते हैं। पूर्वकाल के सदृश वे प्राणियों के लिए धारण योग्य पदार्थों को उत्पन्न करते हैं, वे सर्वदा जाग्रत् रहकर सनातन (सुनियोजित) मार्ग से परिभ्रमण करते रहते हैं। हे देवि दक्षिणे (यज्ञ की पत्नी)! प्रकाशमान वरुण देवता आपके रथ को वैश्वानर (यज्ञदेव) की ओर ले जाएँ, जिससे अमृतत्व की प्राप्ति हो। हम तो आयु व्यतीत करने वाले हैं। हम सादर ग्रहण करते हैं- हमें सुख प्राप्त हो। किसने (किस दाता ने) यह दान, किस प्रतिग्रहीता को प्रदान किया? काम ने काम को ही प्रदान किया है। दानदाता भी काम है एवं प्रतिग्रहण करने वाला भी काम ही है। यही आपकी काम दक्षिणा है। आंगीरस उत्तानकारों से इसे प्रतिगृहीत करें। पुरुषभाव ही वाणी के समान प्रदाता है उन लोगों के लिए, जो कि दक्षिणा का प्रतिग्रहण करने वाले हैं॥ १०॥

॥ अथ द्वितीयः खण्डः ॥

सुवर्णं घर्मं परिवेदवेनं। इन्द्रस्यात्मानंदशधाचरन्तम्। अन्तः समुद्रे मनसा चरन्तम्। ब्रह्मान्वविंदद्दश होतारमर्णे। अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानां। एकः सन् बहुधा विचारः। शतꣳ शुक्राणि यत्रैकं भवन्ति। सर्वेवेदायत्रैकं भवन्ति। सर्वे होतारो यत्रैकं भवन्ति। समानसीन आत्माजनानाम्॥ १ ॥

सूर्य (इन्द्र) का सुन्दर वर्णवाला एवं ताप देने वाला जानता है। इन्द्र का स्वरूप जो दस प्रकार के रूपों में विचरण करता हुआ है, देखा गया। वह समुद्र के अन्तस्तल में भी मानसिक रूपेण विचरण करता रहता है। अन्ततः ब्रह्मा ने दश होता वाले इन्द्र को जल में देख ही लिया, प्राप्त कर ही लिया। वह इन्द्र जो सब लोगों पर शासन करने वाला है, समुद्र के भीतर प्रविष्ट था। वह एक होते हुए भी अनेक रूपों में विचरण करता है। जिस अव्यक्त स्थिति में सैकड़ों शुक्र एकरूप हो जाते हैं, जहाँ सभी वेद एकरूप हो जाते हैं, जहाँ सभी होतृगण एकरूप हो जाते हैं, वहीं आत्मा (अक्षर) सभी लोगों में समान रूप से विद्यमान है, विराजमान है॥ १ ॥

अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानाꣳ सर्वात्मा। सर्वाः प्रजायत्रैकं भवन्ति। चतुर्होतारो यत्र सम्पदं गच्छन्ति देवैः। समानसीन आत्मा जनानाम्। ब्रह्मेन्द्रमग्निं जगतः प्रतिष्ठां। दिव आत्मानꣳ सवितारं बृहस्पतिम्। चतुर्होतारं प्रदिशोनुक्लृप्तं। वाचोवीर्यं तपसान्विन्दत्। अन्तः प्रविष्टंकर्त्तारमेतं। त्वष्टारꣳ रूपाणि विकुर्वन्तं विपश्चिम्॥ २ ॥

सर्वात्मा परमेश्वर सभी प्राणियों के हृदय में प्रविष्ट होकर उन पर शासन (नियन्त्रण) करता है। समस्त प्रजाएँ जहाँ एकरूप हो जाती हैं; जहाँ यज्ञ के चारों होता देवताओं के साथ स्वर्ग-सम्पदा के अधिकारी बन जाते हैं; वहीं आत्मतत्त्व सभी प्राणियों में समान रूप से विराजमान है। वह परमात्मा, ब्रह्म, इन्द्र एवं अग्नि के रूप में ही इस जगत् की प्रतिष्ठा बनाता है। सभी बृहतों का स्वामी सविता ही स्वर्ग का मूलाधार है। उस विराट् ब्रह्म ने चार होताओं के रूप में चार अवान्तर दिशाओं की रचना की, उस ब्रह्म ने तप के द्वारा ही वाणी की श्रेष्ठता प्राप्त की, जिससे वेदज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ। तप के द्वारा ही अन्तःकरण में प्रविष्ट ईश्वर को प्राप्त किया। तप के द्वारा ही धर्मतत्त्वज्ञ विश्वकर्मा के रूप में ब्रह्म ने जगत् के अनन्तरूपों की रचना की॥ २ ॥

अमृतस्य प्राणं यज्ञमेतं। चतुर्होतृणामात्मानं कवयो निचिक्युः। अन्तः प्रविष्टं कर्ता रमेतं देवानांबन्धु निहितं गुहासु। अमृतेन क्लृप्तं यज्ञमेतं। चतुर्होतृणामात्मानं कवयो निचिक्युः। शतंनियुतः परिवेद विश्वाविश्ववारः। विश्वमिदं वृणाति इन्द्रस्यात्मा निहितः पञ्च होता। अमृतं देवानामायुः प्रजानाम्॥ ३ ॥

यह यज्ञ अमृत का प्राण है, यह यज्ञ ही चारों होताओं का आत्मा है, इस तथ्य को तत्त्वज्ञ विद्वान् लोग निश्चित रूप से जानते थे। वे यह भी निश्चित रूप से जानते थे कि यह यज्ञरूप प्राण सभी के अन्तरंग में प्रविष्ट होकर जगत्कार्य को गति देता रहता है। यह यज्ञ देवताओं का संपोषण करने वाला है। यह यज्ञ तत्त्वदर्शी विद्वानों की बुद्धिरूपी गुहा में छिपा हुआ है। यह यज्ञ अमृत से परिपूर्ण है। तत्त्वदर्शी विद्वानों ने यज्ञ को चारों होताओं के आत्मा के रूप में देखकर, उसका चयन किया था। जो विश्ववार यज्ञकर्त्ता सौ बार यज्ञ कर लेता था, वह सम्पूर्ण

विश्व के रहस्य को जान लेता था। वही सम्पूर्ण विश्व का स्वहित में वरण कर लेता था। यज्ञ में ही इन्द्रशक्ति का आत्मस्वरूप निहित है। यह यज्ञ पाँच होताओं वाला होता है। समस्त दैवी तत्त्वों को जीवन देने वाला यह यज्ञ, उनके लिए अमृतरूप है। इसी प्रकार यह यज्ञ समस्त प्रजाओं को सभी जीवनाधार पदार्थों की श्रेष्ठ उपलब्धि कराकर उनके लिए आयु: स्वरूप है॥ ३॥

इन्द्रः राजानः सवितारमेतं। वायोरात्मानं कवयो निचिक्यु:। रश्मिःरश्मीनां मध्ये तपंतं। ऋतस्य पदे कवयो निपांति। य आंडकोशे भुवनं बिभर्त्ति अनिर्भिण्ण: सन्नथ लोकान् विचष्टे। यस्यांडकोशःशुष्ममाहु: प्राणमुल्बं। ते न क्लृप्तोऽमृतेनाहमस्मि। सुवर्णं कोशःरजसापरीवृत्तं। देवानां वसुधानीं विराजम्॥ ४॥

तत्त्वदर्शी विद्वानों ने यह निश्चय किया था कि इन्द्र ही प्रकाशमान सविता है। वही सतत प्रवहमान वायु का आत्मा है। वही देदीप्यमान रश्मि है, जो समस्त प्रकाशमान तत्त्वों के मध्य विशेष सुशोभित है। वे तत्त्वद्रष्टा ऋषि-मनीषी उसकी ऋत के क्षेत्र में विशेषरूपेण रक्षा करते हैं। जो (इन्द्र) ब्रह्माण्डरूपी कोश में इस भुवन को धारण करता है तथा निर्भीक होकर लोकों की संरचना करता है। जिसका अण्डकोश (ब्रह्माण्ड) अत्यन्त सूक्ष्म कहा जाता है, जो जाज्वल्यमान प्राणतत्त्व है; उसी अमृत तत्त्व (प्राण) से मैं आप्लावित हूँ। तप्त सुवर्ण के सदृश देदीप्यमान यह कोश भी चारों ओर से रजोगुण से घिरा हुआ है। वसु (ऐश्वर्य) तत्त्वों को धारण करने वाले प्रकाशमान दिव्य तत्त्वों में यह सर्वाधिक उज्ज्वल कोश (ब्रह्माण्ड) है॥ ४॥

अमृतस्य पूर्णांतामुकलां विचक्षते। पादःषड्ढोतुर्न किलाविवित्से। येनर्त्तव: पंचधोतक्लृप्ता:। उतवा षड्धा मनसोत क्लृप्ता:। तः षड्ढोतामृतुभि: कल्पमानं। ऋतस्य पदेकवयोनिपांति। अंत: प्रविष्टं कर्त्तारमेतं। अंतश्चंद्रमसिमनसाचरंतं। स है वसंतं नविजानंति देवा:। इंद्रस्यात्मानःशतधा चरंतं ॥ ५॥

उसे ही अमृत तत्त्व की पूर्ण कला कहते हैं, जिनने पाँच प्रकार की ऋतुओं की संरचना की , छ: होता भी उन (इन्द्र के) चतुर्थांश को भी वस्तुत: नहीं जानते अथवा छ: प्रकार की ऋतुओं की उनने इच्छानुसार रचना की है। अतएव छ: ऋतुओं के आधार पर हम छ: होताओं द्वारा यज्ञ कार्य में उनकी उपस्थिति की कल्पना करते हैं। तत्त्वदर्शी मनीषी, ऋत के क्षेत्र में ही उन्हें प्राप्त करते हैं। वे ही ऋत के अन्तरतम में उपस्थित कर्त्ता हैं। चन्द्रमा के भीतर भी मानसिक रूपेण वे ही विचरण करते हैं। सैकड़ों रूपों में विचरण करने वाले एवं सदा साथ रहने वाले इन इन्द्रदेव के तत्त्वज्ञान को देवगण भी नहीं जान पाते हैं कि उनका नियत स्थान कौन सा है, कहाँ है ?॥ ५॥

इन्द्रोराजा जगतोऽयईशे। सप्त होता सप्तधा विक्लृप्त:। परेणतंतुं परिषिच्यमानं। अंतरादित्ये मनसा चरंतं। देवाना ः हृदयं ब्रह्मान्वविंदत्। ब्रह्मैतद्ब्रह्म उज्जभार। अर्कःश्चोतंतःसरिरस्य मध्ये। आयस्मिन्सप्तपेरव:। मेहंतिबहुलाः श्रियं। बहवश्वामिंद्रगोमतीं॥ ६ ॥

इस निरन्तर गतिशील संसार के राजा इन्द्र हैं, जो इस पर शासन करते हैं। वे सात विविध रूपों में संवत्सर में सप्त यज्ञों में आहूत किये जाते हैं। वे यज्ञरूप परतत्त्व से अभिषिंचित होकर संवर्धित होते हैं। वे मन:शक्ति से

आदित्य में भी संचरित होते हैं। वे ही देवों को संरक्षण देने वाले उनके हृदयरूपी आधार हैं, उन्हें ब्रह्मा ने प्राप्त कर लिया। ब्रह्मा ने ही इस ब्रह्म को उभारा था। जल-तत्त्व में सरसता का सिंचन आदित्य ही करते हैं। जिसमें सतरंगी सात पेरु हैं। ये ही श्रेष्ठ गोधन एवं अश्वधन की वृष्टि करते हैं॥ ६॥

अच्युतां बहुलाꣳश्रियं। सहरिर्वसुवित्तमः। पेरुङ्करद्रायपिन्वते। बह्वश्वामिंद्रगोमतीं। अच्युतां बहुलाꣳ श्रियं। मह्यमिंद्रोनियछतु। शत ꣳ शता अस्ययुक्ताहरीणां। अर्वाङयातुवसुभी रश्मिङ्करद्रः। प्रमꣳहमाणो बहुला ꣳश्रियं। रश्मिङ्करद्रः सवितामेनियछतु ॥ ७॥

कभी भी समाप्त न होने वाली राष्ट्रश्री को ही बहुलाश्री कहा गया है। वे इन्द्र विश्व के सम्पूर्ण ऐश्वर्य के स्वामी हैं। आदित्य की ऐश्वर्य-धनधान्य बरसाने वाली किरणें इन्द्र को गोधन-वाजिधन प्रदान कर तृप्त करती रहती हैं। वे इन्द्र हमें भी कभी समाप्त न होने वाली अव्यय- लक्ष्मी प्रदान करें। इनके रथ में असंख्य अश्व जुते हुए हैं। वे समग्र ऐश्वर्य के साथ हमारे सम्मुख शुभागमन करें। अनन्त रश्मियों के स्वामी इन्द्र (सूर्य) सविता स्वयं अति समृद्ध होकर हमें विविधरूप वाली लक्ष्मी प्रदान करें॥ ७॥

घृतं तेजोमधुमदिंद्रियं मय्ययमग्निर्दधातु। हरिः पतंगः पटरी सुपर्णः। दिविक्षयो नभसायएति। सनइंद्रः कामवरं ददातु। पंचारं चक्रं परिवर्त्तते पृथु। हिरण्य ज्योतिः सरिरस्यमध्ये। अजस्त्रं ज्योतिर्नभसासर्पदेति। सनइंद्रः कामवरं ददातु। सप्तयुंजंतिरथमेकचक्रं॥ ८॥

हम अग्निरूप परमात्मा से प्रार्थना करते हैं— हे अग्निदेव! आप हमें घृत अर्थात् स्नेह, तेज अर्थात् उत्साह, मधु अर्थात् माधुर्य से आप्लावित करें। हरि अर्थात् प्राण ही गतिशील हैं, वे ही पतंग अर्थात् सूर्य हैं, वे ही स्वर्णिम किरणों वाले निरन्तर गतिशील हैं। द्युलोक ही जिनका आवास है, जो आकाशमार्ग से सतत गतिशील रहते हैं। वे इन्द्र (सूर्य) हमें अभीष्ट वर प्रदान करें। पाँच अरों वाला यह विशाल संवत्सररूपी चक्र निरन्तर गतिशील रहता है। अन्तरिक्षरूपी सलिल में यह सूर्यरूपी हिरण्य-ज्योति प्रकाशित होती है। यह सूर्यरूपी ज्योति आकाशमार्ग से निरन्तर गतिशील रहती है, कभी विराम नहीं लेती है। वे इन्द्र अर्थात् आदित्य हमें अभीष्ट वर प्रदान करें। इन आदित्य के एक चक्र वाले रथ में सात अश्व जुते रहते हैं॥ ८॥

एको अश्वोवहतिसप्तनामा। त्रिनाभिचक्रमजरमनर्वं। येनेमा विश्वाभुवनानितस्थुः। भद्रं पश्यंत उपसेदुरग्रे। तपोदीक्षामृषयः सुवर्विदः। ततः क्षत्रं बलमोजश्च जातं। तदस्मैदेवा अभिसंनमंतु। श्वेतꣳ रश्मिं बोभुज्यमानं। अपान्नेतारं भुवनस्य गोपां। इंद्रं निचिक्युः परमे व्योमन्॥ ९॥

सात नामों से प्रथित वह एक अश्व (परमात्मा) इस तीन धुरों वाले स्वयं गतिशील अजर चक्र को चलाता है। जिसके चक्र की गति के कारण ही ये समस्त भुवन टिके हुए हैं। द्युलोक के विषय में इन्द्रियातीत ज्ञान रखने वाले ऋषियों ने कल्याण की कामना करते हुए, तप की दीक्षा देने के लिए उपसद् (दान करना) नामक एक इष्टि का अनुष्ठान किया। जिसके फलस्वरूप क्षात्रबल एवं ओज की उत्पत्ति हुई। जिसके सम्मुख सभी देवगण सब ओर से नतमस्तक हुए। जो समस्त जलों को ले जाने वाला, समस्त भुवनों का संरक्षण करने वाला

है, उस सफेद रस्सी (लगाम) को बार-बार मुँह में खाने वाले उस अश्व को ऋषियों ने परम-व्योम-स्थित इन्द्र (सूर्य) के रूप में पूरी तरह से पहचान लिया॥ ९॥

रोहिणीः पिंगला एकरूपाः। क्षरंतीः पिंगला एकरूपाः। शतꣳ सहस्त्राणिप्रयुतानिना व्यानां। अयं यः श्वेतोरश्मिः। परि सर्वमिदं जगत्। प्रजां पशूं धनानि। अस्माकं ददातु। श्वेतोरश्मिः परिसर्वं बभूव। सुवन्मह्यं पशून्विश्वरूपान्। पतंगभक्तमसुरस्यमायया॥ १०॥

भगवान् इन्द्र की ऊर्ध्वगतिशील सभी किरणें पिंगल वर्ण (लालिमायुक्त भूरा रंग) की एवं समानरूप वाली हैं। इस प्रकार अन्तरिक्ष से पृथिवी पर आने वाली सभी किरणें भी पिंगल वर्ण वाली तथा समानरूप वाली हैं। सैकड़ों, हजारों, लाखों ऐसे प्रवाह हैं। यह जो अन्तरिक्ष में श्वेत (दिव्य) प्रकाश है, वह इस सम्पूर्ण जगत् को चारों ओर से घेरे हुए स्थित है। वह हमें प्रजा से, पशुओं से एवं धनधान्य से सम्पन्न करे। सम्पूर्ण विश्व के चारों ओर श्वेत-प्रकाश ही श्वेत-प्रकाश फैला हुआ है। उसने ही हमारे लिए विविधरूप वाले पशुओं की उत्पत्ति की है। प्राण-दाता उस परमेश्वर की मायाशक्ति के द्वारा यह दिव्य प्रकाश सूर्य में समाहित हो रहा है॥१०॥

हृदापश्यंति मनसामनीषिणः। समुद्रे अंतः कवयोविचक्षते। मरीचीनां पदमिछंतिवेधसः। पतंगो वाचं मनसा बिभर्त्ति। तां गंधर्वोवदद्गर्भे अंतः। तां द्योतमानाꣳस्वर्यं मनीषां। ऋतस्य पदेकवयोनिपांति। ये ग्राम्याः पशवोविश्वरूपाः। विरूपाः संतो बहुधैकरूपाः। अग्निस्ताꣳअग्रे प्रभुभोक्तुदेवः॥ ११॥

मनीषीगण-तत्त्वदर्शी मेधावी पुरुष हृदय (भावों) और मन (विचारों) से तत्त्व का दर्शन कर लेते हैं। वे क्रान्तदर्शी बुधजन समुद्र के अन्तरंग में भी देख लेते हैं। वे धर्मवीर मेधावी पुरुष वायुमण्डल में विचरण करने वाले ज्योतिष्कणों के मूल स्थान को भी प्राप्त कर लेते हैं। ज्योतिरूप (आत्मा) मन में अर्थात् विचारों के रूप में वाणी को धारण करता है। उनके (विचारों) एवं भावों के माध्यम से पुरुष गर्भ के भीतर भी बोलता रहता है। प्रकाशमान होने वाली उस मनीषा को क्रान्तदर्शी विद्वान् ऋत के क्षेत्र में सुरक्षित करते हैं। जो विविधरूप वाले ग्राम्य पशु हैं, वे विभिन्न रूपों में होते हुए भी बहुधा समानरूप वाले ही रहेंगे (बाहरी रूप में भिन्न होने पर भी भीतर उनकी प्रवृत्ति पशुस्तर की ही होती है)। हे तेजस्वी परमात्मन्! अग्निदेव उन सभी पशुओं की रक्षा करें॥ ११॥

प्रजापतिः प्रजया संविदानः। वीतꣳ स्तुके स्तुके। युवामस्मासुनियछतं। प्रप्रयज्ञपतिं तिर। ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपाः विरूपाः सं तो बहुधैकरूपाः। तेषाꣳ सप्तानामिहरंतिरस्तु। रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय। य आरण्याः पशवोविश्वरूपाः। विरूपाः संतो बहुधैकरूपाः॥ १२॥

प्रजाओं के पालक, रक्षक प्रजापति का अपनी समस्त प्रजाओं के साथ सम्यक् परिचय आवश्यक है। हे अश्विनी कुमारो! आप दोनों भी हवि का थोड़ा-थोड़ा पान करें। आप दोनों हमें तेज से सम्पन्न करें। साथ ही यजमान का भी उद्धार करें। विविध रूपों वाले जो ग्राम्य पशु विशिष्ट स्वरूपों में हैं, वे भी प्रायः एकरूप ही हैं, उनमें से प्रमुख सात पशुओं का यहीं स्वतन्त्र विमोचन किया जा रहा है। धन-धान्य के पोषण के लिए, प्रजाओं

की समृद्धि के लिए तथा पराक्रम के संवर्धन के लिए विविधरूपों वाले वन्य पशुओं को भी संरक्षण दिया जाना उचित है॥ १२॥

वायुस्ताःअग्रेप्रमुमोक्तुदेवः। प्रजापतिः प्रजया संविदानः। इडा यै सृप्तं घृतवच्चराचरं। देवा अन्वविंदन्गुहाहितं। आयेरण्याः पशवो विश्वरूपाः। विरूपाः संतो बहुधैकरूपाः। तेषाःसप्तानामिहरंतिरस्तु। रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय॥ १३॥

वायु देवता उन सभी पशुओं को संरक्षण प्रदान करें। भगवान् प्रजापालक प्रजापति समस्त प्रजाओं को संरक्षण परिचय प्रदान करें। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् श्रद्धा के लिए घृत के समान ही पिघल रहा है, चलायमान हो रहा है। बुद्धि की गुहा में सन्निहित परमतत्त्व को देवतत्त्वों ने प्राप्त कर लिया। जो अनेक रूपों वाले आरण्य-पशु हैं, वे विभिन्न रूपों में होते हुए भी प्रायः एक समान रूप वाले ही हैं। सम्पदाओं के पोषण के लिए, प्रजाओं में श्रेष्ठता के अभिवर्धन के लिए एवं उत्कृष्ट पराक्रम की प्राप्ति के लिए भी उन आरण्य पशुओं में से सात पशुओं का संरक्षण, विमोचन उचित ही है॥ १३॥

॥ अथ तृतीयः खण्डः ॥

आत्माजनानां विकुर्वंतं विपश्चिं प्रजानां वसुधानीं विराअंचरंतंगोमतीं मेनियछत्येकचक्रं व्योमन्मायययादेव एकरूपां अष्टौच॥ १॥

परमात्मदेव ने मनुष्यों के कल्याण के लिए विशेष कार्य करने वाले मेधावी पुरुष, ऐश्वर्यसम्पन्न प्रजाओं में विशेषतः शोभायमान राजपुरुष, समस्त पृथिवी पर ऊर्जा एवं प्रकाश के लिए व्योम में विचरणशील एकचक्र (सूर्य) के साथ हमें यह अद्वितीयरूपा विश्ववसुधा तथा काल, दिशाएँ आदि आठ पदार्थ भी अपनी माया-शक्ति से विनिर्मित कर सौंप दिये हैं॥ १॥

[आगे उपनिषत्कार वेदोक्त पुरुषसूक्त के मंत्र प्रस्तुत करते हैं। प्रचलित पुरुष सूक्त के अंत के कुछ मंत्रों में थोड़ा पाठभेद है।]

सहस्रशीर्षा पुरुषः। सहस्राक्षः सहस्रपात्। स भूमिं विश्वतोवृत्वा। अत्यतिष्ठद्दशांगुलम्। पुरुषऽएवेदः सर्वं। यद्भूतं यच्च भव्यं। उतामृतत्वस्येशानः। यदन्नेनातिरोहति। एतावानस्य महिमा। अतोज्यायाःश्च पूरुषः। पादोऽस्य विश्वाभूतानि। त्रिपादस्यामृतं दिवि। त्रिपादूर्ध्वऽ उदैत्पुरुषः। पादोऽस्येहाभवत्पुनः। ततो विष्वङ्व्यक्रामत्। साशनानशने अभि। तस्माद्विराडजायत। विराजो अधिपूरुषः। स जातो अत्यरिच्यत। पश्चाद् भूमिमथो पुरः। यत्पुरुषेण हविषा। देवा यज्ञमतन्वत। वसन्तोऽस्यासीदाज्यं। ग्रीष्मऽइध्मः शरद्धविः। सप्तास्यासन्परिधयः। त्रिः सप्त समिधः कृताः। देवा यद्यज्ञं तन्वानाः। अबध्नन् पुरुषं पशुम्। तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्। पुरुषं जातमग्रतः। तेन देवाऽअयजन्त। साध्याऽऋषयश्च ये। तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः। सम्भृतं पृषदाज्यम्। पशूःस्ताःश्चक्रे

वायव्यान्। आरण्यान्ग्राम्याश्च ये। तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः। ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दाꣳसि जज्ञिरे तस्मात्। यजुस्तस्मादजायत। तस्मादश्वाऽ अजायन्त। ये के चोभयादतः। गावो ह जज्ञिरे तस्मात्। तस्माज्जाताऽअजावयः। यत्पुरुषं व्यदधुः। कतिधाव्यकल्पयन्। मुखं किमस्यकौबाहू। कावूरूपादावुच्येते। ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्। बाहू राजन्यः कृतः। ऊरू तदस्य यद्वैश्यः। पद्भ्याꣳ शूद्रो अजायत। चन्द्रमा मनसो जातः। चक्षोः सूर्यो अजायत। मुखादिंद्रश्चाग्निश्च। प्राणाद्वायुरजायत। नाभ्याऽआसीदंतरिक्षं। शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत। पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्। तथा लोकाꣳ अकल्पयन्। वेदाहमेतं पुरुषं महांतं। आदित्यवर्णं तमसः तुपारे। सर्वाणिरूपाणि विचित्यधीरः। नामानिकृत्वाभिवदन्यदास्ते। धातापुरस्ताद्यमुदाजहार। शक्रः प्रविद्वान्प्रदिशश्चतस्त्रः। तमेवं विद्वानमृत इह भवति। नान्यः पंथा अयनाय विद्यते। यज्ञेन यज्ञमयजंतदेवाः। तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। ते ह नाकं महिमानः सचंते। यत्र पूर्वे साध्याः संति देवाः। पुरुषः पुरोग्रतोऽ जायत कृतो कल्पयन्ना संद्वेच॥ २॥

जो सहस्रों सिर वाले, सहस्रों नेत्र वाले और सहस्रों चरण वाले विराट् पुरुष हैं, वे सारे ब्रह्माण्ड को आवृत करके भी दस अंगुल शेष रहते हैं। जो सृष्टि बन चुकी, जो बनने वाली है, वह सब विराट् पुरुष ही हैं। इस अमर जीव-जगत् के भी वे ही स्वामी हैं, जो अन्न द्वारा वृद्धि प्राप्त करते हैं, उनके भी वे ही स्वामी हैं। चार भागों वाले विराट् पुरुष के एक भाग में जड़-चेतनरूप यह सम्पूर्ण संसार विविध रूपों में समाहित है। इसके शेष तीन भाग अनन्त अन्तरिक्ष में समाये हुए हैं। उस विराट् पुरुष से यह विराट् ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ। उस विराट् ब्रह्माण्ड में समाहित विराट् पुरुष से समष्टि जीव उत्पन्न हुए। वही देहधारी रूप में सर्वश्रेष्ठ हुआ, जिसने पहले पृथिव्यादि लोकों को तथा पश्चात् चार प्रकार के शरीरधारी प्राणियों को उत्पन्न किया। जब देवों ने उस विराट् पुरुष को हवि मानकर यज्ञ का शुभारम्भ किया, तब वसन्त ऋतु घृत, ग्रीष्म ऋतु समिधा एवं शरद् ऋतु हवि हुई। देवों ने जिस यज्ञ का विस्तार किया, उसमें विराट् पुरुष को ही हव्य-पशु की भावना से यूप में बाँधा गया तथा उस यज्ञ में यज्ञ की सात परिधियाँ एवं इक्कीस समिधाएँ हुईं। मन्त्र-द्रष्टा ऋषियों एवं योगाभ्यासियों ने सर्वप्रथम प्रकट हुए उस विराट् पुरुष को यज्ञ में अभिषिक्त करके उस परम पुरुष से ही यज्ञ का प्रादुर्भाव किया। उस सर्वश्रेष्ठ प्रकृति-यज्ञ से दधियुक्त घृत प्राप्त हुआ। उस विराट् पुरुष के द्वारा ही वायुदेव से सम्बन्धित पशु—हरिण, गौ, अश्वादि की उत्पत्ति हुई। उस विराट् यज्ञ-पुरुष से ऋग्वेद एवं सामवेद का प्राकट्य हुआ, उसी से यजुर्वेद एवं अथर्ववेद का प्रादुर्भाव हुआ। उस विराट् यज्ञ-पुरुष से दोनों तरफ दाँत वाले घोड़े आदि उत्पन्न हुए, उसी विराट् पुरुष से गौएँ, बकरियाँ एवं भेड़ें आदि पशु उत्पन्न हुए। संकल्प द्वारा प्रकट हुए जिस विराट् पुरुष का ज्ञानी-जन विविध प्रकार से वर्णन करते हैं। वे उसकी कितने प्रकार से कल्पना करते हैं? उसका मुख क्या है? भुजा, जंघाएँ और पाँव कौन से हैं? शरीर-रचना में वह पुरुष किस प्रकार पूर्ण बना? उस विराट् पुरुष का मुख ब्राह्मण (ज्ञानीजन) हुए, क्षत्रिय (पराक्रमी व्यक्ति) उसके शरीर में विद्यमान बाहुओं के समान हैं। वैश्य अर्थात् पोषण शक्ति सम्पन्न व्यक्ति उसकी जंघाएँ एवं शूद्र (सेवाधर्मी व्यक्ति) उसके पैर हुए। विराट् पुरुष के मन:संस्थान से चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई। उसके नेत्र से सूर्य का प्रादुर्भाव हुआ। मुख से इन्द्र एवं अग्निदेव की उत्पत्ति हुई। उसके प्राण से वायु का जन्म हुआ। नाभि से अन्तरिक्ष बना। सिर से आकाश का सृजन हुआ। पैरों से भूमि तथा श्रोत्र से दिशाएँ बनीं। उसी प्रकार लोकों की रचना की गई। सूर्य के समान तेजस्वी, अन्धकार से सर्वथा-रहित वह विराट् पुरुष है। उपासक-आराधक को उसे अवश्य जानना चाहिए।

मेधावी विधाता ने विविध रूपों में विश्व का श्रेष्ठ चयन किया, प्रत्येक पदार्थ का एक विशिष्ट नामकरण भी किया तथा इन्द्र के सम्मुख प्रस्तुत किया। इसी के कारण इन्द्र चारों दिशाओं में प्रकृष्ट विद्वान् हुए। इस रहस्य को जो धीर उपासक जान लेता है, वह अमृतत्व को प्राप्त कर लेता है। इस ज्ञान के अतिरिक्त मुक्ति की प्राप्ति का अन्य उपाय नहीं है। आदिकालीन विद्वानों ने यज्ञ द्वारा ही विराट् यज्ञ-पुरुष का यजन किया था। यज्ञीय जीवन जीने वाले साधक पूर्वकाल के सिद्ध साध्यगणों तथा देवताओं के निवास स्थान महिमाशाली स्वर्गलोक को प्राप्त करते हैं। सर्वप्रथम वह विराट् यज्ञ-पुरुष ही प्रकट हुआ था। (उसकी) कल्पनानुसार ही सब कुछ भली प्रकार रचा गया और स्थिरता को प्राप्त हुआ॥ २॥

अद्भ्यः संभूतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्त्तताधि। तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति। तत्पुरुषस्य विश्वमाजानमग्रे। वेदाहमेतं पुरुषं म आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विद्वानमृत इह भवति। नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय। प्रजापतिश्चरति गर्भे अंतः अजायमानो बहुधा विजायते। तस्य धीराः परिजानन्ति योनिं मरीचीनां पदमिछंति वेधसः यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः। पूर्वो यो देवेभ्यो जातः नमो रुचाय ब्राह्मये। रुचं ब्राह्मं जनयन्त। देवा अग्रे तदब्रुवन्। यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात् तस्य देवा असन्वशे। ह्रीश्चतेलक्ष्मीश्च पत्न्यौ। अहोरात्रे पार्श्वेनक्षत्राणिरूपं। अश्विनौव्यात्तं। इष्णन्निषाणअमुं मनिषाण सर्वलोक मनिषाण। ज्यायते वशे सप्त च॥ ३॥

सर्वप्रथम समस्त कर्म करने वाले परमात्मा ने पृथ्वी एवं जल की संरचना की। उस जलरूप रस (प्राणतत्त्व) से सृष्टि का निर्माण हुआ। मर्त्य को देवत्व प्रदान करते हुए वह विश्वरचयिता विश्व की संरचना करता है। सूर्य के समतुल्य तेजःसम्पन्न, अन्धकाररहित वह विराट् पुरुष है, जिसको जानने के पश्चात् साधक को मोक्ष की प्राप्ति होती है। मोक्ष प्राप्ति का यही मार्ग है, इससे भिन्न और कोई मार्ग नहीं है। प्रजापालक परमात्मा की सत्ता सम्पूर्ण पदार्थों में विद्यमान है, वह अजन्मा होते हुए भी अनेक रूपों में प्रकट होता है। उसकी कारण-शक्ति में सम्पूर्ण भुवन समाहित हैं। ज्ञानीजन उसके मुख्य स्वरूप को देख पाते हैं। देवसमुदाय में अग्रणी एवं उन्हें (देवों को) प्रकाशित करने वाले, जिनका प्राकट्य सभी देवों से पहले हुआ है, उन तेजसम्पन्न ब्रह्म को नमस्कार करते हैं। ब्रह्मज्ञानी विद्वानों का प्रारम्भिक कथन है कि जो प्रकाशमय ब्रह्म को प्रकट करने वाले ज्ञानी उसको (विराट् ब्रह्म को) जानते हैं, उनके अधिकार में समस्त देवशक्तियाँ रहती हैं। हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! सबको सम्पन्नता प्रदान करने वाली वैभवरूपी लक्ष्मी आपकी पत्नीस्वरूप हैं। पार्श्व (=अगल-बगल) रात्रि और दिन तथा नक्षत्र आपके रूप हैं। द्युलोक एवं पृथिवी आपके मुख-सदृश हैं। इच्छाशक्ति से सबकी इच्छाओं को पूर्ण करने में समर्थ हे परमेश्वर! कृपा करके हमारी उत्तम लोकों को प्राप्त करने की इच्छा पूर्ण करें। हम सात लोकों में (जहाँ भी रहें) श्रेष्ठ और जितेन्द्रिय होकर रहें॥ ३॥

भर्त्तासन्भ्रियमाणो बिभर्त्ति। एको देवो बहुधानिविष्टः। यदाभारं तंद्रयते सभर्त्तुं। निधायभारं पुनरस्तमेति। तमेव मृत्युममृतं तमाहुः। तं भर्त्तारं तमुगोप्तारमाहुः। सभृतोभ्रियमाणो बिभर्त्ति। य एनं वेदसत्येन भर्त्तुं सद्योजातमुतजहात्येषः। उतोजरंतंन जहात्येकं। उतोबहूनेकमहर्ज्जहार। अतंद्रोदेवः सदमेवप्रार्थः। यस्तद्वेदयत आबभूव। संधां चयाः संदधे ब्रह्मणैषः। रमते

तस्मिन्नृतजीर्णेशयाने। नैनं जहात्यहः सुपूर्व्येषु। त्वामापोऽनु सर्वाश्चरंतिजानतीः। वत्सं पयसापुनानाः। त्वमग्निःहव्यवाहःसमिंत्से। त्वं भर्त्तामातरिश्वा प्रजानां। त्वं यज्ञः स्त्वमुदेवासि सोमः। तवदेवाहवमायंति सर्वे। त्वमेकोसिबहुननुप्रविष्टः। नमस्तेऽअस्तु सुहवोमएधि। नमोवामस्तुश्रृणुतः हवंमे। प्राणापानावजिरः संचरंतौ। ह्वयामिवां ब्रह्मणातूर्त्तमेतं। योमांद्वेष्टितं जहितं युवाना। प्राणापानौ संविदानौजहितं। अमुष्या सुनामासंगसाथां। तं मे देवाब्रह्मणा-संविदानौ। वधायदत्तं ममहः हनामि। असज्जजानसतआबभूव। यं यं न जानसउगोपोऽअस्य। यदाभारंतंद्रयतेसभर्त्तुं। परास्यभारं पुनरस्तमेति। तद्वैत्त्वं प्राणोऽअभवः। महान्भोगः प्रजापतेः। भुजः करिष्यमाणः। यद्देवान्प्राणयोनव। एकं प्रजानां गसाथांनव॥ ४॥

चराचर जगत् का पालन करने वाला परमेश्वर स्वयं सर्वथा परिपूर्ण है, अतः वह सबका पालन-पोषण करता रहता है। वह प्रकाशमान परमात्मा स्वयं एक होकर भी अनेक रूपों में प्रविष्ट है। जब वह तन्द्रा ग्रस्त होता है, तब वह अपने भरण-पोषण के भार को छोड़कर अस्त हो जाता है। उसे ही ज्ञानीजन मृत्यु कहते हैं, उसे ही अमृत कहते हैं। उसे ही विश्व का पालक-रक्षक कहते हैं। वह स्वयं परिपूर्ण होकर ही विश्व का भरण-पोषण करता है। इस तथ्य को वही जानता है, जो सत्य का आश्रय ग्रहण करता है। यह आत्मतत्त्व समय-समय पर जन्म लेने वाले का त्याग कर देता है; किन्तु उस एक तत्त्व का त्याग नहीं करता है, जो कभी जीर्ण नहीं होता है। एक समय यह अनेकों का भी आहरण कर लेता है। यह सतत प्रकाशमान तत्त्व नित्य ही प्रार्थना करने योग्य है। यही सभी ज्ञानियों को तत्त्वज्ञान कराता हुआ आभासित होता है। यही ब्रह्मतत्त्व के साथ-सम्बन्ध जोड़ता हुआ स्थित है। उस चिरपुरातन आधार के साथ यही रमण करता हुआ प्रतीत होता है। सतत-प्रकाशमान भाग इसका कभी त्याग नहीं करता है। हे परमात्मन्! समस्त देवशक्तियाँ ज्ञानपूर्वक आपका ही अनुसरण करती हैं। यथा— धेनुएँ अपने दुग्ध से वत्स को सन्तृप्त करती हैं। (उसी प्रकार) हव्य को धारण कर निर्दिष्ट देवों तक ले जाने वाले अग्निदेव को आप ही प्रदीप्त रखते हैं। आप ही समस्त प्रजाओं के धारक एवं पालक हैं। हे देव! आप ही यज्ञस्वरूप हैं, आप ही सोमरूप हैं। आपके द्वारा ही समस्त देवगण आवाहित होकर यज्ञ में उपस्थित होते हैं। आप तो वस्तुतः एक ही हैं, तथापि अनन्त रूपों में प्रविष्ट दिखाई देते हैं। आपको हम नमन करते हैं। यह हमारा यज्ञावाहन श्रेष्ठता से सम्पन्न हो। कायरूपी प्रांगण में संचरण करने वाले हे प्राण एवं अपान! हम आपको नमन करते हैं, कृपया हमारे आवाहन को सुनिये। हम आप दोनों का सादर आवाहन कर रहे हैं, आप दोनों ही ब्रह्म के साथ शीघ्र आएँ। आप दोनों उसका विनाश कर देवें, जो हमसे द्वेष भाव रखता है। आप दोनों ज्ञानपूर्वक उसका हनन करें। अमुक के यशस्वी गुणीजनों की संगति सफल सिद्ध हो। ब्रह्म से सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर ये देववत् प्रकाशमान प्राण एवं अपान उस शत्रु का वध करने के लिए मुझे दे देवें, ताकि उसका वध किया जाए। उस सत् तत्त्व से ही असत् का भी जन्म होता है, जो सब ओर फैला हुआ है। वह जिस-जिस के विषय में सम्यक् ज्ञान नहीं रखता है, वही उसका रक्षक है। जब वह इस विश्वव्यवस्था के भार को वहन करने में वह उदासीन हो जाता है, तब इस भार को दूर रखकर वह अदृश्य हो जाता है। वह तुम्हीं तब प्राण हो जाते हो। प्रजापति के तुम्हीं महान् भोग हो। तुम्हें ही रक्षक बनाया जाता है। हे प्राण! आप ही देवों को शक्ति प्रदान करते हैं। एक ही प्राणतत्त्व प्रजाओं के साधन के लिए नौ पदार्थों में परिलक्षित होता है॥ ४॥

हरिꣳहरंतमनुयंतिदेवाः। विश्वस्येशानं वृषभंमतीनां। ब्रह्मसरूपमनुमेदमागात्। अयनंमाविवधीर्विक्रमस्व। माछिदोमृत्योमावधीः। मामेबलं विवृहोमा प्रमोषीः। प्रजां मामेरीरिष आयुरुग्र। नृचक्षसंत्वा हविषा विधेम। सद्यश्चकमानाय। प्रवेपानायमृत्यवे। प्रास्मा आशा अशृण्वन्। कामेना जनयन्पुनः। कामेनमेकाम आगात्। हृदयाद् हृदयं मृत्योः। यदमीषामदः प्रियं। तदैतूपमामभि। परं मृत्योऽअनुपरेहि पंथां। यस्तेस्वइतरोदेवयानात्। चक्षुष्मतेशृण्वते-तेब्रवीमि। मानः प्रजाꣳ रीरिषोमोतवीरान्। प्रपूर्व्यं मनसावंदमानः। नाधमानोवृषभं चर्षणीनां। यः प्रजानामेकराण्मानुषीणां। मृत्युं यजेप्रथमजामृतस्य। मृत्यवेवीराꣳ श्चत्वारि च॥ ५॥

देवगण विष्णु एवं शिव का ही अनुगमन करते हैं। विष्णु रूप से वह समस्त जगत् पर शासन करता है। शिवरूप में सम्पूर्ण स्तुतियों का वर्षण करने वाला है। ब्रह्म के सदृश विष्णु या शिव के तत्त्व को कोई भी साधक अपने भक्तिभाव के अनुरूप ही जान पाता है। हे विश्वात्मन् आदित्यदेव! आप अपनी अयन-गति विशेष को नष्ट न करें। इस विशेष गति की निरन्तरता सुरक्षित रखें। छिन्न-भिन्न न करें। हे संहार के देवता! आप संहार न करें। हे विधिवत् पूजित अग्निदेव! आप हमारे यज्ञीय साधनों में कमी न होने देवें। हे रुद्रदेव! आप हमारी सन्तानों की हिंसा न करें। हमारी आयु क्षीण न हो। हे परमात्मन्! हम यज्ञीय जीवन के द्वारा आपका यजन करें। हम अपने प्रबल मनोरथ की पूर्ति के लिए ही आपका यजन करते हैं, जिससे मृत्यु भी कंपायमान हो जाए। सभी दिशाएँ हमारे प्रबल संकल्प का श्रवण करें। बार-बार श्रेष्ठ कामनाएँ प्रकट होती रहें। उन्हीं श्रेष्ठ कामनाओं के साथ हमारे मनोरथ भी श्रेष्ठता की दिशा में अग्रसर होते रहें। हमारा हृदय मृत्यु के रहस्य को जान जाए। इन देवतत्त्वों को जो -जो अभीष्ट है, वह साधन हमारे सम्मुख प्रस्तुत हो जाए। हे श्रेष्ठ साधक मनुष्यो! आप मृत्यु से भी अगम्य-पन्थ को प्राप्त कीजिए। इस प्रकार आप जिस पथ का चयन करेंगे वह पथ देवयान-पथ से भी भिन्न ही होगा। हे सर्वद्रष्टा, हे सर्वान्तरयामिन् भगवान् रुद्र! हम आपसे विनम्र प्रार्थना करते हैं कि आप हमारी प्रजाओं की एवं हमारे वीर पुत्रों की हिंसा न करें। पूर्व से भी पूर्वतर, पूर्वतम परमात्म देव आदिपुरुष कहे गये हैं, हम मनुष्यों को मनोयोगपूर्वक उन्हीं की वन्दना करनी चाहिए। हमें कृषकों के कल्याण के लिए वर्षा हेतु पर्जन्य से प्रार्थना करनी चाहिए। मानवी प्रजाओं का पालन करने के कारण वर्षा करने वाला इन्द्र ही एकमात्र प्रशासक है। सवितृमण्डल मध्यवर्ती अमृतपुरुष जिस मृत्यु से आवृत है, हमें यज्ञ द्वारा उसी का यजन करना चाहिए। उसी दिव्य पुरुष के लिए ही चारों वेदों का विधान किया गया है॥ ५॥

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसिसूर्य। विश्वमाभासिरोचनं। उपयामगृहीतोसि सूर्यायत्वाभ्राजस्वत एष ते योनिः सूर्यायत्वाभ्राजस्वते॥ ६॥

हे सवितृदेव! आप संसार को तारने वाले, संसार के दर्शन योग्य और तेज के उत्पत्तिकर्त्ता हैं। आप संसार को अपनी तेजस्विता से प्रकाशित करने वाले हैं। आप नियमपूर्वक पात्र में ग्रहण किये गये हैं।
(हे हवि!) हम आपको तेजस्वी सूर्यदेव के लिए ग्रहण करते हैं। आपका यह आश्रय स्थान है। ज्योतिष्मान् तेजस्वी सूर्यदेव की प्रसन्नता के लिए आपको स्थापित करते हैं॥ ६॥

आप्यायस्वमदिंतमसोम विश्वाभिरूतिभिः। भवा नः स प्रथस्तमः॥ ७॥

हे अति आह्लादक सोम! आप अपने दिव्य गुणों की यशोगाथाओं से चतुर्दिक् व्यापक विस्तार को प्राप्त करें तथा हमारे विकास के निमित्त आप मित्र रूप में सहयोगी हों॥ ७॥

ईयुष्टे ये पूर्वतरामपश्यन्व्युछंतीमुषसंमर्त्यासः। अस्माभिरूनुप्रतिचक्ष्या भूदोते यंतियेऽअपरीषुपश्यान्॥ ८॥

जिन मनुष्यों ने भूमण्डल पर सर्वप्रथम उदीयमान उषा देवी का स्वागत किया, वे वस्तुतः बड़े ज्ञानी थे। वे ऋषि थे। हमें भी उन्हीं ऋषियों की तरह ज्ञानमयी उषा के दर्शन की प्रतीक्षा समय पर ही करनी चाहिए। जो मनीषी अन्तरिक्ष से उतरती हुई ब्रह्ममयी उषा का दर्शन करते हैं, वे ही अतीन्द्रिय ज्ञान से सम्पन्न होते हैं॥ ८॥

ज्योतिष्मतीं त्वासादयामि ज्योतिष्कृतं त्वासादयामि ज्योतिर्विदं त्वासादयामि भास्वतीं त्वासादयामि ज्वलंतीं त्वासादयामि मल्मलाभवंती त्वासादयामिदीप्यमानां त्वासादयामि रोचमानां त्वासादयाम्यजस्त्रां त्वासादयामि बृहज्ज्योतिषं त्वासादयामि बोधयंतीं त्वासादयामि जाग्रतीं त्वासादयामि। प्रयासाय स्वाहायासाय स्वाहा वियासायस्वाहा सं यासाय स्वाहोद्यासाय स्वाहावयासायस्वाहाशुचेस्वाहा शोकायस्वाहा तप्यत्वैस्वाहा तपते स्वाहा ब्रह्म हत्यायैस्वाहा सर्वस्मैस्वाहा॥ ९॥

हे ज्योतिष्मति उषा देवि! इस ज्ञानयज्ञ में हम आपको सादर स्थापित करते हैं। हे प्रकाश फैलाने वाली देवि! हम आपको सादर स्थान प्रदान करते हैं। हे प्रकाश के तत्त्व को जानने वाली, हम आपको सादर आसन प्रदान करते हैं। हे दिव्य प्रभा वाली देवि! हम आपको सादर विराजित करते हैं। हे प्रकाशमयी किरणों से जाज्वल्यमान देवि! हम आपका सादर स्वागत करते हैं। हे मन्द-मन्द प्रकाशवाली देवि! हम आपको स्थापित करते हैं। हे दीप्यमान स्वरूप वाली देवि! हम आपको सादर सुशोभित करते हैं। हे अजस्त्र ज्ञान का प्रकाश बरसाने वाली, हे अपनी ज्योति से विश्व को आवृत करने वाली, हे विश्व को प्रबुद्ध करने वाली, हे सतत जाग्रत् रहने वाली देवि! हम आपको यज्ञ में सादर स्थापित करते हैं। प्रयास देवता के निमित्त, आयास देवता के निमित्त, अवयास देवता के निमित्त, वियास देवता के निमित्त, शुच् देवता के निमित्त, शोक देवता के निमित्त ये आहुतियाँ समर्पित हैं। तप के निमित्त, संताप के निमित्त, ब्रह्महत्या शमन के निमित्त तथा सभी के हितार्थ ये आहुतियाँ समर्पित हैं॥ ९॥

चित्तः संतानेन भवं यक्नारुद्रं तनिम्नापशुपतिः स्थूल हृदयेनाग्निः हृदयेनरुद्रं लोहितेन शर्वं मतस्नाभ्यां महादेवंमतः पार्श्वेनौषिष्ठहनः शिंगीनिकोश्याभ्यां॥ १०॥

सन्तान से चित्त को, यकृत् से भव देवता को, तनिमा (दुबलेपन या सूक्ष्मता) से रुद्रदेवता को, स्थूल हृदय से पशुपति देवता को, हृदय से अग्निदेवता को, रक्त से रुद्रदेवता को, गुर्दों से शर्व देवता को, आन्तरिक पसलियों से महादेव को, हनु से वसिष्ठ को तथा हृदय कोशों से शिंगी देवों को प्रसन्न करते हैं॥ १०॥

चित्तमेकं चित्तिः पृथिव्यग्निः सूर्यं तेचक्षुर्महाहविर्होतावाग्घोता ब्राह्मण एक होग्निर्यजुर्भिः सेनेन्द्रस्य देवस्य सुवर्णं घर्मं सहस्त्रशीर्षाद्भ्योभर्त्ताहङ्कर तरणिराप्यायस्वेयुष्टेयेज्योतिष्मतीं।

अथस्वायचेत्तमेकविं शतिः। चित्तिरग्निर्यजुर्भिरंतः प्रविष्टः प्रजापतिः प्रजया संविदानास्तस्यधीरा ज्योतिष्मतीं त्रिपंचाशत्॥ तछंयोरावृणीमहे। गातुं०। गातुं०। दैवी०। स्वस्ति०। ऊर्ध्वं०। शंनो० शंच०दे०॥ ॐं शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

(निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि) सार्वभौम एकचित्त ही चित्ति है। पृथिवीरूपी अग्नि है। सूर्य ही आपका नेत्र है, जो सतत जाज्वल्यमान हविर्द्रव्य है। पुनश्च वाणी ही 'होता' है। ब्राह्मण ही वस्तुतः एकमात्र अग्नि है, याजुष मन्त्रों का जिसमें हवन किया जाता है। सहस्त्रशीर्ष (किरणों) से (विश्व का) भरण-पोषण करने वाला सविता देवता प्रकाशमान सेना और इन्द्रदेव के सुवर्णमय पात्र को जलों से आपूरित करता रहता है। हे सूर्यदेव! आप इन्द्रदेव को भूलोक पर वृष्टि करने के लिए जलों से आपूरित करें। जो मनीषी ज्योतिष्मती चिति शक्ति की आराधना करेंगे, वे ही मानव जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करेंगे।

इस प्रकार यह चिति उपनिषद् आत्मकल्याणकारक है। भगवान् प्रजापति यज्ञोपयोगी याजुष मन्त्रों के द्वारा चिति अग्नि के रूप में विश्व-ब्रह्माण्ड के अन्दर प्रविष्ट हो गये। दूरदर्शी विद्वान् परस्पर विचार-विमर्श करते हुए उसी ज्योतिष्मती विद्या की उपासना करते हैं। (उक्त मन्त्र में एकविंशति और त्रिपञ्चाशत् शब्द प्रयुक्त हैं, जिनका अर्थ क्रमशः इक्कीस एवं तिरपन है; किन्तु इसका प्रयोग यहाँ किस उद्देश्य से हुआ है, यह शोध का विषय है।) 'तछंयोरावृणीमहे......' आदि शान्ति मन्त्र है, जिसका अर्थ इसी उपनिषद् के प्रारम्भ में दिया जा चुका है।

॥ इति चित्युपनिषत्समाप्ता॥

॥ छागलेयोपनिषद् ॥

ॐ ऋषयो वै सरस्वत्यां सत्रमासत। तेऽथ कवषमैलूषं दास्याः पुत्र इति दीक्षाया आच्छिदन्। ते होचुः। अप वा एतदृग्यजुषादप साम्न इति। स होवाच। भगवन्तो यदिदं सत्रमाध्वै यदृचोऽधीध्वै यद्यजूंषि यत्सामानि कस्यायं महिमेति। ते होचुर्ब्राह्मणा वाव स्मस्तेषामेवमिति॥ १ ॥

एक बार सरस्वती (नदी) के तट पर ऋषियों ने सत्र किया। सत्र में वेदाध्ययन हेतु दीक्षा दी जाती है। वहाँ पर दासीपुत्र कवष ऐलूष भी वेदाध्ययनार्थ दीक्षा (उपनयन) हेतु उपस्थित हुआ। ऋषियों ने उसे दीक्षा (उपनयन) से वंचित कर दिया। ऋषियों ने कहा— यह दासीपुत्र है, अतः यह ऋग्वेद से, यजुर्वेद से तथा सामवेद से दूर ही रहेगा। तब कवष ऐलूष ने कहा— भगवन्! आप इस सत्र में बैठेंगे, ऋग्वेद का अध्ययन कराएँगे, यजुर्वेद तथा सामवेद का अध्ययन कराएँगे। यह किसकी महिमा है? तब वे ऋषि बोले, हम ब्राह्मण हैं। उन ब्राह्मणों की ही यह महिमा है॥ १ ॥

स होवाच। यदिदमिच्छाचिदिच्छाचिदीक्षध्वै किं तद्येन ब्राह्मण इति। ते होचुर्यदिदमृग्यजुषैरेवोपवत्वन्नो जुहुवुर्यद्वैनमुपाघ्रासिषुर्यदुपानेषतैतद्ब्राह्मणा इति। स हाविदूर एव शवशयितमात्रेयमच्छावदमुपदर्शयन्नुवाच। यदिदमृग्यजुषैरुपवत्वं जुहोपाघ्रासीदथोपानेष्ट नैतदत्यगादिति। किं तदिति होचुः॥ २ ॥

यह सुनकर कवष ऐलूष ने कहा— आप देख रहे हैं कि यह इच्छा चैतन्य हो रही है, यह इच्छा जाग्रत् हो रही है (वेदाध्ययन की), तब वह क्या है कि जिससे वह ब्राह्मण ही वेदाध्ययन कर सकता है। तब उन ऋषियों ने कहा— यह जो हमारी पात्रता है, वह ऋग्वेद-यजुर्वेद (के ज्ञान) से ही है। ऋग्वेद, यजुर्वेद के मन्त्रों से ही ब्राह्मणों ने यज्ञ किये थे, वे ही यज्ञों की दिव्य गन्ध का उपाघ्राण करते थे, वे ही वेदार्थ उपनयन संस्कार की दीक्षा देते थे, इसी से ब्राह्मण कहलाये। यह सुनकर उस कवष ऐलूष ने थोड़ी दूरी पर ही शव- शय्या पर सोये हुए आत्रेय-अच्छावद की ओर संकेत करते हुए कहा— इसने भी तो ऋग्यजुर्मन्त्रों का अध्ययन किया, यज्ञधूम्र का उपाघ्राण किया, वेदाध्ययनार्थ उपनयन संस्कार भी किया। क्या इसने नियमों का उल्लंघन नहीं किया? ऋषियों ने कहा— इससे क्या?॥ २ ॥

स होवाच। नैमिषेऽमी शुनकाः सत्रमासत। तेषामात्रेयोऽच्छावदः सर्वाण्येवावर्तयद्यद्याज्या यदनुवाक्या यत्प्रातरनुवाको यत्प्रउगं यदाज्यं यन्मरुत्वतीयमित्यथ यन्महावीरसंभरणानि यदग्नेरभिवर्तनानि यद्राजाभिक्रयणानि यदभिषावित्राणि यदौपयामानि यदुपमन्त्रणान्यथ यत्त्रिवृत्पञ्चदशः सप्तदश एकविंश इति। क्वास्य तदगादिति। तेहामुहन्। अथैते सर्वएवोपसमेत्योचुरुप नो नयस्वेम एव त इति। स ह स्मयमान उवाच। संपश्यध्वा एव मा प्रमदत। न होत्तमानधम उपनेतेति। ते होचुर्मैव स्मोपनथा गतिस्तु त्वमिदिति॥ ३ ॥

उसने कहा— एक बार नैमिषारण्य में सम्पन्न हुए सत्र में शुनक सम्मिलित हुए। तब वहाँ पर आत्रेय अच्छावद ने याज्या, अनुवाक्या, प्रातरनुवाक, प्रउग, आज्य, मरुत्वतीय, महावीर संभरण, अग्नि का अभिवर्तन, राजाभिक्रयण, अभिषावित्र, औपयाम, उपमन्त्रण, त्रिवृत् पंचदश, सप्तदश, एकविंश इत्यादि सभी का आवर्तन किया था। इनका वह ज्ञान कहाँ चला गया। वे मुग्ध हो गये। तब ये सभी इकट्ठे होकर कहने लगे, हमें दीक्षार्थ स्वीकार करिए। ये ही वे हैं। वह मुस्कराते हुए बोला— ध्यान से देखिए, गलती मत करिए। उत्तमजनों को अधम पुरुष दीक्षा नहीं देता। उन्होंने कहा— ऐसा मत कहिए। हमें दीक्षा दीजिए। आप ही एकमात्र हमारे लक्ष्य हैं॥ ३॥

स होवाच। कुरुक्षेत्र एवोपसमेत्य ये बालिशास्तानुपाध्वै। ते व इदं प्रवक्ष्यन्तीति। ते ह तत एवोपसमेत्य कुरुक्षेत्रमुपजग्मुः। ते ह बालिशानेवोपासदन्। तानिम उपसीदत एव विदांचक्रुरिति कामुका इति। ते होचुर्यत्किमिव बालिशानुपासदत महाशाला वै महाश्रोत्रिया वर्षीयांसः सन्तः यन्महाशाला महाश्रोत्रिया वर्षीयांसः कुरुक्षेत्रमध्यासत इति। ते हान्योन्यस्याभिसमीक्षामासुः। ते हापश्यन्न हास्मान्मिथुचिदेवासाववोचद्बालिशानेव चैतान्विचक्षतेति। ते होचुर्नमस्यानतीव वचो रेचयिष्यथ यदन्तर्नोऽसाविह प्राहैयात्। यथैव तु स्मोपसन्ना अथानसूयवो यथोपश्रद्धिन इति॥ ४॥

तब उसने कहा— आप सब मिलकर कुरुक्षेत्र जाइए। वहाँ पर जो बालिश (समस्या सुलझाने वाले- बुझक्कड़) हैं, उनसे प्रार्थना कीजिए, वे ही विशेष प्रकार से यह सब बताएँगे। तब वे सब मिलकर कुरुक्षेत्र पहुँचे। वहाँ पहुँचकर वे बालिशों के पास गये। जब ये उनसे मिलने गये, तभी उन्हें (बालिशों को) विदित हो गया कि ये कामना लेकर आये हैं। ये कामुक हैं। तब उन बालिशों ने उनसे कहा— आप तो स्वयं ही विशाल पाठशालाओं वाले, महाश्रोत्रिय तथा अनुभववृद्ध हैं, फिर यहाँ बालिशों को सम्मान देने क्यों आये हैं? उत्तर में उन्होंने कहा— ऐसे महाश्रुत, महाश्रोत्रिय, अनुभववृद्ध तो कुरुक्षेत्र में ही रहते हैं। इस प्रकार वे दोनों संघ परस्पर (एक दूसरे की) प्रशंसा करने लगे। तब उन्होंने देखा— हमसे उसने मिथ्या नहीं कहा था कि आप बालिशों के पास जाकर उन्हीं से प्रश्न पूछो। तब उन्होंने कहा— आप अत्यन्त पूज्य हैं, क्या हमारे वचन (प्रश्न) खाली ही रखेंगे, उत्तर नहीं देंगे? जो (क्योंकि) उसने (कवष ऐलूष ने) हमको यहाँ आपके पास भेजा है। जैसे भी हैं, हम उपस्थित हैं, वास्तव में हम असूयारहित तथा श्रद्धावनत हैं। (अतः हमारे प्रश्नों का समाधान करें)॥ ४॥

ते होचुः। किं वा अस्मत्प्रतीच्छथेति। ते होचुः। नैमिषेऽमी शुनकाः सत्रमासत। तेषामात्रेयोऽच्छावदः। सर्वाण्येवावर्तयत्। यद्याज्या यदनुवाक्या यत्प्रातरनुवाको यत्प्रउगं यदाज्यं यन्मरुत्वतीयमित्यथ यन्महावीरसंभरणानि यदग्नेरभिवर्तनानि यद्राजाभिक्रयणानि यदभिषावित्राणि यदौपयामानि यदुपमन्त्रणान्यथ यत्त्रिवृत्पंचदशः सप्तदश एकविंश इति। क्वास्य तदगाद्यदयं शवशयितमशयिष्टेति। ते होचुर्नहासंवत्सरवासिनामनुब्रूयादिति खलु नः पूर्वेऽन्वशिषन्। यत्संवत्सरं वत्स्यथाथ वेदिष्यथेति। ते ह संवत्सरमूषुः॥ ५॥

तब बालिशों ने कहा— हमसे क्या लेना चाहते हो? उन्होंने कहा— नैमिषारण्य में इन शुनकों ने यज्ञ किया था। उनमें आत्रेय अच्छावद भी थे। उन्होंने- याज्या, अनुवाक्या, प्रातरनुवाक, प्रउग, आज्य, मरुत्वतीय,

महावीर संभरण, अग्नि का अभिवर्तन, राजाभिक्रयण, अभिषावित्र, औपयाम, उपमन्त्रण, त्रिवृत् पंचदश, सप्तदश, एकविंश आदि सभी का पूर्ण आवर्तन किया था। उनका वह सब कहाँ चला गया, जो अब ये शव पर शयन कर रहे हैं। तब उन्होंने कहा कि हमें हमारे गुरुजनों ने यह शिक्षा दी है कि जो एक संवत्सर तक यहाँ तुम्हारे पास निवास न करे, उसे यह रहस्य नहीं बताओगे। अत: यदि एक संवत्सर तक यहाँ रहोगे, तो सब जान जाओगे। तब उन्होंने एक संवत्सर तक वहीं निवास किया था॥ ५ ॥

ततो ह बालिशा ऊचुरवात्त वा संवत्सरमिमे ब्राह्मणाः। हन्तैषामनुब्रवामेति। ते ह गृहीत्वैवैनान् पथोऽभिसमीयुः। ते ह संक्रीडत एव कूबरिणो रथकट्यामविन्दन्। ते होचुः संपश्यध्वमिति। किं हीति। कूबरिणमेव सौम्या इति। तथेति। कथमिवेति। यथैवोपसृत्वरो वार्धिस्तिर्यगुल्ललन्तीभिरिव वीचिभिः शफाभिरेवोपस्कन्दन्नुत्प्लवेदेवं हैवैषोभिसृत्वराणामेव धुर्याणां चंक्रमतामरीणामुत्प्लवतीति। यथैवासौ प्रतिसृत्वरेण समः समेव क्रीडेदेवं हैष संक्रीडतीति। यथैवासावितश्चेतोऽमुतश्चामुतश्च संप्रद्रवत इवोपशुष्यत इवोपस्कन्दमभिमृद्नात्य-भिपातयेदेवं हैष इतश्चेतश्चामुतश्च संप्रद्रवत इवोपशुष्यत इवोपस्कन्दमभिमृद्नात्यभिपातयति। यथैवासौ राजानं वा राजपुरुषं वा निलयनं प्रापयेदेवं हैवैष यन्ता निलयनं प्रापयतीति। ते होचुरपीदं साधीय इति। साधीय इति होचुः। ते ह तस्यैव पन्थानमनुप्रातिष्ठन्नन्तं ह सायाहन्येवोपसंपादयामासुः॥ ६ ॥

तब बालिशों ने कहा कि ये ब्राह्मण एक संवत्सर (वर्ष) तक यहाँ रहे। अत: अब हमें इनको अनुवचन (व्याख्यान) करना चाहिए। तब वे उन्हें लेकर मार्ग में पहुँचे। वहाँ पथ में उन्होंने रथकटी में खेलते हुए कूबरों (गाड़ी की बल्ली जिसमें जुआ बाँधा जाता है) को देखा, फिर वे बोले- इन्हें भली प्रकार देखो। उन्होंने कहा— क्या देखें? उत्तर मिला— हे सौम्यजनो! कूबरों को (देखो)। ठीक है। किस प्रकार से? जैसे ज्वार आने पर समुद्र, अपनी ऊपर उछलती हुई लहरों से खुरों की तरह भूमि की ओर आक्रमण करता है। इसी प्रकार यह समुद्र आगे बढ़ती हुई चक्राकार घूमती हुई (गाड़ी के पहिये की तरह) नाभि (धुरी) में लगी हुई अरियों से मानो पृथ्वी पर आक्रमण कर रहा है। जिस प्रकार यह सामने से आते हुए प्रवाह के साथ क्रीड़ा करता है, उसी प्रकार यह कूबरी खेल रही है। जैसे ही यह इधर-उधर से दौड़कर आता है, वापस लौट जाता है। फिर आक्रमण करता है, रौंद देता है, सामने के आक्रमण को दबा देता है, गिरा देता है। जिस प्रकार यह राजा को या राजपुरुष को शरणगृह पहुँचाता है, वैसे ही यह सारथि भी अतिथियों को आवास स्थान पर पहुँचा देता है। वे बोले क्या यह ठीक है? उन्होंने कहा— यह ठीक है। वे भी उसी के मार्ग पर चलते हुए अन्त में सन्ध्या होते-होते वहाँ पहुँच गये॥ ६ ॥

तं यदावसायाश्वांस्तक्षापोह्यापागादथ बालिशा व्यलिप्सन्त। अदीदृशत्। कथमिवेति। ते होचुर्यथैतं काष्ठभारमानद्धमनुपश्यामस्तथैवावशो भूस्थः स्पन्दते। नेङ्गते न विवर्तते न च वीत इति। ते ह बालिशा ऊचुर्यदयमीदृगभूत् किमस्यापागादिति। तक्षैवेति। तथैवैतत् सौम्या इति। आत्मा वा अस्य प्रचोदयिता करणान्यश्वाः शिरा नद्ध्योऽस्थीन्युपग्रहा असृगाञ्जनं कर्म प्रतोदो वाक्यं क्वाणनं त्वगुपानह इति। स यथा प्रचोदयित्रापोज्झितो नेङ्गेन्न रुरुवीतैवं हैष प्राज्ञेनात्मनापोज्झितो

न ब्रूते न चैत्यपि न श्वसत्यपि पूयत्यपि श्वान उपधावन्त्यपि काकाः पतन्त्यपि गृध्रा आस्कन्दन्नपि शिवा जिघत्सन्निति। ते तत एव द्रागिव व्यज्ञासिषुः। ते ह पादयोरेवाभिमर्श्य बालिशानूचुः। न ह वाव नस्तद्येन निष्कुर्म इममेवेत्यञ्जलिं कृत्वोपा-स्थिषतेत्याह भगवान् छागलेयः॥ ७॥

इमे श्लोकाः - यथैतत्कूबरस्तक्ष्णापोज्झितो नेङ्गते मनाक्।
परित्यक्तोऽयमात्मा नस्तद्वद्देहो विरोचते॥ १॥
यदस्यप्रधयश्चक्रा युगमक्षो वरत्रिका।
प्रतोदश्चर्मकील ....॥ २॥

जब तक्षा (बढ़ई) अश्वनिर्माण कार्य समाप्त कर उन्हें दूर हटाकर वहाँ से चला गया, तब बालिश उसे चाटने लगे। (उस स्थिति को) दिखाया। यह सब कैसे? उन्होंने कहा— जिस प्रकार हम बँधे हुए इस लकड़ी के गट्ठे (भार) को देख रहे हैं। उसी प्रकार वह पृथ्वी पर पड़ा हुआ है; न तो हिलता है, न इधर-उधर पलटता है और न सरकता ही है। उन बालिशों ने कहा— यह जो ऐसा निष्क्रिय हो गया, बताइए इसका क्या चला गया? तक्षा (बढ़ई) तो गया है न। उसी प्रकार हे भद्रपुरुषो! यह (शरीर) है। आत्मा ही इसको प्रेरणा देने वाला है। इन्द्रियाँ अश्व हैं, शिराएँ नाड़ियाँ हैं, हड्डियाँ उपग्रह हैं, असृग् (रक्त) ही आञ्जन है, कर्म ही चाबुक हैं, वचन ही ध्वनि है, त्वक् ही आवरण (उपानह) हैं। वह (शरीर) जैसे प्रेरणाप्रदाता (जीवात्मा) से त्याग दिया जाता है, छोड़ दिया जाता है, तब न हिलता-डुलता है, न ध्वनि करता है, उसी प्रकार प्राज्ञ आत्मा से छोड़ दिये जाने पर, न तो यह बोलता है, न चलता है, न श्वास लेता है, न मल त्यागता है, भले ही इस पर कुत्ते आक्रमण करें, चाहे कौए नोंचते रहें, चाहे सियारिनियाँ मांस खाने लगें, चाहे गिद्ध आक्रान्त करें। यह सुनकर वे एकदम समझ गये। वे चरण स्पर्श कर बालिशों से कहने लगे— हम यही निष्कर्ष निकालते हैं, इस प्रकार हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे। भगवान् छागलेय (सनत्कुमार जी) ने इसीलिए कहा है-

जिस प्रकार तक्षा (बढ़ई) के चले जाने पर, गाड़ी का यह कूबर हिलता-डुलता भी नहीं है, उसी प्रकार आत्मा के चले जाने पर, हमारा शरीर भी निष्क्रिय निस्पन्द हो जाता है। यद्यपि गाड़ी के पहिये, जुआ, धुरा, जोत, चाबुक, कीलें वैसे ही हैं, तथापि सारथि के बिना वह निष्क्रिय ही रहती है॥

॥ इति छागलेयोपनिषत् समाप्ता ॥

॥ तत्त्वोपनिषद्॥

श्री गणेशाय नमः। चिन्मयं व्यापितं सर्वमाकाशं जगदीश्वरं॥ निर्विकल्पं स्वयं ब्रह्मतस्याहं पञ्चमाश्रमम्॥ १॥ निराकारं निराभासं निरालंबं निरंजनम्॥ निःशब्दं उच्यतेब्रह्मतस्याहं पञ्चमाश्रमम्॥ २॥ ब्रह्मचारीगृहस्थस्य वानप्रस्थोयतीश्वरः॥ आश्रमानां च भिन्नोऽहं तस्याहं पञ्चमाश्रमम्॥ ३॥ आश्रमानां च सर्वेषां अस्तिनास्तीतिचात्मनि। भिन्नाभिन्नं न पश्यंति तस्याहं पञ्चमाश्रमम्॥ ४॥ आब्रह्मस्तंबपर्यंतंसंपूर्णपरमात्मनि। भिन्नाभिन्नं न पश्यंति तस्याहं पञ्चमाश्रमम्॥ ५॥ मनस्थंमनमध्यस्थं मनमायाविवर्जितम्॥ मनेनमनमालोक्यं तस्याहं पञ्चमाश्रमम्॥ ६॥ आगोचरं यदालीनंयस्यदेहेविलीयते॥ निवर्तन्तेक्रियासर्वतस्याहं पञ्चमाश्रमम्॥ ७॥ स्वयंदातास्वयंभोक्तास्वयंदेवोमहेश्वरः॥ निर्विकल्पंस्वयंब्रह्मतस्याहं पञ्चमाश्रमम्॥ ८॥ निरालंबं पदंप्राप्तं यत्र ज्योतिलयंगता॥ निवर्तन्तेइंद्रियासर्वेतस्याहं पञ्चमाश्रमम्॥९॥ क्वचिद्योगी क्वचित् भोगी क्वचित्नग्न पिशाचवत्॥ स्वयमात्मातत्त्वरूपेणतस्याहं पञ्चमाश्रमम् ॥ १०॥ अभिन्नमात्मनोरूपंजगदेकचराचरं॥ निर्विकल्पं स्वयंब्रह्मतस्याहं पञ्चमाश्रमम्॥११॥ आत्मज्ञानविनायोगीब्रह्मचारी कथं भवेत्॥ गृही वा वानप्रस्थो वा यतीयोगविना नहि॥१२॥ इति श्रीदत्तात्रेय विरचिता तत्त्वोपनिषत् संपूर्णा॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ चिन्मय ब्रह्म ही जो, निर्विकल्प, समस्त आकाश को जिसने व्याप्त किया है, जो जगत् का ईश्वर है, वही पञ्चम आश्रम है॥ १॥ वह निराकार है, आभास रहित है, आलम्बन रहित है तथा निरञ्जन है। वह शब्द रहित है तथा वही पञ्चम आश्रम है॥ २॥ ब्रह्मज्ञाता अनुभव करता है कि मैं न ब्रह्मचारी हूँ, न गृहस्थ हूँ, न वानप्रस्थ अथवा संन्यासी ही हूँ वरन् मैं इन आश्रमों से पृथक् पञ्चम आश्रम हूँ॥ ३॥ अन्य सभी आश्रमों में अस्ति, नास्ति के भेद हैं, किन्तु आत्मा में कोई भिन्न या अभिन्न नहीं है। अतः जहाँ भिन्नता नहीं है, मैं वही पञ्चमाश्रम हूँ॥ ४॥ जो परमात्मा में लीन हैं, वे ब्रह्म से लेकर ठूँठ तक में कोई भिन्नता नहीं देखते। इसी से ब्रह्म में लीन होना यह पञ्चम आश्रम है॥ ५॥ मन में स्थित है अथवा मन की माया मुक्त है, एकाग्र मन से देखने योग्य जो तत्त्व है, वह पञ्चम आश्रम है॥ ६॥ जितने भी गोचर पदार्थ हैं, जिसके देह में ये सब लीन हो जाते हैं तथा सारी क्रियाएँ जहाँ से लौट आती हैं वह पञ्चम आश्रम मैं हूँ॥ ७॥ वह स्वयं दाता है, स्वयं भोक्ता है, स्वयं ही महेश्वर देव है। वह निर्विकल्प ब्रह्म ही पञ्चम आश्रम है॥ ८॥ निरालम्ब पद को प्राप्त करके, जहाँ ज्योति लय को प्राप्त हो जाती है, जहाँ से इन्द्रियाँ और उनकी क्रियाएँ लौट आती हैं, वह पञ्चम आश्रम मैं हूँ॥ ९॥ ऐसा तत्त्वदर्शी कहीं योगी है, कहीं भोगी है, कहीं पिशाच की भाँति नंगा है; किन्तु वह तत्त्व रूप से आत्मा है। वही पञ्चम आश्रम है॥ १०॥ जो चराचर जगत् में व्याप्त है, वह आत्मा से अभिन्न है, वह निर्विकल्प ब्रह्म है। वही पञ्चम आश्रम है॥ ११॥ आत्मज्ञान के बिना योगी ब्रह्मचारी किस प्रकार हो सकेगा? अथवा वानप्रस्थ बिना यति योग के उस आत्मतत्त्वरूप पञ्चम आश्रम को कैसे प्राप्त करेगा?॥ १२॥

॥ इति दत्तात्रेय विरचिततत्त्वोपनिषत् समाप्ता॥

॥ तारसारोपनिषद्* ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

ॐ शान्तिःशान्तिःशान्तिः॥

बृहस्पतिरुवाच याज्ञवल्क्यं यदनु कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम्॥ १॥

हरिः ॐ। देवाचार्य बृहस्पति ने याज्ञवल्क्य से कहा— यह जो कुरुक्षेत्र है, यह देवों (ऋत्विजों) का देवार्चन का स्थान है, यही सभी प्राणियों का ब्रह्म (ज्ञान) प्राप्ति का स्थान है॥ १॥

तस्माद्यत्र क्वचन गच्छेत्तदेव मन्येतेतीदं वै कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम्। अत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे येनासावमृतो भूत्वा मोक्षी भवति तस्मादविमुक्तमेव निषेवेताविमुक्तं न विमुञ्चेत्॥ २॥ एवमेवैष भगवन्निति वै याज्ञवल्क्यः॥ ३॥

अतएव जहाँ कहीं भी जाएँ यही मानना चाहिए कि यह जो अविमुक्त कुरुक्षेत्र है, यह सभी यज्ञकर्त्ता विद्वानों का देवयजन (देवों हेतु यज्ञ स्थल) तथा सभी प्राणियों का ब्रह्मप्राप्ति का स्थान है। यहाँ प्राणी के प्राणों का उत्क्रमण (शरीर से बहिर्गमन) होने के समय भगवान् रुद्र तारकब्रह्म का उपदेश करते हैं, जिससे वह अमृतरूप होकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है; इसलिए विद्वान् को अविमुक्त (सुनिश्चित रूप से चुना हुआ) क्षेत्र का ही सेवन करना चाहिए। अविमुक्त क्षेत्र को कभी छोड़ना नहीं चाहिए। याज्ञवल्क्य जी ने कहा— हाँ, भगवन्! यह कुरुक्षेत्र ऐसा ही है॥ २-३॥

अथ हैनं भारद्वाजः पप्रच्छ याज्ञवल्क्यं किं तारकं किं तारयतीति॥ ४॥

एकबार महर्षि भारद्वाज ने याज्ञवल्क्य जी से पूछा— तारक क्या है? वह क्या तारता है?॥ ४॥

स होवाच याज्ञवल्क्यः— ॐ नमो नारायणायेति तारकं चिदात्मकमित्युपासितव्यम्। ओमित्येकाक्षरमात्मस्वरूपम्। नम इति द्व्यक्षरं प्रकृतिस्वरूपम्। नारायणायेति पञ्चाक्षरं परब्रह्मस्वरूपम्। इति य एवं वेद सोऽमृतो भवति। ओमिति ब्रह्मा भवति नकारो विष्णुर्भवति मकारो रुद्रो भवति नकार ईश्वरो भवति रकारोऽण्डविराड् भवति यकारः पुरुषो भवति णकारो भगवान् भवति यकारः परमात्मा भवति। एतद्वै नारायणस्याष्टाक्षरं परमपुरुषो भवति॥ ५॥

---

* इसे 'तारकोपनिषद्' भी कहते हैं।

तब याज्ञवल्क्य जी ने कहा— 'ॐ नमो नारायणाय' यही चिदात्मक तारक है, इसी की उपासना करनी चाहिए। 'ॐ' यह आत्मस्वरूप एकाक्षर है। 'नमः' ये दो अक्षर प्रकृति-स्वरूप हैं। 'नारायणाय' ये पाँच अक्षर परब्रह्म-स्वरूप हैं। जो इस प्रकार जानता है, वह अमृतरूप हो जाता है। वह ॐ इत्येकाक्षर ब्रह्मरूप हो जाता है। नकार विष्णुरूप होता है। मकार रुद्ररूप होता है। नकार ईश्वररूप है। रकार विराट् अण्ड (ब्रह्माण्ड) रूप होता है। यकार पुरुषरूप है। णकार भगवान् होता है। यकार परमात्मा होता है। जो नारायण के इस अष्टाक्षर मन्त्र को जानता है, वह परमपुरुष हो जाता है॥ ५॥

॥ इति ऋग्वेदः प्रथमः पादः ॥

ॐ इत्येतदक्षरं परं ब्रह्म। तदेवोपासितव्यम्। एतदेव सूक्ष्माष्टाक्षरं भवति। तदेतदष्टात्मकोऽष्टधा भवति। अकारः प्रथमाक्षरो भवति। उकारो द्वितीयाक्षरो भवति। मकारस्तृतीयाक्षरो भवति। बिन्दुस्तुरीयाक्षरो भवति। नादः पञ्चमाक्षरो भवति। कला षष्ठाक्षरो भवति। कलातीता सप्तमाक्षरो भवति। तत्परश्चाष्टमाक्षरो भवति। तारकत्वात्तारको भवति। तदेव तारकं ब्रह्म त्वं विद्धि। तदेवोपासितव्यम्॥ १॥

ॐकार ही अक्षर ब्रह्म है। उसी की उपासना कर्त्तव्य है। यही अष्टाक्षर मंत्र का सूक्ष्म रूप है। अतः यही अष्टात्मक अक्षर आठ प्रकार का होता है। अकार प्रथमाक्षर होता है। उकार द्वितीयाक्षर है। मकार तृतीय अक्षर होता है। बिन्दु चतुर्थ अक्षर होता है। नाद पञ्चम अक्षर कहलाता है। कला छठा अक्षर कहलाती है। कलातीता सप्तम अक्षर कही जाती है। इसी प्रकार कलातीत से पर अष्टम अक्षर माना गया है। तारकत्वगुण होने से इसे तारक कहा गया है। इसी को तुम तारकब्रह्म जानो। इसी की उपासना करनी चाहिए॥ १॥

अत्रैते श्लोका भवन्ति-

इस विषय में कतिपय श्लोक हैं, जिनका भावार्थ यह है—

अकारादभवद्ब्रह्मा जाम्बवानितिसंज्ञकः। उकाराक्षरसंभूत उपेन्द्रो हरिनायकः॥ २॥
मकाराक्षरसंभूतः शिवस्तु हनुमान् स्मृतः। बिन्दुरीश्वरसंज्ञस्तु शत्रुघ्नश्चक्रराट् स्वयम्॥३॥

अकार से जाम्बवान् संज्ञक ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उकाराक्षर से उपेन्द्र नामक हरि उत्पन्न हुए। मकार अक्षर से उत्पन्न शिव ही हनुमान् कहे जाते हैं। बिन्दु ईश्वर नामक शत्रुनाशक चक्रवर्ती है॥ २-३॥

नादो महाप्रभुर्ज्ञेयो भरतः शङ्खनामकः। कलायाः पुरुषः साक्षाल्लक्ष्मणो धरणीधरः॥ ४॥
कलाऽतीता भगवती स्वयं सीतेति संज्ञिता। तत्परः परमात्मा च श्रीरामः पुरुषोत्तमः॥५॥

नाद को शंख नामक भरत (पोषक) महाप्रभु समझना चाहिए। कला से धरणीधर साक्षात् लक्ष्मण उत्पन्न हुए। कलातीता स्वयं सीता-संज्ञक पराशक्ति है। कलातीत से परे पुरुषोत्तम श्रीराम स्वयं परमात्मा हैं॥ ४-५॥

ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वम्। तस्योपव्याख्यानं भूतं भव्यं भविष्यद्यच्चान्यत् तत्त्वमन्त्रवर्ण-देवताछन्दोऋक्कलाशक्तिसृष्ट्यात्मकमिति। य एवं वेद॥ ६॥

ॐकार अक्षर ही सब कुछ है। उसी की व्याख्या में भूत, भविष्य, भव्य (वर्तमान) तथा जो कुछ भी तत्त्व, मन्त्र, वर्ण, देवता, छन्द, ऋचाएँ, कलाएँ, शक्तियाँ एवं सृष्ट्यादि हैं, वे सभी सम्मिलित हैं। जो इस प्रकार जानता है (वह ॐकाररूप परमात्मा को प्राप्त करता है।)॥ ६॥

॥ इति यजुर्वेदो द्वितीयः पादः॥

अथ हैनं भारद्वाजो याज्ञवल्क्यमुवाच— अथ कैर्मन्त्रैः परमात्मा प्रीतो भवति स्वात्मानं दर्शयति तन्नो ब्रूहि भगव इति॥ १॥

तदनन्तर भारद्वाज जी ने याज्ञवल्क्य जी से कहा— हे भगवन्! आप कृपा करके बताइए कि किन मन्त्रों से परमात्मा प्रसन्न होता है और अपना स्वरूप प्रकट कर देता है॥ १॥

स होवाच याज्ञवल्क्यः—

ॐ यो ह वै श्रीपरमात्मा नारायणः स भगवानकारवाच्यो जाम्बवान् भूर्भुवः सुवस्तस्मै वै नमो नमः॥ २॥

याज्ञवल्क्य ने कहा— (वे मन्त्र इस प्रकार हैं) जो वह नारायणरूप परमात्मा 'अकार' वाच्य है, जाम्बवान्-संज्ञक है, भूः भुवः सुवः (स्वः) अर्थात् तीनों लोकों में संव्याप्त है, उस (परमात्मा) को बारम्बार नमस्कार है॥ २॥

ॐ यो ह वै श्रीपरमात्मा नारायणः स भगवानुकारवाच्य उपेन्द्रस्वरूपो हरिनायको भूर्भुवः सुवस्तस्मै वै नमो नमः॥ ३॥

जो वह नारायणरूप परमात्मा 'उकार' वाच्य है, उपेन्द्रस्वरूप हरिनायक-संज्ञक है, उस (परमात्मा) को बारम्बार नमस्कार है॥ ३॥

ॐ यो ह वै श्रीपरमात्मा नारायणः स भगवान् मकारवाच्यः शिवस्वरूपो हनूमान् भूर्भुवः सुवस्तस्मै वै नमो नमः॥ ४॥

जो वह नारायणरूप परमात्मा 'मकार' वाच्य है, शिवस्वरूप हनुमान्-संज्ञक है, उस (परमात्मा) को बारम्बार नमस्कार है॥ ४॥

ॐ यो ह वै श्रीपरमात्मा नारायणः स भगवान् बिन्दुस्वरूपः शत्रुघ्नो भूर्भुवः सुवस्तस्मै वै नमो नमः ॥ ५ ॥

जो वह नारायणरूप परमात्मा बिन्दुस्वरूप और शत्रुघ्न संज्ञक (शत्रुओं का विनाश करने वाला) है, उस (परमात्मा) को बारम्बार नमस्कार है ॥ ५ ॥

ॐ यो ह वै श्रीपरमात्मा नारायणः स भगवान् नादस्वरूपो भरतो भूर्भुवः सुवस्तस्मै वै नमो नमः ॥ ६ ॥

जो वह नारायणरूप परमात्मा नादस्वरूप और भरत संज्ञक (सबका भरण-पोषण करने वाला) है, उस (परमात्मा) को बारम्बार नमस्कार है ॥ ६ ॥

ॐ यो ह वै श्रीपरमात्मा नारायणः स भगवान् कलास्वरूपो लक्ष्मणो भूर्भुवः सुवस्तस्मै वै नमो नमः ॥ ७ ॥

जो वह नारायणरूप परमात्मा कलास्वरूप और लक्ष्मण संज्ञक (श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त) है, उस (परमात्मा) को बारम्बार नमस्कार है ॥ ७ ॥

ॐ यो ह वै श्रीपरमात्मा नारायणः स भगवान् कलाऽतीता भगवती सीता चित्स्वरूपा भूर्भुवः सुवस्तस्मै वै नमो नमः ॥ ८ ॥

जो वह नारायणरूप परमात्मा कलातीतस्वरूप वाला और सीता संज्ञक (ऐश्वर्य और शक्ति से समन्वित) है, उस (परमात्मा) को बारम्बार नमस्कार है ॥ ८ ॥

ॐ यो ह वै श्रीपरमात्मा नारायणः स भगवान् तत्परः परमपुरुषः पुराणपुरुषोत्तमो नित्यशुद्धबुद्धमुक्तसत्यपरमानन्दानन्ताद्वयपरिपूर्णः परमात्मा ब्रह्मैवाहं रामोऽस्मि भूर्भुवः सुवस्तस्मै वै नमो नमः ॥ ९ ॥

जो वह नारायणरूप परमात्मा परात्पर, परमपुरुष, पुराण-पुरुषोत्तम, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत्य, परमानन्द, अनन्त, अद्वय, परिपूर्ण, परमात्मा, ब्रह्मस्वरूप और राम संज्ञक (अनन्तजनों के अन्त:करण में रमण करने वाला) है, वह मैं ही हूँ, उस भूः भुवः स्वः (तीन लोकों) में संव्याप्त (परमात्मा) को बारम्बार नमस्कार है ॥ ९ ॥

एतदष्टविधमन्त्रं योऽधीते सोऽग्निपूतो भवति। स वायुपूतो भवति। स आदित्यपूतो भवति। स स्थाणुपूतो भवति। स सर्वैर्देवैर्ज्ञातो भवति। तेनेतिहासपुराणानां रुद्राणां शतसहस्त्राणि जप्तानि फलानि भवन्ति। श्रीमन्नारायणाष्टाक्षरानुस्मरणेन गायत्र्याः शत सहस्त्रं जप्तं भवति। प्रणवानामयुतं जप्तं भवति। दशपूर्वान्दशोत्तरान्पुनाति नारायणपदमवाप्नोति य एवं वेद ॥ १० ॥

इस अष्टविध मन्त्र का जो अध्ययन (साधन) करता है, वह अग्निवत् पवित्र हो जाता है, वह वायुवत् पवित्र हो जाता है, वह आदित्यवत् पवित्र हो जाता है, वह स्थाणु (ब्रह्म या शिव) की तरह पवित्र हो जाता है। वह सभी देवताओं द्वारा ज्ञात (अनुगृहीत) हो जाता है। उसके द्वारा इतिहास-पुराण-रुद्र (आदि मन्त्रों) के एक लाख मन्त्र के जप का फल प्राप्त कर लिया जाता है। प्रणव (ॐ) मन्त्र के दस हजार मन्त्र का फल प्राप्त कर लिया जाता है, नारायण के उक्त अष्टादशाक्षर मन्त्र के अनुस्मरण से गायत्री के एक लाख मन्त्र- जप का लाभ प्राप्त होता है। वह अपनी दस पीढ़ी पूर्व तथा दस पीढ़ी बाद को पवित्र कर लेता है। वह अन्ततः नारायण का परमपद भी प्राप्त कर लेता है। जो इसे भली प्रकार जानता है, उसे भी यही लाभ प्राप्त होता है॥ १०॥

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्॥ ११॥

ज्ञानीजन विश्वव्यापी भगवान् विष्णु के सर्वोच्च पद को, द्युलोक में परिव्याप्त दिव्य प्रकाश की भाँति देखते हैं (अर्थात् उस परमात्मा की व्यापकता का अनुभव करते हैं)॥ ११॥

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते। विष्णोर्यत्परमं पदम्॥ १२॥ इत्युपनिषत्॥ हरिः ॐ तत्सत्॥

ब्रह्मनिष्ठ जीवनयापन करने वाले तथा आलस्य-प्रमादादि से रहित सदैव श्रेष्ठ कर्म करने वाले साधक अन्तर्यामी परमेश्वर के सर्वोत्तम परमधाम को प्राप्त करते हैं॥ १२॥

॥ इति सामवेदस्तृतीयः पादः॥

ॐ पूर्णमदः............ इति शान्तिः।

॥ इति तारसारोपनिषत्समाप्ता॥

॥ तुरीयोपनिषद्॥

कलातीतश्चेति। तन्न चत्वारः। अकारश्चायुतावयवान्वितः। उकारः शतावयवान्वितः। मकारः सहस्त्रावयवान्वितः। अर्धमात्रप्रणवोऽनन्तावयवान्वितः। सगुणो विराट्प्रणवः। संहारो निर्गुणप्रणवः। उभयात्मक उत्पत्तिप्रणवः। यथार्थकथनोमित्युच्चार्याभिमानोत्पत्तिप्रणवः। सर्वोपसंहारेण संहारप्रणवः। उभयात्मकत्वात् विराट्प्रणवः। उत्पत्तिप्रणवो दीर्घप्लुतविराट्। प्लुतप्लुत्युप-संहारः। विराट्प्रणवः षोडशमात्रान्वितः। षट्त्रिंशत्तत्वा युतः। षोडशमात्रात्मकं कथमित्युच्यते। अकारः प्रथमः। द्वितीय उकारः। मकारस्तृतीयः। अर्धमात्रा चतुर्थः। नादः पञ्चमः। बिन्दुः षष्ठः। कला सप्तमः। शक्तिरष्टमी। शान्तिर्नवमी। समाना दशमी। आत्मनैकादश। मनोन्मना द्वादश। वैखरी त्रयोदश मध्यमा चतुर्दश। पश्यन्ती पञ्चदश। परा षोडश। इति षोडशमात्रात्मकः प्रणवः। षोडशमात्रा जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुरीयावस्थाभेदैरेकैकमात्राचातुर्विध्यमेत्य। षोडशमात्राश्चतुष्षष्टिभेदमेत्य। पुनश्चतुष्षष्टिमात्राः प्रकृतिपुरुषद्वैविध्यमापाद्याष्टाविंशत्युत्तरशतभेदमात्रास्वरूपमासाद्य सगुणनिर्गुणत्वमेत्य एकोपि ब्रह्म प्रणवः॥

सर्वाधारः परं ज्योतिरेष सर्वेश्वरो विभुः।
सर्वदेवमयः सर्वप्रपञ्चाधारगर्भितः।
सर्वाक्षरमयः कालः सदसद्भक्तिवर्जितः॥ इति।
य एवं वेदेत्युपनिषत्॥

वह कलाओं से अतीत है, ऐसा निश्चित है। फिर भी ऐसा नहीं है; क्योंकि वह चार वर्णादि से संयुक्त है। उसमें दस सहस्र अवयवों (अङ्गों) वाला अकार है। सौ अवयवों (अङ्गों) वाला उकार है। सहस्र अवयवों (अङ्गों) वाला मकार है। अनन्त अवयवों (अङ्गों) वाली अर्द्धमात्रा से विभूषित है, वह प्रणव। विराट् स्वरूप वाला प्रणव सगुण है। संहार स्वरूप वाला प्रणव निर्गुण है। सगुण-निर्गुण उभयात्मक रूप वाला उत्पत्ति-प्रणव है, यथार्थ कथन को प्रकट करने वाला 'ओम' अभिमानोत्पत्ति-प्रणव होता है। सर्वोपसंहार के कारण संहारप्रणव कहलाता है। उभयात्मक होने से विराट्-प्रणव कहा जाता है। दीर्घ प्लुत-विराट्प्रणव उत्पत्ति-प्रणव है। प्लुतप्लुत्युच्चार (प्लुत-प्लुत के उच्चारण) से उपसंहार नामक प्रणव होता है। सोलह मात्रायुक्त प्रणव विराट्-प्रणव होता है। यह छत्तीस तत्त्वों से युक्त होता है।

प्रश्नः- यह सोलह मात्राओं वाला क्यों कहा जाता है ? उत्तर है- अकार पहली मात्रा है, उकार दूसरी है, मकार तीसरी है, अर्द्धमात्रा चौथी है। नाद पाँचवीं है, बिन्दु छठी है, कला सातवीं है, शक्ति आठवीं है, शान्ति नवीं है, समाना दसवीं है, आत्मना ग्यारहवीं है, मनोन्मना बारहवीं है, वैखरी तेरहवीं है, मध्यमा चौदहवीं है, पश्यन्ती पन्द्रहवीं है एवं परा सोलहवीं है। इस प्रकार प्रणव सोलह मात्रा वाला होता है। सोलह मात्राओं में से प्रत्येक मात्रा जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीय भेद से चार-चार प्रकार (भेद) वाली होती है; अतः सोलह मात्रा के चौंसठ भेद हो जाते हैं। ये चौंसठ मात्राएँ भी प्रकृति एवं पुरुष के साथ दो-दो प्रकार की होने से एक सौ अट्ठाइस मात्राएँ हो

जाती हैं। इस प्रकार एक ही ब्रह्मरूप प्रणव सगुण- नर्गुण भेद से एक सौ अट्ठाइस मात्राओं (कलाओं) वाला

ऐसा यह ब्रह्मरूप प्रणव ही सबका आधार है। परम ज्योतिर्मय है, सर्वेश्वर है, सर्वत्र व्याप्त है, सर्वदेवमय है, समग्र प्रपञ्च का आधार है, सर्वाक्षरमय है, सद्-असद् के भेद से रहित है तथा (सबका आकलन करने वाला) कालस्वरूप है। जो इस प्रकार जानता है, (वही ब्रह्म को जानता है।) यही उपनिषद् (रहस्य) है।

॥ इति तुरीयोपनिषत्समाप्ता ॥

।। तेजोबिन्दूपनिषद् ।।

यत्र चिन्मात्रकलना यात्यपह्नवमञ्जसा।
तच्चिन्मात्रमखण्डैकरसं ब्रह्म भवाम्यहम्।।

।। ॐ सह नाववतु..........इति शान्तिः ।। (द्रष्टव्य- गणेशोत्तरतापिन्युपनिषत्)

ॐ तेजोबिन्दुः परं ध्यानं विश्वात्महृदि संस्थितम् । आणवं शांभवं शान्तं स्थूलं सूक्ष्मं परं च यत्।। १ ।।

तेजोबिन्दु का ध्यान सबसे उत्तम है। यह विश्वात्मा के हृदय में स्थित आणव, शाम्भव, शान्त, स्थूल, सूक्ष्म तथा पर इत्यादि विशेषताओं से युक्त है।। १ ।।

दुःखाढ्यं च दुराराध्यं दुष्प्रेक्ष्यं मुक्तमव्ययम् । दुर्लभं तत्स्वयं ध्यानं मुनीनां च मनीषिणाम्।। २ ।।

किन्तु यह दुख-भरा ध्यान कष्टसाध्य तथा कठिनता से ही देखने योग्य है। यह मुक्त, अव्यय तथा मुनियों और मनीषियों के लिए भी दुर्लभ है।। २ ।।

यताहारो जितक्रोधो जितसङ्गो जितेन्द्रियः। निर्द्वन्द्वो निरहंकारो निराशीरपरिग्रहः।। ३ ।।

संयत आहार करने वाला, क्रोध को जीतने वाला, सङ्गदोष से मुक्त, जितेन्द्रिय, निर्द्वन्द्व, निरहङ्कार, आशामुक्त संचय की प्रवृत्ति से मुक्त।। ३ ।।

अगम्यागमकर्ता यो गम्याऽगमनमानसः। मुखे त्रीणि च विन्दन्ति त्रिधामा हंस उच्यते।। ४ ।।

अगम्य स्थान को जाने का साहस करने वाला तथा गम्य की सुविधा से अमनस्क, जिसके मुख से ही स्वर्ग, मर्त्य, पाताल स्थित हो; ऐसा साधक त्रिधामा हंस कहलाता है।। ४ ।।

परं गुह्यतमं विद्धि ह्यस्ततन्द्रो निराश्रयः। सोमरूपकला सूक्ष्मा विष्णोस्तत्परमं पदम्।। ५ ।।

यह ध्यान बड़ा गुह्य है, अतः तन्द्राहीन और आश्रयरहित होकर बैठो। विष्णु का वह परम पद चन्द्रमा की सूक्ष्म कला जैसा है।। ५ ।।

त्रिवक्त्रं त्रिगुणं स्थानं त्रिधातुं रूपवर्जितम् । निश्चलं निर्विकल्पं च निराकारं निराश्रयम्।। ६ ।।

वह तीन मुखवाला, तीन गुण वाला, तीन धातु वाला स्थान फिर भी आकारहीन है, निश्चल, निर्विकल्प, निराकार तथा निराश्रय है।। ६ ।।

उपाधिरहितं स्थानं वाङ्मनोऽतीतगोचरम् । स्वभावं भावसंग्राह्यमसंघातं पदाच्युतम् ॥ ७ ॥

उपाधि-रहित वह स्थान मन, वाणी, इन्द्रियों से अगोचर (पहुँच के बाहर) है। सहज-भावयुक्त तथा भावों का भण्डार होते हुए भी कोई ढेर नहीं है, न ही किसी पद से भ्रष्ट है।। ७ ।।

अनानानन्दनातीतं दुष्प्रेक्ष्यं मुक्तमव्ययम्। चिन्त्यमेवं विनिर्मुक्तं शाश्वतं ध्रुवमच्युतम्।। ८ ॥

नाना प्रकार के आनन्दानुभवों से अतीत कठिनता से देखने योग्य, मुक्त तथा अव्यय, चिन्तन योग्य, विनिर्मुक्त, शाश्वत, ध्रुव और अच्युत है।। ८ ।।

तद्ब्रह्मणस्तदध्यात्मं तद्विष्णोस्तत्परायणम् । अचिन्त्यं चिन्मयात्मानं यद्व्योम परमं स्थितम्।। ९ ॥

वह ब्रह्मपद, वही विष्णुपद, वही अध्यात्म और वही लगने योग्य कार्य है। वह चिन्तनातीत, चिन्मय- स्वरूप तथा परम व्योम में स्थित है।। ९ ।।

अशून्यं शून्यभावं तु शून्यातीतं हृदि स्थितम् । न च ध्यानं न च ध्याता न ध्येयो ध्येय एव च ॥ १० ॥

जो शून्य नहीं फिर भी शून्य है, शून्य से अतीत है। हृदय में स्थित है। वहाँ न कोई ध्यान है, न ध्याता है, न ध्येय है।। १० ।।

सर्वं च न परं शून्यं न परं नापरात्परम् । अचिन्त्यमप्रबुद्धं च न सत्यं न परं विदुः।। ११ ॥

न वह सर्व है, न परं शून्य है, न पर है, न अपर से पर है। उसे चिन्तन के अयोग्य तथा अप्रबुद्ध, न सत्य, न पर ही बताया गया है।। ११ ।।

मुनीनां संप्रयुक्तं च न देवा न परं विदुः। लोभं मोहं भयं दर्पं कामं क्रोधं च किल्बिषम् ॥ १२ ॥

वह मुनियों द्वारा ही प्रयोग किया हुआ है, देवों ने भी इस परं को नहीं जाना। लोभ, मोह, भय, दर्प, काम, क्रोध, पाप ।। १२ ।।

शीतोष्णे क्षुत्पिपासे च संकल्पकविकल्पकम् । न ब्रह्मकुलदर्पं च न मुक्तिग्रन्थिसंचयम् ॥ १३ ॥

शीत, उष्ण, भूख, प्यास, सङ्कल्प, विकल्प, न ब्रह्मकुल का दर्प, न ही मोक्षग्रन्थि का सञ्चय।। १३ ।।

न भयं न सुखं दुःखं तथा मानावमानयोः। एतद्भावविनिर्मुक्तं तद्ग्राह्यं ब्रह्म तत्परम् ॥ १४ ॥

न भय, न सुख-दुःख, न मानापमान, इन सब भावों से मुक्त हुआ परं भाव ही ब्रह्म रूप से ग्राह्य है ।। १४ ।।

यमो हि नियमस्त्यागो मौनं देशश्च कालतः। आसनं मूलबन्धश्च देहसाम्यं च दृक्स्थितिः ॥ १५ ॥

यम, नियम, त्याग, मौन, देश-काल-परिस्थिति, आसन, मूल-बन्ध, देहसाम्य तथा दृष्टि की स्थिति॥१५॥

प्राणसंयमनं चैव प्रत्याहारश्च धारणा । आत्मध्यानं समाधिश्च प्रोक्तान्यङ्गानि वै क्रमात्॥१६॥

प्राण-संयम, प्रत्याहार, धारणा, आत्मध्यान, समाधि ये क्रमशः योग के अङ्ग बताये गये हैं॥ १६ ॥

सर्वं ब्रह्मेति वै ज्ञानादिन्द्रियग्रामसंयमः। यमोऽयमिति संप्रोक्तोऽभ्यसनीयो मुहुर्मुहुः॥ १७ ॥

ये सब ब्रह्मज्ञान के साधन हैं इन्द्रियों का संयम वस्तुतः यम है, जिसका बार- बार अभ्यास करना चाहिए॥ १७ ॥

सजातीयप्रवाहश्च विजातीयतिरस्कृतिः। नियमो हि परानन्दो नियमात्क्रियते बुधैः॥ १८ ॥

सजातीय पदार्थों और क्रियाओं में अनुकूल दृष्टि तथा विजातीयों के प्रति तिरस्कार, यह नियम है इसका प्रयोग भी नियमपूर्वक करना चाहिए॥ १८ ॥

त्यागो हि महता पूज्यः सद्यो मोक्षप्रदायकः॥ १९ ॥

त्याग बड़ा पूज्य-भाव है तथा शीघ्र मोक्ष-प्रदायक है॥ १९ ॥

यस्माद्वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह । यन्मौनं योगिभिर्गम्यं तद्भजेत्सर्वदा बुधः ॥ २० ॥

वाणी जहाँ से मन के साथ जाकर भी उसे बिना प्राप्त किये ही लौटने पर विवश हो जाती है। अतः मौन ही योगियों द्वारा सेवनीय कहा गया है। विद्वान् को सदा उसका अनुपालन करना चाहिए ॥ २० ॥

वाचो यस्मान्निवर्तन्ते तद्वक्तुं केन शक्यते । प्रपञ्चो यदि वक्तव्यः सोऽपि शब्दविवर्जितः॥ २१ ॥

जहाँ से वाणी लौट आती है फिर उसका वर्णन कर भी कौन सकता है? यदि इस प्रपञ्च का ही वर्णन करना है, तो वह भी शब्दरहित ही करना चाहिए ॥ २१ ॥

इति वा तद्भवेन्मौनं सर्वं सहजसंज्ञितम् । गिरां मौनं तु बालानामयुक्तं ब्रह्मवादिनाम् ॥ २२ ॥

यह मौन 'सहज' नाम वाला है। वाणी का मौन तो बच्चों (अज्ञानियों) का खेल है। ब्रह्मवादियों के लिए यह व्यर्थ है॥ २२ ॥

आदावन्ते च मध्ये च जनो यस्मिन्न विद्यते । येनेदं सततं व्याप्तं स देशो विजनः स्मृतः ॥ २३ ॥

आदि, अन्त तथा मध्य में कहीं भी कोई व्यक्ति न हो, जिससे यह सारा जगत्प्रपञ्च व्याप्त है मात्र उसी की सत्ता हो, ऐसा प्रदेश निर्जन कहा गया है॥ २३ ॥

कल्पना सर्वभूतानां ब्रह्मादीनां निमेषतः। कालशब्देन निर्दिष्टं ह्यखण्डानन्दमद्वयम् ॥ २४ ॥

ब्रह्मा आदि सभी भूतों की कल्पना निमेष से की गई है। वही काल अखण्डानन्द-स्वरूप अद्वय तत्व है ॥ २४ ॥

सुखेनैव भवेद्यस्मिन्नजस्त्रं ब्रह्मचिन्तनम् । आसनं तद्विजानीयादन्यत्सुखविनाशनम् ॥ २५ ॥

सुख पूर्वक जिस आसन से बैठ कर निरन्तर ब्रह्म-चिन्तन हो सके, वही श्रेष्ठ आसन है। अन्य सुख का विनाश ही करने वाले हैं।। २५ ॥

सिद्धये सर्वभूतादि विश्वाधिष्ठानमद्वयम् । यस्मिन्सिद्धिं गताःसिद्धास्तत्सिद्धासनमुच्यते ॥ २६ ॥

सब प्राणियों का आदि विश्व का एक मात्र जो अधिष्ठान है, उसकी सिद्धि के लिए सिद्धों ने जिस आसन का प्रयोग किया वह सिद्धासन है।। २६ ॥

यन्मूलं सर्वलोकानां यन्मूलं चित्तबन्धनम् । मूलबन्धः सदा सेव्यो योग्योऽसौब्रह्मवादिनाम्॥ २७ ॥

जो सब प्राणियों का मूल है, जो चित्त के बन्धन का मूल है। वह बन्ध (मूलबन्ध) सदा ही ब्रह्मवादियों से सेवनीय है ॥ २७ ॥

अङ्गानां समतां विद्यात्समे ब्रह्मणि लीयते । नो चेन्नैव समानत्वमृजुत्वं शुष्कवृक्षवत् ॥ २८ ॥

अङ्गों की समता तभी समझी जानी चाहिए, जब साधक सम ब्रह्म में लीन हो सके। अन्यथा अङ्गों की समता, ऋजुता सूखे वृक्ष की भाँति ही कही जायगी ॥ २८ ॥

दृष्टिं ज्ञानमयीं कृत्वा पश्येद्ब्रह्ममयं जगत् । सा दृष्टिः परमोदारा न नासाग्रावलोकिनी॥ २९ ॥

ज्ञानमयी दृष्टि को अपना कर जगत् को ब्रह्ममय देखने का अभ्यास करे, वही दृष्टि परम उदार है, न कि मात्र नासिका के अग्रभाग को देखने वाली दृष्टि।। २९ ॥

द्रष्टृदर्शनदृश्यानां विरामो यत्र वा भवेत् । दृष्टिस्तत्रैव कर्तव्या न नासाग्रावलोकिनी ॥ ३० ॥

जहाँ द्रष्टा, दर्शन व दृश्य का अवसान हो जाए अथवा इनका भेद समाप्त हो जाए, वहीं दृष्टि करनी चाहिए न कि नासा के अग्रभाग को देखने वाली दृष्टि।। ३० ॥

चित्तादिसर्वभावेषु ब्रह्मत्वेनैव भावनात् । निरोधः सर्ववृत्तीनां प्राणायामः स उच्यते ॥ ३१ ॥

चित्त आदि सभी भावों में ब्रह्मत्व की भावना से सारी वृत्तियों का निरोध हो जाता है, उसी को प्राणायाम कहते हैं।। ३१ ॥

निषेधनं प्रपञ्चस्य रेचकाख्यः समीरितः। ब्रह्मैवास्मीति या वृत्तिः पूरको वायुरुच्यते॥ ३२ ॥

प्रपञ्च का निषेध रेचक है। मैं ही ब्रह्म हूँ यह भाव पूरक वायु कहलाता है।। ३२ ।।

ततस्तद्वृत्तिनैश्चल्यं कुम्भकः प्राणसंयमः। अयं चापि प्रबुद्धानामज्ञानां घ्राणपीडनम्॥ ३३ ॥

उन-उन वृत्तियों की निश्चलता (स्थिरता) कुम्भक है। यह भी प्रबुद्ध साधकों द्वारा व्यवहार्य है, अन्यों का तो मात्र घ्राणपीडन अर्थात् नासिका दबाना मात्र है।। ३३ ।।

विषयेष्वात्मतां दृष्ट्वा मनसश्चित्तरञ्जकम्। प्रत्याहारः स विज्ञेयोऽभ्यसनीयो मुहुर्मुहुः॥ ३४ ॥

विषयों में भी आत्मभाव का दर्शन मन और चित्त की प्रसन्नता के लिए बार-बार अभ्यास रूप से करना चाहिए।। ३४ ।।

यत्र यत्र मनो याति ब्रह्मणस्तत्र दर्शनात्। मनसा धारणं चैव धारणा सा परा मता॥ ३५ ॥

मन जहाँ-जहाँ भी जाये वहाँ-वहाँ ही मन को ब्रह्मभाव का दर्शन कराये। मन को यह भाव धारण कराने का नाम ही धारणा है।। ३५ ।।

ब्रह्मैवास्मीति सद्वृत्त्या निरालम्बतयास्थितिः। ध्यानशब्देन विख्यातः परमानन्ददायकः॥ ३६ ॥

मैं ही ब्रह्म हूँ इस सद्वृत्ति से मन को अन्यत्र कहीं आलम्बन (टिकने का स्थान) नहीं मिलता। यह स्थिति ही ध्यान कही गयी है, जो आनन्दप्रद है ।। ३६ ।।

निर्विकारतया वृत्त्या ब्रह्माकारतया पुनः। वृत्तिविस्मरणं सम्यक्समाधिरभिधीयते॥ ३७ ॥

वृत्ति के निर्विकार होने पर तथा उसके ब्रह्माकार हो जाने पर अन्य वृत्तियों का स्मरण भूल जाना ही सम्यक् समाधि कही गयी है।। ३७ ।।

इमं चाकृत्रिमानन्दं तावत्साधु समभ्यसेत्। लक्ष्यो यावत्क्षणात्पुंसः प्रत्यक्त्वं संभवेत्स्वयम्॥ ३८ ॥

इस वास्तविक आनन्द को साधक तब तक अभ्यास में लाता रहे, जब तक साधक का लक्ष्य प्रत्यक्ष आत्म दर्शन सिद्ध न हो जाये।। ३८ ।।

ततः साधननिर्मुक्तःसिद्धो भवति योगिराट्। तत्स्वं रूपं भवेत्तस्य विषयो मनसो गिराम्॥ ३९ ॥

इसके पश्चात् साधनों से निर्मुक्त हुआ सिद्ध योगिराट् हो जाता है। तब मन वाणी के सारे विषय भी तद्रूप हो जाते हैं।। ३९ ।।

समाधौ क्रियमाणे तु विघ्नान्यायान्ति वै बलात् । अनुसंधानराहित्यमालस्यं भोगलालसम् ॥ ४० ॥

समाधि अवस्था का अभ्यास करते हुए विघ्न भी उपस्थित होते हैं। जैसे-आगे बढ़ने के प्रति उदासीनता, आलस्य, भोग-लालसा आदि ॥ ४० ॥

लयस्तमश्च विक्षेपस्तेजः स्वेदश्च शून्यता। एवं हि विघ्नबाहुल्यं त्याज्यं ब्रह्मविशारदैः ॥ ४१ ॥

अथवा लय, तम, विक्षेप, तेज, स्वेद, शून्यता आदि बहुत से विघ्न हैं, जिन्हें ब्रह्म-विशारदों के द्वारा प्रयत्न पूर्वक छोड़ा जाना चाहिए॥ ४१ ॥

भाववृत्त्या हि भावत्वं शून्यवृत्त्या हि शून्यता । ब्रह्मवृत्त्या हि पूर्णत्वं तया पूर्णत्वमभ्यसेत् ॥ ४२ ॥

भाववृत्ति से भावसिद्ध होता है। शून्यवृत्ति से शून्यता प्राप्त होती है। ऐसे ही ब्रह्मवृत्ति से पूर्णता प्राप्त होती है, अतः पूर्णता का अभ्यास ही करे॥ ४२ ॥

ये हि वृत्तिं विहायैनां ब्रह्माख्यां पावनीं पराम् । वृथैव ते तु जीवन्ति पशुभिश्च समा नराः॥ ४३ ॥

जो इस पवित्र ब्रह्मवृत्ति को छोड़कर विषयों में रमते हैं, वे पशुओं के समान वृथा ही जीते हैं॥ ४३॥

ये तु वृत्तिं विजानन्ति ज्ञात्वा वै वर्धयन्ति ये । ते वै सत्पुरुषा धन्या वन्द्यास्ते भुवनत्रये ॥ ४४ ॥

जो लोग इस वृत्ति को जानते हैं तथा उसे आगे बढ़ाते हैं, वे सत्पुरुष धन्य हैं। वे तीनों लोकों में वन्दनीय होते हैं॥ ४४ ॥

येषां वृत्तिः समा वृद्धा परिपक्वा च सा पुनः। ते वै सद्ब्रह्मतां प्राप्ता नेतरे शद्बवादिनः ॥ ४५ ॥

जिनकी वृत्ति समभाव को प्राप्त हुई बढ़ती है और परिपक्व होती है, वे ही सही अर्थ में ब्रह्मत्व को प्राप्त हैं, इतर लोग तो मात्र शब्दवादी हैं अर्थात् केवल मुँह से बकवास करते हैं तथा स्वयं सिद्ध बताते हैं ॥ ४५ ॥

कुशला ब्रह्मवार्तायां वृत्तिहीनाः सुरागिणः। तेऽप्यज्ञानतया नूनं पुनरायान्ति यान्ति च ॥ ४६ ॥

जो लोग ब्रह्मचर्चा में कुशल तो हैं, किन्तु इस वृत्ति से दूर हैं तथा विषयों में आसक्ति रखते है; ऐसे निश्चित रूप से जन्म-मृत्यु के बन्धन में पड़े रहते हैं ॥ ४६ ॥

निमिषार्धं न तिष्ठन्ति वृत्तिं ब्रह्ममयीं विना । यथा तिष्ठन्ति ब्रह्माद्याःसनकाद्याः शुकादयः ॥ ४७ ॥

जो साधक एक क्षण भी ब्रह्ममयी वृत्ति के बिना नहीं रह पाते, जैसे- ब्रह्मा आदि सनक आदि शुकादि हैं, वे ही ब्रह्मत्व-प्राप्त हैं॥ ४७ ॥

कारणं यस्य वै काय कारणं तस्य जायते। कारणं तत्त्वतो नश्येत्कार्याभावे विचारतः॥ ४८ ॥

कारण के अनुरूप कार्य होते हैं। कारण है, तो कार्य भी निश्चित है। अतः कारण को ही नष्ट करने से कार्य समाप्त होगा ॥ ४८ ॥

अथ शुद्धं भवेद्वस्तु यद्वै वाचामगोचरम्। उदेति शुद्धचित्तानां वृत्तिज्ञानं ततः परम्॥ ४९ ॥

शुद्ध वस्तु वाणी के लिए अगोचर है। शुद्ध चित्त वाले साधकों द्वारा इससे आगे इस वृत्ति का ज्ञान उदय किया जाता है ॥ ४९ ॥

भावितं तीव्रवेगेन यद्वस्तु निश्चयात्मकम्। दृश्यं ह्यदृश्यतां नीत्वा ब्रह्माकारेण चिन्तयेत्॥ ५० ॥

निश्चित वस्तु को तीव्र वेग से उसके दृश्य भाव को अदृश्य में बदलकर, ब्रह्माकार रूप से चिन्तन करे॥ ५० ॥

विद्वान्नित्यं सुखे तिष्ठेद्धिया चिद्रसपूर्णया॥ ५१ ॥

चिन्मयी बुद्धि के द्वारा विद्वान् साधक नित्य सुख में रमण करे॥ ५१ ॥

॥ इति तेजोबिन्दूपनिषत्सु प्रथमोऽध्यायः॥ १ ॥

अथ ह कुमारः शिवं पप्रच्छाऽखण्डैकरसचिन्मात्रस्वरूपमनुब्रूहीति। स होवाच परमः शिवः। अखण्डैकरसं दृश्यमखण्डैकरसं जगत्। अखण्डैकरसं भावमखण्डैकरसं स्वयम्॥ १ ॥

कुमार कार्तिकेय ने शिवजी से प्रश्न किया- देव! अखण्डैकरस चिन्मात्र- स्वरूप का वर्णन करें। परम शिवजी ने बताना प्रारम्भ किया पुत्र, यह सारा दृश्य प्रपञ्च ही अखण्डैकरस समझो॥ १ ॥

अखण्डैकरसो मन्त्र अखण्डैकरसा क्रिया। अखण्डैकरसं ज्ञानमखण्डैकरसं जलम्॥ २ ॥

मन्त्र और क्रिया भी अखण्डैकरस हैं। ज्ञान और जल भी अखण्डैकरस हैं॥ २ ॥

अखण्डैकरसा भूमिरखण्डैकरसं वियत्। अखण्डैकरसं शास्त्रमखण्डैकरसा त्रयी॥ ३ ॥

भूमि और आकाश शास्त्र और वेदत्रयी अखण्डैकरस हैं॥ ३ ॥

अखण्डैकरसं ब्रह्म चाखण्डैकरसं व्रतम्। अखण्डैकरसो जीव अखण्डैकरसो ह्यजः॥ ४ ॥

ब्रह्म और व्रत भी तथा जीव और अजन्मा भी अखण्डैकरस हैं॥ ४ ॥

अखण्डैकरसो ब्रह्मा अखण्डैकरसो हरिः। अखण्डैकरसो रुद्र अखण्डैकरसोऽस्म्यहम् ॥ ५ ॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश सभी अखण्डैकरस हैं, तथा मैं स्वयं अखण्डैकरस चिन्मात्र हूँ ॥ ५ ॥

अखण्डैकरसो ह्यात्मा ह्यखण्डैकरसो गुरुः। अखण्डैकरसं लक्ष्यमखण्डैकरसं महः ॥ ६ ॥

आत्मा, गुरु, लक्ष्य और तेज ये सभी अखण्डैकरस हैं।। ६ ।।

अखण्डैकरसो देह अखण्डैकरसं मनः। अखण्डैकरसं चित्तमखण्डैकरसं सुखम् ॥ ७ ॥

देह, मन, चित्त और सुख अखण्डैकरस हैं।। ७ ।।

अखण्डैकरसा विद्या अखण्डैकरसोऽव्ययः। अखण्डैकरसं नित्यमखण्डैकरसं परम् ॥ ८ ॥

विद्या, अव्यय, नित्य तथा परंभाव अखण्डैकरस है।। ८ ।।

अखण्डैकरसं किंचिदखण्डैकरसं परम् । अखण्डैकरसादन्यन्नास्ति नास्ति षडानन ॥ ९ ॥

किञ्चित् तथा परम भी अखण्डैकरस है। हे षडानन! अखण्डैकरस के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।। ९ ।।

अखण्डैकरसान्नास्ति अखण्डैकरसान्न हि । अखण्डैकरसात्किंचिदखण्डैकरसादहम् ॥ १० ॥

अखण्डैकरस के अलावा कुछ भी नहीं, यहाँ तक कि मैं भी उसी अखण्डैकरस से हूँ।। १० ।।

अखण्डैकरसं स्थूलं सूक्ष्मं चाखण्डरूपकम् । अखण्डैकरसं वेद्यमखण्डैकरसो भवान् ॥ ११ ॥

स्थूल, सूक्ष्म सब अखण्डैकरस हैं। वेद्य और तुम भी तो अखण्डैकरस हो।। ११ ।।

अखण्डैकरसं गुह्यमखण्डैकरसादिकम् । अखण्डैकरसो ज्ञाता ह्यखण्डैकरसा स्थितिः॥ १२ ॥

गुह्य तत्त्व, उसे जानने वाला तथा वह स्थिति सभी अखण्डैकरस हैं।। १२ ।।

अखण्डैकरसा माता अखण्डैकरसः पिता । अखण्डैकरसो भ्राता अखण्डैकरसः पतिः ॥ १३ ॥

माता, पिता, भ्राता, पति सब अखण्डैकरस हैं।। १३ ।।

अखण्डैकरसं सूत्रमखण्डैकरसो विराट् । अखण्डैकरसं गात्रमखण्डैकरसं शिरः॥ १४ ॥

सूत्र, विराट्, हाथ और सिर अखण्डैकरस है।। १४ ।।

अखण्डैकरसं चान्तरखण्डैकरसं बहिः। अखण्डैकरसं पूर्णमखण्डैकरसामृतम्॥ १५ ॥

अन्दर, बाहर, पूर्ण तथा अमृत सभी अखण्डैकरस हैं॥ १५ ॥

अखण्डैकरसं गोत्रमखण्डैकरसं गृहम्। अखण्डैकरसं गोप्यमखण्डैकरसश्शशी॥ १६ ॥

गोत्र, गृह, गोप्य और चन्द्रमा सभी अखण्डैकरस हैं॥ १६ ॥

अखण्डैकरसास्तारा अखण्डैकरसो रविः। अखण्डैकरसं क्षेत्रमखण्डैकरसा क्षमा॥ १७ ॥

तारे, सूर्य, क्षेत्र, पृथिवी सभी अखण्डैकरस हैं॥ १७ ॥

अखण्डैकरसः शान्त अखण्डैकरसोऽगुणः। अखण्डैकरसः साक्षी अखण्डैकरसः सुहृत्॥ १८ ॥

शान्त, अगुण, साक्षी, मित्र सभी अखण्डैकरस हैं॥ १८ ॥

अखण्डैकरसो बन्धुरखण्डैकरसः सखा। अखण्डैकरसो राजा ह्यखण्डैकरसं पुरम्॥ १९ ॥

बन्धु, सखा, राजा, नगर भी सब अखण्डैकरस हैं॥ १९ ॥

अखण्डैकरसं राज्यमखण्डैकरसाः प्रजाः। अखण्डैकरसं तारमखण्डैकरसो जपः॥ २० ॥

राज्य, प्रजा, तार और जप भी अखण्डैकरस ही हैं॥ २० ॥

अखण्डैकरसं ध्यानमखण्डैकरसं पदम्। अखण्डैकरसं ग्राह्यमखण्डैकरसं महत्॥ २१ ॥

ध्यान, पद, ग्राह्य और महत् अखण्डैकरस हैं॥ २१ ॥

अखण्डैकरसं ज्योतिरखण्डैकरसं धनम्। अखण्डैकरसं भोज्यमखण्डैकरसं हविः॥ २२ ॥

ज्योति, धन, भोज्यपदार्थ, हवि सब अखण्डैकरस हैं॥ २२ ॥

अखण्डैकरसो होम अखण्डैकरसो जपः। अखण्डैकरसं स्वर्गमखण्डैकरसः स्वयम्॥ २३ ॥

होम, जप अखण्डैकरस हैं, स्वर्ग तथा स्वयं भी अखण्डैकरस हैं॥ २३ ॥

अखण्डैकरसं सर्वं चिन्मात्रमिति भावयेत्। चिन्मात्रमेव चिन्मात्रमखण्डैकरसं परम्॥ २४ ॥

सब कुछ अखण्डैकरस और चिन्मय है, चिन्मय ही अखण्डैकरस है यह भावना प्रबल करे॥ २४ ॥

भववर्जितचिन्मात्रं सर्वं चिन्मात्रमेव हि। इदं च सर्वं चिन्मात्रमयं चिन्मयमेव हि॥ २५ ॥

संसार से रहित चिन्मात्र ही यह सब कुछ है। यह सब चिन्मात्र तथा चिन्मय है॥ २५ ॥

आत्मभावं च चिन्मात्रमखण्डैकरसं विदुः। सर्वलोकं च चिन्मात्रं त्वत्ता मत्ता च चिन्मयम् ॥ २६ ॥

आत्मभाव को ही चिन्मात्र अखण्डैकरस जाना गया है। सारे लोक चिन्मात्र हैं, तेरापन, मेरापन सब चिन्मात्र हैं॥ २६ ॥

आकाशो भूर्जलं वायुरग्निर्ब्रह्मा हरिःशिवः। यत्किंचिद्यन्न किंचिच्च सर्वं चिन्मात्रमेव हि ॥ २७ ॥

आकाश, पृथिवी, जल, वायु, अग्नि, ब्रह्मा, विष्णु, महेश समेत जो कुछ है, जो नहीं है, वह सब चिन्मात्र है ॥ २७ ॥

अखण्डैकरसं सर्वं यद्यच्चिन्मात्रमेव हि । भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वं चिन्मात्रमेव हि ॥ २८ ॥

जो-जो चिन्मात्र है वह अखण्डैकरस है। भूत, भव्य, भविष्यत् सब चिन्मात्र है॥ २८ ॥

द्रव्यं कालं च चिन्मात्रं ज्ञानं ज्ञेयं चिदेव हि । ज्ञाता चिन्मात्ररूपश्च सर्वं चिन्मयमेव हि॥ २९ ॥

द्रव्य, काल, ज्ञान, ज्ञेय ये सभी चिन्मात्र हैं। ज्ञाता चिन्मय रूप है एवं सब कुछ चिन्मय ही है ॥ २९ ॥

संभाषणं च चिन्मात्रं यद्यच्चिन्मात्रमेव हि । असच्च सच्च चिन्मात्रमाद्यन्तं चिन्मयं सदा ॥ ३० ॥

सम्भाषण भी चिन्मात्र है। सत्-असत्, आदि-अन्त सब कुछ चिन्मात्र है॥ ३० ॥

आदिरन्तश्च चिन्मात्रं गुरुशिष्यादि चिन्मयम् । दृग्दृश्यं यदि चिन्मात्रमस्ति चेच्चिन्मयं सदा ॥ ३१ ॥

आदि-अन्त, गुरु-शिष्य, दृष्टि-दृश्य सब चिन्मात्र हैं। जो चिन्मात्र है वह चिन्मय है ॥ ३१ ॥

सर्वाश्चर्यं हि चिन्मात्रं देहं चिन्मात्रमेव हि । लिङ्गं च कारणं चैव चिन्मात्रान्न हि विद्यते ॥ ३२ ॥

सारा आश्चर्य, यह देह, लिङ्ग, कारण चिन्मात्र के सिवा कुछ नहीं है॥ ३२ ॥

अहं त्वं चैव चिन्मात्रं मूर्तामूर्तादि चिन्मयम् । पुण्यं पापं च चिन्मात्रं जीवश्चिन्मात्रविग्रहः॥ ३३ ॥

मैं, तुम, मूर्त, अमूर्त, पुण्य, पाप, जीव, शरीर सब चिन्मात्र के ही विग्रह हैं अर्थात् चिन्मात्र के सिवा कुछ नहीं॥ ३३ ॥

चिन्मात्रान्नास्ति संकल्पश्चिन्मात्रान्नास्ति वेदनम् । चिन्मात्रान्नास्ति मन्त्रादि चिन्मात्रान्नास्ति देवता ॥ ३४ ॥

सङ्कल्प, अनुभूति, मन्त्र, देवता ये चिन्मात्र से अतिरिक्त कुछ नहीं॥ ३४ ॥

चिन्मात्रान्नास्ति दिक्पालाश्चिन्मात्राद्व्यावहारिकम् । चिन्मात्रात्परमं ब्रह्म चिन्मात्रान्नास्ति कोऽपि हि ॥ ३५ ॥

ये दसों दिक्पाल, यह सारा व्यावहारिक जगत्, यह परं ब्रह्म, यहाँ तक कि कुछ भी चिन्मात्र से अतिरिक्त नहीं है।। ३५ ।।

चिन्मात्रान्नास्ति माया च चिन्मात्रान्नास्ति पूजनम् । चिन्मात्रान्नास्ति मन्तव्यं चिन्मात्रान्नास्ति सत्यकम् ॥ ३६ ॥

माया, पूजन, मन्तव्य, सत्य सब चिन्मात्र हैं, चिन्मात्र के अतिरिक्त कुछ भी नहीं ।। ३६ ।।

चिन्मात्रान्नास्ति कोशादि चिन्मात्रान्नास्ति वै वसु । चिन्मात्रान्नास्ति मौनं च चिन्मात्रान्नास्त्यमौनकम् ॥ ३७ ॥

कोश, धन, मौन, अमौन सभी चिन्मात्र हैं।। ३७ ।।

चिन्मात्रान्नास्ति वैराग्यं सर्वं चिन्मात्रमेव हि । यच्च यावच्च चिन्मात्रं यच्च यावच्च दृश्यते ॥ ३८ ॥

वैराग्य भी चिन्मय है। जो कुछ जितना भी दिखाई देता है, सब चिन्मात्र है।। ३८ ।।

यच्च यावच्च दूरस्थं सर्वं चिन्मात्र मेव हि । यच्च यावच्च भूतादि यच्च यावच्च लक्ष्यते ॥ ३९ ॥

जो भी जितना भी दूर हो सारा चिन्मात्र है। जितने भी प्राणी आदि हैं, जो जितना भी लक्ष्य है, सब चिन्मात्र है।। ३९ ।।

यच्च यावच्च वेदान्ताः सर्वं चिन्मात्रमेव हि । चिन्मात्रान्नास्ति गमनं चिन्मात्रान्नास्ति मोक्षकम् ॥ ४० ॥

वेदान्त आदि विचार, शास्त्र सब चिन्मात्र ही है। चिन्मात्र से अतिरिक्त न गमन है और न ही मोक्ष ही ।। ४० ।।

चिन्मात्रान्नास्ति लक्ष्यं च सर्वं चिन्मात्रमेव हि । अखण्डैकरसं ब्रह्म चिन्मात्रान्न हि विद्यते ॥ ४१ ॥

चिन्मात्र के सिवा कोई लक्ष्य नहीं है, सब कुछ चिन्मात्र है। अखण्डैकरस ब्रह्म भी चिन्मात्र के सिवा कुछ नहीं है ।। ४१ ।।

शास्त्रे मयि त्वयीशे च ह्यखण्डैकरसो भवान्। इत्येकरूपकतया यो वा जानात्यहं त्विति ॥ ४२ ॥

शास्त्र में, मुझमें, तुममें, ईश्वर में अखण्डैकरस आप ही विद्यमान हैं। इस सत्य को जो एकरूपता से जानता है, वही स्वयं को जानता है ॥ ४२ ॥

सकृज्ज्ञानेन मुक्तिः स्यात्सम्यग्ज्ञाने स्वयं गुरुः ॥ ४३ ॥

(इसके) एक बार अर्थात् केवल ज्ञान से मुक्ति होती है और सम्यक् ज्ञान (सम्पूर्णज्ञान) (को जीवन में उतारने) से स्वयं गुरु हो जाता है ॥ ४३ ॥

॥ इति तेजोबिन्दूपनिषत्सु द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

कुमारः पितरमात्मानुभवमनुब्रूहीति पप्रच्छ। स होवाच परः शिवः परब्रह्मस्वरूपोऽहं परमानन्दमस्म्यहम्। केवलं ज्ञानरूपोऽहं केवलं परमोऽस्म्यहम् ॥ १ ॥

कुमार ने शिवजी से प्रश्न किया— हे तात! आप आत्मानुभव का वर्णन करें। शिवजी बोले— पुत्र, मैं परब्रह्मस्वरूप तथा परमानन्दरूप हूँ। मैं केवल ज्ञानरूप हूँ और केवल परम हूँ ॥ १ ॥

केवलं शान्तरूपोऽहं केवलं चिन्मयोऽस्म्यहम्। केवलं नित्यरूपोऽहं केवलं शाश्वतोऽस्म्यहम् ॥ २ ॥

केवल शान्तरूप तथा केवल चिन्मय हूँ। केवल नित्यरूप और शाश्वत हूँ॥ २ ॥

केवलं सत्त्वरूपोऽहमहं त्यक्त्वाहमस्म्यहम्। सर्वहीनस्वरूपोऽहं चिदाकाशमयोस्म्यहम् ॥ ३ ॥

केवल सत्त्वरूप हूँ तथा अहंकार त्याग कर अहम् हूँ। सब स्वरूपों से ही चिदाकाशरूप हूँ॥ ३ ॥

केवलं तुर्यरूपोऽस्मि तुर्यातीतोऽस्मि केवलः। सदा चैतन्यरूपोऽस्मि चिदानन्दमयोऽस्म्यहम् ॥४॥

केवल तुर्यरूप हूँ और केवल तुर्यातीत हूँ। केवल चैतन्यरूप हूँ और सदा चिदानन्दमय हूँ॥ ४ ॥

केवलाकाररूपोऽस्मि शुद्धरूपोऽस्म्यहं सदा। केवलं ज्ञानरूपोऽस्मि केवलं प्रियमस्म्यहम् ॥ ५ ॥

केवल आकाररूप हूँ तथा शुद्धरूप हूँ। केवल ज्ञानरूप और प्रिय हूँ॥ ५ ॥

निर्विकल्पस्वरूपोऽस्मि निरीहोऽस्मि निरामयः। सदाऽसङ्गस्वरूपोऽस्मि निर्विकारोऽहमव्ययः ॥ ६ ॥

केवल निर्विकल्प स्वरूप वाला, निरीह और निरामय (रोगरहित) हूँ। सदा असंग-स्वरूप, निर्विकार और अव्यय हूँ ।। ६ ।।

सदैकरसरूपोऽस्मि सदा चिन्मात्रविग्रहः। अपरिच्छिन्नरूपोऽस्मि ह्यखण्डानन्दरूपवान् ॥ ७ ॥

सदा एकरस हूँ सदा चिन्मात्र-शरीर हूँ। अपरिच्छिन्न अर्थात् अखण्ड रूप वाला हूँ ।। ७ ।।

सत्परानन्दरूपोऽस्मि चित्परानन्दमस्म्यहम्। अन्तरान्तररूपोऽहमवाङ्मनसगोचरः ॥ ८ ॥

मैं सत्परानन्द-रूपवान् तथा चित्परानन्द रूपवान् हूँ। अन्तः में मात्र अन्तःरूप के आकार वाला हूँ। जो वाणी तथा मन से अगोचर है ।। ८ ।।

आत्मानन्दस्वरूपोऽहं सत्यानन्दोऽस्म्यहं सदा । आत्मारामस्वरूपोऽस्मि ह्यहमात्मा सदाशिवः॥ ९ ॥

मैं आत्मानन्द स्वरूप हूँ मैं सदा सत्यानन्द हूँ मैं आत्माराम स्वरूप हूँ मैं निश्चित रूप से सदाशिव हूँ। ९ ।।

आत्मप्रकाशरूपोऽस्मि ह्यात्मज्योती रसोऽस्म्यहम्। आदिमध्यान्तहीनोऽस्मि ह्याकाशसदृशोऽस्म्यहम् ॥ १० ॥

मैं आत्मप्रकाश रूप वाला, आत्मज्योति, रस हूँ। आदि, मध्य, अन्त से हीन आकाश के सदृश हूँ। १० ।।

नित्यशुद्धचिदानन्दसत्तामात्रोऽहमव्ययः। नित्यबुद्धविशुद्धैकसच्चिदानन्दमस्म्यहम् ॥ ११ ॥

नित्यशुद्ध, चिदानन्द-सत्तामात्र हूँ। अव्यय हूँ। नित्यशुद्ध, बुद्ध, एक सच्चिदानन्दरूप हूँ ।। ११ ।।

नित्यशेषस्वरूपोऽस्मि सर्वातीतोऽस्म्यहं सदा । रूपातीतस्वरूपोऽस्मि परमाकाशविग्रहः॥ १२ ॥

नित्य-शेषस्वरूप हूँ, सर्वातीत हूँ, रूपातीत स्वरूप हूँ, परमाकाश-शरीर हूँ।। १२ ।।

भूमानन्दस्वरूपोऽस्मि भाषाहीनोऽस्म्यहं सदा । सर्वाधिष्ठानरूपोऽस्मि सर्वदा चिद्घनोऽस्म्यहम् ॥ १३ ॥

मैं भूमानन्द-स्वरूप हूँ तथा सदा भाषाहीन हूँ। सबका अधिष्ठानरूप हूँ, सदा चिद्घनरूप हूँ ।। १३ ।।

देहभावविहीनोऽस्मि चिन्ताहीनोऽस्मि सर्वदा । चित्तवृत्तिविहीनोऽहं चिदात्मैकरसोऽस्म्यहम् ॥ १४ ॥

देहभाव से हीन हूँ, सदा चिन्ता से मुक्त हूँ। चित्तवृत्ति से विहीन हूँ तथा चिदात्मैकरस हूँ।। १४ ।।

सर्वदृश्यविहीनोऽहं दृग्रूपोऽस्म्यहमेव हि । सर्वदा पूर्णरूपोऽस्मि। नित्यतृप्तोऽस्म्यहं सदा ॥ १५॥

सर्वदृश्य-विहीन हूँ, केवल दृग्रूप हूँ। सदा पूर्णरूप और नित्यतृप्त हूँ।। १५ ।।

अहं ब्रह्मैव सर्वं स्यादहं चैतन्यमेव हि । अहमेवाहमेवास्मि भूमाकाशस्वरूपवान्।। १६ ॥

मैं (केवल) ब्रह्म ही हूँ, केवल चैतन्य हूँ। मैं ही मैं हूँ, भूमाकाश स्वरूप वाला हूँ।। १६ ।।

अहमेव महानात्मा ह्यहमेव परात्परः। अहमन्यवदाभामि ह्यहमेव शरीरवत्।। १७ ॥

मैं ही महानात्मा, मैं ही परात्पर हूँ। मैं ही अन्यवत् आभासित होता हूँ मैं ही शरीरवत् आभासित होता हूँ।। १७ ॥

अहं शिष्यवदाभामि ह्ययं लोकत्रयाश्रयः। अहं कालत्रयातीत अहं वेदैरुपासितः।। १८ ॥

मैं ही शिष्यवत् दीखता हूँ, मैं ही तीनों लोकों का आश्रय हूँ। मैं ही कालत्रय से अतीत हूँ, मैं ही वेदों से उपासित हूँ।। १८ ।।

अहं शास्त्रेण निर्णीत अहं चित्ते व्यवस्थितः। मत्त्यक्तं नास्ति किंचिद्वा मत्त्यक्तंपृथिवी च वा ॥ १९ ॥

मैं ही शास्त्र से निर्णय किया गया हूँ। मैं ही चित्त में व्यवस्थित हूँ। मुझसे पृथक् कुछ भी नहीं, यह पृथिवी भी नहीं ।। १९ ।।

मयातिरिक्तंयद्यद्वा तत्तन्नास्तीति निश्चिनु । अहं ब्रह्मास्मि सिद्धोऽस्मि नित्य शुद्धोऽस्म्यहं सदा ॥ २० ॥

मुझसे अतिरिक्त जो है, वह नहीं है यह निश्चय मानो। मैं ही ब्रह्म हूँ, सिद्ध हूँ, नित्य-शुद्ध हूँ।। २० ॥

निर्गुणः केवलात्मास्मि निराकारोऽस्म्यहं सदा । केवलं ब्रह्ममात्रोऽस्मि ह्यजरोऽस्म्यमरोऽस्म्यहम् ॥ २१ ॥

मैं निर्गुण, केवल आत्मा हूँ निराकार हूँ, केवल ब्रह्ममात्र हूँ, अजर हूँ, अमर हूँ ।। २१ ।।

स्वयमेव स्वयं भामि स्वयमेव सदात्मकः। स्वमेवात्मनि स्वस्थः स्वयमेव परागतिः ॥ २२ ॥

मैं स्वयं ही स्वयं लगता हूँ- भासित होता हूँ तथा स्वयं सदा आत्मरूप हूँ, स्वयं आत्मा में स्वस्थ हूँ, स्वयं ही परागति हूँ ।। २२ ।।

स्वयमेव स्वयंभुञ्जे स्वयमेव स्वयं रमे। स्वयमेव स्वयं ज्योतिः स्वयमेव स्वयं महः।। २३ ॥

स्वयं ही स्वयं का भोग करता हूँ। स्वयं ही स्वयं में रमण करता हूँ। स्वयं ही स्वयं ज्योति हूँ। स्वयं ही स्वयं तेज (प्रकाश) हूँ ।। २३ ।।

स्वस्यात्मनि स्वयं रंस्ये स्वात्मन्येव विलोकये। स्वात्मन्येव सुखासीनः स्वात्ममात्रावशेषकः॥ २४ ॥

मैं स्वयं स्वात्मा में रमण करता हूँ, स्वात्मा में ही दर्शन करता हूँ। स्वात्मा में सुख से बैठा हुआ स्वात्मामात्र ही शेष रहता हूँ॥ २४ ॥

स्वचैतन्ये स्वयं स्थास्ये स्वात्मराज्ये सुखे रमे। स्वात्मसिंहासने स्थित्वा स्वात्मनोऽन्यन्न चिन्तये॥ २५ ॥

स्व-चैतन्य में स्वयं स्थित हूँ, स्वात्म-राज्य में सुखपूर्वक रमण करता हूँ। स्वात्म-सिंहासन पर स्थित हो स्वात्मा में अन्यत् नहीं देखता॥ २५ ॥

चिद्रूपमात्रं ब्रह्मैव सच्चिदानन्दमद्वयम्। आनन्दघन एवाहमहं ब्रह्मास्मि केवलम्॥ २६ ॥

चिद्रूपमात्र ब्रह्म है, सच्चिदानन्द और एक है। मैं आनन्दघन ही हूँ। मैं केवल ब्रह्म हूँ॥ २६ ॥

सर्वदा सर्वशून्योऽहं सर्वात्मानन्दवानहम्। नित्यानन्दस्वरूपोऽहमात्माकाशोऽस्मि नित्यदा॥ २७ ॥

मैं सदा सबसे शून्य, सर्वात्मा, आनन्दवान् हूँ, नित्यानन्द-स्वरूप और नित्यआत्माकाश हूँ॥ २७ ॥

अहमेव हृदाकाशश्चिदादित्यस्वरूपवान्। आत्मनात्मनि तृप्तोऽस्मि ह्यरूपोऽस्म्यहमव्ययः॥ २८ ॥

मैं ही हृदाकाश और चिदादित्य-रूपवान् हूँ। आत्मा से आत्मा में तृप्त हूँ। मैं अरूप हूँ, अव्यय हूँ॥ २८ ॥

एकसंख्याविहीनोऽस्ति नित्यमुक्तस्वरूपवान्। आकाशादपि सूक्ष्मोऽहमाद्यन्ताभाववानहम्॥ २९ ॥

एक संख्या से विहीन नित्यमुक्त, स्वरूपवान् हूँ। मैं आकाश से भी सूक्ष्म आदि और अन्त से मुक्त हूँ॥ २९ ॥

सर्वप्रकाशरूपोऽहं परावरसुखोऽस्म्यहम्। सत्तामात्रस्वरूपोऽहं शुद्धमोक्षस्वरूपवान्॥ ३० ॥

मैं सर्वप्रकाश रूप हूँ, परावरसुख रूप हूँ। सत्तामात्र स्वरूप हूँ, शुद्ध-मोक्ष स्वरूपवान् हूँ॥ ३० ॥

सत्यानन्दस्वरूपोऽहं ज्ञानानन्दघनोऽस्म्यहम्। विज्ञानमात्ररूपोऽहं सच्चिदानन्दलक्षणः॥ ३१ ॥

सत्यानन्द स्वरूप हूँ, ज्ञानानन्दघन हूँ। मैं केवल विज्ञानमात्ररूप हूँ और सच्चिदानन्द लक्षण हूँ॥ ३१ ॥

ब्रह्ममात्रमिदं सर्वं ब्रह्मणोऽन्यन्न किंचन। तदेवाहं सदानन्दं ब्रह्मैवाहं सनातनम्॥ ३२ ॥

यह दृश्य प्रपञ्च ब्रह्ममात्र है, उससे अतिरिक्त कुछ नहीं। मैं वही सदानन्द सनातन ब्रह्म ही हूँ॥ ३२ ॥

त्वमित्येतत्तदित्येतन्मत्तोऽन्यन्नास्ति किंचन। चितन्यस्वरूपोऽहमहमेव परः शिवः॥ ३३ ॥

तुमसे सम्बन्धित उससे सम्बन्धित मेरे सिवा कुछ नहीं है। मैं चित् चैतन्य रूप मैं ही शिव हूँ।। ३३ ।।

अतिभावस्वरूपोऽहमहमेव सुखात्मकः। साक्षिवस्तुविहीनत्वात्साक्षित्वं नास्ति मे सदा ॥ ३४ ॥

मैं ही अतिभाव-स्वरूप और सुखात्मक हूँ। साक्षी वस्तु न होने से मेरा कोई साक्षी नहीं है ।। ३४ ।।

केवलं ब्रह्ममात्रत्वादहमात्मा सनातनः। अहमेवादिशेषोऽहमहं शेषोऽहमेव हि ॥ ३५ ॥

केवल ब्रह्ममात्र होने से मैं सनातन आत्मा हूँ। मैं ही आदिशेष हूँ, मैं ही शेष हूँ।। ३५ ।।

नामरूपविमुक्तोऽहमहमानन्दविग्रहः। इन्द्रियाभावरूपोऽहं सर्वभावस्वरूपकः॥ ३६ ॥

नाम रूप से मुक्त मैं केवल आत्मानन्द-स्वरूप हूँ। इन्द्रियाभाव रूप मैं सबभावों के स्वरूप वाला हूँ।। ३६ ।।

बन्धमुक्तिविहीनोऽहं शाश्वतानन्दविग्रहः। आदिचैतन्यमात्रोऽहमखण्डैकरसोऽस्म्यहम् ॥ ३७ ॥

मैं बन्धन-मुक्ति से भी मुक्त हूँ, शाश्वत आनन्द विग्रह हूँ। मैं आदि चैतन्यमात्र, अखण्डैकरस हूँ।। ३७ ।।

वाङ्मनोऽगोचरश्चाहं सर्वत्र सुखवानहम्। सर्वत्र पूर्णरूपोऽहं भूमानन्दमयोऽस्म्यहम्॥ ३८ ॥

वाणी, मन से अगोचर सर्वत्र सुखवान् हूँ। सर्वत्र पूर्णरूप और भूमानन्दमय हूँ।। ३८ ।।

सर्वत्र तप्तिरूपोऽहं परामृतरसोऽस्म्यहम्। एकमेवाद्वितीयं सद्ब्रह्मैवाहं न संशयः॥ ३९ ॥

सर्वत्र तृप्तिरूप, परामृतरसरूप हूँ। मैं एक ही अद्वितीय सद्ब्रह्म हूँ। इसमें कोई संशय नहीं।। ३९ ।।

सर्वशून्यस्वरूपोऽहं सकलागमगोचरः। मुक्तोऽहं मोक्षरूपोऽहं निर्वाणसुखरूपवान् ॥ ४० ॥

मैं सर्वशून्य-स्वरूप हूँ, सारे वेद-शास्त्रों से अगोचर हूँ। मैं मुक्त रूप, मोक्ष रुप और निर्वाण-सुख रूपवान् हूँ।। ४० ।।

सत्यविज्ञानमात्रोऽहं सन्मात्रानन्दवानहम्। तुरीयातीतरूपोऽहं निर्विकल्पस्वरूपवान् ॥ ४१ ॥

मैं सत्यविज्ञान मात्र और सन्मात्र आनन्दवान् हूँ। तुरीयातीतरूप हूँ तथा निर्विकल्प स्वरूप वाला हूँ।। ४१ ।।

सर्वदा ह्यजरूपोऽहं नीरागोऽस्मि निरञ्जनः। अहं शुद्धोऽस्मि बुद्धोऽस्मि नित्योऽस्मि प्रभुरस्म्यहम् ॥ ४२ ॥

सदा जन्म न लेने वाला, रागरहित, निरञ्जन हूँ। मैं शुद्ध-बुद्ध-नित्य और प्रभु हूँ।। ४२ ।।

ओङ्कारार्थस्वरूपोऽस्मि निष्कलङ्कमयोऽस्म्यहम्। चिदाकारस्वरूपोऽस्मि नाहमस्मि

न सोऽस्म्यहम् ॥ ४३ ॥

मैं ओङ्कार के अर्थ-स्वरूप वाला हूँ, निष्कलंकमय हूँ। चिदाकार स्वरूप वाला मैं न अहम् रूप में हूँ, न तत् रूप में हूँ ।। ४३ ।।

न हि किंचित्स्वरूपोऽस्मि निर्व्यापारस्वरूपवान्। निरंशोऽस्मि निराभासो न मनो नेन्द्रियोऽस्म्यहम् ॥४४॥

मेरा कोई स्वरूप नहीं, मेरी कोई क्रिया नहीं। मैं अंशरहित-आभासरहित न मन हूँ, न इन्द्रिय हूँ ।। ४४ ।।

न बुद्धिर्न विकल्पोऽहं न देहादित्रयोऽस्म्यहम् । न जाग्रत्स्वप्नरूपोऽहं न सुषुप्तिस्वरूपवान् ॥ ४५ ॥

न बुद्धि हूँ, न विकल्प हूँ, न तीनों शरीरों से मेरा सम्बन्ध है। न जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति से मेरा कोई सम्बन्ध है ।। ४५ ।।

न तापत्रयरूपोऽहं नेषणात्रयवानहम् । श्रवणं नास्ति मे सिद्धेर्मननं च चिदात्मनि ॥ ४६ ॥

तीनों तापों से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। न तीनों एषणाओं (वित्तैषणा-पुत्रैषणा-लोकैषणा) से मेरा सम्बन्ध है। न चिदात्मा में कोई श्रवण अथवा सिद्धि विषयक मनन है ।। ४६ ।।

सजातीयं न मे किंचिद्विजातीयं न मे क्वचित् । स्वगतं च न मे किंचिन्न मे भेदत्रयं क्वचित् ॥ ४७ ॥

न मेरा कोई सजातीय है, न कोई विजातीय है। न कोई मेरे स्वगत है, न मेरे कहीं तीन भेद हैं ।। ४७ ।।

असत्यं हि मनोरूपमसत्यं बुद्धिरूपकम् । अहंकारमसद्धीति नित्योऽहं शाश्वतो ह्यजः ॥ ४८ ॥

क्योंकि मनरूप भी असत्य है, बुद्धिरूप भी असत्य है। अहंकाररूप भी असत्य है, मैं तो नित्य शाश्वत और अजन्मा हूँ ।। ४८ ।।

देहत्रयमसद्विद्धि कालत्रयमसत्सदा । गुणत्रयमसद्विद्धि ह्यहं सत्यात्मकः शुचिः ॥ ४९ ॥

मेरे लिए तीनों देह (स्थूल-सूक्ष्म-कारण) असत्य हैं। तीनों काल (भूत-भविष्यत्-वर्तमान) भी असत्य हैं। गुणत्रय (सत्त्व रज तम) भी असत्य हैं। मैं केवल सत्य पवित्र हूँ।। ४९ ।।

श्रुतं सर्वमसद्विद्धि वेदं सर्वमसत्सदा । शास्त्रं सर्वमसद्विद्धि ह्यहं सत्यचिदात्मकः ॥ ५० ॥

शास्त्र और वेद इनको मेरे सम्बन्ध में असत्य ही जानो अर्थात् मैं शास्त्र और वेद नहीं हूँ। न श्रुत (उपनिषद्) हूँ, मैं तो सच्चिदानन्दरूप हूँ ।। ५० ।।

मूर्तित्रयमसिद्विद्धि सर्वभूतमसत्सदा । सर्वत्तत्वमसद्विद्धि ह्यहं भूमा सदाशिवः ॥ ५१ ॥

तीनों मूर्तियाँ (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) असत्य हैं। सारे भूत असत्य हैं, सारे तत्त्व असत्य हैं, मैं तो भूमा सदा शिव हूँ॥ ५१ ॥

गुरुशिष्यमसद्विद्धि गुरोर्मन्त्रमसत्ततः। यद्दृश्यं तदसद्विद्धि न मां विद्धि तथाविधम् ॥ ५२ ॥

गुरु-शिष्य, गुरु-मन्त्र सब असत्य हैं। जो भी दृश्य है, वह सब असत्य है। मुझे इस प्रकार का मत समझो॥ ५२ ॥

यच्चिन्त्यं तदसद्विद्धि यद्वाच्यं तदसत्सदा। यद्धितं तदसद्विद्धि न मां विद्धि तथा विम् ॥ ५३ ॥

जो चिन्तनीय है, जो करणीय अथवा न्यायोचित है, वह सब असत्य है। जो हितकारी है, वह भी असत्य है। मुझे वैसा मत जानो॥ ५३ ॥

सर्वान्प्राणानसद्विद्धि सर्वान्भोगानसत्त्विति। दृष्टं श्रुतमसद्विद्धि ओतं प्रोतमसन्मयम् ॥ ५४ ॥

सब प्राणों को, सब भोगों को असत् मानो, दृष्ट को श्रुत को असत्य समझो, ओत-प्रोत सब असत्य हैं॥ ५४ ॥

कार्याकार्यमसद्विद्धि नष्टं प्राप्तमसन्मयम्। दुःखादुःखमसद्विद्धि सर्वासर्वमसन्मयम् ॥ ५५ ॥

कार्य, अकार्य को, प्राप्त हुए और नष्ट हुए को, सुख-दुःख को तथा सर्व-असर्व को भी असत्य ही जानो॥ ५५ ॥

पूर्णापूर्णमसद्विद्धि धर्माधर्ममसन्मयम्। लाभालाभावसद्विद्धि जयाजयमसन्मयम् ॥ ५६ ॥

पूर्ण-अपूर्ण को, धर्म-अधर्म को, लाभ-अलाभ को तथा जय-पराजय को असत्य ही जानो॥ ५६ ॥

शब्दं सर्वमसद्विद्धि स्पर्शं सर्वमसत्सदा। रूपं सर्वमसद्विद्धि रसं सर्वमसन्मयम् ॥ ५७ ॥

समस्त शब्द, स्पर्श, रूप, रस को असत्य ही जानो॥ ५७ ॥

गन्धं सर्वमसद्विद्धि सर्वाज्ञानमसन्मयम्। असदेव सदा सर्वमसदेव भवोद्भवम्॥ ५८ ॥

गन्ध तथा सारे अज्ञान को असत्य समझो। सब कुछ असत्य है, यह सबका उद्भव ही असत्य है॥ ५८ ॥

असदेव गुणं सर्वं सन्मात्रमहमेव हि। स्वात्ममन्त्रं सदा पश्येत्स्वात्मन्त्रं सदाभ्यसेत् ॥ ५९ ॥

सब गुण असत्य हैं, सत्य केवल मैं ही हूँ। स्वात्म-मन्त्र को ही सदा देखो और स्वात्म-मन्त्र का ही सदा अभ्यास करो॥ ५९ ॥

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं दृश्यपापं विनाशयेत्। अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयमन्यमन्त्रं विनाशयेत् ॥ ६० ॥

"अहं ब्रह्मास्मि" यह मन्त्र सारे दृश्यों का, पापों का विनाशक है। अहं ब्रह्मास्मि मन्त्र अन्य मन्त्रों का भी विनाश कर देता है ॥ ६० ॥

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं देहदोषं विनाशयेत्। अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं जन्मपापं विनाशयेत् ॥ ६१ ॥

"अहं ब्रह्मास्मि" यह मन्त्र देह-दोष को तथा जन्मों के पापों का विनाश करने वाला है ॥ ६१ ॥

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं मृत्युपाशं विनाशयेत्। अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं द्वैतदुःखं विनाशयेत् ॥ ६२ ॥

"अहं ब्रह्मास्मि" यह मन्त्र मृत्युपाश को काट देता है। यह मन्त्र द्वैत के दुःख को विनष्ट कर देता है ॥ ६२ ॥

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं भेदबुद्धिं विनाशयेत्। अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं चिन्तादुःखं विनाशयेत् ॥ ६३ ॥

"अहं ब्रह्मास्मि" यह मन्त्र भेद-बुद्धि को नष्ट कर देता है। "अहं ब्रह्मास्मि" यह मन्त्र चिन्ता दुःख को विनष्ट कर देता है ॥ ६३ ॥

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं बुद्धिव्याधिं विनाशयेत्। अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं चित्तबन्धं विनाशयेत् ॥ ६४ ॥

"अहं ब्रह्मास्मि" यह मन्त्र बुद्धिव्याधि को नष्ट कर देता है। "अहं ब्रह्मास्मि" मन्त्र चित्त के बन्धन को काट देता है ॥ ६४ ॥

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं सर्वव्याधीन्विनाशयेत्। अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं सर्वशोकं विनाशयेत् ॥ ६५ ॥

"अहं ब्रह्मास्मि" यह मन्त्र समस्त व्याधियों का नाश करने वाला है। "अहं ब्रह्मास्मि" यह मन्त्र सारे शोकों का नाश करने वाला है ॥ ६५ ॥

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं कामादीन्नाशयेत्क्षणात्। अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं क्रोधशक्तिं विनाशयेत् ॥ ६६ ॥

"अहं ब्रह्मास्मि" यह मन्त्र कामादि विकारों का नाश कर देता है तथा "अहं ब्रह्मास्मि" यह मन्त्र क्रोध की शक्ति का क्षय कर देता है ॥ ६६ ॥

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं चित्तवृत्तिं विनाशयेत्। अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं संकल्पादीन्विनाशयेत् ॥ ६७ ॥

"अहं ब्रह्मास्मि" यह मन्त्र चित्तवृत्तियों को समाप्त करता है तथा "अहं ब्रह्मास्मि" यह मन्त्र सङ्कल्प इत्यादि को नष्ट कर देता है ।। ६७ ।।

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं कोटिदोषं विनाशयेत् । अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं सर्वतन्त्रं विनाशयेत्॥ ६८॥

"अहं ब्रह्मास्मि" यह मन्त्र चित्त-वृत्तियों को समाप्त करता है तथा "अहं ब्रह्मास्मि" यह मन्त्र करोड़ों दोषों का विनाशक है। "अहं ब्रह्मास्मि" यह मन्त्र सारे तन्त्रजाल का ही विनाशक है ।। ६८ ।।

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयमात्मज्ञानं विनाशयेत्। अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयमात्मलोकजयप्रदः॥ ६९ ॥

"अहं ब्रह्मास्मि" यह मन्त्र आत्मा के अज्ञान को भगा देता है। "अहं ब्रह्मास्मि" यह मन्त्र आत्मा को आलोक और विजय प्रदान करता है ।। ६९ ।।

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयमप्रतर्क्यसुखप्रदः। अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयमजडत्वं प्रयच्छति॥ ७० ॥

"अहं ब्रह्मास्मि" यह मन्त्र तर्क हीन सुख देने वाला है तथा "अहं ब्रह्मास्मि" यह मन्त्र आत्मा की जड़ता को दूर करने वाला है ।। ७० ।।

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयमनात्मासुरमर्दनः। अहं ब्रह्मास्मि वज्रोऽयमनात्माख्यगिरीन्हरेत् ॥ ७१ ॥

"अहं ब्रह्मास्मि" यह मन्त्र अनात्मरूप असुर का मर्दनकर्त्ता और "अहं ब्रह्मास्मि" यह मन्त्ररूप वज्र अनात्मरूप पर्वतों का विनाशक है ।। ७१ ।।

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयमनात्माख्यासुरान्हरेत्। अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं सर्वांस्तान्मोक्षयिष्यति ॥ ७२ ॥

"अहं ब्रह्मास्मि" यह मन्त्र अनात्मरूप असुरों का विनाशक है तथा "अहं ब्रह्मास्मि" यह मन्त्र उन सबको मोक्ष दिलाने वाला है ।। ७२ ।।

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं ज्ञानानन्दं प्रयच्छति। सप्तकोटिमहामन्त्रं जन्मकोटिशतप्रदम् ॥ ७३ ॥

"अहं ब्रह्मास्मि" यह मन्त्र ज्ञानानन्द प्रदान करता है। इस मन्त्र का जप अनेक जन्मों के पापों का क्षय करने वाला है ।। ७३ ।।

सर्वमन्त्रान्समुत्सृज्य एतं मन्त्रं समभ्यसेत् । सद्यो मोक्षमवाप्नोति नात्र संदेहमण्वपि ॥ ७४ ॥

सारे मन्त्रों को त्याग कर, इस मन्त्र का ही अभ्यास करने से इस जन्म में मोक्ष की प्राप्ति होती है, इस में अणुमात्र भी सन्देह नहीं ॥ ७४ ॥

॥ इति तेजोबिन्दूपनिषत्सु तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

कुमारः परमेश्वरं पप्रच्छ जीवन्मुक्तविदेहमुक्तयोः स्थितिमनुब्रूहीति। स होवाच परः शिवः। चिदात्माहं परात्माहं निर्गुणोऽहं परात्परः। आत्ममात्रेण यस्तिष्ठेत्स जीवन्मुक्त उच्यते ॥१॥

कुमार कार्तिकेय ने पिता शिवजी से पूछा- हे तात! जीवन्मुक्त और विदेह मुक्त की स्थितियों का अन्तर बताइये। शिवजी बोले- जो पुरुष मैं चिदात्मा हूँ, परात्मा हूँ, निर्गुण और परात्पर हूँ, मैं केवल आत्मा हूँ, इस स्थिति में उपस्थित है, वह जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥ १ ॥

देहत्रयातिरिक्तोऽहं शुद्धचैतन्यमस्म्यहम् । ब्रह्माहमिति यस्यान्तः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ २ ॥

मैं तीनों शरीरों से मुक्त हूँ, मैं शुद्ध चैतन्य हूँ, मैं ब्रह्म हूँ, इस स्थिति का जिसका अन्तःकरण साक्षी है, वह जीवन्मुक्त है ॥ २ ॥

आनन्दघनरूपोऽस्मि परानन्दघनोऽस्म्यहम् । यस्य देहादिकं नास्ति यस्य ब्रह्मेति निश्चयः। परमानन्दपूर्णो यः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ३ ॥

मैं आनन्द घनरूप हूँ, मैं परानन्द-घनरूप हूँ। जिसका देहादि का भान समाप्त हो गया, ब्रह्मत्व में जिसका निश्चय है तथा जो परमानन्दपूर्ण है, वह जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥ ३ ॥

यस्य किंचिदहं नास्ति चिन्मात्रेणावतिष्ठते । चैतन्यमात्रो यस्यान्तश्चिन्मात्रेकस्वरूपवान् ॥ ४ ॥

जिसमें तनिक भी अहंकार नहीं है, जो चिन्मात्र में अवस्थित है। जिसका अन्तःकरण चैतन्यमात्र की ही अनुभूति करता है तथा जो चिन्मात्र-स्वरूपवान् है, वह जीवन्मुक्त है ॥ ४ ॥

सर्वत्र पूर्णरूपात्मा सर्वत्रात्मावशेषकः। आनन्दरतिरव्यक्तः परिपूर्णश्चिदात्मकः ॥ ५ ॥

जो सर्वत्र पूर्ण रूप से आत्मभाव में स्थित है। सर्वत्र आत्मा-मात्र ही शेष है। आनन्द की रति अनुभव करता है, अव्यक्त, परिपूर्ण और चिदात्मक है ॥ ५ ॥

शुद्धचैतन्यरूपात्मा सर्वसङ्गविवर्जितः। नित्यानन्दः प्रसन्नात्मा ह्यन्यचिन्ताविवर्जितः ॥ ६ ॥

शुद्धचैतन्य-रूपात्मा, सब सङ्गों से पृथक्, नित्यानन्द, प्रसन्नात्मा अन्य चिन्ताओं से मुक्त है ॥ ६ ॥

किंचिदस्तित्वहीनो यः स जीवन्मुक्त उच्यते। न मे चित्तं न मे बुद्धिर्नाहंकारो न चेन्द्रियम् ॥ ७ ॥

किसी अस्तित्व से हीन जो पुरुष है, वही जीवन्मुक्त कहलाता है। न मेरा चित्त है, न बुद्धि-अहङ्कार तथा इन्द्रियाँ हैं ॥ ७ ॥

न मे देहः कदाचिद्वा न मे प्राणादयः क्वचित्। न मे माया न मे कामो न मे क्रोधः परोऽस्म्यहम् ॥ ८ ॥

न मेरा शरीर है, न कहीं प्राणादि हैं, न माया है, न काम है, न क्रोध है; मैं इन सबसे पर (पृथक्) हूँ॥ ८ ॥

न मे किंचिदिदं वापि न मे किंचित्क्वचिज्जगत्। न मे दोषो न मे लिङ्गं न मे चक्षुर्न मे मनः॥ ९ ॥

न मेरे लिए यह सब कुछ है, न कोई कहीं जगत् है। न मेरा कोई दोष है, न लिङ्ग है, न चक्षु है, न मन है ॥ ९ ॥

न मे श्रोत्रं न मे नासा न मे जिह्वा न मे करः। न मे जाग्रन्न मे स्वप्नं न मे कारणमण्वपि ॥ १० ॥

न मेरे श्रोत्र, न मेरी नासिका, न मेरी जिह्वा, न मेरे हाथ हैं। न मेरा जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति से कोई सम्बन्ध है, न मेरा अणुमात्र भी कोई कारण है ॥ १० ॥

न मे तुरीयमिति यः स जीवन्मुक्त उच्यते। इदं सर्वं न मे किंचिदयं सर्वं न मे क्वचित् ॥ ११ ॥

न मेरी तुरीयावस्था है, ऐसा जो अनुभव करता है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है। यह सब मेरा नहीं है, न कुछ है, न कहीं है ॥ ११ ॥

न मे कालो न मे देशो न मे वस्तु न मे मतिः। न मे स्नानं न मे संध्या न मे दैवं न मे स्थलम् ॥ १२ ॥

देश, काल, वस्तु, मति, स्नान, सन्ध्या, दैव, स्थल इनमें से मेरा कुछ भी नहीं है ॥ १२ ॥

न मे तीर्थं न मे सेवा न मे ज्ञानं न मे पदम्। न मे बन्धो न मे जन्म न मे वाक्यं न मे रविः ॥ १३ ॥

तीर्थ-सेवा-ज्ञान-पद बन्ध--जन्म-वाक्य-सूर्य इनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं ॥ १३ ॥

न मे पुण्यं न मे पापं न मे कार्यं न मे शुभम् । न मे जीव इति स्वात्मा न मे किंचिज्जगत्त्रयम् ॥ १४ ॥

न पुण्य-पाप-कार्य-शुभ इनसे मेरा सम्बन्ध है और न जीवभाव से। मैं शुद्ध आत्मा हूँ। मेरा तीनों लोकों से कोई सम्बन्ध नहीं ॥ १४ ॥

न मे मोक्षो न मे द्वैतं न मे वेदो न मे विधिः। न मेऽन्तिकं न मे दूरं न मे बोधो न मे रहः ॥ १५ ॥

न मेरा मोक्ष है, न कोई द्वैत है, न वेद है, न विधि-विधान है। न पास है, न दूर है, न बोध है न एकान्त है ॥ १५ ॥

न मे गुरुर्न मे शिष्यो न मे हीनो न चाधिकः। न मे ब्रह्म न मे विष्णुर्न मे रुद्रो न चन्द्रमाः ॥ १६॥

गुरु-शिष्य, हीन-अधिक, ब्रह्मा-विष्णु, रुद्र-चन्द्रमा इनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है ॥ १६ ॥

न मे पृथ्वी न मे तोयं न मे वायुर्न मे वियत्। न मे वह्निर्न मे गोत्रं न मे लक्ष्यं न मे भवः ॥ १७ ॥

पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, वह्नि, गोत्र, लक्ष्य, भव, जगत्, ये मुझसे पृथक् हैं ॥ १७ ॥

न मे ध्याता न मे ध्येयं न मे ध्यानं न मे मनुः। न मे शीतं न मे चोष्णं न मे तृष्णा न मे क्षुधा ॥ १८ ॥

न मेरा ध्याता-ध्येय-ध्यान से कोई सम्बन्ध है, न मनु से। न शीत उष्ण, तृष्णा-क्षुधा इनसे मेरा सम्बन्ध है ॥ १८ ॥

न मे मित्रं न मे शत्रुर्न मे मोहो न मे जयः। न मे पूर्वं न मे पश्चान्न मे चोर्ध्वं न मे दिशः ॥ १९ ॥

मित्र-शत्रु-मोह-जय-पूर्व-पश्चात्-ऊपर-दिशा इनसे मेरा सम्बन्ध नहीं है ॥ १९ ॥

न मे वक्तव्यमल्पं वा न मे श्रोतव्यमण्वपि । न मे गन्तव्यमीषद्वा न मे ध्यातव्यमण्वपि ॥ २० ॥

न मेरे लिए कुछ कहने योग्य है, न मेरे लिए कुछ सुनने योग्य है। न मेरा कोई गन्तव्य है, न अणुमात्र भी मेरा ध्यातव्य है ॥ २० ॥

न मे भोक्तव्यमीषद्वा न मे स्मर्तव्यमण्वपि। न मे भोगो न मे रागो न मे यागो न मे लयः ॥ २१ ॥

न मेरे लिए कुछ खाने योग्य है, न मेरे लिए कुछ स्मरण करने योग्य है। न मेरा भोग, राग, याग, लय इनसे कोई सम्बन्ध है ॥ २१ ॥

न मे मौर्ख्यं न मे शान्तं न मे बन्धो न मे प्रियम्। न मे मोदः प्रमोदो वा न मे स्थूलं न मे कृशम्॥ २२ ॥

मूर्खता-शान्त-बन्ध-प्रिय, ये मेरे नहीं। मोद-प्रमोद, स्थूल-कृश इनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं॥ २२ ॥

न मे दीर्घं न मे ह्रस्वं न मे वृद्धिर्न मे क्षयः। अध्यारोपोऽपवादो वा न मे चैकं न मे बहु ॥ २३ ॥

दीर्घ-ह्रस्व-वृद्धि-क्षय से मेरा सम्बन्ध नहीं। अध्यारोप-अपवाद, एक-बहु मेरे नहीं ॥ २३ ॥

न मे आन्ध्यं न मे मान्द्यं न मे पटि्वदमण्वपि। न मे मांसं न मे रक्तं न मे मेदो न मे ह्यसृक् ॥ २४ ॥

न मेरा अन्धापन है, न मन्दता है और न पटुता से अणुमात्र भी सम्बन्ध है। न मेरा मांस-रक्तऔर मेद है ॥ २४ ॥

न मे मज्जा न मेऽस्थिर्वा न मे त्वग्धातुसप्तकम्। न मे शुक्लं न मे रक्तं न मे नीलं न मे पृथक् ॥ २५ ॥

न मज्जा-अस्थि-त्वचा इत्यादि सात धातुएँ मेरी हैं। न मेरा श्वेत-नीला या पृथक् (अन्य कोई रंग) है ॥ २५ ॥

न मे तापो न मे लाभो मुख्यं गौणं न मे क्वचित्। न मे भ्रान्तिर्न मे स्थैर्यं न मे गुह्यं न मे कुलम् ॥ २६ ॥

न मेरा ताप-लाभ, न मुख्य-गौण है। न मेरी भ्रान्ति-स्थिरता-गुह्य और कुल है॥ २६ ॥

न मे त्याज्यं न मे ग्राह्यं न मे हास्यं न मे नयः। न मे वृत्तं न मे ग्लानिर्न मे शोष्यं न मे सुखम् ॥ २७ ॥

न मेरा त्याज्य-ग्राह्य-हास्य-नय है। न मेरा वृत्त-ग्लानि-शोष्य-सुख है ॥ २७ ॥

न मे ज्ञाता न मे ज्ञानं न मे ज्ञेयं न मे स्वयम्। न मे तुभ्यं न मे मह्यं न मे त्वं च न मे त्वहम् ॥ २८ ॥

न मेरा ज्ञाता-ज्ञान ज्ञेय-स्वयं है। न मेरा तुभ्यम्-मह्यम्-त्वं-अहम् से कोई सम्बन्धहै ॥ २८ ॥

न मे जरा न मे बाल्यं न मे यौवनमण्वपि। अहं ब्रह्मास्म्यहं ब्रह्मास्म्यहं ब्रह्मेति निश्चयः ॥ २९ ॥

न अणुमात्र भी मेरी जरा-बाल्य-यौवन है। मैं तो केवल ब्रह्म हूँ। ब्रह्म हूँ यह निश्चय है ॥ २९ ॥

चिदहं चिदहं चेति स जीवन्मुक्त उच्यते। ब्रह्मैवाहं चिदेवाहं परो वाहं न संशयः॥ ३० ॥

मैं चित् हूँ, ऐसी निश्चयात्मक अनुभूति वाला जीवन्मुक्त है। मैं चित् हूँ, मैं चित् ही हूँ इसमें संशय नहीं ॥ ३० ॥

स्वयमेव स्वयं हंसः स्वयमेव स्वयं स्थितः। स्वयमेव स्वयं पश्येत्स्वात्मराज्ये सुखं वसेत्। स्वात्मानन्दं स्वयं भोक्ष्येत्स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ३१ ॥

स्वयं ही हंस हूँ, स्वयं ही स्थित हूँ। जो स्वयं ही स्वयं को देखता हुआ आत्म-राज्य में सुख से निवास करता है, स्वात्मानन्द का स्वयं भोग करता है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है ॥ ३१ ॥

स्वयमेवैकवीरोऽग्रे स्वयमेव प्रभुः स्मृतः। स्वस्वरूपे स्वयं स्वप्स्येत्स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ३२ ॥

स्वयमेव एकवीर है, स्वयं ही प्रभु कहा गया है। स्वस्वरूप में स्वयं सोने वाला जीवन्मुक्त कहा गया है ॥ ३२ ॥

ब्रह्मभूतः प्रशान्तात्मा ब्रह्मानन्दमयः सुखी। स्वच्छरूपो महामौनी वैदेही मुक्त एव सः॥ ३३ ॥

जो ब्रह्मभूत हुआ प्रशान्त-आत्मा वाला, ब्रह्मानन्दयुक्त सुखी है। जो स्वच्छ स्वरूपवाला महामौनी है, वह जीवन्मुक्त कहा जाता है॥ ३३ ॥

सर्वात्मा समरूपात्मा शुद्धात्मा त्वहमुत्थितः। एकवर्जित एकात्मा सर्वात्मा स्वात्ममात्रकः॥ ३४ ॥

जो सर्वात्मा-समरूपात्मा-शुद्धात्मा-स्वयं उठा हुआ, एक से पृथक्, एकात्मा- सर्वात्मा-स्वात्मामात्र वाला है ॥ ३४ ॥

अजात्मा चामृतात्माहं स्वयमात्माहमव्ययः। लक्ष्यात्मा ललितात्माहं तूष्णीमात्मस्वभाववान्॥ ३५ ॥

जो अजात्मा-अमृतात्मा, स्वयमात्मा-अव्यय-लक्ष्यात्मा-ललितात्मा, मौनी, आत्मस्वभाव वाला है॥ ३५ ॥

आनन्दात्मा प्रियो ह्यात्मा मोक्षात्मा बन्धवर्जितः। ब्रह्मैवाहं चिदेवाहमेवं वापि न चिन्त्यते॥ ३६ ॥

जो आनन्दात्मा-प्रिय-मोक्षवाला-बन्धन वर्जित, मैं ब्रह्म हूँ, मैं चिद् हूँ अथवा यह चिन्तन भी न करने वाला है ॥ ३६ ॥

चिन्मात्रेणैव यस्तिष्ठेद्वैदेही मुक्त एव सः ॥ ३७ ॥

जो चिन्मात्र से ही अवस्थित है, वह जीवन्मुक्त है ॥ ३७ ॥

निश्चयं च परित्यज्य अहं ब्रह्मेति निश्चयम्। आनन्दभरितस्वान्तो वैदेही मुक्त एव सः ॥ ३८ ॥

अन्यनिश्चय को त्यागकर केवल ब्रह्म हूँ, इस निश्चय वाला, आनन्द से परिपूर्ण आत्मा वाला जीवन्मुक्त है ॥ ३८ ॥

सर्वमस्तीति नास्तीति निश्चयं त्यज्य तिष्ठति। अहं ब्रह्मास्मि नास्मीति सच्चिदानन्दमात्रकः ॥ ३९ ॥

सब कुछ नहीं है अथवा है, इस निश्चय को त्यागकर, "अहं ब्रह्मास्मि", "न अस्मि" इस निश्चय से वर्तमान है, वह जीवन्मुक्त सच्चिदानन्द है ॥ ३९ ॥

किंचित्क्वचित्कदाचिच्च आत्मानं न स्पृशत्यसौ। तूष्णीमेव स्थितस्तूष्णीं तूष्णीं सत्यं न किंचन ॥ ४०॥

कुछ भी, कहीं भी, कभी भी वह आत्मा का स्पर्श नहीं करता अर्थात् स्वयं को जीवात्मा नहीं मानता। मौन रहकर सत्य की अनुभूति करता है, अन्य कुछ नहीं ॥ ४० ॥

परमात्मा गुणातीतः सर्वात्मा भूतभावनः। कालभेद वस्तुभेदं देशभेदं स्वभेदकम्॥ ४१ ॥

परमात्मा गुणातीत, सर्वात्मा, भूतभावन है। उसमें कालभेद, वस्तुभेद, देशभेद, स्वभेद ॥ ४१ ॥

किंचिद्भेदं न तस्यास्ति किंचिद्वापि न विद्यते। अहं त्वं तदिदं सोऽयं कालात्मा कालहीनकः ॥ ४२ ॥

उसका कुछ भी भेद नहीं है अथवा कुछ भी विद्यमान नहीं है। अहम्, त्वम्, तदिदम्, सोऽयम्, कालात्मा, काल से हीन इत्यादि कुछ भी नहीं है ॥ ४२ ॥

शून्यात्मा सूक्ष्मरूपात्मा विश्वात्मा विश्वहीनकः। देवात्मा देवहीनात्मा मेयात्मामेयवर्जितः॥ ४३ ॥

मैं शून्य आत्मा, सूक्ष्मरूपआत्मा, विश्व आत्मा विश्वहीनता युक्त। देवात्मा, देवहीनात्मा, मेयात्मा होकर भी मेय वर्जित अर्थात् किसी नाप में न आने वाला हूँ ॥ ४३ ॥

सर्वत्र जडहीनात्मा सर्वेषामन्तरात्मकः। सर्वसंकल्पहीनात्मा चिन्मात्रोऽस्मीति सर्वदा॥ ४४ ॥

सर्वत्र जड़हीन आत्मा, सबका अन्तरात्मा, सब सङ्कल्पों से हीनात्मा, मात्र चिद् रूप हूँ।। ४४ ।।

केवलः परत्मात्माहं केवलो ज्ञानविग्रहः। सत्तामात्रस्वरूपात्मा नान्यत्किंचिज्जगद्भयम्॥ ४५ ॥

केवल परमात्मा हूँ, केवल ज्ञान शरीर हूँ, सत्तामात्र शरीरवान् हूँ, मुझे जगत् का कुछ भी भय नहीं है ॥ ४५ ॥

अपरिच्छिन्नरूपात्मा अणुस्थूलादिवर्जितः। तुर्यतुर्यः परानन्दो वैदेही मुक्त एव सः ॥ ४८ ॥

वह अपरिच्छिन्न रूप वाला अणु, स्थूल आदि से रहित, तुर्य-तुर्य परानन्द स्वरूप विदेहमुक्त है।। ४८ ।।

नामरूपविहीनात्मा परसंवित्सुखात्मकः। तुरीयातीतरूपात्मा शुभाशुभविवर्जितः ॥ ४९ ॥

नाम, रूप से रहित, परसंवेदनशील, सुखात्मक, तुरीयातीत रूपवाला शुभ-अशुभ से मुक्त है।। ४९ ।।

योगात्मा योगयुक्तात्मा बन्धमोक्षविवर्जितः। गुणागुणविहीनात्मा देशकालादिवर्जितः ॥ ५० ॥

योगात्मा, योग युक्तात्मा, बन्ध-मोक्ष से मुक्त, गुण-दोष से मुक्तात्मा देश-कालादि से पृथक् है।। ५०।।

साक्ष्यसाक्षित्वहीनात्मा किंचित्किंचिन्न किंचन । यस्य प्रपञ्चमानं न ब्रह्माकारमपीह न॥ ५१ ॥

साक्ष्य और साक्षीपने से मुक्त, कुछ भी-कुछ भी-कुछ भी नहीं अर्थात् अकिञ्चतायुक्त। जिसका कोई प्रपञ्चमान नहीं, ब्रह्माकार भी नहीं है ।। ५१ ।।

स्वस्वरूपे स्वयंज्योतिः स्वस्वरूपे स्वयंरतिः। वाचामगोचरानन्दो वाङ्मनोगोचरःस्वयम् ॥ ५२ ॥

जिसकी स्वस्वरूप में स्वयं ज्योति है, स्वस्वरूप में स्वयं में रति है। वाणियों से अगोचर आनन्द वाला, भले ही स्वयं वाणी, मन से गोचर है।। ५२ ।।

अतीतातीतभावो यो वैदेही मुक्त एव सः। चित्तवृत्तेरतीतो यश्चित्तवृत्त्यवभासकः ॥ ५३ ॥

जो अतीतातीतभावयुक्त है, वह विदेह मुक्त है, चित्तवृत्ति से अतीत है, चित्तवृत्तियों का प्रकाशक है।। ५३ ।।

सर्ववृत्तिविहीनात्मा वैदेही मुक्त एव सः। तस्मिन्काले विदेहीति देहस्मरणवर्जितः ॥ ४५ ॥

सर्ववृत्तियों से विहीन आत्मावाला, वह विदेह मुक्त है। उस काल में विदेही देह के स्मरण से मुक्त है ।। ५४ ।।

ईषन्मात्रं स्मृतं चेद्यस्तदा सर्वसमन्वितः। परैरदृष्टबाह्यात्मा परमानन्दचिद्घनः॥ ५५ ॥

यदि थोड़ा स्मृत भी है, वह सबसे युक्त है। दूसरों से उसका दर्शन बाहर है। वह तो परमानन्द चिद्घन है ॥ ५५ ॥

परैरदृष्टबाह्यात्मा सर्ववेदान्तगोचरः। ब्रह्मामृतरसास्वादो ब्रह्मामृतरसायनः॥ ५६ ॥

दूसरों से अदृष्ट बाह्यात्मा वाला, सर्व वेदान्त से प्रत्यक्ष, ब्रह्मामृत रस का आस्वाद लेने वाला, ब्रह्मामृत रसायन-सम्पन्न है ॥ ५६ ॥

ब्रह्मामृतरसासक्तो ब्रह्मामृतरसः स्वयम् । ब्रह्मामृतरसे मग्नो ब्रह्मानन्दशिवार्चनः॥ ५७ ॥

ब्रह्मामृत रस में आसक्त है, ब्रह्मामृत रसरूप ही स्वयं है। ब्रह्मानन्द-रस में डूबा हुआ, ब्रह्मानन्दरूप शिव का अर्चन करने वाला है॥ ५७ ॥

ब्रह्मामृतरसे तृप्तो ब्रह्मानन्दानुभावकः। ब्रह्मानन्दशिवानन्दो ब्रह्मानन्दरसप्रभः॥ ५८ ॥

ब्रह्मानन्द रसामृत से तृप्त, ब्रह्मानन्द का अनुभवशील, ब्रह्मानन्दरूप शिव में आनन्दमग्न, ब्रह्मानन्द रस से प्रभावान् है॥ ५८ ॥

ब्रह्मानन्दपरं ज्योतिर्ब्रह्मानन्दनिरन्तरः। ब्रह्मानन्दरसान्नादो ब्रह्मानन्दकुटुम्बकः॥ ५९ ॥

ब्रह्मानन्द ही जिसकी परम ज्योति है, जो निरन्तर ब्रह्मानन्द में मग्न है, जो ब्रह्मानन्द रसरूप अन्न का भोजन करता है, जो ब्रह्मानन्द के कुटुम्ब में रहता है॥ ५९ ॥

ब्रह्मानन्दरसारूढो ब्रह्मानन्दैकचिद्घनः। ब्रह्मानन्दरसोद्वाहो ब्रह्मानन्दरसंभरः॥ ६० ॥

जो ब्रह्मानन्द रस में आरूढ़ है, जो ब्रह्मानन्दैक चिद्घन है, ब्रह्मानन्द रस को वहन करता है, ब्रह्मानन्द रस से भरा है॥ ६० ॥

ब्रह्मानन्दजनैर्युक्तो ब्रह्मानन्दात्मनि स्थितः। आत्मरूपमिदं सर्वमात्मानोऽन्यन्न किंचन॥ ६१ ॥

ब्रह्मानन्दरूप जनों से युक्त है, ब्रह्मानन्दरूप आत्मा में स्थित है, यह सब आत्मा का ही रूप है, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं॥ ६१ ॥

सर्वमात्माहमात्मास्मि परमात्मा परात्मकः। नित्यानन्दस्वरूपात्मा वैदेही मुक्त एव सः॥ ६२ ॥

सब आत्मा है, मैं आत्मा हूँ, परमात्मा हूँ, परात्मक हूँ। नित्यानन्द स्वरूप हूँ, ऐसा जिसका अनुभव है, वह देहरहित मुक्त ही है ॥ ६२ ॥

पूर्णरूपो महानात्मा प्रीतात्मा शाश्वतात्मकः। सर्वान्तर्यामिरूपात्मा निर्मलात्मा निरात्मकः ॥ ६३ ॥

पूर्णरूप-महानात्मा-प्रीतात्मा-शाश्वत-आत्मवान्, सर्वान्तर्यामिरूप-आत्मवान्, निर्मलात्मा और निरात्मक अर्थात् आत्मातिरिक्त कुछ नहीं अनुभव करने वाला है।। ६३ ।।

निर्विकारस्वरूपात्मा शुद्धात्मा शान्तरूपकः। शान्ताशान्तस्वरूपात्मा नेकात्मत्वविवर्जितः॥ ६४ ॥

निर्विकार-स्वरूपवान् शुद्धात्मा-शान्तरूपवान्, शान्त-अशान्त-स्वरूपवान् अर्थात् शान्त भी वही है अशान्त भी वही है, उसके अतिरिक्त कोई नहीं। वह एकात्मता से भी रहित नहीं है।। ६४ ।।

जीवात्मपरमात्मेति चिन्तासर्वस्ववर्जितः। मुक्तामुक्तस्वरूपात्मा मुक्तामुक्तविवर्जितः॥ ६५ ॥

वही जीवात्मा है, वही परमात्मा है, समस्त चिन्ताओं से मुक्त है। मुक्त-अमुक्त स्वरूपवान् है। मुक्तामुक्तभाव से भी रहित है।। ६५ ।।

बन्धमोक्षस्वरूपात्मा बन्धमोक्षविवर्जितः । द्वैताद्वैतस्वरूपात्मा द्वैताद्वैतविवर्जितः॥ ६६ ॥

बन्ध-मोक्ष स्वरूप वाला है, बन्ध मोक्ष से रहित भी है। द्वैत-अद्वैत स्वरूपवाला है, द्वैत-अद्वैत से वर्जित भी है।। ६६ ।।

सर्वासर्वस्वरूपात्मा सर्वासर्वविवर्जितः। मोदप्रमोदरूपात्मा मोदादिविनिवर्जितः॥ ६७ ॥

सर्व-असर्व स्वरूपवान् है। सर्व-असर्व से विवर्जित भी है। मोद-प्रमोद रूप वाला है, मोद-प्रमोद से रहित भी है।। ६७ ।।

सर्वसंकल्पहीनात्मा वैदेही मुक्त एव सः। निष्कलात्मा निर्मलात्मा बुद्धात्मा पुरुषात्मकः॥ ६८ ॥

जो सारे संकल्पों से हीन है, वह देहहीन मुक्त ही है। वह निष्कल-आत्मा, निर्मल-आत्मा बुद्धात्मा और पुरुषरूप है।। ६८ ।।

आनन्दादिविहीनात्मा अमृतात्मा मृतात्मकः। कालत्रयस्वरूपात्मा कालत्रयविवर्जितः॥ ६९ ॥

आनन्द आदि से रहित आत्मा है। अमृत-आत्मा है मृतात्मक भी है, तीनों कालों में स्वस्वरूप में स्थित है, फिर भी तीनों कालों से रहित है।। ६९ ।।

अखिलात्मा ह्येमेयात्मा मानात्मा मानवर्जितः। नित्यप्रत्यक्षरूपात्मा नित्यप्रत्यक्षनिर्णयः॥ ७० ॥

वह अखिलात्मा, अमेयात्मा, मानात्मा और मानवर्जित है। नित्य प्रत्यक्ष आत्मवान् तथा नित्य प्रत्यक्ष निर्णययुक्त है ।। ७० ।।

अन्यहीनस्वभावात्मा अन्यहीनस्वयंप्रभः। विद्याविद्यादिमेयात्मा विद्याविद्यादिवर्जितः ॥ ७१ ॥

अन्य से रहित स्वभाव वाला है, अन्य से हीन स्वयं प्रभावान् है। विद्या-अविद्या से नापने योग्य तथा विद्या-अविद्या से रहित है।। ७१ ।।

नित्यानित्यविहीनात्मा इहामुत्रविवर्जितः। शमादिषट्कशून्यात्मा मुमुक्षुत्वादिवर्जितः।। ७२ ॥

नित्य-अनित्य से रहित है, इह-अमुत्र से भी रहित है। शम आदि षट् सम्पत्तियों से शून्य है तथा मोक्ष की इच्छा से भी रहित है।। ७२ ।।

स्थूलदेहविहीनात्मा सूक्ष्मदेहविवर्जितः। कारणादिविहीनात्मा तुरीयादिविवर्जितः।। ७३ ॥

स्थूलदेह से भी रहित है, वह सूक्ष्मदेह से भी रहित है। कारणदेह से भी रहित है तथा तुरीयादि से भी रहित है।। ७३ ।।

अन्नकोशविहीनात्मा प्राणकोशविवर्जितः। मनःकोशविहीनात्मा विज्ञानादिविवर्जितः।। ७४ ॥

वह अन्नकोश से विहीन है, वह प्राणकोश से भी विवर्जित है। वह मनः कोश से भी विवर्जित है तथा विज्ञानकोश से भी रहित है।। ७४ ।।

आनन्दकोशहीनात्मा पञ्चकोशविवर्जितः। निर्विकल्पस्वरूपात्मा सविकल्पविवर्जितः।। ७५ ॥

वह आनन्दकोश से विहीन है, पाँचों कोशों से ही रहित है। निर्विकल्प-स्वरूप है तथा सविकल्प से विवर्जित है ॥ ७५ ॥

दृश्यानुविद्धहीनात्मा शब्दविद्धविवर्जितः। सदा समाधिशून्यात्मा आदिमध्यान्तवर्जितः।। ७६ ॥

दृश्य में आने वाला नहीं, शब्द से सुना जाने योग्य नहीं। सदैव समाधि शून्य तथा आदि मध्य अन्त से हीन है।। ७६ ।।

प्रज्ञानवाक्यहीनात्मा अहंब्रह्मास्मिवर्जितः। तत्त्वमस्यादिहीनात्मा अयमात्मेत्यभावकः ॥ ७७ ॥

वह प्रज्ञानवाक्य से हीन है, तथा अहं ब्रह्मास्मि भाव से भी वर्जित है। तत्त्वमसि से भी हीन है तथा अयमात्मा से भी रहित है।। ७७ ।।

ओंकारवाच्यहीनात्मा सर्ववाच्यविवर्जितः। अवस्थात्रयहीनात्मा अक्षरात्मा चिदात्मकः।। ७८ ॥

ओङ्कार से भी कहा जाने योग्य नहीं। वह तो किसी भी शब्द से वाच्य नहीं है। वह तीनों अवस्थाओं से रहित है, वह अक्षर तथा केवल चित् है।। ७८ ।।

आत्मज्ञेयादिहीनात्मा यत्किंचिदिदमात्मकः। भानाभानविहीनात्मा वैदेही मुक्त एव सः ॥ ७९ ॥

आत्मा ज्ञेय आदि विशेषणों से मुक्त है, यत् किञ्चित् इदम् से संकेत योग्य है, भान- जो रहित है, वह देहमुक्त, मुक्त ही है।। ७९ ।।

आत्मानमेव वीक्षस्व आत्मानं बोधय स्वकम्। स्वमात्मानं स्वयं भुङ्क्ष्व स्वस्थो षडानन ॥ ८० ॥

केवल आत्मा को देखो, अपने को अपने से जानो। हे षडानन! आत्मा को स्वयं अपने आत्मा से ही भोगो और स्वस्थ होओ।। ८० ।।

स्वत्मात्मनि स्वयं तृप्तः स्वमात्मानं स्वयं चर। आत्मानमेव मोदस्व वैदेही मुक्तिको भवेत्युपनिषत् ॥ ८१ ॥

अपने से अपने में तुष्ट रहो, अपने में अपने आप विचरण करो। आत्मा में आत्मा को प्रसन्न करो और विदेह होकर मुक्तिलाभ करो।। ८१ ।।

॥ इति तेजोबिन्दूपनिषत्सु चतुर्थोऽध्यायः॥ ४ ॥

निदाघो नाम वै मुनिः पप्रच्छ ऋभुं भगवन्तमात्मानात्मविवेकमनुब्रूहीति। स होवाच ऋभुः। सर्ववाचोऽवधिर्ब्रह्म सर्वचिन्तावधिर्गुरुः। सर्वकारणकार्यात्मा कार्यकारणवर्जितः॥ १ ॥

निदाघ मुनि ने भगवान् ऋभु से पूछा— भगवन् ! आत्मा-अनात्मा का विवेचन कीजिए। ऋभु बोले— सब वाणियों की चरम सीमा ब्रह्म है, सब चिन्ताओं की चरम सीमा गुरु है। आत्मा ही कारण है और कार्यरूप है, तथा कारण-कार्य से रहित भी है।। १ ।।

सर्वसंकल्परहितः सर्वनादमयः शिवः। सर्ववर्जितचिन्मात्रः सर्वानन्दमयः परः॥ २

आत्मा सब सङ्कल्पों से रहित, सर्वनादमय, कल्याणरूप सब से वर्जित, चिन्मात्र, सर्वानन्दमय तथा पर है ॥ २ ॥

सर्वतेजःप्रकाशात्मा नादानन्दमयात्मकः। सर्वानुभवनिर्मुक्तः सर्वध्यानविवर्जितः॥ ३ ॥

सब तेजों का तेज, प्रकाशस्वरूप, नादानन्दमय है। सब अनुभवों से विनिर्मुक्त तथा सब ध्यानों से भी विवर्जित है। ३ ॥

सर्वनादकलातीत एष आत्माहमव्ययः। आत्मानात्मविवेकादिभेदाभेदविवर्जितः॥ ४ ॥

सब नाद तथा कलाओं से अतीत यह आत्मा मैं हूँ, अव्यय हूँ। मैं आत्म-अनात्म भेदों से रहित तथा उसके विवेक-अविवेक आदि भेदाभेद से भी रहित हूँ।। ४ ।।

शान्ताशान्तादिहीनात्मा नादान्तर्ज्योतिरूपकः। महावाक्यार्थतो दूरो ब्रह्मास्मीत्यतिदूरतः॥ ५ ॥

शान्त-अशान्त आदि से रहित, नाद की अन्तर्ज्योति के रूप वाला महावाक्यों के अर्थ से दूर, 'अहं ब्रह्मास्मि' से भी जो दूर है॥ ५ ॥

तच्छब्दवर्ज्यस्त्वंशब्दहीनो वाक्यार्थवर्जितः। क्षराक्षरविहीनो यो नादान्तर्ज्योतिरेव सः॥ ६ ॥

तत् शब्द से हीन है, त्वं शब्द से हीन है, वाक्यार्थ से हीन है, क्षर-अक्षर से भी हीन है, वह नादान्तर्ज्योति-गस्वरूप है॥ ६ ॥

अखण्डैकरसो वाऽहमानन्दोऽस्मीतिवर्जितः। सर्वातीतस्वभावात्मा नादान्तर्ज्योतिरेव सः॥ ७ ॥

मैं अखण्डैकरस हूँ अथवा मैं आनन्द हूँ, इससे भी जो वर्जित है वह सर्वातीत स्वभाव वाला नादान्तर्ज्योति रूप है॥ ७ ॥

आत्मेतिशब्दहीनो य आत्मशब्दार्थवर्जितः। सच्चिदानन्दहीनो य एषैवात्मा सनातनः॥ ८ ॥

जो आत्मा से अथवा आत्मा के शब्दार्थ से भी हीन है। सच्चिदानन्द से भी हीन है जो, वही सनातन आत्मा है॥ ८ ॥

स निर्देष्टुमशक्यो यो वेदवाक्यैरगम्यतः। यस्य किंचिद्बहिर्नास्ति किंचिदन्तः कियन्न च ॥ ९ ॥

वह वेद-वाक्यों से भी निर्दिष्ट नहीं किया जा सकता है, वह तो अगम्य है, जिसका न कोई बाहर है, न कोई अन्दर है, न कितना (आकार है, यह विदित) है॥ ९ ॥

यस्य लिङ्गं प्रपञ्चं वा ब्रह्मेवात्मा न संशयः। नास्ति यस्य शरीरं वा जीवो वा भूतभौत्तकिः॥१०॥

जिसका लिङ्ग या प्रपञ्च ब्रह्म ही आत्मा है, इसमें संशय नहीं। जिसका न जीव है, न शरीर है, न कोई भूत-भौतिक है॥ १० ॥

नामरूपादिकं नास्ति भोज्यं वा भोगभुक् च वा । सद्वाऽसद्वा स्थितिर्वापि यस्य नास्ति क्षराक्षरम्॥ ११॥

उसका नाम-रूप आदि नहीं है। न वह भोज्य है, न भोक्ता है; जिसकी सत् या असत् स्थिति का निश्चय नहीं, जिसका क्षर-अक्षर भी नहीं ॥ ११ ॥

गुणं वा विगुणं वापि सम आत्मा न संशयः। यस्य वाच्यं वाचकं वा श्रवणं मननं च वा॥ १२ ॥

जिस का गुण या विगुण भी नहीं, जो सम है इसमें संशय नहीं । जिसका वाच्य-वाचक श्रवण-मनन कुछ भी नहीं ॥ १२ ॥

गुरुशिष्यादिभेदं वा देवलोकः सुरासुराः। यत्र धर्ममधर्मं वा शुद्धं वाऽशुद्धमण्वपि ॥ १३ ॥

गुरु-शिष्य आदि भेद अथवा देवलोक सुर-असुर, धर्म-अधर्म, शुद्ध-अशुद्ध अणुमात्र भी जहाँ नहीं है ॥ १३ ॥

यत्र कालमकालं वा निश्चयः संशयो न हि । यत्र मन्त्रममन्त्रं वा विद्याऽविद्या न विद्यते ॥ १४ ॥

जहाँ काल-अकाल, निश्चय-संशय, मन्त्र-अमन्त्र, विद्या-अविद्या नहीं है ॥ १४ ॥

द्रष्टृदर्शनदृश्यं वा ईषन्मात्रं कलात्मकम् । अनात्मेति प्रसङ्गो वा ह्यनात्मेति मनोऽपि वा॥ १५ ॥

द्रष्टा-दर्शन-दृश्य अथवा तनिक भी कलात्मक भेद जिसमें नहीं है। अथवा अनात्मा या मन का भी जहाँ कोई प्रसंग नहीं ॥ १५ ॥

अनात्मेति जगद्वापि नास्ति नास्तीति निश्चिनु । सर्वसंकल्पशून्यत्वात्सर्वकार्यविवर्जनात् ॥ १६ ॥

अनात्मा या जगत् कहीं नहीं यह निश्चय जानो, क्योंकि वह आत्मा सब सङ्कल्पों से शून्य है, सब कार्यों से विमुक्त है ॥ १६ ॥

केवलं ब्रह्ममात्रत्वं नास्त्यनात्मेति निश्चिनु । सर्वसङ्कल्पशून्यत्वात्सर्वकार्यविवर्जनात् ॥ १७ ॥

केवल ब्रह्ममात्र होने से अनात्मा नहीं है, यह निश्चय जानो। तीनों शरीरों से हीन होने से तथा तीनों कालों के रहित होने से॥ १७ ॥

जीवत्रयगुणाभावात्तापत्रयविवर्जनात् । लोकत्रयविहीनत्वात्सर्वमात्मेति शासनात् ॥ १८ ॥

जीव के तीनों गुणों के अभाव से तथा तीनों तापों से विहीन होने से। तीनों लोकों से विहीन होने से सब आत्मा ही है॥ १८ ॥

चित्ताभावाच्चिन्तनीयं देहाभावाज्जरा न च । पादाभावाद्गतिर्नास्ति हस्ताभावात्क्रिया न च ॥ १९ ॥

चित्त का अभाव होने से चिन्तनीय कुछ भी नहीं है। देह के अभाव से जरा नहीं है। पैरों के अभाव से गति नहीं है तथा हाथों के अभाव से क्रिया नहीं है॥ १९ ॥

मृत्युर्न जननाभावाद्वृद्ध्यभावात्सुखादिकम् । धर्मो नास्ति शुचिर्नास्ति सत्यं नास्ति भयं न च ॥ २० ॥

जन्म के अभाव से मृत्यु नहीं है। वृद्धि के अभाव से सुख आदि नहीं है। उसका न तो धर्म है, न सत्य है, न भय है॥ २० ॥

अक्षरोच्चारणं नास्ति गुरुशिष्यादि नास्त्यपि । एकाभावे द्वितीयं न द्वितीयेऽपि न चैकता॥ २१ ॥

अक्षरों का उच्चारण नहीं, तो गुरु-शिष्य भेद भी नहीं है। एक के अभाव में दूसरा नहीं है तथा दूसरे के अभाव में एक भी नहीं है ॥ २१ ॥

सत्यत्वमस्ति चेत्किंचिदसत्यं न च संभवेत् । असत्यत्वं यदि भवेत्सत्यत्वं न घटिष्यति॥ २२ ॥

यदि कुछ है, तो असत्यता बिल्कुल नहीं है। यदि असत्यता कुछ है, तो फिर सत्यता नहीं घटेगी ॥ २२ ॥

शुभं यद्यशुभं विद्धि अशुभाच्छुभमिष्यते । भयं यद्यभयं विद्धि अभयाद्भयमापतेत्॥ २३ ॥

शुभ है तो अशुभ भी होगा, अशुभ है तो शुभ भी होगा। भय है तो अभय भी जानो और अभय है तो भय भी मानना पड़ेगा॥ २३ ॥

बन्धत्वमपि चेन्मोक्षो बन्धाभावे क्व मोक्षता। मरणं यदि चेज्जन्म जन्माभावे मृतिर्न च॥ २४ ॥

बन्धन है तभी मोक्ष है, बन्धन के अभाव में फिर मोक्षता क्यों होगी? मरण है तभी जन्म है, जन्म नहीं तो मृत्यु भी नहीं॥ २४ ॥

त्वमपि भवेच्चाहं त्वं नो चेदहमेव न । इदं यदि तदेवास्ति तदभावादिदं न च ॥ २५ ॥

त्वं है तो अहं भी होगा, त्वं नहीं है तो अहं भी नहीं है। इदं के होने से तत् है, तत् नहीं तो इदं भी नहीं है ॥ २५ ॥

अस्तीति चेन्नास्ति तदा नास्ति चेदस्ति किंचन । कार्यं चेत्कारणं किंचित्कार्याभावे न कारणम् ॥ २६ ॥

अस्ति के साथ ही नास्ति है। नास्ति नहीं तो अस्ति भी क्यों होगी? कार्य है तभी कारण होगा, कार्य नहीं तो कारण भी क्यों होगा? ॥ २६ ॥

द्वैतं यदि तदाऽद्वैतं द्वैतभावे द्वयं न च । दृश्यं यदि दृगप्यस्ति दृश्याभावे दृगेव न ॥ २७ ॥

द्वैत है तभी अद्वैत की सम्भावना होगी, द्वैत नहीं तो अद्वैत भी नहीं होगा। दृश्य है तो दृष्टि होगी, दृश्य नहीं, तो दृष्टि भी नहीं होगी॥ २७ ॥

अन्तर्यदि बहिः सत्यमन्ताभावे बहिर्न च। पूर्णत्वमस्ति चेकिंचिदपूर्णत्वं प्रसज्यते॥ २८ ॥

अन्तः है तभी बहिः की कल्पना होगी, अन्तः नहीं तो बहिः भी क्यों होगा? पूर्णता यदि किञ्चित् है तभी अपूर्णता होगी॥ २८ ॥

तस्मादेतत्क्वचिन्नास्ति त्वं चाहं वा इमे इदम्। नास्ति दृष्टान्तिकं सत्ये नास्ति दार्ष्टान्तिकं ह्यजे॥ २९ ॥

उससे-इससे कुछ भी नहीं है। 'त्वं अहं इमे इदम्' कुछ नहीं है। सत्य में दृष्टा अथवा दृष्ट नहीं है तथा उसमें दृष्टान्त का विषय भी नहीं है॥ २९ ॥

परंब्रह्माहमस्मीति स्मरणस्य मनो न हि । ब्रह्ममात्रं जगदिदं ब्रह्ममात्रं त्वमप्यहम् ॥ ३० ॥

मैं परब्रह्म हूँ, यह स्मरण करने के लिए मन भी नहीं है। यह जगत् ब्रह्ममय है, 'इदम् त्वम् अहम्' कुछ नहीं है ॥ ३० ॥

चिन्मात्रं केवलं चाहं नास्त्यनात्म्येति निश्चिमु। इदं प्रपञ्चं नास्त्येव नोत्पन्नं नो स्थितं क्वचित्॥ ३१ ॥

मैं केवल चिन्मात्र हूँ। मैं अनात्म नहीं हूँ। यह प्रपञ्च न है, न उत्पन्न हुआ, न कहीं स्थित है॥ ३१ ॥

चित्तं प्रपञ्चमित्याहुर्नास्ति नास्त्येव सर्वदा। न प्रपञ्चं न चित्तादि नाहंकारो न जीवकः॥ ३२ ॥

चित्त ही प्रपञ्च है ऐसा कहा गया है। वैसे यह कहीं नहीं यह निश्चय जानो। न प्रपञ्च है, न चित्तादि, न अहङ्कार, न जीव ही है॥ ३२ ॥

माया कार्यादिकं नास्ति माया नास्ति भयं नहि । कर्ता नास्ति क्रिया नास्ति श्रवणं मननं नहि ॥ ३३ ॥

न माया का कोई कार्य है, न माया, न उसका भय है। न कर्ता-क्रिया, श्रवण-मनन आदि कुछ है॥ ३३ ॥

समाधिद्वितयं नास्ति मातृमानादि नास्ति हि । अज्ञानं चापि नास्त्येव ह्यविवेकं कदाचन॥ ३४ ॥

दूसरी समाधि नहीं है, माता और मान भी नहीं है। अज्ञान तथा अविवेक भी नहीं है॥ ३४ ॥

अनुबन्धचतुष्कं न संबन्धत्रयमेव न । न गङ्गा न गया सेतुर्न भूतं नान्यदस्ति हि ॥ ३५ ॥

चारों अनुबन्ध (अधिकारी- विषय आदि), तीनों सम्बन्ध भी नहीं हैं न गङ्गा, न गया, न सेतु, न कहीं भूत है। ३५ ॥

न भूमिर्न जलं नाग्निर्न वायुर्न च खं क्वचित् । न देवा न च दिक्पाला न वेदा न गुरुः क्वचित् ॥ ३६ ॥

न भूमि, न जल, न अग्नि, न वायु, न आकाश है। न देव, न दिक्पाल, न वेद, न कहीं गुरु है॥ ३६ ॥

न दूरं नान्तिकं नालं न मध्यं न क्वचित्स्थितम् । नाद्वैतं द्वैतसत्ये वा ह्यसत्यं वा इदं न च ॥ ३७ ॥

न दूर,न पास,न अन्त,न मध्य कहीं स्थित है। न अद्वैत, न द्वैतसत्य, न द्वैत-असत्य यह कहीं है।। ३७ ।।

बन्धमोक्षादिकं नास्ति सद्वाऽसद्वा सुखादि वा। जातिर्नास्ति गतिर्नास्ति वर्णो नास्ति न लौकिकम्॥ ३८॥

बन्ध-मोक्षादि नहीं है, न सत्-असत्, न सुख आदि है । न जाति है, न गति है, न वर्ण है, न लौकिक है ॥ ३८ ॥

सर्वं ब्रह्मेति नास्त्येव ब्रह्म इत्यपि नास्ति हि । चिदित्येवेति नास्त्येव चिदहंभाषणं नहि॥ ३९ ॥

सब ब्रह्म है यह भी नहीं, ब्रह्म है यह भी नहीं। चित् यह कहना भी ठीक नहीं, मैं चित् हूँ यह कहना भी ठीक नहीं।। ३९ ।।

अहं ब्रह्मास्मि नास्त्येव नित्यशुद्धोऽस्मि न क्वचित् । वाचा यदुच्यते किंचिन्मनसा मनुते क्वचित्।।४०।।

"अहं ब्रह्मास्मि" यह भी नहीं, मैं नित्य शुद्ध हूँ यह भी कहीं नहीं है। वाणी से जो कुछ कहा जाता है, मन से जो कहीं माना जाता है।। ४० ।।

बुद्ध्या निश्चिनुते नास्ति चित्तेन ज्ञायते नहि । योग योगादिकं नास्ति सदा सर्वं सदा न च ॥ ४१॥

बुद्धि से जो निर्णय किया, चित्त से जो अनुभव किया जाता है, यह सब कुछ नहीं है। योगी योगादिक कुछ नहीं। सदा, सर्व इत्यादि कुछ नहीं है।। ४१ ।।

अहोरात्रादिकं नास्ति स्नानध्यानादिकं नाहि । भ्रान्तिरभ्रान्तिर्नास्त्येव नास्त्यनात्मेति निश्चिनु ॥ ४२ ॥

अहोरात्रादि नहीं है, स्नान-ध्यानादि नहीं है। भ्रान्ति अभ्रान्ति भी नहीं, अनात्मा भी नहीं है, यह निश्चय जानो।। ४२ ।।

वेदः शास्त्रं पुराणं च कार्यं कारणमीश्वरः। लोको भूतं जनस्त्वैक्यं सर्वं मिथ्या न संशयः ॥ ४३ ॥

वेद, पुराण, शास्त्र, कार्य, कारण, ईश्वर, लोक, भूत उनकी एकता सब मिथ्या है, इसमें संशय नहीं ।। ४३ ।।

बन्धो मोक्षः सुखं दुःखं ध्यानं चित्तं सुरासुराः। गौणं मुख्यं परं चान्यत्सर्वं मिथ्या न संशयः॥ ४४ ॥

बन्ध-मोक्ष, सुख-दुःख, ध्यान-चित्त, सुर-असुर, गौण-मुख्य, पर-अपर सब मिथ्या हैं ।। ४४ ।।

वाचा वदति यत्किंचित्संकल्पैः कल्प्यते च यत्। मनसा चिन्त्यते यद्यत्सर्वं मिथ्या न संशयः॥ ४५ ॥

जो वाणी से वाच्य है, जो संकल्प से कल्पित है। मन से जो-जो चिन्तन किया जाता है, वह सब मिथ्या है, इसमें संशय नहीं॥ ४५ ॥

बुद्ध्या निश्चीयते किंचिच्चित्ते निश्चीयते क्वचित्। शास्त्रैः प्रपञ्च्यते यद्यन्नेत्रेणैव निरीक्ष्यते ॥ ४६ ॥

जो बुद्धि से निश्चय किया गया, जो कुछ चित्त में निश्चय किया गया, जो शास्त्रों से प्रपञ्चित है, जो नेत्रों से दृश्यमान है, वह सब मिथ्या है॥ ४६ ॥

श्रोत्राभ्यां श्रूयते यद्यदन्यत्सद्भावमेव च। नेत्रं श्रोत्रं गात्रमेव मिथ्येति च सुनिश्चितम्॥ ४७ ॥

जो कुछ कानों से सुना गया अथवा अन्यत् सद्भाव, नेत्र-श्रोत्र-गात्र सब मिथ्या है, यह निश्चित है॥ ४७ ॥

इदमित्येव निर्दिष्टमयमित्येव कल्प्यते। त्वमहं तदिदं सोऽहमन्यत्सद्भावमेव च ॥ ४८ ॥

इदम् कहकर जो निर्दिष्ट है, अयम् कहकर जो निर्दिष्ट किया जाता है। त्वम्-अहम्-तत्-इदम् स अहम् अन्यत् सद्भाव है॥ ४८ ॥

यद्यत्संभाव्यते लोके सर्वसंकल्पसंभ्रमः। सर्वाध्यासं सर्वगोप्यं सर्वभोगप्रभेदकम्॥ ४९ ॥

जो लोक में सम्भावित है, जो सब सङ्कल्पों का सम्भ्रम है। सर्वाध्यास को, सर्व गोपनीय को, सब भोगों के भेद ॥ ४९ ॥

सर्वदोषप्रभेदाच्च नास्त्यनात्मेति निश्चिनु। मदीयं च त्वदीयं च ममेति च तवेति च ॥ ५० ॥

सब दोषों के भेद इत्यादि सब मिथ्या हैं, ऐसे ही अनात्मा भी नहीं यह निश्चय ही जानो मुझसे सम्बन्धित और तुमसे सम्बन्धित, मेरा और तेरा ॥ ५० ॥

मह्यं तुभ्यं मयेत्यादि सत्सर्वं वितथं भवेत्। रक्षको विष्णुरित्यादि ब्रह्मा सृष्टेस्तुकारणम्॥ ५१ ॥

मेरे लिए, तेरे लिए इत्यादि सब मिथ्या है, यह निश्चय जानो। रक्षक विष्णु, सृष्टि के कारण ब्रह्मा॥ ५१ ॥

संहारे रुद्र इत्येवं सर्वं मिथ्येति निश्चिनु। स्नानं जपस्तपो होमः स्वाध्यायो देवपूजनम्॥ ५२ ॥

संहारकर्त्ता रुद्र इत्यादि सब कल्पनाएँ मिथ्या हैं, यह निश्चय जानो। स्नान, जप, तप, होम, स्वाध्याय देव पूजन॥ ५२ ॥

मन्त्रं तन्त्रं च सत्सङ्गो गुणदोषविजृम्भणम् । अन्तःकरणसद्भाव अविद्यायाश्च संशयः॥ ५३ ॥

मन्त्र-तन्त्र, सत्संग, गुण-दोषों का विश्लेषण, अन्तःकरण का सद्भाव, अविद्या का संशय ॥ ५३ ॥

अनेककोटिब्रह्माण्डं सर्वं मिथ्येति निश्चिनु । सर्वदेशिकवाक्योक्तिर्येन केनापि निश्चितम् ॥ ५४॥

अनेक कोटि ब्रह्माण्ड की कल्पना सब मिथ्या है, यह निश्चय जानो। सार्वदेशिक वाक्यों का कथन जिस किसी ने भी निश्चित किया॥ ५४ ॥

दृश्यते जगति यद्यद्यद्यज्जगति वीक्ष्यते। वर्तते जगति यद्यत्सर्वं मिथ्येति निश्चिनु ॥ ५५ ॥

जो भी जगत् में दिखाई देता है अथवा जो भी देखा जाता है। जो भी जगत् में वर्तमान लगता है, वह सब मिथ्या है, यह निश्चय जानो॥ ५५ ॥

येन केनाक्षरेणोक्तं येन केन विनिश्चितम् । येन केनापि गदितं येन केनापि मोदितम् ॥ ५६ ॥

जिस किसी अक्षर से कहा गया, जिस किसी से निश्चित किया गया। जिस किसी से उच्चारण किया गया, जिस किसी से अनुमोदन किया गया॥ ५६ ॥

येन केनापि यद्दत्तं येन केनापि यत्कृतम्। यत्र यत्र शुभं कर्म यत्र यत्र च दुष्कृतम् ॥ ५७ ॥

जिस किसी से दिया गया, जिस किसी से किया गया। जहाँ-जहाँ शुभकर्म है, जहाँ-जहाँ दुष्कर्म है ॥ ५७ ॥

यद्यत्करोषि सत्येन सर्वं मिथ्येति निश्चिनु। त्वमेव परमात्मासि त्वमेव परमो गुरुः ॥ ५८ ॥

जो-जो सत्य मान कर करते हो, वह सब मिथ्या है, यह निश्चय जानो । तुम ही परमात्मा हो तुम ही परम गुरु हो ॥ ५८ ॥

त्वमेवाकाशरूपोऽसि साक्षिहीनोऽसि सर्वदा। त्वमेव सर्वभावोऽसि त्वं ब्रह्मासि न संशयः॥५९॥

तुम ही आकाशरूप हो, तुम सदा साक्षीहीन हो। तुम्हीं सर्वभाव हो, तुम्हीं ब्रह्म हो, इसमें संशय नहीं॥ ५९ ॥

कालहीनोऽसि कालोऽसि सदा ब्रह्मासि चिद्धनः। सर्वतः स्वस्वरूपोऽसि चैतन्यघनवानसि॥ ६० ॥

तुम कालहीन हो, तुम ही काल हो, ब्रह्म हो, चिद्धन हो । सब ओर से स्वस्वरूप हो तथा चैतन्य घन हो ॥ ६० ॥

सत्योऽसि सिद्धोऽसि सनातनोऽसि मुक्तोऽसि मोक्षोऽसि मुदामृतोऽसि। देवोऽसि शान्तोऽसि निरामयोऽसि ब्रह्मासि पूर्णोऽसि परात्परोऽसि॥ ६१ ॥

तुम सत्य हो, सिद्ध हो, सनातन हो, मुक्त हो, मोक्ष हो, तथा अमृतरूप हो। देव हो, शान्त हो, निरोग हो, ब्रह्म हो, पूर्ण हो तथा परात्पर हो।। ६१ ।।

समोऽसि सच्चापि सनातनोऽसि सत्यादिवाक्यैःप्रतिबोधितोऽसि। सर्वाङ्गहीनोऽसि सदा स्थितोऽसि ब्रह्मेन्द्ररुद्रादिविभावितोऽसि।। ६२ ।।

सम हो, सत् हो, सनातन हो, सत्य आदि वाक्यों से परिचय कराने योग्य हो। सर्वाङ्गहीन होकर भी सदा स्थित हो, ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र आदि देवताओं से सत्कृत हो।। ६२ ।।

सर्वप्रपञ्चभ्रमवर्जितोऽसि सर्वेषु भूतेषु च भासितोऽसि। सर्वत्र संकल्पविवर्जितोऽसि सर्वागमान्तार्थविभावितोऽसि।। ६३ ।।

सब प्रपञ्चों से वर्जित हो, सब प्राणियों में प्रतिभासित हो। सब जगह सङ्कल्पहीन हो तथा सब वेद शास्त्रों के अर्थ से परिचायित हो ।। ६३ ।।

सर्वत्र संतोषसुखासनोऽसि सर्वत्र गत्यादिविवर्जितोऽसि। सर्वत्र लक्ष्यादिविवर्जितोऽसि ध्यातोऽसि विष्ण्वादिसुरैरजस्रम्।। ६४ ।।

सर्वत्र सन्तोष-सुख के आसन हो, सर्वत्र गति आदि से रहित हो। सर्वत्र लक्ष्य इत्यादि से विवर्जित हो, विष्णु आदि देवताओं से अर्चित हो।। ६४ ।।

चिदाकारस्वरूपोऽसि चिन्मात्रोऽसि निरङ्कुशः। आत्मन्येव स्थितोऽसि त्वं सर्वशून्योऽसि निर्गुणः ।। ६५ ।।

तुम चिदाकार स्वरूप हो, चिन्मात्र तथा निरंकुश हो। तुम आत्मा में ही स्थित हो, तुम सर्व शून्य तथा निर्गुण हो।। ६५ ।।

आनन्दोऽसि परोऽसि त्वमेक एवाद्वितीयकः। चिद्घनानन्दरूपोऽसि परिपूर्णस्वरूपकः।। ६६ ।।

तुम आनन्दरूप हो, पर हो, अद्वितीय हो। चिद्घनानन्द हो परिपूर्णरूप हो।। ६६ ।।

सदसि त्वमसि ज्ञोऽसि सोऽसि जानासि वीक्षसि। सच्चिदानन्दरूपोऽसि वासुदेवोऽसि वै प्रभुः।। ६७ ।।

तुम सत् हो, तुम ही हो, तुम ही ज्ञाता हो, वह हो, जानते हो, देखते हो, सच्चिदानन्दरूप हो, वासुदेव प्रभु हो।। ६७ ।।

अमृतोऽसि विभुश्चासि चञ्चलो ह्यचलो ह्यसि।
सर्वोऽसि सर्वहीनोऽसि शान्ताशान्तविवर्जितः॥६८॥

अमृत हो, विभु हो, चञ्चल हो, अचल हो, सर्व हो, सर्वहीन हो, शान्त-अशान्त से विवर्जित हो॥ ६८ ॥

सत्तामात्रप्रकाशोऽसि सत्तासामान्यको ह्यसि। नित्यसिद्धिस्वरूपोऽसि सर्वसिद्धिविवर्जितः॥६९॥

सत्तामात्र से प्रकाशक हो, सत्तामात्र से सामान्य हो। नित्य सिद्धि-स्वरूप हो, सब सिद्धियों से हीन हो ॥ ६९ ॥

ईषन्मात्रविशून्योऽसि अणुमात्रविवर्जितः। अस्तित्ववर्जितोऽसि त्वं नास्तित्वादिविवर्जितः॥ ७० ॥

अकिञ्चन-मात्र से शून्य हो, अणुमात्र से विवर्जित हो। तुम अस्तित्व वर्जित हो, अस्तित्व वर्जित भी नहीं हो॥ ७० ॥

लक्ष्यलक्षणहीनोऽसि निर्विकारो निरामयः। सर्वनादान्तरोऽसि त्वं कलाकाष्ठाविवर्जितः॥ ७१ ॥

तुम लक्ष्य-लक्षणहीन हो, निर्विकार और निरामय हो। सभी नादों में स्थित हो तथा कलाकाष्ठादि से रहित हो॥ ७१ ॥

ब्रह्मवीष्णवीशहीनोऽसि स्वस्वरूपं प्रपश्यसि। स्वस्वरूपावशेषोऽसि स्वानन्दाब्धौ निमज्जसि ॥ ७२ ॥

तुम स्वस्वरूप को देख रहे हो, तुम ब्रह्मा-विष्णु-महेश से रहित हो। स्वस्वरूप-मात्र ही शेष हो, ब्रह्मानन्द में डूबे हो॥ ७२ ॥

स्वात्मराज्ये स्वमेवासि स्वयंभावविवर्जितः। शिष्टपूर्णस्वरूपोऽसि स्वस्मात्किंचिन्न पश्यसि ॥ ७३ ॥

स्वात्मराज्य में स्वयं हो और स्वयं भाव से पृथक् हो। शिष्ट पूर्णरूप वाले हो, स्वयं से पृथक् किञ्चित् भी नहीं देखते हो॥ ७३ ॥

स्वस्वरूपान्न चलसि स्वस्वरूपेण जृम्भसि। स्वस्वरूपादनन्योऽसि ह्यहमेवासि निश्चिनु ॥ ७४ ॥

स्वस्वरूप से न चल सकते हो स्वस्वरूप में जम्भाई लेते हो। स्वस्वरूप से अन्य कुछ नहीं हो, अतः स्वयं ही हूँ ऐसा निश्चय जानो॥ ७४ ॥

इदं प्रपञ्चं यत्किंचिद्यद्यज्जगति विद्यते। दृश्यरूपं च दृग्रूपं सर्वं शशविषाणवत् ॥ ७५ ॥

यह प्रपञ्च तथा जगत् में जो कुछ भी है, दीखता है दृग् रूप है, सारा खरगोश के सींग के समान है (अर्थात् जैसे खरगोश के सींग नहीं होते, वैसे ही यह जगत् का प्रपञ्च भी नहीं है) ॥ ७५ ॥

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनोबुद्धिरेव च। अहंकारश्च तेजश्च लोकं भुवनमण्डलम् ॥ ७६ ॥

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहङ्कार, लोक, भुवन-मण्डल ॥ ७६ ॥

नाशो जन्म च सत्यं च पुण्यपापजयादिकम्। रागः कामः क्रोधलोभौ ध्यानं ध्येयं गुणं परम्॥ ७७ ॥

नाश, जन्म और पुण्य-पाप, जय आदि; राग, काम, क्रोध, लोभ, ध्यान, ध्येय, गुण और परम्॥७७॥

गुरुशिष्योपदेशादिरादिरन्तं शमं शुभम्। भूतं भव्यं वर्तमानं लक्ष्यं लक्षणमद्वयम् ॥ ७८ ॥

गुरु, शिष्य, उपदेश आदि; आदि-अन्त, शम, शुभ, भूत-भविष्यत्, वर्तमान,लक्ष्यलक्षण,अद्वैत॥ ७८ ॥

शमो विचारः संतोषो भोक्तृभोज्यादिरूपकम्। यमाद्यष्टाङ्गयोगं च गमनागमनात्मकम् ॥ ७९ ॥

शम, विचार, सन्तोष, भोक्ता, भोज्य आदि रूप; यमादि अष्टांग योग, गमन-आगमन सम्बन्धी क्रियाएँ॥ ७९ ॥

आदिमध्यान्तरङ्गं च ग्राह्यं त्याज्यं हरिः शिवः। इन्द्रियाणि मनश्चैव अवस्थात्रितयं तथा॥ ८० ॥

आदि-मध्य और अन्तरङ्ग, ग्राह्य-त्याज्य, हरि-शिव, इन्द्रियाँ, मन, तीनों अवस्थाएँ (जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति) ॥ ८० ॥

चतुर्विंशतितत्त्वं च साधनानां चतुष्टयम्। सजातीयं विजातीयं लोका भूरादयः क्रमात्॥ ८१ ॥

चौबीस-तत्त्व, चार-साधन, सजातीय-विजातीय, क्रमशः भू इत्यादि लोक ॥ ८१ ॥

सर्ववर्णाश्रमाचारं मन्त्रतन्त्रादिसंग्रहम्। विद्याविद्यादिरूपं च सर्ववेद्यं जडाजडम्॥ ८२ ॥

सारे वर्णों का–आश्रमों का आचार, मन्त्र-तन्त्र का संग्रह, विद्या-अविद्यादि रूप, जड़-चेतन रूप में सर्ववेद्य ॥ ८२ ॥

बन्धमोक्षविभागं च ज्ञानविज्ञानरूपकम्। बोधाबोधास्वरूपं वा द्वैताद्वैतादिभाषणम्॥ ८३ ॥

बन्ध-मोक्ष का विभाग और ज्ञान-विज्ञान, बोधाबोध स्वरूप, द्वैताद्वैतादि भाषण॥ ८३ ॥

सर्ववेदान्तसिद्धान्तं सर्वशास्त्रार्थनिर्णयम्। अनेकजीवसद्भावमेकजीवादिनिर्णयम्॥ ८४ ॥

सारे वेदान्त का सिद्धान्त, सब शास्त्रार्थ का निर्णय, अनेक जीवों का सद्भाव तथा जीवादि निर्णय॥ ८४ ॥

यद्यद्ध्यायति चित्तेन यद्यत्संकल्पते क्वचित्। बुद्ध्या निश्चीयते यद्यद्गुरुणा संशृणोति यत् ॥ ८५ ॥

जो-जो चित्त से ध्यान किया जाता है, जो-जो संकल्प किया जाता है, बुद्धि से जो निश्चय किया, गुरु से जो सुनता है ॥ ८५ ॥

यद्यद्वाचा व्याकरोति यद्यदाचार्यभाषणम् । यद्यत्स्वरेन्द्रियैर्भाव्यं यद्यन्मीमांस्यते पृथक् ॥ ८६ ॥

जो-जो वाणी से बोलता है, जो आचार्य का भाषण है। जो-जो स्वर, इन्द्रिय से वाच्य है जो-जो पृथक्-पृथक् मीमांसा की जाती है।। ८६ ।।

यद्यन्न्यायेन निर्णीतं महद्भिर्वेदपारगैः। शिवः क्षरति लोकान्वै विष्णुः पाति जगत्त्रयम् ॥ ८७ ॥

जो-जो न्याय से वेद पारंगत विद्वानों द्वारा निर्णीत है। शिव लोकों का विनाश करते है, विष्णु तीनों लोकों की रक्षा करते हैं।। ८७ ।।

ब्रह्मा सृजति लोकान्वै एवमादिक्रियादिकम् । यद्यदस्ति पुराणेषु यद्यद्वेदेषु निर्णयम् ॥ ८८ ॥

ब्रह्मा लोकों की सृष्टि करते हैं, एवं आदि-क्रियादिक (सम्पन्न करते हैं) जो-जो पुराणों में है, जो-जो वेदों में निर्णय है।। ८८ ।।

सर्वोपनिषदां भावं सर्वं शशविषाणवत् । देहोऽहमिति संकल्पं तदन्तःकरणं स्मृतम् ॥ ८९ ॥

सारे उपनिषदों का भाव, सब खरगोश के सींग के समान है (अर्थात् केवल दिखाई देता है, वास्तव में नहीं है)। मैं देह हूँ इस संकल्प को अन्तःकरण कहा गया है।। ८९ ।।

देहोऽहमिति संकल्पो महत्संसार उच्यते । देहोऽहमिति संकल्पस्तद्बन्धमिति चोच्यते।। ९० ॥

मैं देह हूँ, यह संकल्प ही महत् संकल्प है। महत् संसार है। मैं देह हूँ, यह संकल्प ही बन्धन है।।९०।।

देहोऽहमिति संकल्पस्तद्दुःखमिति चोच्यते । देहोऽहमिति यद्भानं तदेव नरकं स्मृतम् ॥ ९१ ॥

मैं देह हूँ, यह विचार ही दुःख का कारण है। मैं देह हूँ, यह विचार ही नरक का द्वार है ।। ९१ ।।

देहोऽहमिति संकल्पो जगत्सर्वमितीर्यते । देहोऽहमिति संकल्पो हृदयग्रन्थिरीरितः।। ९२ ॥

मैं देह हूँ, यह विचार ही सारे जगत् की जड़ है। मैं देह हूँ, यह विचार ही हृदय की ग्रन्थि है ।। ९२ ।।

देहोऽहमिति यज्ज्ञानं तदेवाज्ञानमुच्यते । देहोऽहमिति यज्ज्ञानं तदसद्भावमेव च।। ९३ ॥

मैं देह हूँ, यह विचार ही अज्ञान है। मैं देह हूँ, यह विचार ही सद्भाव है ।। ९३ ।।

देहोऽहमिति या बुद्धिः सा चाविद्येति भण्यते । देहोऽहमिति यज्ज्ञानं तदेव द्वैतमुच्यते।। ९४ ॥

मैं देह हूँ, यह बुद्धि ही अविद्या कही जाती है। मैं देह हूँ, यह ज्ञान ही द्वैत कहा जाता है।। ९४ ।।

देहोऽहमिति संकल्पः सत्यजीवः स एव हि । देहोऽहमिति यज्ज्ञानं परिच्छिन्नमितीरितम्।। ९५ ॥

मैं देह हूँ, यह संकल्प ही सत्यजीवभाव है। मैं देह हूँ, यह ज्ञान ही खण्डित ज्ञान कहा गया है।। ९५ ।।

देहोऽहमिति संकल्पो महापापमिति स्फुटम्। देहोऽहमिति या बुद्धिस्तृष्णा दोषामयः किल ॥ ९६ ॥

मैं देह हूँ, यह विचार ही महापाप है। मैं देह हूँ, यह बुद्धि ही तृष्णा व दोषों का घर है।। ९६ ।।

यत्किंचिदपि संकल्पस्तापत्रयमितीरितम्। कामं क्रोधं बन्धनं सर्वदुःखं विश्वं दोषं कालनानास्वरूपम्। यत्किंचेदं सर्वसंकल्पजालं तत्किंचेदं मानसं सोम्य विद्धि ॥ ९७॥

किसी भी प्रकार का विचार तीनों तापों का पर्याय है। काम, क्रोध, बन्धन, सारे दुख, विश्व, दोष, काल के नाना रूप, ये सब सङ्कल्प, हे सौम्य! इन्हें मन के उत्पाद समझो।। ९७ ।।

मन एव जगत्सर्वं मन एव महारिपुः। मन एव हि संसारो मन एव जगत्त्रयम्॥ ९८ ॥

मन ही जगत् है, मन ही महाशत्रु है। मन ही संसार है, मन ही तीनों लोक है।। ९८ ।।

मन एव महद्दुःखं मन एव जरादिकम्। मन एव हि कालश्च मन एव मलं तथा॥ ९९ ॥

मन ही महादुःख है। मन ही बुढ़ापा आदि है। मन ही काल है, मन ही मल है।। ९९ ।।

मन एव हि संकल्पो मन एव हि जीवकः। मन एव हि चित्तं च मनोऽहंकार एव च॥ १०० ॥

मन ही संकल्प है, मन ही जीव है, मन ही चित्त और मन ही अहङ्कार है।। १०० ।।

मन एव महद्बन्धं मनोऽन्तःकरणं च तत्। मन एव हि भूमिश्च मन एव हि तोयकम् ॥ १०१ ॥

मन ही बड़ा बन्धन है, मन ही अन्तः करण है। मन ही पृथ्वी और मन ही जल है।। १०१ ।।

मन एव हि तेजश्च मन एव मरुन्महान्। मन एव हि चाकाशं मन एव हि शब्दकम् ॥ १०२॥

मन ही तेज, मन ही महान् मरुत है, मन ही आकाश है, मन ही शब्द है।। १०२ ।।

स्पर्शं रूपं रसं गन्धं कोशाः पञ्च मनोभवाः। जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादि मनोमयमितीरितम्॥ १०३ ॥

रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द इत्यादि सब मन से उत्पन्न हैं। जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति ये अवस्थाएँ भी मन से उत्पन्न हैं।। १०३ ।।

दिक्पाला वसवो रुद्रा आदित्याश्च मनोमयाः। दृश्यं जडं द्वन्द्वजातमज्ञानं मानसं स्मृतम् ॥ १०४ ॥

दिक्पाल, वसु, रुद्र, आदित्य सब मन के उत्पाद हैं दृश्य जड़ द्वन्द्वों का समूह अज्ञान सब मनोविकार हैं। १०४ ।।

संकल्पमेव यत्किंचित्तत्तन्नास्तीति निश्चिनु। नास्ति नास्ति जगत्सर्वं गुरुशिष्यादिकं नहीत्युपनिषत् ॥ १०५ ॥

जो-जो सङ्कल्प है, वह-वह नहीं है, यह निश्चय जानो। न यह जगत् है, न गुरु शिष्यादि हैं, यह रहस्य है ।। १०५ ।।

॥ इति तेजोबिन्दूपनिषत्सु पञ्चमोऽध्यायः॥ ५ ॥

ऋभुः ॥ सर्वं सच्चिन्मयं विद्धि सर्वं सच्चिन्मयं ततम्। सच्चिदानन्दमद्वैतं सच्चिदानन्दमद्वयम् ॥ १ ॥

महात्मा ऋभु ने आगे कहा– यह सब सत् चिन्मय है। सब सत् चिन्मय से व्याप्त है। अद्वैत सच्चिदानन्दमय है अथवा सच्चिदानन्दमय ही अद्वय है॥ १ ॥

सच्चिदानन्दमात्रं हि सच्चिदानन्दमन्यकम् । सच्चिदानन्दरूपोऽहं सच्चिदानन्दमेव खम् ॥ २ ॥

सच्चिदानन्द ही सच्चिदानन्द की मान्यता है। मैं सच्चिदानन्द-रूप हूँ। आकाश सच्चिदानन्द है॥ २ ॥

सच्चिदानन्दमेव त्वं सच्चिदानन्दकोऽस्म्यहम् । मनोबुद्धिरहंकारचित्तसंघातका अमी॥ ३ ॥

सच्चिदानन्द ही तुम हो, सच्चिदानन्द ही मैं हूँ, मन-बुद्धि-चित्त-अहङ्कार का संघात भी सच्चिदानन्दरूप है॥ ३ ॥

न त्वं नाहं न चान्यद्वा सर्वं ब्रह्मैव केवलम् । न वाक्यं न पदं वेदं नाक्षरं न जडं क्वचित् ॥ ४ ॥

न तुम हो, न मैं हूँ, न कोई अन्य, सब केवल ब्रह्म है। न वाक्य,पद,वेद, न अक्षर, न कहीं जड़ है।।४।।

न मध्यं नादि नान्तं वा न सत्यं न निबन्धनम् । न दुःखं न सुखं भावं न माया प्रकृतिस्तथा ॥ ५ ॥

आदि-अन्त-मध्य कुछ नहीं, न सत्य अथवा निबन्धन। न दुःख-सुख भाव, न माया, न प्रकृति॥ ५ ॥

न देहं न मुखं घ्राणं न जिह्वा न च तालुनी । न दन्तोष्ठौ ललाटं च निःश्वासोच्छ्वास एव च॥ ६ ॥

न देह, न मुख, न घ्राण, न जिह्वा, न तालु, न दन्त-ओष्ठ, न ललाट, न निःश्वास न उच्छ्वास॥ ६ ॥

न स्वेदमस्थि मांसं च न रक्तं न च मूत्रकम् । न दूरं नान्तिकं नाङ्गं नोदरं न किरीटकम् ॥ ७ ॥

न स्वेद-अस्थि-मांस-रक्त, न मूत्र । न दूर-पास, न अङ्ग, न उदर, न किरीट ॥ ७ ॥

न हस्तपादचलनं न शास्त्रं न च शासनम् । न वेत्ता वेदनं वेद्यं न जाग्रत्स्वप्नसुप्तयः॥ ८ ॥

न हाथ-पैर का चालन, न शास्त्र, न शासन। न वेत्ता-वेद्य-वेदन, न जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति॥ ८ ॥

तुर्यातीतं न मे किंचित्सर्वं सच्चिन्मयं ततम्। नाध्यात्मिकं नाधिभूतं नाधिदैवं न मायिकम्॥ ९ ॥

न तुर्यातीत मेरा कोई है, सब सच्चिदानन्दमय है। न आध्यात्मिक, न आधिदैविक, न आधिभौतिक, न मायिक ॥ ९ ॥

न विश्वस्तैजसः प्राज्ञो विराट्सूत्रात्मकेश्वराः। न गमागमचेष्टा च न नष्टं न प्रयोजनम्॥ १० ॥

न तेज से उत्पन्न यह विश्व है, न विराट् सूत्रात्मक ईश्वर। न आने-जाने की चेष्टाएँ, न नष्ट है, न प्रयोजन है॥ १० ॥

त्याज्यं ग्राह्यं न दूष्यं वा ह्यमेध्यामेध्यकं तथा। न पीनं न कृशं क्लेदं न कालं देशभाषणम्॥ ११ ॥

त्याज्य, ग्राह्य दूष्य अथवा मेध्य-अमेध्य कुछ नहीं है। न पीन-कृश-काल-क्लेद-देश इत्यादि का कथन सत्य है॥ ११ ॥

न सर्वं न भयं द्वैतं न वृक्षतृणपर्वताः। न ध्यानं योगसंसिद्धिर्न ब्रह्मक्षत्रवैश्यकम्॥ १२ ॥

न सर्व है, न भय है, न द्वैत है, न वृक्ष-तृण-पर्वत हैं न ध्यान अथवा योग संसिद्धि, न ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र ही हैं। १२ ॥

न पक्षी न मृगो नाङ्गी न लोभो मोह एव च। न मदो न च मात्सर्यं कामक्रोधादयस्तथा॥ १३ ॥

न पक्षी, न मृग, न अङ्गी, और न लोभ-मोह ही है। न मद-मात्सर्य-काम-क्रोधादि है ॥ १३ ॥

न स्त्रीशूद्रबिडालादि भक्ष्यभोज्यादिकं च यत्। न प्रौढहीनो नास्तिक्यं न वार्तावसरोऽस्ति हि॥ १४ ॥

न स्त्री-शूद्र-विडालादि, न भक्ष्य-भोज्य आदि, न पौढ़ता से हीन (युवक), न नास्तिकता और न वार्ता का कोई अवसर है॥ १४ ॥

न लौकिको न लोको वा न व्यापारो न मूढता। न भोक्ता भोजनं भोज्यं न पात्रं पानपेयकम्॥ १५ ॥

न लौकिक, न लोक, न व्यापार, न मूढ़ता, न भोक्ता-भोजन-भोज्य, न पान-पेय पात्र है॥ १५ ॥

न शत्रुमित्रपुत्रादिर्न माता न पिता स्वसा। न जन्म न मृत्तिर्वृद्धिर्न देहोऽमिति भ्रमः॥ १६ ॥

न शत्रु-मित्र-पुत्रादि, न माता-पिता-बहिन आदि। न जन्म-मृत्यु-वृद्धि है, मैं देह हूँ यह भ्रम है॥ १६ ॥

न शून्यं नापि चाशून्यं नान्तःकारणसंसृतिः। न रात्रिर्न दिवा नक्तं न ब्रह्मा न हरिः शिवः॥ १७ ॥

न शून्य, न अशून्य आदि, न अन्तःकरण,न कारण सृष्टि। न दिन-रात,न ब्रह्मा, हरि, शिव हैं।। १७ ।।

न वारपक्षमासादि वत्सरं न च चञ्चलम् । न ब्रह्मलोको वैकुण्ठो न कैलासो न चान्यकः ॥ १८ ॥

न वार-पक्ष-मासादि, न वर्ष, न चञ्चल, न वैकुण्ठ, न ब्रह्मलोक, न कैलाश, न कोई अन्य लोक है ॥ १८ ॥

न स्वर्गो न च देवेन्द्रो नाग्निलोको न चाग्निकः। न यमो यमलोको वा न लोका लोकपालकाः॥ १९ ॥

न स्वर्ग, न देवेन्द्र, न अग्निलोक, न आग्निक। न यम अथवा यमलोक, न लोक अथवा लोकपाल।। १९ ।।

न भूर्भुवःस्वस्त्रैलोक्यं न पातालं न भूतलम् । नाविद्या न च विद्या च न माया प्रकृतिर्जडा ॥ २० ॥

न भूर्भुवःस्व तीनों लोक, न पाताल, न भूतल, न विद्या-अविद्या-माया अथवा जड़ प्रकृति।। २० ।।

न स्थिरं क्षणिकं नाशं न गतिर्न च धावनम् । न ध्यातव्यं न मे ध्यानं न मन्त्रो न जपः क्वचित् ॥ २१ ॥

न स्थिर-क्षणिक, न नाश, न गति, न दौड़ना, न ध्यातव्य, न ध्यान, न कहीं मन्त्र, न जप है ॥ २१ ॥

न पदार्था न पूजार्हं नाभिषेको न चार्चनम् । नु पुष्पं न फलं पत्रं गन्धपुष्पादिधूपकम् ॥ २२ ॥

न पदार्थ, न पूजनीय, न अभिषेक, न पूजन। न पुष्प-फल-पत्र-गन्ध धूपादि।। २२ ।।

न स्तोत्रं न नमस्कारो न प्रदक्षिणमण्वपि । न प्रार्थना पृथग्भावो न हविर्नाग्निवन्दनम् ॥ २३ ॥

न स्तोत्र, न नमस्कार, न किञ्चित् भी प्रदक्षिणा। न प्रार्थना, न पृथग्भाव, न हवि, न वन्दन, न अग्नि ही है ॥ २३ ॥

न होमो न च कर्माणि न दुर्वाक्यं सुभाषणम् । न गायत्री न वा संधिर्न मनस्यं न दुःस्थितिः ॥ २४ ॥

न होम, न कर्म, न सुभाषण, न दुर्वाक्य, न गायत्री, न सन्धि, न मन की सुस्थिति अथवा दुःस्थिति ॥ २४ ॥

न दुराशा न दुष्टात्मा न चाण्डालो न पौल्कसः। न दुःसहं दुरालापं न किरातो न कैतवम् ॥ २५ ॥

न दुराशा, न दुष्टात्मा, न चाण्डाल न पौल्कस। न दुःसहन-दुरालाप, न किरात न कैतव ।। २५ ।।

न पक्षपातं पक्षं वा न विभूषणतस्करौ । न च दम्भो दाम्भिको वा न हीनो नाधिको नरः ॥ २६ ॥

न पक्ष अथवा पक्षपात, न आभूषण, न चोर, न दम्भ अथवा दाम्भिक, न कोई हीन, न अधिक नर है ॥ २६ ॥

नैकं द्वयं त्रयं तुर्यं न महत्त्वं न चाल्पता । न पूर्णं न परिच्छिन्नं न काशी न व्रतं तपः॥ २७॥

न एक-दो-तीन-चार, न महत्त्व न अल्पता। न पूर्ण,न खण्डित, न काशी, न कोई व्रत या तप है।।२७।।

न गोत्रं न कुलं सूत्रं न विभुत्वं न शून्यता । न स्त्री न योषिन्नो वृद्धा न कन्या न वितन्तुता ॥ २८ ॥

न गोत्र, न कुल-सूत्र, न विभुता, न शून्यता। न स्त्री, न बूढ़ी-जवान-कन्या न विधवा ॥ २८ ॥

न सूतकं न जातं वा नान्तर्मुखसुविभ्रमः। न महावाक्यमैक्यं वा नाणिमादिविभूतयः॥ २९ ॥

सूतक है, अथवा न जन्म हुआ, न अन्तर्मुख-विभ्रम है। न महावाक्य है, न ऐक्य, न अणिमादि सिद्धियाँ ॥ २९ ॥

सर्वचैतन्यमात्रत्वात्सर्वदोषः सदा न हि । सर्वं सन्मात्ररूपत्वात्सच्चिदानन्दमात्रकम्॥ ३० ॥

सब चैतन्यमात्र होने से न ही सारे दोष हैं। सदा सबकुछ सन्मात्र रूप से सच्चिदानन्द मात्र है ।।३०।।

ब्रह्मैव सर्वं नान्योऽस्ति तदहं तदहं तथा । तदेवाहं तदेवाहं ब्रह्मैवाहं सनातनम्॥ ३१ ॥

ब्रह्म ही सब है, कोई अन्य नहीं, वह मैं सनातन ब्रह्म ही हूँ, (यह निश्चय है) ।। ३१ ।।

ब्रह्मैवाहं न संसारी ब्रह्मैवाहं न मे मनः। ब्रह्मैवाहं न मे बुद्धिर्ब्रह्मैवाहं न चेन्द्रियः ॥ ३२ ॥

मैं ब्रह्म हूँ संसारी नहीं हूँ मैं ब्रह्म ही हूँ मेरा मन नहीं, मैं ही ब्रह्म हूँ मेरी बुद्धि नहीं और मेरी इन्द्रियाँ नहीं ॥ ३२ ॥

ब्रह्मैवाहं न देहोऽहं ब्रह्मैवाहं न गोचरः। ब्रह्मैवाहं न जीवोऽहं ब्रह्मैवाहं न भेदभूः॥ ३३ ॥

मैं ब्रह्म ही हूँ, देह नहीं हूँ, ब्रह्म ही हूँ इन्द्रियगोचर नहीं हूँ, मैं ब्रह्म ही हूँ जीव नहीं, मैं ब्रह्म ही हूँ, भेद को कोई स्थान नहीं ।। ३३ ।।

ब्रह्मैवाहं जडो नाहमहं ब्रह्म न मे मृतिः। ब्रह्मैवाहं न च प्राणो ब्रह्मैवाहं परात्परः॥ ३४ ॥

मैं ब्रह्म ही हूँ, न मैं जड़ हूँ, न मेरी मृत्यु है, मैं ब्रह्म ही हूँ, न मेरा प्राण है। मैं तो परात्पर ब्रह्म ही हूँ॥ ३४ ॥

इदं ब्रह्म परं ब्रह्म सत्यं ब्रह्म प्रभुर्हि सः। कालो ब्रह्म कला ब्रह्म सुखं ब्रह्म स्वयंप्रभम् ॥ ३५ ॥

ब्रह्म ही यह-वह-पर-सत्य-प्रभु है। काल-कला-सुख-स्वयं प्रकाशमान ब्रह्म ही सब है।। ३५ ॥

एकं ब्रह्म द्वयं ब्रह्म मोहो ब्रह्म शमादिकम् । दोषो ब्रह्म गुणो ब्रह्म दमः शान्तं विभुः प्रभुः॥ ३६ ॥

एक, दो, मोह, शमादि सब ब्रह्म हैं; दोष गुण, दम, शान्त, विभु, प्रभु सब ब्रह्म ही है।। ३६ ॥

लोको ब्रह्म गुरुर्ब्रह्म शिष्यो ब्रह्म सदाशिवः। पूर्वं ब्रह्म परं ब्रह्म शुद्धं ब्रह्म शुभाशुभम् ॥ ३७ ॥

लोक-गुरु-शिष्य, सदाशिव ब्रह्म है। पूर्व-पर, शुभ-अशुभ ये सभी ब्रह्म हैं।। ३७ ।।

जीव एव सदा ब्रह्म सच्चिदानन्दमस्म्यहम् । सर्वं ब्रह्ममयं प्रोक्तं सर्वं ब्रह्ममयं जगत् ॥ ३८ ॥

जीव ही सदा ब्रह्म है, मैं ही सच्चिदानन्द हूँ। सब कुछ ब्रह्ममय ही बताया गया है। सारा जगत् ब्रह्ममय है।। ३८ ॥

स्वयं ब्रह्म न संदेहः स्वस्मादन्यन्न किंचन । सर्वमात्मैव शुद्धात्मा सर्वं चिन्मात्रमद्वयम् ॥ ३९ ॥

निस्सन्देह स्व के अतिरिक्त ब्रह्म भी नहीं है । न कुछ अन्य है । सर्वात्मा ही शुद्धात्मा है, वही चिन्मात्र एक है ॥ ३९ ॥

नित्यनिर्मलरूपात्मा ह्यात्मनोऽन्यन्न किञ्चन । अणुमात्रलसद्रूपमणुंमात्रमिदं जगत् ॥ ४० ॥

नित्य-निर्मल आत्मा के अलावा कुछ नहीं है। उस ब्रह्म में यह दृश्यमान जगत् अणुमात्र है।। ४० ॥

अणुमात्रं शरीरं वा ह्यणुमात्रमसत्यकम् । अणुमात्रमचिन्त्यं वा चिन्त्यं वा ह्यणुमात्रकम्॥ ४१ ॥

यह शरीर अणुमात्र है अथवा असत्य भी अणुमात्र है। चिन्तन योग्य, अचिन्तन योग्य सब अणुमात्र है।। ४१ ॥

ब्रह्मैव सर्वं चिन्मात्रं ब्रह्ममात्रं जगत्त्रयम् । आनन्दं परमानन्दमन्यत्किंचिन्न किंचन॥ ४२ ॥

सब चिन्मात्र ब्रह्म ही है। तीनों लोक ब्रह्ममात्र हैं। आनन्द-परमानन्द के सिवा अन्य कुछ नहीं।। ४२ ॥

चैतन्यमात्रमोंकारं ब्रह्मैव सकलं स्वयम् । अहमेव जगत्सर्वमहमेव परं पदम्॥ ४३ ॥

ओङ्कार चैतन्यमात्र है, ब्रह्म ही स्वयं सब कुछ है। मैं ही सारा जगत्, मैं ही परं पद हूँ।। ४३ ॥

अहमेव गुणातीत अहमेव परत्परः। अहमेव परं ब्रह्म अहमेव गुरोर्गुरुः॥ ४४ ॥

मैं ही गुणातीत परात्पर हूँ। मैं ही परं ब्रह्म गुरुओं का गुरु हूँ।। ४४ ॥

अहमेवाखिलाधार अहमेव सुखात्सुखम् । आत्मनोऽन्यज्जगन्नास्ति आत्मनोऽन्यत्सुखं न च॥ ४५ ॥

मैं ही सबका आधार हूँ। मैं ही परम सुख हूँ। आत्मा से पृथक् कोई जगत् नहीं, न आत्मा से पृथक् कोई सुख है।। ४५ ॥

आत्मनोऽन्या गतिर्नास्ति सर्वमात्ममयं जगत् । आत्मनोन्यन्न हि क्वापि आत्मनोऽन्यत्तृणं नहि ॥ ४६ ॥

आत्मा से अन्य कोई गति नहीं, क्योंकि यह जगत् आत्ममय है। आत्मा से पृथक् कोई स्थान नहीं। आत्मा से अन्य तिनका भी नहीं है ॥ ४६ ॥

आत्मनोऽन्यत्तुषं नास्ति सर्वमात्ममयं जगत् । ब्रह्ममात्रमिदं सर्वं ब्रह्ममात्रमसन्नहि ॥ ४७ ॥

आत्मा से अन्य तुष (तूड़) भी नहीं, यह जगत् आत्ममय है। ब्रह्ममात्र ही सब है, ब्रह्म असत् है ही नहीं॥ ४७ ॥

ब्रह्ममात्रं श्रुतं सर्वं स्वयं ब्रह्मैव केवलम् । ब्रह्ममात्रं वृतं सर्वं ब्रह्ममात्रं रसं सुखम् ॥ ४८ ॥

सारा सुना हुआ ब्रह्ममात्र है। सारा घटित हुआ ब्रह्ममात्र है। सारा रस सारा सुख ब्रह्ममात्र है॥ ४८ ॥

ब्रह्ममात्रं चिदाकाशं सच्चिदानन्दमव्ययम् । ब्रह्मणोऽन्यतरन्नास्ति ब्रह्मणोऽन्यज्जगन्न च॥ ४९ ॥

ब्रह्ममात्र ही चिदाकाश सच्चिदानन्द और अव्यय है। ब्रह्म से अलग कोई जगत् नहीं, ब्रह्म से अन्य कुछ भी नहीं॥ ४९ ॥

ब्रह्मणोऽन्यदहं नास्ति ब्रह्मणोऽन्यत्फलं नहि । ब्रह्मणोऽन्यत्तृणं नास्ति ब्रह्मणोऽन्यत्पदं नहि ॥ ५० ॥

ब्रह्म से अलग मैं नहीं, ब्रह्म से अन्य कोई फल नहीं। ब्रह्म से अन्य कोई तृण नहीं, ब्रह्म से अन्य कोई पद नहीं॥ ५० ॥

ब्रह्मणोऽन्यद्गुरुर्नास्ति ब्रह्मणोऽन्यमसद्वपुः। ब्रह्मणोऽन्यन्न चाहंता त्वत्तेदन्ते नहि क्वचित् ॥ ५१ ॥

ब्रह्म से अन्य कोई गुरु नहीं, ब्रह्म से अन्य कोई शरीर असत् है। ब्रह्म से अन्य अहम् नहीं, न ही त्वत्, एतत्, तत् इत्यादि हैं॥ ५१ ॥

स्वयं ब्रह्मात्मकं विद्धि स्वस्मादन्यन्नकिंचन। यत्किंचिद्दृश्यते लोके यत्किंचिद्भाष्यते जलैः (जनैः) ॥ ५२ ॥

स्वयं को ब्रह्म जानो, स्वयं से अतिरिक्त कुछ नहीं। जो कुछ दीख रहा है, जो कुछ लोगों द्वारा कहा जा रहा है ॥ ५२ ॥

यत्किंचिद्भुज्यते क्वापि तत्सर्वमसदेव हि। कर्तृभेदं क्रियाभेदं गुणभेदं रसादिकम्॥ ५३ ॥

जो कुछ कहीं खाया जा रहा है, वह सब असत्य ही है। जितने भी क्रिया भेद, कर्ता भेद गुणभेद और रसादिक हैं ॥ ५३ ॥

लिङ्गभेदमिदं सर्वमसदेव सदा सुखम्। कालभेदं देशभेदं वस्तुभेदं जयाजयम्॥ ५४ ॥

यह लिङ्ग भेद, यह सुख सब असत्य है। कालभेद, देशभेद, वस्तुभेद, जय-पराजय ॥ ५४ ॥

यद्यद्भेद च तत्सर्वमसदेव हि केवलम्। असदन्तःकरणकमसदेवेन्द्रियादिकम्॥ ५५ ॥

जो-जो भी भेद हैं, वे सब असत्य हैं। अन्तःकरण इन्द्रियाँ आदि सब असत्य हैं॥ ५५ ॥

असत्प्राणादिकं सर्वं संघातमसदात्मकम्। असत्यं पञ्चकोशाख्यमसत्यं पञ्च देवताः॥ ५६ ॥

प्राणादि तथा संघात सब असत्य हैं। पञ्चकोश तथा पाँचों देव भी असत्य हैं॥ ५६ ॥

असत्यं षड्विकारादि असत्यमरिवर्गकम्। असत्यं षड्ऋतुश्चैव असत्यं षड्रसस्तथा॥ ५७ ॥

षड्विकार तथा षड्रिपु षड्ऋतुएँ तथा षड्रस सब असत्य हैं॥ ५७ ॥

सच्चिदानन्दमात्रोऽहमनुत्पन्नमिदं जगत्। आत्मैवाहं परं सत्यं नान्याः संसारदृष्टयः॥ ५८ ॥

मैं सच्चिदानन्द मात्र हूँ। यह जगत् तो उत्पन्न ही नहीं हुआ। मैं आत्मा हूँ, यह सत्य है। संसार देखने की दृष्टि असत्य है ॥ ५८ ॥

सत्यमानन्दरूपोऽहं चिद्घनानन्दविग्रहः। अहमेव परानन्द अहमेव परात्परः॥ ५९ ॥

मैं आनन्दरूप हूँ यही सत्य है, मैं चिद् घनानन्दशरीर हूँ। मैं ही परम आनन्द तथा परात्पर हूँ॥ ५९ ॥

ज्ञानाकारमिदं सर्वं ज्ञानानन्दोऽहमद्वयः। सर्वप्रकाशरूपोऽहं सर्वाभावस्वरूपकम्॥ ६० ॥

यह सब दृश्य प्रपञ्च ज्ञानाकार है, मैं ज्ञानाकार और अद्वय हूँ सर्व प्रकाशरूप हूँ तथा सर्व अभाव स्वरूप हूँ ॥ ६० ॥

अहमेव सदा भामीत्येवं रूपं कुतोऽप्यसत्। त्वमित्येवं परं ब्रह्म चिन्मयानन्दरूपवान्॥ ६१ ॥

मैं सदा भासित हूँ। यह असत् कहाँ है। तुम ही चिन्मयानन्दरूप ब्रह्म हो॥ ६१ ॥

चिदाकारं चिदाकाशं चिदेव परमं सुखम्। आत्मैवाहमसन्नाहं कूटस्थोऽहं गुरुः परः॥ ६२ ॥

चिदाकार-चिदाकाशरूप हो, चिद् ही परम सुख है। मैं आत्मा ही हूँ असत् नहीं हूँ कूटस्थ और परम गुरु हूँ॥ ६२ ॥

सच्चिदानन्दमात्रोऽहमनुत्पन्नमिदं जगत्। कालो नास्ति जगन्नास्ति मायाप्रकृतिरेव न॥ ६३ ॥

मैं सच्चिदानन्दरूप हूँ, यह जगत् अनुत्पन्न है। न यह काल है,न जगत् है,न माया है न प्रकृति है॥ ६३ ॥

अहमेव हरिः साक्षादहमेव सदाशिवः। शुद्धचैतन्यभावोऽहं शुद्धसत्त्वानुभावनः॥ ६४ ॥

मैं ही साक्षात् श्री हरि हूँ, मैं ही सदाशिव हूँ। मैं ही शुद्ध-चैतन्यभाव हूँ, मैं ही शुद्ध सत्त्व का अनुभव करने वाला हूँ॥ ६४ ॥

अद्वयानन्दमात्रोऽहं चिद्घनैकरसोस्म्यहम्। सर्वं ब्रह्मैव सततं सर्वं ब्रह्मैव केवलम्॥ ६५ ॥

मैं अद्वय-आनन्दमात्र हूँ। मैं चिद्घनैकरस हूँ। सब कुछ निरन्तर ब्रह्म है, केवल ब्रह्म है॥ ६५ ॥

सर्वं ब्रह्मैव सततं सर्वं ब्रह्मैव चेतनम्। सर्वान्तर्यामिरूपोऽहं सर्वसाक्षित्वलक्षणः॥ ६६ ॥

सभी कुछ सतत ब्रह्म है, सभी कुछ चेतन केवल ब्रह्म है। मैं ही सर्वान्तर्यामी हूँ तथा सबका साक्षी हूँ॥ ६६ ॥

परमात्मा परं ज्योतिः परं धाम परा गतिः। सर्ववेदान्तसारोऽहं सर्वशास्त्रसुनिश्चितः॥ ६७ ॥

मैं ही परमात्मा,परं ज्योति परं धाम, परागति हूँ। सर्व वेदान्तसार हूँ, सर्व शास्त्रों से सुनिश्चित हूँ॥ ६७ ॥

योगानन्दस्वरूपोऽहं मुख्यानन्दमहोदयः। सर्वज्ञानप्रकाशोऽस्मि मुख्यविज्ञानविग्रहः॥ ६८ ॥

योगानन्दस्वरूप हूँ, मुख्यानन्द महोदय हूँ। सर्वज्ञान प्रकाश हूँ, मुख्य विज्ञान शरीर हूँ॥ ६८ ॥

तुर्यातुर्यप्रकाशोऽस्मि तुर्यातुर्यादिवर्जितः। चिदक्षरोऽहं सत्योऽहं वासुदेवोऽजरोऽमरः॥ ६९ ॥

मैं ही तुर्यातुर्य प्रकाश हूँ, तुर्यातुर्य से वर्जित भी हूँ। चिदक्षर हूँ, सत्य हूँ, वासुदेव, अजर और अमर हूँ॥ ६९ ॥

अहं ब्रह्म चिदाकाशं नित्यं ब्रह्म निरञ्जनम्। शुद्धं बुद्धं सदामुक्तमनामकमरूपकम्॥ ७० ॥

मैं चिदाकाश ब्रह्म हूँ, मैं नित्य निरञ्जन ब्रह्म हूँ। शुद्ध बुद्ध सदा अनासक्त रूप हूँ॥ ७० ॥

सच्चिदानन्दरूपोऽहमनुत्पन्नमिदं जगत्। सत्यासत्यं जगन्नास्ति संकल्पकलनादिकम्॥ ७१ ॥

सच्चिदानन्द रूप हूँ, यह जगत् अनुत्पन्न है। सत्यासत्य जगत् नहीं है। संकल्प और कालकलन भी नहीं है॥ ७१ ॥

नित्यानन्दमयं ब्रह्म केवलं सर्वदा स्वयम्। अनन्तमव्ययं शान्तमेकरूपमनामयम्॥ ७२ ॥

मैं स्वयं ही नित्यानन्दमय सर्वदा केवल ब्रह्म हूँ। अनन्त अव्यय शान्त एकरूप और अनामय ब्रह्ममात्र हूँ॥ ७२ ॥

मत्तोऽन्यदस्ति चेन्मिथ्या यथा मरुमरीचिका। बन्ध्याकुमारवचने भीतिश्चेदस्ति किंचन॥ ७३ ॥

मुझसे पृथक् कुछ नहीं, जो है वह मृग-मरीचिका के समान मिथ्या है। बन्ध्या कुमार के वचन में कोई भय है, तो हो॥ ७३ ॥

शशशृङ्गेण नागेन्द्रो मृतश्चेज्जगदस्ति तत्। मृगतृष्णाजलं पीत्वा तृप्तश्चेदस्त्विदं जगत्॥ ७४ ॥

यदि खरगोश के सींग से हाथी मर सकता है, तो जगत् भी है। मृगतृष्णा के जल को पीकर यदि कोई तृप्त है, तो जगत् भी है॥ ७४ ॥

नरशृङ्गेण नष्टश्चेत्कश्चिदस्त्विदमेव हि। गन्धर्वनगरे सत्ये जगद्भवति सर्वदा॥ ७५ ॥

मनुष्य के सींग के प्रहार से यदि कोई मर गया हो, तो जगत् भी है। यदि कहीं गन्धर्व नगर है, तो जगत् भी है॥ ७५ ॥

गगने नीलिमासत्ये जगत्सत्यं भविष्यति। शुक्तिकारजतं सत्यं भूषणं चेज्जगद्भवेत्॥ ७६ ॥

आकाश में नीलिमा के सत्य होने पर, जगत् भी सत्य होगा। सीपी की चाँदी से यदि आभूषण बन सकता है, तो जगत् है॥ ७६ ॥

रज्जुसर्पेण दष्टश्चेन्नरो भवतु संसृतिः। जातरूपेण बाणेन ज्वालाग्नौ नाशिते जगत्॥ ७७ ॥

रस्सी के साँप से डसा हुआ यदि मरा है, तो यह सृष्टि है। सुवर्ण के बाण से अग्नि की ज्वाला शान्त होती है, तो जगत् भी है॥ ७७ ॥

विन्ध्याटव्यां पायसान्नमस्ति चेज्जगदुद्भवः। रम्भास्तम्भेन काष्ठेनपाकसिद्धौ जगद्भवेत्॥ ७८ ॥

विन्ध्याचल के वनों में यदि खीर का भोजन है, तब जगत् भी है। रम्भा स्तम्भ (केले के वृक्ष) के काष्ठ से यदि भोजन बनता है, तो जगत् भी है॥ ७८ ॥

सद्यःकुमारिकारूपैःपाके सिद्धे जगद्भवेत्। चित्रस्थदीपैस्तमसो नाशश्चेदस्त्विदं जगत्॥ ७९ ॥

तत्काल पैदा लड़की के द्वारा यदि रसोई बनती है, तो जगत् भी है। यदि चित्र में स्थित दीपों से अन्धकार नष्ट होता है, तो जगत् भी है॥ ७९ ॥

मासात्पूर्वं मृतो मर्त्यो ह्यागतश्चेज्जगद्भवेत्। तक्रं क्षीरस्वरूपं चेत्क्वचिन्नित्यं जगद्भवेत्॥ ८० ॥

एक मास पूर्व मरा व्यक्ति यदि लौट आता है, तो जगत् भी है और मठ्ठा ही दूध बन जाता है, तो जगत् भी सत्य है॥ ८० ॥

गोस्तनादुद्भव क्षीरं पुनरारोपणे जगत्। भूरजोऽब्धौ समुत्पन्ने जगद्भवतु सर्वदा॥८१॥

गौ के स्तन से निकला दूध यदि फिर आरोपित किया जा सकता है, तो जगत् भी है तथा समुद्र में भूमि की रज देखी जा सकती है, तो जगत् की सत्यता है॥ ८१ ॥

कूर्मरोम्णा गजे बद्धे जगदस्तु मदोत्कटे। नालस्थतन्तुना मेरुश्चालितश्चेज्जगद्भवेत्॥ ८२ ॥

कछुवे के रोम से यदि हाथी बँध जाये, तो जगत् की सत्यता संभव है। और यदि कमलनाल में स्थित तन्तु से मेरु पर्वत चालित हो जाये, तो जगत् भी सत्य है॥ ८२ ॥

तुरङ्गमालया सिन्धुर्बद्धश्चेदस्त्विदं जगत्। अग्नेरधश्चेज्ज्वलनं जगद्भवतु सर्वदा॥ ८३ ॥

तुरङ्ग माला से समुद्र बँध जाये और अग्नि की लपट नीचे की ओर जाये, तो जगत् की सत्यता भी निश्चित है॥ ८३ ॥

ज्वालावह्निः शीतलश्चेदस्ति रूपमिदं जगत्। ज्वालाग्निमण्डले पद्मवृद्धिश्चेज्जगदस्त्विदम्॥ ८४ ॥

अग्नि की ज्वाला शीतल हो जाये तथा ज्वाला के अग्नि मण्डल में कमल की वृद्धि हो जाये, तो जगत् भी असत्य नहीं है॥ ८४ ॥

महच्छैलेन्द्रनीलं वा संभवेच्चेदिदं जगत्। मेरुरागत्य पद्माक्षे स्थितश्चेदस्त्विदं जगत्॥ ८५ ॥

इन्द्र नीलमणियों का बड़ा पर्वत यदि सम्भव हो तथा मेरु आकर पद्माक्ष पर स्थित हो जाए, तो ही जगत् की भी सत्यता है॥ ८५ ॥

निगिरेच्चेद्भृङ्गसूनुर्मेरुं चलवदस्त्विदम्। मशकेन हते सिंहे जगत्सत्यं तदास्तु ते॥ ८६ ॥

भौंरे का बच्चा चलते हुए मेरु को निगल जाये तथा मच्छर सिंह की हत्या कर सके, तो यह जगत् सत्य है॥ ८६ ॥

अणुकोटरविस्तीर्णे त्रैलोक्यं चेज्जगद्भवेत्। तृणानलश्च नित्यश्चेत्क्षणिकं तज्जगद्भवेत्॥ ८७ ॥

अणु के कोटर में त्रैलोक्य समा सके तथा तृणाग्नि नित्य रह सके, तो ही जगत् की भी सत्यता है॥ ८७ ॥

स्वप्नदृष्टं च यद्वस्तु जागरे चेज्जगद्भवः। नदीवेगो निश्चलश्चेत्केनापीदं भवेज्जगत्॥ ८८ ॥

स्वप्न में देखी वस्तु जागने पर मिल जाये तथा नदी का वेग निश्चल हो जाये, तो जगत् भी सत्य है॥८८॥

क्षुधितस्याग्निर्भोज्यश्चेन्निमिषं कल्पितं भवेत्। जात्यन्धै रत्नविषयः सुज्ञातश्चेज्जगत्सदा॥ ८९ ॥

भूखे की जठराग्नि कल्पित भोज्य पदार्थ से तृप्त हो जाये तथा जन्मान्ध रत्नों की पहचान कर सके तो ही जगत् की सत्यता संभव है॥ ८९ ॥

नपुंसककुमारस्य स्त्रीसुखं चेद्भवेज्जगत्। निर्मितः शशशृङ्गेण रथश्चेज्जगदस्ति तत्॥ ९० ॥

नपुंसक कुमार को स्त्री सुख प्राप्त हो सके अथवा खरगोश के सींग से रथ बन सके तभी जगत् की

सत्यता संभव है।। ९० ।।

सद्योजाता तु या कन्या भोगयोग्या भवेज्जगत्। बन्ध्या गर्भाप्ततत्सौख्यं ज्ञाता चेदस्त्विदं जगत् ॥ ९१ ॥

तत्काल उत्पन्न कन्या भोग के योग्य हो जाये अथवा बन्ध्या गर्भ की उपस्थिति से सुख प्राप्त कर सके तभी जगत् भी सत्य हो सकता है।। ९१ ।।

काको वा हंसवद्गच्छेज्जगद्भवतु निश्चलम्। महाखरो वा सिंहेन युध्यते चेज्जगत्स्थिति॥ ९२ ॥

कौवा हंस की चाल चलने लगे अथवा बड़ा गधा सिंह से युद्ध कर सके, तभी जगत् की सत्यता संभव है। ९२ ॥

महाखरो गजगतिं गतश्चेज्जगदस्तु तत् । संपूर्णचन्द्रसूर्यश्चेज्जगद्भातु स्वयं जडम्॥ ९३ ॥

बड़ा गधा हाथी की चाल चल सके अथवा सम्पूर्ण चन्द्रमा सूर्य हो जाये, तभी जगत् की नित्यता संभव है ॥ ९३ ॥

चन्द्रसूर्यादिकौ त्यक्त्वा राहुश्चेद्दृश्यते जगत् । भृष्टबीजसमुत्पन्नवृद्धिश्चेज्जगदस्तु सत्॥ ९४ ॥

चन्द्र सूर्य को त्याग कर राहु जगत् में दृश्यमान हो अथवा भुना हुआ बीज उत्पन्न होकर वृद्धि को प्राप्त हो सके, तो जगत् की भी सत्यता संभव है।। ९४ ।।

दरिद्रो धनिकानां च सुखं भुङ्क्ते तदा जगत् । शुना वीर्येण सिंहस्तु जितो यदि जगत्तदा॥ ९५ ॥

दरिद्र धनिकों का सुख भोग सके अथवा कुत्ते के पराक्रम से सिंह जीता जा सके, तो जगत् की उपस्थिति संभव है।। ९५ ।।

ज्ञानिनो हृदयं मूढैर्ज्ञातं चेत्कल्पनं तदा । श्वानेन सागरे पीते निःशेषेण मनो भवेत्॥ ९६ ॥

ज्ञानी का हृदय मूढ़ों द्वारा जाना जा सके अथवा कुत्ते के द्वारा सागर पिया जा सके, तभी जगत् की सत्यता संभव है।। ९६ ।।

शुद्धाकाशो मनुष्येषु पतितश्चेत्तदा जगत् । भूमौ वा पतितं व्योम व्योमपुष्पं सुगन्धकम्॥ ९७ ॥

शुद्धाकाश मनुष्यों पर गिर जाये अथवा आकाश पृथ्वी पर गिर पड़े तथा आकाश में पुष्प खिल सके, तो जगत् की सत्यता संभव है।। ९७ ।।

शुद्धाकाशे वने जाते चलिते तु तदा जगत् । केवले दर्पणे नास्ति प्रतिबिम्बं तदा जगत् ॥ ९८ ॥

शुद्धाकाश वन में चल सके अथवा दर्पण में प्रतिबिम्ब न दिखाई दे, तभी जगत् की सत्यता संभव है ॥ ९८ ॥

अजकुक्षौ जगन्नास्ति ह्यात्मकुक्षौ जगन्नहि। सर्वथा भेदकलनं द्वैताद्वैतं न विद्यते॥ ९९ ॥

अजन्मा की कोख में जगत् नहीं, न ही आत्मा की कोख में जगत् है। यह भेद केवल कल्पना है अन्यथा द्वैताद्वैत नहीं है।। ९९ ।।

मायाकार्यमिदं भेदमस्ति चेद्ब्रह्मभावनम्। देहोऽहमिति दुःखं चेद्ब्रह्माहमिति निश्चयः॥ १०० ॥

यदि वह भेद मायाकृत जान लिया गया, तो वह मात्र ब्रह्म की भावना ही शेष रहेगी। मैं देह हूँ यह दुःख है, मैं ब्रह्म हूँ यह निश्चय है।। १०० ।।

हृदयग्रन्थिरस्तित्वे छिद्यते ब्रह्मचक्रकम्। संशये समनुप्राप्ते ब्रह्मनिश्चयमाश्रयेत्॥ १०१ ॥

हृदयग्रन्थि के अस्तित्व में ही ब्रह्मचक्र का छेदन होता है। संशय नष्ट हो जाने पर ब्रह्म का निश्चय हो जाता है।। १०१ ।।

अनात्मरूपचोरश्चेदात्मरत्नस्य रक्षणम्। नित्यानन्दमयं ब्रह्म केवलं सर्वदा स्वयम्॥ १०२ ॥

यदि अनात्मा रूप चोर ही आत्मा रूपी रत्न का रक्षक नियुक्त हो, तभी जगत् है। अन्यथा ब्रह्म तो नित्यानन्दमय स्वयं आत्मस्वरूप है।। १०२ ।।

एवमादिसुदृष्टान्तैः साधितं ब्रह्ममात्रकम्। ब्रह्मैव सर्वभावनं भुवनं नाम संत्यज॥ १०३ ॥

इस प्रकार इतने सारे दृष्टान्तों से ब्रह्म मात्र को सिद्ध किया है। अतः ब्रह्म ही सर्वभावों का भाव है। इस जगत् की कल्पना को छोड़ो।। १०३ ।।

अहंब्रह्मेति निश्चित्य अहंभावं परित्यज। सर्वमेव लयं याति सुप्ताहस्तस्थपुष्पवत्॥ १०४ ॥

मैं ब्रह्म हूँ, इसका निश्चय करके अहम्भाव त्याग दो। सोये मनुष्य के हाथ पर रखे पुष्प की भाँति सभी लय को प्राप्त हो जाता है।। १०४ ।।

न देहो न च कर्माणि सर्वं ब्रह्मैव केवलम्। न भूतं न च कार्यं च न चावस्थाचतुष्टयम्॥ १०५ ॥

न देह है, न कर्म है, केवल ब्रह्म ही सब कुछ है। न प्राणी है, न कार्य है न ही चारों अवस्थाएँ हैं॥ १०५ ॥

लक्षणात्रयविज्ञानं सर्वं ब्रह्मैव केवलम्। सर्वव्यापारमुत्सृज्य ह्यह ब्रह्मेति भावय॥ १०६ ॥

लक्षणात्रय के विज्ञान से केवल ब्रह्म की ही सत्ता है। अतः सारे भावों का परित्याग करके केवल ब्रह्म की ही भावना करो।। १०६ ।।

अहं ब्रह्म न संदेहो ह्यहं ब्रह्म चिदात्मकम् । सच्चिदानन्दमात्रोऽहमिति निश्चित्य तत्त्यज ॥ १०७ ॥

मैं ब्रह्म हूँ, इसमें संशय नहीं। मैं केवल चिदात्मक ब्रह्म हूँ। मैं सच्चिदानन्द-मात्र हूँ, यह भावना करके जगत् की तथा जीव की भावना का परित्याग करो।। १०७ ।।

शांकरीयं महाशास्त्रं न देयं यस्य कस्यचित् । नास्तिकाय कृतघ्नाय दुर्वृत्ताय दुरात्मने ॥ १०८ ॥

यह शङ्कर का शास्त्र जिस-तिस को नहीं देना चाहिए। नास्तिक कृतघ्न दुराचारी दुरात्मा को कभी न देना।। १०८ ।।

गुरुभक्तिविशुद्धान्तःकरणाय महात्मने। सम्यक् परीक्ष्य दातव्यं मासं षण्मासवत्सरम् ॥ १०९ ॥

गुरुभक्ति से विशुद्ध अन्तरात्मा वाले महात्मा को अच्छीप्रकार परीक्षा लेकर महीने, छः महीने अथवा एक वर्ष तक देना चाहिए ।। १०९ ।।

सर्वोपनिषदभ्यासं दूरतस्त्यज्य सादरम् । तेजोबिन्दूपनिषदमभ्यसेत्सर्वदा मुदा ॥ ११० ॥

सारे उपनिषदों का अभ्यास आदरपूर्वक दूर से ही त्याग कर मात्र तेजोबिन्दु उपनिषद् का अभ्यास ही प्रसन्नता पूर्वक करना पर्याप्त है।। ११० ।।

सकृदभ्यासमात्रेण ब्रह्मैव भवति स्वयं ब्रह्मैव भवति स्वयमित्युपनिषत्।। ॐ सह नाववत्विति शान्तिः।। १११।।

एक बार अभ्यास करने से स्वयं ब्रह्म ही हो जाता है। स्वयं ब्रह्म ही हो जाता है, यही रहस्य है।। १११ ।।

इति तेजोबिन्दूपनिषत्सु षष्ठोऽध्यायः

।। ॐ सह नाववतु................इति शान्तिः ।।

।। इति तेजोबिन्दूपनिषत्समाप्ता ।।

॥ त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषद्॥

॥ शान्तिपाठः॥

॥ ॐ भद्रं कर्णेभिः .... इति शान्तिः॥ (द्रष्टव्य- अथर्वशिखोपनिषद्)

॥ प्रथमोऽध्यायः॥

अथ परमतत्त्वरहस्यं जिज्ञासुः परमेष्ठी देवमानेन सहस्रसंवत्सरं तपश्चचार। सहस्रवर्षेऽतीतेऽत्युग्रतीव्रतपसा प्रसन्नं भगवन्तं महाविष्णुं ब्रह्मा परिपृच्छति भगवन् परमतत्त्व रहस्यं मे ब्रूहीति। परमतत्त्वरहस्यवक्ता त्वमेव नान्यः कश्चिदस्ति तत्कथमिति। तदेवोच्यते। त्वमेव सर्वज्ञः। त्वमेव सर्वशक्तिः। त्वमेव सर्वाधारः। त्वमेव सर्वस्वरूपः। त्वमेव सर्वेश्वरः। त्वमेव सर्वप्रवर्तकः। त्वमेव सर्वपालकः। त्वमेव सर्वनिर्वर्तकः। त्वमेव सदसदात्मकः। त्वमेव सदसद्विलक्षणः। त्वमेवान्तर्बहिर्व्यापकः। त्वमेवातिसूक्ष्मतरः। त्वमेवाति महतो महीयान्। त्वमेव महामूलाविद्या विरहः। त्वमेव महामूला विद्याविवर्तकः। त्वमेव सर्वमूलाविद्यानिवर्तकः। त्वमेवाविद्याविहारः। त्वमेवाविद्याधारकः। त्वमेवविद्यावेद्यः। त्वमेव विद्यास्वरूपः। त्वमेव विद्यातीतः। त्वमेव सर्वकारणहेतुः। त्वमेव सर्वकारणसमष्टिः। त्वमेव सर्वकारण व्यष्टिः। त्वमेवाखण्डानन्दः। त्वमेव परिपूर्णानन्दः। त्वमेव निरतिशयानन्दः। त्वमेव तुरीयतुरीयः। त्वमेव तुरीयातीतः त्वमेवानन्तोपनिषद्विमृग्यः। त्वमेवाखिलशास्त्रैर्विमृग्यः। त्वमेव ब्रह्मेशान पुरन्दर पुरोग मैरखिलामरैरखिलागमैर्विमृग्यः। त्वमेव सर्वमुमुक्षुभिर्विमृग्यः। त्वमेवामृतमयैर्विमृग्यः। त्वमेवामृतमयस्त्वमेवामृतमयस्त्वमेवामृतमयः। त्वमेव सर्वं त्वमेव सर्वं त्वमेव सर्वम्। त्वमेव मोक्षस्त्वमेव मोक्षदस्त्वमेवाखिलमोक्षसाधनम्। न किंचिदस्ति त्वद्व्यतिरिक्तम्। त्वद्व्यतिरिक्तं यत्किंचित्प्रतीयते तत्सर्वं बाधितमिति निश्चितम्। तस्मात्त्वमेव वक्ता त्वमेव गुरुस्त्वमेव पिता त्वमेव सर्वनियन्ता त्वमेव सर्वं त्वमेव सदा ध्येय इति सुनिश्चितः॥ १॥

एक समय प्रजापति श्री ब्रह्माजी ने परमतत्त्व को जानने की जिज्ञासा से देवताओं के मान से हजारों वर्षों तक तप किया। अति उग्र तप करते हुए सहस्रों देव वर्ष व्यतीत होने पर भगवान् महाविष्णु प्रसन्न होकर प्रकट हुए। उस समय ब्रह्माजी ने कहा, भगवन्! मुझे परमतत्त्व का रहस्य बताने की कृपा करें; क्योंकि एकमात्र आप ही इस परमतत्त्व के रहस्य को बतला सकते हैं, दूसरा कोई नहीं बता सकता। ऐसा क्यों कह रहा हूँ ? क्योंकि आप ही सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सबके आधार, सर्वस्वरूप, सबके स्वामी, समस्त कार्यों के प्रवर्तक, सबके पालनहार, सबके निर्वर्तक (उत्पन्न करने वाले) हैं। आप ही सत्--असत् रूप हैं, सत्--असत् से परे भी आप ही हैं। आप ही अन्दर बाहर सर्वत्र व्यापक हैं। आप ही सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हैं। महान् से महान् आप ही हैं। आप ही मूल अविद्या का विनाश करने वाले, अविद्या में विहार करने वाले एवं अविद्या के अधिष्ठाता भी आप ही हैं। विद्या (ज्ञान) के द्वारा ही आपको जाना जा सकता है। आप साक्षात् विद्या--स्वरूप हैं। विद्या से परे भी आप ही हैं। आप

ही समस्त कारणों के समष्टि एवं व्यष्टिरूप हैं। अखण्ड-आनन्दरूप तथा परिपूर्णानन्द भी आप ही हैं। निरतिशय आनन्द आप ही हैं। तुरीय अवस्था के भी तुरीय तथा तुरीयातीत भी आप ही हैं। अनन्त उपनिषदों एवं शास्त्रों द्वारा आप ही अन्वेषणीय हैं। समस्त तन्त्र शास्त्रों द्वारा एवं ब्रह्मा अर्थात् मेरे द्वारा शंकर, इन्द्र आदि समस्त देवताओं द्वारा आप ही अन्वेषण करने योग्य हैं। समस्त मुमुक्षुजनों द्वारा आप ही ढूँढ़ने के योग्य हैं। द्वआप ही अमृतमय हैं, अमृतमय हैं, अमृतमय हैं। इस संसार में जो कुछ है, सर्वरूप आप ही हैं, सर्वरूप आप ही हैं, सर्वरूप आप ही हैं। आप ही मोक्ष के साधनरूप हैं, मोक्षदाता भी आप ही हैं (तथा) मुक्ति भी आप ही हैं। आपके अतिरिक्त इस संसार में किञ्चित् मात्र (कुछ) भी नहीं। आपके अतिरिक्त इस संसार में जो कुछ है, वह निश्चित रूप से मिथ्या है। यह निश्चित है। इसलिए आप ही वक्ता हैं, आप ही गुरु, आप ही पिता हैं, आप ही सब पर नियन्त्रण करने वाले हैं। सर्वस्व आप ही हैं तथा आप ही ध्यान करने योग्य हैं, यह सुनिश्चित है॥ १॥

परमतत्त्वज्ञस्तमुवाच महाविष्णुरतिप्रसन्नो भूत्वा साधु साध्विति साधुप्रशंसापूर्वकं सर्वं परमतत्त्वरहस्यं ते कथयामि। सावधानेन शृणु। ब्रह्मन् देवदर्शीत्याख्याथर्वणशाखायां परमतत्त्वरहस्याख्याथर्वणमहानारायणोपनिषदि गुरुशिष्यसंवादः पुरातनः प्रसिद्धतया जागर्ति। पुरा तत्स्वरूपज्ञानेन महान्तः सर्वं ब्रह्मभावं गताः। यस्य श्रवणेन सर्वबन्धाः प्रविनश्यन्ति। यस्य ज्ञानेन सर्वरहस्यं विदितं भवति॥ २॥

परमतत्त्वज्ञ भगवान् महाविष्णु ने ब्रह्माजी को साधुवाद देते हुए उनकी प्रसंशा करते हुए कहा है कि समस्त परम तत्त्व का रहस्य तुम्हारे लिए कहता हूँ। सावधानीपूर्वक सुनो। हे ब्रह्मन्! अथर्ववेदीय देवदर्शी शाखा में परम तत्त्व रहस्य नामक अथर्ववेदीय महानारायणोपनिषद् में प्राचीन समय से गुरु- शिष्य संवाद सुप्रसिद्ध होने से सभी को ज्ञात है। प्राचीन काल में उस स्वरूप को जान कर समस्त महापुरुष ब्रह्मभाव (पूर्णता) को प्राप्त हुए हैं। जिसके श्रवण कर लेने मात्र से समस्त प्रकार के बन्धन समाप्त हो जाते हैं। जिसको जान लेने से (संसार के) सभी रहस्य विदित हो जाते हैं॥ २॥

तत्स्वरूपं कथमिति॥ ३॥

उसका (गुरु शिष्य संवाद का स्वरूप कैसा है? सुनो॥ ३॥

शान्तो दान्तोऽतिविरक्तः सुशुद्धो गुरुभक्तस्तपोनिष्ठः शिष्यो ब्रह्मनिष्ठं गुरुमासाद्य प्रदक्षिणपूर्वकं दण्डवत्प्रणम्य प्राञ्जलिर्भूत्वा विनयेनोपसङ्गम्य भगवन् गुरो मे परमतत्त्वरहस्यं विविच्य वक्तव्यमिति॥ ४॥

शान्त स्थिर चित्त, अति विरक्त, अति शुद्ध, तप में निरत गुरुभक्त शिष्य ने ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास जाकर, प्रदक्षिणापूर्वक साष्टांग प्रणाम करके, हाथ जोड़कर गुरु के समीप में स्थित होकर, विनयपूर्वक कहा! हे भगवन्! हे गुरुदेव! मुझे परमतत्त्व के रहस्य को स्पष्ट करके बतलाने की कृपा करें॥ ४॥

अत्यादरपूर्वकमिति हर्षेण शिष्यं बहूकृत्य गुरुर्वदति। परमतत्त्वरहस्योपनिषत्क्रमः कथ्यते। सावधानेन श्रूयताम्। कथं ब्रह्म। कालत्रयाबाधितं ब्रह्म। सर्वकालाबाधितं ब्रह्म।

सगुणनिर्गुणस्वरूपं ब्रह्म। आदिमध्यान्तशून्यं ब्रह्म। सर्वं खल्विदं ब्रह्म। मायातीतं गुणातीतं ब्रह्म। अनन्तमप्रमेयाखण्डपरिपूर्णं ब्रह्म। अद्वितीयपरमानन्दशुद्धबुद्धमुक्तसत्यस्वरूपव्यापका-भिन्नापरिच्छिन्नं ब्रह्म। सच्चिदानन्दं स्वप्रकाशं ब्रह्म। मनोवाचामगोचरं ब्रह्म। अखिलप्रमाणागोचरं ब्रह्म। अमितवेदान्तवेद्यं ब्रह्म। देशतः कालतो वस्तुतः परिच्छेदरहितं ब्रह्म। सर्वपरिपूर्णं ब्रह्म। तुरीयं निराकारमेकं ब्रह्म। अद्वैतमनिर्वाच्यं ब्रह्म। प्रणवात्मकं ब्रह्म। प्रणवात्मकत्वेनोक्तं ब्रह्म। प्रणवाद्यखिलमन्त्रात्मकं ब्रह्म। पादचतुष्टयात्मकं ब्रह्म॥ ५॥

हर्षित होकर शिष्य की बहुत प्रशंसा करते हुए अत्यन्त आदरपूर्वक गुरु ने कहा— परमतत्त्व रहस्योपनिषद् का क्रमबद्ध वर्णन कर रहा हूँ। सावधान होकर सुनें। ब्रह्म कैसा है ? जो तीनों कालों (भूत, भविष्य, वर्तमान) में अबाधित होकर रहता है, वह ब्रह्म है। ब्रह्म आदि, मध्य और अन्त से परे है। ब्रह्म माया एवं गुणों से परे है। जिन्हें अनन्त प्रमाणों से भी जाना नहीं जा सकता, जो अखण्ड एवं परिपूर्ण है, वह ब्रह्म है। ब्रह्म अद्वितीय, परमानन्दस्वरूप, शुद्ध, बुद्ध, सबसे मुक्त, सत्यस्वरूप, सर्वव्यापी, सबसे अभिन्न, कभी अलग न होने वाला है।

ब्रह्म स्वयं प्रकाशित एवं सत्-चित्-आनन्दमय है। ब्रह्म मन-वाणी से अगोचर अर्थात् नहीं जाना जा सकता । ब्रह्म समस्त प्रमाणों से परे है। ब्रह्म ही अनन्त वेदान्तों के द्वारा जानने योग्य है। ब्रह्म देश, काल तथा पदार्थ की सीमा से रहित है। ब्रह्म सब तरह से पूर्ण है। ब्रह्म निराकार तुरीय स्वरूप एवं सबमें एक होकर समान रूप से व्याप्त है। ब्रह्म अद्वैत के साथ एकाकार है। ब्रह्म प्रणव (ओंकार) स्वरूप है। ब्रह्म को ओंकार की आत्मा कहा गया है। प्रणव आदि मंत्रों में भी ब्रह्म ही है। ब्रह्म को चार पाद वाला कहा गया है॥ ५॥

किं तत्पादचतुष्टयं ब्रह्म भवति॥ ६॥

ब्रह्म के कौन से चार पाद हैं ?॥ ६॥

अविद्यापादः सुविद्यापादश्चानन्दपादस्तुरीयपादश्चेति। तुरीयपादस्तुरीयतुरीयं तुरीयातीतं च॥ ७॥

अविद्या पाद, सुविद्या पाद, आनन्द पाद तथा तुरीयपाद। ये ही ब्रह्म के चार पाद हैं। तुरीयपाद तुरीय का भी तुरीय एवं तुरीयातीत है॥ ७॥

कथं पादचतुष्टयस्य भेदः॥ ८॥

चारों पादों में क्या भेद हैं ?॥ ८॥

अविद्यापादः प्रथमः पादो विद्यापादो द्वितीयः आनन्दपादस्तृतीयस्तुरीयपादस्तुरीय इति। मूलाविद्या प्रथमपादे नान्यत्र। विद्याऽऽनन्दतुरीयांशाः सर्वेषु पादेषु व्याप्य तिष्ठन्ति॥ ९॥

प्रथम पाद अविद्या पाद है, दूसरा पाद विद्यापाद है, तीसरा पाद आनन्द पाद है एवं चौथा पाद तुरीय पाद है। प्रथम पाद में ही मूल अविद्या है, अन्यत्र कहीं नहीं। सभी पादों में विद्या, आनन्द और तुरीय भी कुछ अंशों में व्याप्त रहते हैं॥ ९॥

एवं तर्हि विद्यादीनां भेदः कथमिति॥ १०॥

यदि ऐसा है, तो विद्यादि पादों में भेद क्या है?॥ १०॥

तत्तत्प्राधान्येन तत्तद्व्यपदेशः। वस्तुतस्त्वभेद एव। तत्राधस्तनमेकं पादमविद्याशबलं भवति। उपरितनपादत्रयं शुद्धबोधानन्दलक्षणममृतं भवति। तच्चालौकिक परमानन्द लक्षणाखण्डामिततेजोराशिर्ज्वलति। तच्चानिर्वाच्यमनिर्देश्यमखण्डानन्दैकरसात्मकं भवति। तत्र मध्यमपादमध्यप्रदेशेऽमिततेजः प्रवाहाकारतया नित्य वैकुण्ठं विभाति। तच्च निरतिशयानन्दाखण्डब्रह्मानन्दनिजमूर्त्याकारेण ज्वलति। अपरिच्छिन्नमण्डलानि यथा दृश्यन्ते तद्वदखण्डानन्दामितवैष्णवदिव्यतेजोराश्यन्तर्गतविलसन्महाविष्णोः परम पदं विराजते। दुग्धोदधिमध्यस्थितामृतामृतकलशवद्वैष्णवं धाम परमं संदृश्यते। सुदर्शनदिव्यतेजोऽन्तर्गतः सुदर्शनपुरुषो यथा सूर्यमण्डलान्तर्गतः सूर्यनारायणोऽमितापरिच्छिन्नाद्वैतपरमानन्दलक्षण-तेजोराश्यन्तर्गतआदिनारायणस्तथा संदृश्यते। स एव तुरीयं ब्रह्म स एव तुरीयातीतः स एव विष्णुः स एव समस्तब्रह्मवाचकवाच्यः स एव परंज्योतिः स एव मायातीतः स एव गुणातीतः स एव कालातीतः स एवाखिलकर्मातीतः स एव सत्योपाधिरहितः स एव परमेश्वरः स एव चिरंतनः पुरुषः प्रणवाद्यखिलमन्त्रवाचकवाच्य आद्यन्तशून्य आदिदेशकालवस्तुतुरीयसंज्ञानि त्यपरिपूर्णः पूर्णः सत्यसंकल्प आत्मारामः कालत्रयाबाधितनिजस्वरूपः स्वयंज्योतिः स्वयंप्रकाशमयः स्वसमानाधिकरणशून्यः स्वसमानाधिकशून्यो न दिवारात्रिविभागो न संवत्सरादिकालविभागः स्वानन्दमयानन्ताचिन्त्यविभव आत्मान्तरात्मा परमात्मा ज्ञानात्मा तुरीयात्मेत्यादिवाचकवाच्योऽद्वैतपरमानन्दो विभुर्नित्यो निष्कलङ्को निर्विकल्पो निरञ्जनो निराख्यातः शुद्धो देव एको नारायणो न द्वितीयोऽस्ति॥ ११॥

वैसे तो उनमें कोई भेद नहीं हैं। (परन्तु) उनमें विद्या आदि की प्रधानता रहती है, इस कारण उनके पृथक् नाम कहे गये हैं। चारों पादों में नीचे के पाद में ही अविद्या मिश्रित रहती है। ऊर्ध्व स्थित तीनों पाद शुद्ध बोधानन्द एवं अमृत सदृश हैं। वे पादत्रय अलौकिक परमानन्द लक्षण वाले अखण्ड तेजोराशि की तरह प्रज्वलित रहते हैं तथा वे (तीनों पाद) अखण्ड आनन्द के रसात्मक, अनिर्देश्य अवर्णनातीत हैं। उनमें से मध्यम पाद (आनन्द) के मध्य में अमित तेज प्रवाहक नित्य वैकुण्ठ स्थित है। वह असीम आनन्द तथा अखण्ड ब्रह्मानन्दरूपी मूर्ति के रूप में स्वतः प्रकाशित है। जिस प्रकार से अपरिछिन्न मण्डल दिखाई पड़ते हैं, उसी प्रकार अखण्डानन्दमय अमित वैष्णव दिव्य तेजोराशि के अन्तर्गत भगवान् महाविष्णु का यह परमधाम दिखलाई पड़ता है। जिस प्रकार सुदर्शन चक्र के दिव्य तेज के अन्तर्गत सुदर्शन देवता विराजमान हैं, जिस प्रकार सूर्य मण्डल के अन्तर्गत भगवान् सूर्य नारायण विराजमान हैं, उसी प्रकार असीम, कभी न समाप्त होने वाले, अद्वैत परमानन्दरूपी प्रकाश के अन्तर्गत भगवान् आदिनारायण दिखलायी पड़ते हैं। तुरीय ब्रह्म वे ही आदिनारायण हैं। तुरीयातीत वे ही हैं। वे ही भगवान् विष्णु हैं। सभी ब्रह्मवाचक वाक्यों के वाच्य वे ही हैं। काल एवं माया से परे वे ही हैं। वे ही समस्त कर्मों से परे हैं। वस्तुतः वे उपाधिरहित हैं, सबको संचालित करने वाले परमेश्वर भी वे ही हैं। वे ही चिरन्तन पुरुष हैं। प्रणव आदि

समस्त मंत्रों के वाचकों के वाच्य, आदि-अन्त विहीन आदि देश, काल, वस्तु, तुरीय संज्ञा वाले हर समय परिपूर्ण, हर प्रकार से पूर्ण, सत्य संकल्प वाले, सबकी आत्मा, तीनों कालों से परे, अपने स्वरूप में स्थित, स्वयं ज्योतिस्वरूप एवं प्रकाशित जिसके समान कोई नहीं, जहाँ दिन-रात्रि का विभाजन नहीं है तथा जहाँ संवत्सर आदि समय का विभाजन नहीं है। अचिन्त्य-सीमा रहित, स्वयं आनन्दमय ऐश्वर्य वाले, आत्मा की भी आत्मा परमात्मा, ज्ञान की आत्मा तुरीयात्मा इत्यादि शब्दों से सम्बोधित किये जाने वाले अद्वैत परमानन्द सर्वव्यापी, नित्य, कलंकरहित, निर्विकल्प, निरञ्जन, जिनकी कोई संज्ञा नहीं शुद्ध देवता एक नारायण ही हैं, दूसरा कोई नहीं है॥ ११॥

कश्चिदिति य एवं वेद स पुरुषस्तदीयोपासनया तस्य सायुज्यमेत्यसंशयमित्युपनिषत्॥ १२॥

इस प्रकार जानने वाला पुरुष उनकी उपासना करके सायुज्य मुक्ति को प्राप्त कर लेता है, इसमें किसी प्रकार की शंका नहीं है॥ १२॥

॥ द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथेति होवाच छात्रो गुरुं भगवन्तम्। भगवन्वैकुण्ठस्य नारायणस्य च नित्यत्वमुक्तम्। स एव तुरीयमित्युक्तमेव। वैकुण्ठः साकारो नारायणः साकारश्च। तुरीयं तु निराकारम्। साकारः सावयवो निरवयवंनिराकारम्। तस्मात्साकारमनित्यं नित्यं निराकारमिति श्रुतेः। यद्यत्सावयवं तत्तदनित्यमित्यनुमानाच्चेति प्रत्यक्षेण दृष्टत्वाच्च। अतस्तयोरनित्यत्वमेव वक्तुमुचितं भवति। कथमुक्तं नित्यत्वमिति। तुरीयमक्षरमिति श्रुतेः। तुरीयस्य नित्यत्वं प्रसिद्धम्। नित्यत्वानित्यत्वे परस्परविरुद्धधर्मौ। तयोरेकस्मिन्ब्रह्मण्यत्यन्तविरुद्धं भवति। तस्माद्वैकुण्ठस्य च नारायणस्य च नित्यत्वमेव वक्तुमुचितं भवति ?॥ १॥

इस प्रकार भगवद्रूप गुरु से उपदेश को सुनकर शिष्य ने कहा— भगवन् आपने श्रीमन्नारायण एवं वैकुण्ठ को शाश्वत कहा है तथा आपने यह भी कहा है कि वे ही तुरीय तत्त्व हैं; (परन्तु) भगवान् नारायण एवं वैकुण्ठधाम साकार हैं तथा तुरीय तत्त्व निराकार है। साकार सावयव एवं निराकार अवयव रहित होता है। इसलिए श्रुति के कथनानुसार साकार अनित्य एवं निराकार शाश्वत होता है। अनुमान प्रमाण आदि से यह स्पष्ट होता है कि जो-जो पदार्थ (अवयव) वाले हैं, वे क्षणभंगुर होते हैं, यही प्रत्यक्ष भी देखा जाता है। अत: वे दोनों अनित्य हैं, यह कहना ही ठीक है। आपने उनको शाश्वत कैसे कहा है ? श्रुति कहती है कि तुरीय तत्त्व अक्षर होने के कारण शाश्वत है, इस कारण तुरीय का नित्यत्व प्रसिद्ध है। शाश्वतता एवं अनित्यता दोनों परस्पर विरोधी धर्म हैं। एक ही ब्रह्म में इन दोनों विरोधी धर्मों का होना अत्यन्त विरोधी है। इसलिए श्रीवैकुण्ठधाम एवं श्रीमन्नारायण को अनित्य कहना क्या उचित है ? (इस प्रकार शिष्य शंका करता है।)॥ १॥

सत्यमेवभवतीति देशिकः परिहरति। साकारस्तु द्विविधः सोपाधिको निरूपाधिकश्च॥ २॥

शंका का समाधान करते हुए गुरु ने कहा— तुम्हारा कहना ठीक है, परन्तु साकार तत्त्व के उपाधिरहित एवं उपाधिसहित दो भेद कहे गये हैं॥ २॥

तत्र सोपाधिकः साकारः कथमिति॥ ३॥

इसमें उपाधिसहित साकार किस प्रकार का है ?॥ ३॥

आविद्यकमखिलकार्य-कारणजालमविद्यापाद एव नान्यत्र। तस्मात्समस्ताविद्योपाधिः साकारः सावयव एव। सावयवत्वादवश्यमनित्यं भवत्येव॥ ४॥

अविद्या से होने वाले कार्य एवं कारण अविद्यापाद में ही हैं, अन्यत्र कहीं नहीं हैं। इसलिए समस्त अविद्या उपाधि से युक्त साकार तत्त्व अवयवयुक्त ही हैं। सावयव होने के कारण निश्चित ही वे नश्वर होंगे॥ ४॥

सोपाधिकसाकारो वर्णितः। तर्हि निरुपाधिक साकारः कथमिति॥ ५॥

उपाधियुक्त साकार का वर्णन किया जा चुका है। तब निरुपाधिक साकार कैसा है ?॥ ५॥

निरुपाधिकसाकारस्त्रिविधः ब्रह्मविद्यासाकारश्चानन्दसाकार उभयात्मकसाकारश्चेति त्रिविधसाकारोऽपि पुनर्द्विविधो भवति नित्यसाकारो मुक्तसाकारश्चेति। नित्यसाकारस्त्वाद्यन्तशून्यः शाश्वतः। उपासनया ये मुक्तिं गतास्तेषां साकारो मुक्तसाकारः। तस्याखण्डज्ञानेनाविर्भावो भवति। सोऽपि शाश्वतः॥ ६॥

निरुपाधिक साकार तीन तरह का है; ब्रह्मविद्या साकार, आनन्द साकार तथा उभयात्मक साकार। इस त्रिविध साकार के भी दो भेद हैं। नित्य साकार एवं मुक्त साकार। नित्य साकार आदि-अन्तरहित शाश्वत है। उपासना के द्वारा जो मुक्ति को प्राप्त करते हैं, वे मुक्त साकार हैं। अखण्ड ज्ञान से उस मुक्त पुरुष के शरीर का आविर्भाव होता है। इसलिए वह शाश्वत है॥ ६॥

मुक्तसाकारस्त्वैच्छिक इति। अन्ये वदन्ति शाश्वतत्वं कथमिति॥ ७॥

कुछ लोग कहते हैं कि मुक्त साकार स्वैच्छिक होता है। (परन्तु) उसका नित्यत्व किस प्रकार होगा ?॥ ७॥

अद्वैताखण्डपरिपूर्णनिरतिशयपरमानन्दशुद्धबुद्धमुक्तसत्यात्मकब्रह्मचैतन्यसाकारत्वात् निरुपाधिकसाकारस्य नित्यत्वं सिद्धमेव। तस्मादेव निरुपाधिकसाकारस्य निरवयवत्वात्स्वाधिकमपि दूरतो निरस्तमेव। निरवयवं ब्रह्मचैतन्यमिति सर्वोपनिषत्सु सर्वशास्त्रसिद्धान्तेषु श्रूयते। अथ च विद्याऽऽनन्दतुरीयाणामभेद एव श्रूयते सर्वत्र। विद्याऽऽदिसाकारभेदः कथमिति। सत्यमेवोक्तमिति देशिकः परिहरति। विद्याप्राधान्येन विद्यासाकारः आनन्दप्राधान्येनानन्दसाकारः उभयप्राधान्येनोभयात्मकसाकारश्चेति। प्राधान्येनात्र भेद एव। स भेदो वस्तुतस्त्वभेद एव॥ ८-१०॥

द्वैतरहित, अखण्ड, परिपूर्ण, निरतिशय, परमानन्द, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत्यात्मक ब्रह्म की चैतन्य साकार सत्ता होने के कारण उपाधिरहित साकार का नित्यत्व सिद्ध है। इसलिए इस उपाधिरहित साकार के पदार्थ विहीन होने से वह अधिक अर्थात् बड़ा होगा यह शंका दूर से ही निवृत्त हो जाती है। (शिष्य का प्रश्न)''ब्रह्म निरवयव

(पदार्थ रहित) चैतन्य है'' समस्त उपनिषदों, सभी शास्त्रीय सिद्धान्तों में यही सुनने में आता है। विद्या, आनन्द एवं तुरीय का एकत्व सर्वत्र ही सुना जाता है। फिर विद्यादि साकार का भेद कैसा? (गुरु, शिष्य का समाधान करते हुए कहते हैं) तुम सत्य कहते हो- विद्या की प्रधानता से विद्या को साकार कहा गया है। आनन्द की प्रधानता से आनन्द को साकार कहा गया है एवं इन दोनों (विद्या, आनन्द) की प्रधानता जहाँ होती है, वहाँ उभयात्मक साकार कहा गया है। इस प्रकार प्रधानता को लेकर ही यहाँ भेद है, वस्तुतः वह भेद-अभेद ही है॥ ८-१०॥

भगवन्नखण्डाद्वैतपरमानन्दलक्षणपरंब्रह्मणः साकारनिराकारौ विरुद्धधर्मौ। विरुद्धोभयात्मकत्वं कथमिति॥ ११॥

(शिष्य का प्रश्न):- हे भगवन्! द्वैतरहित, अखण्ड परमानन्द स्वरूप ब्रह्म को साकार और निराकार दोनों कहा गया है; परन्तु ये दोनों आपस में विपरीत धर्म वाले हैं। उन ब्रह्म में दो विरोधी धर्म किस तरह हो सकते हैं?॥ ११॥

सत्यमेवेति गुरुः परिहरति। यथा सर्वगतस्य निराकारस्य महावायोश्च तदात्मकस्य त्वक्पतित्वेन प्रसिद्धस्य साकारस्य महावायुदेवस्य चाभेद एव श्रूयते सर्वत्र। यथा पृथिव्यादीनां व्यापकशरीराणां देवविशेषाणां च तद्विलक्षणतदभिन्नव्यापकापरिच्छिन्न निजमूर्त्याकारदेवताः श्रूयन्ते सर्वत्र तद्वत्परब्रह्मणः सर्वात्मकस्य साकारनिराकारभेदविरोधो नास्त्येव विविधविचित्रानन्तशक्तेः परब्रह्मणः स्वरूपज्ञानेन विरोधो न विद्यते। तदभावे सत्यनन्तविरोधो विभाति॥ १२॥

(गुरु ने कहा) तुम ठीक कहते हो। जिस प्रकार सर्वत्र व्याप्त आकाररहित महावायु एवं उसी के रूप में स्थित त्वक्-इन्द्रिय के अधिष्ठातृ देव के रूप में प्रसिद्ध साकार महावायु देव में कोई भेद नहीं होता, ऐसा सर्वत्र सुना जाता है, जैसे व्यापक शरीरधारी पृथिवी आदि विशिष्ट देवता अपने भौतिक शरीर से सर्वत्र व्याप्त दिखाई पड़ते हुए निराकार रूप में अपने अधिष्ठातृ देवता के रूप में स्थित हैं अर्थात् साकार एवं निराकार दोनों शरीरों से युक्त हैं। उसी प्रकार सबके आत्मस्वरूप परब्रह्म के साकार एवं निराकार दोनों भेद होने पर भी किसी तरह का विरोध नहीं है। अनेक तरह की विचित्र अनन्त शक्तियों से सम्पन्न परब्रह्म के स्वरूप का ज्ञान हो जाने से किसी प्रकार विरोध नहीं रह जाता। इस प्रकार का ज्ञान न होने के कारण ही अनन्त प्रकार के विरोध प्रतीत होते हैं॥ १२॥

अथ च रामकृष्णाद्यवतारेष्वप्यद्वैतपरमानन्दलक्षणपरंब्रह्मणः परमतत्त्व-परमविभवानुसंधानंस्वीयत्वेनश्रूयतेसर्वत्र। सर्वपरिपूर्णस्याद्वैतपरमानन्दलक्षणपरब्रह्मणस्तु किं वक्तव्यम्। अन्यथा सर्वपरिपूर्णस्य परंब्रह्मणः परमार्थतः साकारं विना केवलनिराकारत्वं यद्यभिमतं तर्हि केवलनिराकारस्य गगनस्येव परंब्रह्मणोऽपि जडत्वमापद्यते। तस्मात्परंब्रह्मणः परमार्थतः साकारनिराकारौ स्वभावसिद्धौ॥ १३॥

जब अवतार-स्वरूप श्रीरामकृष्णादि के साकार रूप में अद्वैत परमानन्दरूप परब्रह्म का परमतत्त्व तथा परमैश्वर्य सर्वत्र सामान्य रूप से देखा जाता है। तब द्वैतरहित, समस्त प्रकार से परिपूर्ण परमानन्द-स्वरूप परब्रह्म के विषय में क्या कहा जाय? अन्यथा यदि सर्व परिपूर्ण परब्रह्म का बिना साकार रूप केवल निराकार स्वरूप ही

हो, तो परब्रह्म में भी निराकार आकाश के समान जड़ता आ जाएगी। इस कारण परब्रह्म के साकार एवं निराकार रूप परमार्थत: स्वाभाविक रूप से ही सिद्ध हैं॥ १३॥

तथाविधस्याद्वैतपरमानन्दलक्षणस्यादिनारायणस्योन्मेषनिमेषाभ्यां मूलाविद्योदय-स्थितिलया जायन्ते। कदाचिदात्मारामस्याखिलपरिपूर्णस्यादिनारायणस्य स्वेच्छानुसारेणोन्मेषो जायते। तस्मात्परंब्रह्मणोऽधस्तनपादे सर्वकारणे मूलकारणाव्यक्ताविर्भावो भवति। अव्यक्तान्मूलाविर्भावो मूलाविद्याविर्भावश्च। तस्मादेव सच्छब्दवाच्यं ब्रह्माविद्याशबलं भवति। ततो महत्। महतोऽहंकार:। अहंकारात्पञ्चतन्मात्राणि। पञ्चतन्मात्रेभ्य: पञ्चमहाभूतानि। पञ्चमहाभूतेभ्यो ब्रह्मैकपादंव्याप्तमेकमविद्याऽण्डं जायते॥ १४॥

इस प्रकार के साकार-निराकारस्वरूप अद्वैत परमानन्द लक्षण वाले आदिनारायण के निमेष मात्र(पलक उठाने-गिराने) से मूल--अविद्या की उत्पत्ति, स्थिति एवं विलय होता है। जब कभी आत्माराम, अखिल परिपूर्ण आदिनारायण की इच्छानुसार उन्मेष होता है, बस उस उन्मेष के द्वारा परब्रह्म के सबके कारणभूत निचले पाद में संसार का मूल कारण अव्यक्त प्रकृति का आविर्भाव होता है। अव्यक्त से मूल एवं मूल अविद्या का आविर्भाव होता है। उस प्रकृति के 'सत्' शब्द वाच्य से अविद्या मिश्रित ब्रह्म--जीव के रूप में व्यक्त होता है। वह जो अव्यक्त प्रकृति है, उसी से महत्तत्त्व प्रकट होता है। महत्तत्त्व से अहंकार की उत्पत्ति होती है, अहंकार से शब्दादि पाँचों तन्मात्राओं का आविर्भाव होता है। उन पञ्चतन्मात्राओं से पञ्चमहाभूतों का आविर्भाव होता है तथा पञ्चमहाभूतों के द्वारा ब्रह्म के एक पाद से व्याप्त एक अविद्यारूपी अण्ड उत्पन्न होता है॥ १४॥

तत्र तत्त्वतो गुणातीतशुद्धसत्त्वमयो लीलागृहीतनिरतिशयानन्दलक्षणो मायोपाधिको नारायण आसीत्। स एव नित्यपरिपूर्ण: पादविभूतिवैकुण्ठनारायण:। स चानन्तकोटिब्रह्माण्डानामुदयस्थितिलयाद्यखिलकार्यकारणजालपरमकारणभूतो महामायाऽतीतस्तुरीय: परमेश्वरो जयति। तस्मात्स्थूलविराट्स्वरूपो जायते। स सर्वकारणमूलं विराट्स्वरूपो भवति। स चानन्तशीर्षापुरुष अनन्ताक्षिपाणिपादो भवति। अनन्तश्रवण: सर्वमावृत्य तिष्ठति। सर्वव्यापको भवति। सगुणनिर्गुण स्वरूपो भवति। ज्ञानबलैश्वर्यशक्तितेज: स्वरूपो भवति। विविधविचित्रानन्त जगदाकारो भवति। निरतिशयानन्दमयानन्तपरमविभूति समष्ट्या विश्वाकारो भवति। निरतिशयनिरङ्कुशसर्वज्ञ-सर्वशक्तिसर्वनियन्तृत्वाद्यनन्त-कल्याणगुणाकारो भवति। वाचामगोचरानन्तदिव्यतेजोराश्याकारो भवति। समस्ताविद्याऽण्डव्यापको भवति। स चानन्तमहामायाविलासानामधिष्ठा-नविशेषनिरतिशयाद्वैतपरमानन्दलक्षणपरब्रह्मविलासविग्रहो भवति॥ १५॥

वहाँ अविद्यारूपी अण्ड में तत्त्व रूप में गुणातीत, शुद्ध सत्त्वमय एवं लीला करने के लिए निरतिशय आनन्द लक्षण से युक्त माया उपाधि धारण किये हुए, नारायण विराजमान होते हैं। वे ही नित्य परिपूर्णपाद विभूतिस्वरूप वैकुण्ठ में निवास करने वाले नारायण हैं। वे अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों के उदय, स्थिति, प्रलय आदि अखिल कार्य और कारण समूहों के परम-कारण के भी कारणस्वरूप होकर महामाया से अतीत तुरीयस्वरूप

परमेश्वर विराजमान हैं। उनके द्वारा स्थूल-विराट् स्वरूप उत्पन्न होता है, सभी कारणों का मूल उनका विराट् स्वरूप है। उन विराट् पुरुष के अनन्त सिर, आँख , पैर और हाथ हैं। वे अनन्त श्रवण से युक्त होकर घेरे हुए रहते हैं। वे सर्वव्यापी हैं। सगुण और निर्गुण दोनों वे ही हैं। वे ज्ञान, ऐश्वर्य, बल, शक्ति एवं ज्योतिस्वरूप हैं। वे ही अनेक तरह के विचित्र अनन्त जगत् के आकार के रूप में स्थित हैं। वे ही निरतिशय, आनन्दयुक्त, अनन्त, परम विभूतियों के समुदायों से युक्त विश्वरूप परमात्मा हैं। वे निरतिशय, अंकुश रहित, सब कुछ जानने वाले, समस्त शक्तियों से सम्पन्न, सर्व नियन्तृत्व आदि अनन्त कल्याण करने वाले गुणों का आकार हैं। वे वाणी से वर्णन करने योग्य अनन्त दिव्य तेजोराशि के रूप में स्थित हैं। वे समस्त अविद्या के अण्ड में व्याप्त हैं। वे महामाया के अनेक तरह के विलासों का विशेष स्थान और निरतिशय अद्वैत परमानन्दरूप परब्रह्म का विलास विग्रह अर्थात् क्रीड़ा स्थल हैं॥ १५ ॥

अस्यैकैकरोमकूपान्तरेष्वनन्तकोटिब्रह्माण्डानि स्थावराणि च जायन्ते। तेष्वण्डेषु सर्वेष्वेकैकनारायणावतारो जायते। नारायणाद्धिरण्यगर्भो जायते। नारायणादण्डविराट्स्वरूपो जायते। नारायणादखिललोकस्त्रष्टृप्रजापतयो जायन्ते। नारायणादेकादशरुद्राश्च जायन्ते। नारायणादखिललोकाश्च जायन्ते। नारायणादिन्द्रो जायते। नारायणात्सर्वेदेवाश्च जायन्ते। नारायणाद्द्वादशादित्याः सर्वे वसवः सर्वे ऋषयः सर्वाणि भूतानि सर्वाणि छन्दांसि नारायणादेव समुत्पद्यन्ते। नारायणात्प्रवर्तन्ते। नारायणे प्रलीयन्ते। अथ नित्योऽक्षरः परमः स्वराट्। ब्रह्मा नारायणः। शिवश्च नारायणः। शक्रश्च नारायणः। दिशश्च नारायणः। विदिशश्च नारायणः। कालश्च नारायणः। कर्माखिलं च नारायणः। मूर्तामूर्तं च नारायणः। कारणात्मकं सर्वं कार्यात्मकं सकलं नारायणः। तदुभयविलक्षणो नारायणः। परंज्योतिः स्वप्रकाशमयो ब्रह्मानन्दमयो नित्यो निर्विकल्पो निरञ्जनो निराख्यातः शुद्धो देव एको नारायणो न द्वितीयोऽस्ति कश्चित्। न स समानाधिक इत्यसंशयम्॥ १६ ॥

इन परब्रह्म के विराट् स्वरूप के प्रत्येक रोम छिद्रों से अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड एवं स्थावर भी उत्पन्न होते हैं, नारायण का एक--एक अवतार उन सभी अण्डों में होता है। हिरण्यगर्भ ब्रह्मा उन्हीं नारायण से उत्पन्न होते हैं। भगवान् नारायण से ही उस अण्ड का विराट् स्वरूप उत्पन्न होता है। समस्त लोकों के सृजेता प्रजापति भी उन्हीं नारायण से उद्‌भूत होते हैं। एकादश रुद्रों का उद्‌भव भी उन्हीं नारायण से होता है। भगवान् नारायण से ही समस्त लोक उद्‌भूत होते हैं। द्वादश आदित्य भी नारायण से ही उत्पन्न होते हैं। देवाधिदेव इन्द्र का उद्‌भव भी नारायण से ही होता है। समस्त देव अर्थात् अष्टवसु नामक देवता, समस्त ऋषि, समस्त प्राणी एवं सभी छन्द श्रीनारायण से उद्‌भूत होते हैं तथा नारायण के द्वारा ही अपने-अपने कार्यों में प्रवृत्त होते हैं। नारायण में ही लीन हो जाते हैं। इस कारण भगवान् नारायण की ये समस्त विभूतियाँ नित्य हैं, इनका कभी विनाश नहीं होता। ये सब सर्वश्रेष्ठ एवं स्वयं प्रकाशित हैं। ब्रह्मा नारायण हैं। शिव भी नारायण हैं। नारायण ही इन्द्र हैं। दिशाएँ भी नारायण ही हैं। दिशाओं के कोण भी नारायण हैं। समय (काल) भी नारायण ही हैं। सभी कर्म भी नारायण ही हैं। शरीरधारी एवं आकारविहीन भी नारायण ही हैं। इन दोनों (कार्य एवं कारण) से विलक्षण भी नारायण ही हैं। स्वप्रकाशित, परमज्योतिरूप, ब्रह्मानन्दमय, नित्य, निर्विकल्प, निरञ्जन, निराख्यात, शुद्ध देवता एकमात्र नारायण ही हैं, दूसरा

कोई नहीं। न वे किसी के समान हैं,न उनके समान कोई दूसरा है। इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिए॥ १६॥

परमार्थतो य एवं वेद। सकलबन्धांश्छित्त्वा मृत्युं तीर्त्वा स मुक्तो भवति स मुक्तो भवति। य एवं विदित्वा सदा तमुपास्ते पुरुषः स नारायणो भवति स नारायणो भवतीत्युपनिषत्॥ १७॥

जो इन भगवान् नारायण के परम रहस्य को यथार्थ रूप में जानता है, वह समस्त बन्धनों को काटकर मृत्यु को पार करके मुक्ति को प्राप्त कर लेता है, मुक्त हो जाता है। जो इस तरह जानकर सदैव भगवान् श्रीमन्नारायण की उपासना करता है, वह नारायण स्वरूप ही हो जाता है, नारायण रूप ही हो जाता है॥ १७॥

॥ तृतीयोऽध्यायः ॥

अथ छात्रस्तथेति होवाच। भगवन्देशिक परमतत्त्वज्ञसविलासमहामूलाविद्योदयक्रमः कथितः। तदु प्रपञ्चोत्पत्तिक्रमः कीदृशो भवति। विशेषेण कथनीयः। तस्य तत्त्वं वेदितुमिच्छामि॥ १॥

गुरु की वाणी सुनकर शिष्य ने पुनः प्रश्न किया— भगवन्! परमतत्त्वज्ञ गुरुदेव! आपने महाभूत अविद्या के उदय के क्रम का वर्णन ब्रह्म की क्रीड़ा के साथ किया है। उस प्रपञ्च की उत्पत्ति किस क्रम से होती है, अच्छी तरह समझाने की कृपा करें। उसके तत्त्व को जानना चाहता हूँ॥ १॥

तथेत्युक्त्वा गुरुरित्युवाच। तथानादिसर्वप्रपञ्चो दृश्यते। नित्योऽनित्यो वेति संशय्यते। प्रपञ्चोऽपि द्विविधः विद्याप्रपञ्चश्चाविद्याप्रपञ्चश्चेति। विद्याप्रपञ्चस्य नित्यत्वं सिद्धमेव नित्यानन्दचिद्विलासात्मकत्वात्। अथ च शुद्धबुद्धमुक्तसत्यानन्दस्वरूपत्वाच्च। अविद्याप्रपञ्चस्य नित्यत्वमनित्यत्वं वा कथमिति। प्रवाहतो नित्यत्वं वदन्ति केचन। प्रलयादिकं श्रूयमाणत्वादनित्यत्वं वदन्त्यन्ये। उभयं न भवति। पुनः कथमिति। संकोचविकासात्मक-महामायाविलासात्मक एव सर्वोऽप्यविद्याप्रपञ्चः। परमार्थतो न किंचिदस्ति क्षणशून्यानादि-मूलाविद्याविलासत्वात्। तत्कथमिति। एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म। नेह नानास्ति किंचन। तस्माद्ब्रह्मव्यतिरिक्तं सर्वं बाधितमेव। सत्यमेव परंब्रह्म सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म॥ २॥

'ऐसा ही होगा' कहकर गुरु ने कहा— यह समस्त प्रपञ्च अनादि काल से दिखलाई पड़ रहा है (इसलिए) यह शाश्वत् है, क्षणभर के लिए इसमें भी संशय होता है। यह प्रपञ्च भी दो प्रकार का है— प्रथम विद्यारूपी प्रपञ्च दूसरा अविद्यारूपी प्रपञ्च। विद्यारूपी प्रपञ्च का नित्यत्व तो सिद्ध ही है; क्योंकि वह नित्य आनन्दमय चैतन्य स्वरूप परमात्मा का विलास तथा शुद्ध-बुद्ध एवं सत्यानन्दरूपी है। अविद्यारूपी प्रपञ्च नित्य है या अनित्य अथवा कैसा है? नियमित प्रवाहित होने के कारण कुछ लोग उसको नित्य कहते हैं। शास्त्रों में वर्णित प्रलय आदि परिस्थितियों के कारण अन्य लोग उसको अनित्य कहते हैं। वस्तुतः ये दोनों बातें नहीं हैं। फिर यह किस तरह है? यह अविद्या का विलास होने से परमार्थतः यह कुछ भी नहीं है। वह किस तरह? एकमेव अद्वितीय ब्रह्म ही है। श्रुति कहती है कि यहाँ नाना प्रकार की कोई वस्तुएँ नहीं हैं। इसलिए अतिरिक्त सभी सत्ताहीन हैं। सत्य ही परब्रह्म है। ब्रह्म सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप तथा अनन्त है॥ २॥

ततः सविलासमूलाऽविद्योपसंहारक्रमः कथमिति। अत्यादरपूर्वकमतिहर्षेण देशिक उपदिशति। चतुर्युगसहस्त्राणि ब्रह्मणो दिवा भवति। तावता कालेन पुनस्तस्य रात्रिर्भवति। द्वे अहोरात्रे एकं दिनं भवति। तस्मिन्नेकस्मिन्दिने आसत्यलोकान्तमुदयस्थितिलया जायन्ते। पञ्चदशदिनानि पक्षो भवति। पक्षद्वयं मासो भवति। मासद्वयमृतुर्भवति। ऋतुत्रयमयनं भवति। अयनद्वयं वत्सरो भवति। वत्सरशतं ब्रह्ममानेन ब्रह्मणः परमायुःप्रमाणम्। तावत्कालस्तस्य स्थितिरुच्यते। स्थित्यन्तेऽण्डविराट् पुरुषः स्वांशं हिरण्यगर्भमभ्येति। हिरण्यगर्भः स्वकारणं परमात्मानमण्डपरिपालकनारायणमभ्येति। पुनर्वत्सरशतं तस्य प्रलयो भवति। तदा जीवाः सर्वे प्रकृतौ प्रलीयन्ते। प्रलये सर्वशून्यं भवति॥ ३-४॥

शिष्य का प्रश्न— तब विलास सहित मूल अविद्या का समापन कैसे होता है? अति आदरपूर्वक हर्षित होकर गुरु शिष्य को उपदेश करते हैं— हजार चतुर्युग बीतने पर ब्रह्माजी का एक दिन होता है। पुनः उनकी उतने ही समय की रात्रि होती है। दो अहोरात्रियों का एक दिन होता है। उस एक दिन में सत्यलोक सहित सभी लोकों की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय हो जाती है। इस प्रकार के पन्द्रह दिनों का ब्रह्माजी का एक पक्ष होता है, दो पखवाड़ों का एक महीना होता है। इस प्रकार के दो महीने की एक ऋतु होती है। तीन ऋतुओं का एक अयन होता है, दो अयनों का एक संवत्सर (वर्ष) होता है। ब्रह्माजी के इस प्रकार के सौ वर्षों के मान से ब्रह्माजी की पूर्ण आयु कही गई है। इस समय तक ब्रह्माजी की स्थिति कही गई है। स्थिति के समापन के समय अर्थात् सृष्टि के लय होने के समय अण्ड के रूप में स्थित विराट् पुरुष अपने ही अंश हिरण्यगर्भ में लीन हो जाते हैं। अपने ही कारण हिरण्यगर्भ परमात्मा अण्डपालक नारायण को प्राप्त होते हैं। पुनः सौ वर्षों तक उनकी प्रलय होती है। प्रलय के समय समस्त जीव प्रकृति में लीन हो जाते हैं। प्रलय होने पर सब कुछ शून्य हो जाता है॥ ३-४॥

तस्य ब्रह्मणः स्थिति प्रलयावादिनारायणस्यांशेनावतीर्णस्याण्डपरिपालकस्य महाविष्णोरहोरात्रिसंज्ञकौ। ते अहोरात्रे एकं दिनं भवति। एवं दिनपक्षमाससंवत्सरादिभेदाच्च तदीयमानेन शतकोटिवत्सरकालस्तस्य स्थितिरुच्यते। स्थित्यन्ते स्वांशं महाविराट्पुरुषमभ्येति। ततः सावरणं ब्रह्माण्डं विनाशमेति। ब्रह्माण्डावरणं विनश्यति तद्धि विष्णोः स्वरूपम्। तस्य तावत्प्रलयो भवति। प्रलये सर्वशून्यं भवति॥ ५॥

जितने समय में उन ब्रह्माजी की स्थिति एवं प्रलय होती है, आदिनारायण के अंश से अवतरित अण्ड परिपालक महाविष्णु का दिन एवं रात्रि उतने ही समय का होता है। (ब्रह्माजी के सौ वर्षों को स्थिति और सौ वर्षों को प्रलय कहा है। इसलिए भगवान् महाविष्णु का एक दिन और एक रात्रि ब्रह्माजी की स्थिति एवं प्रलय के बराबर होती है।)

उन अहोरात्र अर्थात् दिन और रात के बराबर महाविष्णु का एक दिन होता है। इसी प्रकार दिन, पक्ष, मास, संवत्सर आदि के भेद से सौ कोटि अर्थात् एक अरब वर्षों तक उनकी स्थिति कही गई है। वे स्थिति के अन्त में अपने अंशरूपी महाविराट् में लीन हो जाते हैं। तब आवरण सहित यह ब्रह्माण्ड समाप्त हो जाता है। ब्रह्माण्ड का आवरण विनाश को प्राप्त होता है। (विनाश के बाद जो कुछ बचता है) वही महाकाल महाविष्णु का वास्तविक स्वरूप है। उनका प्रलय भी उतने ही समय अर्थात् एक अरब वर्षों का होता है। प्रलय हो जाने पर सब

कुछ शून्य हो जाता है॥ ५॥

अण्डपरिपालकमहाविष्णोः स्थितिप्रलयावादिविराट्पुरुषस्याहोरात्रिसंज्ञकौ ते अहोरात्रे एकं दिनं भवति। एवं दिनपक्षमाससंवत्सरादिभेदाच्च तदीय मानेन शतकोटिवत्सरकालस्तस्य स्थितिरुच्यते। स्थित्यन्ते आदिविराट्पुरुषः स्वांशं मायोपाधिकनारायणमभ्येति। तस्य विराट्पुरुषस्य यावत्स्थितिकालस्तावत्प्रलयो भवति। प्रलये सर्वशून्यं भवति॥ ६॥

अण्ड का परिपालन करने वाले महाविष्णु की स्थिति एवं प्रलय को आदि विराट् पुरुष का अहोरात्र (दिन और रात्रि) कहते हैं। उस अहोरात्र का एक दिन होता है। इसी तरह से उनके दिन, पक्ष, महीना एवं संवत्सर के भेद से सौ कोटि वर्षों तक स्थिति रहती है। स्थिति के अन्त में आदि- विराट्पुरुष अयन ही अंशी मायोपाधिक (माया की उपाधि से युक्त) नारायण में लीन हो जाते हैं। उन विराट्पुरुष के स्थिति काल के बराबर प्रलयकाल भी होता है। प्रलय के पश्चात् सब शून्य हो जाता है॥ ६॥

विराट्स्थिति प्रलयौ मूलाविद्याऽण्डपरिपालकस्यादिनारायणस्याहोरात्रिसंज्ञकौ। ते अहोरात्रे एकं दिनं भवति। एवं दिन पक्षमाससंवत्सरादिभेदाच्च तदीयमानेन शतकोटिवत्सरकालस्तस्य स्थितिरुच्यते। स्थित्यन्ते त्रिपाद्विभूतिनारायणस्येच्छावशान्निमेषो जायते। तस्मान्मूलाविद्याऽण्डस्य सावरणस्य विलयो भवति। ततः सविलास मूलाविद्या सर्वकार्योपाधिसमन्विता सदसद्विलक्षणानिर्वाच्या -- लक्षणशून्याविर्भावतिरोभावात्मिका-नाद्यखिलकारणकारणानन्तमहामायाविशेषणविशेषिता परमसूक्ष्ममूलकारणमव्यक्तं विशति। अव्यक्तं विशेद्ब्रह्मणि निरिन्धनो वैश्वानरो यथा। तस्मान्मायोपाधिक आदिनारायणस्तथा स्वस्वरूपं भजति। सर्वे जीवाश्च स्वस्वरूपं भजन्ते। यथा जपाकुसुमसान्निध्याद्रक्तस्फटिकप्रतीतिस्तदभावे शुद्धस्फटिकप्रतीतिः। ब्रह्मणोऽपि मायोपाधिवशात्सगुणपरिच्छिन्नादिप्रतीति-रुपाधिविलयान्निर्गुणनिरवयवादिप्रतीतिरित्युपनिषत्॥ ७॥

उन विराट् (पुरुष) की स्थिति और प्रलय को मूल अविद्याण्ड का पालन करने वाले आदि-नारायण का रात्रि एवं दिन कहा गया है। उनके (विराट् पुरुष के) एक दिन एवं रात्रि का एक दिन होता है। इस प्रकार दिन, पक्ष महीना, संवत्सर आदि भेद से काल के भेद से सौ करोड़ अर्थात् एक अरब वर्षों तक आदि-नारायण की स्थिति कही गई है। स्थिति के समाप्त होने पर त्रिपाद्विभूति नारायण अपनी ही इच्छा से पलकें गिराते हैं अर्थात् निमेष होता है। उनके पलक गिराते ही मूल अविद्याण्ड का उसके आवरण के साथ समापन हो जाता है। तब विलास के सहित मूल अविद्या समस्त कार्यों की उपाधि से समन्वित, सत्-असत् से विलक्षण, अनिर्वचनीय, लक्षणशून्य, आविर्भाव-तिरोभाव स्वरूप अनादि, अखिल कारणों की कारणस्वरूप तथा अनन्त महामाया विशेषणों से युक्त होकर परम सूक्ष्म मूल कारण अव्यक्त में प्रवेश कर जाती है। अव्यक्त पुनः ब्रह्म में लीन हो जाता है।

उस समय जले हुए ईंधन की अग्नि की तरह मायोपाधिक (माया की उपाधि से युक्त) आदि-नारायण माया-उपाधि के नष्ट हो जाने पर अपने स्वरूप में स्थित हो जाते हैं। सभी जीव स्वरूप को प्राप्त हो जाते हैं। जिस तरह स्फटिक मणि एवं जवा कुसुम (गुड़हल) का लाल रंग स्फटिक में दिखाई पड़ने लगता है तथा दोनों को अलग-अलग कर देने पर स्फटिक शुद्ध हो चमकने लगता है, उसी तरह मायारूप उपाधि के कारण ही ब्रह्म में सगुणत्व निरवयवत्व आदि का आभास होने लगता है॥ ७॥

॥ चतुर्थोचध्यायः ॥

ॐ ततस्तस्मान्निर्विशेषमतिनिर्मलं भवति। अविद्यापादमतिशुद्धं भवति। शुद्धबोधानन्दलक्षणकैवल्यं भवति। ब्रह्मणः पादचतुष्टयं निर्विशेषं भवति। अखण्डलक्षणाखण्डपरिपूर्णसच्चिदानन्दस्वप्रकाशं भवति। अद्वितीयमनीश्वरं भवति। अखिलकार्यकारणस्वरूपमखण्डचिद्घनानन्दस्वरूपमतिदिव्यमङ्गलाकारं निरतिशयानन्दतेजोराशिविशेषं सर्वपरिपूर्णानन्तचिन्मयस्तम्भाकारं शुद्धबोधानन्दविशेषाकारमनन्तचिद्विलासविभूतिसमष्ट्याकारमद्भुतानन्दाश्चर्यविभूतिविशेषाकारमनन्तपरिपूर्णानन्ददिव्यसौदामिनी निचयाकारम्। एवमाकारमद्वितीयाखण्डानन्दब्रह्मस्वरूपं निरूपितम्॥ १॥

ॐ ब्रह्म का निर्विशेष (सदा एक जैसा रहने वाला) रूप उपाधि के समाप्त हो जाने पर अति निर्मल हो जाता है। अविद्या से परे होने के कारण वह अत्यन्त शुद्ध है। वह शुद्ध, बोधानन्द लक्षण वाला होने के कारण कैवल्यरूप है। ब्रह्म के चारों पाद निर्विशेष हैं। ब्रह्म अखण्डस्वरूप, अखण्ड सच्चिदानन्द, स्वयं प्रकाशित है। ब्रह्म अद्वितीय, ईश्वर-रहित अर्थात् स्वयं संचालित है। ब्रह्म अखिल कार्य-कारण स्वरूप, अखण्ड चिद्घन आनन्द रूप, अतिदिव्य, मंगलमूर्ति- स्वरूप, सबसे अधिक आनन्द का रूप, विशेष प्रकाशरूप, सर्वत्रपूर्ण, अनन्त चिद्विलास विभूति का समष्टि आकार, अद्भुत, आनन्दमय, आश्चर्यपूर्ण, विशेष विभूतिरूप, अनन्त परिपूर्णानन्द, दिव्य विद्युन्माला है। ब्रह्म का इस तरह अद्वितीय अखण्डानन्दमय स्वरूप कहा गया है॥ १॥

अथ छात्रो वदति। भगवन्पादभेदादिकं कथं कथमद्वैतस्वरूपमिति निरूपितम्॥ २॥

पुनः शिष्य कहता है— भगवन्! ब्रह्म के पाद भेदादि किस प्रकार हो सकते हैं और अद्वैत स्वरूप किस प्रकार कहा गया है?॥ २॥

देशिकः परिहरति। विरोधो न विद्यते ब्रह्माद्वैतमेव सत्यम्। तथैवोक्तं च। ब्रह्मभेदो न कथितो ब्रह्मव्यतिरिक्तं न किंचिदस्ति। पादभेदादिकथनं तु ब्रह्मस्वरूप कथनमेव। तदेवोच्यते पादचतुष्टयात्मकं ब्रह्म तत्रैकमविद्यापादं । पादत्रयममृतं भवति। शाखान्तरोपनिषत्स्वरूपमेव निरूपितम्॥ ३॥

शिष्य की शंका का समाधान करते हुए गुरु कहते हैं— इसमें किसी प्रकार का विरोध नहीं है। ब्रह्म अद्वैत है, यही सत्य है और यही कहा जाता है। ब्रह्म में किसी प्रकार का भेद नहीं है तथा ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जो पाद के भेद आदि को कहा गया है, वह तो ब्रह्म के स्वरूप का ही कथन है। चार पादों वाला यह ब्रह्म है, उसमें एक अविद्या पाद है, शेष तीन पाद अमृत कहे गये हैं। अन्य उपनिषद् शाखाओं में जिस स्वरूप का वर्णन किया गया है, उसे यहाँ कहा जा रहा है॥ ३॥

तमसस्तु परं ज्योतिः परमानन्दलक्षणम्। पादत्रयात्मकं ब्रह्म कैवल्यं शाश्वतं परमिति॥ ४॥

अविद्यारूपी अंधकार से परे परम ज्योतिस्वरूप परमानन्द लक्षण वाला त्रिपादस्वरूप ब्रह्म परम शाश्वत एवं कैवल्यस्वरूप है॥ ४॥

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्। आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्। तमेवंविद्वानमृत इह भवति। नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥ ५ ॥

सूर्य के समतुल्य तेजसम्पन्न अंधकाररहित वह विराट् पुरुष है, जिसको जानने के पश्चात् साधक को मोक्ष की प्राप्ति होती है। मोक्ष प्राप्ति का यही मार्ग है, इससे भिन्न और कोई मार्ग नहीं है॥ ५ ॥

सर्वेषां ज्योतिषां ज्योतिस्तमसः परमुच्यते। सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं परंज्योतिस्तमस उपरि विभाति॥ ६ ॥

तमस् से परे समस्त ज्योतियों की ज्योति है, ऐसा कहा गया है। सबको धारण करने वाली, अचिन्त्य स्वरूप, प्रकाशवान् जो परम ज्योति है, वह तम से ऊपर अर्थात् उससे आगे प्रकाशित है॥ ६ ॥

यदेकमव्यक्तमनन्तरूपं विश्वं पुराणं तमसः परस्तात्। तदेव ऋतं तदु सत्यमाहुस्तदेव सत्यं तदेव ब्रह्म परमं विशुद्धं ॥ ७॥

जो एक पुरातन तत्त्व, अव्यक्त रूपों वाला विश्वरूप होकर, अंधकार(अविद्या) से परे है, सत्य उसी को कहते हैं, निश्चित रूप से वही सत्य है एवं परम विशुद्धरूप ब्रह्म भी वही है॥ ७॥

कथ्यते तमः शब्देनाविद्या॥ ८ ॥

यहाँ तमस् शब्द के द्वारा अविद्या को सम्बोधित किया गया है॥ ८ ॥

पादोऽस्य विश्वा भूतानि। त्रिपादस्यामृतं दिवि। त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः। पादोऽस्येहाभवत्पुनः। ततो विष्वङ् व्यक्रामत्। साशनाऽनशनेअभि॥ ९ ॥

इस श्रेष्ठ पुरुष के एक चरण में सभी प्राणी हैं और तीन भाग अनन्त अन्तरिक्ष में समाये हुए हैं। उस विराट् पुरुष से यह ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ। उस विराट् से समष्टि जीव उत्पन्न हुए। वही देहधारी रूप में सबसे श्रेष्ठ हुआ जिसने सबसे पहले पृथ्वी को, फिर शरीरधारियों को उत्पन्न किया॥ ९ ॥

विद्यानन्दतुरीयाख्यपादत्रयममृतं भवति। अवशिष्टमविद्याश्रयमिति॥ १० ॥

उस विराट् पुरुष के चार पादों में विद्या, आनन्द और तुरीय अमृत अर्थात् शाश्वत है। चौथा पाद अविद्या के आश्रय में है॥ १० ॥

आत्मारामस्यादिनारायणस्य कीदृशावुन्मेषनिमेषौ तयोः स्वरूपं कथमिति॥ ११ ॥

शिष्य का प्रश्न— आत्माराम आदिनारायण का उन्मेष निमेष किस प्रकार होता है तथा उनका स्वरूप कैसा है ?॥ ११ ॥

गुरुर्वदति। परागदृष्टिरुन्मेषः। प्रत्यग्दृष्टिर्निमेषः। प्रत्यग्दृष्ट्या स्वस्वरूपचिन्तनमेव निमेषः। परागदृष्ट्या स्वस्वरूपचिन्तनमेवोन्मेषः। यावदुन्मेषकालस्तावन्निमेषकालो भवति। अविद्यायाः

स्थितिरुन्मेषकाले। निमेषकाले तस्याः प्रलयो भवति। यथा उन्मेषो जायते तथा चिरंतनातिसूक्ष्मवासनाबलात्पुनरविद्याया उदयो भवति। यथापूर्वमविद्याकार्याणि जायन्ते। कार्यकारणोपाधिभेदाज्जीवेश्वरभेदोऽपि दृश्यते। कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः। ईश्वरस्य महामाया तदाज्ञावशवर्तिनी॥१२॥

गुरु कहते हैं— आत्माराम आदिनारायण जब पलकें खोलते हैं, तब उन्मेष होता है। जब पलकें बन्द करते हैं, तो निमेष होता है। जब अन्तर्दृष्टि के द्वारा अपने अन्तस् में स्वरूप का चिन्तन करते हैं, तब निमेष होता है तथा बाह्य दृष्टि के द्वारा अपने ही स्वरूप का चिन्तन(दर्शन) करना ही उन्मेष होता है। उन्मेष काल जितने समय का होता है, निमेष का समय भी उतने ही समय का होता है। निमेष काल में उसका प्रलय (पूर्णरूपेणलय) हो जाता है। उन्मेष होते ही अति सूक्ष्म पुरानी वासना के प्रभाव के कारण पुनः अविद्या का आविर्भाव हो जाता है तथा अविद्या के कार्य पहले की ही तरह प्रारम्भ हो जाते हैं, तब जीव व ईश्वर का भेद कार्य और कारण के रूप में दृष्टिगोचर होने लगता है। कार्यरूपी उपाधि से जीव एवं कारणरूपी उपाधि से ईश्वर युक्त है। ईश्वर की महामाया उन्हीं की आज्ञा के वशवर्ती रहती है॥ १२॥

तत्संकल्पानुसारिणी विविधानन्तमहामायाशक्तिसंसेविता अनन्तमहामाया जालजननमन्दिरा महाविष्णोः क्रीडाशरीररूपिणी ब्रह्मादीनामगोचरा। एतां महामायां तरन्त्येव ये विष्णुमेव भजन्ति। नान्ये तरन्ति कदाचन विविधोपायैरपि॥ १३॥

वे महामाया, परमात्मा के संकल्प का अनुसरण करने वाली विविध प्रकार की अनन्त महाशक्ति के द्वारा सेवित, अनन्त महामाया के जाल को जन्म देने वाली महाविष्णु की क्रीड़ा मन्दिर ब्रह्मादि के लिए भी अगोचर हैं। इसलिए महामाया को वे ही पार कर पाते हैं, जो भगवान् विष्णु का भजन करते हैं। दूसरे लोग विविध उपाय करने पर भी नहीं तर सकते॥ १३॥

अविद्याकार्याण्यन्तः करणान्यतीत्य कालाननु तानि जायन्ते। ब्रह्मचैतन्यं तेषु प्रतिबिम्बितं भवति। प्रतिबिम्बा एव जीवा इति कथ्यन्ते। अन्तःकरणोपाधिकाः सर्वे जीवा इत्येवं वदन्ति। महाभूतोत्थसूक्ष्माङ्गोपाधिकाः सर्वे जीवा इत्येके वदन्ति। बुद्धिप्रतिबिम्बितचैतन्यं जीवा इत्यपरे मन्यन्ते। एतेषामुपाधीनामत्यन्तभेदो न विद्यते। सर्वपरिपूर्णो नारायणस्त्वनया निजया क्रीडति स्वेच्छया सदा। तद्वदविद्यमानफल्गुविषयसुखाशयाः सर्वे जीवाः प्रधावन्त्यसारसंसारचक्रे। एवमनादिपरम्परा वर्ततेऽनादिसंसारविपरीतभ्रमादित्युनिषत्॥ १४॥

अविद्या के कार्य का अन्तःकरण पर प्रभाव पड़ता है, उसका आश्रय लेकर वे अनन्त काल तक जन्म धारण करते रहते हैं। उन अन्तःकरणों में ब्रह्म का चैतन्य स्वरूप प्रतिबिम्बित होता है। उस प्रतिबिम्ब को ही जीव कहते हैं। ऐसा कहा जाता है कि सभी जीव अन्तःकरण की उपाधि से युक्त होते हैं। दूसरे लोग कहते हैं कि सब जीव महाभूतों के द्वारा उत्पन्न सूक्ष्म-शरीररूपी उपाधि से ओत-प्रोत हैं। कुछ लोग कहते हैं कि बुद्धि में प्रतिबिम्बित होने वाला चैतन्य तत्त्व ही जीव है। उनमें उपाधि के कारण ही भेद है, वैसे उत्पन्न भेद नहीं है। सब

प्रकार से परिपूर्ण नारायण अपनी इच्छा शक्ति के द्वारा सदैव क्रीड़ा करते रहते हैं। समस्त जीव इसी तरह अज्ञानान्धकार के कारण जिनमें सुख नहीं है, उन तुच्छ विषयों की ओर सुख की कामना से असाररूप संसार में दौड़ते रहते हैं। इस तरह यह अनादि परम्परा चली आ रही है, जिसके कारण यह अनादि संसार वासनारूपी विपरीत क्रम के कारण जीव संसार-चक्र में घूमता रहता है। यही उपनिषद् (रहस्य) है॥१४॥

॥ पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथ शिष्यो वदति गुरुं भगवन्तं नमस्कृत्य भगवन् सर्वात्मना नष्टाया अविद्यायाः पुनरुदयः कथम्॥ १॥

शिष्य गुरु भगवान् को प्रणाम करके कहता है— भगवन्! जब सम्पूर्ण अविद्या नष्ट हो जाती है, तब पुनः उसका उदय किस प्रकार होता है?॥ १॥

सत्यमेवेति गुरुरिति होवाच। प्रावृट्कालप्रारम्भे यथा मण्डूकादीनां प्रादुर्भावस्तद्वत्सर्वात्मना नष्टाया अविद्याया उन्मेषकाले पुनरुदयो भवति॥ २॥

'तुम सच कहते हो' ऐसा कहकर गुरु ने कहा— जिस प्रकार वर्षा के प्रारम्भ में मेढक आदि का प्रादुर्भाव हो जाता है, उसी प्रकार पूर्णतः नष्ट हुई अविद्या भगवान् आदिनारायण के उन्मेष काल में पुनः उदय हो जाती है॥ २॥

भगवन् कथं जीवानामनादि संसारभ्रमः। तन्निवृत्तिर्वा कथमिति। कथं मोक्षमार्गस्वरूपं च। मोक्षसाधनं कथमिति। को वा मोक्षोपायः। कीदृशं मोक्षस्वरूपम्। का वा सायुज्यमुक्तिः। एतत्सर्वं तत्त्वतः कथनीयमिति॥ ३॥

(पुनः शिष्य के प्रश्न) भगवन्! जीवों को अनादिकाल से चले आ रहे संसार का भ्रम अर्थात् - "यह देह, गेह आदि ही सच है", यह भ्रम कैसे हो जाता है? तथा इस भ्रम की निवृत्ति किस प्रकार होती है? मुक्ति के मार्ग का स्वरूप कैसा है? मुक्ति का उपाय क्या है? सायुज्य मुक्ति क्या है? यह सब तत्त्वतः कहने योग्य है॥ ३॥

अत्यादरपूर्वकमतिहर्षेण शिष्यं बहूकृत्य गुरुर्वदति श्रूयतां सावधानेन। कुत्सितानन्तजन्माभ्यस्तात्यन्तोत्कृष्टविविधविचित्रानन्तदुष्कर्मवासनाजालविशेषैर्देहात्मविवेको न जायते। तस्मादेव दृढतरदेहात्मभ्रमो भवति। अहमज्ञः किंचिज्ज्ञोऽहमहं जीवोऽहमत्यन्तदुःखाकारोऽहमनादि-संसारीति भ्रमवासनाबलात्संसार एव प्रवृत्तिस्तन्निवृत्त्युपायः कदापि न विद्यते। मिथ्याभूतान्स्वप्नतुल्यान्विषयभोगाननुभूय विविधानसंख्या-नतिदुर्लभान्मनोरथाननवरतमाशास्यमान अतृप्तः सदा परिधावति। विविधविचित्रस्थूलसूक्ष्मोत्कृष्टनिकृष्टानन्तदेहान्परिगृह्य तत्तद्देहविहितविविध विचित्राऽनेक-शुभाशुभप्रारब्धकर्माण्यनुभूय तत्तत्कर्मफलवासनाजालवासितान्तःकरणानां पुनः

पुनस्तत्तत्कर्मफल विषयप्रवृत्तिरेव जायते। संसारनिवृत्तिमार्गप्रवृत्तिः कदापि न जायते। तस्मादनिष्टमेवेष्टमिव भाति। इष्टमेवाऽनिष्टमिव भात्यनादिसंसारविपरीतभ्रमात्। तस्मात्सर्वेषां जीवानामिष्टविषये बुद्धिः सुखबुद्धिर्दुःखबुद्धिश्च भवति। परमार्थतस्त्वबाधितब्रह्मसुखविषये प्रवृत्तिरेव न जायते। तत्स्वरूपज्ञानाभावात्। तत्किमिति न विद्यते। कथं बन्धः कथं मोक्ष इति विचाराभावाच्च। तत्कथमिति। अज्ञानप्राबल्यात्। कस्मादज्ञानप्राबल्यमिति। भक्तिज्ञानवैराग्य-वासनाभावाच्च। तदभावःकथमिति। अत्यन्तान्तःकरणमलिनविशेषात्॥ ४॥

अत्यन्त हर्ष के साथ अति आदरपूर्वक शिष्य की प्रशंसा करते हुए गुरु ने कहा— सावधान होकर सुनो। जीव को अनगिनत जन्मों में अनेक बार किये हुए कुत्सित, अति दुष्ट , अनेक प्रकार के विचित्र अनन्त दुष्कर्मों के वासना-जाल के कारण शरीर और आत्मा के अलग-अलग होने का ज्ञान नहीं रह जाता। इसलिए जीव को "देह ही आत्मा है" यह भ्रम दृढ़ होकर बना रहता है। मैं ज्ञानरहित हूँ, मुझे किञ्चिन्मात्र भी ज्ञान नहीं है, मैं जीव हूँ, मेरे दुःखों का कोई अन्त नहीं है, जन्म-मरणरूप चक्कर में मैं अनादिकाल से पड़ा हूँ। इस तरह की भ्रान्त वासना होने के कारण संसार में प्रवृत्ति होती है अर्थात् इसी भ्रम के कारण जीव को बार-बार शरीर धारण करना पड़ता है। इस प्रवृत्ति से छूटने का कोई उपाय नहीं होता। जीव मिथ्या स्वप्नवत् विषय भोगों की अनुभूति करके विविध प्रकार की असंख्य अति दुर्लभ मनोकामनाओं की आशा निरन्तर करते हुए अतृप्त होकर सदैव दौड़ता रहता है। अनेक प्रकार के विचित्र स्थूल-सूक्ष्म, उत्कृष्ट-निकृष्ट अनन्त शरीरों को धारण करके उन-उन शरीरों द्वारा किये जाने योग्य अनेक प्रकार के विचित्र अपने शुभाशुभ कर्मों का अनुभव करके उन-उन कर्मों के फल की वासना के समूहों से वासित अन्तःकरण वालों की बराबर उन कर्मों के फलस्वरूप विषय भोगों में ही प्रवृत्ति होती है।

(कर्म की वासना के फलस्वरूप) संसार से निवृत्ति के मार्ग पर चलने की इच्छा भी नहीं होती। इस कारण जिनसे अनिष्ट हो जाता है, वे कार्य ही अपने लिए इष्ट अर्थात् आवश्यक मालूम पड़ते हैं। इष्ट अर्थात् कल्याणकारी मुक्ति मार्ग की तरह अनिष्ट अर्थात् कष्टदायक बन्धनकारी मार्ग संसार में वासनारूपी विपरीत भ्रम के कारण ही अनुभव होता है। इस कारण समस्त जीवों में इष्ट का चिन्तन सुख को लेकर होता है, जब वह नहीं प्राप्त होता है, तब वह दुःखी होता है। वस्तुतः ब्रह्म सुख के स्वरूप के ज्ञान के अभाव में बाधारहित ब्रह्म सुख के लिए प्रवृत्ति ही उत्पन्न नहीं होती। जीव यह नहीं जानता कि वह क्या है, क्योंकि बन्धन क्या है और उससे मुक्ति कैसे हो? वह यह विचार ही नहीं कर पाता। (प्रश्न) यह स्थिति कैसे है? (उत्तर)अज्ञान के प्रबल हो जाने के कारण। (प्रश्न) अज्ञान की प्रबलता कैसे होती है? (उत्तर) भक्ति, ज्ञान, वैराग्यरूपी वासना (संस्कार) के अभाव के कारण। (प्रश्न) यह अभाव क्यों है? (उत्तर) अन्तःकरण के अत्यन्त मलिन हो जाने के कारण॥ ४॥

अतः संसारतरणोपायः कथमिति॥ ५॥

(प्रश्नः- ऐसी स्थिति में संसार से तरने (मुक्ति) का उपाय क्या है?॥ ५॥

देशिकस्तमेव कथयति। सकलवेदशास्त्रसिद्धान्तरहस्य जन्मा-भ्यस्तात्यन्तोत्कृष्टसुकृतपरिपाकवशात्सद्भिः सङ्गो जायते। तस्माद्विधिनिषेधविवेको भवति। ततः

सदाचारप्रवृत्तिर्जायते। सदाचारादखिलदुरितक्षयो भवति। तस्मादन्तःकरणमति-विमलं भवति॥ ६॥

गुरु उपाय बतलाते हैं — समस्त वेद, शास्त्र, सिद्धान्त रहस्य के पठन-पाठन एवं जन्म-जन्मान्तरों में किये हुए श्रेष्ठ कर्मों के फलस्वरूप सत्पुरुषों का संग प्राप्त होता है। इस सत्संग के प्रभाव से क्या करना चाहिए? क्या नहीं करना चाहिए, इसका ज्ञान होता है। तब जीव की सदाचार में प्रवृत्ति हो जाती है। सदाचार का पालन करने से समस्त पापों का क्षय हो जाता है। पाप से रहित अन्तःकरण अति निर्मल हो जाता है॥ ६॥

ततः सद्गुरुकटाक्षमन्तःकरणमाकाङ्क्षति। तस्मात्सद्गुरुकटाक्षलेशविशेषेण सर्वसिद्धयः सिद्ध्यन्ति। सर्वबन्धाः प्रविनश्यन्ति। श्रेयोविघ्नाः सर्वे प्रलयं यान्ति। सर्वाणि श्रेयांसि स्वयमेवायान्ति। यथा जात्यन्धस्य रूपज्ञानं न विद्यते तथा गुरूपदेशेन विना कल्पकोटि-भिस्तत्त्वज्ञानं न विद्यते। तस्मात्सद्गुरुकटाक्षलेशविशेषेणाचिरादेव तत्त्वज्ञानं भवति॥ ७॥

निर्मल अन्तःकरण सद्गुरु की दयादृष्टि चाहता है। जब सद्गुरु की दयादृष्टि चाहता है, तब सद्गुरु की क्षणिक कृपादृष्टि प्राप्त करके ही समस्त सिद्धियाँ सिद्ध हो जाती हैं। सभी बन्धन नष्ट हो जाते हैं। श्रेय के समस्त विघ्न समाप्त हो जाते हैं। समस्त श्रेय अर्थात् श्रेष्ठ गुण अपने आप आ जाते हैं। जिस प्रकार अन्धे व्यक्ति को रूप की जानकारी नहीं होती, उसी तरह गुरु के उपदेश के बिना करोड़ों कल्पों तक तत्त्वज्ञान नहीं हो सकता। इसलिए सद्गुरु की कृपादृष्टि के लेशमात्र से ही अविलम्ब तत्त्वज्ञान हो जाता है॥ ७॥

यदा सद्गुरुकटाक्षो भवति तदा भगवत्कथाश्रवण-ध्यानादौ श्रद्धा जायते। तस्माद्धृदयस्थितानादिदुर्वासनाग्रन्थिविनाशो भवति। ततो हृदयस्थिताः कामाः सर्वे विनश्यन्ति तस्माद्धृदयपुण्डरीककर्णिकायां परमात्माविर्भावो भवति॥ ८॥

जब सद्गुरु की कृपा प्राप्त होती है, तब भगवान् का ध्यान करने एवं कथा आदि श्रवण करने की श्रद्धा पैदा होती है। उसके द्वारा अर्थात् शास्त्र श्रवण एवं ध्यान आदि के द्वारा हृदय में रहने वाली समस्त दुर्भावना रूपी ग्रन्थियों का विनाश हो जाता है। उसके कारण हृदय में रहने वाली समस्त मनोकामनाओं का विनाश हो जाता है। कामनाओं के विनष्ट हो जाने पर हृदय कमल में परमात्मा का आविर्भाव हो जाता है॥ ८॥

ततो दृढतरा वैष्णवी भक्तिर्जायते। ततो वैराग्यमुदेति। वैराग्याद्बुद्धिविज्ञानाविर्भावो भवति। अभ्यासात्तज्ज्ञानं क्रमेण परिपक्वं भवति॥ ९॥

उससे भगवान् विष्णु की दृढ़ भक्ति उत्पन्न होती है। इससे वैराग्य उदय होता है। वैराग्य के उदय होने पर अर्थात् सांसारिक विषयों की नश्वरता का वास्तविक बोध होने पर बुद्धि में विज्ञान अर्थात् सारतत्त्व को ग्रहण करने की क्षमता प्रकट होती है। सारतत्त्व का ज्ञान हो जाने पर उसे आचरण में उतारने का क्रमशः अभ्यास करने से वह ज्ञान परिपक्व होता है॥ ९॥

पक्वविज्ञानाज्जीवन्मुक्तो भवति। ततः शुभाशुभकर्माणि सर्वाणि सवासनानि नश्यन्ति। ततो दृढतरशुद्धसात्त्विकवासनया भक्त्यतिशयो भवति। भक्त्यतिशयेन नारायणः सर्वमयः

सर्वावस्थासु प्रविभाति। सर्वाणि जगन्ति नारायणमयानि प्रविभान्ति। नारायणव्यतिरिक्तं न किंचिदस्ति। इत्येतद्बुद्ध्वा विहरत्युपासकः सर्वत्र॥ १०॥

परिपक्व विज्ञान के द्वारा मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। इसके द्वारा वासनाओं के सहित समस्त शुभाशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं। तब अत्यन्त दृढ़ सात्विक वासना अर्थात् संस्कारों के द्वारा अति तीव्रतर भक्ति प्राप्त होती है। अतिशय भक्ति के कारण समस्त अवस्थाओं में सर्वमय भगवान् नारायण के दर्शन होने लगते हैं। समस्त जगत् नारायणमय लगने लगता है। ''नारायण के अलावा इस संसार में कुछ भी नहीं है'' साधक (भक्त) सदैव यही सोचते हुए सर्वत्र विचरण करता है॥ १०॥

निरन्तरसमाधिपरंपराभिर्जगदीश्वराकाराः सर्वत्र सर्वावस्थासु प्रविभान्ति। अस्य महापुरुषस्य क्वचित्क्वचिदीश्वरसाक्षात्कारो भवति॥ ११॥

इस प्रकार निरन्तर भावरूपी समाधि के कारण सर्वत्र सभी अवस्थाओं में जगदीश्वर की अनुभूति होती रहती है। ऐसे महापुरुष को कभी कभी ईश्वर का साक्षात्कार भी हो जाता है॥ ११॥

अस्य देहत्यागेच्छा यदा भवति तदा वैकुण्ठपार्षदाः सर्वे समायान्ति। ततो भगवद्ध्यानपूर्वकं हृदयकमले व्यवस्थितमात्मानं स्वमन्तरात्मानं संचिन्त्य सम्यगुपचारैरभ्यर्च्य हंसमन्त्रमुच्चरन्सर्वाणि द्वाराणि संयम्य सम्यङ्मनो निरुध्य चोर्ध्वगेन वायुना सह प्रणवेन प्रणवानुसंधानपूर्वकं शनैः शनैराब्रह्मरन्ध्राद्विनिर्गत्य सोऽहमिति मन्त्रेण द्वादशान्तस्थितपरमात्मानमेकीकृत्य पञ्चोपचारैरभ्यर्च्य पुनः सोऽहमिति मन्त्रेणषोडशान्तस्थितज्ञानात्मानमेकीकृत्य सम्यगुपचारैरभ्यर्च्य प्राकृतपूर्वदेहं परित्यज्य पुनः कल्पितमन्त्रमयशुद्धब्रह्मतेजोमयनिरतिशयानन्दमयमहाविष्णु-सारूप्यविग्रहं परिगृह्य सूर्यमण्डलान्तर्गतानन्तदिव्यचरणारविन्दाङ्गुष्ठनिर्गतनिरतिशयानन्दमयामरनदीप्रवाहमाकृष्य भावनयाऽत्र स्नात्वा वस्त्राभरणाद्युपचारैरात्मपूजां विधाय साक्षान्नारायणो भूत्वा ततो गुरुनमस्कारपूर्वकं प्रणवगरुडं ध्यात्वा ध्यानेनाविर्भूतमहाप्रणवगरुडं पञ्चोपचारैराराध्य गुर्वनुज्ञया प्रदक्षिणनमस्कारपूर्वकं प्रणवगरुडमारुह्य महाविष्णोः समस्तासाधारणचिह्नचिह्नितो महाविष्णोः समस्तासाधारणदिव्यभूषणैर्भूषितः सुदर्शनपुरुषं पुरस्कृत्य विष्वक्सेनपरिपालितो वैकुण्ठपार्षदैः परिवेष्टितो नभोमार्गमाविश्यपार्श्वद्वयस्थितानेकपुण्यलोकानतिक्रम्य तत्रत्यैः पुण्यपुरुषैरभिपूजितः सत्यलोकमाविश्य ब्रह्माणमभ्यर्च्य ब्रह्मणा च सत्यलोकवासिभिः सर्वैरभिपूजितः शैवमीशानकैवल्यमासाद्य शिवं ध्यात्वा शिवमभ्यर्च्य शिवगणैः सर्वैः शिवेन चाभिपूजितो ग्रहर्षिमण्डलान्यतिक्रम्य सूर्यसोममण्डले भित्त्वा कीलकनारायणं ध्यात्वा ध्रुवमण्डलस्य दर्शनं कृत्वा भगवन्तं ध्रुवमभिपूज्य ततः शिशुमारचक्रं विभिद्य शिशुमारप्रजापतिमभ्यर्च्य चक्रमध्यगतं सर्वाधारं सनातनं महाविष्णुमाराध्य तेन पूजितस्तत उपर्युपरि गत्वा परमानन्दं प्राप्य प्रकाशते॥ १२॥

जब इन महापुरुष की देह त्याग करने की इच्छा होती है, तब वैकुण्ठ से भगवान् के पार्षद उनके समीप आते हैं। तब भगवान् का ध्यान करते हुए वह हृदय कमल में स्थित आत्मा को अपनी अन्तरात्मा के रूप में

सम्यक् प्रकार से पूजा करके हंस मंत्र (सोऽहम्) का उच्चारण करते हुए समस्त द्वारों अर्थात् सभी इन्द्रियों के द्वारों का संयम करके, मन के वेग को रोकता है तथा ऊपर की ओर प्रवहन करने वाले वायु के साथ प्रणव से प्रणव का अनुसन्धान अर्थात् प्रणव का उच्चारण करते हुए उसे ध्यानपूर्वक शनैः-शनैः ब्रह्मरन्ध्र के मार्ग से बाहर जाकर ''सोऽहम्'' मंत्र के द्वारा बारह (दस इन्द्रियाँ, मन एवं बुद्धि) के अन्त में स्थित परमात्मा को एकत्र करके अर्थात् अपने को परमात्मा में पूर्ण विलय करके पंचोपचार से पूजन (मानसिक पूजन) करता है। पुनः 'सोऽहम्' मंत्र से षोडश तत्त्वों (पंच प्राण, दस इन्द्रिय एवं मन) के अन्त में स्थित ज्ञानात्मा को एकत्र करके सम्यक् प्रकार से उसकी पूजा करता है। पुनः पहले से प्राप्त प्राकृत- शरीर का त्याग करके फिर कल्पित मन्त्रमय, शुद्ध ब्रह्मतेजोमय, निरतिशय आनन्दमय महाविष्णु के स्वरूप को प्राप्त करके सूर्य मण्डल के अन्तर्गत भगवान् अनन्त के दिव्य चरणारविन्द के अंगुष्ठ से निकले हुए निरतिशय आनन्दमय देवनदी के प्रवाह को आकर्षित करके भावस्नान कर वस्त्राभूषणों के द्वारा अपने आप को अलंकृत (आत्मपूजा) करता है, तब साक्षात् नारायण का स्वरूप होकर गुरु को नमस्कार करके प्रणव (ओंकार) रूपी गरुड़ का ध्यान करता है। फिर ध्यान के द्वारा आविर्भूत महाप्रणव गरुड़ की पाँच प्रकार से पूजा करके, गुरु की आज्ञा से परिक्रमा एवं नमस्कारपूर्वक दिव्य प्रणव गरुड़ पर आरूढ़ होकर भगवान् महाविष्णु के समस्त असाधारण चिह्नों से चिह्नित होकर, महाविष्णु के समस्त असाधारण दिव्य आभूषणों से विभूषित होकर, सुदर्शन पुरुष को आगे करके विष्वक्सेन के द्वारा रक्षित होकर, वैकुण्ठ लोक के पार्षदों से घिरा हुआ आकाश मार्ग में प्रवेश करके मार्ग के दोनों तरफ स्थित अनेक पुण्य लोकों को पार करते हुए वहाँ निवास करने वाले पुण्य पुरुषों द्वारा पूजित होकर, सत्यलोक में प्रविष्ट होकर ब्रह्माजी का अर्चन करता है और ब्रह्माजी तथा समस्त सत्यलोक के निवासियों के द्वारा पूजित होकर भगवान् शिव के ईशान कैवल्य अर्थात् दिव्य कैलाश लोक में पहुँच जाता है। वहाँ पहुँचकर शिव का ध्यान करके शिव का अर्चन करके समस्त शिवगणों के साथ भगवान् शिव द्वारा भी पूजित होकर, ग्रह एवं ऋषि मण्डलों (लोकों)को पार करके सूर्य तथा चन्द्र मण्डल का भेदन करता है, तब शिशुमार चक्र को भेदकर शिशुमार प्रजापति की अर्चना करके चक्र के मध्य में सर्वाधार सनातन महाविष्णु की आराधना करके उनके द्वारा पूजित होता है, उसके पश्चात् ऊपर जाकर परमानन्द को प्राप्त हो जाता है॥ १२॥

ततो वैकुण्ठवासिनः सर्वे समायान्ति तान् सर्वान्सुसंपूज्यतैः सर्वैरभिपूजितश्चोपर्युपरि गत्वा विरजानदीं प्राप्य तत्र स्नात्वा भगवद्ध्यानपूर्वकंपुनर्निमज्ज्य तत्रापञ्चीकृतभूतोत्थसूक्ष्माङ्गभोगसाधन सूक्ष्मशरीरमुत्सृज्य केवलमन्त्रमयदिव्यतेजोमयनिरतिशयानन्दमयमहाविष्णुसारूप्यविग्रहं परिगृह्य तत उन्मज्यात्मपूजां विधाय प्रदक्षिणनमस्कारपूर्वकं ब्रह्ममयवैकुण्ठमाविश्य तत्रत्यान्विशेषेण संपूज्य तन्मध्ये च ब्रह्मानन्दमयानन्तप्राकारप्रासादतोरणविमानोपवनावलिभिर्ज्वलच्छिखरैरुपलक्षितो निरुपमनित्यनिरवद्य निरतिशयनिरवधिकब्रह्मानन्दाचलो विराजते॥ १३॥

तब वैकुण्ठ में निवास करने वाले समस्त लोग उसके निकट आते हैं। उन समस्त लोगों की अभ्यर्थना करके तथा पूजित होने के बाद ऊपर जाकर विरजा नदीं मिलती है, वहाँ जाकर स्नान करके भगवान् के ध्यान में डुबकी लगाता है। वहाँ अपञ्चीकृत महाभूतों अर्थात् पञ्च-तन्मात्राओं से निर्मित सूक्ष्म अंग वाले भोग-साधनरूप सूक्ष्म शरीर को त्याग कर, केवल मंत्रमय दिव्य तेजोमय निरतिशय आनन्दमय महाविष्णु के सारूप्य विग्रह को धारण करता है; तब जल से बाहर निकलकर अपनी आत्मपूजा करके, प्रदक्षिणा एवं नमस्कारपूर्वक ब्रह्ममय वैकुण्ठलोक में प्रविष्ट होता है। वहाँ पर वहाँ के निवास करने वालों की विशेष प्रकार से पूजा करके

उसके मध्य में ब्रह्मानन्दमय, अनन्तप्रकाश के सुसज्जित महल, फाटक, विमान, उपवनों के समूहों के सहित, उज्ज्वल शिखरों से सुशोभित उपमारहित, नित्य, निर्विकार, निरतिशय, असीम ब्रह्मानन्द नाम के पर्वत का दर्शन करता है॥ १३॥

तदुपरि ज्वलति निरतिशयानन्ददिव्यतेजोराशिः। तदभ्यन्तरसंस्थाने शुद्धबोधानन्दलक्षणं विभाति। तदन्तराले चिन्मय-वेदिका आनन्दवेदिकानन्दवनविभूषिता। तदभ्यन्तरे अमिततेजोराशिस्तदुपरिज्वलति। परममङ्गलासनं विराजते। तत्पद्मकर्णिकायां शुद्धशेषभोगासनं विराजते। तस्योपरि समासीनमानन्दपरिपालकमादिनारायणं ध्यात्वा तमीश्वरं विविधोपचारैराराध्य प्रदक्षिणनमस्कारान्विधाय तदनुज्ञातश्चोपर्युपरि गत्वा पञ्चवैकुण्ठानतीत्याण्डविराट्कैवल्यं प्राप्य तं समाराध्योपासकः परमानन्दं प्रापेत्युपनिषत्॥ १४॥

वहाँ पर्वत पर निरतिशयानन्दमय दिव्य तेजोराशि प्रज्वलित रहती है। उस तेजोराशि के अन्तर्गत प्रकाशित शुद्ध ज्ञानमय आनन्दस्वरूप के मध्य आनन्दमय एवं आनन्दवन से विभूषित चिन्मय वेदिका विराजमान है। वेदिका के मध्य ऊपर की ओर अमित तेजोराशि प्रज्वलित रहती है। उस पर परम मंगल आसन विराजमान है, उसके पद्म की पंखुड़ियों पर शुद्ध शेष भगवान् का भोगासन विराजित है। उसके आसन पर विराजमान आनन्द परिपालक भगवान् आदिनारायण को ध्यान के पश्चात् उन परमेश्वर की विविध उपचारों से पूजा करके प्रदक्षिणा, नमस्कार करके, उनकी आज्ञा प्राप्त कर ऊपर-ऊपर गमनकर पाँचों वैकुण्ठों को पार करके अण्ड विराट् कैवल्य प्राप्त करता है, फिर उनकी उपासना करके साधक परमानन्द को प्राप्त करता है॥ १४॥

॥ षष्ठोऽध्यायः ॥

तत उपासकः परमानन्दं प्राप। सावरणं ब्रह्माण्डं च भित्त्वा परितः समवलोक्य ब्रह्माण्डस्वरूपं निरीक्ष्य परमार्थतस्तत्स्वरूपं ब्रह्मज्ञानेनावबुध्य समस्त वेदशास्त्रेतिहासपुराणानि समस्तविद्याजालानि ब्रह्मादयः सुराः सर्वे समस्ताः परमर्षयश्चाण्डाभ्यन्तरप्रपञ्चैकदेशमेव वर्णयन्ति। अण्डस्वरूपं न जानन्ति। ब्रह्माण्डाद्बहिःप्रपञ्चज्ञानं न जानन्त्येव। कुतोऽण्डान्तरान्तर्बहिः प्रपञ्चज्ञानं दूरतो मोक्षप्रपञ्चज्ञानमविद्याप्रपञ्चज्ञानं चेति॥ १॥

तब उपासक को परमानन्द की प्राप्ति हो जाती है और वह आवरण सहित ब्रह्माण्ड को भेदकर चारों तरफ देखते हुए ब्रह्माण्ड के स्वरूप का अवलोकन करता हुआ, तत्त्वतः उसके स्वरूप को ब्रह्मज्ञान के द्वारा समझ लेता है कि सभी वेद, शास्त्र, इतिहास, पुराण समस्त विद्या-समूह ब्रह्मादि समस्त देवता एवं सभी परमर्षि ब्रह्माण्ड केअन्तर्गत स्थित प्रपञ्च के एक भाग का ही वर्णन करते हैं। वे न तो ब्रह्माण्ड के स्वरूप को जानते हैं और न उसके बाह्य-- प्रपञ्च को फिर ब्रह्माण्ड के अन्दर और बाहर के प्रपञ्च- ज्ञान से दूर मोक्ष- प्रपञ्च एवं अविद्या-- प्रपञ्च का ज्ञान उन्हें कैसे हो सकता है? ॥ १॥

कथं ब्रह्माण्डस्वरूपमिति॥ २॥

ब्रह्माण्ड का स्वरूप कैसा है ? ॥ २॥

कुक्कुटाण्डाकारं महदादिसमष्ट्याकारमण्डं तपनीयमयं तप्तजाम्बूनदप्रभमुद्यत्कोटिदिवाकराभं चतुर्विधसृष्ट्युपलक्षितं महाभूतैः पञ्चभिरावृतं महदहंकृतितमोभिश्च मूलप्रकृत्या परिवेष्टितम्॥ ३॥

वह ब्रह्माण्ड कुक्कुटाण्ड (मुर्गी के अण्डे) के स्वरूप वाला महत्तत्त्व आदि (बुद्धि, अहंकार, पंच तन्मात्रा आदि चौबीस तत्त्व) समष्टिमय तेजस्वरूप तप्तस्वर्ण की तरह कान्तिमान्, करोड़ों उदीयमान सूर्य के समान कान्तिवाला, उद्भिज्ज, अण्डज, स्वेदज और पिण्डज चारों प्रकार की सृष्टि के रूप में प्रकट पृथ्वी, जल आदि पञ्चमहाभूतों से आवृत एवं महत्तत्त्व, अहंकार, तमोगुण तथा मूल प्रकृति से घिरा है॥ ३॥

अण्डभित्तिविशालं सपादकोटियोजन प्रमाणम्। एकैकावरणं तथैव॥ ४॥

उस कुक्कुटाण्ड आकार के ब्रह्माण्ड का विस्तार सवा करोड़ योजन विशाल है तथा उसी प्रमाण का हर एक आवरण है॥ ४॥

अण्डप्रमाणं परितोऽयुतद्वयकोटियोजनप्रमाणं महामण्डूकाद्यनन्तशक्तिभिरधिष्ठितं नारायणक्रीडाकन्दुकं परमाणुवद्विष्णुलोकसुसंलग्नमदृष्टाश्रुतविविध-विचित्रा-नन्तविशेषैरुपलक्षितम्॥ ५॥

यह ब्रह्माण्ड चारों ओर से बीस हजार करोड़ (दो खरब) योजन परिमाण वाला महामण्डूक, अनादि-अनन्त शक्तियों के द्वारा अधिष्ठित भगवान् नारायण की क्रीड़ा करने वाली गेंद की तरह है। (यह ब्रह्माण्ड) परमाणु के समान विष्णुलोक से चिपका हुआ ऐसी अनन्त प्रकार की अनेक विचित्रताओं से युक्त है, जो न कहीं देखी गई और न कहीं सुनी गई हैं॥ ५॥

अस्य ब्रह्माण्डस्य समन्ततः स्थितान्येतादृशान्यनन्तकोटिब्रह्माण्डानि सावरणानि ज्वलन्ति॥ ६॥

इसी तरह के दूसरे अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड अपने आवरणों के सहित प्रकाशमान होकर इस ब्रह्माण्ड के चारों ओर अवस्थित हैं॥ ६॥

चतुर्मुखपञ्चमुखषण्मुखसप्तमुखाष्टमुखादिसंख्याक्रमेण सहस्रावधिमुखान्तैर्नारायणांशैः रजोगुणप्रधानैरेकैकसृष्टिकर्तृभिरधिष्ठितानि विष्णुमहेश्वराख्यैर्नारायणांशैः सत्त्वतमोगुणप्रधानैरेकैकस्थितिसंहारकर्तृभिरधिष्ठितानि महाजलौघमत्स्यबुद्बुदानन्तसङ्घवद्भ्रमन्ति॥ ७॥

वे ब्रह्माण्ड चार मुख वाले, पाँचमुख, छःमुख, सातमुख, अष्टमुख वाले तथा इसी तरह क्रमोत्तर संख्या वृद्धि होते हुए हजारों मुखों के भगवान् श्री नारायण के अंशधर रजोगुणधारी सृष्टि करने वाले ब्रह्मा के द्वारा अधिष्ठित हैं। भगवान् श्री नारायण के अंशधर सत्त्व एवं तमोगुण प्रधान श्री विष्णु तथा महेश्वर जो स्थिति व संहारकर्ता हैं, वे भी उसके साथ अधिष्ठित हैं। जिस प्रकार विशाल जल--प्रवाह में मत्स्य एवं बुलबुलों के अनन्त समूह घूमते रहते हैं, उसी प्रकार वे समस्त ब्रह्माण्ड विशाल जल-प्रवाह में अनन्त समूहों में घूमते रहते हैं॥ ७॥

क्रीडासक्तजालककरतलामलकवृन्दवन्महाविष्णोःकरतले विलसन्त्यनन्तकोटिब्रह्माण्डानि॥ ८॥

खेल करते हुए बालक के हाथों में रखे हुए आँवलों के समूहों की भाँति अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड श्री महाविष्णु की हथेली में सुशोभित हो रहे हैं॥ ८॥

जलयन्त्रस्थघटमालिकाजालवन्महाविष्णोरेकैकरोमकूपान्तरेष्वनन्तकोटिब्रह्माण्डानि सावरणानि भ्रमन्ति॥ ९॥

कुएँ से जल निकालने वाले यन्त्र अर्थात् रहँट में लगे हुए मालाकार घड़ों के समूहों की तरह भी महाविष्णु के एक-एक रोएँ के छिद्रों में अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड अपने-अपने आवरणों सहित भ्रमण करते रहते हैं॥ ९॥

समस्त ब्रह्माण्डान्तर्बहिः प्रपञ्चरहस्यं ब्रह्मज्ञानेनावबुध्य विविधविचित्रानन्तपरमविभूतिसमष्टिविशेषान्त्समवलोक्यात्याश्चर्यामृतसागरे निमज्ज्य निरतिशयानन्दपारावारो भूत्वा समस्तब्रह्माण्डजालानि समुल्लङ्घ्यामितापरिच्छिन्नानन्ततमः सागरमुत्तीर्य मूलाविद्यापुरं दृष्ट्वा विविधविचित्रानन्तमहामायाविशेषैः परिवेष्टितामनन्तमहामायाशक्तिसमष्ट्याकारामनन्तदिव्यतेजोज्वालाजालैरलंकृतामनन्तमहामायाविलासानां परमाधिष्ठानविशेषाकारां शश्वदमितानन्दाचलोपरिविहारिणीं मूलप्रकृतिजननीमविद्यालक्ष्मीमेवं ध्यात्वा विविधोपचारैराराध्य समस्तब्रह्माण्डसमष्टिजननीं वैष्णवीं महामायां नमस्कृत्य तया चानुज्ञातश्चोपर्युपरि गत्वा महाविराट्पदं प्राप॥ १०॥

जिन साधकों को साधना में उपयुक्त गति प्राप्त हो चुकी है, वे ब्रह्मज्ञान के द्वारा समस्त ब्रह्माण्डों के अन्दर व बाहर के समस्त प्रपञ्च (ब्रह्माण्ड के विस्तार, विकास) के अनेकों रहस्यों को जानकर एवं विभिन्न प्रकार की विचित्र अनन्त समष्टि की परम विभूतियों की विशेषताओं का दर्शन करता है एवं आश्चर्य समुद्र में गोता लगाकर निरतिशय आनन्दपूर्वक समस्त अंधकाररूपी सागर को पार करके मूल अविद्या लोक को देखकर विविध विचित्र अनन्त महामाया शक्तियों की समष्टिरूपा अनन्त दिव्य तेजोराशि ज्वालमालाओं से अलंकृत,अनन्त महामाया के विलास की विशेष अधिष्ठात्री शाश्वत अमित आनन्द शिखर पर विहरण करने वाली मूल प्रकृति माँ अविद्या- लक्ष्मी का इस प्रकार ध्यान करके विविध उपचारों से आराधन कर समस्त ब्रह्माण्डों की समष्टि जननी महामाया वैष्णवी को नमस्कारपूर्वक उनसे आज्ञा प्राप्त करके ऊपर ही ऊपर जाकर महाविराट् पद को प्राप्त करता है॥ १०॥

महाविराट्स्वरूपं कथमिति॥ ११॥

प्रश्नः- महाविराट् का स्वरूप किस प्रकार का है?॥ ११॥

समस्ताविद्यापादको विराट्॥ १२॥

उत्तरः- ये सभी अविद्यापाद विराट् हैं॥ १२॥

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्। सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः॥ १३॥

वे एक परमात्मा सब ओर नेत्रों, मुख, बाहुओं एवं पैरों से युक्त हैं। वही एक परमात्मा मनुष्य आदि जीवों को बाहुओं से तथा पक्षी-कीट आदि को पंखों से संयुक्त करते हैं, वे ही इस द्यावा-पृथिवी के रचयिता हैं॥ १३॥

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्। हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एनं विदुरमृतास्ते भवन्ति॥ १४॥

इन परमात्मा का कोई रूप दृष्टि के सामने नहीं ठहर पाता, उसे (इनके रूप को) कोई इन आँखों से नहीं देख सकता। जो साधक अपने हृदय में अवस्थित परमात्मा को भावपूर्ण हृदय एवं निर्मल मन से जान लेते हैं, वे अमरत्व को प्राप्त कर लेते हैं॥ १४॥

मनोवाचामगोचरमादिविराट्स्वरूपं ध्यात्वा विविधोपचारैराराध्य तदनुज्ञातश्चोपर्युपरि गत्वा विविधविचित्रानन्तमूलाविद्याविलासानवलोक्योपासकः परमकौतुकं प्राप॥ १५॥

साधना की यह स्थिति प्राप्त करके उपासक मन-वाणी से न जानने योग्य आदि-विराट्-स्वरूप का ध्यान करके, विविध प्रकार के उपचारों से आराधना करके उनका आदेश प्राप्त कर, ऊपर की ओर गमन करके अनेक प्रकार के विचित्र अनन्त मूल अविद्या के विलास को देखकर, आश्चर्यचकित हो जाता है॥ १५॥

अखण्डपरिपूर्णपरमानन्दलक्षणपरब्रह्मणः समस्तस्वरूपविरोधकारिण्यपरिच्छिन्नतिरस्करिण्याकारा वैष्णवी महायोगमाया मूर्तिमद्भिरनन्तमहामायाजालविशेषैः परिषेविता तस्याः पुरमतिकौतुकमत्याश्चर्यसागरानन्दलक्षणममृतं भवति। अविद्यासागरप्रतिबिम्बितनित्यवैकुण्ठप्रतिवैकुण्ठमिव विभाति॥ १६॥

वहाँ अखण्ड परमानन्द लक्षण वाले परब्रह्म के समस्त स्वरूपों में विरोध करने वाली (स्वाभाविक रूप से जीवन को भ्रम में डालने वाली) असीम विवरणरूपी यवनिका के आकार के रूप में श्री विष्णु भगवान् की महायोगमाया मूर्तिमान अनेकों महामाया स्वरूपों से विशेष प्रकार से सेवित है। उनका वह नगर अति कौतुकमय अत्यन्त आश्चर्य-सागर आनन्द-लक्षण वाला शाश्वत है। अविद्या सागर में प्रतिबिम्बित शाश्वत वैकुण्ठ की परछाई की तरह दूसरे वैकुण्ठ की तरह दिखाई पड़ता है॥ १६॥

उपासकस्तत्पुरं प्राप्य योगमायालक्ष्मीं ध्यात्वा विविधोपचारैराराध्य तया संपूजितश्चानुज्ञातश्चोपर्युपरिगत्वाऽनन्तयोगमायाविलासानवलोक्योपासकः परमकौतुकं प्राप॥ १७॥

उस नगर (लोक) को प्राप्त करके योगमाया लक्ष्मी का ध्यान करके अनेकों उपचारों से पूजन करके उनके द्वारा सम्मानित होकर उनका आदेश प्राप्त करके ऊपर की ओर गमन करके अनन्त योगमाया के विलास (लीला) को देखकर उपासक परम आश्चर्य को प्राप्त करता है॥ १७॥

तत उपरिपादविभूतिवैकुण्ठपुरमाभाति। अत्याश्चर्यानन्तविभूतिसमष्ट्याकारमानन्दरस-प्रवाहैरलंकृतममिततरङ्गिण्या: प्रवाहैरतिमङ्गलं ब्रह्मतेजोविशेषाकारैरनन्त ब्रह्मवनैरभितस्ततमनन्तनित्यमुक्तैरभिव्याप्तमनन्तचिन्मयप्रासादजालसंकुलमनादिपादविभूति-वैकुण्ठमेवमाभाति। तन्मध्ये च चिदानन्दाचलो विभाति॥ १८॥

उसके ऊपर पाद विभूति वैकुण्ठपुर शोभायमान है। अति आश्चर्यमय अनन्त विभूतियों का समष्टि रूप, आनन्द रस के प्रवाहों से अलंकृत, अनेकों अमृतमय प्रवाहों से मंगलरूप ब्रह्मतेज का विशेष आकार अनेक ब्रह्मवनों से चारों ओर से आवृत है, जो अनन्त नित्यमुक्तों से चारों ओर से घिरा हुआ तथा अनेकों चिन्मय प्रासादों (भवनों) समूहों से व्याप्त अनादिपादविभूति 'वैकुण्ठ' भलीप्रकार शोभायमान है और इनके बीच वे चिदानन्द (ब्रह्म) अचल रूप में सुशोभित हैं॥ १८॥

तदुपरि ज्वलति निरतिशयानन्ददिव्यतेजोराशि:। तदभ्यन्तरे परमानन्दविमानं विभाति। तदभ्यन्तरसंस्थाने चिन्मयासनं विराजते। तत्पद्मकर्णिकायां निरतिशयदिव्यतेजो-राश्यन्तरसमासीनमादिनारायणं ध्यात्वाविविधोपचारैस्तं समाराध्य तेनाभिपूजितस्तदनुज्ञातश्चोपर्युपरि गत्वा सावरणमविद्याण्डं च भित्त्वा विद्यापादमुल्लङ्घ्य विद्याविद्ययो: सन्धौ विष्वक्सेन वैकुण्ठपुरमाभाति॥ १९॥

उसके ऊपर निरतिशयानन्द दिव्य तेजोराशि प्रज्वलित है। उसके मध्य में परमानन्द विमान सुशोभित है। उसके अन्दर मध्य भाग में चिन्मय- आसन विराजमान है। उस पद्मकली के ऊपर निरतिशय दिव्य तेजोराशि के मध्य विराजमान आदिनारायण का ध्यान करके विविध उपचारों के द्वारा आराधना करके एवं उनसे पूजित होकर उनसे आज्ञा प्राप्त करके उसके ऊपर जाकर आवरण के सहित अविद्याण्ड का भेदन कर अविद्यापाद को लाँघकर विद्या-अविद्या के संधिभाग (मध्यभाग) में स्थित विष्वक्सेन-वैकुण्ठपुर को प्राप्त करता है॥ १९॥

अनन्तदिव्यतेजोज्वालाजालैरभितोऽनिशं प्रज्वलन्तमनन्तबोधानन्दव्यूहैरभितस्ततं शुद्धबोधविमानावलिभिर्विराजितमनन्तानन्दपर्वतै: परमकौतुकमाभाति। तन्मध्ये च कल्याणाचलोपरि शुद्धानन्दविमानं विभाति। तदभ्यन्तरे दिव्यमङ्गलासनं विराजते। तत्पद्मकर्णिकायां ब्रह्मतेजोराश्यभ्यन्तरसमासीनं भगवदनन्तविभूतिविधिनिषेधपरिपालकं सर्वप्रवृत्तिसर्वहेतुनिमित्तकं निरतिशयानन्दलक्षणमहाविष्णुस्वरूपमखिलापवर्ग-परिपालकममितविक्रममेवंविधं विष्वक्सेनं ध्यात्वा प्रदक्षिणनमस्कारान्विधाय विविधोपचारैराराध्य तदनुज्ञातश्चोपर्युपरि गत्वा विद्याविभूतिं प्राप्य विद्यामयानन्तवैकुण्ठान्परितोऽवस्थितान्ब्रह्मतेजोमयानवलोक्योपासक: परमानन्दं प्राप॥ २०॥

अनन्त दिव्य तेज के ज्वालासमूहों के द्वारा चारों तरफ से निरन्तर प्रकाशमान, अनन्त बोधानन्द समूहों से चारों ओर से घिरा शुद्ध ज्ञानरूप विमानों से विराजित वह स्थान अनन्त आनन्द पर्वतों से परम आश्चर्यमय प्रतीत होता है। उसके मध्य में कल्याण पर्वत के ऊपर श्रद्धानन्द विभाग शोभायमान है। उसके मध्य दिव्य मंगलमय आसन विराजमान है। उस पद्म की कर्णिका (कली) में ब्रह्म तेजोराशि के अन्दर विराजित भगवान् अनन्त

ऐश्वर्यरूप विधि-निषेध का पालन करने वाले सभी प्रवृत्तियों तथा कार्यों के कारणरूप निरतिशय आनन्द लक्षणरूप, महाविष्णु-स्वरूप समस्त मुक्तियों के पालनहार अमित पराक्रम वाले, इस विधि से श्री भगवान् श्री विश्वक्सेन जी का ध्यान करके, प्रदक्षिणा नमस्कार करके, विविध प्रकार के उपचारों से आराधना करके, उनकी आज्ञा प्राप्त करके उससे और ऊपर जाकर विद्या विभूति पाकर विद्यामय चारों तरफ स्थित ब्रह्मतेजोमय अनन्त वैकुण्ठों को देखकर साधक को परमानन्द प्राप्त होता है॥ २०॥

विद्यामयाननन्तसमुद्रानतिक्रम्य ब्रह्मविद्यातरङ्गिणीमासाद्य तत्र स्नात्वा भगवद्ध्यानपूर्वकं पुनर्निमज्ज्य मन्त्रमयशरीरमुत्सृज्य विद्यानन्दमयामृतदिव्यशरीरं परिगृह्य नारायणसारूप्यं प्राप्यात्मपूजां विधाय ब्रह्ममयवैकुण्ठवासिभिः सर्वैर्नित्यमुक्तैः सुपूजितस्ततो ब्रह्मविद्याप्रवाहैरा-नन्दरसनिर्भरैः क्रीडानन्तपर्वतैरनन्ततैरभिव्याप्तं ब्रह्मविद्यामयैः सहस्रप्राकारैरानन्दामृतमयै-र्दिव्यगन्धस्वभावैश्चिन्मयैरनन्तब्रह्मवनैरतिशोभितमुपासकस्त्वेवंविधं ब्रह्मविद्या वैकुण्ठमाविश्य तदभ्यन्तरस्थितात्यन्तोन्नतबोधानन्दप्रासादाग्रस्थितप्रणवविमानोपरिस्थितामपार-ब्रह्मविद्यासाम्राज्याधिदेवताममोघनिजमन्दकटाक्षेणानादिमूलाविद्याप्रलयकरीमद्वितीया-मेकामनन्तमोक्षसाम्राज्यलक्ष्मीमेवं ध्यात्वा प्रदक्षिणनमस्कारान्विधाय विविधोपचारैराराध्य पुष्पाञ्जलिं समर्प्य स्तुत्वास्तोत्रविशेषैस्तयाभिपूजितस्तदनुगतश्चोपर्युपरि गत्वा ब्रह्मविद्यातीरे गत्वा बोधानन्दमयाननन्तवैकुण्ठानवलोक्य निरतिशयानन्दं प्राप्य बोधानन्दमयाननन्तसमुद्रानतिक्रम्य गत्वा गत्वा ब्रह्मवनेषु परममङ्गलाचलश्रेणीषु ततो बोधानन्दविमानपरंपरासूपासकः परमानन्दं प्राप॥ २१॥

विद्यामय अनन्त समुद्रों को लाँघकर ब्रह्मविद्या नदी में आकर वहाँ स्नान करके, भगवान् के ध्यान पूर्वक पुनः स्नान करता है (वहाँ से) मंत्रमय शरीर त्यागकर विद्यानन्दमय अमृत दिव्य शरीर धारण करके भगवान् नारायण की सारूप्य मुक्ति (उनके जैसा स्वरूप) प्राप्त करके आत्मपूजापूर्वक ब्रह्ममय वैकुण्ठ वासियों, समस्त नित्य भक्तों से सुपूजित होकर फिर ब्रह्मविद्या प्रवाहों से आनन्द रस से आप्लावित क्रीड़ानन्द रूपी अनन्त पर्वतों से संव्याप्त ब्रह्मविद्यामय सहस्रों प्राचीरों एवं आनन्दामृत परिपूर्ण स्वभावतः दिव्य- गंधसहित चिन्मय अनन्त ब्रह्मवनों से अति सुशोभित इस प्रकार के ब्रह्मविद्या- वैकुण्ठ में साधक प्रवेश करता है। उसमें रहने वाला अतिउन्नत ज्ञानानन्दमय प्रासाद के अग्रभाग में स्थित प्रणव (ओंकार) रूपी विमान के ऊपर स्थित अपार ब्रह्मविद्या के साम्राज्य की अधीश्वरी अपने अमोघ मन्द कटाक्ष के द्वारा अनादि मूल अविद्या को समाप्त कर देने वाली अद्वितीया एकमात्र अनन्त-मोक्ष-साम्राज्य-लक्ष्मी का इस प्रकार ध्यान करता है। इस प्रकार प्रदक्षिणा नमस्कारपूर्वक अनेक उपचारों से आराधना करके पुण्याञ्जलि समर्पित कर प्रार्थना करता है। पुनः विशेष प्रार्थना स्तोत्रों के द्वारा पूजन करता है तथा उनकी आज्ञा लेकर और ऊपर जाता है। वहाँ पहुँचकर ब्रह्मविद्या के किनारे जाकर ज्ञानानन्दमय अनन्त वैकुण्ठ को देखकर निरतिशय आनन्द पाकर बोधानन्दमय अनन्त समुद्रों के पार जा-जाकर ब्रह्मवनों में एवं परम मंगल पर्वत श्रेणियों (शिखरों) पर पहुँचकर बोधानन्द विमान की श्रेणियों को पाकर उपासक परमानन्द पाता है ॥ २१॥

ततः श्रीतुलसीवैकुण्ठपुरमाभाति परमकल्याणमनन्तविभवममिततेजोराश्याकारमनन्त-ब्रह्मतेजोराशिसमष्ट्याकारं चिदानन्दमयानेकप्राकारविशेषैः परिवेष्टितममितबोधानन्दाचलोपरिस्थितं बोधानन्दतरङ्गिण्याः प्रवाहैरतिमङ्गलं निरतिशयानन्दैरनन्तवृन्दावनैरतिशोभितमखिलपवित्राणां परमपवित्रं चिद्रूपैरनन्तनित्यमुक्तैरभिव्याप्तमानन्दमयानन्तविमान-जालैरलंकृतममिततेजोराश्यन्तर्गतदिव्यतेजोराशिविशेषम्॥ २२॥

उसके पश्चात् श्रीतुलसी--वैकुण्ठपुर प्रकाशमान है। परम कल्याणयुक्त अमित वैभवयुक्त अनन्त तेजोराशि के आकार में अनन्त तेजोराशि का समष्टिरूप, चिदानन्दमय विशेष प्रकार की अनेक चहार दीवारियों से घिरा, अमितज्ञानमय आनन्द पर्वत पर स्थित, बोधानन्द की तरंगों से अतिमंगलमय निरतिशयानन्द अनन्त तुलसी वनों से अति शोभायमान, समस्त पवित्रताओं में परम पवित्र, चित्स्वरूप, अनन्त नित्यमुक्त सिद्धात्माओं से अतिव्याप्त, आनन्दमय अनेक विमानों के समूहों से सुसज्जित, अमित तेजोराशि के अन्तर्गत विशेष दिव्य तेज प्रकाशित है॥ २२॥

उपासकस्त्वेवमाकारं तुलसीवैकुण्ठं प्रविश्य तदन्तर्गतदिव्यविमानोपरिस्थितां सर्वपरिपूर्णस्य महाविष्णोः सर्वाङ्गेषु विहारिणीं निरतिशयसौन्दर्यलावण्याधिदेवतां बोधानन्दमयैरनन्तनित्यपरिजनैः परिसेवितां श्रीसखीं तुलसीमेवं लक्ष्मीं ध्यात्वा प्रदक्षिणनमस्कारान्विधाय विविधोपचारैराराध्य स्तुत्वा स्तोत्रविशेषैस्तयाभिपूजित-स्तत्रत्यैश्चाभिपूजितस्तदनुज्ञातश्चोपर्युपरि गत्वा परमानन्दतरङ्गिण्यास्तीरे गत्वा तत्र परितोऽवस्थितान्शुद्धबोधानन्दमयाननन्त वैकुण्ठानवलोक्य निरतिशयानन्दं प्राप्य तत्रत्यैश्चिद्रूपैः पुराणपुरुषैश्चाभिपूजितस्ततो गत्वा गत्वा ब्रह्मवनेषु दिव्यगन्धानन्दपुष्पवृष्टिभिः समन्वितेषु दिव्यमङ्गलालयेषु निरतिशयानन्दामृतसागरेष्वमिततेजोराश्याकारेषु कल्लोलवनसंकुलेषु ततोऽनन्तशुद्धबोधविमानजालसंकुलानन्दाचलश्रेणीषूपासकस्ततउपर्युपरि गत्वा विमानपरम्परास्वनन्ततेजः पर्वतराजिष्वेवं क्रमेण प्राप्य विद्यानन्दमययोः सन्धिं तत्रानन्दतरङ्गिण्याः प्रवाहेषु स्नात्वा बोधानन्दवनं प्राप्य शुद्धबोधपरमानन्दानन्दाकारवनं संततामृतपुष्पवृष्टिभिः परिवेष्टितं परमानन्दप्रवाहैरभिव्याप्तं मूर्तिमद्भिः परममङ्गलैः परमकौतुकमपरिच्छिन्नानन्दसागराकारं क्रीडानन्दपर्वतैरभिशोभितं तन्मध्ये च शुद्धबोधानन्दवैकुण्ठं यदेव ब्रह्मविद्यापादवैकुण्ठं सहस्रानन्दप्राकारैः समुज्ज्वलति। अनन्तानन्दविमानजालसंकुलमनन्तबोधसौधविशेषैरभितोऽनिशं प्रज्वलन्तं क्रीडानन्तमण्डपविशेषैर्विशेषितं बोधानन्दमयानन्तपरमच्छत्रध्वज-चामरवितानतोरणैरलंकृतं परमानन्दव्यूहैर्नित्यमुक्तैरभितस्ततमनन्तदिव्यतेजः पर्वतसमष्ट्याकार-मपरिच्छिन्नानन्तशुद्धबोधानन्दमण्डलं वाचामगोचरानन्दब्रह्मतेजोराशिमण्डलम-खण्डतेजोमण्डलविशेषं शुद्धानन्दसमष्टिमण्डलविशेषमखण्डचिद्घनानन्दविशेषम्॥ २३॥

साधक इस तरह के श्रीवैकुण्ठ में प्रविष्ट होकर उसके अन्दर दिव्य विमान पर स्थित, सब तरह से

परिपूर्ण श्री महाविष्णु के समस्त अंगों में विहरण करने वाली, निरतिशय सौन्दर्य- लावण्य की अधीश्वरी देवी, ज्ञानानन्दमय अनेक नित्य मुक्त परिजनों द्वारा सेवा की जानेवाली महालक्ष्मी की सखी श्रीतुलसी देवी का इस तरह ध्यान करके, प्रदक्षिणा नमस्कारपूर्वक विविध प्रकार के उपचारों से आराधन कर विशेष प्रकार के स्तोत्रों से स्तुति करता है, फिर उनसे पूजित होकर वहाँ एवं वहाँ पर निवास करने वालों के द्वारा अच्छी तरह से पूजित होकर, उनकी आज्ञा प्राप्त करके और ऊपर जाकर परमानन्द तरंगिणी नदी के तट पर जाकर, वहाँ पर चारों ओर अवस्थित शुद्ध बोधानन्दरूपी अनन्त वैकुण्ठों को देखकर निरतिशय आनन्द प्राप्त करके, वहाँ पर निवासित ज्ञानस्वरूप पुराण पुरुषों के द्वारा पूजित होता है।

उससे आगे पुष्पवृष्टि सहित दिव्य गन्धानन्दमय मंगलागार ब्रह्मवनों में अपार तेजोराशि दिव्य तरंगों से परिपूर्ण आनन्दमय अमृत समुद्रों में, फिर अनन्त शुद्ध बोधमय विमानों की श्रेणियों से परिपूर्ण आनन्द पर्वतों के शिखर समूहों में जा-जाकर, साधक उसके भी ऊपर विमानों की श्रेणियों एवं अनन्त तेजस्वरूप पर्वत मालाओं को प्राप्त करके, विद्यापाद तथा आनन्दपाद के मध्य (सन्धि) स्थान में पहुँच जाता है। वहाँ आनन्दरूपी नदी के प्रवाह में स्नान करके ज्ञानानन्द वन को प्राप्त करता है। उस स्थान पर शुद्ध बोधानन्दरूपी वन है जहाँ पर लगातार अमृतमय पुष्पों की वर्षा होती रहती है। वह वन परमानन्दरूपी प्रवाहों से संव्याप्त मूर्तिमान परम मंगलों से परमाश्चर्यरूप है। (वह वन) अपार आनन्द सागररूप क्रीड़ानन्द पर्वतों से चारों ओर से सुशोभित है। उसके मध्य में शुद्ध ज्ञानानन्दमय वैकुण्ठ है। हजारों आनन्द प्राचीरों से प्रकाशमान ब्रह्म विद्यापाद वैकुण्ठ यही है। वह अनेकों आनन्दरूप विमान शृंखलाओं से परिपूर्ण, अनन्त बोधरूप विशिष्ट भवनों से चतुर्दिक् निरन्तर आलोकित अनेकों क्रीड़ा मण्डलों वाला, ज्ञानानन्दमय अनेकों छत्र, वितान, चँवर, ध्वजाएँ एवं तोरणों से युक्त सुसज्जित घनीभूत परमानन्द विग्रहरूप नित्य मुक्त सिद्धात्माओं से परिपूर्ण, अनन्त दिव्य प्रकाशरूप पर्वतों का समष्टिरूप असीम अनन्त शुद्ध ज्ञानमय आनन्दावरण अवर्णनीय आनन्दमय ब्रह्मतेज समूह मण्डल, अखण्ड प्रभामण्डलरूप शुद्धानन्द-स्वरूप का विशिष्ट मण्डलरूप विशेष अखण्ड चिद्घन आनन्दस्वरूप है॥ २३॥

एवंविधं बोधानन्दवैकुण्ठमुपासकः प्रविश्य तत्रत्यैः सर्वैरभिपूजितः परमानन्दाचलोपर्यखण्डबोधविमानं प्रज्वलति। तदभ्यन्तरे चिन्मयासनं विराजते॥ २४॥

साधक इस तरह के ज्ञानानन्द वैकुण्ठ में प्रवेश करके वहाँ पर निवास करने वालों के द्वारा अच्छी तरह सम्मानित होता है। परमानन्द पर्वत के ऊपर अखण्ड ज्ञानमय विमान प्रकाशित रहता है। उसके मध्य चिन्मय- आसन विराजित है॥ २४॥

तदुपरि विभात्यखण्डानन्दतेजोमण्डलम्। तदभ्यन्तरे समासीनमादिनारायणं ध्यात्वा प्रदक्षिणनमस्कारान्विधाय विविधोपचारैः सुसंपूज्य पुष्पाञ्जलिं समर्प्य स्तुत्वा स्तोत्रविशेषैः स्वरूपेणावस्थितमुपासकमवलोक्य तमुपासकमादिनारायणः स्वसिंहासने सुसंस्थाप्य तद्वैकुण्ठवासिभिः सर्वैः समन्वितः समस्तमोक्ष साम्राज्यपट्टाभिषेकमुद्दिश्य मन्त्रपूतैः उपासकं आनन्दकलशैरभिषिच्य दिव्यमङ्गलमहावाद्यपुरः सरं विविधोपचारैरभ्यर्च्य मूर्तिमद्भिः सर्वैः स्वचिह्नैरलंकृत्य प्रदक्षिणनमस्कारान्विधाय त्वं ब्रह्मासि अहं ब्रह्मास्मि आवयोरन्तरं न विद्यते त्वमेवाहम् अहमेव त्वम् इत्यभिधायेत्युक्त्वादिनारायणस्तिरोदधे तदेत्युपनिषत्॥ २५॥

उसके ऊपर अखण्ड प्रकाश-मण्डल शोभायमान होता है। उसके अन्दर विराजमान भगवान् आदि-नारायण की प्रदक्षिणा करके नमस्कार और ध्यान करके अनेकों उपचारों से पूजनकर पुष्पाञ्जलि समर्पित करके विशेष प्रकार के स्तोत्रों से साधक स्तुति करता है। उस साधक को अपने स्वरूप (आत्मस्वरूप) अथवा नारायणस्वरूप देखकर भगवान् आदिनारायण उसे अपने सिंहासन पर बिठाकर, उस वैकुण्ठ में निवास करने वालों के साथ सब मिलकर समस्त मोक्ष साम्राज्य के राज तिलक के उद्देश्य से मन्त्रपूरित जल के द्वारा आनन्दरूपी कलशों से उपासक को स्नान कराते हैं एवं दिव्य मंगल महावाद्यों सहित अनेक तरह के उपचारों से उसकी अर्चना करके मूर्तिमान अपने सभी अलंकारों एवं चिह्नों से सुसज्जित करके प्रदक्षिणा नमस्कारपूर्वक कहते हैं कि तुम ब्रह्म हो। मैं ब्रह्म हूँ। हममें और तुममें कोई अन्तर नहीं है। तुम्हीं ''मैं'' हो एवं मैं ही ''तुम'' हूँ अर्थात् तुम हमारा स्वरूप हो हम तुम्हारे स्वरूप हैं। इस तरह बोलकर इस प्रकार उस तत्त्व का बोध करके उसी समय भगवान् आदिनारायण अन्तर्ध्यान हो जाते हैं (यह रहस्य है)॥ २५॥

॥ सप्तमोऽध्यायः ॥

अथोपासकस्तदाज्ञया नित्यं गरुडमारुह्य वैकुण्ठवासिभिः सर्वैः परिवेष्टितो महासुदर्शनं पुरस्कृत्य विष्वक्सेनपरिपालितश्चोपर्युपरि गत्वा ब्रह्मानन्दविभूतिं प्राप्य सर्वत्रावस्थिता-ब्रह्मानन्दमयानन्तवैकुण्ठानवलोक्य निरतिशयानन्दसागरो भूत्वाऽऽत्मारामानानन्दविभूति-पुरुषाननन्तानवलोक्य तान्सर्वानुपचारैः समभ्यर्च्य तैः सर्वैरभिपूजितश्चोपासकस्तत उपर्युपरि गत्वा ब्रह्मानन्दविभूतिं प्राप्यानन्तदिव्यतेजः पर्वतैरलंकृतान्परमानन्दलहरीवनशोभितान् असंख्याकानानन्दसमुद्रानतिक्रम्य विविधविचित्रानन्तपरमतत्त्वविभूतिसमष्टिविशेषान्परम-कौतुकान्ब्रह्मानन्दविभूतिविशेषानतिक्रम्योपासकः परम कौतुकं प्राप॥ १॥

साधक आदिनारायण भगवान् की आज्ञा लेकर नित्य गरुड़ पर आसीन होकर वैकुण्ठ में निवास करने वाले समस्त लोगों से चारों ओर से घिरा हुआ, महासुदर्शन को आगे करके विष्वक्सेन से रक्षित होकर, ऊपर ही ऊपर चलता हुआ ब्रह्मानन्द विभूति को प्राप्त करता है। वहाँ पर सर्वत्र विराजमान ब्रह्मानन्दमय अनन्त वैकुण्ठ का दर्शन करके निरतिशय आनन्द-सागर होकर अनन्त-आत्माराम-आनन्द-विभूतिपुरुषों का दर्शन करके उनका समस्त उपचारों से अर्चन करता है तथा उन सबसे पूजित होकर उपासक उसके ऊपर ही ऊपर जाकर ब्रह्मानन्द विभूति को प्राप्त करता है। फिर अनेकों दिव्य तेजस्वरूप पर्वतों से सुशोभित, परमानन्द तरंग मालिकारूपी वनों से शोभित, असंख्य आनन्द सागरों को लाँघकर, विविध प्रकार की विचित्र-अनन्त-परम- तत्त्व-विभूति समष्टि-स्वरूपों को तथा परम कौतुकरूपी ब्रह्मानन्द विभूति विशेषों को लाँघकर, साधक परम कौतुक (आश्चर्य) को प्राप्त करता है॥ १॥

ततः सुदर्शनवैकुण्ठपुरमाभाति नित्यमङ्गलमनन्तविभवं सहस्रानन्दप्राकार-परिवेष्टितमयुतकुक्ष्युपलक्षितमनन्तोत्कटज्वलदरमण्डलं निरतिशयदिव्यतेजोमण्डलं वृन्दारकपरमानन्दं-शुद्धबुद्धस्वरूपमनन्तानन्दसौदामिनीपरमविलासं निरतिशयपरमानन्दपारावारमनन्तैरानन्दपुरुषैश्चिद्रूपैरधिष्ठितम्॥ २॥

इसके बाद सुदर्शन नाम का वैकुण्ठ प्रकाशित होता है। वह वैकुण्ठ नित्य मंगलमय, सीमारहित वैभव से पूर्ण हजारों आनन्दरूपी प्राचीरों द्वारा परिवेष्टित है। वह दस हजार कक्षों (कमरों) से निर्मित अनन्त तीव्र प्रकाशरूप अरों के मण्डल से पूर्ण निरतिशय दिव्य प्रकाशावरणरूप, देवों को भी परमानन्द देने वाला, शुद्ध ज्ञानमय, अनन्त आनन्दरूप, परम विलासमय विद्युत् के समान प्रकाशित निरतिशय परमानन्द समुद्र एवं अनन्त ज्ञानरूप आनन्दमय पुरुषों द्वारा अधिष्ठित है॥ २॥

तन्मध्ये च सुदर्शनं महाचक्रम्॥ ३॥

उसके बीच में सुदर्शन नामक महाचक्र है॥ ३॥

चरणं पवित्रं विततं पुराणं येन पूतस्तरति दुष्कृतानि। तेन पवित्रेण शुद्धेन पूता अतिपाप्मानमरातिं तरेम॥ ४॥

वह सुदर्शन चक्र शाश्वत, निरन्तर चलने वाला, पवित्र, अति विस्तार वाला तथा पुरातन है, जिससे मनुष्य पवित्र होकर पापों को पार कर जाता है, उस चक्र की शुचिता, शुद्धता एवं परम पावनता के द्वारा निर्मल होकर हम अति पापरूपी शत्रु को पार कर जाएँगे॥ ४॥

लोकस्य द्वारमर्चिमत्पवित्रं ज्योतिष्मद्भ्राजमानं महस्वत्। अमृतस्य धारा बहुधा दोहमानं चरणं नो लोके सुधितां दधातु॥ ५॥

वह गमनशील सुदर्शन चक्र भगवद्धाम (आत्मलोक) का द्वार है, वह परम शुचि, ज्योतिस्वरूप, अति प्रकाशमान ज्योतियों से परिपूर्ण अति तेजस्वी एवं अमृत की अनन्त धाराओं को प्रवाहित करने वाला है, वह चक्र हमें लोक में सद्बुद्धि से पूर्ण करे॥ ५॥

अयुतारज्वलन्तमयुतारसमष्ट्याकारं निरतिशयविक्रमविलासमनन्तदिव्यायुध-दिव्यशक्तिसमष्टिरूपं महाविष्णोरनर्गलप्रवाहविग्रहमयुतायुतकोटियोजनविशाल-मनन्तज्वालाजालैरलंकृतं समस्तदिव्यमङ्गलनिदानमनन्तदिव्यतीर्थानां निज मन्दिरमेवं सुदर्शनं महाचक्रं प्रज्वलति॥ ६॥

वह सुदर्शन चक्र दस हजार अरों वाला प्रकाशित रहता है; वह दस हजार अरों का समष्टि रूप निरतिशय विक्रम विलास (अत्यन्त शक्तिशाली) एवं अनन्त दिव्य आयुधों, दिव्य शक्तियों का समष्टि स्वरूप है। भगवान् महाविष्णु का वह महाचक्र निर्बाध मूर्तिमान एक अरब करोड़ योजन विस्तार वाला अनन्त प्रज्वलित प्रकाश शृंखलाओं से सुशोभित सभी दिव्य मंगलों का आदि कारण, अनन्त दिव्य तीर्थों के निज मंदिर की तरह प्रज्वलित रहता है॥ ६॥

तस्य नाभिमण्डलसंस्थाने उपलक्ष्यते निरतिशयानन्ददिव्यतेजोराशिः। तन्मध्ये च सहस्रारचक्रं प्रज्वलति। तदखण्डदिव्यतेजोमण्डलाकारं परमानन्दसौदामिनीनिचयोज्ज्वलम्॥ ७॥

उसके नाभिमण्डल के स्थान में निरतिशय दिव्य आनन्दमय प्रकाश दिखाई पड़ता है। उसके मध्य में सहस्रार चक्र प्रकाशमान है। वह अखण्ड दिव्य प्रकाशमय मण्डल के आकार वाला एवं परमानन्दरूपी विद्युत् पुञ्ज की तरह प्रकाशित है॥ ७॥

तदभ्यन्तरसंस्थाने षट्शतारचक्रं प्रज्वलति। तच्चामितपरमतेजः परमविहारसंस्थानविशेषं विज्ञानघनस्वरूपम्॥ ८॥

उसके अन्दर वाले भाग में छः सौ अरों का चक्र प्रकाशित है। वह भी अमित परम तेजस्वी परम विहार का स्थान तथा विज्ञानघन--स्वरूप है॥ ८॥

तदन्तराले त्रिशतारचक्रं विभाति। तच्च परमकल्याणविलासविशेष-मनन्तचिदादित्यसमष्ट्याकारम्॥ ९॥

उसके अन्तर्गत तीन सौ अरों का चक्र प्रकाशमान है। वह भी परम कल्याण का विशेष विलासरूप एवं अनन्त शुद्ध ज्ञान--स्वरूप आदित्यों का समष्टिरूप है॥ ९॥

तदभ्यन्तरे शतारचक्रमाभाति। तच्च परमतेजोमण्डलविशेषम्॥ १०॥

उसके भीतर सौ अरों का चक्र प्रकाशित है। वह भी परम तेजोमण्डल स्वरूप है॥ १०॥

तन्मध्येषष्ट्यरचक्रमाभाति। तच्च ब्रह्मतेजः परमविलासविशेषम्॥ ११॥

उसके मध्य में साठ अरों का चक्र प्रकाशमान है। वह भी ब्रह्मतेज का परम विलासरूप है॥ ११॥

तदभ्यन्तरसंस्थाने षट्कोणचक्रं प्रज्वलति। तच्चापरिच्छिन्नानन्तदिव्यतेजोराश्याकारम्॥ १२॥

उसके अन्दर वाले भाग में षट्कोण चक्र प्रकाशित है। वह भी अनन्त अपरिच्छिन्न दिव्य प्रकाशरूप है॥ १२॥

तदभ्यन्तरे महानन्दपदं विभाति। तत्कर्णिकायां सूर्येन्दुवह्निमण्डलानि चिन्मयानि ज्वलन्ति। तत्रोपलक्ष्यते निरतिशय दिव्यतेजोराशिः॥ १३॥

उसके अन्तर्गत महा-आनन्द पद शोभायमान है। उसकी कर्णिकाओं में ज्ञानस्वरूप सूर्य, अग्नि, चन्द्र मण्डल प्रज्वलित है। वहाँ पर निरतिशय दिव्य प्रकाश समूह दिखाई पड़ते हैं॥ १३॥

तदभ्यन्तरसंस्थाने युगपदुदितानन्तकोटिरविप्रकाशः सुदर्शनपुरुषो विराजते। सुदर्शनपुरुषो महाविष्णुरेव॥ १४॥

उसके अंदर वाले भाग में अनन्त कोटि सूर्यों के एक साथ उदित होने वाले प्रकाश के रूप में सुदर्शन पुरुष विराजमान हैं। महाविष्णु की तरह ही सुदर्शन पुरुष हैं। (क्योंकि सुदर्शन पुरुष महाविष्णु के सभी चिह्नों से सुसज्जित हैं।)॥ १४॥

महाविष्णोः समस्तासाधारणचिह्नचिह्नितः। एवमुपासकः सुदर्शनपुरुषं ध्यात्वा विविधोपचारैराराध्य प्रदक्षिणनमस्कारान्विधायोपासकस्तेनाभिपूजितः तदनुज्ञातश्चोपर्युपरि गत्वा परमानन्दमयाननन्तवैकुण्ठानवलोक्योपासकः परमानन्दं प्राप॥ १५॥

साधक महाविष्णु के समस्त असाधारण चिह्नों से चिह्नित सुदर्शन पुरुष का इस प्रकार ध्यान करके विभिन्न तरह के उपचारों से आराधना करके प्रदक्षिणा नमस्कार करता है तथा उनसे भी पूजित होकर उनकी आज्ञा लेकर ऊपर ही ऊपर जाकर परमानन्दमय अनन्त वैकुण्ठ का अवलोकन करके परमानन्द प्राप्त करता है॥ १५॥

तत उपरि विविधविचित्रानन्तचिद्विलासविभूतिविशेषानतिक्रम्यानन्तपरमानन्दविभूति-समष्टिविशेषाननन्तनिरतिशयानन्दसमुद्रानतीत्योपासकः क्रमेणाद्वैतसंस्थानं प्राप॥ १६॥

उसके ऊपर विविध विचित्र अनन्त चिद्विलासरूपी विशेष विभूतियों का अतिक्रमण करके (परे जाकर) अनन्त परमानन्दरूप विशेष विभूति के समष्टि रूप को एवं निरतिशय आनन्द सागरों को पार करके साधक क्रमशः अद्वैत धाम को प्राप्त होता है॥ १६॥

कथमद्वैतसंस्थानम्। अखण्डानन्दस्वरूपमनिर्वाच्यममितबोधसागरममितानन्दसमुद्रं विजातीयविशेषविवर्जितं सजातीयविशेषविशेषितं निरवयवं निराधारं निर्विकारं निरञ्जनमनन्तब्रह्मानन्दसमष्टिकन्दं परमचिद्विलाससमष्ट्याकारं निर्मलं निरवद्यं निराश्रयमतिनिर्मलानन्तकोटिरविप्रकाशैकस्फुलिङ्गमनन्तोपनिषदर्थस्वरूपमखिलप्रमाणातीतं मनोवाचामगोचरं नित्यमुक्तस्वरूपमनाधारमादिमध्यान्तशून्यं कैवल्यं परमं शान्तं सूक्ष्मतरं महतो महत्तरमपरिमितानन्दविशेषं शुद्धबोधानन्दविभूति - विशेषमनन्तानन्दवि-भूतिविशेषसमष्टिरूपमक्षरमनिर्देश्यं कूटस्थमचलं ध्रुवमदिग्देशकालमन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य परिपूर्णं परमयोगिभिर्विमृग्यं देशतः कालतो वस्तुतः परिच्छेदरहितं निरन्तराभिनवं नित्यपरिपूर्णमखण्डानन्दामृतविशेषं शाश्वतं परमं पदं निरतिशयानन्दानन्ततडित्पर्वताकारमद्वितीयं स्वयंप्रकाशमनिशं ज्वलति॥ १७॥

(अब कैवल्य धाम का वर्णन करते हैं।)

कैसा है कैवल्य धाम? अखण्डानन्द स्वरूप, अमित ज्ञान का समुद्र, अनिर्वचनीय, असीम आनन्द का समुद्र, किसी भी प्रकार की बुराई से रहित, समस्त विशेष सजातीय विशेषताओं से विभूषित, अंगरहित, आधाररहित, विकाररहित, निरञ्जन-अनन्त-ब्रह्मानन्द समष्टिपुञ्ज, परम ज्ञानानन्द का समष्टिरूप, मलरहित, निरवद्य, आश्रयरहित, अतिनिर्मल, अनन्त कोटि सूर्यों का प्रकाश जिनके सामने एक चिनगारी की तरह है, अनन्त उपनिषदों के अर्थस्वरूप, समस्त प्रमाणों से परे, मन वाणी से परे नित्य मुक्तस्वरूप है, वह निराधार आदि, मध्य एवं अन्तरहित कैवल्यरूप परमशान्त, सूक्ष्मातिसूक्ष्म, महान् से महानतम, विशेष अनन्त आनन्दरूप शुद्ध ज्ञानमय, विशेष शक्ति से सम्पन्न, अनन्त आनन्द विभूति का समष्टिरूप, अक्षर, अनिर्देश्य, निर्विकार, अचल, ध्रुव, देश, काल एवं दिशारहित तथा वह बाहर-भीतर-सर्वत्र व्याप्त होकर परिपूर्ण है। परम योगियों के द्वारा अन्वेषण करने योग्य, देश की सीमा (सप्त लोकादि), समय-सीमा एवं वस्तु सीमा से परे सदैव नवीन,

सदैव परिपूर्ण, विशेषरूप से अखण्डानन्द-स्वरूप, शाश्वत, परमपद, निरतिशय, आनन्दमय, अनन्त सौदामिनी पर्वताकार, अद्वितीय स्वयं प्रकाशित होकर अहर्निश प्रज्वलित है॥ १७॥

परमानन्दलक्षणापरिच्छिन्नानन्तपरंज्योतिः शाश्वतं शश्वद्विभाति॥ १८॥

जो शाश्वत परमानन्दरूपी अपरिच्छिन्न अनन्त परम प्रकाश है, वह सदैव प्रकाशित रहता है॥ १८॥

तदभ्यन्तरसंस्थाने अमितानन्दचिद्रूपाचलमखण्डपरमानन्दविशेषं बोधानन्दमहोज्ज्वलं नित्यमङ्गलमन्दिरं चिन्मथनाविर्भूतं चित्सारमनन्ताश्चर्यसागरममिततेजोराश्यन्तर्गततेजोविशेषमनन्तानन्दप्रवाहैरलंकृतं निरतिशयानन्दपारावाराकारं निरुपमनित्यनिरवद्यनिरतिशयनिरवधिकतेजोराशिविशेषं निरतिशयानन्दसहस्रप्राकारैरलंकृतं शुद्धबोधसौधावलिविशेषैरलंकृतं चिदानन्दमयानन्ददिव्यारामैः सुशोभितं शश्वदमितपुष्पवृष्टिभिः समन्ततः संततम्॥ १९॥

उसके अन्दर अमित आनन्द चित्-रूपी पर्वत, परम अखण्ड आनन्द विशेष ज्ञानानन्द के द्वारा महोज्ज्वल, नित्य मंगल मंदिर, शुद्ध ज्ञानस्वरूप सागर के मंथन से उत्पन्न विशुद्ध ज्ञान का साररूप, अनन्त आश्चर्यों का समुद्र, अनन्त तेजोराशि के अन्तर्गत विशेष प्रकाशरूप अनन्त आनन्द प्रवाहों से सुशोभित निरतिशय आनन्द के समुद्ररूप, जिनकी कोई उपमा नहीं, शाश्वत, दोषरहित, निरतिशय, सीमारहित, प्रकाश- समूहरूप निरतिशय आनन्दरूपी हजारों चहार-दीवारियों से सुशोभित, शुद्ध ज्ञानमय भवन शृंखलाओं से सुसज्जित, शुद्ध ज्ञानानन्दमय अनन्त दिव्य उपवनों द्वारा शोभायमान, अपार पुरुषों द्वारा निरन्तर होने वाली पुष्प वृष्टि से सर्वत्र व्याप्त लोक है॥ १९॥

तदेव त्रिपाद्विभूतिवैकुण्ठस्थानं तदेव परमकैवल्यम्। तदेवाबाधितपरमतत्त्वम्। तदेवानन्तोपनिषद्विमृग्यम्। तदेव परमयोगिभिर्मुमुक्षुभिः सर्वैराशास्यमानम्। तदेव सद्घनम्। तदेवचिद्घनम्। तदेवानन्दघनम्। तदेव शुद्धबोधघनविशेषमखण्डानन्दब्रह्मचैतन्याधिदेवतास्वरूपम्। सर्वाधिष्ठानमद्वयपरब्रह्मविहारमण्डलं निरतिशयानन्दतेजोमण्डलमद्वैतपरमानन्दलक्षण परंब्रह्मणः परमाधिष्ठानमण्डलं निरतिशयपरमानन्दपरममूर्तिविशेषमण्डलमनन्तपरममूर्तिसमष्टिमण्डलं निरतिशयपरमानन्दलक्षणपरंब्रह्मणः परममूर्तिपरमतत्त्वविलासविशेषमण्डलं - बोधानन्दमयानन्तपरमविलासविभूतिविशेषसमष्टिमण्डलमनन्तचिद्विलासविभूतिविशेषसमष्टिमण्डलमखण्डशुद्धचैतन्यनिजमूर्तिविशेषविग्रहं वाचामगोचरानन्तशुद्धबोधविशेषविग्रहमनन्तानन्दसमुद्रसमष्ट्याकारमनन्तबोधाचलैरनन्तबोधानन्दाचलैरधिष्ठितं निरतिशयानन्दपरममङ्गलविशेषसमष्ट्याकारमखण्डाद्वैतपरमानन्दलक्षणपरंब्रह्मणः परममूर्तिपरमतेजःपुञ्जपिण्डविशेषं चिद्रूपादित्यमण्डलं द्वात्रिंशद्व्यूहभेदैरधिष्ठितम्। व्यूहभेदाश्च केशवादिचतुर्विंशतिः। सुदर्शनादिन्यासमन्त्राः। (सुदर्शनादियन्त्रोद्धारः)। अनन्तगरुडविष्वक्सेनाश्च निरतिशयानन्दश्च॥ २०॥

वह त्रिपाद्विभूति वैकुण्ठ स्थान है। वही परम कैवल्य (परम मुक्त) है। वही बाधारहित परम-तत्त्व है। अनन्त उपनिषदों के द्वारा वही खोज करने योग्य है। सभी परम योगियों एवं मुक्ति की साधना करने वालों के द्वारा वही चाहा जाता है। सत् का घनीभूत रूप भी वही है, चित् का घनीभूत रूप भी वही है। आनन्द का घनीभूत रूप भी वही है। शुद्ध ज्ञानमय पुञ्ज का विशेष रूप एवं अखण्ड आनन्द ब्राह्मी चेतना का अधिदेवता स्वरूप है। सबका आधार जो ब्रह्म अपने आप में अकेला है, उसका क्रीड़ामण्डल निरतिशय आनन्दस्वरूप प्रभामण्डल, अद्वैत परमानन्दरूपी परब्रह्म का परमाधाररूप मण्डल, निरतिशय परमानन्द का परममूर्तरूप मण्डल, अनन्त परम मूर्तियों का समष्टिरूप मण्डल, निरतिशय परमानन्द लक्षण वाले परब्रह्म की परम मूर्तिस्वरूप, परम-तत्त्व का क्रीड़ारूपी मण्डल, ज्ञानानन्दमय अनन्त परम क्रीड़ाओं की शक्तियों का समष्टि मण्डल, अनन्त-शुद्ध-ज्ञान-विहारिणी शक्तियों का समष्टिमण्डल, अखण्ड शुद्ध चैतन्य का निजमूर्ति विग्रह विशेष, अव्यक्त, अनन्त शुद्ध ज्ञानमूर्तिरूप,अनन्त आनन्ददायी सागरों का समष्टिरूप, अनेकों ज्ञानरूपी पहाड़ों एवं अनेक ज्ञानानन्दरूपी पहाड़ों से अधिष्ठित निरतिशय आनन्द तथा श्रेष्ठ मंगलदायक स्वरूपों का समष्टिरूप, अद्वैत, अखण्ड परमानन्द लक्षण वाले परब्रह्म की परममूर्ति के परम प्रकाश पुञ्ज का पिण्डरूप, ज्ञानस्वरूप आदित्य का मण्डलरूप एवं विभिन्न प्रकार के बत्तीस समूहों से अधिष्ठित है। व्यूह भेद कहते हैं- केशव आदि चौबीस तथा सुदर्शन आदि के न्यासमंत्र, सुदर्शन आदि यन्त्रों का उद्धार, अनन्त गरुड़ विश्वक्सेन आदि पार्षद एवं निरतिशय आनन्द स्वरूप भी उसी में हैं॥ २०॥

आनन्दव्यूहमध्ये - सहस्रकोटियोजनायतोन्नतचिन्मयप्रासादं ब्रह्मानन्दमयविमानकोटिभिरतिमङ्गलमनन्तोपनिषदर्थारामजालसंकुलं सामहंसकूजितैरतिशोभितमानन्दमयानन्तशिखरैरलंकृतं - चिदानन्दरस-निर्झरैरभिव्याप्तमखण्डानन्दतेजोराश्यन्तरस्थितमनन्तानन्दाश्चर्यसागरम्॥ २१॥

उस आनन्द व्यूह (समूह) के मध्य में हजार करोड़ योजन विस्तार वाला ऊँचा चिन्मय (शुद्धज्ञानमय) भवन है। वह अति मंगलमय एवं कोटि-कोटि विमानों से युक्त है। वह अनन्त उपनिषदों के अर्थ अर्थात् अनन्त-ज्ञानरूपी उपवन समूहों से व्याप्त है। साम-पाठरूपी कलनाद से वह अति शोभायमान हो रहा है। वह अनन्त आनन्दमय शिखरों से शोभायमान है। चिदानन्द रस के निर्झरों से संव्याप्त अखण्डानन्द प्रकाश के समूह के अन्दर अनन्त आनन्दमय आश्चर्यों का सागर है॥ २१॥

तदभ्यन्तरसंस्थानेऽनन्तकोटिरविप्रकाशातिशयप्रकाशं निरतिशयानन्दलक्षणं प्रणवाख्यं विमानं विराजते। शतकोटिशिखरैरानन्दमयैः समुज्ज्वलति॥ २२॥

उसके अन्दर वाले भाग में अनन्त कोटि सूर्यों के प्रकाश से भी ज्यादा प्रकाशित निरतिशय आनन्दस्वरूप प्रणव नाम का विमान विराजित है, जिसके सौ करोड़ आनन्दमय शिखर प्रकाशित हो रहे हैं॥ २२॥

तदन्तराले बोधानन्दाचलोपर्यष्टाक्षरीमण्डपो विभाति॥ २३॥

उसके भीतरी भाग में बोधानन्द पर्वत पर अष्टाक्षरी मण्डप (अ, इ, उ, ए, ओ, ऐ औ, अं की मण्डप रूप में संघटना) शोभायमान हो रहा है॥ २३॥

तन्मध्ये च चिदानन्दमयवेदिकानन्दवनविभूषिता॥ २४॥

उसके बीच में चिन्मय वेदिका है, जो आनन्दमय वन से अलंकृत है॥ २४॥

तदुपरिज्वलति निरतिशयानन्दतेजोराशिः॥ २५॥

निरतिशयानन्द स्वरूप प्रकाश पुञ्ज उसके ऊपर प्रज्वलित हो रहा है॥ २५॥

तदभ्यन्तरसंस्थानेऽष्टाक्षरीपद्मविभूषितं चिन्मयासनं विराजते॥ २६॥

उसके अन्दर अष्टाक्षरी पद्म (अष्टदल कमल) से अलंकृत चिन्मय आसन विराजमान है॥ २६॥

प्रणवकर्णिकायां सूर्येन्दुवह्निमण्डलानि चिन्मयानि ज्वलन्ति॥ २७॥

उस प्रणव की कर्णिकाओं पर सूर्य, चन्द्र, अग्नि का चिन्मय मण्डल प्रज्वलित हो रहा है॥ २७॥

तत्राखण्डानन्दतेजोराश्यन्तर्गतं परममङ्गलाकारमनन्तासनं विराजते॥ २८॥

अखण्डानन्द प्रकाशपुञ्ज के अन्तर्गत परम मंगल के आकार का अनन्त आसन वहाँ पर विराजमान है॥ २८॥

तस्योपरि च महायन्त्रं प्रज्वलति। निरतिशयब्रह्मानन्दपरममूर्तिमहायन्त्रं समस्तब्रह्मतेजोराशिसमष्टिरूपं चित्स्वरूपं निरञ्जनं परब्रह्मस्वरूपं परब्रह्मणः परमरहस्यकैवल्यं महायन्त्रमयपरमवैकुण्ठनारायणयन्त्रं विजयते॥ २९॥

उसके ऊपर महायन्त्र प्रकाशित है। निरतिशय, ब्रह्मानन्द, परममूर्ति, महायन्त्ररूप वह समस्त ब्रह्म तेजपुञ्जक, समष्टिरूप, निरञ्जन, चित्स्वरूप, परब्रह्मस्वरूप, परब्रह्म का परम रहस्य कैवल्यरूप है, यह नारायण यन्त्र महायन्त्रमय परम वैकुण्ठ का विजयी है॥ २९॥

तत्स्वरूपं कथमिति। देशिकस्तथेति होवाच। आदौ षट्कोणचक्रम् तन्मध्ये षड्दलपद्मम्। तत्कर्णिकायां प्रणव ॐ इति। प्रणवमध्ये नारायणबीजमिति। तत्साध्यगर्भितं मम सर्वाभीष्टसिद्धिं कुरु कुरु स्वाहेति। तत्पद्मदलेषु विष्णुनृसिंहषडक्षरमन्त्रौ ॐ नमो विष्णवे ऐं क्लीं श्रीं ह्रीं क्ष्मौं (क्ष्रौं) फट्। तद्दलकपोलेषु रामकृष्णषडक्षरमन्त्रौ। रां रामाय नमः। क्लीं कृष्णाय नमः। षट्कोणेषु सुदर्शनषडक्षरमन्त्रः। सहस्त्रार हुं फडिति। षट्कोणकपोलेषु प्रणवयुक्तशिवपञ्चाक्षरमन्त्रः। ॐ नमः शिवायेति॥ ३०॥

किस तरह का उसका स्वरूप है? इस तरह शिष्य के पूछने पर गुरु ने कहा— वह इस प्रकार का है, ऐसा कहकर उसका स्वरूप कहते हैं— सर्वप्रथम षट्कोण चक्र बनाकर उसके बीच-बीच में छः पंखुड़ियों का कमल बनाये। उस पद्मकर्णिका पर "ॐ" प्रणव यह लिखे। प्रणव के बीच में नारायण बीज 'अं' ऐसा लिखना चाहिए।

उस बीज मंत्र को साध्य गर्भित अर्थात् यंत्र का पूजन जिस लक्ष्य को लेकर करना है, उसका सूचक **''मम सर्वाभीष्ट सिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा''** इस तरह लिखे। उस कमल की पंखुड़ियों पर विष्णु और नृसिंह के षडक्षर मंत्रों को लिखे। विष्णु का षडक्षर **''ॐ विष्णवे नमः''** यह मन्त्र है, नृसिंह का षडक्षर **''ऐं क्लीं श्रीं ह्रीं क्ष्मौं (क्ष्रों) फट्''** यह मंत्र है। उस दल के कपोलों अर्थात् दो दलों के मध्य में राम, कृष्ण षडक्षर मंत्र **'रां रामाय नमः'** एवं **'क्लीं कृष्णाय नमः'** लिखे। षट्कोण के छः कोणों पर सुदर्शन षडक्षर सहस्त्रार **'हुं फट्'** यह मंत्र लिखना चाहिए। षट्कोणों के कपोलों अर्थात् दो कोनों के बीच प्रणव सहित शिव पञ्चाक्षर **''ॐ नमः शिवाय''** मंत्र लिखना चाहिए ॥ ३० ॥

तद्बहिः प्रणवमालायुक्तं वृत्तम्। वृत्ताद्बहिरष्टदलपद्मम्। तेषु दलेषु नारायणनृसिंहाष्टाक्षरमन्त्रौ। ॐ नमो नारायणाय। जयजय नरसिंह। तद्दलसन्धिषु रामकृष्णश्रीकराष्टाक्षरमन्त्राः। ॐ रामाय हुं फट् स्वाहा। क्लीं दामोदराय नमः। उत्तिष्ठ श्रीकर स्वाहा॥ ३१ ॥

उस षट्कोण चक्र के बाह्य भाग में प्रणव **''ॐ''** को वृत्ताकार में माला की भाँति लिखे। उस वृत्त के बाहर आठ दलों वाला कमल बनाए। उन दलों में नारायण एवं नृसिंह अष्टाक्षर मंत्र लिखे। नारायणाष्टाक्षर मंत्र **''ॐ नमो नारायणाय''** और नृसिंह अष्टाक्षर मंत्र **''जय-जय नरसिंह'' है।** दल की संधियों (बीच के स्थानों) पर राम कृष्ण एवं 'श्री' करके अष्टाक्षर मंत्र लिखना चाहिए। मंत्र इस प्रकार है- **'ॐ रामाय हुं फट् स्वाहा' 'क्लीं दामोदराय नमः' 'उत्तिष्ठ श्रीकर स्वाहा'** ॥ ३१ ॥

तद्बहिः प्रणवमालायुक्तं वृत्तम्। वृत्ताद्बहिर्नवदलपद्मम्। तेषु दलेषु रामकृष्णहयग्रीवनवाक्षरमन्त्राः। ॐ रामचन्द्राय नमः ॐ। क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय क्लीं। (ह्सौं) हयग्रीवाय नमो ह्रौं (ह्सौम्।) तद्दलकपोलेषु दक्षिणामूर्तिनवाक्षरमन्त्रः। ॐ दक्षिणामूर्तिरीश्वरोम्॥ ३२ ॥

उस अष्टदल कमल के बाह्य भाग में माला के आकार में प्रणव को लिखकर वृत्त बना दे। वृत्त के बाहर-बाहर नौ पंखुड़ियों (दलों) में राम, कृष्ण एवं हयग्रीव के नवाक्षर मंत्र लिखना चाहिए। श्रीराम नवाक्षर मंत्र-**''ॐ रामचन्द्राय नमः ॐ''**। श्रीकृष्ण नवाक्षर मंत्र- **'क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय क्लीं'**। श्री हयग्रीव नवाक्षर मंत्र-**ह्सौं हयग्रीवाय नमः ह्सौं।** उन दलों के कपोलों अर्थात् पंखुड़ियों के मध्य में भगवान् दक्षिणामूर्ति का नवाक्षर मंत्र लिखना चाहिए। श्री दक्षिणामूर्ति नवाक्षर मंत्र- **'ॐ दक्षिणामूर्तिरीश्वरोम्'** है ॥ ३२ ॥

तद्बहिर्नारायणबीजयुक्तं वृत्तम्। वृत्ताद्बहिर्दशदलपद्मम्। तेषु दलेषु रामकृष्णदशाक्षरमन्त्रौ। हुं जानकीवल्लभाय स्वाहा। गोपीजनवल्लभाय स्वाहा। तद्दलसन्धिषु नृसिंहमालामन्त्रः। ॐ नमो भगवते श्रीमहानृसिंहाय करालदंष्ट्रवदनाय मम विघ्नान्पच पच स्वाहा॥ ३३ ॥

उसके बाह्य क्षेत्र में श्री नारायण के बीज मंत्र **'ॐ'** का वृत्त बना देना चाहिए। उस नारायण बीज मंत्र के वृत्त के बाहर दस दल का कमल बनाये। उन पंखुड़ियों में श्रीराम एवं श्रीकृष्ण का दशाक्षर मंत्र लिखे। श्रीराम दशाक्षर मंत्र- **हुं जानकी वल्लभाय स्वाहा।** उसमें जहाँ पंखुड़ियों रेखाओं के जोड़ हों, वहाँ नृसिंह माला मंत्र लिखे। नृसिंह माला मंत्र है- **ॐ नमो भगवते श्री महानृसिंहाय कराल दंष्ट्रवदनाय मम विघ्नान्पच-पच स्वाहा** ॥ ३३ ॥

तद्बहिर्नृसिंहैकाक्षरयुक्तं वृत्तम्। क्ष्मौं (क्ष्रौं) इत्येकाक्षरम्। वृत्ताद्बहिर्द्वादशदलपद्मम्। तेषु दलेषु नारायणवासुदेवद्वादशाक्षरमन्त्रौ। ॐ नमो भगवते नारायणाय। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय। तद्दलकपोलेषु महाविष्णुरामकृष्णद्वादशाक्षरमन्त्राश्च। ॐ नमो भगवते महाविष्णवे। ॐ ह्रीं भरताग्रज राम क्लीं स्वाहा। श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय नमः॥ ३४॥

उस वृत्त के बाहर नृसिंह एकाक्षर मंत्र 'क्ष्मौं (क्ष्रौं)' को वृत्ताकार लिखे। वृत्त के बाह्य क्षेत्र में द्वादश दल कमल बनाये। उन दलों (पंखुड़ियों) पर नारायण वासुदेव द्वादशाक्षर मंत्र लिखना चाहिए। नारायण द्वादशाक्षर मंत्र- '**ॐ नमो भगवते नारायणाय**'। वासुदेव द्वादशाक्षर मंत्र '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**'। उन दलों (पंखुड़ियों के कपोलों अर्थात् पंखुड़ियों के मध्य) में महाविष्णु, श्रीराम एवं श्रीकृष्ण द्वादशाक्षर मंत्र लिखना चाहिए। वे मंत्र क्रमशः इस प्रकार हैं- '**ॐ नमो भगवते महाविष्णवे**,' '**ॐ ह्रीं भरताग्रज राम क्लीं स्वाहा**,' '**श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय नमः**'॥ ३४॥

तद्बहिर्जगन्मोहनबीजयुक्तं वृत्तं क्लीमिति। वृत्ताद्बहिश्चतुर्दशदलपद्मम्। तेषु दलेषु लक्ष्मीनारायण-हयग्रीवगोपालदधिवामनमन्त्राश्च। ॐ ह्रीं ह्रीं श्रीं श्रीं लक्ष्मीवासुदेवाय नमः। ॐ नमः सर्वकोटिसर्वविद्याराजाय क्लीं कृष्णाय गोपालचूडामणये स्वाहा। ॐ नमो भगवते दधिवामनाय (ॐ)। तद्दलसंधिष्वन्नपूर्णेश्वरीमन्त्रः। ह्रीं पद्मावत्यन्नपूर्णे माहेश्वरि स्वाहा॥ ३५॥

उस दश दल कमल के बाहर-बाहर वाले क्षेत्र में जगत् को मोहित करने वाले बीज मंत्र '**क्लीं**' को वृत्ताकार लिखना चाहिए। इस वृत्त के बाहर-बाहर चतुर्दश दलों का कमल बनाये। उन कमल के दलों (पंखुड़ियों) में लक्ष्मी नारायण, हयग्रीव, गोपाल एवं दधि वामन के मंत्र लिखने चाहिए। मंत्र क्रमशः ये हैं- '**ॐ ह्रीं ह्रीं श्रीं श्रीं लक्ष्मीवासुदेवाय नमः**' '**ॐ नमः सर्वकोटि सर्वविद्याराजाय**' '**क्लीं कृष्णाय गोपाल चूडामणये स्वाहा**' '**ॐ नमो भगवते दधिवामनाय ॐ**'। उन दलों (पंखुड़ियों) के जोड़ों के स्थानों पर अन्नपूर्णेश्वरी मंत्र लिखना चाहिए। '**ॐ ह्रीं पद्मावत्यन्नपूर्णे माहेश्वरि स्वाहा**' यह अन्नपूर्णेश्वरी मंत्र है॥ ३५॥

तद्बहिः प्रणवमालायुक्तं वृत्तम् वृत्ताद्बहिः षोडशदलपद्मम्। तेषु दलेषु श्रीकृष्णसुदर्शनषोडशाक्षरमन्त्रौ च ॐ नमो भगवते रुक्मिणीवल्लभाय स्वाहा। ॐ नमो भगवते महासुदर्शनाय हुं फट्। तद्दलसंधिषु स्वराः सुदर्शनमालामन्त्रश्च। अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः। सुदर्शनमहाचक्राय दीप्तरूपाय सर्वतो मां रक्ष रक्ष सहस्रार हुं फट् स्वाहा॥ ३६॥

चौदह दलों वाले कमल वृत्त के बाहर प्रणवमाला से युक्त वृत्त बनाना चाहिए। उन दलों में श्रीकृष्ण और सुदर्शन के सोलह अक्षरों वाले मंत्रों को लिखे। श्रीकृष्ण षोडशाक्षर मंत्र- '**ॐ नमो भगवते रुक्मिणी वल्लभाय स्वाहा**' सुदर्शन षोडशाक्षर मंत्र- '**ॐ नमो भगवते महासुदर्शनाय हुं फट्।**' उन दलों के संधि स्थलों में समस्त स्वर एवं सुदर्शन माला मंत्र लिखना चाहिए। सुदर्शन माला मंत्र- '**सुदर्शनमहाचक्राय दीप्तरूपाय सर्वतो मां रक्ष रक्ष सहस्रार हुं फट् स्वाहा**'॥ ३६॥

तद्बहिर्वराहबीजयुक्तं वृत्तम्। तद्भुमिति। वृत्ताद्बहिरष्टादशदलपद्मम्। तेषु दलेषु श्रीकृष्णवामनाष्टादशाक्षरमन्त्रौ। क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजन वल्लभाय स्वाहा। ॐ नमो विष्णवे सुरपतये महाबलाय स्वाहा। तद्दलकपोलेषु गरुडपञ्चाक्षरीमन्त्रो गरुडमालामन्त्रश्च। क्षिप ॐ स्वाहा। ॐ नमः पक्षिराजाय सर्वविषभूतरक्षःकृत्यादिभेदनाय सर्वेष्टसाधकाय स्वाहा॥ ३७॥

वराह बीज का वृत्त उस षोडश दल कमल के बाहर बनाये। उन दलों में श्रीकृष्ण एवं वामन अष्टादशाक्षर मंत्र लिखे। श्रीकृष्ण अष्टादशाक्षर मंत्र "**क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा**" वामन अष्टादशाक्षर मंत्र- '**ॐ नमो विष्णवे सुरपतये महाबलाय स्वाहा**'। उन दलों के कपोलों (पंखुड़ियों) के मध्य गरुड़ पञ्चाक्षर मंत्र एवं गरुड़ माला मन्त्र लिखे, जो क्रमशः इस प्रकार हैं- '**क्षिप ॐ स्वाहा,**' '**ॐ नमः पक्षिराजाय सर्व विषभूतरक्षः कृत्यादिभेदनाय सर्वेष्ट साधकाय स्वाहा**'॥ ३७॥

तद्बहिर्मायाबीजयुक्तं वृत्तम्। वृत्ताद्बहिः पुनरष्टदलपद्मम्। तेषु दलेषु श्रीकृष्णवामनाष्टाक्षरमन्त्रौ। ॐ नमो दामोदराय। ॐ वामनाय नमः ॐ। तद्दलकपोलेषु नीलकण्ठत्र्यक्षरीगरुडपञ्चाक्षरीमन्त्रौ च। प्रें रीं ठः (श्रीकण्ठः)। नमोऽण्डजाय॥ ३८॥

उस अष्टादश दल कमल के बाहर माया बीज '**ह्रीं**' वृत्ताकार में लिखे अर्थात् माया बीज का वृत्त बनाये। उस वृत्त के बाहर पुनः अष्टदल कमल बनाना चाहिए। उन दलों में श्रीकृष्ण अष्टाक्षर मन्त्र- '**ॐ नमो दामोदराय**' एवं वामन अष्टाक्षर मन्त्र- '**ॐ वामनाय नमः ॐ**' लिखना चाहिए। उन दलों के कपोलों (पंखुड़ियों) के संधि स्थानों पर नीलकण्ठ का त्र्यक्षर एवं गरुड़ पञ्चाक्षरी मंत्र लिखना चाहिए। नीलकण्ठ त्र्यक्षर मंत्र- '**प्रें रीं ठः,**'। गरुड़ पञ्चाक्षरी मंत्र- "**नमोऽण्डजाय**" ॥ ३८॥

तद्बहिर्मन्मथबीजयुक्तं वृत्तम्। वृत्ताद्बहिश्चतुर्विंशतिदलपद्मम्। तेषु दलेषु शरणागतनारायणमन्त्रौ नारायणहयग्रीवगायत्रीमन्त्रौ च। श्रीमन्नारायण चरणौ शरणं प्रपद्ये श्रीमते नारायणाय नमः। नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्, वागीश्वराय विद्महे हयग्रीवाय धीमहि। तन्नो हंसः प्रचोदयात्। तद्दलकपोलेषु नृसिंहसुदर्शनब्रह्मगायत्रीमन्त्राश्च। वज्रनखाय विद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि। तन्नो नृसिंहः प्रचोदयात्। सुदर्शनाय विद्महे हेतिराजाय धीमहि॥ तन्नश्चक्रः प्रचोदयात्। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ ३९॥

उस अष्टदल कमल के बाहर मन्मथ (कामदेव) बीज मंत्र '**क्लीं**' से वृत्त बनाना चाहिए। उस क्लीं वृत्त के बाह्य भाग में चौबीस दलों का कमल बनाकर उन दलों में शरणागत मंत्र एवं नारायण मंत्र और नारायण तथा हयग्रीव गायत्री मंत्र लिखना चाहिए। मन्त्र क्रमशः इस प्रकार हैं-'**ॐ श्रीमन्नारायण चरणौ शरणं प्रपद्ये**', '**श्रीमते नारायणाय नमः**', '**नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्**', '**वागीश्वराय विद्महे हयग्रीवाय धीमहि तन्नो हंसः प्रचोदयात्।**'

उस दल के कपोलों (संधि स्थानों) पर नृसिंह गायत्री, सुदर्शन गायत्री एवं ब्रह्म गायत्री मंत्र लिखना चाहिए। मंत्र क्रमशः इसी प्रकार हैं- '**वज्रनखाय विद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि तन्नो नृसिंहः प्रचोदयात्**',

सुदर्शनाय विद्महे हेति राजाय धीमहि तन्नश्चक्रः प्रचोदयात्, 'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्यधीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्' ॥ ३९ ॥

तद्बहिर्हयग्रीवैकाक्षरयुक्तं वृत्तं ह्सौमिति। वृत्ताद्बहिर्द्वात्रिंशद्दलपद्मम्। तेषु दलेषु नृसिंह हयग्रीवानुष्टुभमन्त्रौ उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम्। नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्। ऋग्यजुःसामरूपाय वेदाहरणकर्मणे। प्रणवोद्गीथवपुषे महाश्वशिरसे नमः। तद्दलकपोलेषु रामकृष्णानुष्टुभमन्त्रौ। रामभद्र महेष्वास रघुवीरनृपोत्तम। भो दशास्यान्तकास्माकं रक्षां देहि श्रियं च मे। देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते। देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥ ४० ॥

उस चौबीस दल वाले कमल के बाहर हयग्रीव को एकाक्षर बीज मंत्र "**ह्सौं**" से लिखते हुए चारों ओर वृत्त बनाये। उस वृत्त के बाहर बत्तीस दलों का कमल बनाना चाहिए। उन कमल के दलों (पंखुड़ियों) में नृसिंह तथा हयग्रीव के अनुष्टुप् मंत्रों को लिखना चाहिए। नृसिंह अनुष्टुप् मंत्र-

उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम्। नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्॥

हयग्रीव अनुष्टुप् मन्त्र-

ऋग्यजुः सामरूपाय वेदाहरण कर्मणे। प्रणवोद्गीथवपुषे महाश्वाशिरसे नमः॥

उप दलों के कपोलों (दलों के मध्य) में राम और कृष्ण अनुष्टुप् मन्त्र लिखने चाहिए। राम अनुष्टुप् मन्त्र-

रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम। भो दशास्यान्तकास्माकं रक्षां देहि श्रियं च मे॥

कृष्ण अनुष्टुप् मन्त्र-

देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते। देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥ ४० ॥

तद्बहिः प्रणवसंपुटिताग्निबीजयुक्तं वृत्तम्। ॐ रमोमिति। वृत्ताद्बहिः षट्त्रिंशद्दलपद्मम्। तेषु दलेषु हयग्रीवषट्त्रिंशदक्षरमन्त्रः पुनरष्टत्रिंशदक्षरमन्त्रश्च। हंसः विश्वोत्तीर्णस्वरूपाय चिन्मयानन्दरूपिणे। तुभ्यं नमो हयग्रीव विद्याराजाय विष्णवे। सोहम्। ह्सौं (ह्रौं) ॐ नमो भगवते हयग्रीवाय सर्ववागीश्वरेश्वराय सर्ववेदमयाय सर्वविद्यां मे देहि स्वाहा। तद्दलकपोलेषु प्रणवादिनमोऽन्ताश्चतुर्थ्यन्ताः केशवादिचतुर्विंशतिमन्त्राश्च। अवशिष्टद्वादशस्थानेषु रामकृष्णगायत्रीद्वयवर्ण-चतुष्टयमेकैकस्थले। ॐ केशवाय नमः। ॐ नारायणाय नमः। ॐ माधवाय नमः। ॐ गोविन्दाय नमः। ॐ विष्णवे नमः। ॐ (अं) मधुसूदनाय नमः। ॐ त्रिविक्रमाय नमः। ॐ वामनाय नमः। ॐ श्रीधराय नमः। ॐ हृषीकेशाय नमः। ॐ पद्मनाभाय नमः। ॐ दामोदराय नमः। ॐ संकर्षणाय नमः। ॐ वासुदेवाय नमः। ॐ प्रद्युम्नाय नमः। ॐ अनिरुद्धाय नमः। ॐ पुरुषोत्तमाय नमः। ॐ अधोक्षजाय नमः। ॐ नरसिंहाय नमः। ॐ अच्युताय नमः। ॐ जनार्दनाय नमः। ॐ उपेन्द्राय नमः। ॐ हरये नमः। ॐ श्री कृष्णाय नमः। दाशरथाय विद्महे सीतावल्लभाय धीमहि तन्नो रामः प्रचोदयात्, दामोदराय विद्महे वासुदेवाय धीमहि। तन्नः कृष्णः प्रचोदयात्॥ ४१ ॥

उस वृत्त के बाहर अग्नि- बीज को प्रणव से सम्पुटित ॐ रं ॐ लिखते हुए वृत्त बनाये। उस (सम्पुटित मंत्र के) वृत्त के बाहर छत्तीस दलों का कमल बनाना चाहिए। उन दलों में हयग्रीव का छत्तीस अक्षर का मन्त्र एवं अड़तीस अक्षरों का मंत्र लिखना चाहिए। हयग्रीव के छत्तीस अक्षरों एवं अड़तीस अक्षरों वाले मंत्र क्रमश: इस प्रकार हैं—

''हंस: विश्वोत्तीर्ण स्वरूपाय चिन्मयानन्द रूपिणे।
तुभ्यं नमो हयग्रीव विद्याराजाय विष्णवे– 'सोऽहम्।'
ह्सौं (ह्रौं) ॐ नमो भगवते हयग्रीवाय सर्ववागीश्वरेश्वराय सर्ववेदमयाय सर्व विद्यां मे देहि स्वाहा।''

उन दलों के कपोलों (दलों के मध्य) में भगवान् के केशव आदि चौबीस नामों के आदि में ॐ और अन्त में नम: लगाकर लिखे। शेष बारह स्थानों पर राम एवं कृष्ण के गायत्री मंत्रों के चार- चार अक्षर एक-एक स्थान में क्रम से लिखे। भगवान् के चौबीस नाम मंत्र– **ॐ केशवाय नम: ॐ नारायणाय नम:, ॐ माधवाय नम: .... श्रीकृष्णाय नम:** आदि। ***(मन्त्रों का अवशिष्ट भाग मूल मन्त्र में से देख लें)।***

श्री राम गायत्री– **दाशरथाय विद्महे.......... प्रचोदयात्,**

श्री कृष्ण गायत्री– **दामोदराय विद्महे...........प्रचोदयात्**॥ ४१॥

तद्बहि: प्रणवसंपुटिताङ्कुशबीज युक्तं वृत्तम्। ॐ क्रोमोमिति। तद्बहि: पुनर्वृत्तं तन्मध्ये द्वादशकुक्षिस्थानानि सान्तरालानि। तेषु कौस्तुभवनमालाश्रीवत्ससुदर्शनगरुड- पद्मध्वजानन्तशार्ङ्गगदाशङ्खनन्दकमन्त्रा: प्रणवादिनमोऽन्ताश्चतुर्थ्यन्ता: क्रमेण । ॐ कौस्तुभाय नम:। ॐ वनमालायै नम:। ॐ श्रीवत्साय नम:। ॐ सुदर्शनाय नम:॥ ॐ गरुडाय नम:। ॐ पद्माय नम:। ॐ ध्वजाय नम:। ॐ अनन्ताय नम:। ॐ शार्ङ्गाय नम:। ॐ गदायै नम:। ॐ शङ्खाय नम:। ॐ नन्दकाय नम:। तदन्तरालेषु- ॐ विष्वक्सेनाय नम:। ॐ आचक्राय स्वाहा। ॐ विचक्राय स्वाहा। ॐ सुचक्राय स्वाहा। ॐ धीचक्राय स्वाहा। ॐ संचक्राय स्वाहा। ॐ ज्वाला चक्राय स्वाहा। ॐ क्रुद्धोल्काय स्वाहा। ॐ महोल्काय स्वाहा। ॐ वीर्योल्काय स्वाहा। ॐ विद्युल्काय स्वाहा। ॐ सहस्रोल्काय स्वाहा। इति प्रणवादिमन्त्रा:॥ ४२॥

उसके बाहर अंकुश बीज को प्रणव से सम्पुटित करके '**ॐ क्रों ॐ**' लिखते हुए वृत्त बनाना चाहिए। उस वृत्त के बाहर जगह छोड़कर पुन: एक वृत्त बनाये। उन दोनों वृत्तों के मध्य भाग में थोड़े-थोड़े अन्तर पर द्वादश कोष्ठ (वृत्त) बनाये। उन कोष्ठों में कौस्तुभ, वनमाला, श्रीवत्स, सुदर्शन, गरुड़, पद्म, ध्वज, अनन्त, शार्ङ्ग, गदा, शंख और नन्द, मन्त्रों के आदि में प्रणव तथा अन्त में चतुर्थी विभक्ति लगाकर क्रमश: लिखना चाहिए। वे मंत्र इस प्रकार हैं– **ॐ कौस्तुभाय नम:, ... ॐ नन्दकाय नम:**। उन कोष्ठों के बीच में जो स्थान छोड़ा गया है, उसमें आदि में प्रणव लगाकर इन मंत्रों को लिखना चाहिए **ॐ विष्वक्सेनाय नम:, ॐ आचक्राय स्वाहा,................. ॐ सहस्रोल्काय स्वाहा** ॥ ४२॥

तद्बहि: प्रणवसंपुटितगरुडपञ्चाक्षरयुक्तं वृत्तम्। ॐ क्षिप ॐ स्वाहा ॐ। तच्च द्वादशवज्रै: सान्तरालैरलंकृतम् तेषु वज्रेषु- ॐ पद्मनिधये नम:। ॐ महापद्मनिधये नम:। ॐ गरुडनिधये

नमः। ॐ शङ्खनिधये नमः। ॐ मकरनिधये नमः। ॐ कच्छपनिधये नमः। ॐ विद्यानिधये नमः। ॐ परमानन्द निधये नमः। ॐ मोक्षनिधये नमः। ॐ लक्ष्मीनिधये नमः। ॐ ब्रह्मनिधये नमः। ॐ श्रीमुकुन्दनिधये नमः। ॐ वैकुण्ठ निधये नमः। तत्संधिस्थानेषु - ॐ विद्याकल्पकतरवे नमः। ॐ आनन्दकल्पकतरवे नमः। ॐ ब्रह्मकल्पकतरवे नमः। ॐ मुक्तिकल्पकतरवे नमः। ॐ अमृतकल्पकतरवे नमः। ॐ बोधकल्पकतरवे नमः। ॐ विभूतिकल्पकतरवे नमः। ॐ वैकुण्ठकल्पकतरवे नमः। ॐ वेद कल्पकतरवे नमः। ॐ योग कल्पकतरवे नमः। ॐ यज्ञकल्पकतरवे नमः। ॐ पद्मकल्पकतरवे नमः। तच्च शिवगायत्रीपरब्रह्ममन्त्राणां वर्णैर्वृत्ताकारेण संवेष्ट्य– तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्। श्रीमन्नारायणो ज्योतिरात्मा नारायणः परः। नारायणपरं ब्रह्म नारायण नमोऽस्तु ते॥ ४३॥

उसके बाहर गरुड़ पञ्चाक्षर मंत्र को प्रणव से सम्पुटित करके लिखते हुए वृत्त बनाना चाहिए। मंत्र इस प्रकार है- '**ॐ क्षिप ॐ स्वाहा ॐ**'। उन दोनों वृत्तों के बीच वाले स्थान में एक दूसरे के बीच में अन्तर छोड़ते हुए द्वादश वज्र बनाना चाहिए। उन वज्रों के कोनों पर इन मन्त्रों को लिखना चाहिए- **ॐ पद्मनिधये नमः........ ॐ वैकुण्ठ निधये नमः**। उन वज्रों के संधि के स्थानों पर इन मन्त्रों को लिखे- **ॐ विद्याकल्पकतरवे नमः .... ॐ पद्म कल्पकतरवे नमः**। उसके बाद उस वृत्त के बाहर शिव गायत्री एवं परब्रह्म मंत्र के अक्षरों से वृत्त बनाते हुए घेरे (घेरा बनाये)। अर्थात् शिव गायत्री एवं परब्रह्म मंत्र के अक्षरों से वृत्त बना दे। मन्त्र इस प्रकार हैं– शिव गायत्री- **ॐ तत्पुरुषाय.............. रुद्रः प्रचोदयात्।**

परब्रह्म मंत्र- **श्री मन्नारायणो .... नारायण नमोऽस्तु ते॥ ४३॥**

तद्बहिः प्रणव संपुटितश्रीबीजयुक्तं वृत्तम्। ॐ श्रीमोमिति। वृत्ताद्बहिश्चत्वाङ्कुरशद्दलपद्मम्। तेषु दलेषु व्याहृतिशिरः संपुटितवेदगायत्रीपादचतुष्टय सूर्याष्टाक्षरीमन्त्रौ। ॐ भूः। ॐ भुवः। ॐ सुवः। ॐ महः। ॐ जनः। ॐ तपः। ॐ सत्यम्। ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं। ॐ भर्गो देवस्य धीमहि। ॐ धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐ परोरजसेऽसावदोम्। ॐ आपोज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः सुवरोम्। ॐ घृणिः सूर्य आदित्यः। तद्दलसंधिषु प्रणव श्रीबीजसंपुटितनारायणबीजं सर्वत्र। ॐ श्रीमं श्रीमोम्॥ ४४॥

उस वृत्त के बाहर प्रणव द्वारा सम्पुटित श्री बीज '**ॐ श्री ॐ**' मंत्र लिखते हुए बनाना चाहिए। चालीस दलों वाला कमल उस वृत्त के बाहर बनाये। उन कमल दलों पर व्याहृति तथा शीर्ष भाग से सम्पुटित करके चारों पाद सहित वेद गायत्री एवं सूर्याष्टाक्षर मन्त्र लिखना चाहिए वे मन्त्र इस प्रकार हैं- **ॐ भूः। ॐ भुवः। ॐ सुवः .... ब्रह्म भूर्भुवः सुवरोम्**। सूर्याष्टाक्षर मन्त्र- '**ॐ घृणिः सूर्य आदित्यः।**' उन दलों के संधि के स्थानों पर प्रणव एवं श्री बीज से सम्पुटित नारायण बीज मन्त्र सब कहीं लिखे। मन्त्र इस प्रकार है- **ॐ श्रीमं श्रीमोम्॥ ४४॥**

तद्बहिरष्टशूलाङ्कितभूचक्रम्। चक्रान्तश्चतुर्दिक्षु हंसः सोऽहंमन्त्रौ प्रणवसंपुटितौ नारायणास्त्रमन्त्रश्च। ॐ हंसः सोऽहम्। ॐ नमो नारायणाय हुं फट्॥ ४५॥

उसके बाहर आठ शूलों को अंकित करके भूचक्र बनाना चाहिए। उस चक्र के अन्दर प्रणव से सम्पुटित हंस सोऽहम् मंत्र एवं नारायणास्त्र मन्त्र को चारों दिशाओं में लिखना चाहिए। मन्त्र इस प्रकार होगा '**ॐ हंसः सोऽहम् ॐ, ॐ नमोनारायणाय हुं फट्**'॥ ४५॥

तद्बहिः प्रणवमालासंयुक्तं वृत्तम्। वृत्ताद्बहिः। पञ्चाशद्दलपद्मं। तेषु दलेषु मातृकापञ्चाशदक्षरमाला लकारवर्ज्या। तद्दलसंधिषु प्रणवश्रीबीज संपुटितरामकृष्णमालामन्त्रौ। ॐ श्रीमों नमो भगवते रघुनन्दनाय रक्षोघ्नविशदाय मधुरप्रसन्नवदनायामिततेजसे बलाय रामाय विष्णवे नमः श्रीमों, ॐ श्रीं ॐ नमः कृष्णाय देवकीपुत्राय वासुदेवाय निगलच्छेदनाय सर्वलोकाधिपतये सर्वजगन्मोहनाय विष्णवे कामितार्थदाय स्वाहा श्रीमोम्।।४६॥

उस भूचक्र से बाहर प्रणव को मालाकार लिखते हुए वृत्त बनाना चाहिए। उस वृत्त के बाहर पचास दलों वाला कमल बनाकर ''**ॐ**'' के अलावा मातृका के शेष सभी पचास अक्षर उन दलों में लिखे। मातृका के अक्षर अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ ॡ, ए, ऐ ओ, औ, अं, अः, क, ख, ग, घ, ङ च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, ष, स, ह, क्ष। उन कमल के दलों की संधियों पर प्रणव एवं श्री बीज से सम्पुटित करके राम और कृष्ण के माला मन्त्र लिखना चाहिए। राम माला मन्त्र- **ॐ श्रीमों नमो भवगते रघनुन्दनाय रक्षोघ्न विशदाय .... रामाय विष्णवे नमः श्रीमों**। कृष्णमाला मन्त्र- **ॐ श्रीं ॐ नमः कृष्णाय देवकी..........कामितार्थदाय स्वाहा श्रीमोम्**॥ ४६॥

तद्बहिरष्टशूलाङ्कितभूचक्रम्। तेषु प्रणवसंपुटितमहानीलकण्ठमन्त्रवर्णानि। ॐ मों नमो नीलकण्ठाय ॐ। शूलाग्रेषु लोकपालमन्त्राः प्रणवादिनमोन्ताश्चतुर्थ्यन्ताः क्रमेण। ॐ इन्द्राय नमः। ॐ अग्नये नमः। ॐ यमाय नमः। ॐ निर्ऋतये नमः। ॐ वरुणाय नमः। ॐ वायवे नमः। ॐ सोमाय नमः। ॐ ईशानाय नमः॥ ४७॥

उस कमल दल के बाहर आठ शूलों से अंकित करके एक और भूचक्र बनाना चाहिए। प्रणव से सम्पुटित महानीलकण्ठ के मंत्र के अक्षरों को क्रमशः उन शूलों पर लिखे, नीलकण्ठ मन्त्र- **ॐ ॐ नमो नीलकण्ठाय ॐ**। लोकपालों के मंत्र के आदि में प्रणव एवं अन्त में नमः लगाकर शूलों के अग्रभाग पर क्रमशः लिखे। मन्त्र इस प्रकार होंगे- **ॐ इन्द्राय नमः .... ॐ ईशानाय नमः**॥ ४७॥

ॐ तद्बहिः प्रणवमालायुक्तं वृत्तत्रयम्। तद्बहिर्भूपुरचतुष्टयं चतुर्द्वारयुतं चक्रकोणचतुष्टयमहावज्रविभूषितम्। तेषु वज्रेषु प्रणवश्रीबीज संपुटितामृतबीजद्वयम्। ॐ श्रीं ठं वं श्रीमोमिति। बहिर्भूपुरवीथ्याम्। ॐ आधारशक्त्यै नमः। ॐ मूलप्रकृत्यै नमः। ॐ आदि कूर्माय नमः। ॐ अनन्ताय नमः। ॐ पृथिव्यै नमः। मध्यभूपुरवीथ्याम्-ॐ क्षीरसमुद्राय नमः। ॐ रत्नद्वीपाय नमः। ॐ मणिमण्डपाय नमः। ॐ श्वेतच्छत्राय नमः। ॐ कल्पकवृक्षाय नमः। ॐ रत्नसिंहासनाय नमः। प्रथमभूपुरवीथ्याम् धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्याधर्माज्ञानावैराग्यानैश्वर्य-

सत्त्वरजस्तमोमायाविद्यानन्तपद्माः प्रणवादिनमोन्ताश्चतुर्थ्यन्ताः क्रमेण। बाह्यवृत्तवीथ्यां विमलोत्कर्षिणीज्ञानाक्रियायोगाप्रह्वीसत्येशानाः प्रणवादिनमोऽन्ताश्चतुर्थ्यन्ताः क्रमेण। अन्तर्वृत्तवीथ्याम्-ॐ अनुग्रहायै नमः। ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगयोगपीठात्मने नमः। वृत्तावकाशेषुबीजं प्राणं च शक्तिं च दृष्टिं वश्यादिकं तथा। मन्त्रयन्त्राख्यगायत्रीप्राणस्थापनमेव च। भूतदिक्पालबीजानि यन्त्रस्याङ्गानि वै दश। मूलमन्त्रमालामन्त्रकवचदिग्बन्धनमन्त्राश्च॥ ४८॥

उसके बाहर तीन वृत्त **ॐ** को मालाकार लिखते हुए बनाये। उस मालाकार वृत्त के बाहर चार भूपुर चार द्वारों से युक्त करके बनाये, जिसमें महावज्र को चक्र के चारों कोणों पर सुशोभित करे (लिखे) प्रणव एवं श्रीबीज से सम्पुटित दो अमृत बीज **ॐ श्रीं ठं वं श्रीं ॐ,** उन वज्रों में लिखे। उसके बाहर भूपुर की पंक्ति में इन मन्त्रों को लिखना चाहिए-- **ओमाधार शक्त्यैनमः...........ॐ पृथिव्यै नमः।** । बीच के भूपुर के मार्ग में इन मंत्रों को लिखे- **ॐ क्षीर समुद्राय नमः .... ॐ रत्न सिंहासनाय नमः**। पहली भूपुर वाली पंक्ति में आदि में प्रणव एवं अन्त में नमः लगाकर चतुर्थी विभक्ति लगाकर धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अविद्या, अवैराग्य, अनैश्वर्य, सत्त्व, रज, तम, माया, विद्या, अनन्त तथा पद्म के मन्त्र लिखना चाहिए। मन्त्रों के रूप इस प्रकार बनेंगे- **ॐ धर्माय नमः** ....आदि । बाहर वाले वृत्त की वीथी (पंक्ति) में आदि में प्रणव, अन्त में नमः लगाकर चतुर्थी विभक्ति युक्त विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशाना नाम मन्त्र लिखे। मन्त्र इस प्रकार बनेंगे- **ॐ विमलायै नमः** ....आदि। अन्दर वाले वृत्त की वीथी में- **ओमनुग्रहायै नमः, ॐ नमो भगवते......... पीठात्मने नमः** मन्त्र लिखे। वृत्त के मध्य खाली जगहों में मन्त्रों के बीज, प्राण, शक्ति, दृष्टि, वश्य इत्यादि तथा मन्त्र-यंत्रों के नाम, गायत्री प्राण-प्रतिष्ठा, भूतशुद्धि एवं दिग्पालों के बीज-यंत्र के इन दस अंगों को लिखा जाता है, इसके अतिरिक्त मूल मंत्र, माला मंत्र, कवच और दिग्बन्धन के मंत्रों को भी दिया जाता है॥ ४८॥

एवं विधमेतद्यन्त्रं महामन्त्रमयं योगधीरान्तैः परममन्त्रैरलंकृतं षोडशोपचारैरभ्यर्चितं जपहोमादिना साधितमेतद्यन्त्रं शुद्धब्रह्मतेजोमयं सर्वाभयंकरं समस्तदुरितक्षयकरं सर्वाभीष्टसंपादकं सायुज्यमुक्तिप्रदमेतत्परमवैकुण्ठमहानारायणयन्त्रं प्रज्वलति॥४९॥

इस प्रकार निर्मित यह यन्त्र महायन्त्रमय है। ज्ञान योग के द्वारा प्रकाशित अन्तःकरण वाले महापुरुषों द्वारा परम मंत्रों से सुशोभित, षोडशोपचार से पूजित, जप होमादि के द्वारा सिद्ध किया गया यन्त्र, शुद्ध ब्रह्म तेजोमय समस्त प्रकार के भयों को नष्ट करके अभय प्रदान करने वाला, सब प्रकार के पापों से मुक्त करने वाला, सब प्रकार के अभीष्ट प्रदान करने वाला एवं सायुज्य-मुक्ति प्रदायक है। यह परम वैकुण्ठ महानारायण यंत्र सदैव प्रकाशित है॥ ४९॥

तस्योपरि च निरतिशयानन्दतेजोराश्यभ्यन्तरसमासीनं वाचामगोचरानन्दतेजोराश्याकारं चित्साराविर्भूतानन्दविग्रहं बोधानन्दस्वरूपं निरतिशयसौन्दर्य-पारावारं तुरीयस्वरूपं तुरीयातीतं चाद्वैतपरमानन्दम् निरन्तरातितुरीयनिरतिशयसौन्दर्यानन्द - पारावारं लावण्यवाहिनीकल्लोलतटिद्भासुरं दिव्यमङ्गलविग्रहं मूर्तिमद्भिः परममङ्गलैरुपसेव्यमानं

चिदानन्दमयैरनन्तकोटिरविप्रकाशैरनन्तभूषणैरलंकृतं सुदर्शनपाञ्चजन्यपद्मगदासिशार्ङ्गमुसलपरिघाद्यैश्चिन्मयैरनेकायुधगणैर्मूर्तिमद्भिः सुसेवितम्। श्रीवत्सकौस्तुभवनमालाङ्कितवक्षसं ब्रह्मकल्पवनामृतपुष्पवृष्टिभिः सन्ततमानन्दं ब्रह्मानन्दरसनिर्भरैरसंख्यैरतिमङ्गलं शेषायुतफणाजालविपुलच्छत्रशोभितं तत्फणामण्डलोदर्चिर्मणिद्योतितविग्रहं तदङ्गकान्तिनिर्झरैस्ततं निरतिशयब्रह्मगन्धस्वरूपं निरतिशयानन्दब्रह्मगन्धविशेषाकारमनन्तब्रह्मगन्धाकारसमष्टिविशेषमनन्तानन्दतुलसीमाल्यैरभिनवं चिदानन्दमयानन्तपुष्पमाल्यैर्विराजमानं तेजः प्रवाहतरङ्गतत्परम्पराभिर्ज्वलन्तं निरतिशयानन्दं कान्तिविशेषावर्तैरभितोऽनिशं प्रज्वलन्तं बोधानन्दमयानन्तधूपदीपावलिभिरतिशोभितं निरतिशियानन्दचामरविशेषैः परिसेवितं निरन्तरनिरुपमनिरतिशयोत्कटज्ञानानन्दानंतगुच्छफलैरलंकृतं चिन्मयानन्ददिव्यविमानच्छत्रध्वजराजिभिर्विराजमानं परममङ्गलानन्तदिव्यतेजोभिर्ज्वलन्तमनिशं वाचामगोचरमनन्ततेजोराश्यन्तर्गतमर्धमात्रात्मकं तुर्यं ध्वन्यात्मकं तुरीयातीतमवाच्यं नादबिन्दुकलाध्यात्मस्वरूपं चेत्याद्यनन्ताकारेणावस्थितं निर्गुणं निष्क्रियं निर्मलं निरवद्यं निरञ्जनं निराकारं निराश्रयं निरतिशयाद्वैतपरमानन्दलक्षणमादिनारायणं ध्यायेदित्युपनिषत्॥ ५०॥

आदिनारायण का ध्यान उस सुदर्शन यन्त्र के ऊपर भी करना चाहिए। वे भगवान् निरतिशयानन्द प्रकाशपुञ्ज अन्दर विराजमान, वाणी से परे आनन्दमय प्रकाशपुञ्ज हैं। वे ज्ञान के सार से प्रकट आनंद विग्रह रूप ज्ञानानन्द स्वरूप हैं। निरतिशय सौन्दर्य सागर, तुरीयस्वरूप, तुरीयातीत एवं अद्वैत परमानन्दमय हैं। सदैव तुरीयातीतनिरतिशय सौन्दर्य तथा आनन्द के पारावार, सुन्दरता की नदी की लहरों की तरंगों से तरंगित, विद्युत् की शोभा से प्रकाशित--सुशोभित हैं। वे दिव्य मंगल विग्रह के रूप में मूर्तिमान परम मंगलों द्वारा सेवित चिदानन्दमय अनन्त कोटि सूर्यों के प्रकाश के समान प्रकाशित, अनन्त आभूषणों से सुशोभित हैं। सुदर्शन पाञ्चजन्य, पद्म कौमोदकी गदा,सार्ङ्ग धनुष, मुसल- परिघ, (लोहे की स्याम मूसलाकार जड़ी हुई लाठी) नन्दकखड्ग आदि अनेक चिन्मय मूर्तिमान आयुधों द्वारा सुसेवित हैं। श्रीवत्स कौस्तुभ, वनमाला से उनका वक्ष:स्थल सुशोभित है। वे ब्रह्मकल्प वनों के अमृत पुष्पों की वृष्टि से सतत आनन्दित, ब्रह्मानन्द रस के अनन्त झरनों से अति मंगलमय हैं। शेषनाग के दस हजार फण समूहों के विशाल छत्र से सुशोभित हैं तथा उनका श्रीविग्रह उन फणों के मण्डल में स्थित दिव्य मणियों से विशेष प्रकाशित हो रहा है एवं शेषनाग के अंगों से निकलने वाले प्रकाशरूपी निर्झरों से व्याप्त है। वे निरतिशय ब्रह्मगन्धरूप एवं निरतिशयानन्द ब्रह्मगन्ध का विशेष स्वरूप, अनन्त ब्रह्म गंधाकार के समष्टि विशेष हैं। वे अनन्त आनन्दरूप तुलसी की मालाओं से नित्य अभिनवरूप हैं। उनके श्रीविग्रह पर चिदानन्दमय अनन्त पुष्पों की मालाएँ विराजमान हैं। प्रकाशमय प्रवाह की तरंगों के निरंतर प्रवाह से प्रकाशित निरतिशय अनन्त विशेष प्रकार के सुन्दर आवरणों से सदैव चारों तरफ प्रकाशित हैं। निरतिशय आनन्दमय चँवरों से परिसेवित, बोधानन्दमय अनन्त धूप एवं दीपकों की आरतियों से अति सुशोभित हैं। सदैव उपमा रहित निरतिशय उच्चज्ञानानन्दरूप अनेक फलों के गुच्छों से सुसज्जित हैं। वे सदैव परम मंगलकारी अनन्त दिव्य प्रकाश-पुञ्जों से प्रकाशित हैं। वे वाणी से परे अनन्त प्रकाशपुञ्ज के भीतर, अर्धमात्रा-स्वरूप तुरीय, अनाहत ध्वनि-स्वरूप, तुरीय से भी परे, अवर्णनीय एवं नाद बिन्दु कला तथा अध्यात्म--स्वरूप आदि अनेक रूपों में

स्थित, गुणरहित,मलरहित, दोषरहित, क्रियारहित, निरवद्य, निरञ्जन, आकाररहित, आश्रयविहीन, निरतिशय, अद्वैत, परमानन्द- स्वरूप आदिनारायण का ध्यान करना चाहिए॥ ५०॥

॥ अष्टमोऽध्यायः ॥

ततः पितामहः परिपृच्छति भगवन्तं महाविष्णुं भगवञ्छुद्धाद्वैतपरमानन्द लक्षणपरब्रह्म-णस्तव कथं विरुद्धवैकुण्ठप्रासादप्राकारविमानाद्यनन्तवस्तुभेदः॥ १॥

तब भगवान् महाविष्णु से ब्रह्माजी ने प्रश्न किया, हे भगवन्! आप द्वैतरहित शुद्ध परमानन्दमय ब्रह्म हैं। फिर आपके विपरीत वैकुण्ठ, भवन, प्राचीरें, विमान आदि की तरह अनेक वस्तुओं के रूप में आपका वर्णन हुआ है। यह भेद कैसे है ?॥ १॥

सत्यमेवोक्तमिति भगवान्महाविष्णुः परिहरति। यथा शुद्धसुवर्णस्य कटकमुकुटाङ्गदादिभेदः। यथा समुद्र सलिलस्य स्थूलसूक्ष्मतरङ्गफेनबुद्बुदकरकलवण-पाषाणाद्यनन्तवस्तुभेदः। यथा भूमेः पर्वतवृक्षतृणगुल्मलताद्यनन्तवस्तुभेदः। तथैवाद्वैतपरमानन्दलक्षणपरब्रह्मणो मम सर्वाद्वैतमुपपन्नं भवत्येव। मत्स्वरूपमेव सर्वं मद्व्यतिरिक्तमणुमात्रं न विद्यते॥ २॥

भगवान् महाविष्णु ने कहा— तुम सत्य कहते हो और यह कहते हुए शंका का निराकरण करते हैं— जिस प्रकार शुद्ध सोने से कड़े, मुकुट, बाजूबन्द आदि भेद अर्थात् आकार परिवर्तन से सोने की ऐक्यता में कोई भेद नहीं होता है; जिस प्रकार समुद्र में उठने वाली छोटी-बड़ी तरंगें, बुलबुले, फेन, ओले, नमक, बर्फ आदि अनेक प्रकार के वस्तुभेद होने पर भी जल की एकता में कोई बाधा नहीं पड़ती; जिस प्रकार भूमि से होने वाले पर्वत, वृक्ष, तृण, झाड़ियाँ, लताएँ आदि अनेक तरह के भेद होते हैं; परन्तु उससे मिट्टी के एकत्व में कोई बाधा नहीं होती, उसी प्रकार मुझ अद्वैत परमानन्द स्वरूप परब्रह्म का यह सब (जो ऊपर वर्णित है) अद्वैत रूप ही सिद्ध है अर्थात् यह जो भी कहा गया है, वह मेरे द्वारा ही उत्पन्न होने से सभी मेरे ही रूप हैं। मुझसे अलग होकर के यहाँ एक अणुमात्र भी विद्यमान नहीं है॥ २॥

पुनः पितामहः परिपृच्छति। भगवन् परमवैकुण्ठ एव परममोक्षः। परममोक्षस्त्वेक एव श्रूयते सर्वत्र। कथमनन्तवैकुण्ठश्चानन्तानन्दसमुद्रादयश्चानन्तमूर्तयः सन्तीति॥ ३॥

पुनः पितामह ब्रह्मा जी ने प्रश्न किया— भगवन्! आपने जिसे परम वैकुण्ठ कहा है क्या वही परम मोक्ष (परम धाम) है ? समस्त शास्त्रों में एक ही परम मोक्ष कहा गया है, फिर आपने जो अनन्त मूर्तियाँ, अनन्त आनन्द सागरादि एवं अनन्त वैकुण्ठ कहा है, वह कैसे है ? ॥ ३॥

तथेति होवाच भगवान् महाविष्णुः एकस्मिन्नविद्यापादेऽनन्तकोटिब्रह्माण्डानि सावरणानि श्रूयन्ते। तस्मिन्नेकस्मिन्नण्डे बहवो लोकाश्च बहवो वैकुण्ठाश्चानन्तविभूतयश्च सन्त्येव। सर्वाण्डेष्वनन्तलोकाश्चानन्तवैकुण्ठाः सन्तीति सर्वेषां खल्वभिमतम्। पादत्रयेऽपि किं वक्तव्यं निरतिशयानन्दाविर्भावो मोक्ष इति मोक्षलक्षणं पादत्रये वर्तते। तस्मात्पादत्रयं परममोक्षः। पादत्रयं परमवैकुण्ठः। पादत्रयं परमकैवल्यमिति। ततः शुद्धचिदानन्दब्रह्म-विलासानन्दाश्चानन्तपरमानन्दविभूतयश्चानन्तवैकुण्ठाश्चानन्तपरमानन्दसमुद्रादयः सन्त्येव॥ ४॥

भगवान् महाविष्णु ने कहा— तुम सत्य कहते हो और यह कहते हुए शंका का निराकरण करते हुए बोले— अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड अपने आवरणों के सहित एक ही अविद्या पाद में सुने जाते हैं अर्थात् अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड एक ही अविद्यापाद में होने से उनमें किसी प्रकार का भेद नहीं है। वैसे ही अनेकों लोक, अनेकों विभूतियाँ और अनेकों वैकुण्ठ एक ही अण्ड में भी हैं। सभी को शास्त्रों एवं आप्तजनों ने यह माना है कि अनन्त लोक एवं अनन्त वैकुण्ठ समस्त ब्रह्माण्डों में हैं। यह कथन एक अविद्यापाद के लिए है, तो तीनों पादों के बारे में भी यही समझना चाहिए,उसमें (अलग से) क्या कहना है? निरतिशय आनन्द का उद्‌भव ही मोक्ष है। तीनों पादों में मोक्ष का यह लक्षण कहा गया है, इसलिए तीनों पाद मोक्षधाम, परम वैकुण्ठ एवं परम कैवल्य हैं। वहाँ पर शुद्ध चिदानन्द ब्रह्म के विहार के रूप में आनन्द— अनन्त परमानन्दरूपी ऐश्वर्य, अनन्त वैकुण्ठ एवं अनन्त परमानन्द सागरादि हैं। (यह सब परमात्मा की विलास लीला है)॥ ४॥

उपासकस्ततोऽभ्येत्यैवंविधं नारायणं ध्यात्वा प्रदक्षिणनमस्कारान्विधाय विविधोपचारैरभ्यर्च्य निरतिशयाद्वैतपरमानन्दलक्षणो भूत्वा तदग्रे सावधानेनोपविश्याद्वैतयोगमास्थाय सर्वाद्वैतपरमानन्दलक्षणाखण्डामिततेजोराश्याकारं विभाव्योपासकः स्वयं शुद्धबोधानन्दमयामृतनिरतिशयानन्दतेजोराश्याकारो भूत्वा महावाक्यार्थमनुस्मरन् ब्रह्माहमस्मि अहमस्मि ब्रह्माहमस्मियोऽहमस्मि ब्रह्माहमस्मि अहमेवाहं मां जुहोमि स्वाहा। अहं ब्रह्मेति भावनया यथा परमतेजोमहानदीप्रवाहपरमतेजः पारावारे प्रविशति। यथा परमतेजःपारावारतरङ्गाः परमतेजःपारावारे प्रविशन्ति। तथैव सच्चिदानन्दात्मोपासकः सर्वपरिपूर्णाद्वैतपरमानन्दलक्षणे परब्रह्मणि नारायणे मयि सच्चिदानन्दात्मकोऽहमजोऽहं परिपूर्णोऽहमस्मीति प्रविवेश। तत उपासको निस्तरङ्गाद्वैतापारनिरतिशयसच्चिदानन्दसमुद्रो बभूव॥ ५॥

वहाँ (पूर्व वर्णित महाविष्णु के पास) पहुँचकर उपासक इस तरह के भगवान् नारायण का ध्यान एवं प्रदक्षिणा करके उन्हें नमस्कार करता है और तरह-तरह के उपचारों से उनकी पूजा करके वह निरतिशय अद्वैत परमानन्द रूप को प्राप्त कर लेता है। सावधान होकर, उनके सामने बैठकर, अद्वैत योग का सहारा लेकर अर्थात् अद्वैत योग के द्वारा सर्वाद्वैत परमानन्दरूप, अखण्ड, असीम, प्रकाश- पुञ्ज रूप की विशिष्ट प्रकार से भावना करके उपासक (साधक) अपने आप शुद्ध- ज्ञानानन्दमय- अमृतस्वरूप और निरतिशय आनन्दरूप, प्रकाशपुञ्ज होकर महावाक्यों के अर्थों का स्मरण करता है कि ब्रह्म मैं ही हूँ, मैं ही हूँ, ब्रह्म मैं ही हूँ, जो भी मैं हूँ, ब्रह्म मैं ही हूँ, मैं ही मैं हूँ, अहं भाव का हवन करता हूँ, वह अहं भस्म हो गया, मैं ब्रह्म स्वरूप हो गया, इस भावना के

द्वारा जिस प्रकार परम प्रकाशमय महानदी प्रवाहित होकर परम प्रकाशमय समुद्र में प्रवेश करती है, जिस प्रकार परम प्रकाशरूपी सागर की तरंगें पुन: उसी परम प्रकाशमय सागर में ही प्रविष्ट हो जाती हैं, उसी तरह सत्, चित्, आनन्दरूप हो करके उपासक सब तरह से परिपूर्ण, द्वैतरहित, परमानन्द-स्वरूप परब्रह्म मुझ नारायण के अन्तर्गत "मैं सच्चिदानंद-स्वरूप हूँ, मैं जन्म रहित हूँ, मैं परिपूर्ण हूँ, इस तरह प्रवेश कर जाता है। तब साधक तरङ्गरहित, द्वैतरहित, असीम, निरतिशय, सच्चिदानन्द- सागर हो जाता है॥ ५ ॥

यस्त्वनेन मार्गेण सम्यगाचरति स नारायणो भवत्यसंशयमेव। अनेन मार्गेण सर्वे मुनयः सिद्धिं गताः। असंख्याताः परमयोगिनश्च सिद्धिं गताः॥ ६ ॥

इस तरह के मार्ग के द्वारा जो सम्यक् रूप से आचरण अर्थात् साधना करता है, वह नारायणरूप ही हो जाता है, ऐसा निश्चित जानना चाहिए। समस्त मुनिगणों (साधक-सिद्धगण) ने इसी मार्ग का अवलम्बन लेकर सिद्धि प्राप्त की है। इसी प्रकार साधना के मार्ग का अवलम्बन लेकर असंख्य परमयोगी सिद्धि तक पहुँचे हैं॥ ६ ॥

ततः शिष्यो गुरुं परिपृच्छति। भगवन् सालम्बनिरालम्बयोगौ कथमिति॥ ७॥

इस उपदेश का श्रवण करके गुरु से शिष्य प्रश्न करता है— भगवन्! आलम्ब के सहित और आलम्ब रहित योग कैसे होते हैं?॥ ७ ॥

सालम्बस्तु करचरणादिमूर्तिविशिष्टं मण्डलाद्यालम्बनं सालम्बयोगः। निरालम्बस्तु समस्तनामरूपकर्मातिदूरतया सर्वकामाद्यन्तःकरणवृत्तिसाक्षितया तदालम्बनशून्यतया च भावनं निरालम्बयोगः॥ ८ ॥

गुरु ने कहा— जिसमें साधना के लिए चरण, मूर्ति आदि विशेष प्रक्रिया या ज्योति मण्डल आदि को आधार बनाकर ध्यान किया जाता है, उसे सालम्ब अर्थात् आधार-सहित योग कहते हैं। जिसमें समस्त प्रकार के नाम, रूप एवं कर्म को दूर से ही त्यागकर, सब प्रकार की आकांक्षाओं सहित अन्त:करण की समस्त वृत्तियों के साक्षी भाव से, उसके आलम्बन से अलग रहकर भावना की जाती है, इस भावनारहित स्थिति को निरालम्ब-योग कहते हैं॥ ८ ॥

अथ च निरालम्बयोगाधिकारी कीदृशो भवति॥ ९ ॥

तब इस निरालम्ब योग का अधिकारी साधक कैसा होता है?॥ ९ ॥

अमानित्वादिलक्षणोपलक्षितो यः पुरुषः स एव निरालम्बयोगाधिकारी॥ १० ॥

जो साधक मान-अपमान से परे हो तथा ऐसे ही ज्ञान के लक्षणों से युक्त हो, वह निरालम्ब योग का अधिकारी होता है॥ १० ॥

कार्यः कश्चिदस्ति। तस्मात्सर्वेषामधिकारिणामनधिकारिणां भक्तियोग एव प्रशस्यते। भक्तियोगो निरुपद्रवः। भक्तियोगान्मुक्तिः। बुद्धिमतामनायासेनाचिरादेव तत्त्वज्ञानं भवति॥ ११ ॥

ऐसे कोई-कोई अधिकारी साधक होते हैं। इस कारण भक्तियोग समस्त अधिकारियों एवं अनधिकारियों

के लिए श्रेष्ठ बताया गया है। भक्तियोग में किसी प्रकार की विघ्न-बाधा नहीं होती। भक्तियोग का आश्रय लेने वाला मुक्ति का अधिकारी होता है, उसे मुक्ति प्राप्त होती है। भक्तजनों को बहुत शीघ्र अनायास ही तत्त्वज्ञान प्राप्त हो जाता है॥ ११॥

तत्कथमिति। भक्तवत्सलः स्वयमेव सर्वेभ्यो मोक्षविघ्नेभ्यो भक्तिनिष्ठान् सर्वान्परिपालयति। सर्वाभीष्टान्प्रयच्छति। मोक्षं दापयति चतुर्मुखादीनां सर्वेषामपि विना विष्णुभक्त्या कल्पकोटिभिर्मोक्षो न विद्यते। कारणेन विना कार्यं नोदेति। भक्त्या विना ब्रह्मज्ञानं कदापि न जायते। तस्मात्त्वमपि सर्वोपायान्परित्यज्य भक्तिमाश्रय। भक्तिनिष्ठो भव। भक्त्या सर्वसिद्धयः सिध्यन्ति। भक्त्याऽसाध्यं न किंचिदस्ति॥ १२॥

(प्रश्न) वह तत्त्वज्ञान बिना परिश्रम के अविलम्ब कैसे प्राप्त हो जाता है? (उत्तर) भक्ति में लगे हुए भक्तों के मुक्ति के रास्ते की सभी प्रकार की विघ्न-बाधाएँ स्वयं भक्तवत्सल भगवान् दूर करके उसकी रक्षा करते हैं। वे भक्त के समस्त अभीष्टों को देते हैं। यद्यपि भक्त की कामना नहीं होती, फिर भी भगवान् मुक्ति दिलाते हैं। इसी प्रकार ब्रह्मादि देवताओं के लिए भी समझना चाहिए, क्योंकि बिना विष्णु भक्ति के समस्त देवता भी करोड़ों कल्पों में भी मुक्त नहीं हो सकते। क्योंकि बिना कारण के कार्य नहीं होता, इसलिए जो भक्ति रहित है, उसे ब्रह्मज्ञान कदापि नहीं हो सकता। इस कारण समस्त उपायों का परित्याग करके तुम भी भक्ति का आश्रय ग्रहण करो। भक्ति में निष्ठा रखो। भक्ति करने से समस्त प्रकार की सिद्धियाँ स्वतः प्राप्त हो जाती हैं। भक्ति के द्वारा भक्त को सब कुछ प्राप्त हो सकता है, कुछ भी असम्भव नहीं है॥ १२॥

एवंविधं गुरूपदेशमाकर्ण्य सर्वं परमतत्त्वरहस्यमवबुध्य सर्वसंशयान्विधूय क्षिप्रमेव मोक्षं साधयामीति निश्चित्य ततः शिष्यः समुत्थाय प्रदक्षिण नमस्कारं कृत्वा गुरुभ्यो गुरुपूजां विधाय गुर्वनुज्ञया क्रमेण भक्तिनिष्ठो भूत्वा भक्त्यतिशयेन पक्कं विज्ञानं प्राप्य तस्मादनायासेन शिष्यः क्षिप्रमेव साक्षान्नारायणो बभूवेत्युपनिषत्॥ १३॥

इस तरह गुरु के उपदेश द्वारा परम-तत्त्व के समस्त रहस्यों को समझकर सभी शंकाओं को दूर किया और ऐसा निश्चय कर लिया कि 'मुक्ति को शीघ्र ही प्राप्त कर लूँगा', तब वहाँ से उठकर गुरुदेव की प्रदक्षिणा करके, नमस्कार करके गुरु की पूजा की। गुरु का ही आदेश लेकर शिष्य ने क्रमशः भक्तिनिष्ठ होकर भक्ति की परिपक्कावस्था प्राप्त करके परिपक्क विज्ञान को प्राप्त हुआ। उसके द्वारा शिष्य अनायास ही शीघ्र साक्षात् नारायण के स्वरूप को प्राप्त हो गया॥ १३॥

ततः प्रोवाच भगवान् महाविष्णुश्चतुर्मुखमवलोक्य ब्रह्मन् परमतत्त्वरहस्यं ते सर्वं कथितम्। तत्स्मरणमात्रेण मोक्षो भवति तदनुष्ठानेन सर्वमविदितं विदितं भवति। यत्स्वरूपज्ञानिनः सर्वमविदितं विदितं भवति। तत्सर्वं परमरहस्यं कथितम्॥ १४॥

तब इस सम्पूर्ण उपनिषद्-रूपी उपाख्यान को सुनाने के बाद भगवान् महाविष्णु ने चतुर्मुख ब्रह्मा की ओर देखकर कहा— ब्रह्मा जी! समस्त परम-तत्त्व के रहस्यों को मैंने तुमसे कहा। इस रहस्य के मात्र स्मरण करने से ही मुक्ति प्राप्त हो जाती है। मात्र उसके अनुष्ठान करने से ही जो कुछ अज्ञात है, वह ज्ञात हो जाता है। उस समस्त परम रहस्य को हमने तुमको बतला दिया॥ १४॥

गुरुः क इति। गुरुः साक्षादादिनारायणः पुरुषः स आदिनारायणोऽहमेव। तस्मान्मामेकं शरणं व्रज। मद्भक्तिनिष्ठो भव। मदीयोपासनां कुरु। मामेव प्राप्स्यसि। मद्व्यतिरिक्तं सर्वं बाधितं। मद्व्यतिरिक्तमबाधितं न किंचिदस्ति। निरतिशयानन्दाद्वितीयोऽहमेव। सर्वपरिपूर्णोऽहमेव। सर्वाश्रयोऽहमेव। वाचामगोचरनिराकारपरब्रह्मस्वरूपोऽहमेव। मद्व्यतिरिक्तमणुमात्रं न विद्यते॥ १५॥

ब्रह्मा जी प्रश्न करते हैं कि गुरु कौन है? भगवान् आदिनारायण ने कहा— साक्षात् आदिनारायण पुरुष ही गुरु हैं। मैं ही वह आदिनारायण हूँ। इसलिए मेरी शरण में आ जाओ। मेरी भक्ति में निष्ठा वाले बनो। मेरी उपासना करो। इस तरह मुझे प्राप्त कर लोगे। मेरे अतिरिक्त सभी कुछ विघ्न बाधाओं से युक्त है। मेरे लिए सब कुछ अबाधित है अर्थात् सर्वत्र मेरी सत्ता है। एकमेव निरतिशय आनन्दरूप मैं ही हूँ। मैं ही सब प्रकार से परिपूर्ण हूँ। सबका आश्रयदाता मैं ही हूँ। मैं वाणी द्वारा न जानने योग्य, आकाररहित परब्रह्मस्वरूप हूँ। किञ्चिन्मात्र भी मुझसे अलग नहीं है॥ १५॥

इत्येवं महाविष्णोः परमिममुपदेशं लब्ध्वा पितामहः परमानन्दं प्राप॥ १६॥

इस प्रकार पितामह ब्रह्मा जी ने भगवान् महाविष्णु के पूरे उपदेश का श्रवण कर परम आनन्द प्राप्त किया॥ १६॥

विष्णोः कराभिमर्शनेन दिव्यज्ञानं प्राप्य पितामहस्ततः समुत्थ प्रदक्षिणनमस्कारान्विधाय विविधोपचारैर्महाविष्णुं प्रपूज्य प्राञ्जलिर्भूत्वा विनयेनोपसंगम्य भगवन् भक्तिनिष्ठां मे प्रयच्छ। त्वदभिन्नं मां परिपालय कृपालय॥ १७॥

इसके पश्चात् पितामह ब्रह्मा जी ने भगवान् महाविष्णु का कर-स्पर्श प्राप्त करके दिव्यज्ञान प्राप्त किया तथा उठकर प्रदक्षिणा नमस्कार करके भगवान् महाविष्णु का अनेक प्रकार के उपचारों से पूजन किया। पुनः विनयपूर्वक बोले कि मुझे भक्ति-निष्ठा प्रदान करने की कृपा करें। मैं आपका ही हूँ, आपसे अभिन्न हूँ अलग नहीं हूँ, हे कृपा के आलय! मेरा हर तरह से पालन करें॥ १७॥

तथैव साधुसाध्विति साधुप्रशंसापूर्वकं महाविष्णुः प्रोवाच मदुपासकः सर्वोत्कृष्टः स भवति। मदुपासनया सर्वमङ्गलानि भवन्ति। मदुपासनया सर्वं जयति। मदुपासकः सर्ववन्द्यो भवति मदीयोपासकस्यासाध्यं न किंचिदस्ति। सर्वे बन्धाः प्रविनश्यन्ति सद्वृत्तमिव सर्वे देवास्तं सेवन्ते। महाश्रेयांसि च सेवन्ते। मदुपासकस्तस्मान्निरतिशयाद्वैतपरमानन्दलक्षणं परब्रह्म भवति। यो वै मुमुक्षुरनेनं मार्गेण सम्यगाचरति स परमानन्दलक्षणपरब्रह्म भवति॥ १८॥

(तब) भगवान् महाविष्णु ने कहा— 'ऐसा ही हो' और साधु! साधु! कहकर ब्रह्मा जी की बड़ी प्रशंसा करते हुए बोले— मेरी उपासना करने वाला साधक सर्वोत्कृष्ट हो जाता है। मेरी उपासना करने से साधक के सभी कार्य मंगलमय हो जाते हैं। मेरी उपासना करने पर साधक सर्वत्र विजयी होता है। मेरी उपासना करने वाले साधक की सभी वन्दना करते हैं। मेरी उपासना करने वाले के लिए कुछ भी असाध्य नहीं होता। उसके समस्त बन्धन पूर्णरूपेण समाप्त हो जाते हैं। जिस प्रकार लोग सदाचारी व्यक्ति की सेवा करते हैं, उसी प्रकार सभी देवता उसकी सेवा करते हैं। समस्त महाश्रेयस् उसकी सेवा करते हैं अर्थात् वह समस्त महाश्रेयों का अधिकारी हो

जाता है। मेरी उपासना करने वाला साधक उस उपासना के द्वारा निरतिशय द्वैतरहित परम आनन्द स्वरूप परब्रह्म हो जाता है। मुक्ति की इच्छा रखने वाला जो साधक सम्यक् आचरण करते हुए साधना करता है, वह परमानन्द स्वरूप परब्रह्म हो जाता है॥ १८॥

यस्तु परमतत्त्वरहस्याथर्वणमहानारायणोपनिषदमधीते स सर्वेभ्यः पापेभ्यो मुक्तो भवति। ज्ञानाज्ञानकृतेभ्यः पातकेभ्यो मुक्तो भवति। महापातकेभ्यः पूतो भवति। रहस्यकृतप्रकाशकृतचिरकालात्यन्तकृतेभ्यस्तेभ्यः सर्वेभ्यः पापेभ्यो मुक्तो भवति। स सकललोकाञ्जयति। स सकलमन्त्रजपनिष्ठो भवति। स सकलवेदान्तरहस्याधिगतपरमार्थज्ञो भवति। स सकलभोगभुग्भवति। स सकलयोगविद्भवति। स सकलजगत्परिपालको भवति। सोऽद्वैतपरमानन्दलक्षणं परब्रह्म भवति॥ १९॥

इस परमतत्त्व रहस्य आथर्वण महानारायणोपनिषद् का जो भी अध्ययन करता है, वह सभी पापों से अलग हो जाता है। उसके द्वारा जाने- अनजाने में जो भी पाप होते हैं, उन सभी पापों से वह मुक्त हो जाता है। महापापों से मुक्त होकर पवित्र हो जाता है। रहस्यपूर्ण ढंग से, स्पष्ट रूप से किये हुए अथवा चिरपुरातन काल में किए हुए समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। वह समस्त लोकों का विजेता होता है। समस्त मन्त्रों के जप में उसकी निष्ठा हो जाती है। समस्त वेदान्त के रहस्य (निष्कर्ष) को समझकर वह परमार्थ का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। सब कुछ जानकर वह समस्त भोगों के रसों का अनुभव प्राप्त कर लेता है अर्थात् सब भोगों का भोक्ता हो जाता है। वह समस्त योगों का जानकार हो जाता है। वह समस्त जगत् का पालनकर्ता हो जाता है। वह साधक द्वैतरहित परम- आनन्द का स्वरूप परब्रह्म हो जाता है॥ १९॥

इदं परमतत्त्वरहस्यं न वाच्यं गुरुभक्तिविहीनाय। न चाशुश्रूषवे वाच्यम्। न तपोविहीनाय नास्तिकाय। न दाम्भिकाय मद्भक्तिविहीनाय। मात्सर्याङ्कितनवे न वाच्यम्। न वाच्यं मदसूयापरायकृतघ्नाय॥ २०॥

जिसमें गुरुभक्ति न हो, ऐसे व्यक्ति को यह परम तत्त्व का रहस्य नहीं कहना चाहिए। जो इसको सुनने की इच्छा न रखता हो, उससे भी नहीं कहना चाहिए। जो आस्तिक और तपस्वी न हो, उसे भी नहीं बताना चाहिए। जो दम्भी मेरी भक्ति से रहित हो, उससे भी नहीं कहना चाहिए। जिस व्यक्ति में मत्सर हो, उसे भी नहीं बतलाना चाहिए। मेरी निन्दा करने वाला एवं जो कृतघ्न हो, उससे भी नहीं कहना चाहिए॥ २०॥

इदं परमरहस्यं यो मद्भक्तेष्वभिधास्यति। मद्भक्तिनिष्ठो भूत्वा मामेव प्राप्स्यति॥ २१॥

जो व्यक्ति मेरे भक्त को इस परम रहस्य को बतायेगा, वह मेरी भक्ति में निष्ठा रखने वाला होकर मुझे ही प्राप्त कर लेगा॥ २१॥

आवयोर्य इमं संवादमध्येष्यति। स नरो ब्रह्मनिष्ठो भवति॥ २२॥

हम दोनों के संवाद का जो अध्ययन-मनन करेगा, वह साधक ब्रह्म में निष्ठा वाला हो जायेगा॥ २२॥

श्रद्धावाननसूयुः शृणुयात्पठति वा य इमं संवादमावयोः स पुरुषोमत्सायुज्यमेति॥ २३॥

जो श्रद्धालु भक्त दोषदृष्टि से रहित होकर हम दोनों के इस संवाद को सुनेगा अथवा पढ़ेगा, वह व्यक्ति मेरी सायुज्य-मुक्ति को प्राप्त कर लेगा॥ २३॥

ततो महाविष्णुस्तिरोदधे। ततो ब्रह्मा स्वस्थानं जगामेत्युपनिषत्॥ २४॥

तब भगवान् महाविष्णु इतना कहकर अन्तर्ध्यान हो गये। इसके बाद पितामह ब्रह्मा अपने लोक को चले गये (यह रहस्य है)॥ २४॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः............ इति शान्तिः॥

॥ इत्याथर्वणीयत्रिपादविभूतिमहानारायणोपनिषत् समाप्ता ॥ ८ ॥

॥ त्रिपुरातापिन्युपनिषद्॥

॥ शान्तिपाठः ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः .... इति शान्तिः ॥ (द्रष्टव्य- अथर्वशिखोपनिषद्)

॥ अथ प्रथमोपनिषत् ॥

अथैतस्मिन्नन्तरे भगवान्प्राजापत्यं वैष्णवं विलयकारणं रूपमाश्रित्य त्रिपुराऽभिधा भगवतीत्येवमादिशक्त्या भूर्भुवः स्वस्त्रीणि स्वर्गभूपातालानि त्रिपुराणि हरमायाऽऽत्मकेन ह्रीङ्कारेण हृल्लेखाख्या भगवती त्रिकूटावसाने निलये विलये धाम्नि महसा घोरेण व्याप्नोति। सैवेयं भगवती त्रिपुरेति व्यापठ्यते॥ १ ॥

हरिः ॐ ॥ अब इसी बीच में भगवान् विष्णु-प्रजापति के विलयकारण रूप को ग्रहण करके त्रिपुराख्या भगवतीरूप हो गये। इस प्रकार आदि शक्ति से भूः भुवः स्वः अर्थात् स्वर्ग पृथ्वी एवं पाताल इन तीन पुरों की रचना की। हरमायात्मक ह्रींकार से हृल्लेखा भगवती, त्रिकूट के अवसान पर (अन्त में) विलय आवासधाम में घोर तेज के साथ व्याप्त रहती है (प्रकट होती है।) वही भगवती त्रिपुरा परिभाषित होती है॥ १ ॥

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् परो रजसेऽसावदोम्॥ २ ॥ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः। स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः॥ ३ ॥ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥ ४॥ शताक्षरी परमा विद्या त्रयीमयी साष्टार्णा त्रिपुरा परमेश्वरी। आद्यानि चत्वारि पदानि परब्रह्मविकासीनि। द्वितीयानि शक्त्याख्यानि। तृतीयानि शैवानि॥५॥ तत्र लोका वेदाः शास्त्राणि पुराणानि धर्माणि वै चिकित्सितानि ज्योतींषि शिवशक्तियोगादित्येवं घटना व्यापठ्यते॥ ६ ॥

यह शताक्षरी विद्या वेदत्रयीमयी है, यही अष्टवर्ण सहित (१०८ वर्ण वाली) परमेश्वरी त्रिपुरा परमविद्या है। [इस अष्टोत्तरशताक्षरी (१०८ अक्षरों वाली) मन्त्र के अनुष्ठान से त्रिपुरा महाशक्ति प्रसन्न होती हैं।] इस विद्या के आदिम चार पद (तत्सवितुरेण्यं[१]....) परब्रह्म को प्रकट करते हैं। द्वितीय चार पद (जातवेदसे[२]...) शक्ति-स्वरूप हैं। तृतीय चार पद (त्र्यम्बकं यजामहे[३]......) शिवात्मक हैं। ऐसी घटना बताई जाती है कि शिवशक्ति के योग से ही ये लोक, वेद, शास्त्र, पुराण, धर्म, चिकित्सा, ज्योतिष आदि उद्भूत हुए हैं॥ २-६ ॥

[गायत्री मन्त्र के चारों पादों में जिस वरेण्य तेज का वर्णन है, वह अलिङ्ग और सर्वलिङ्ग है। बिना शक्ति के बुद्धि को प्रेरित करना असम्भव है, इसलिए मन्त्रस्थ तात्पर्य शक्ति ही है। शक्ति के बिना सृष्टि, स्थिति, संहार भी असम्भव है। अतः शक्ति की सर्वविध आराधना करनी चाहिए।]

[१- तत्सवितुर्वरेण्यम्- प्रथम पद (पाद), भर्गोदेवस्यधीमहि- द्वितीय पद, धियो यो नः प्रचोदयात्- तृतीय पद, परोरजसेऽसावदोम्- चतुर्थ पद,।
२- जातवेदसे सुनवामसोमम्- प्रथम पद, अरातीयतो निदहाति वेदः- द्वितीय पद, स नः पर्षदति दुर्गाणि- तृतीय पद, विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः- चतुर्थ पद ।
३- त्र्यम्बकं यजामहे- प्रथम पद, सुगन्धिं पुष्टि वर्धनम्- द्वितीय पद, उर्वारुकमिव बन्धनात्-तृतीय पद, मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्- चतुर्थ पद- ।]

अथैतस्य परं गह्वरं व्याख्यास्यामो महामनुसमुद्भवं तदिति। ब्रह्म शाश्वतम्। परो भगवान्निर्लक्षणो निरञ्जनो निरुपाधिराधिरहितो देवः। उन्मीलते पश्यति विकासते चैतन्यभावं कामयत इति। स एको देवः शिवरूपी दृश्यत्वेन विकासते यतिषु यज्ञेषु योगिषु कामयते। कामं जायते। स एष निरञ्जनोऽकामत्वेनोज्जृम्भते। अकचटतपयशान्सृजते। तस्मादीश्वरः कामोऽभिधीयते। तत्परिभाषया कामः ककारं व्याप्नोति। काम एवेदं तत्तदिति ककारो गृह्यते। तस्मात्तत्पदार्थ इति य एवं वेद॥ ७॥

अब इसके परम गह्वर की व्याख्या करेंगे। यह प्रकरण महामनु से उद्‌भूत हुआ है। ब्रह्म ही सनातन है। निर्लक्षण, निरञ्जन, निरुपाधिक आधिरहित देव ही श्रेष्ठ भगवान् है। वही उन्मीलित होता है, देखता है, विकसित होता है, चैतन्य-भाव की इच्छा करता है। वह एक ही शिवस्वरूप देव दृश्य होने से संन्यासियों में, यज्ञों में, योगियों में विकसित होता है, कामना करता है। इच्छानुरूप प्रकट हो जाता है। वही यह निरञ्जन देव अकाम रूप में प्रचण्ड होता है। वही सम्पूर्ण स्वर-व्यंजनों की सृष्टि करता है। इसी कारण से ईश्वर काम कहा जाता है। उसी की परिभाषा से काम ककार में व्याप्त रहता है। यह वह , वह सब काम ही तो है, अतएव काम से ककार का ही ग्रहण होता है। इसी से तत्पद का अर्थ होता है, जो इस प्रकार जानता है, वह मुनि ईश्वरीय शक्तियों से परिपूर्ण हो जाता है॥ ७॥

सवितुर्वरेण्यमिति षूङ् प्राणिप्रसवे सविता प्राणिनः सूते प्रसूते शक्तिः सूते॥ ८॥

सवितुर्वरेण्यं इति षूङ् प्राणिप्रसवे धातु से सविता पद सिद्ध होता है, जो प्राणियों का प्रसव करता है अर्थात् शक्ति का प्रसव करता है॥ ८॥

त्रिपुरा शक्तिराद्येयं त्रिपुरा परमेश्वरी। महाकुण्डलिनी देवी जातवेदसमण्डलम्॥ ९॥ योऽधीते सर्वं व्याप्यते। त्रिकोणशक्तिरेकारेण महाभागेन प्रसूते। तस्मादेकार एव गृह्यते॥ १०॥

यह आद्यशक्ति त्रिपुरा ही है, जो जगत् का प्रसव करती है। यही परमेश्वरी महाकुण्डलिनी शक्ति है। जो जातवेदस मण्डल का अध्ययन करता है, वह सब में व्याप्त हो जाता है। त्रिकोणशक्ति महाभाग-एकार से ही प्रसव करती है, इसलिए एकार ही ग्रहण किया जाता है॥ ९-१०॥

वरेण्यं श्रेष्ठं भजनीयमक्षरं नमस्कार्यम्। तस्माद्वरेण्यमेकाराक्षरं गृह्यत इति य एवं वेद॥११॥

वरेण्यं अर्थात् श्रेष्ठ, श्रेष्ठ अर्थात् भजन योग्य अक्षर ही वन्दनीय है। इसी से वरेण्य (श्रेष्ठ) एकाराक्षर ही ग्रहण किया जाता है। जो इस प्रकार जानता है, वह ईश्वरीय श्रेष्ठता से सम्पन्न हो जाता है॥ ११॥

भर्गो देवस्य धीमहीत्येवं व्याख्यास्यामः। धकारो धारणा। धियैव धार्यते भगवान्परमेश्वरः। भर्गो देवो मध्यवर्ति तुरीयमक्षरं साक्षात्तुरीयं सर्वं सर्वान्तर्भूतम्। तुरीयाक्षरमीकारं पदानां मध्यवर्तीत्येवं व्याख्यातं भर्गोरूपं व्याचक्षते। तस्माद्भर्गो देवस्य धीत्येवमीकाराक्षरं गृह्यते ॥१२॥

अब 'भर्गो देवस्य धीमहि' इसकी व्याख्या करेंगे। धकार अर्थात् धारणा। धी के द्वारा ही परमेश्वर भगवान् धारण किया जाता है। भर्गो देव ही मध्यवर्ती तुरीय अक्षर है। साक्षात् तुरीय ही सर्वान्तर्भूत है, (यही) सब कुछ है। भर्गो रूप की व्याख्या इस प्रकार की गई है कि पदों का मध्यवर्ती तुरीय अक्षर ईकार है। अतएव 'भर्गो देवस्य धीमहि' पद से तुरीय अक्षर ईकार का ही ग्रहण किया गया है॥ १२॥

महीत्यस्य व्याख्यानं महत्त्वं जडत्वं काठिन्यं विद्यते यस्मिन्नक्षरेतन्महि लकारः परंधाम। काठिन्याढ्यं ससागरं सपर्वतं ससप्तद्वीपं सकाननमुज्ज्वलद्रूपं मण्डलेवोक्तं लकारेण। पृथ्वी देवी महीत्यनेन व्याचक्षते॥ १३ ॥

महानता, जड़ता, कठोरता जिसमें विद्यमान है तथा जो क्षीण नहीं होती है, वह मही कही जाती है। यही मही पद की व्याख्या है। मही का प्रतीक लकार ही श्रेष्ठ परं धाम है। लकार के द्वारा सागररहित, पर्वतों-सहित सप्तद्वीपयुक्त, समस्त वन प्रान्तरसहित प्रकाशित घनत्वयुक्त भूमण्डल निर्दिष्ट है। अतः मही शब्द से पृथ्वी देवी की व्याख्या की गई है॥ १३ ॥

धियो यो नः प्रचोदयात्। परमात्मा सदाशिव आदिभूतः परः। स्थाणुभूतेन लकारेण ज्योतिलिङ्गमात्मानं धियो बुद्धयः परे वस्तुनि ध्यानेच्छारहिते निर्विकल्पके प्रचोदयात्प्रेरयेदित्युच्चारणरहितं चेतसैव चिन्तयित्वा भावयेदिति॥ १४॥

धियो यो नः प्रचोदयात्। परमात्मा सदाशिव ही सबसे पहले प्रकट हुए हैं, अतः वे ही पर अर्थात् श्रेष्ठतम हैं। स्थाणुभूत लकार के साथ ज्योतिः स्वरूप आत्मा एवं बुद्धि की वृत्तियाँ उन परात्पर सदाशिव में प्रेरित करे, जो स्वयं ध्यानेच्छा से रहित एवं निर्विकल्प हैं। इस प्रकार मन से उच्चारणरहित चिन्तन करते हुए भावना करनी चाहिए॥ १४॥

परो रजसेऽसावदोमिति तदवसाने परं ज्योतिरमलं हृदि दैवतं चैतन्यं चिल्लिङ्गंहृदयागारवासिनी हृल्लेखेत्यादिना स्पष्टं वाग्भवकूटं पञ्चाक्षरं पञ्चभूतजनकं पञ्चकलामयं व्यापठ्यत इति। य एवं वेद॥ १५॥

परो रजसेऽसावदोम्, वह अक्षर ब्रह्म ओंकार इन सभी लोकों से ऊपर प्रकाशित हो रहा है। इस चतुर्थ पद के अन्त में- हृदय में प्रकाशित निर्मल चैतन्यरूप परमज्योति जो चिल्लक्षणा (चैतन्य लक्षण वाली) है, वही हृदयागार में निवास करने वाली हृल्लेखा (ह्रीं) है, यही पञ्चम अक्षर है। इस प्रकार पंचभूतों को उत्पन्न करने वाला, पञ्च कलाओं वाला, पाँच अक्षरों वाला यही वाग्भव कूट है (यही) व्याहृत होता है। जो ऐसा जानता है, वह मुनि ऐश्वर्य से युक्त हो जाता है॥ १५॥

अथ तु परं कामकलाभूतं कामकूटमाहुः। तत्सवितुर्वरेण्यमित्यादिद्वात्रिंशदक्षरीं पठित्वा तदिति परमात्मा सदाशिवोऽक्षरं विमलं निरुपाधितादात्म्यप्रतिपादनेन हकाराक्षरं शिवरूपं निरक्षरमक्षरं व्यालिख्यत इति। तत्परागव्यावृत्तिमादाय शक्तिं दर्शयति॥ १६॥

अब इसके बाद कामकलारूप में कामकूट का व्याख्यान करते हैं– तत्सवितुर्वरेण्यं..... ....परोरजसेऽसावदोम्-- इस बत्तीस अक्षरों वाली गायत्री को पढ़कर तत् अर्थात् वह सदाशिव परमात्मा अक्षर, निर्मल विशुद्ध तादात्म्यरूप अक्षय्य, शिवरूप, हकाराक्षर से बाईं ओर से न हटने वाली शक्ति अर्थात् सकार को अंकित दिखाया गया है॥ १६॥

तत्सवितुरिति पूर्वेणाध्वना सूर्याधश्चन्द्रिकां व्यालिख्य मूलादिब्रह्मरन्ध्रगं साक्षरमद्वितीयमाचक्षत इत्याह भगवन्तं देवं शिवशक्त्यात्मकमेवोदितम्॥ १७॥

तत्सवितुः इस पूर्व के क्रम से सूर्य के बाद (नीचे) चन्द्रिका (अनुस्वार) का उल्लेख करके –मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त सकार ही एकमात्र अक्षर है, जिसका उच्चारण किया जाता है। इस प्रकार 'हंसः' पद से शिवशक्ति की एकात्मकता प्रदर्शित की गई है॥ १७॥

शिवोऽयं परमं देवं शक्तिरेषा तु जीवजा। सूर्याचन्द्रमसोर्योगाद्धंसस्तत्पदमुच्यते॥ १८॥

हकार परमाक्षर शिवरूप है तथा सकार ही जीव की शक्ति है। इस प्रकार सूर्य एवं चन्द्र के योग से हंसः शिव शक्ति का पाद (स्थान) कहा जाता है॥ १८॥

तस्मादुज्जृम्भते कामः कामात्कामः परः शिवः। कार्णोऽयं कामदेवोऽयं वरेण्यं भर्ग उच्यते॥ १९॥

परम शिव की इच्छा से काम प्रकट हुआ, यह कामदेव का प्रतीक ककार ही वरेण्य भर्ग कहा गया है॥ १९॥

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवः क्षीरं सेवनीयमक्षरं समधुघ्नमक्षरं परमात्मजीवात्मनोर्योगात्तदिति स्पष्टमक्षरं तृतीयं ह इति तदेव सदाशिव एव निष्कल्मष आद्यो देवोऽन्त्यमक्षरं व्याक्रियते परमं पदम्॥ २०॥

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवः-- जो सेवन योग्य दुग्ध के तुल्य अक्षर है, जो विष्णु का बोधक अक्षर है, वही परमात्मा तथा जीवात्मा के योग का हेतु है, वह स्पष्टरूपेण तृतीय हकाराक्षर है। वही सदाशिवरूप है, निष्कल्मष है, आद्य देवस्वरूप है, जो कि मातृका का अन्तिम अक्षर है। साधना ग्रन्थों में यही स्पष्ट किया गया है। धीमहि पद में निहित धी परमपद है॥ २०॥

धीति धारणं विद्यते जडत्वधारणं महीति लकारः शिवाधस्तात्तु लकारार्थः स्पष्टमन्त्यमक्षरं परमं चैतन्यं धियो यो नः प्रचोदयात्॥ २१॥

धी धारणार्थक है। जड़त्व को धारण करने वाली मही है। मही का द्योतक है लकार। यह हकाराक्षर के पश्चात् उद्धृत किया जाता है। लकारार्थ स्पष्ट ही इस कामकलाकूट का अन्तिम अक्षर है, जो परम चैतन्यरूप है। जिसमें धियो यो नः प्रचोदयात् (विद्यमान)है॥ २१॥

परो रजसेऽसावदोमित्येवं कूटं कामकलाऽऽलयं षडध्वपरिवर्तको वैष्णवं परमं धामैति भगवांश्चैतस्माद्य एवं वेद॥ २२॥

परो रजसेऽसावदोम् यह कूटस्थ है। जो कामकलागार, षडध्वपरिवर्तक छः मार्गों का रचयिता मन्त्र, वर्ण, पद, कला, तत्त्व, भुवन नामक विष्णु का परम धाम है। जो इस प्रकार जानता है, वह उस वैष्णवधाम को प्राप्त कर लेता है॥ २२॥

अथैतस्मादपरं तृतीयं शक्तिकूटं प्रतिपद्यते। द्वात्रिंशदक्षर्या गायत्र्या॥ २३॥

अब इसके पश्चात् बत्तीस अक्षरों वाली गायत्री से तीसरा शक्तिकूट प्राप्त होता है॥ २३॥

तत्सवितुर्वरेण्यं तस्मादात्मन आकाश आकाशाद्वायुः स्फुरति तदधीनं वरेण्यं समुदीयमानं सवितुर्वा योग्यो जीवात्मपरमात्मसमुद्भवस्तं प्रकाशशक्तिरूपं जीवाक्षरं स्पष्टमापद्यते॥ २४॥

तत्सवितुर्वरेण्यं उस आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु का स्फुरण होता है। उसी के अधीन वरेण्यं अर्थात् सविता का श्रेष्ठ उदीयमान स्वरूप, जीवात्मा और परमात्मा से समुत्पन्न वही प्रकाश-शक्तिरूप जीव का अक्षर-स्वरूप स्पष्ट रूप से उपस्थित हो जाता है॥ २४॥

भर्गो देवस्य धीत्यनेनाधाररूपशिवात्माक्षरं गण्यते। महीत्यादिनाशेषं काम्यं रमणीयं दृश्यं काम्यं रमणीयं शक्तिकूटं स्पष्टीकृतमिति॥ २५॥

भर्गो देवस्य धी इस पद समूह के द्वारा शिवात्मक हकाराक्षर की मान्यता है। महीत्यादि के द्वारा सम्पूर्ण काम्य रमणीय दृश्य शक्तिकूट स्पष्ट किया गया है॥ २५ ॥

एवं पञ्चदशाक्षरं त्रैपुरं योऽधीते स सर्वान्कामानवाप्नोति। स सर्वान्भोगानवाप्नोति। स सर्वांल्लोकाञ्जयति। स सर्वा वाचो विजृम्भयति। स रुद्रत्वं प्राप्नोति। स वैष्णवं धामं भित्त्वा परं ब्रह्म प्राप्नोति। य एवं वेद॥ २६॥

इस प्रकार जो कोई इस १५ अक्षर वाले त्रिपुरामन्त्र का अध्ययन चिन्तन-मनन करता है, वह सभी कामनाओं को पूर्ण कर लेता है। वह समस्त भोगों को प्राप्त करता है, वह सभी लोकों को जीत लेता है, वह सम्पूर्ण वाङ्मय समस्त भाषाओं में दक्ष हो जाता है। वह रुद्र हो जाता है। वह विष्णु के धाम (स्वर्ग) को भेदकर परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। जो ऐसा जानता है॥ २६॥

विद्यामभिधायैतस्याः शक्तिकूटं शक्तिशिवाद्यां लोपामुद्रेय द्वितीये धामनि॥ २७॥

विद्या को बताकर इसके शक्ति- शिवात्मक शक्तिकूट को द्वितीय स्थान में लोपामुद्रा विरचित कहा जाता है॥ २७॥

पूर्वेणैव मनुना बिन्दुहीना शक्तिभूतहल्लेखा क्रोधमुनिनाऽधिष्ठिता तृतीये धामनि॥२८॥

पूर्व प्रदर्शित मन्त्र के साथ बिन्दुरहित शक्तिभूता हल्लेखा (ह्रीं) को महर्षि दुर्वासा ने तृतीय स्थान में मान्यता प्रदान की है॥ २८॥

पूर्वस्या एव विद्याया यद्वाग्भवकूटं तेनैवमानवीं चान्द्रीं कौबेरीं विद्यामाचक्षते॥ २९॥

पूर्व विद्या (मन्त्र) का ही जो वाग्भव कूट है, उसी के द्वारा मानवी, चान्द्री तथा कौबेरी विद्या कही जाती है॥ २९॥

मदनाध: शिवं वाग्भवम्। तदूर्ध्वं कामकलामयम्। शक्त्यूर्ध्वं शक्तिमिति मानवी विद्या चतुर्थे धामनि॥ ३०॥

काम (क) के पश्चात् शिव ही वाग्भव है। उसके बाद काम कलाकूट है। शक्ति के पश्चात् शक्तिकूट- यह मानवी विद्या चतुर्थ धाम में है॥ ३०॥

शिवशक्त्याख्यं वाग्भवम् तदेवाध: शिवशक्त्याख्यमन्यत्तृतीयं चेयं चान्द्रीविद्या पञ्चमे धामनि ध्येयेयम्॥ ३१॥

शिव शक्त्याख्या वाग्भवकूट है। उसी के पश्चात् शिवशक्त्याख्य (शिव-शक्ति के नाम से जानी जाने वाली अन्य तृतीय, इस प्रकार पाँचवें स्थान में यह चान्द्री विद्या कहलाती है॥ ३१॥

चान्द्री कामाध: शिवाद्याकामा। सैव कौबेरी षष्ठे धामनि व्याचक्षत इति। य एवं वेद॥ ३२॥

काम (क) के पश्चात् शिवाद्या कामा चान्द्री विद्या ही उपास्य है। छठे स्थान में इसे ही कौबेरी कहते हैं। जो ऐसा जानता है॥ ३२॥

हित्वेकारं तुरीयस्वरं सर्वादौ सूर्याचन्द्रमस्केन कामेश्वर्यैवागस्त्यसंज्ञा सप्तमे धामनि॥ ३३॥

तुरीय- स्वर 'इकार' को छोड़कर सबसे पहले सूर्य-चन्द्र (हस) के साथ कामेश्वरी होने से इसे ही सप्तम स्थान में अगस्त्य- विद्या कहते हैं॥ ३३॥

तृतीयमेतस्या एवपूर्वोक्ताया: कामाद्यं द्विधाऽध: कं मदनकलाद्यं शक्तिबीजं वाग्भवाद्यं तयोरर्धावशिरस्कं कृत्वा नन्दिविद्येयम् अष्टमे धामनि॥ ३४॥

इसी पूर्वोक्त विद्या का तृतीय कामाद्य दो बार है फिर मदन कलाद्य ककार है। तदनन्तर वाग्भवाद्य शक्ति बीज लिखा जाता है। आठवें स्थान में उन दोनों के उत्तरार्ध जोड़कर नन्दिविद्या बनती है॥ ३४॥

वाग्भवमागस्त्यं वागर्थकलामयं कामकलाभिधं सकलमायाशक्ति: प्रभाकरी विद्येयं नवमे धामनि॥ ३५॥

क्रमश: वाग्भवबीज, आगस्त्यविद्या, वागर्थकलामय, कामकलाख्या, सकल, मायाशक्ति (ह्रीं) अंकित करने पर यह नवम स्थान में प्रभाकरी विद्या कहलाती है॥ ३५॥

पुनरागस्त्यं वाग्भवं शक्तिमन्मथशिवशक्ति मन्मथोर्वीमायाकामकलालयं चन्द्र सूर्यानङ्गधूर्जटिमहिमालयं तृतीयं षण्मुखीयं विद्या दशमे धामनि॥ ३६॥

क्रमश: आगस्त्यविद्या, वाग्भव, शक्ति-काम, शिव-शक्ति-काम, पृथ्वी, माया, कामकलालय (कामकूट) चन्द्र, सूर्य, ककार, शिवमहिमालय गृह (ह्रीं) इकार-इस प्रकार दशम स्थान में यह षण्मुखीविद्या कही जाती है॥ ३६॥

विद्याप्रकाशितया भूय एवागस्त्यविद्यां पठित्वा भूय एवेमामन्त्यमायां परमशिवविद्येयमेकादशे धामनि॥ ३७॥

विद्या को प्रकाशित करने के कारण आगस्त्य विद्या के बाद इसी अन्त्य माया को पढ़ने से ग्यारहवें स्थान में यह परमशिव-विद्या कहलाती है॥ ३७॥

भूय एवागस्त्यं पठित्वा एतस्या एव वाग्भवं यद्धनजं कामकलाऽऽलयं च तत्सहजं कृत्वा लोपामुद्राया: शक्तिकूटराजं पठित्वा वैष्णवी विद्या द्वादशे धामनि व्याचक्षत इति य एवं वेद॥ ३८॥

पुन: आगस्त्य विद्या के बाद इसी का वाग्भव-कामकलागृह ककार के पश्चात् लोपामुद्रा विद्या के शक्तिकूट को पढ़ने से द्वादश स्थान में वैष्णवी-विद्या कहलाती है, जो ऐसा जानता है (वह ऐश्वर्य पूर्ण हो जाता है)॥ ३८॥

तान्होवाच भगवान्सर्वे यूयं श्रुत्वा पूर्वां कामाख्यां तुरीयरूपां तुरीयातीतां सर्वोत्कटां सर्वमन्त्रासनगतां पीठोपपीठदेवतापरिवृतां सकलकलाव्यापिनीं देवतां सामोदां सपरागां सहृदयां सामृतां सकलां सेन्द्रियां सदोदितां परां विद्यां स्पष्टीकृत्वा हृदये निधाय विज्ञायानिलयं गमयित्वा त्रिकूटां त्रिपुरां परमां मायां श्रेष्ठां परां वैष्णवीं संनिधाय हृदयकमलकर्णिकायां परां भगवतीं लक्ष्मीं मायां सदोदितां महावश्यकरीं मदनोन्मादनकारिणीं धनुर्बाणधारिणीं वाग्विजृम्भिणीं चन्द्रमण्डलमध्यवर्तिनीं चन्द्रकलां सप्तदशीं महानित्योपस्थितां पाशाङ्कुशमनोज्ञपाणिपल्लवां समुद्यदर्कनिभां त्रिनेत्रां विचिन्त्य देवीं महालक्ष्मीं सर्वलक्ष्मीमयीं सर्वलक्षणसंपन्नां हृदये चैतन्यरूपिणीं निरञ्जनां त्रिकूटाख्यां स्मितमुखीं सुन्दरीं महामायां सर्वसुभगां महाकुण्डलिनीं त्रिपीठमध्यवर्तिनीमकथादिश्रीपीठे परां भैरवीं चित्कलां महात्रिपुरां देवीं ध्यायेन्महाध्यानयोगेने-यमेवं वेदेति महोपनिषत्॥ ३९॥

उनसे भगवान् ने कहा— आप सब पूर्ववर्णित कामाख्या तुरीयरूपा, तुरीयातीता, सर्वोत्कटा, समग्र मन्त्रासनगता, पीठोपपीठ देवताओं से परिवृता, सकलकलाव्यापिनी देवी जो आमोद-सहित, पराग-सहित, सहृदया, अमृत-सहिता, सकलरूपा, सेन्द्रिया, सदाप्रकाशमयी, परा विद्या है- उसे भली-भाँति समझकर हृदय में धारण कर, विशेषतया जानकर, अनिलय को पहुँचाकर, त्रिकूटा-त्रिपुरा-परमा-श्रेष्ठा-माया-परा-वैष्णवी को अपनी हृदयकमल की कर्णिका में स्थापित कर, परा भगवती लक्ष्मी माया, जो सदा प्रकाशमयी महावश्यकरी, मदनोन्मादनकारिणी, धनुर्बाणधारण करने वाली, वाणी से अपनी उत्कटता प्रकाशित करने वाली, चन्द्रमंडल के मध्य सुशोभित, चन्द्रकलारूप, सत्रहवीं कला, महानित्या, पाश अंकुश जिसके सुन्दर पाणिपल्लवों में शोभायमान, उदीयमान सूर्यसदृश, त्रिनेत्रधारिणी का चिन्तन करके समग्र लक्ष्मीमयी, समस्तलक्षणों से परिपूर्ण, महालक्ष्मी को ज्ञातकर अपने हृदय में चैतन्य स्वरूपा, निरञ्जना, त्रिकूटा, स्मितानना, सुन्दरी, महामाया, सर्वसुन्दरी, महाकुण्डलिनी

का त्रिपीठमध्यवर्ती अकथ आदि श्रीपीठ में परा भैरवी चित्कला, महात्रिपुरसुन्दरी देवी का ध्यान महाध्यानयोग के द्वारा करें। इस प्रकार यही महोपनिषद् है॥ ३९॥

॥ अथ द्वितीयोपनिषत्॥

अथातो जातवेदसे सुनवाम सोममित्यादि पठित्वा त्रैपुरी व्यक्तिर्लक्ष्यते॥ १॥

ॐ जातवेदसे सुनवाम सोमम् इत्यादि ऋचा को पूर्णतया पढ़ने से त्रिपुर सुन्दरी षोडशी के स्वरूप की अभिव्यक्ति होती है॥ १॥

जातवेदस इत्येकर्चसूक्तस्याद्यमध्यमावसानेषु तत्र स्थानेषु विलीनं बीजसागर रूपं व्याचक्ष्वेत्यृषय ऊचुः॥ २॥

ऋषियों ने कहा भगवन्! जातवेदसे सुनवाम सोमम् इत्यादि एक ऋचा वाले सूक्त के आदि, मध्य एवं अन्तभाग में जो बीजों का सागर छिपा हुआ है, कृपया उसकी व्याख्या कीजिए॥ २॥

तान्होवाच भगवाञ्जातवेदसे सुनवाम सोमं तदन्त्यमवाणीं विलोमेन पठित्वा प्रथमस्याद्यं तदेव दीर्घं द्वितीयस्याद्यं सुनवाम सोममित्यनेन कौलं वामं श्रेष्ठं सोमं महासौभाग्यमाचक्षते॥३॥

भगवान् ने उनसे कहा— जातवेदसे सुनवाम सोमं की अन्त्य-अवाणी को विलोम पढ़कर प्रथम के आदिम को पढ़े। इसी प्रकार द्वितीय के दीर्घ आदिमाक्षर को 'सुनवाम सोमं' के साथ पढ़े। इस विधि के द्वारा वाममार्गीय कौल के मत से श्रेष्ठ महासौभाग्यरूप सोम कहा जाता है॥ ३॥

स सर्वसंपत्तिभूतं प्रथमं निवृत्तिकारणं द्वितीयं स्थितिकारणं तृतीयं सर्गकारणमित्यनेन करशुद्धिं कृत्वा त्रिपुराविद्यां स्पष्टीकृत्वा जातवेदसे सुनवाम सोममित्यादि पठित्वा महाविद्येश्वरीविद्यामा-चक्षते॥ ४॥

वह संपत्तिरूप प्रथम निवृत्ति कारण है, द्वितीय स्थितिकारण है तथा तृतीय सृष्टि का कारण है इस भाव से हस्तशोधन (प्रक्षालन) करके त्रिपुराविद्या (मन्त्र) उच्चारण करके 'जातवेदसे सुनवाम सोमं' इत्यादि ऋचा का पाठ करे। इसे ही महाविद्येश्वरी-विद्या कहते हैं॥ ४॥

त्रिपुरेश्वरीं जातवेदस इति जाते आद्यक्षरे मातृकायाः शिरसि बैन्दवममृतरूपिणीं कुण्डलिनीं त्रिकोणरूपिणीं चेति वाक्यार्थः॥ ५॥

त्रिपुरेश्वरी के साथ जातवेदसे। 'जाते' ये ऋचा के दो आद्य अक्षर हैं, जो मातृका के सिर पर अलङ्काररूप बिन्दी जैसे हैं। वस्तुतः अमृतस्वरूपा कुण्डलिनी महाशक्ति ही त्रिकोणरूपिणी है, यही वाक्यार्थ है॥ ५॥

एवं प्रथमस्याद्यं वाग्भवम्। द्वितीयं कामकलालयम्। जात इत्यनेन परमात्मनो जृम्भणम्॥ ६॥

इस प्रकार प्रथम का आदिमाक्षर वाग्भव है, द्वितीय अक्षर कामकला का आगार है, 'जाते' इस पद के द्वारा परमात्मा का जम्हाई लेना या अँगड़ाई लेना (वर्णित) है॥ ६॥

जात इत्यादिना परमात्मा शिव उच्यते॥ ७॥

अत: 'जाते' इत्यादि के द्वारा परमात्मा शिव का ही बोध होता है॥ ७॥

जातमात्रेण कामी कामयते काममित्यादिना पूर्णं व्याचक्षते॥ ८॥

जातमात्र भी कामी कामना की पूर्ति की इच्छा करने लगता है, इत्यादि के द्वारा पूरी व्याख्या करते हैं॥ ८॥

तदेव सुनवाम गोत्रारूढं मध्यवर्तिनाऽमृतमध्येनार्णेन मन्त्रार्णान्स्पष्टीकृत्वा गोत्रेति नामगोत्रायामित्यादिना स्पष्टं कामकलालयं शेषं वाममित्यादिना। पूर्वेणाध्वना विद्येयं सर्वरक्षाकरी व्याचक्षते॥ ९॥

वही 'सुनवाम' लकार में उपस्थित है, जो मध्यवर्ती अमृताख्य वर्ण वकार से मन्त्राक्षरों को स्पष्ट करता है। गोत्रा (लकार) यह 'नाम गोत्रायां' इत्यादि के द्वारा तीन कलाओं का आगार स्पष्ट हो जाता है। 'वाम' इत्यादि के द्वारा शेष स्पष्ट हो जाता है। पूर्वप्रदर्शित मार्ग के द्वारा यह जो सर्वरक्षा करने वाली विद्या है, वही व्याख्यायित होती है॥ ९॥

एवमेतेन विद्यां त्रिपुरेशीं स्पष्टीकृत्वा जातवेदस इत्यादिना जातो देव एक ईश्वर: परमो ज्योतिर्मन्त्रतो वेति तुरीयं वरं दत्त्वा बिन्दुपूर्णज्योति:स्थानं कृत्वा प्रथमस्याद्यं द्वितीयं च तृतीयं च सर्वरक्षाकरीसंबन्धं कृत्वा विद्यामात्मासनरूपिणीं स्पष्टीकृत्वा जातवेदसे सुनवाम सोममित्यादि पठित्वा रक्षाकरीं विद्यां स्मृत्वाद्यन्तयोर्धाम्नो: शक्तिशिवरूपिणीं विनियोज्य स इति शक्त्यात्मकं वर्णं सोममिति शैवात्मकं धाम जानीयात्। यो जानीते स सुभगो भवति॥ १०॥

इससे त्रिपुरसुन्दरी विद्या का स्पष्ट उच्चारण करे। तब जातवेदसे इत्यादि ऋचा का उच्चारण करे। जात एक देव ही ईश्वर है, परमज्योति है अथवा जातवेदसे इत्यादि मन्त्र से भी वह एक ईश्वर ही है। इस प्रकार तुरीय वर ईकार देकर ज्योति:स्थान को बिन्दुपूर्ण करके प्रथम मन्त्र के आदिम (प्रथम), द्वितीय एवं तृतीय भाग का सर्वरक्षाकरी विद्या से योग करना चाहिए, फिर आत्मासनरूप विद्या का स्पष्ट उच्चारण करके तब 'जातवेदसे' इत्यादि ऋचा का उच्चारण करना चाहिए। तदनन्तर रक्षाकरी विद्या का स्मरण करके आदि एवं अन्त के स्थानों में शिवशक्त्यात्मक विद्या का विनियोग करना आवश्यक है। सकार ही शक्त्यात्मक वर्ण है, उसे सोम अर्थात् शैवात्मक धाम (स्थान) जानना चाहिए। जो इस रहस्य को जानता है, वह ऐश्वर्यशाली, सौभाग्यशाली एवं सुन्दर हो जाता है॥ १०॥

इत्येवमेतां चक्रासनगतां त्रिपुरवासिनीं विद्यां स्पष्टीकृत्वा जातवेदसे सुनवामसोममिति पठित्वा त्रिपुरेश्वरीविद्यां सदोदितां शिवशक्त्यात्मिकामावेदितां जातवेदाः शिव इति सेति शक्त्यात्माक्षरमिति शिवादिशक्त्यन्तरालभूतां त्रिकूटादिचारिणीं सूर्याचन्द्रमस्कां मन्त्रासनगतां त्रिपुरां महालक्ष्मीं सदोदितां स्पष्टीकृत्वा जातवेदसे सुनवाम सोममित्यादि पठित्वा पूर्वां सदात्मासनरूपां विद्यां स्मृत्वा वेद इत्यादिना विश्वाहसंततोदयाबैन्दवमुपरि विन्यस्य सिद्धासनस्थां त्रिपुरां मालिनीं विद्यां स्पष्टीकृत्वा जातवेदसे सुनवाम सोममित्यादि पठित्वा त्रिपुरां सुन्दरीं श्रित्वा कले अक्षरे विचिन्त्य मूर्तिभूतां मूर्तिरूपिणीं सर्वविद्येश्वरीं त्रिपुरां विद्यां स्पष्टीकृत्वा जातवेदसे इत्यादि पठित्वा त्रिपुरां लक्ष्मीं श्रित्वाऽग्निं निदहाति॥ ११ ॥

इस प्रकार इस चक्रासनगत त्रिपुरवासिनी विद्या को स्पष्टत: उच्चारण करके तब जातवेदसे सुनवाम सोमं इस ऋचांश का पाठ करें। यह त्रिपुरेश्वरी विद्या शिवशक्ति उभयात्मिका है, सदा प्रकाशवती, प्रार्थना योग्य है। जातवेदा: अर्थात् शिव। वह शक्ति ही शिव है, इसीलिए सा अक्षर शक्ति का प्रतीक है। अत: हकार सकार के मध्य त्रिकूटमयी हंससहित मन्त्रासनगत त्रिपुरा महालक्ष्मी-विद्या का उच्चारण करके जातवेदसे-इत्यादि ऋचा का पाठ करना चाहिए। पूर्वोदित आत्मासनस्थित विद्या का स्मरण करके वेद इत्यादि ऋचा के साथ-विश्वाहसंततोदया बैन्दवं उपरि- बिन्दु ऊपर रखकर सिद्धासनस्थ त्रिपुरामालिनी-विद्या का स्पष्ट उच्चारण करने के पश्चात् जातवेदसे सुनवाम इस ऋचा का पाठ कर्त्तव्य है। फिर त्रिपुरासुन्दरी का आश्रय लेकर ककार एवं लकार का सस्वर ध्यान करके मूर्तिभूत मूर्तिरूपा सर्वविद्येश्वरी त्रिपुरा-विद्या का स्पष्ट उच्चारण करके जातवेदसे-इत्यादि ऋचा का पाठ करना चाहिए। फिर त्रिपुरालक्ष्मी की पूजा करके अग्नि को प्रज्वलित करे॥ ११ ॥

सैवेयमग्न्यानने ज्वलतीति विचिन्त्य त्रिज्योतिषमीश्वरीं त्रिपुरामम्बां विद्यां स्पष्टीकुर्यात्॥ १२॥

जो अग्नि को जलाती है, यह वही शक्ति है। हे अग्निमुखि! ज्वलतीति चिन्तन करके त्रिज्योति: स्वरूपा ईश्वरी अम्बा त्रिपुराविद्या का स्पष्ट उच्चारण करना चाहिए॥ १२॥

एवमेतेन स न: पर्षदति दुर्गाणि विश्वेत्यादिपरप्रकाशिनी प्रत्यग्भूता कार्या विद्येयमाह्वानकर्मणि सर्वतो धीरेति व्याचक्षते॥ १३॥

इस प्रकार इसके साथ ही स न:पर्षदति ... इत्यादि ऋचार्थ का हृदय में प्रत्यग्भाव से (मन्त्रार्थ का चिन्तन करते हुए) ध्यान करना चाहिए। जो परम प्रकाशमयी है। आह्वानकर्म में यही विद्या सर्वतोधीरा नाम से बताई जाती है॥ १३॥

एवमेतद्विद्याष्टकं महामायादेव्यङ्गभूतं व्याचक्षते॥ १४॥

इस प्रकार पूर्वोक्त आठ विद्याएँ महामाया देवी की अंगभूता मानी जाती हैं॥ १४॥

देवा ह वै भगवन्तमब्रुवन्महाचक्रनायकं नो ब्रूहीति सार्वकामिकं सर्वाराध्यं सर्वरूपं विश्वतोमुखं मोक्षद्वारं यद्योगिन उपविश्य परं ब्रह्म भित्त्वा निर्वाणमुपविशन्ति॥ १५॥

देवताओं ने भगवान् से पूछा– हमें महाचक्रनायक के विषय में बताइये, जो सभी कामनाओं का पूरक सबका आराध्य सर्वरूप, सर्वतोमुखी, मोक्ष का द्वार है, जिस पर बैठकर योगी लोग परब्रह्म को भेदकर निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं॥ १५॥

तान्होवाच भगवान् श्रीचक्रं व्याख्यास्याम इति॥ १६॥

भगवान् ने उनसे कहा– हम श्रीचक्र का व्याख्यान करेंगे॥ १६॥

त्रिकोणं त्र्यश्रं कृत्वा तदन्तर्मध्यवृत्तमानयष्टि-रेखामाकृष्य विशालं नीत्वाऽग्रतो योनिं कृत्वा पूर्वयोन्यग्ररूपिणीं मानयष्टिं कृत्वा तां सर्वोर्ध्वां नीत्वा योनिं कृत्वाद्यं त्रिकोणं चक्रं भवति द्वितीयमन्तरालं भवति तृतीयमष्टयोन्यङ्कितं भवति॥ १७॥

तीन रेखाओं वाला त्रिकोण बनाकर उसके भीतर मध्यवृत्त की मानयष्टि रेखा खींचकर उसे आगे बढ़ाकर आगे योनि बनाकर प्रथम त्रिकोणचक्र बनाया जाता है। द्वितीय अन्तराल होता है। तृतीय आठ योनि की आकृतियों वाला चक्र होता है॥ १७॥

अथाष्टारचक्राद्यन्तविदिक्कोणाग्रतो रेखां नीत्वा साध्याद्याकर्षणबद्ध रेखां नीत्वेत्येवमथोर्ध्व-संपुटयोन्यङ्कितं कृत्वा कक्षाभ्य ऊर्ध्वगरेखाचतुष्टयं कृत्वा यथाक्रमेण मानयष्टिद्वयेन दशयोन्यङ्कितं चक्रं भवति॥ १८॥

इसके बाद आठ कोण वाले चक्र के आदि अन्त के बीच के कोणों से आगे रेखा खींचकर साध्यादि के आकर्षण की रेखा तक ले जाकर फिर ऊपर के संपुट को योनि से अंकित कर कक्षाओं से ऊपर चार रेखाएँ खींचकर क्रमशः दो मानयष्टि रेखाएँ खींचने से दस योनि वाला चक्र बन जाता है॥ १८॥

अनेनैव प्रकारेण पुनर्दशारचक्रं भवति॥ १९॥

फिर इसी प्रकार से दूसरा दस कोण वाला चक्र बन जाता है॥ १९॥

मध्यत्रिकोणाग्रचतुष्टयाद्रेखाचराग्रकोणेषु संयोज्य तद्दशारांशतोनीतां मानयष्टिरेखां योजयित्वा चतुर्दशारं चक्रं भवति॥ २०॥

अब मध्य के चार त्रिकोणों के अग्र भाग से चार रेखाओं को आगे के कोणों से मिलाकर, दशकोणी चक्र की परिधि रेखा से मिला देने पर चौदह कोण वाला चक्र बन जाता है॥ २०॥

ततोऽष्टपत्रसंवृत्तं चक्रं भवति। षोडशपत्रसंवृतं चक्रं भवति। पार्थिवं चक्रं चतुर्द्वारं भवति॥२१॥

फिर आठ दल वाला चक्र बनता है। सोलह दल वाले चक्र के बाहर चार द्वार होते हैं॥ २१॥

एवं सृष्टियोगेन चक्रं व्याख्यातम्॥ २२॥

इस प्रकार सृष्टिक्रम से श्रीचक्र की व्याख्या की गई है॥ २२॥

नवात्मकं चक्रं प्रातिलोम्येन वा वच्मि- प्रथमं चक्रं त्रैलोक्यमोहनं भवति। साणिमाद्यष्टकं भवति। समात्रष्टकं भवति। ससर्वसंक्षोभिण्यादिदशकं भवति। सप्रकटं भवति। त्रिपुरयाधिष्ठितं भवति ससर्वसंक्षोभिणीमुद्रया जुष्टं भवति॥ २३॥

अब प्रतिलोम विधि से नौ त्रिकोण वाले चक्र का वर्णन करते हैं। प्रथम चक्र त्रैलोक्य मोहन चक्र कहलाता है। उसमें अणिमादि आठ सिद्धियों का स्थान रहता है। आठ मातृकाओं की उपस्थिति मानी गई है। वह सर्वसंक्षोभिणी आदि दशाओं से युक्त होता है। वही प्रकट होता है। वही त्रिपुरा शक्ति से अधिष्ठित होता है, वह सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा से सेवित होता है॥ २३॥

द्वितीयं सर्वाशापरिपूरकं चक्रं भवति सकामाद्याकर्षिणीषोडशकं भवति। सगुप्तं भवति। त्रिपुरेश्वर्याधिष्ठितं भवति। सर्वविद्राविणीमुद्रया जुष्टं भवति॥ २४॥

द्वितीय चक्र समग्र आशाओं का परिपूरक होता है। वह कामाद्याकर्षिणी सोलह शक्तियों से युक्त होता है। वह अच्छी तरह से गुप्त रहता है, वह त्रिपुरेश्वरी देवी का अधिष्ठान होता है। वह सर्वविद्राविणी मुद्रा से युक्त होता है॥ २४॥

तृतीयं सर्वसंक्षोभणं चक्रं भवति। सानङ्गकुसुमाद्यष्टकं भवति। सगुप्ततरं भवति। त्रिपुरसुन्दर्याऽधिष्ठितं भवति। सर्वाकर्षिणीमुद्रया जुष्टं भवति॥ २५॥

तृतीय चक्र का नाम सर्वसंक्षोभण चक्र है। वह अनंग (कामदेव) के आठ कुसुमों से युक्त होता है। वह अधिक गुप्त (सुरक्षित) होता है। वह त्रिपुरसुन्दरी देवी से अधिष्ठित होता है। वह सर्वाकर्षिणी मुद्रा से जुष्ट (सेवित) माना गया है॥ २५॥

तुरीयं सर्व सौभाग्यदायकं चक्रं भवति। ससर्वसंक्षोभिण्यादिद्विसप्तकं भवति। ससंप्रदायं भवति। त्रिपुरवासिन्याधिष्ठितं भवति। ससर्ववशंकरिणीमुद्रया जुष्टं भवति॥ २६॥

चतुर्थ चक्र समग्र सौभाग्यों का प्रदाता होता है। वह सर्वसंक्षोभिण्यादि दो सप्तकों से युक्त रहता है। वह सम्प्रदाययुक्त होता है। वह त्रिपुरवासिनी देवी से अधिष्ठित होता है, वह सर्ववशंकरिणी मुद्रा से युक्त होता है॥२६॥

तुरीयान्तं सर्वार्थसाधकं चक्रं भवति। ससर्वसिद्धिप्रदादिदशकं भवति। सकलकौलं भवति। त्रिपुरामहालक्ष्म्याऽधिष्ठितं भवति। महोन्मादिनीमुद्रया जुष्टं भवति॥ २७॥

चतुर्थचक्र के अन्त में सर्वार्थसाधक चक्र होता है। वह सर्वसिद्धिप्रद आदि दस सिद्धियों (विशेषताओं) से युक्त होता है। वह कौलमतानुसार सकल (कलासहित) होता है। वह त्रिपुरा महालक्ष्मी से अधिष्ठित होता है। वह महाउन्मादिनी मुद्रा से जुष्ट होता है॥ २७॥

षष्ठं सर्वरक्षाकरं चक्रं भवति। ससर्वज्ञत्वादिदशकं भवति। स निगर्भं भवति। त्रिपुरमालिन्याधिष्ठितं भवति। महाङ्कुशमुद्रया जुष्टं भवति॥ २८॥

षष्ठ चक्र समग्र रक्षाकारक होता है। वह सर्वज्ञत्वादि दस दशाओं से युक्त होता है। वह निगर्भ सहित होता है। त्रिपुरमालिनी देवी से अधिष्ठित होता है। वह महा- अंकुश मुद्रा से जुष्ट होता है॥ २८॥

सप्तमं सर्वरोगहरं चक्रं भवति। सर्ववशिन्याद्यष्टकं भवति। सरहस्यं भवति। त्रिपुरसिद्ध्याऽधिष्ठितं भवति। खेचरीमुद्रया जुष्टं भवति॥ २९॥

सप्तम चक्र सर्वरोगनाशक होता है। वह सर्ववशिनी आदि आठ शक्तियों से युक्त होता है। वह रहस्य युक्त होता है। वह त्रिपुरासिद्धि से अधिष्ठित होता है। वह खेचरीमुद्रा से जुष्ट होता है॥ २९॥

अष्टमं सर्वसिद्धिप्रदं चक्रं भवति। सायुधचतुष्टयं भवति। स-परापररहस्यं भवति। त्रिपुराम्बयाधिष्ठितं भवति। बीजमुद्रयाऽधिष्ठितं भवति॥ ३०॥

अष्टमचक्र का नाम सर्वसिद्धि प्रदायक है। यह चार आयुधों से संयुक्त होता है। वह परापर रहस्य से युक्त होता है। वह त्रिपुरा अम्बा से अधिष्ठित होता है। वह बीजमुद्रा से अधिष्ठित होता है॥ ३०॥

नवमं चक्रनायकं सर्वानन्दमयं चक्रं भवति। सकामेश्वर्यादित्रिकं भवति। सातिरहस्यं भवति। महात्रिपुरसुन्दर्याऽधिष्ठितं भवति। योनिमुद्रयाजुष्टं भवति॥ ३१॥

सभी चक्रों में प्रधान सर्वानन्दमय चक्र नवम चक्र होता है। कामेश्वरी आदि तीन शक्तियों से युक्त होता है। वह अति रहस्यमय होता है। वह महात्रिपुरसुन्दरी से अधिष्ठित होता है। वह योनिमुद्रा से जुष्ट होता है॥ ३१॥

संक्रामन्ति वै सर्वाणि छन्दांसि चक्राराणि। तदेव चक्रं श्रीचक्रम्॥ ३२॥

सभी छन्द इस चक्र में संक्रमित रहते हैं। वही चक्र श्रीचक्र होता है॥ ३२॥

तस्य नाभ्यामग्निमण्डले सूर्याचन्द्रमसौ। तत्रोंकारपीठं पूजयित्वा तत्राक्षरं बिन्दुरूपं तदन्तर्गतव्योमरूपिणीं विद्यां परमां स्मृत्वा महात्रिपुरसुन्दरीमावाह्य। क्षीरेण स्नापिते देवि चन्दनेन विलेपिते। बिल्वपत्रार्चिते देवि दुर्गेऽहं शरणं गतः। इत्येकयर्चा प्रार्थ्य मायालक्ष्मीतन्त्रेण पूजयेदिति भगवानब्रवीत्॥ ३३॥

इस श्री चक्र की नाभि में जो अग्निमण्डल है, उसमें सूर्य-चन्द्र का अधिष्ठान है। वहीं पर ओंकार पीठ की पूजा करनी पड़ती है। वहीं पर बिन्दु रूप में अक्षर तथा उसी के अन्तर्गत व्योमरूपिणी परम विद्या का स्मरण ध्यान कर महात्रिपुरसुन्दरी का आवाहन करना चाहिए। क्षीरेण स्नापिते देवि ....शरणं गतः॥ इस एक ही ऋचा से प्रार्थना करके मायालक्ष्मी तन्त्र से पूजन करना चाहिए, भगवान् ने देवों को यही बताया था॥ ३३॥

एतैर्मन्त्रैर्भगवतीं यजेत्। ततो देवी प्रीता भवति। स्वात्मानं दर्शयति। तस्माद्य एतैर्मन्त्रैर्यजति स ब्रह्म पश्यति। स सर्वं पश्यति। सोऽमृतत्वं च गच्छति। य एवं वेदेति महोपनिषत्॥ ३४॥

इन मंत्रों से भगवती का अर्चन करना चाहिए। तभी देवी प्रसन्न होती हैं। वे अपना दर्शन देती हैं। अत: जो भी इन मन्त्रों से देवी का पूजन करता है, वह ब्रह्म का दर्शन करता है। वह सम्पूर्ण जगत् का दर्शन करने में समर्थ हो जाता है। वह अमृत भाव को प्राप्त कर लेता है, जो ऐसा जानता है। यही रहस्य है॥ ३४॥

॥ अथ तृतीयोपनिषत् ॥

देवा ह वै मुद्राः सृजेयमिति भगवन्तमब्रुवन्। तान्होवाच भगवानवनिकृतजानुमण्डलं विस्तीर्य पद्मासनं कृत्वा मुद्राः सृजेतेति॥ १॥

देवों ने भगवान् से कहा– (हमें) मुद्राओं का सृजन करना चाहिए । भगवान् ने उनसे कहा— पृथ्वी पर दोनों घुटने रखकर पद्मासनवत् हाथ फैलाकर मुद्राओं का सृजन करो॥ १॥

स सर्वानाकर्षयति यो योनिमुद्रामधीते स सर्वं वेत्ति स सर्वफलमश्नुते स सर्वान्भञ्जयति स विद्वेषिणं स्तम्भयति। मध्यमे अनामिकोपरि विन्यस्य कनिष्ठिकाङ्गुष्ठतोऽधीते मुक्तयोस्तर्जन्योर्दण्डवदधस्तादेवंविधा प्रथमा संपद्यते॥ २॥

जो योनि मुद्रा का अध्ययन करता है, वह सबका आकर्षण कर सकता है। वह सब कुछ जान लेता है, वह सब प्रकार का फल प्राप्त कर लेता है, वह सब कुछ तोड़ सकता है। वह विद्वेषी को स्तम्भित कर सकता है। अनामिका पर मध्यमा अँगुलियों को रखकर कनिष्ठिका अंगुष्ठ के ऊपर खुली हुई दोनों तर्जनियों पर दण्डवत् रखे· इस प्रकार यह प्रथम प्रकार की योनिमुद्रा होती है॥ २॥

सैव मिलितमध्यमा द्वितीया॥ ३॥

उपर्युक्त मुद्रा में जब दोनों मध्यमा अँगुलियाँ मिला देते हैं, तब द्वितीय प्रकार की योनि मुद्रा बनती है॥ ३॥

तृतीयाङ्कुशाकृतिरिति॥ ४॥

अंकुश की आकृति वाली तृतीय प्रकार की योनिमुद्रा कहलाती है॥ ४॥

प्रातिलोम्येन पाणी सङ्घर्षयित्वाङ्गुष्ठौ साग्रिमौ समाधाय तुरीया॥ ५॥

दोनों हाथ उलटी तरफ से मिलाकर दोनों अँगूठों को आगे रखकर मिलाने से चौथी प्रकार की योनिमुद्रा बनाई जाती है॥ ५॥

परस्परं कनीयसेदं मध्यमाबद्धे अनामिके दण्डिन्यौ तर्जन्यावालिङ्ग्यावष्टभ्य मध्यमानखमिलिताङ्गुष्ठौ पञ्चमी॥ ६॥

(दोनों) कनिष्ठिकाओं को फँसाकर, दोनों अनामिकाओं को मध्यमा अँगुलियों से बाँधकर, दोनों तर्जनी अँगुलियों को लपेटकर, दोनों अँगूठों के नाखूनों को मध्यमाओं के ऊपर रखकर पाँचवीं प्रकार की योनिमुद्रा बनाई जाती है॥ ६॥

सैवाग्रेऽङ्कुशाकृतिः षष्ठी॥ ७॥

पाँचवीं मुद्रा को ही अंकुश कृति के साथ करने से छठी प्रकार की योनिमुद्रा सम्पन्न होती है॥ ७॥

दक्षिणशये वामबाहुं कृत्वाऽन्योन्यानामिके कनीयसीमध्यगते मध्यमे तर्जन्याक्रान्ते सरलास्वङ्गुष्ठौ खेचरी सप्तमी॥ ८॥

दायें हाथ पर बाईं भुजा रखकर कनिष्ठिकाओं के मध्य में अनामिकाओं को परस्पर मिलाकर मध्यमाओं को तर्जनियों से दबाकर अँगूठों को सीधा रखने से सातवीं खेचरी योनिमुद्रा की रचना होती है॥ ८॥

सर्वोर्ध्वे सर्वसंहति स्वमध्यमानामिकाऽन्तरे कनीयसे पार्श्वयोस्तर्जन्यावङ्कुशाढ्ये युक्ता साङ्गुष्ठयोगतोऽन्योन्यं सममञ्जलिं कृत्वाऽष्टमी॥ ९॥

मध्यमा अनामिका के बीच में, दोनों ओर तर्जनी अँगुलियों को अंकुशवत् रखें, परस्पर अञ्जलि सम्मुख करें, दोनों अँगूठों को ऊपर से मिला देवें। यह प्रकारान्तर आठवीं से योनिमुद्रा होती है॥ ९॥

परस्परमध्यमापृष्ठवर्तिन्यावनामिके तर्जन्याक्रान्ते समे मध्यमे आदायाङ्गुष्ठौ मध्यवर्तिनौ नवमी प्रतिपद्यत इति॥ १०॥

जब दोनों अनामिकाएँ परस्पर मध्यमा अँगुलियों के पीछे रहें तथा तर्जनी अँगुलियों से दबी रहें, दोनों मध्यमाएँ बराबर रहें, बीच में दोनों अँगूठों को रखें, तब नवम प्रकार की योनि मुद्रा सिद्ध होती है॥ १०॥

सैवेयं कनीयसे समे अन्तरितेऽङ्गुष्ठौ समावन्तरितौ कृत्वा त्रिखण्डापद्यत इति। पञ्च बाणाः पञ्चाद्या मुद्राः स्पष्टाः॥ ११॥

[उपर्युक्त मन्त्र मुद्रा का संकेतक है ,जो पूरी तरह स्पष्ट नहीं है, इसीलिये इसका हिन्दी अनुवाद नहीं किया गया।]

क्रोमङ्कुशा। हसखफ्रें खेचरी। हस्त्रौं बीजाष्टमी वाग्भवाद्या नवमी दशमी च संपद्यत इति। य एवं वेद॥ १२॥

क्रों यह अङ्कुश बीज है, 'हस' यह शिव शक्ति बीज है, 'ख' यह मारण बीज है, 'फ्रें' यह मोहन बीज है। हसखफ्रें यह खेचरी बीज है, 'ह' यह सूर्य बीज है, 'स्त्रौं' यह कामबीज है, 'क' यह वाग्भवाद्य बीज है, इस प्रकार कुल मिलाकर ये नौ बीजाक्षर हैं। 'आदि' शब्द अर्थ कामकूटादि बीज है और 'ह' दसवाँ है। जो इस प्रकार से जानता है, वह मन्त्र सिद्ध हो जाता है॥ १२॥

अथात: कामकलाभूतं चक्रं व्याख्यास्यामो ह्रीं क्लीं ऐं ब्लूँ स्त्रौमेते पञ्च कामाः सर्वचक्रं व्याप्य वर्तन्ते। मध्यमं कामं सर्वावसाने संपुटीकृत्य ब्लूङ्कारेण संपुटं व्याप्तं कृत्वा द्विरैन्दवेन मध्यवर्तिना साध्यं बद्ध्वा भूर्जपत्रे यजति। तच्चक्रं यो वेत्ति स सर्वं वेत्ति। स सकलाँल्लोकानाकर्षयति। स सर्वं स्तम्भयति। नीलीयुक्तं चक्रं शत्रून्मारयति। गतिं स्तम्भयति। लाक्षायुक्तं कृत्वा सकललोकं वशीकरोति। नवलक्षजपं कृत्वा रुद्रत्वं प्राप्नोति। मातृकयावेष्टितं कृत्वा विजयी भवति। भगाङ्कुण्डं कृत्वाग्निमाधाय पुरुषो हविषा हुत्वा योषितो वशीकरोति। वर्तुले हुत्वा श्रियमतुलां प्राप्नोति। चतुरस्त्रे हुत्वा वृष्टिर्भवति। त्रिकोणे हुत्वा शत्रून्मारयति। गतिं स्तम्भयति। पुष्पाणि हुत्वा विजयी भवति। महारसैर्हुत्वा परमानन्दनिर्भरो भवति। महारसाः षड्रसाः॥ १३॥

अब कामकलाभूत चक्र की व्याख्या करेंगे। ह्रीं, क्लीं, ऐं, ब्लूं, स्त्रौं ये पाँच काम सम्पूर्ण चक्र को आवृत करते हैं। मध्यम काम को सबसे अन्त में संपुटित करके ब्लूंकार से संपुट को व्याप्त करके, मध्यवर्ती इन्दु बीज से साध्य को दो बार बाँधकर, भोजपत्र पर पूजन करना चाहिए। उस चक्र को जो जानता है, वह सब कुछ जानता है। वह सभी लोगों को आकर्षित करता है। वह सभी का स्तम्भन कर सकता है। नीलीयुक्त चक्र शत्रुओं को मारता है। गति का स्तम्भन करता है। लाख से बना हुआ चक्र सम्पूर्ण लोक को वश में कर सकता है। नौ लाख जप करने से रुद्रत्व की प्राप्ति होती है। मातृका से आवेष्टित करने पर साधक विजयी हो जाता है। योनि के आकार का कुण्ड बनाकर अग्निस्थापन करके हविष्य की आहुतियाँ देने पर, साधक (पुरुष) शक्तियों को वश में कर लेता है। गोलाकार कुण्ड में आहुतियाँ देने पर अतुल लक्ष्मी प्राप्त होती है। चौकोर कुण्ड में हवन करने से वर्षा होती है। त्रिकोण कुण्ड में हवन करने से शत्रुओं का मारण हो जाता है। गति का स्तम्भन हो जाता है। पुष्पों से हवन करने पर भी साधक विजय प्राप्त करता है। महारसों (षड्रसों) से आहुतियाँ देने पर साधक परमानन्द से परिपूर्ण हो जाता है॥ १३॥

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्। ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्। इत्येवमाद्यमक्षरं तदन्त्यबिन्दुपूर्णमित्यनेनाङ्गं स्पृशति। गं गणेशाय नम इति गणेशं नमस्कुर्वीत। ॐ नमो भगवते भस्माङ्गरागायोग्रतेजसे हनहन दहदह पचपच मथमथ विध्वंसयविध्वंसय हलभञ्जन शूलमूले व्यञ्जनसिद्धिं कुरुकुरु समुद्रं पूर्वप्रतिष्ठितं शोषयशोषय स्तम्भयस्तम्भय परमन्त्रपरयन्त्रपरतन्त्रपरदूतपरकटकपरच्छेदनकर विदारयविदारय च्छिन्धिच्छिन्धि ह्रीं फट् स्वाहा। अनेन क्षेत्राध्यक्षं पूजयेदिति॥ १४॥

गणानां त्वा ....सादनम्। इत्यादि मन्त्र के आदि में ॐकार तथा अन्त में बिन्दुपूर्ण करके इसके द्वारा अङ्गों का स्पर्श करें। गं गणेशाय नमः इस मन्त्र से गणपति को नमस्कार करना चाहिए। ॐ नमो भगवते ......ह्रीं फट् स्वाहा। इस मन्त्र के द्वारा क्षेत्रपाल का पूजन करें॥ १४॥

कुलकुमारि विद्महे मन्त्रकोटिसु धीमहि। तन्नः कौलिः प्रचोदयात्। इति। कुमार्यर्चनं कृत्वा यो वै साधकोऽभिलिखति सोऽमृतत्वं गच्छति। स यश आप्नोति। स परमायुष्यमथवा परं ब्रह्म भित्त्वा तिष्ठति। य एवं वेदेति महोपनिषत्॥ १५॥

'कुल कुमारि विद्महे मन्त्रकोटिसु धीमहि तन्नः। कौलिः प्रचोदयात्' इस मन्त्र के द्वारा जो साधक कुमारी का पूजन करके इसको लिखता है, वह अमृत पद को प्राप्त कर लेता है। वह यश को प्राप्त करता है, वह परमायुष्य को प्राप्त करता है अथवा वह परब्रह्म को भेदकर जीवित रहता है। जो ऐसा जानता है, वह पूर्ण काम हो जाता है। यही महोपनिषत् है॥ १५॥

॥ अथ चतुर्थोपनिषत् ॥

देवा ह वै भगवन्तमब्रुवन्देव गायत्रं हृदयं नो व्याख्यातं त्रैपुरं सर्वोत्तमम्॥ १॥

देवताओं ने भगवान् से कहा– त्रिपुरात्मक सर्वोत्तम गायत्रीछन्दोमय हृदय की व्याख्या तो आपने हमें बताई है॥ १॥

जातवेदससूक्तेनाख्यातं नस्त्रैपुराष्टकम्। यदिष्ट्वा मुच्यते योगी जन्मसंसारबन्धनात्॥ २॥

और जातवेदस-सूक्त के त्रिपुरा के अष्टक की व्याख्या भी समझा दी है। जिसका यजन करने से योगी जन्म-मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाता है॥ २॥

अथ मृत्युञ्जयं नो ब्रूहीत्येवं ब्रुवतां सर्वेषां देवानां श्रुत्वेदं वाक्यमथातस्त्र्यम्बकेनानुष्टुभेन मृत्युञ्जयं दर्शयति॥ ३॥

अब हमें मृत्युञ्जय के विषय में बताने की कृपा कीजिए। देवताओं के इस वाक्य को सुनकर तब अनुष्टुप् छन्दोबद्ध त्र्यम्बक मन्त्र से मृत्युञ्जय का दर्शन कराते हैं॥ ३॥

कस्मात्त्र्यम्बकमिति। त्रयाणां पुराणामम्बकं स्वामिनं तस्मादुच्यते त्र्यम्बकमिति॥ ४॥

इसको त्र्यम्बक क्यों कहा गया है? तीनों पुरों के स्वामी (अम्बक) को ही त्र्यम्बक कहा जाता है॥ ४॥

अथ कस्मादुच्यते यजामह इति। यजामहे सेवामहे वस्तु महेत्यक्षरद्वयेन कूटत्वेनाक्षरैकेन मृत्युंजयमित्युच्यते तस्मादुच्यते यजामह इति॥ ५॥

'यजामहे' क्यों कहा जाता है। यजामहे का आशय है– हम सेवा करते हैं। यजामहे पद में 'मह' इन दो अक्षरों से एकाक्षर कूट होने के कारण मृत्युञ्जय कहा जाता है। इसीलिए यजामहे पद का अर्थ है- हम (मृत्युञ्जय की) यजामहे-सेवा करते हैं॥ ५॥

अथ कस्मादुच्यते सुगन्धिमिति। सर्वतो यश आप्नोति। तस्मादुच्यते सुगन्धिमिति॥ ६॥

प्रश्न- सुगन्धिम् क्यों कहा गया है? उत्तर-सब प्रकार से यश प्राप्त करता है। इसी से सुगन्धिम् कहा जाता है॥ ६॥

अथ कस्मादुच्यते पुष्टिवर्धनमिति। यः सर्वान्लोकान् सृजति यः सर्वान् लोकान्तारयति यः सर्वान्लोकान्व्याप्नोति तस्मादुच्यते पुष्टिवर्धनमिति॥ ७॥

प्रश्न–पुष्टिवर्धनम् क्यों कहा गया है? उत्तर– जो सभी लोकों की सृष्टि करता है, जो समस्त लोकों का उद्धार करता है, जो समस्त लोकों में व्याप्त रहता है, इसलिए वह पुष्टिवर्धन कहा जाता है॥ ७॥

अथ कस्मादुच्यते उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयेति। संलग्नत्वादुर्वारुकमिव मृत्योः संसारबन्धनात्संल्लग्नत्वाद्बद्धत्वान्मोक्षीभवति मुक्तो भवति॥ ८॥

प्रश्न– उर्वारुकमिव क्यों कहा गया है? उत्तर– उर्वारुक (ककड़ी) के समान संलग्न होने से, मृत्यु के संसारबन्धन से संलग्न होने से, बन्धन से ग्रस्त होने से मुक्त हो जाता है॥ ८॥

अथ कस्मादुच्यते मामृतादिति अमृतत्वं प्राप्नोत्क्षरं प्राप्नोति स्वयं रुद्रो भवति॥ ९॥

प्रश्न–'मामृतात्' क्यों कहा गया है? उत्तर– वह अमर हो जाता है, अक्षर (ब्रह्म) को प्राप्त करता है, वह स्वयं रुद्ररूप हो जाता है॥ ९॥

देवा ह वै भगवन्तमूचुः-सर्वं नो व्याख्यातम्। अथ कैर्मन्त्रैः स्तुता भगवती स्वात्मानं दर्शयति तान्सर्वाञ्छैवान्वैष्णवान्सौरान्गाणेशान्नो ब्रूहीति॥ १०॥

तब देवों ने कहा— भगवन्! आपने हमें सम्पूर्ण व्याख्या समझा दी है। भगवन्! बताइये किन मन्त्रों के द्वारा स्तुति करने पर भगवती अपना दर्शन देती हैं? उन सभी शैव, वैष्णव, सौर एवं गणेश मन्त्रों को हमें बताइये॥ १०॥

स होवाच भगवांत्र्यम्बकेनानुष्टुभेन मृत्युञ्जयमुपासयेत्। पूर्वेणाध्वना व्याप्तमेकाक्षरमितिस्मृतम्॥ ११॥

भगवान् ने उत्तर दिया— आनुष्टुभ त्र्यम्बक मन्त्र के द्वारा मृत्युञ्जय की उपासना करनी चाहिए। पूर्वोक्त विधि से सर्वत्र एकाक्षर ब्रह्म व्याप्त है, यह विदित होता है॥ ११॥

ॐ नमः शिवायेति याजुषमन्त्रोपासको रुद्रत्वं प्राप्नोति। कल्याणं प्राप्नोति। य एवं वेद॥ १२॥

ॐ नमःशिवाय इस याजुष मन्त्र की उपासना करने वाला रुद्रत्व को प्राप्त कर लेता है। कल्याण को प्राप्त करता है। जो ऐसा जानता है (वह पूर्ण मनोरथ हो जाता है) ॥१२॥

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्॥ १३॥

अर्थ– ज्ञानीजन, विश्वव्यापी भगवान् विष्णु के परम पद को द्युलोक में परिव्याप्त दिव्य प्रकाश की भाँति देखते रहते हैं। (अर्थात् उस परमेश्वर की व्यापकता का सतत अनुभव करते हैं।) ॥ १३॥

विष्णोः सर्वतोमुखस्य स्नेहो यथा पललपिण्डमोतप्रोतमनुव्याप्तं व्यतिरिक्तं व्याप्नुत इति व्याप्नुवतो विष्णोस्तत्परमं पदं परं व्योमेति परमं पदं पश्यन्ति वीक्षन्ते। सूरयो ब्रह्मादयो देवास इति सदा हृदय आदधते। तस्माद्विष्णोः स्वरूपं वसति तिष्ठति भूतेष्विति वासुदेव इति॥ १४॥

(विशेष व्याख्या) सर्वतोमुखी विष्णु भगवान् का स्नेह जैसे इस मांसपिण्ड (शरीर) में ओतप्रोत है तथा व्यतिरिक्तरूपेण इस दृश्यमान पञ्चभूतात्मक जगत् में भी सर्वत्र व्याप्त है। उन सर्वतः व्याप्त विष्णु भगवान् का परम श्रेष्ठ पद (स्थान) व्योम है। उस परम पद को निरन्तर देखते रहकर व्यवस्था करते रहते हैं। सूरयः अर्थात् ब्रह्मादि देवता सदा हृदय में धारण करते हैं। इसलिए विष्णु का स्वरूप है, जिसे वे धारण करते हैं। सभी प्राणियों में निवास करने के कारण वे वासुदेव कहलाते हैं॥ १४॥

ॐ नम इति त्रीण्यक्षराणि। भगवत इति चत्वारि। वासुदेवायेति पञ्चाक्षराणि। एतद्वै वासुदेवस्य द्वादशार्णमभ्येति। सोपप्लवं तरति। स सर्वमायुरेवैति। विन्दते प्राजापत्यं रायस्पोषं गौपत्यं च समश्नुते॥ १५॥

'ॐ नमः' ये तीन अक्षर हैं। 'भगवते' ये चार अक्षर हैं। 'वासुदेवाय' ये पाँच अक्षर हैं। यही वासुदेव सर्वव्यापक विष्णु का द्वादशाक्षर मन्त्र है। इसका जप करने वाला सभी उपद्रवों से पार हो जाता है। वह पूर्ण आयु को प्राप्त करता है। वह श्रेष्ठ प्रजा (सन्तान) निरन्तर वर्धनशील सम्पत्ति एवं श्रेष्ठ पशुधन का स्वामित्व प्राप्त करता है॥ १५॥

प्रत्यगानन्दं ब्रह्मपुरुषं प्रणवस्वरूपमकार उकारो मकार इति। तानेकधा संभवति तदोमिति॥ १६॥

अकार, उकार, मकारात्मक प्रणव स्वरूप ही प्रत्यगानन्द ब्रह्मपुरुष है। इन सभी का एकत्व ओम् ही है॥ १६॥

हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्। नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्॥ इति॥ १७॥

मन्त्र- हंसः शुचि षद्वसुरन्तरिक्ष सद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्। नृषद्वरसदृत सद्व्योमसदब्जागोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्॥ १७॥

हंसः इत्येतन्मनोरक्षरद्वितीयेन प्रभापुञ्जेन सौरेण धृतमब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं सत्या प्रभा पुञ्जिन्युषासंध्या प्रज्ञाभिः शक्तिभिः पूर्वं सौरमधीयानः सर्वं फलमश्नुते। स व्योम्नि परमे धामनि सौरे निवसते॥ १८॥

इस मन्त्र के आद्य (हंसः) अक्षरद्वयके सूर्य से प्रभापुञ्ज से विधृत, अब्जा, गोजा, ऋतजा, अद्रिजा, ऋत, सत्या, प्रभा,पुञ्जिनी, उषा, संध्या, प्रज्ञा- इन शक्तियों के साथ पूर्व सौर (हंस का अध्ययन)करने वाला सम्पूर्ण फल को प्राप्त कर लेता है। वह सूर्य के परमव्योमस्थ धाम में निवास कर लेता है॥ १८॥

गणानां त्वेति त्रैष्टुभेन पूर्वेणाध्वना मनुनैकार्णेन गणाधिपमभ्यर्च्य गणेशत्वं प्राप्नोति॥ १९॥

गणानान्त्वा-इत्यादि पूर्वोक्त त्रैष्टुभ मन्त्र के साथ एकाक्षर मन्त्र से गणाधिप का पूजन करने से गणेशत्व प्राप्त हो जाता है॥ १९॥

अथ गायत्री सावित्री सरस्वत्यजपा मातृका प्रोक्ता तयासर्वमिदं व्याप्तम् इति॥ २०॥

अजपा मातृका है, जिससे यह सम्पूर्ण विश्व व्याप्त है। वही गायत्री, सावित्री एवं सरस्वती स्वरूपा है॥ २०॥

ऐं वागीश्वरि विद्महे क्लीं कामेश्वरि धीमहि। सौस्तन्नः शक्तिः प्रचोदयादिति॥ गायत्री प्रातः सावित्री मध्यन्दिने सरस्वती सायमिति निरन्तरमजपा। हंस इत्येव मातृका। पञ्चाशद्वर्णविग्रहेणाकारादिक्षकारान्तेन व्याप्तानि भुवनानि शास्त्राणि छन्दांसीत्येवं भगवती सर्वं व्याप्नोतीत्येव तस्यै वै नमो नम इति॥ २१॥

ऐं वागेश्वरि विद्महे क्लीं कामेश्वरि धीमहि सौस्तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्। प्रातः गायत्री, मध्याह्न में सावित्री एवं सायं सरस्वती इस प्रकार निरन्तर अजपा (गायत्री) है। हंसः यही मातृका है। पचास वर्णों के विग्रह वाली अकार से क्षकार पर्यन्त भगवती मातृका से ही समस्त भुवन समस्त शास्त्र, एवं समस्त छन्द व्याप्त हैं। उस भगवती मातृका को बार-बार नमस्कार है॥ २१॥

तान्भगवानब्रवीदेतैर्मन्त्रैर्नित्यं देवीं यः स्तौति स सर्वं पश्यति। सोऽमृतत्वं च गच्छति। य एवं वेदेत्युपनिषत्॥ २२॥

भगवान् ने उनसे कहा— इन मन्त्रों से जो प्रतिदिन देवी की स्तुति करता है, वह सर्वद्रष्टा बन जाता है। वह अमृतत्व को प्राप्त कर लेता है। जो ऐसा जानता है, वह सफल मनोरथ हो जाता है, यही उपनिषद् है॥ २२॥

॥ अथ पञ्चमोपनिषत्॥

देवा ह वै भगवन्तमब्रुवन्स्वामिन्नः कथितं स्फुटं क्रियाकाण्डं सविषयं त्रैपुरमिति। अथ परमनिर्विशेषं कथयस्वेति॥ १॥

देवों ने भगवान् से पूछा— हे भगवन्! हे स्वामिन्! आपने हमें त्रिपुरोपासना के विषय में स्पष्ट कर्मकाण्ड, विषय सहित बता दिया। अब वह परम रहस्य बताइये, जिससे बढ़कर कोई रहस्य नहीं है॥ १॥

तान् होवाच भगवांस्तुरीयया माययाऽन्त्यया निर्दिष्टं परमं ब्रह्मेति। परमपुरुषं चिद्रूपं परमात्मेति। श्रोता मन्ता द्रष्टाऽऽदेष्टा स्प्रष्टाऽऽघोष्टा विज्ञाता प्रज्ञाता सर्वेषां पुरुषाणामन्तःपुरुषः स आत्मा स विज्ञेय इति॥ २॥

तब भगवान् ने उनसे कहा— अन्त्यतुरीय मायाशक्ति के द्वारा परम ब्रह्म का ही निर्देश किया गया है। चिद्रूप जो परम पुरुष है, वही परमेश्वर है। जो सभी पुरुषों का अन्तः पुरुष है, जो सबका श्रोता, मन्ता, द्रष्टा, आदेष्टा, स्प्रष्टा, घोषक, विज्ञाता एवं प्रज्ञाता है, वही आत्मा है, वही विशेषतः ज्ञातव्य है॥ २॥

न तत्र लोका अलोका न तत्र देवा अदेवाः पशवोऽपशवस्तापसो न तापसः पौल्कसो न पौल्कसो विप्रा न विप्राः। स इत्येकमेव परं ब्रह्म विभ्राजति निर्वाणम्। न तत्र देवा ऋषयः पितर ईशते प्रतिबुद्धः सर्वविद्येति॥ ३॥

वहाँ न लोक है न अलोक है, न वहाँ देव है, न अदेव है, न पशु है न अपशु ही है, न वहाँ तपस्वी है, न अतपस्वी, न कोई चाण्डाल है, न अचाण्डाल है, न विप्र है, न अविप्र ही है। वह एक ही परब्रह्म निर्वाण रूप में प्रकाशमान है। न वहाँ देवता, न ऋषि और न पितृगण ही शासन करते हैं। जो प्रतिबद्ध है, वही सर्वज्ञ हो सकता है॥ ३॥

तत्रैते श्लोका भवन्ति- अतो निर्विषयं नित्यं मनः कार्यं मुमुक्षुणा। यतो निर्विषयो नाम मनसो मुक्तिरिष्यते॥ ४॥

इस विषय में ये श्लोक भी कहे गये हैं, जिनका अर्थ इस प्रकार है— मन का विषयहीन हो जाना ही मुक्ति कही गई है, अतएव मुक्ति के अभिलाषी को सतत मन को विषयमुक्त रखना चाहिए॥ ४॥

मनो हि द्विविधं प्रोक्तं शुद्धं चाशुद्धमेव च। अशुद्धं कामसंकल्पं शुद्धं कामविवर्जितम्॥ ५॥

अशुद्ध एवं शुद्ध भेद से मन दो प्रकार का होता है। जिसमें इच्छाएँ व संकल्प हों, वह मन अशुद्ध तथा जो इच्छाओं से रहित है, वह मन शुद्ध कहा जाता है॥ ५॥

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः। बन्धनं विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं मनः॥ ६॥

मन ही मनुष्यों के बन्धन एवं मुक्ति का मुख्य हेतु है। विषयासक्त मन ही बन्धन है तथा निर्विषय मन ही मुक्ति का हेतु है॥ ६॥

निरस्तविषयासङ्गं संनिरुध्य मनो हृदि। यदा यात्यमनीभावस्तदा तत्परमं पदम्॥ ७॥

विषयासक्ति से मुक्त मन को हृदय में रोक कर जब अमनीभाव की स्थिति प्राप्त हो जाती है, उसे ही परमपद की स्थिति कहा गया है॥ ७॥

तावदेव निरोद्धव्यं यावद्धृदि गतं क्षयम्। एतज्ज्ञानं च ध्यानं च शेषोऽन्यो ग्रन्थविस्तरः॥ ८॥

(मन को) तभी तक रोके रखना चाहिए, जब तक मन हृदय में ही शान्त न हो जाय। इसी को ज्ञान, इसी को ध्यान समझना चाहिए, शेष सब तो ग्रन्थों का विस्तार मात्र है॥ ८॥

नैव चिन्त्यं न चाचिन्त्यं नचिन्त्यं चिन्त्यमेव च। पक्षपातविनिर्मुक्तं ब्रह्म संपद्यते ध्रुवम्॥ ९॥

(ब्रह्मज्ञान हो जाने पर ब्रह्मभाव की प्राप्ति हो जाती है, ऐसी स्थिति में) पूर्वोक्त ध्यान एवं ज्ञान से उत्पन्न स्थिति चिन्तनीय नहीं है, क्योंकि परमात्मा जीवात्मा से पृथक् विद्यमान रहता है और अचिन्तनीय भी नहीं है, क्योंकि परमात्म-बोध हो जाने पर जीवात्मा की अलग स्थिति नहीं रह जाती। इस प्रकार चिन्तनीय होते हुए भी चिन्तनीय नहीं है। चिन्तनीय-विचारणीय तो केवल वह पक्षपात रहित (शुद्ध-निर्विकार) ब्रह्म है, भाव यह है कि पक्षपातरहित जीवात्मा ही निश्चित रूप से ब्रह्मत्व को प्राप्त हो जाता है॥ ९॥

स्वरेण संलयेद्योगी स्वरं संभावयेत्परम्। अस्वरेण तु भावेन न भावो भाव इष्यते॥ १०॥

योगी को स्वर के साथ ही लय करना चाहिए। स्वर का सदा सम्मान (ध्यान) करना चाहिए। स्वर के बिना भाव, अभीष्ट भाव नहीं होता है॥ १०॥

तदेव निष्कलं ब्रह्म निर्विकल्पं निरञ्जनम्। तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा ब्रह्म संपद्यते क्रमात्॥ ११॥

वह ब्रह्म (निष्कलारहित) है, निर्विकल्प है, निरञ्जन है। वह ब्रह्म मैं ही हूँ, यह ज्ञान होने पर जीवात्मा ब्रह्म हो जाता है॥ ११॥

निर्विकल्पमनन्तं च हेतुदृष्टान्तवर्जितम्। अप्रमेयमनाद्यन्तं यज्ज्ञात्वा मुच्यते बुधः॥ १२॥

वह निर्विकल्प है, वह अनन्त है, उसे सिद्ध करने के लिए न कोई हेतु है और न ही कोई दृष्टान्त है। उसका कोई प्रमाण नहीं है, उसका न आदि है न अन्त। विद्वान् पुरुष जिसे जानकर मुक्त हो जाता है॥ १२॥

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः। न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता॥ १३॥

उस मुक्त पुरुष का न निरोध है, न उत्पत्ति होती है। न तो वह बद्ध ही है और न वह किसी बन्धन से मुक्त ही है। न वह मुक्ति की अर्थ-साधना ही करता है और न वह मुक्ति की इच्छा ही करता है॥ १३॥

एक एवात्मा मन्तव्यो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु। स्थानत्रयव्यतीतस्य पुनर्जन्म न विद्यते॥ १४॥

जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में वह एकमात्र आत्मा ही है, ऐसा जानना चाहिए। जो इन तीनों अवस्थाओं से अतीत हो जाता है, फिर उसका पुनर्जन्म नहीं होता॥ १४॥

एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः। एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत्॥ १५॥

एक ही वह आत्मा प्रत्येक प्राणी में उसी प्रकार निवास करता है। (जिस प्रकार) एक ही चन्द्रमा पानी (सरोवर के जल) में अनेक चन्द्रमाओं के समान एक या अनेक रूपों में दिखाई देता (प्रतिबिम्बित होता) है॥ १५॥

घटसंवृतमाकाशं नीयमाने घटे यथा। घटो नीयेत नाकाशं तथा जीवो नभोपमः॥ १६॥

खाली घड़ा भी आकाश से भरा रहता है। जब घड़े को अन्यत्र ले जाते हैं, तो आकाश नहीं ले जाया जाता है; क्योंकि आकाश तो सर्वत्र व्याप्त ही रहता है, यही जीव की आकाश से समानता है॥ १६॥

घटवद्विविधाकारं भिद्यमानं पुनः पुनः। तद्भेदे च न जानाति स जानाति च नित्यशः॥ १७॥

अलग-अलग प्रकार के घड़ों के समान विभिन्नरूपों वाले जीव होते हैं, जो घड़े के समान ही बार-बार छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। इस छिन्नभिन्नता के विषय में सामान्य जीव नहीं जानते हैं, परन्तु जो नित्य है, वह तो जानता ही है॥ १७॥

शब्दमायावृतो यावत्तावत्तिष्ठति पुष्कले। भिन्ने तमसि चैकत्वमेक एवानुपश्यति॥ १८॥

जब तक शब्द जाल से आवृत रहता है, तब तक ही पुष्कल (अनेकत्व) में रहता है, परन्तु अज्ञान के नष्ट हो जाने पर एक ही रहकर सब में एकत्व का ही दर्शन करता है॥ १८॥

शब्दार्णमपरं ब्रह्म तस्मिन्क्षीणे यदक्षरम्। तद्विद्वानक्षरं ध्यायेद्यदीच्छेच्छान्तिमात्मनः॥ १९॥

शब्द या अक्षरों से परिछिन्न अपर ब्रह्म है, उसके क्षीण हो जाने पर जो अक्षर ब्रह्म शेष रहता है, विद्वान् पुरुष को यदि आत्मशान्ति की इच्छा है, उसी का ध्यान करना चाहिए॥ १६॥

द्वे ब्रह्मणी हि मन्तव्ये शब्दब्रह्म परं च यत्। शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति॥२०॥

दो ब्रह्म हैं ऐसा मानना चाहिए— १. शब्दब्रह्म २. परब्रह्म। परन्तु जो शब्दब्रह्म में निष्णात है, वही परब्रह्म को प्राप्त करता है॥ २०॥

ग्रन्थमभ्यस्य मेधावी ज्ञानविज्ञानतत्परः। पलालमिव धान्यार्थी त्यजेद्ग्रन्थमशेषतः॥ २१॥

ज्ञान-विज्ञान में दक्ष मेधावी पुरुष को ग्रन्थों का अभ्यास करके (पलाल) पुआल को धान्यार्थी के समान ग्रन्थ को पूर्णतः त्याग देना चाहिए॥ २१॥

गवामनेकवर्णानां क्षीरस्याप्येकवर्णता। क्षीरवत्पश्यति ज्ञानीलिङ्गिनस्तु गवां यथा॥ २२॥

यद्यपि गौएँ तो अनेक रंगों की होती हैं, परन्तु उन सबके दूध का रंग सफेद ही होता है। ज्ञानी पुरुष तत्त्व को दूध के समान देखता है, परन्तु संसारी लोग गौओं की तरह भेद दृष्टि से जगत् का अवलोकन करते हैं॥ २२॥

ज्ञाननेत्रं समाधाय स महत्परमं पदम्। निष्कलं निश्चलं शान्तं ब्रह्माहमिति संस्मरेत्॥ २३॥

ज्ञानी को चाहिए कि ज्ञान का चश्मा चढ़ाकर उस महत् परम पद का अवलोकन करे। साथ ही यह भी नहीं भूले कि मैं ही निष्कल, निश्चल, शान्त ब्रह्म हूँ॥ २३॥

इत्येकं परब्रह्मरूपं सर्वभूताधिवासं तुरीयं जानीते सोऽक्षरे परमे व्योमन्यधिवसति॥२४॥

जो इस प्रकार सम्पूर्ण भूतों में निवास करने वाले परब्रह्मरूप तुरीय तत्त्व को जानता है, वह उस अक्षर परम व्योम में निवास करता है॥ २४॥

य एतां विद्यां तुरीयां ब्रह्मयोनिस्वरूपां तामिहायुषे शरणमहं प्रपद्ये॥ २५॥

जो इस ब्रह्मयोनि- स्वरूप तुरीय विद्या को जानता है, मैं आयु वृद्धि के लिए उसी की शरण में जाता हूँ॥ २५॥

आकाशाद्यनुक्रमेण सर्वेषां वा एतद्भूतानामाकाशः परायणम्। सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव जायन्ते। आकाश एव लीयन्ते। तस्मादेव जातानि जीवन्ति। तस्मादाकाशजं बीजं विद्यात्॥ २६॥

आकाशादि अनुक्रम से सभी भूतों में आकाश ही सर्वश्रेष्ठ है, ये सभी भूत (प्राणी) आकाश से ही उत्पन्न होते हैं एवं आकाश में ही लीन हो जाते हैं। आकाश से ही उत्पन्न होकर जीवित रहते हैं। इसलिए आकाश से उद्भूत बीज का ही चिन्तन करना चाहिए॥ २६॥

तदेवाकाशपीठं स्पार्शनं पीठं तेजः पीठममृतपीठं रत्नपीठं जानीयात्। यो जानीते सोऽमृतत्वं च गच्छति॥ २७॥

उसी एक आकाशपीठ को ही स्पर्शपीठ, तेजःपीठ, अमृतपीठ एवं रत्नपीठ जानना चाहिए, जो इस रहस्य को जानता है, वह अमृतपद को प्राप्त होता है॥ २७॥

तस्मादेतां तुरीयां श्रीकामराजीयामेकादशधा भिन्नामेकाक्षरं ब्रह्मेति यो जानीते स तुरीयं पदं प्राप्नोति। य एवं वेदेति महोपनिषद्॥ इति त्रिपुरातापिन्युपनिषत् पञ्चमोपनिषत्॥ २८॥

इसलिए ग्यारह प्रकार के भेदवाली तथा एकाक्षर ब्रह्मरूप इस श्रीकामराजीय तुरीय विद्या को जानता है, वह तुरीयपाद को प्राप्त कर लेता है। जो इस प्रकार से इस महोपनिषद् को जानता है, उस के मनोरथ सफल होते हैं। इस प्रकार त्रिपुरातापिन्युपनिषत् की पाँचवीं उपनिषत् पूर्ण हुई॥ २८॥

॥ इति त्रिपुरातापिन्युपनिषत् समाप्ता॥

॥ दशश्लोक्युपनिषद् ॥

॥ ॐ श्री गणेशाय नमः ॥

ॐ न भूमिर्नतोयं न तेजो न वायुर्न खं नेन्द्रियं वा न तेषां समूहः। अनैकान्तिकत्वात्सुषुप्तैक सिद्धस्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम्॥ १ ॥

मैं न भूमि हूँ, न जल हूँ, न तेज हूँ, न वायु हूँ, न आकाश हूँ, न इन्द्रिय हूँ और न उनका समूह ही हूँ। (इस प्रकार) कोई निश्चय नहीं कर सकता। (किन्तु) इतना अनुभव कर रहा हूँ कि सुषुप्ति दशा में सिद्ध अनुभूत सुखस्वरूप हूँ। बस वही एकशेष रहने वाला केवल शिव मैं हूँ (सबके निषेध कर देने के पश्चात् जो शेष रहता है, वह मैं हूँ, मैं वही केवल शिव हूँ) ॥ १ ॥

न वर्णा न वर्णाश्रमाचारधर्मा न मे धारणाध्यान योगादयोऽपि। अनात्माश्रयोऽहं ममाध्यासहानात्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम्॥ २ ॥

मेरे न तो वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) हैं, न वर्णाश्रमाचरण के धर्म हैं, (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ये चारों आश्रम और इनके धर्म मेरे नहीं हैं)। धारणा, ध्यान और योग (समाधि) आदि भी मेरे नहीं हैं, अनात्मा देह आदि का आश्रय हूँ (इसलिए अविद्या के कारण उन देह आदि अनात्मा में मेरापन का अध्यास हो जाता है, रज्जु में सर्प की भाँति भ्रान्ति हो जाती है); किन्तु अब उस अध्यास (आभास) के नष्ट हो जाने पर जब आत्मबोध हुआ, तब समझ में आया कि सब के निषेध के पश्चात् एकशेष रहने वाला केवल शिव मैं हूँ ॥ २ ॥

न माता पिता वा न देवा न लोका न वेदा न यज्ञा न तीर्थं ब्रुवन्ति।
सुषुप्तौ निरस्तानि शून्यात्मकत्वात्तदेकोवशिष्ट शिवः केवलोऽहम्॥ ३ ॥

मेरे न माता-पिता हैं, न देव, न लोक, न वेद, न यज्ञ और तीर्थ हैं। सुषुप्ति में सबके निरस्त हो जाने के बाद अतिशून्य अवस्था हो जाती है। बस उस स्थिति में जो एक अवशिष्ट रहता है, वही केवल एक शिव मैं हूँ॥ ३ ॥

न सांख्यं न शैवं न तत्पाञ्चरात्रं न जैनं न मीमांसकादेर्मतं वा।
विशिष्टानुभूत्या विशुद्धात्मकत्वात्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम्॥ ४॥

मेरा न सांख्य मत है, न शैव, न पाञ्चरात्र (वैष्णव), न जैन और न मीमांसक आदि का मत है। विशिष्ट अनुभूति से (सब प्रपञ्च से परे) मैं विशुद्ध आत्मा हूँ। (और वही) एक अवशिष्ट केवल शिव मैं हूँ॥ ४॥

न चोर्ध्वं न चाधो न चान्तर्नबाह्यं न मध्यं न तिर्यङ्न पूर्वापरादिक्।
वियद्व्यापकत्वादखंडैकरूपस्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम्॥ ५ ॥

(मेरे) न (कोई) ऊपर है, न नीचे है, न अन्दर है, न बाहर है, न बीच में है, न तिरछा है और न पूर्व और पश्चिम आदि दिशा है। आकाश के समान व्यापक होने के कारण मेरा एक अखण्ड रूप है, बस एक अवशिष्ट केवल शिव मैं हूँ॥ ५ ॥

न शुक्लं न कृष्णं न रक्तं न पीतं न पीनं न कुब्जं न ह्रस्वं न दीर्घं।
अरूपं तथा ज्योतिराकारकत्वात्तदेको ऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम्॥ ६॥

(मेरा) न शुक्ल (रूप) है, न काला, न लाल, न पीला, न मोटा, न कुबड़ा, न छोटा और न लम्बा (आकार) है; किन्तु रूपरहित, ज्योतिर्मय हूँ, (वही) एक अवशिष्ट केवल 'शिव' मैं हूँ॥ ६॥

न शास्ता न शास्त्रं न शिष्यो न शिक्षा न च त्वं न चाहं न चायं प्रपञ्चः। स्वरूपावबोधो ऽविकल्पासहिष्णुस्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम्॥ ७॥

न मेरा कोई शास्ता (उपदेशक, शासक) है, न शास्त्र है। मैं न शिष्य हूँ, न मेरी कोई शिक्षा है, न तू है, न मैं हूँ और न प्रपञ्च ही है। सभी विकल्प से रहित, स्वरूपावबोध वाला (दुष्ट-दुराचारियों को) न सहन करने वाला, एक अवशिष्ट केवल शिव मैं हूँ॥ ७॥

न जाग्रं न मे स्वप्नको वा सुषुप्तिर्न विश्वो न वा तैजसः प्राज्ञको वा।
अविद्यात्मक-त्वात्त्रयाणां तुरीयस्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम्॥ ८॥

मेरी न जाग्रत् अवस्था है, न स्वप्नावस्था है और न सुषुप्ति ही है। मैं न विश्व, न तैजस और न प्राज्ञ हूँ, ये तीनों अविद्यात्मक हैं अर्थात् अज्ञान से उपहित हैं। इन तीनों से परे एक तुरीय (चतुर्थ) अवस्था है, उस अवस्था में एक अवशिष्ट केवल शिव मैं हूँ॥ ८॥

अपि व्यापकत्वाद्धितत्त्व प्रयोगात् स्वतः-सिद्धभावादनन्याश्रयत्वात्।
जगत् तुच्छमेतत् समस्तं तदन्यत्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम॥ ९॥

वह सर्वव्यापक है, ऐसी अनुभूति होने से अर्थात् उसकी सर्वव्यापकता के ज्ञान से, तत्त्व प्रयोग से (वास्तविक तत्त्वज्ञान हो जाने से, स्वतः सिद्ध होने से और अनन्याश्रय होने से) उसका कोई अन्य आश्रय न होने से अर्थात् वह सबका आश्रय है, पर उसका कोई आश्रय नहीं है। ऐसी अनुभूति हुई और ऐसा ज्ञान हुआ तब यह प्रतीत हुआ। यह समस्त जगत् तुच्छ है, इस जगत् से परे अवशिष्ट केवल शिव मैं हूँ॥ ९॥

न वैकं तदन्यं द्वितीयं कुतः स्यान्न वा केवलत्वं न वा केवलत्वम्।
न शून्यं न चा- शून्यमद्वैतकत्वात्कथं सर्ववेदान्तसिद्धं ब्रवीमि॥ १०॥

न एक है, तब उससे अन्य द्वितीय कहाँ से हो सकता है? न केवल है? न अकेवलत्व, न शून्य है और न अशून्य है। अद्वैत होने से, सम्पूर्ण वेदान्त के सिद्धान्त को कैसे कह सकता हूँ? वह एक अनिर्वचनीय है॥ १०॥

॥ इति दशश्लोक्युपनिषत्समाप्ता॥

॥ नारदोपनिषद् ॥

॥ शान्तिपाठः ॥

॥ ॐ भद्रं कर्णेभिः .... इति शान्तिः ॥ (द्रष्टव्य- अथर्वशिखोपनिषद्)

अथ प्रणिपत्य नारदो ब्रह्माणं प्रायुङ्क्त। अधीहि भगवन्मे किं पवित्राणां पवित्रं केन सुकरेणामृतत्वमेति। स होवाच साधुत्वे नियोगं सुलभं पवित्रं सुलभं सुकरं तद्विष्णुक्षेत्रं तत्र मृदं श्वेतं ''उद्धृतासि'' इत्युद्धरेत्। अमृतमेव श्वेतमृद्भवति। मूलमन्त्रद्वयं च ''विष्णोर्नुकम् ,'' ''गन्धद्वाराम्'' इत्येताभिरभिमन्त्रयेत्। देवपितृकर्माण्यारभमाणस्त्रयी नित्यमूर्ध्वपुण्ड्रं च कुर्यान्मन्त्रैः केशवादीनाम्। तत्कर्म सफलं च भवति। न रक्षांसि गृह्णीयुः। तदेवमभ्युक्तं भवति। नासादिकेशान्तमूर्ध्वपुण्ड्रं विष्णोः स्थितस्य चरणद्वयाकृति। आयतमेकाङ्गुलं पादतरोरस्य मूलम्। तदुत्पन्ने द्वे रेखे। तथैव च धृतं विष्णुना वा ''आदित्यवर्णे तपसः'' इति हरिद्रां श्रीफले धारयेत्। तज्जलेन श्रीबीजेन संमृज्य तत्सूक्ष्मरेखां धारयेत्। ते द्वे शाखे हंसवर्णे गायत्रीत्रिष्टुब्दैवत्ये आत्मपरमात्मदैवत्ये लक्ष्मीनारायणदैवत्ये दर्शपूर्णमासेष्टके इष्टापूर्तक्रिये.......। (मातृकायामेतावदेवोपलब्धम्)।

नारद जी ने प्रणाम करके ब्रह्माजी से पूछा— भगवन्, सबसे पवित्र क्या है ? क्या करने से अमृतत्व की प्राप्ति होती है, इसे विधिवत् बताने की कृपा करें। तब ब्रह्माजी ने कहा— साधुभाव में रहना बड़ा पवित्र तथा सुलभ और सुकर है। यह विष्णु का क्षेत्र है। सफेद मिट्टी को 'उद्धृतासि' यह बोलकर उठाये। अमृत ही श्वेत मिट्टी होती है। फिर दो मूलमन्त्रों से उसे अभिमन्त्रित करे। मन्त्र ये हैं—

''**विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजाꣳसि यो अस्कमाय दुत्तरꣳसधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः**'', ''**गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्य पुष्टां करीषिणीम्। ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्॥**'' देवपितृ कर्मों को आरम्भ करते हुए त्रयी (ऋग्यजुसाम) की प्रतीक तीन रेखा वाला ऊर्ध्व त्रिपुण्ड्र 'केशवाय नमः, गोविन्दाय नमः, नारायणाय नमः' इन मन्त्रों का उच्चारण करते हुए बनाए। इससे उसके वे कर्म सफल होते हैं। राक्षस उनमें विघ्न नहीं डाल पाते। उसे ऊर्ध्व-पुण्ड्र का स्वरूप कहते हैं। नासिका के अग्रभाग से प्रारम्भ करके केशों तक का ऊर्ध्व-पुण्ड्र बैठे हुए विष्णु के चरणद्वय की आकृति वाला है। एक अंगुल की चौड़ाई वाला पादरूपी वृक्ष का मूल है। उससे उत्पन्न दो रेखाएँ विष्णु ने उसी प्रकार धारण की हैं। '**आदित्य वर्णे तपसः**' इस मन्त्र से हल्दी और श्रीफल को धारण करे। उस जल में श्रीबीज को रगड़कर उससे उस पतली रेखा को धारण करे। वे दोनों शाखाएँ हंस वर्णाकृति गायत्री त्रिष्टुप् देवता वाली, आत्म-परमात्म देवता वाली, लक्ष्मीनारायण देवता वाली, दर्शपूर्णमास इष्टक यज्ञ वाली इष्टापूर्त्त क्रियाओं का सम्पादन करने वाली हैं।

('इति नारदोपनिषद्' मातृका में इतना ही प्राप्त है।

॥ ॐ भद्रं कर्णेभिः .... इति शान्तिः ॥

॥ इति नारदोपनिषत्समाप्ता ॥

॥ नारायणपूर्वतापिन्युपनिषद् ॥

॥ शान्तिपाठः ॥

॥ ॐ भद्रं कर्णेभिः .... इति शान्तिः ॥ (द्रष्टव्य- अथर्वशिखोपनिषद्)

॥ अथ प्रथमः खण्डः ॥

अथ ब्रह्माणं भगवन्तं सनत्कुमारः पप्रच्छ। कीदृशं नारायणाष्टाक्षरं भवतीति व्याचष्टे। अथ यो वै नारायणः स भगवान् परब्रह्मण आनन्दो भवति। ज्ञात्वा जीवन्मुक्तो भवति। सच्चिदानन्दस्वरूपपरवस्तु भवति। अष्टाक्षरं अष्टमूर्ति भवति। प्रथमरूपः पृथिवीरूपो भवति। द्वितीयमापो भवति। तृतीयस्तेजो भवति। चतुर्थो वायुर्भवति। पञ्चम आकाशो भवति। षष्ठश्चन्द्रमा भवति। सप्तमः सूर्यो भवति। अष्टमो यजमानः॥ १ ॥

सनत्कुमार ने भगवान् ब्रह्माजी से पूछा- भगवन्, नारायण का अष्टाक्षर स्वरूप कैसा होता है? जो नारायण है, वह परब्रह्म का आनन्दस्वरूप है, जिसे जानकर मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। सच्चिदानन्दरूप पर (श्रेष्ठ) वस्तु होता है। अष्टाक्षर अष्टमूर्ति है। पहला रूप पृथिवी है,दूसरा जल है, तीसरा तेज है, चौथा वायु है, पाँचवाँ आकाश है, छठा चन्द्रमा है, सातवाँ सूर्य है, आठवाँ यजमान है॥ १॥ जैसे कहा है

भूमिरापस्तथा तेजो वायुर्व्योम च चन्द्रमाः। सूर्यः पुमांस्तथाचेति मूर्तयश्चाष्ट कीर्तिताः॥२॥

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य तथा पुरुष (यजमान) इन आठों को अष्टमूर्ति कहा गया है॥ २॥

अकारोकारमकारनादबिन्दुकलानुसन्धानध्यानाष्टविधा अष्टाक्षरं भवति। अकारः सद्योजातो भवति। उकारो वामदेवः। अघोरो मकारो भवति। तत्पुरुषो नादः। बिन्दुरीशानः। कला व्यापको भवति। अनुसन्धानो नित्यः। ध्यानस्वरूपं ब्रह्म। सर्वव्यापकोऽष्टाक्षरः॥ ३ ॥

अकार, उकार, मकार, नाद, बिन्दु, कला, अनुसन्धान, ध्यान यह आठ खण्डों में विभाजित अष्टाक्षर है। अकार सद्योजात है, उकार वामदेव है, अघोर मकार है, तत्पुरुष नाद है, बिन्दु ईशान है, कला व्यापक है, अनुसन्धान नित्य है, ध्यानस्वरूप ब्रह्म है। इस प्रकार अष्टाक्षर सर्वव्यापक है॥ ३॥

नारायणः परं ब्रह्म ज्ञानं नारायणः परः। नारायणं महापुरुषं विश्वमात्मानमव्ययम्॥४॥

नारायण ही परब्रह्म हैं, नारायण परमज्ञान हैं। नारायण महापुरुष, विश्वव्याप्त आत्मरूप अव्यय हैं॥४॥

अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं स्थितो नारायणः परः। सहस्त्रशीर्षं देवमक्षरं परमं पदम्॥ ५॥

अन्दर-बाहर सर्वत्र नारायण ही स्थित हैं। सहस्रशीर्ष वाले वे देव अक्षर और परमपदरूप हैं॥५॥

नारायणं शिवं शान्तं सर्ववेदान्तगोचरम्। सृष्टिः स्थितिश्च संहारतिरोधानानुसंमतम्। पञ्चकृत्यस्य कर्तारं नारायणमनामयम्॥ ६॥

कल्याणकर, शान्त नारायण जो सर्ववेदान्त गोचर हैं। सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोधान, आविर्भाव इन पाँच कार्यों के कर्त्ता हैं, फिर भी वे आमय (विकार) रहित हैं॥ ६॥

॥ अथ द्वितीयः खण्डः ॥

स होवाच भगवान् ब्रह्मा नारायणाष्टाक्षरमन्त्रं व्याचष्टे। श्रीमन्नारायणस्य दशमन्त्राः कथ्यन्ते। ॐ नमो नारायणाय इत्यष्टाक्षरो मन्त्रः। स एव मन्त्रराजो भवति। एतन्नारायणस्य तारकं भवति। तदेवोपासितव्यं भवति। इत्युवाच भगवान्नारायणशब्दपरब्रह्म श्रीमहामायाप्रकृति- सर्वमेकजननीलक्ष्मीर्भवति। देवानां देवलक्ष्मीर्भवति। सिद्धानां सिद्धलक्ष्मीर्भवति। मुमुक्षूणां मोक्षलक्ष्मीर्भवति। योगिनां योगलक्ष्मीर्भवति। मुनीनां विवेकबुद्धिर्भवति। राज्ञां राज्यलक्ष्मी- र्भवति। सृष्टिरूपा सरस्वती भवति। स्थितिरूपा महालक्ष्मीर्भवति। संहाररूपा रुद्राणी भवति। तिरोधानकरी पार्वती भवति। अनुग्रहरूपा उमा भवति। पञ्चकृत्यरूपा परमेश्वरी भवति। श्री महालक्ष्म्यै नम इति सप्ताक्षरो मन्त्रः॥ ७॥

भगवान् ब्रह्माजी ने नारायण के अष्टाक्षर मन्त्र की व्याख्या इस प्रकार की— श्रीमन्नारायण के दस मन्त्र कहे जाते हैं। ॐ नमो नारायणाय यह अष्टाक्षर मन्त्र है। यही मन्त्रराज है। यह नारायण का तारक मन्त्र भी है। इसी की उपासना करनी चाहिए। नारायण शब्द से परब्रह्म का बोध होता है तथा श्री महामायारूपा प्रकृति, जो सबकी एकमात्र जननी महालक्ष्मी हैं। देवों के लिए देवलक्ष्मी हैं। सिद्धों के लिए सिद्धलक्ष्मी हैं। मोक्ष के इच्छुकों के लिए मोक्षलक्ष्मी हैं। योगियों के लिए योगलक्ष्मी हैं। मुनियों के लिए विवेक बुद्धि हैं। राजाओं के लिए राज्यलक्ष्मी हैं। सृष्टिरूपा सरस्वती हैं। स्थितिरूपा महालक्ष्मी हैं। संहाररूपा रुद्राणी हैं। तिरोधानकरी पार्वती हैं। अनुग्रहरूपा उमा हैं। पञ्चकृत्यरूपा परमेश्वरी हैं, 'श्री महालक्ष्म्यै नमः' यह सप्ताक्षर मन्त्र है॥ ७॥

सर्वेषामेव भूतानां महासौभाग्यदायिनी। महालक्ष्मीर्महादेवी सर्वलोकैकमोहिनी॥ ८॥

सब प्राणियों को महान् सौभाग्य प्रदान करने वाली, सब लोकों को मोहित करने वाली महादेवी श्री महालक्ष्मी हैं॥ ८॥

साम्राज्यदायिनी नित्यं सर्ववेदस्वरूपिणी। महाविद्या जगन्माता मुनीनां मोक्षदायिनी। ज्ञानिनां ज्ञानदा सत्यं दानवानां विनाशिनी॥ ९॥

वे नित्य वेदस्वरूपा, साम्राज्यदायिनी, महाविद्या जगन्माता तथा मुनिजनों को मोक्ष- प्रदायिनी हैं। ज्ञानियों को ज्ञानदायिनी तथा सत्यरूपा दानवों का विनाश करने वाली हैं॥ ९॥

इति महालक्ष्मीर्मूलप्रकृतिर्भवति। नारायणः स भगवान् परब्रह्मस्वरूपी सर्ववेदान्तगोचरः नित्यशुद्धबुद्धपरब्रह्मानन्दमयो भवति। तस्माल्लक्ष्मीनारायण इति स होवाच भगवान् य एवं वेद। इत्युपनिषत्॥ १०॥

ये महालक्ष्मी ही मूल प्रकृति हैं। नारायण भगवान् तो परब्रह्मस्वरूपी, सर्ववेदान्तगोचर, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, परब्रह्म आनन्दमय हैं। इससे (श्रेष्ठ) वे लक्ष्मीनारायण हैं। ऐसा जो जानता है। यह उपनिषद् है।

॥ अथ तृतीयः खण्डः ॥

स होवाच भगवान् ब्रह्मा नारायणमन्त्रः कीदृशो भवति। ''ॐ नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि। तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्'' इति गायत्री भवति। '' इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पाꣳसुरे। '', ''अतो देवा भवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे। पृथिव्याः सप्तधामभिः'' इति मन्त्रद्वयेन नारायणप्रतिपादितं भवति। ''स ब्रह्मा स शिवः स हरिः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्''। नारायणायेति पञ्चाक्षरं भवति। ॐ नमो विष्णव इति षडक्षरं विज्ञातम्। नमो नारायणायेति सप्ताक्षरं भवति। ॐ नमो भगवते वासुदेवायेति द्वादशं परिकीर्तितम्। ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं नमो नारायणाय स्वाहा। यस्य कस्यापि न देयम्॥ ११॥

ब्रह्माजी बोले नारायण मन्त्र कैसा है, यह बताते हैं। ''**ॐ नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्**'' यह (विष्णु) गायत्री है।

''**इदं विष्णुर्विचक्रमेत्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पाꣳसुरे**''॥

''**अतो देवा भवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमः। पृथिव्याः सप्तधामभिः**'' इन दोनों मन्त्रों के द्वारा नारायण का प्रतिपादन (सिद्ध) होता है। 'वह ब्रह्मा, वह शिव, वह हरि, वह इन्द्र', वह अक्षर परम स्वतन्त्र है। यह नारायणाय इन पाँच अक्षरों का अभिप्राय है।

'**ॐ नमो विष्णवे**' यह छः अक्षरों वाला मन्त्र है। 'नमो नारायणाय' यह सप्ताक्षर मन्त्र है। 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' यह बारह अक्षर वाला मन्त्र है। 'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं नमो नारायणाय स्वाहा' यह मन्त्र जिस-तिस को नहीं देना चाहिए॥ ११॥

पुत्रो देयः शिरो देयं न देया षोडशाक्षरी। न वदेद्यस्य कस्यापि किं तु शिष्याय तां वदेत्॥ १२॥

जैसा कि कहा भी है– पुत्र अथवा अपना सिर भले ही देना पड़ जाये, किन्तु शिष्य के अतिरिक्त किसी को भी यह षोडशाक्षरी मन्त्र नहीं देना चाहिए॥ १२॥

ॐ श्रीं ह्रीं नमो भगवते लक्ष्मीनारायणाय विष्णवे वासुदेवाय स्वाहा॥ १३॥

'ॐश्रीं ह्रीं नमो भगवते लक्ष्मी नारायणाय विष्णवे वासुदेवाय स्वाहा' (यह छब्बीस अक्षर का मन्त्र) है॥ १३॥

श्रीमहाविष्णवे तुभ्यं नमो नारायणाय च। गोविन्दाय च रुद्राय हरये ब्रह्मरूपिणे॥ १४॥
नारायण महाविष्णो श्रीधरानन्त केशव। वासुदेव जगन्नाथ हृषीकेश नमो नमः॥१५॥

श्री महाविष्णु के लिए, तुम्हारे लिए, नारायण के लिए नमस्कार है। गोविन्द के लिए, रुद्र के लिए, हरि के लिए, ब्रह्मरूप के लिए हे नारायण, महाविष्णो, श्रीधर, अनन्त, केशव, हे वासुदेव, हे जगन्नाथ, हे हृषीकेश आपको नमस्कार है॥ १४-१५॥

इत्यनुष्टुब्द्वयं मन्त्रं व्याख्यातम्। अथ मालामन्त्रं व्याख्यास्यामः। स होवाच भगवान् ब्रह्मा य एवं वेद। इत्युपनिषत्॥ १६॥

यह (पूर्व वर्णित मंत्र) दो अनुष्टुप् वाला मन्त्र है। आगे (अगले खण्ड में) माला मन्त्र की व्याख्या करेंगे। ब्रह्माजी ने कहा– ऐसा जो जानता है। यह उपनिषद् है॥ १६॥

॥ अथ चतुर्थः खण्डः॥

स होवाच भगवान् पितामहः गायत्रीं व्याचष्टे। गोविन्दाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि। तन्नो नारायणः प्रचोदयात्। कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि। तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात्। महादेव्यै च विद्महे विष्णुपत्न्यै च धीमहि। तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात्। ''विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांऽसि यो अस्कभायदुत्तरऽंसधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः'', ''त्रिर्देवः पृथिवीमेष एताम्। विचक्रमे शतर्चसं महित्वा। प्रविष्णुरस्तु तवसस्तवीयान्। त्वेषऽंह्यस्य स्थविरस्य नाम''॥ १७॥

भगवान् ब्रह्माजी गायत्री प्रकरण में कई नामों से गायत्री का बखान करते हैं। यथा- नारायण गायत्री- 'गोविन्दाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि। तन्नो नारायणः प्रचोदयात्।' कामदेव गायत्री, यथा- कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि। तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात्। लक्ष्मी गायत्री, यथा- महादेव्यै च विद्महे विष्णु पत्न्यै च धीमहि। तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात्। प्रथम मंत्र का अर्थ इस प्रकार है– गोविन्द को हम जानते हैं। वासुदेव का ध्यान करते हैं। वे नारायण हमारी बुद्धि को सत्कार्यों में प्रेरित करें। इसी प्रकार अन्य गायत्रियों का अर्थ समझना चाहिए। 'विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं .... (ऋ० १/१५४/१) अर्थात् जो पृथ्वी अन्तरिक्ष तथा द्युलोक को बनाने वाले हैं, जो देवताओं के निवास स्थान द्युलोक को स्थिर कर देते हैं, जो तीन पगों से तीनों लोकों में विचरण करने वाले हैं (मापने वाले हैं), उन विष्णुदेव के वीरतापूर्ण कार्यों का कहाँ तक वर्णन करें। 'त्रिर्देवः पृथिवीमेष एताम्। .....'। (ऋ० ७/१००/३)

अर्थात् इन विष्णुदेव ने सहस्रों तेजों से युक्त इस पृथिवी को अपनी महिमा से (वामनावतार में) तीन चरणों में नापा अथवा तीन विशिष्ट प्रक्रियाओं से पोषित किया, सबसे विराट् भगवान् हमारे सहायक हों। इन विराट्देव का नाम बहुत ही तेजस्वी है॥ १७॥

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमकृत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधिवाचि॥ १८॥

सक्तुमिव तितउना....... (ऋ० १०/७१/२) अर्थात् सूप से सत्तुओं को स्वच्छ करने के समान मेधावीजन जिस समय अपनी बुद्धि, ज्ञान की सामर्थ्य से भाषा को सुसंस्कृत करते हैं, तब मित्र, आत्मीयजन मित्रता के भावों को समझते हैं। ऐसी स्थिति में उनकी वाणी में मंगलकारी लक्ष्मी का निवास होता है॥ १८॥

''प्रतद्विष्णुस्तवते वीर्याय। मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः। यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्व-धिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा।'', ''य ईꣳशृणोत्यलकꣳ शृणोति। न हि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम्। अक्षन्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनो जीवेष्वसमा बभूवुः।'' तस्माल्लक्ष्मीनारायणं सर्वबीजं सर्वभूताधिवासं यो वेत्ति स विद्वान् भवति। उपासकानां मोक्षप्राप्तिर्भवति। स जीवन्मुक्तो भवति। स होवाच भगवान् उपासनविधिं व्याचष्टे। ब्रह्मा ऋषिर्भवति। गायत्री छन्द उच्यते। श्रीमन्नारायणपरमात्मा देवता। प्रणवं बीजम्। नमः शक्तिरुच्यते। कीलकं नारायणेति॥ धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगोऽथ भावना॥ १९॥

'प्र तद्विष्णुःस्तवते ......।' (ऋ० १/१५४/२) अर्थात् विष्णु भगवान् के तीन पादों में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अवस्थित है, अतएव भयंकर हिंस्र और गिरि-कन्दराओं में रहने वाले पराक्रमी पशुओं की तरह सारा संसार उन विष्णुदेव के पराक्रम की प्रशंसा करता है।

'य ईꣳ शृणोत्यलकꣳ शृणोति।...........।'

इन मंत्रों से विष्णु की महत्ता प्रदर्शित है। अतः लक्ष्मीनारायण सब चराचर के बीज तथा सभी में अवस्थित अथवा वे सबके आश्रय- स्थान हैं। इस रहस्य को जो जानता है, वही विद्वान् है। उपासकों को मोक्ष-प्राप्ति होती है। वह जीवन्मुक्त हो जाता है। अब भगवान् ब्रह्माजी उपासना की विधि बतलाते हैं। पहले विनियोग बताते हैं— इस नारायण मन्त्र के ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द, श्रीमन्नारायण परमात्मा देवता, प्रणव बीज, नमः शक्ति, कीलक नारायण है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में विनियोग है, यही भावना प्रधान है॥ १९॥

महोल्काय वीरोल्काय वृद्धोल्काय पृथूल्काय विद्युल्काय ज्वलदुल्काय च षडङ्गकल्पिताः नमः स्वाहावषड्वौषट्पदान्ता अङ्गन्यासा भवन्ति॥ २०॥
नीलजीमूतसंकाशं पीतकौशेयवाससम्। किरीटकुण्डलधरं कौस्तुभोद्भासितोरसम्॥ २१॥
शङ्खचक्रगदाखड्गधारिणं वनमालिनम्। वामभागे महालक्ष्म्यालिङ्गितार्धशरीरिणम्॥ २२॥
सनकादिभिः संसेव्यं स्तूयमानं महर्षिभिः। ब्रह्मादिभिः सदा ध्येयं ध्यात्वा नारायणं विभुम्॥ २३॥
कर्मणा मनसा वाचा संस्मरेत् प्रजपेत् सुधीः। अयुतं जपमात्रेण सर्वज्ञानप्रदो भवेत्॥ २४॥

अङ्गन्यास इस प्रकार है-**महोल्काय हृदयाय नमः। वीरोल्काय शिरसे स्वाहा। वृद्धोल्काय शिखायै वषट्। पृथूल्काय कवचाय हुम्। विद्युल्काय नेत्राभ्यां वौषट्। ज्वलदुल्काय अस्त्राय फट् इति अङ्ग न्यासाः॥** २०॥

ध्यान-**नीलजीमूत संकाशं ....भवेत्।** अर्थात् नील मेघ सी कान्ति वाले, पीले रेशमी वस्त्रों से सुसज्जित, किरीट-कुण्डलधारी कौस्तुभमणि से चमकते हृदय स्थल वाले, शंख, चक्र, गदा, खड्ग धारण करने

वाले, वनमाला धारण करने वाले, वामभाग में महालक्ष्मी से आलिङ्गित आधे शरीर वाले, सनकादि ऋषियों द्वारा सेवनीय तथा स्तुति किये जाते हुए, जो ब्रह्मादि से भी ध्यान योग्य है, ऐसे नारायण परमात्मा का ध्यान करके बुद्धिमान् जन मन-वाणी-कर्म से एकाग्र होकर स्मरण करें तथा जप करें। दस सहस्र की संख्या में किया जप सर्वज्ञानप्रद सिद्ध होता है॥२१-२४॥

लक्षमात्रं तु प्रजपेत् स्वस्वरूपं भवेन्मनुः। अत ऊर्ध्वं सदा ध्यायेत् साक्षान्नारायणो हरिः॥ २५॥

एक लक्ष जप करने से मनुष्य आत्मसाक्षात्कार करके धन्य होता है। इससे ऊपर किया जप साक्षात् नारायण के स्वरूप का भागी बनाता है॥ २५॥

स होवाच भगवान् य एवं वेद । इत्युपनिषत्॥ २६॥

ऐसा भगवान् (ब्रह्मा जी)ने कहा- जो ऐसा जानता है, यही रहस्य है॥ २६॥

॥ अथ पञ्चमःखण्डः ॥

स होवाच भगवान् ब्रह्मा दशकलात्मकोऽवतारः कथ्यते॥ २७॥

भगवान् ब्रह्माजी आगे कहते हैं- दस कलाओं से सम्पन्न अवतार कहलाता है॥ २७॥

जरा पालिनिका शान्तिरीश्वरी रतिकामिका। वरदा ह्लादिनी प्रीतिर्दीर्घा दशकला हरेः॥ २८॥

जरा, पालिनिका, शान्ति, ईश्वरी, रति, कामिका, वरदा, ह्लादिनी, प्रीति, दीर्घा ये हरि की दस कलाएँ हैं॥ २८॥

नारायणादवतारा मन्त्ररूपा जायन्ते। ॐ नमो नारायणाय स्वाहा। एवं दशाक्षरो महामन्त्रो भवति। तत्र प्रथमो मत्स्यावतारः। द्वितीयः कूर्मः। तृतीयो वराहः। चतुर्थो नरसिंहः। पञ्चमो वामनः। षष्ठो जामदग्निः। सप्तमो रामचन्द्रः। अष्टमः कृष्णः परमात्मा। नवमो बुद्धावतारः। दशमः कल्किर्जनार्दनः। ॐ मत्स्यावताराय नमः। श्रीं कूर्मावताराय नमः। ह्रीं वराहावताराय नमः। हुं नृसिंहावताराय नमः। सौः वामनावताराय नमः। ऐं परशुरामावताराय नमः। ग्लौं रामचन्द्राय नमः। क्लीं कृष्णाय नमः। ब्लूं बुद्धावताराय नमः। सः कल्क्यवताराय नमः इति। प्रजापतिः प्रजायते। तस्मान्नारायणः प्रजायते। ब्रह्मा जायते। ब्रह्मणः सकाशात् पञ्चमहाभूतानि तन्मात्राणि जायन्ते। ज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रियाणि मनोबुद्धिचित्ताहंकारा जायन्ते। प्रकृतिर्जायते चतुर्विंशति तत्त्वात्मको नारायणः। पञ्चविंशतितत्त्वात्मकः पुरुषत्वं परब्रह्म भवेत्। शिवश्च नारायणः। शक्रश्च नारायणः। दिशश्च नारायणः। ऊर्ध्वञ्च नारायणः। अन्तश्च नारायणः। नारायणः सर्वं खल्विदं ब्रह्म। तस्मान्नारायणादण्डजस्वेदजोद्भिज्जजरायुज-मनसिजादयः सर्वे महाभूताः प्रजायन्ते॥ २९॥

नारायण से अवतार मन्त्ररूप में प्रकट होते हैं।ॐ नमो नारायणाय स्वाहा। यह दशाक्षर महामन्त्र है। वहाँ पहला मत्स्यावतार, दूसरा कूर्म, तीसरा वराह, चौथा नृसिंह, पाँचवाँ वामन, छठा परशुराम, सातवाँ रामचन्द्र, आठवाँ परमात्मा कृष्ण, नौवाँ बुद्धावतार तथा दसवाँ कल्कि अवतार है। इनको क्रमशः नमन किया गया है। परब्रह्म पहले प्रजा की इच्छा करने से प्रजापति कहलाया। उससे नारायण प्रकट हुए। नारायण से ब्रह्मा हुए। ब्रह्मा से पञ्च महाभूत, पञ्च तन्मात्राएँ प्रकट हुईं। ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार उत्पन्न हुए। इस प्रकार सम्पूर्ण प्रकति उत्पन्न हुई। चतुर्विंशति तत्त्वात्मक (चौबीस तत्त्व वाले) नारायण हैं। पच्चीसवाँ चेतन अंश परब्रह्म परमात्मा हैं। शिव ही नारायण हैं। इन्द्र भी नारायण हैं। दिशाएँ नारायण हैं। ऊपर- नीचे, अन्दर-बाहर सर्वत्र नारायण हैं। यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही नारायण है। उन्हीं नारायण से अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज, जरायुज, मनसिज आदि सारे प्राणि समूह उत्पन्न होते हैं॥ २९॥

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीं प्रजां जनयन्तीः सरूपाम्।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः॥ ३०॥

लोहित-शुक्ल-कृष्ण वर्णा त्रिगुणमयी प्रकृति एक स्वरूप वाली अनेक प्रजाओं को पैदा करती है। जीवात्मा जो यद्यपि परमात्मा का अंश होने से अजन्मा है; किन्तु अज्ञानवश इसका (प्रकृति का) स्वाद लेते हुए भोग करता है और कर्म बन्धन में बँधा रहता है। दूसरा परमात्मा भी अज (अजन्मा) है; किन्तु वह इस प्रकृति से मुँह मोड़ लेता है, अतएव मुक्तभाव से सदा आनन्दित रहता है॥३०॥

अण्डजाः सर्वखगरूपा जायन्ते। स्वेदजाः कृमिकीटादयः। उद्भिज्जास्तरुगुल्मलतादयः। जरायुजा नरपशुमृगादयो जायन्ते। मनसिजा नारदादयः सर्वे ऋषयः। नारायणः स्थावरजङ्गमात्मको भवति। अष्टवसवो नारायणः। एकादशरुद्रा नारायणः। नारायणात् द्वादशादित्याः। सर्वे देवा ऋषयो मुनयः सिद्धगन्धर्वयक्षरक्षः पिशाचाः सर्वे नारायणः। नारायण एवेदं सर्वम्। लक्ष्मीर्मूलप्रकृतिरिति विज्ञायते। वस्त्वेकं परब्रह्म नारायणः सनातनः॥ ३१॥

अण्डज सृष्टि में सारे पक्षी आते हैं। स्वेदज सृष्टि में कृमि-कीटादि आते हैं। उद्भिज्ज में पेड़-पौधे, लतादिक आते हैं। जरायुज सृष्टि में मनुष्य-पशु, मृग आदि आते हैं। मानसी सृष्टि में नारदादि सारे ऋषि आते हैं। नारायण स्थावरजंगमात्मक हैं। आठ वसु नारायणरूप हैं। ग्यारह रुद्र नारायण हैं। बारह आदित्य नारायण स्वरूप हैं। सब देवता ऋषि-मुनि, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पिशाचादि सभी नारायण के स्वरूप हैं। यह सारा दृश्यमान प्रपञ्च नारायणमय है। लक्ष्मी ही मूल प्रकृति है, ऐसा विदित होता है। एकमात्र परब्रह्म सनातन नारायण हैं॥ ३१॥

साक्षान्नारायणो देवः परब्रह्माभिधीयते। सच्चिदानन्दात्मकाः स्युर्विष्णौ नित्ये प्रकल्पिताः। नानाविधानि रूपाणि हाटके कटकादिवत्॥ ३२॥

जैसा कहा है— साक्षात् नारायण ही परब्रह्म कहे जाते हैं। सच्चिदानन्द-स्वरूप नित्य विष्णु में प्रकल्पित है। जैसे एक सोने से कड़ा आदि अनेक आभूषण बना लिये जाते हैं॥ ३२॥

''चत्वारि वाक्परिमिता पदानि। तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः। गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति। तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति।'' परापश्यन्तीमध्यमावैखरीरूपा सरस्वतीति चतुर्विधा वाचो वदन्ति। वैखरी सर्वविद्यासु प्रशस्ता॥ ३३॥

वाणी से परिमित चार पद हैं। उन्हें मनीषी ब्राह्मण जानते हैं। तीन पद मुखरूप गुहा में विद्यमान तो रहते हैं; किन्तु संकेत नहीं करते (क्रियाशील नहीं होते) चौथे पद को मनुष्य बोलते हैं। परा-पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरी ये वाणी के चार भेद कहे हैं। वैखरी सारी विद्याओं (वाणियों) में प्रशस्त-स्पष्ट है॥ ३३॥

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः।
पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश॥ ३४॥

वेद (ऋग्यजुः सामअथर्वांगिरस), वेदांग (शिक्षा-कल्प-ज्योतिष, व्याकरण, छन्द, निरुक्त) मीमांसा, न्याय, पुराण और धर्मशास्त्र ये चौदह विद्याएँ हैं॥ ३४॥

आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वं मन्त्रशास्त्रकम्।
विद्याश्चाष्टादश प्रोक्ता नारायणनिवेशिताः॥ ३५॥

आयुर्वेद-धनुर्वेद-गन्धर्व-मन्त्रशास्त्र मिलाकर ये (विद्याएँ) अठारह हो जाती हैं। ये सभी नारायणरूप हैं॥ ३५॥

तस्य निश्वसितमेव ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वाङ्गिरश्चेति। सर्ववेदवेदान्तानां नारायणपरब्रह्मण्येव तात्पर्यम्। स होवाच भगवान् य एवं वेद। इत्युपनिषत्॥ ३६॥

सारे वेद उन नारायण के निश्वास हैं। सब वेद-वेदांतों का पर्यवसान भी नारायण में ही होता है। यह भगवान् ब्रह्माजी का कथन है, जो ऐसा जानता है। यही उपनिषद् है॥ ३६॥

॥ अथ षष्ठः खण्डः॥

स होवाच भगवान् ब्रह्मा नारायणयन्त्रमन्त्रावरणपूजामाचचक्षे। त्रिकोणं प्रथमं भवति। द्वितीयं षट्कोणं भवति। वृत्तमष्टदलं तृतीयम्। चतुर्थं द्वादशदलम्। पञ्चमं षोडशदलम्। चतुर्विंशति षष्ठम्। द्वात्रिंशति सप्तमम्। अष्टमं भूपुरम्। एवं यन्त्रं समालिखेत्। मध्ये लक्ष्मीनारायणं विक्षेपशक्त्यावरणं शक्तिप्रभाशक्तित्रिकोणदेवताः षट्कोणं वृद्धोल्कादयः पूज्याः। सर्वज्ञानित्वतृप्त्यनादिबोधस्वतन्त्रनित्यमलुप्तानन्तं षट्कोणशक्तयः। सनकसनन्दनसनत्सुजात-सनत्कुमारसनातननारदतुम्बुरुसमन्तादयोऽष्टदलाः। वसिष्ठवालखिल्यविश्वामित्रकश्यपात्रि-भरद्वाजाङ्गीरसजामदग्निगौतमागस्त्यजाबालिकपिला द्वादशदलाः। मत्स्यकूर्मवराहनारसिंहवा-मनरामरामकृष्णबुद्ध कल्किसद्योजातवामदेवा अघोरतत्पुरुषेशानपरमेश्वराः षोडशदलाः। शंखचक्रगदापद्मखड्गश्रीवत्सकौस्तुभवनमालादिकिरीटकुण्डलकेयूरहाराङ्गदशार्ङ्गिश-

रनन्दकपद्मवेणुबर्हिपिञ्छशेषानन्तगरुडविष्वक्सेनब्रह्माण श्चतुर्विंशतिदलाःकेशवादिचतुर्विंशत्यनुक्रमम्। हरिश्रीकृष्णमुकुन्दकुमुदाक्षपुण्डरीकाक्षधामकशङ्खवर्णसर्वनेत्रसुमुखसुप्रतीका द्वात्रिंशद्दलाः। ऐरावतपुण्डरीकवामनकुमुदाञ्जनपुष्पदन्तसार्वभौमसुप्रतीकाक्षाश्चतुरश्रदेवताः। ॐ नमो नारायणायाष्टाक्षरसंज्ञावरणदेवतापूजा कर्तव्या। स होवाच भगवान् य एवं वेद। इत्युपनिषत्॥ ३७॥

ब्रह्माजी ने नारायण यन्त्र, उसके मन्त्र आवरण, पूजा का उपदेश किया। पहला त्रिकोण है। दूसरा षट्कोण है। तीसरा अष्टदल वृत्त है। चौथा द्वादश दल वाला है। पाँचवा सोलह दल वाला है। छठा चौबीस दल वाला है। सातवाँ बत्तीस दल वाला है। आठवाँ (यन्त्र का बाहरी भाग) भूपुर है। इस प्रकार मन्त्र का आलेखन करे। मध्य में लक्ष्मी- नारायण को विक्षेप शक्ति के आवरण सहित लिखे। शक्ति प्रभा--शक्ति त्रिकोण देवता तथा वृद्धोल्कादि षट्कोण में लिखे। सर्वज्ञानित्व, तृप्ति, अनादि बोध, स्वतन्त्र, नित्य, अलुप्तानन्त ये षट्कोणशक्तियाँ हैं। सनक, सनन्दन, सनत्सुजात, सनत्कुमार, सनातन, नारद, तुम्बुरु, समन्त ये अष्टदल हैं। वसिष्ठ, वालखिल्य, विश्वामित्र, कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, आंगिरस, जामदग्नि, गौतम, अगस्त्य, जाबालि, कपिल ये द्वादश दल हैं। मत्स्य, कूर्म, वराह, नारसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि, सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष, ईशान, परमेश्वर ये सोलह दल हैं। शंख, चक्र, गदा, पद्म, खड्ग, श्रीवत्स, कौस्तुभ, वनमाला, किरीट, कुण्डल,केयूर, हार, अंगद, शार्ङ्गि, शर, नन्दक, पद्म, वेणु, बर्हिपिञ्छ, शेष, अनन्त, गरुड़, विष्वक्सेन, ब्रह्मा ये चौबीस दल हैं। इसी प्रकार केशवादि क्रमशः चौबीस दल हैं। हरि, श्रीकृष्ण, मुकुन्द, कुमुदाक्ष, पुण्डरीकाक्ष, धामक, शंखवर्ण, सर्वनेत्र, सुमुख, सुप्रतीक आदि बत्तीस दल हैं। ऐरावत, पुण्डरीक, वामन, कुमुदाञ्जन, पुष्पदन्त, सार्वभौम, सुप्रतीक, अक्ष ये चौकोर के देवता हैं। ॐ नमोनारायणाय इन अष्टाक्षरों से आवरण देवता की पूजा करनी चाहिए। भगवान् ब्रह्मा ने कहा- ऐसा जो जानता है, यही उपनिषद् है॥ ३७॥

॥ ॐ भद्रं कर्णेभिः........... इति शान्तिः॥

॥ इति नारायणपूर्वतापिन्युपनिषत्समाप्ता॥

॥ नारायणोत्तरतापिनीयोपनिषद् ॥

॥ प्रथमः खण्डः ॥

स होवाच भगवान् ब्रह्मा आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् सच्चिदानन्दस्वरूपो भवति ।
द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥
यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तो वेदान्ते च प्रतिष्ठितः।
तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः॥
अणोरणीयान्महतो महीयानात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः।
तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम्॥
वासनाद्वासुदेवस्य वासितं हि जगत्त्रयम्।
सर्वभूतनिवासोऽसि वासुदेव नमोऽस्तु ते॥

भूश्च नारायणः । भुवश्च नारायणः । सुवश्च नारायणः । महश्च नारायणः । जनश्च नारायणः । तपश्च नारायणः । सत्यं च नारायणः । नारायणः परं ब्रह्म । नारायण एवेदं सर्वम् । नारायणान्न किञ्चिदस्ति । सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म । यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् । तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः । आकाशाद्वायुः । वायोरग्निः । अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी । पृथिव्या ओषधयः । ओषधीभ्योऽन्नम् । अन्नात्पुरुषः । नारायणः सर्वपुरुष एवेदं परब्रह्म । नारायणः सर्वभूतान्तर्याम्यात्मा । आत्मेदं सर्वं नारायणः । नारायणः स्वयं ज्योतिः । तस्मात्प्रकाशात्मा ॥

नीवारशूकवत्तन्वी पीता भास्वत्यणूपमा ।
तस्याः शिखाया मध्ये परमात्मा व्यवस्थितः ॥
पाशबद्धः स्मृतो जीवः पाशमुक्तः सनातनः ।
तुषेण बद्धो व्रीहिः स्यात्तुषाभावेन तण्डुलः ॥
परब्रह्म स्वयं चात्मा साक्षान्नारायणः स्मृतः ।
नारायणमनादिं च योगनिद्रापरायणम् ॥
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तीषु सर्वकालव्यवस्थितम् ।
नारायणं महात्मानं महाध्यानपरायणम् ।
सर्ववेदान्तसंलक्ष्यं तद्ब्रह्मेत्यभिधीयते ॥

होवाच भगवान् नारायण एवेदं सर्वं प्रतिष्ठितं य एवं वेद इत्युपनिषत् ॥

॥ इत्याथर्वणरहस्ये नारोयणोत्तरतापिनीये प्रथमःखण्डः ॥

॥ प्रथम खण्ड ॥

ब्रह्माजी ने कहा- जो पुरुष ब्रह्मा के आनन्दस्वरूप को जान गया, वह स्वयं भी सच्चिदानंदस्वरूप हो जाता है। श्रुति कहती है-आत्मा (जीवात्मा) और परमात्मा रूप से दो पक्षी एक साथ पैदा हुए हैं, जो परस्पर मित्र हैं। दोनों एक ही वृक्ष पर (शरीर पर) बैठे हैं। उनमें से एक उस वृक्ष के फलों (कर्मफल रूप) को खूब स्वाद ले-लेकर खाता है, किन्तु दूसरा पक्षी उन फलों (विषयों) का भोग नहीं करता, केवल देखता है। अज्ञान से भ्रमित जीव पहला पक्षी है। ज्ञान हो जाने पर भ्रम मुक्त हो सोऽहं की स्थिति को प्राप्त हुआ, वही परमात्म-अंश मात्र द्रष्टारूप दूसरा पक्षी है।

जो स्वर वेद के आदि में है। जो वेद के अन्त में प्रतिष्ठित है। उसके प्रकृति लीन हो जाने पर, जो शेष रहता है, वही महेश्वर है। वह तत्त्व इस प्राणी की अन्त: करण रूपी गुहा में छिपा है। वह अणु से भी सूक्ष्म है तथा महान् से भी महत्तर है। भगवान की कृपा-प्रसन्नता से बीतराग-शोक हुआ प्राणी ही कर्मरहित उस द्रष्टा को देख पाता है, तभी उसकी महिमा समझ पाता है।

यह सारा जगत् भगवान् वासुदेव की वासना से वासित है। हे वासुदेव! आप में सब भूतों का निवास है अथवा आप सब के अन्त:करणों में निवास करते हैं, आप को नमस्कार है।

भू: नारायण है। भुव: नारायण है। सुव: नारायण है। मह: भी नारायण है। जन: नारायण है। तप: नारायण है। सत्य नारायण है। नारायण ही परब्रह्म है। नारायण ही ये सब हैं। नारायण से पृथक् कुछ भी नहीं। सत्य और ज्ञानस्वरूप ही अनन्त ब्रह्म है। परम व्योम की गुहा में वह कहीं छिपा बैठा है अर्थात् वह सर्वव्यापक होकर भी स्थूल रूप से अदृश्य है। उस से (आत्मा से) आकाश की उत्पत्ति हुई। आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथिवी, पृथिवी से औषधियाँ, औषधियों से अन्न, अन्न से जीव उत्पन्न हुआ। अत: नारायण ही सर्वपुरुष हैं तथा दृश्यमान यह जगत् अथवा परब्रह्म हैं। नारायण ही सब प्राणियों के अन्तर्यामी आत्मा हैं। नारायण ही सबके आत्मस्वरूप हैं। नारायण स्वयं प्रकाश हैं इससे यह सिद्ध है कि परमात्मा प्रकाश रूप ही हैं। जैसे कहा है- धान के तुष (भूसी) के समान पतली, पीली, चमचमाती, अणु जैसी सूक्ष्म प्रकाश रेखा की शिखा के बीच परमात्मा बैठे हुए हैं। (इस से परमात्मा की सूक्ष्मता ही बताई गई है।) बन्धन में जकड़ा वह सूक्ष्म तत्त्व जीव कहलाता है तथा बन्धनमुक्त सनातन परमात्मा कहलाता है। जैसे तुषरहित धान कहा जाता है, तुष से रहित होने पर तण्डुल कहलाता है। परब्रह्म ही साक्षात् आत्मा और नारायण नाम से कहे जाते हैं। नारायण अनादि हैं तथा योगनिद्रा-परायण हैं। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं, तीनों कालों में विद्यमान हैं। वे महात्मा और महाध्यान-परायण हैं। सब वेदान्तों का सार हैं, वही 'ब्रह्म' इस संज्ञा से अभिहित हैं। इस सबमें वे ही विद्यमान हैं। जो ऐसा जानता है, यह उननिषद् है।

॥ आथर्वण रहस्य में नारायण उत्तरतापिनीय में पहला खण्ड पूर्ण हुआ ॥ १ ॥

॥ द्वितीयःखण्डः ॥

स होवाच भगवान् ब्रह्मा नारायणः परवस्तु भवतीति विज्ञायते ।
सच्चिदानन्दरूपाय ज्ञानायामिततेजसे ।
परब्रह्मस्वरूपाय नारायण नमोऽस्तु ते ॥
नित्यशुद्धाय बुद्धाय नित्यायाद्वैतरूपिणे ।
आनन्दायात्मरूपाय नारायण नमोऽस्तु ते ॥

ओं नमो भगवते श्रीमन्नारायणाय महाविष्णवे अमितबलपराक्रमाय शङ्खचक्रगदाधराय लक्ष्मीसमेताय गरुडवाहनाय दशावताराय सर्वदुष्टदैत्यदानवसंहरणाय शिष्टप्रतिपालकाय परब्रह्मरूपाय महात्मने परमपुरुषाय पुण्डरीकाक्षाय पुराणपुरुषाय शुद्धबुद्धाय सच्चिदानन्दस्वरूपाय महात्मने घृणिः सूर्य आदित्य ॐ नमो नारायणाय सहस्त्रार हुं फट् स्वाहा ॥
नारायणाय शान्ताय शाश्वताय मुरारये ।
यज्ञेश्वराय यज्ञाय शरण्याय नमो नमः ॥

स होवाच भगवान् ब्रह्मा सर्वं विश्वमिदं नारायणः य एवं वेद इत्युपनिषत् ॥
॥ इत्याथर्वणरहस्ये नारायणोत्तरतापिनीये द्वितीयःखण्डः ॥

॥ द्वितीय खण्ड ॥

ब्रह्माजी आगे कहते हैं- नारायण पर-तत्त्व हैं, यही जाना गया है। सच्चिदानन्दरूप, ज्ञानस्वरूप, अमित तेजस्वरूप, परब्रह्मस्वरूप नारायण आपको नमस्कार है। आप नित्यशुद्ध-बुद्ध हैं, नित्य अद्वैत हैं आप आनन्दरूप हैं, आप आत्मरूप हैं, आपको नमस्कार है।

भगवान् श्रीमन्नारायण, महाविष्णु अमित बल पराक्रम वाले, शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण करने वाले, लक्ष्मी सहित गरुड़ के वाहन वाले, सब दुष्ट दानव-दैत्यों का संहार करने के लिए दशअवतार धारण करने वाले, सज्जनों के प्रतिपालक, परब्रह्मरूप महात्मा परम पुरुष पुण्डरीकाक्ष (कमलनेत्र) पुराण पुरुष, शुद्ध-बुद्ध- सच्चिदानन्दस्वरूप महान् आत्मा के लिए नमस्कार है। हे घृणि! हे सूर्य! हे आदित्य! नारायण स्वरूप सहस्रार हुं फट् स्वाहा ॥ नारायण के लिए, शान्त के लिए, शाश्वत के लिए मुरारि के लिए, यज्ञेश्वर यज्ञस्वरूप के लिए, शरण स्थान के लिए नमस्कार है ॥

ब्रह्मा ने कहा– यह सारा विश्व नारायणरूप है, ऐसा जो जानता है। यह उपनिषद् है।

॥ इति आथर्वण रहस्य में नारायण उत्तरतापिनीय में द्वितीयखण्ड पूर्ण हुआ ॥ २ ॥

॥ तृतीयःखण्डः ॥

स होवाच भगवान् ब्रह्मा नारायणः परब्रह्मेति य एवं वेद । नारायणात्मा वेदं सर्वं निर्विकारं निरञ्जनवस्तु प्रतिपाद्यते । स नारायणो विराट्पुरुषो भवति । देवानां वासवो भवति । इन्द्रियाणां मनो भवति । सर्वेषां वस्तूनां मुख्यवस्तु भवति । ॐ नमो नारायणादन्यो मन्त्रः नारायणादन्योपास्तिर्नास्ति । नान्यन्नारायणादुपासितव्यम् । सर्वं नारायण एव भवतीति विज्ञायते । योऽधीते नित्यं सर्वान् कामानवाप्नोति । स ब्रह्महत्यायाः पूतोभवति । सुरापानात् पूतो भवति । स्वर्णस्तेयात् पूतो भवति । गुरुतल्पगमनात् पूतो भवति । अगम्यागमनात् पूतो भवति । अभक्ष्यभक्षात् पूतो भवति । स उपपातकमहापातकेभ्यः पूतो भवति। सर्ववेदमधीयानो भवति । सर्वक्रतुफलं प्राप्नोति। सर्वकर्मकर्ता भवति । चतुः समुद्रपर्यन्तभूदानफलं प्राप्नोति । द्विजोत्तमो भवति । चतुर्वर्गफलं प्राप्नोति। ब्रह्मचारी ज्ञानवान् भवति । गृही पुत्रपौत्रमहैश्वर्यवान् भवति । संन्यासी मोक्षवान् भवति ॥

पठनाच्छ्रवणाद्वाऽपि सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।
नारायणप्रसादेन वैकुण्ठपदमश्नुते ॥
इति स होवाच भगवान् य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥
वेदाक्षराणि यावन्ति पठितानि द्विजोत्तमैः ।
तावन्ति हरिनामानि कीर्तितानि न संशयः ॥
नारायण हरे कृष्ण वासुदेव जगद्गुरो ।
मुकुन्दाच्युत देवेश महाविष्णो नमोऽस्तु ते ॥
भूतानि तत्त्वसंज्ञानि कूटस्थोऽक्षरसंज्ञितः ।
उत्तमश्चापि पुरुषो नारायण इतीर्यते ॥

॥ इत्याथर्वणरहस्ये नारायणोत्तरतापिनीये तृतीयः खण्डः ॥
॥ इति नारायणोत्तरपिनीयोपनिषत् समाप्ता ॥

॥ तृतीय खण्ड ॥

भगवान् ब्रह्माजी कहते हैं- नारायण ही परब्रह्म है। जो ऐसा जानता है। नारायण ही आत्मा, जानने योग्य, निर्विकार, निरञ्जन वस्तु प्रतिपादन करने योग्य हैं। वे नारायण विराट् पुरुष हैं। देवों के इन्द्र हैं। इन्द्रियों

के मन हैं। सब वस्तुओं में मुख्य वस्तु हैं। "ॐ नमो नारायणाय" इस मन्त्र से श्रेष्ठ कोई मन्त्र नहीं तथा नारायण से अन्य कोई उपासना भी नहीं है। नारायण से अन्य कोई उपासना योग्य भी नहीं है। सब कुछ नारायण ही हैं, ऐसा जान पड़ता है। जो इनका नित्य ध्यान करता है वह सब वाञ्छित प्राप्त करता है। वह ब्रह्म हत्या (के पाप) से भी पवित्र हो जाता है। वह सुरापान के पाप से भी मुक्त हो जाता है। स्वर्ण-चोरी के पाप से भी मुक्त हो जाता है। गुरु पत्नीगामी होने के पाप से मुक्त हो जाता है। अगम्य स्त्री के साथ समागम किया हुआ भी उस पाप से मुक्त हो जाता है। अभक्ष्य-भक्षण से भी पवित्र हो जाता है। वह उपपातक और महापातकों से पवित्र हो जाता है। सब वेदों को पढ़ने वाला होता है। सब यज्ञों का फल प्राप्त हो जाता है। सब कामों के करने का फल प्राप्त होता है। चतुः समुद्र पर्यन्त पृथिवी दान करने का फल पाता है। ब्रह्मचारी ज्ञानी हो जाता है। गृहस्थी पुत्र-पौत्र, ऐश्वर्य सम्पन्न होता है। संन्यासी मोक्ष का अधिकारी होता है।

नारायण माहात्म्य पढ़ने से अथवा सुनने से ही सब वाञ्छित पदार्थों को प्राप्त करता है। नारायण की कृपा से वैकुण्ठ पद का भागी बनता है। जो ऐसा जानता है। यह उपनिषद् है।। वेद के जितने अक्षर ब्राह्मणों द्वारा पढ़े गये हैं, उतने ही हरि के नाम गाये गये हैं। नारायण-हरे-कृष्ण-वासुदेव-जगद्गुरो-मुकुन्द-अच्युत-देवेश महाविष्णो! आपको नमस्कार है। सारे प्राणी तत्त्व संज्ञा वाले हैं। कूटस्थ की अक्षर संज्ञा है। वे नारायण ही एकमात्र उत्तम पुरुष हैं।

॥ इति आथर्वण रहस्य में नारायण उत्तरतापिनीय उपनिषद् में तृतीय खण्ड पूर्ण हुआ ॥ ३ ॥

इसप्रकार नारायणोत्तरतापिनीय उपनिषद् समाप्त हुई ॥

॥ निरुक्तोपनिषद् ॥

यह उपनिषद् अधूरी ही उपलब्ध है। इसके पहले उन्नीस अध्याय अनुपलब्ध हैं, बीसवाँ-इक्कीसवाँ अध्याय ही सर्वत्र उपलब्ध है। यहाँ भी वही पाठ दिया गया है।

॥ शान्तिपाठः ॥

ॐ वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि। वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीरनेनाधीतेनाहोरात्रान्संदधाम्यृतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम् ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

॥ अथ विंशतितमोऽध्यायः ॥

स यद्यनुरुध्यते तद्भवति। यदि धर्मोऽनुरुध्यते तदेवोद्भवति। यदि ज्ञानमनुरुध्यते तदमृतो भवति। यदि काममनुरुध्यते संचरतां इमां योनिं संदध्यात्तदिदमत्र मनः श्लेष्मरेतसः संभवति। श्लेष्मणो रसः। रसाच्छोणितम्। शोणितान्मांसम्। मांसान्मेदः। मेदसः स्नावा। स्नावोऽस्थीनि। अस्थिभ्यो मज्जा। मज्जातो रेतः। तदिदं योनौ रेतः सिक्तं पुरुषः संभवति। शुक्रातिरेके पुमान् भवति। शोणितातिरेके स्त्री भवति। द्वाभ्यां समेन नपुंसको भवति। शुक्रभिन्नेन यमो भवति। शुक्रशोणितसंयोगान्मातृपितृसंयोगाच्च कथमिदं शरीरं परं संयम्यते। सौम्यो भवत्येकरात्रोषितं कललं भवति। पञ्चरात्राद्बुद्बुदः। सप्तरात्रात् पेशी। द्विसप्तरात्रादर्बुदः। पंचविंशतिरात्रस्थितो योनौ घनो भवति। मासमात्रात् कठिनो भवति। द्विमासाभ्यन्तरे शिरः संपद्यते। मासत्रयेण ग्रीवाव्यादेशः। मासचतुष्केण त्वग्व्यादेशः। पञ्चमे मासे नखरोमव्यादेशः। षष्ठे मुखनासिकाक्षिश्रोत्रं च संभवति। सप्तमे चलनसमर्थो भवति। अष्टमे बुद्ध्याध्यवस्यते। नवमे सर्वाङ्गसंपूर्णो भवति।

मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः। नानायोनिसहस्राणि मया यान्युषितानि वै॥ आहारा विविधा भुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः। मातरो विविधा दृष्टाः पितरः सुहृदस्तथा॥ अवाङ्मुखः पीड्यमानो जन्तुश्चैव समन्वितः। सांख्यं योगं समभ्यस्ये पुरुषं पञ्चविंशकम्॥ इति॥

ततश्च दशमे मासे प्रजायते। जातश्च वायुना स्पृष्टो न स्मरति जन्म मरणम्। अन्ते च शुभाशुभं कर्मैतच्छरीरस्य प्रामाण्यम्॥

मनुष्य अपने जीवन में जैसा अभ्यास करता है, उसी के अनुरूप उसे फल भी प्राप्त होता है। यदि धर्ममय जीवन बिताया गया है, तो उसे अगले जन्म में भी धर्ममय जीवन उपलब्ध होगा। यदि ज्ञान में उसका अनुरोध, अभ्यास रहा है, तो उसे मोक्ष की प्राप्ति होगी। यदि जीवन इच्छाओं, कामनाओं की पूर्ति करते बीता है, तो संचरण करता हुआ इस मनुष्य योनि को प्राप्त करता है। सो यह मन श्लेष्मा व रेतस् से बनता है। श्लेष्मा से रस, रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद से स्नायु (नाड़ी, नस), स्नायु से अस्थि, अस्थियों से मज्जा, मज्जा से शुक्र। योनि में शुक्र के सिञ्चन से पुरुष और शोणित की प्रबलता से कन्या होती है। शुक्र शोणित दोनों की समानता में नपुंसक होता है। शुक्र यदि दो भाग में विभाजित हो जाता है, तो जुड़वाँ बच्चे पैदा होते हैं। शुक्र-शोणित संयोग अथवा माता-पिता के संयोग से यह इतना बड़ा शरीर प्राप्त हुआ; फिर क्योंकर इसे पूर्वजन्म से जोड़ दिया? उत्तर में कहते हैं—सौम्य जैसे होता है उसे बताते हैं। एक रात्रि के बाद कललरूप (भ्रूण) होता है। पाँच रात्रि के पश्चात् बुदबुदरूप में (बुलबुला) होता है। सात रात्रि पश्चात् पेशीरूप होता है। चौदह रात्रि पश्चात् अर्बुद (गोला) रूप होता है। पच्चीस रात्रि पश्चात् गर्भाशय में घनरूप (ठोस) हो जाता है। एक मास पश्चात् कुछ कठिन (कठोर) सा हो जाता है। दो मास के अन्तर में सिर बन जाता है। तीन मास के अन्दर गर्दन तक का भाग पूर्ण होता है। चौथे मास से त्वचा का निर्माण होता है। पाँचवें मास में नख-रोम का निर्माण हो जाता है। छठे मास में मुख-नासिका, आँख-कान की उत्पत्ति होती है। सातवें में चलने (गर्भाशय में घूमने में) में समर्थ होता है। आठवें में बुद्धि परिपक्व होती है। नवम मास में सर्वांग से सम्पूर्ण होता है।

तब माता के गर्भाशय में नीचे को मुख किये लटका हुआ (जीव) मन में सोचता है कि मैं बार-बार मरा, बार-बार पैदा हुआ। नाना प्रकार की योनियों में मैंने कष्ट भोगे। विविध प्रकार के भोजन किये तथा नाना प्रकार के स्तनों का पान किया। अनेक प्रकार के माता-पिता, मित्र देखे। हे प्रभो! अब जीवन में सांख्ययोग का अभ्यास करूँगा और पच्चीसवें तत्त्व आपको पाने का प्रयास करूँगा।

तब वह दसवें मास में जन्म लेता है। पैदा होते ही वायु का स्पर्श होने से फिर जन्म-मरण को भूल जाता है। अन्त में शुभ-अशुभ कर्म ही इस शरीर के प्रमाणभूत हैं।

[बीसवें अध्याय में ऋषि ने सन्तानोत्पत्ति की प्रक्रिया एवं बालक, बालिका और नपुंसक जातक होने के कारणों का जो उल्लेख किया है, वह आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से भी सत्य सिद्ध होता है। उपर्युक्त तथ्य के सन्दर्भ में ऋषि की दृष्टि एवं चिकित्सा विज्ञान में कैसा समन्वय है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार पिता द्वारा मादायोनि में सिञ्चित शुक्राणु (स्पर्म) एक्स (X) और वाई (Y) दो प्रकार के होते हैं। पिता का एक्स शुक्राणु जब माता के अण्डाणु (ओवम) से जाकर मिलता है, तब कन्या का जन्म होता है और जब वाई (Y) शुक्राणु (स्पर्म) अण्डाणु से मिलता है, तब बालक का जन्म होता है। (उल्लेख्य है कि अण्डाणु में केवल लिङ्ग गुणसूत्र (क्रोमोसोम) होते हैं जो, लिङ्ग का निर्धारण करते हैं।]

इसी प्रकार मादा के अण्डाणु (ओवम) में एक्स-एक्स (XX) गुण सूत्रों (क्रोमोसोम्स) से जब पुरुष के शुक्राणु का सम्मिलन होता है, तब नपुंसक सन्तान का जन्म होता है। (उल्लेखनीय है कि जब पुरुष का एक्स शुक्राणु मादा के एक्स-एक्स शुक्राणु से मिलता है तब मादा नपुंसक और पुरुष का वाई (Y) शुक्राणु स्त्री के एक्स-एक्स से शक्राणु से मिलता है, तब नर नपुंसक का जन्म होता है)

जुड़वाँ सन्तान के विषय में ऋषि का मत है कि शुक्र-शोणित के दो भागों में विभाजित

हो जाने पर जुड़वाँ सन्तानें जन्म लेती हैं। इस सन्दर्भ में वर्तमान चिकित्सा विज्ञान (मेडिकल साइन्स) की मान्यता यह है कि पुरुष शुक्राणु के स्त्री अण्डाणु-संयोग से एक पूर्ण कोशिका (जाइगोट) का निर्माण होता है, तत्पश्चात् वह कोशिका अरबों भागों में विभाजित हो जाती है और एक पूर्ण शिशु का निर्माण हो जाता है। ये पूर्ण कोशिका यदि प्रथम विभाजन के पश्चात् ही दो भागों में विभाजित होकर स्वतन्त्र रूप से अगला विभाजन और विकास करने लगे, तो जो जुड़वाँ सन्तान (मोनो जाइगोटिक) होती है। लगता है, ऋषि ने संकेत रूप से इतना ही कह दिया है कि शुक्र-शोणित के समान विभाजन से जुड़वाँ सन्तान का जन्म होता है। बाद में उपनिषद् के ऋषि की इसी अवधारणा की शोध चिकित्सा विज्ञान ने अपने ढंग से की और इसे वैज्ञानिक परिभाषा प्रदान की।

गर्भ में शिशु निर्माण की प्रक्रिया के अन्तर्गत विभिन्न अंगों के निर्माण की पृथक्- पृथक् अवधि जो ऋषि ने निर्दिष्ट की है, वह भी आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि में सत्य सिद्ध होती है।

।अथ एकविंशोऽध्यायः।

अष्टोत्तरं सन्धिशतमष्टाकपालं शिरः संपद्यते। षोडश वपापलानि। नव स्नायुशतानि। सप्तशतं पुरुषस्य मर्माणि। अर्धचतस्त्रो रोमाणि कोटयः। हृदयं ह्यष्टकपलानि। द्वादशकपलानि जिह्वा। वृषणो ह्यष्टसुपर्णौ। तत उपस्थगुदयोन्येतन्मूत्रपुरीषं कस्मादाहारापानसिक्तत्वादनुपचति। कर्मणा अन्योऽन्यं जायत इति। तं विद्याकर्मणी समन्वारभेते पूर्वप्रज्ञा च। महत्यज्ञानतमसि मग्नो जरामरणक्षुत्पिपासाशोकक्रोधद्रोहलोभमोहमदभयमत्सरहर्षविषादेर्ष्यासूयात्मकैर्द्वन्द्वै-रभिभूयमानः सोऽस्मादार्जवं जवीभावनान्तं निर्मुच्यते। सोऽस्मादान्तं महाभूमिकावत् शरीरान्नि-मेषमात्रैः प्रक्रम्य प्रकृतिभिरभिपरीत्य तैजसं शरीरं कृत्वा कर्मणानुरूपं फलमनुभूय तस्य संक्षये पुनरिमं लोकं प्रतिपद्यते।

अब शरीर के अवयवों की गणना कराते हैं— एक सौ आठ सन्धियाँ होती हैं। आठ चपटी अस्थियों से कपाल (सिर) की रचना होती है। सोलह पल वसा होती है। नौ सौ स्नायु होती है। सात सौ पुरुष के मर्म स्थान होते हैं। दो करोड़ बाल (रोएँ) होते हैं। हृदय आठ (पल) होता है। जीभ बारह पल (चार तोला) होती है। वृषण पुष्ट (कठोर) दो पर्ण जैसे होते हैं, फिर उपस्थ (लिङ्ग), गुदा, योनि मूत्र-पुरीष के निमित्त होते हैं; क्योंकि आहार पान से सिक्त होने से पाचनान्तर (मल आदि) शेष बचते हैं। कर्म से पुंल्लिङ्ग स्त्रीलिङ्ग का परिवर्तन होता है। उससे विद्या कर्म और पूर्व प्रज्ञा का समन्वय होता है। महान् अज्ञान अन्धकार में डूबा जरा, मरण, भूख, प्यास, शोक, क्रोध, द्रोह, लोभ, मोह, मद, भय, मत्सर, हर्ष, विषाद, ईर्ष्या, असूयादि द्वन्द्वों से अभिभूत हुआ वह जीवात्मा इस शरीर को बड़े वेग से छोड़ देता है। वह इस शरीर से एक क्षण में निकलकर, प्रकृति गुणों से उस पार हुआ तैजस शरीर धारण किये कर्मों के अनुरूप फल का भोग करके, उसकी समाप्ति पर फिर इस मर्त्यलोक को प्राप्त करता है।

॥ इति निरुक्तोपनिषत्समाप्ता ॥

॥ नृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषद् ॥

॥ शान्तिपाठः ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः .... इति शान्तिः ॥ (द्रष्टव्य- अथर्वशिखोपनिषद्)

॥ प्रथमःखण्डः ॥

देवा ह वै प्रजापतिमब्रुवन्-अणोरणीयांसमिममात्मानमोंकारं नो व्याचक्ष्वेति ॥ १ ॥

एक बार समस्त देवों ने प्रजापति ब्रह्माजी से पूछा- हे भगवन्! जो अणु से भी अतिअणु अर्थात् सूक्ष्मातिसूक्ष्म हैं, उन ॐकाररूपी परमात्मतत्त्व को हम सभी से साफ-साफ बतलाने का अनुग्रह करें॥ १ ॥

तथेत्योमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोंकार एव यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव सर्वं ह्येतद्ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म ॥ २ ॥

तदुपरान्त ब्रह्माजी ने 'ऐसा ही हो' कहकर उपदेश देना प्रारम्भ किया- 'ॐ' यह अक्षर (अविनाशी परब्रह्म परमात्मा) है। यह दृष्टिगोचर होने वाला सम्पूर्ण विश्व उस परम-तत्त्वरूप ॐकार की ही उपव्याख्या (महिमा का विस्तार) है। भूत, वर्तमान एवं भविष्य में होने वाला यह सम्पूर्ण जगत् प्रणवरूप ही है। जो उपर्युक्त तीनों कालों से अतीत एवं जगत् से पृथक् अन्य कोई तत्त्व है, वह भी प्रणव ही है। अवश्य ही यह सभी कुछ ब्रह्ममय ही है और यह आत्मा भी ब्रह्ममय है॥ २ ॥

तमेतमात्मानमोमिति ब्रह्मणैकीकृत्य ब्रह्म चात्मनोमित्येकीकृत्य तदेकमजरममरम-मृतमभयमोमित्यनुभूय तस्मिन्निदं सर्वं त्रिशरीरमारोप्य तन्मयं हि तदेवेति संहरेदोमिति॥ ३ ॥ तं वा एतं त्रिशरीरमात्मानं त्रिशरीरं परं ब्रह्मानुसंदध्यात्स्थूलत्वात्स्थूलभुक्त्वाच्च सूक्ष्मत्वात् सूक्ष्मभुक्त्वाच्चैक्यादानन्दभोगाच्च ॥ ४ ॥

इस आत्मा को 'ॐकार' नाम से अभिहित ब्रह्म के साथ एकीकृत करके और ब्रह्म की आत्मा के साथ 'ॐकार' के वाच्यार्थरूप से एकीकृत करके वह (साधक) एकमात्र अनुपम, अजर, अमर, अमृतरूप, भयरहित, चिन्मय, 'ॐकार' को चिन्तन द्वारा अनुभव करे। उस परमात्मारूप प्रणव में स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीरों से युक्त इस सम्पूर्ण दृश्य-प्रपञ्च का आरोप करे अर्थात् एक परमात्मा ही सत्य है। उन्हीं में से इस स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण-जगत् की कल्पना हुई है। ऐसा ज्ञान के द्वारा अनुभव करके यह विचार करना चाहिए कि यह जगत् सत्, चित्, आनन्दमय ही है। इसके सिवा तन्मय होने के कारण निश्चय ही यह परमात्मारूप ही है, इस प्रकार दृढ़ निश्चय होकर जगत् को 'ॐकार' के वाच्यार्थभूत परमात्मतत्त्व में विलय कर ले। इसके साथ ही उस स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीर वाले आत्मा का यह त्रिविध शरीररूप उपाधि से अलंकृत परब्रह्म ही एकमात्र है, ऐसा निरन्तर चिन्तन करता रहे। स्थूल (विराट् जगत्रूप) और स्थूल जगत् का भोक्ता और साथ ही साथ सूक्ष्म (सूक्ष्म जगत्रूप) एवं सूक्ष्म जगत् का भोक्ता होने के कारण तथा वैसे ही वह एकमात्र आनन्दस्वरूप और एकमात्र आनन्द का उपभोग करने वाला है॥ ३-४ ॥

सोऽयमात्मा चतुष्पात्॥ ५॥

इसके साथ ही साथ इन सभी से विलक्षण रहने के कारण ही वह आत्मा (परमात्मतत्त्व) चार पादों से संयुक्त है॥ ५॥

जागरितस्थानः स्थूलप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुक्चतुरात्मा विश्वो वैश्वानरः प्रथमः पादः॥ ६॥

जाग्रत् अवस्था एवं इसके द्वारा उपलक्षित यह सम्पूर्ण विश्व ही जिनका शरीर है, जो सम्पूर्ण जगत् में संव्याप्त हैं; जिनका ज्ञान इस बाह्य जगत् में चतुर्दिक् फैला हुआ है। भूः, भुवः, स्वः आदि सात लोक ही जिनके सात शरीर हैं। ये उन्नीस (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण एवं चार अन्तःकरण) समष्टिकरण ही जिनके मुख हैं, जो स्थूल संसार के भोक्ता हैं। चारों पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) ही जिनके चार स्वरूप हैं और जो विश्व देह में प्रतिष्ठित नर होने से 'वैश्वानर' कहलाते हैं, वे सर्वरूपधारी वैश्वानर ही पूर्णतम परमात्मा श्रीनृसिंह देव के प्रथम पाद के रूप में जाने जाते हैं॥ ६॥

स्वप्नस्थानः सूक्ष्मप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः सूक्ष्मभुक् चतुरात्मा तैजसो हिरण्यगर्भो द्वितीयः पादः॥ ७॥

स्वप्नावस्था एवं इसके द्वारा उपलक्षित सूक्ष्म जगत् ही जिनका शरीर है, जिनका विवेक बाह्य जगत् की अपेक्षा सूक्ष्म जगत् में संव्याप्त है और जो उपर्युक्त मंत्र में कहे हुए सात अंगों एवं उन्नीस मुखों से युक्त तथा सूक्ष्म जगत् के सूक्ष्म तत्त्वों का अनुभव एवं पालन करने में समर्थ हैं, वे पूर्ववत् चारों रूपों से युक्त तैजस सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ उन परब्रह्म परमात्मा श्रीनृसिंह देव के द्वितीय पाद के रूप में जाने जाते हैं॥ ७॥

यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते न कंचन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम्। सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक् चेतोमुखश्चतुरात्मा प्राज्ञ ईश्वरस्तृतीयः पादः॥ ८॥

जहाँ सुप्तावस्था में रहकर कोई भी पुरुष किसी भी भोग की कामना नहीं करता और न कोई स्वप्न ही देखता है। वहाँ ऐसी सुषुप्तावस्था एवं उसके द्वारा उपलक्षित सम्पूर्ण विश्व की प्रलयावस्था ही जिनका स्थान (शरीर) है। जो अपने एक ही स्वरूप में प्रतिष्ठित हैं अर्थात् विभिन्न रूपों में जिनकी अभिव्यक्ति नहीं हुई। प्रज्ञानघन ही जिनका स्वरूप है; जो केवल आनन्दमय ही हैं। चिन्मय प्रकाश ही जिनका मुख है, ओत, अनुज्ञातृ, अनुज्ञा एवं अविकल्प के रूप में ही जिन्हें जाना जाता है; जो स्वयं ही एकमात्र अपने स्वरूपभूत आनन्द के भोक्ता हैं। जिनके अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं है, ऐसे प्राज्ञ- नाम से प्रख्यात परब्रह्म ही पूर्ण परमात्मा श्रीनृसिंहदेव जी के तृतीय पाद के रूप में जाने जाते हैं॥ ८॥

एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम्॥ ९॥

इस प्रकार से त्रिविध पादों के रूप में विवेचित ये परब्रह्म परमात्मा सभी के ईश्वर हैं। ये सर्वज्ञ एवं अन्तर्यामी भी हैं। ये ही सम्पूर्ण जगत् के कारण हैं और समस्त भूत-प्राणियों की उत्पत्ति, पालन एवं विलय (विनाश) के स्थान (कारण) भी यही परमात्मा हैं॥ ९॥

त्रयमप्येतत्सुषुप्तं स्वप्नं मायामात्रं चिदेकरसो ह्ययमात्मा॥ १०॥

जाग्रत्, सुप्त एवं सुषुप्त अवस्थाओं में दृष्टिगोचर होने वाला यह जगत् भी सही अर्थों में सुषुप्तरूप ही है; क्योंकि इन सभी से मोहित हुए पुरुषों को कभी किसी वस्तु का तात्त्विक ज्ञान नहीं होता। इसी तरह यह त्रिविध जगत् भी स्वप्नवत् है; क्योंकि यहाँ पर वस्तु (पदार्थ) का प्राय: विपरीत ही ज्ञान होता है। मात्र इतना ही नहीं; वरन् कुछ का कुछ परिलक्षित होने के कारण यहाँ पर सभी कुछ माया-मात्र ही है। परमात्म-तत्त्व इससे विलक्षण है; क्योंकि एकमात्र यही परमात्मा चिन्मय-रसस्वरूप कहे गये हैं॥ १०॥.

अथ तुरीयश्चतुरात्मा तुरीयावसितत्वादेकैकस्योतानुज्ञात्रनुज्ञाविकल्पैस्त्रयमप्यत्रापि सुषुप्तं स्वप्नं मायामात्रं चिदेकरसो हि ॥ ११॥

उपर्युक्त तीनों पादों के अतिरिक्त जो चतुर्थ पाद है, वह (ओत, अनुज्ञातृ, अनुज्ञा एवं अविकल्प) इन चार भेदों के कारण चार रूपों से युक्त है, उपर्युक्त चारों पाद ही तुरीय कहे गये हैं; क्योंकि हर एक रूप का तुरीय में ही विलय होता है। इस तुरीय पाद के अन्तर्गत जो ओत, अनुज्ञातृ एवं अनुज्ञारूप तीन भेद हैं, इन्हीं तीनों को पूर्व की भाँति सुषुप्ति और स्वप्न के सदृश एवं माया- मात्र ही जानना चाहिए; क्योंकि पारमार्थिक तुरीयरूप जो निर्विकल्प एवं निर्विशेष परमप्रभु हैं, वे ही एकमात्र चिन्मयस्वरूप हैं॥ ११॥

अथायमादेशो न स्थूलप्रज्ञं न सूक्ष्मप्रज्ञं नोभयत: प्रज्ञं न प्रज्ञं नाप्रज्ञं न प्रज्ञानघनमदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यम लक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शिवं शान्तमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स एवात्मा स विज्ञेय ईश्वरग्रासस्तुर्यतुरीय:॥ १२॥

तदनन्तर श्रुति का यह आदेश है कि 'जो न स्थूल को जानता है, न सूक्ष्म को जानता है और न ही दोनों को भी जानता है। जो न तो जानने वाला है, न नहीं जानने वाला भी है तथा न ही प्रज्ञान का घनीभूत रूप है। जिसे देखा भी नहीं जा सकता, व्यवहार में भी नहीं लाया जा सकता, जो पकड़ने से बाहर है, जिसका कोई लक्षण (चिह्न या आकार) भी नहीं है। जो ध्यान करने में नहीं आ सकता। जिसको किसी विशेष रूप से भी नहीं बतलाया जा सकता है। आत्मसत्ता की एकमात्र अनुभूति ही जिसका सार-तत्त्व है तथा जिसमें प्रपञ्च का सदा अभाव बना रहता है। इस प्रकार सदैव कल्याणप्रद, परम शान्तरूप अनुपम तत्त्व ही उन पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर श्री नृसिंह देव का चौथा पाद है, ऐसी ज्ञानीजनों की मान्यता है। वे भगवान् नृसिंहदेव ही समस्त प्राणियों की आत्मा हैं। वे ही जानकारी के योग्य हैं। वे कारण आत्मा ईश्वर (इन्द्र आदि) को भी अपना ग्रास बना लेते हैं अर्थात् अपने में विलीन कर लेते हैं। वे तुरीयातीत (परमात्मा) हैं॥ १२॥

॥ द्वितीय:खण्ड:॥

तं वा एतमात्मानं जाग्रत्यस्वप्नमसुषुप्तं स्वप्नेऽजाग्रतमसुषुप्तं सुषुप्तेऽजाग्रतमस्वप्नं तुरीयेऽ-जाग्रतमस्वप्नमसुषुप्तमव्यभिचारिणं नित्यानन्दंसदेकरसं ह्येव॥ १॥

तुरीय नामक प्रख्यात वे परमात्मा जाग्रत् अवस्था में स्वप्न एवं सुषुप्ति से विहीन हैं, स्वप्नावस्था में जाग्रत् एवं सुषुप्ति विहीन हैं, सुषुप्तावस्था में जाग्रत् एवं स्वप्न से विहीन हैं तथा तुर्यावस्था में जाग्रत् , स्वप्न एवं सुषुप्ति इन

तीनों अवस्थाओं से रहित हैं। हर एक अवस्था में अलग-अलग रहते हुए भी वे सभी अवस्थाओं से संयुक्त हैं। उन (परमात्मा) का कहीं पर भी अभाव नहीं है। इस प्रकार से वे परमात्मा नित्यानन्द, अन्तरहित, सत्यस्वरूप एवं एकरस (रसमय) हैं॥ १ ॥

चक्षुषो द्रष्टा श्रोत्रस्य द्रष्टा वाचो द्रष्टा मनसो द्रष्टा बुद्धेर्द्रष्टा प्राणस्य द्रष्टा तमसो द्रष्टा सर्वस्य द्रष्टा ततः सर्वस्मादस्मादन्यो विलक्षणः॥ २॥

वे परमात्मा नेत्रेन्द्रिय के द्रष्टा हैं, श्रोत्रेन्द्रिय के द्रष्टा हैं। ये दोनों इन्द्रियाँ उपलक्षण मात्र हैं; वे नासिका, जिह्वा एवं त्वचा के भी द्रष्टा हैं। वाणी आदि कर्मेन्द्रियों के द्रष्टा हैं, मन के द्रष्टा, बुद्धि के द्रष्टा, प्राण के द्रष्टा, तमस्-अज्ञानान्धकार (अहंकार) के द्रष्टा हैं। कहाँ तक कहें, वे अन्य सभी के द्रष्टा हैं॥ २॥

चक्षुषः साक्षी श्रोत्रस्य साक्षी वाचः साक्षी मनसः साक्षी बुद्धेः साक्षी प्राणस्य साक्षी तमसः साक्षी सर्वस्य साक्षी ततोऽविक्रियो महाचैतन्योऽस्मात्सर्वस्मात् प्रियतम आनन्दघनं ह्येवमस्मात् सर्वस्मात् पुरतः सुविभातमेकरसमेवाजरममृतमभयं ब्रह्मैव ॥ ३॥ अप्यजयैनं चतुष्पादं मात्राभिरोंकारेण चैकीकुर्यात्॥ ४॥

वे परमात्मा पक्षपातरहित सभी के साक्षी हैं। वे आँखों के साक्षी, कानों के साक्षी, नासिका के साक्षी, रसना एवं त्वचा के भी साक्षी हैं। वाणी आदि कर्मेन्द्रियों के भी साक्षी हैं। मन एवं बुद्धि के भी साक्षी हैं, प्राण के साक्षी, तमस् के साक्षी हैं और कहाँ तक कहें, वे परमात्मा सभी के साक्षी हैं। इसी कारण वे परमात्मा निर्विकार एवं महत् चैतन्यरूप समस्त आत्माओं के भी आत्मा हैं। वे सभी से बढ़कर श्रेष्ठ प्रियतम हैं एवं आनन्द के घनीभूत विग्रह-रूप हैं। वे इन सभी प्रपञ्चों के पहले से ही सम्यक् रूप से आलोकित हो रहे हैं। इसलिए वे एकरस ही हैं। विकार उनका स्पर्श भी नहीं कर सकते। इतना ही नहीं, मृत्यु भी उनसे दूर रहती है। वे अमृत एवं भयरहित ब्रह्ममय ही हैं, फिर भी अपनी मायाशक्ति द्वारा वे ॐकारयुक्त परमात्मा चार पादों से सम्पन्न बने हुए हैं॥ ३-४॥

जागरितस्थानश्चतुरात्मा विश्वो वैश्वानरश्चतूरूपोऽकार एव चतूरूपो ह्ययमकारः स्थूलसूक्ष्मबीजसाक्षिभिरकाररूपैराप्तेरादिमत्त्वाद्वा स्थूलत्वात्सूक्ष्मत्वाद्बीजत्वात् साक्षित्वाच्च। आप्नोति ह वा इदं सर्वमादिश्च भवति य एवं वेद॥ ५॥

जाग्रत् अवस्था एवं उसके द्वारा लक्षित यह स्थूल संसार ही जिनका शरीर है; जिनके ये (स्थूल, सूक्ष्म, कारण एवं साक्षी) चार स्वरूप हैं, वे विश्वमय वैश्वानर पूर्णपुरुष परमात्मा के प्रथमपाद हैं। इन (वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती एवं परा या बीज, बिन्दु, नाद एवं शक्ति) चार रूपों से युक्त 'अकार' ही ॐ कार की प्रथम मात्रा है और यही अकार वैश्वानर है। क्योंकि यह अकार भी स्थूल (वैखरी), सूक्ष्म (मध्यमा), बीज (पश्यन्ती) एवं साक्षी (परा) इन चार रूपों से परिलक्षित होने के कारण वैश्वानर की ही तरह चार रूपों से युक्त है। आदिम (प्रथम) होने के कारण (अकार और वैश्वानर) दोनों में समानता है। अकार सभी वर्णों में प्रथमाक्षर है और वैश्वानर भी विराट्रूप में सर्वप्रथम प्रादुर्भूत हुआ है। इन सभी समानताओं के कारण एवं उपर्युक्तवर्णानुसार स्थूलरूप, सूक्ष्मरूप, कारणरूप तथा साक्षीरूप होने के कारण भी दोनों में समानता है। जो (पुरुष) ऐसा जानता है, वह निश्चय ही संसार के समस्त भोगों (पदार्थों) को प्राप्त कर लेता है तथा सभी का आदि (प्रधान) हो जाता है, जो इस प्रकार जानता है॥ ५॥

स्वप्नस्थानश्चतुरात्मा तैजसो हिरण्यगर्भश्चतूरूप उकार एव चतूरूपो ह्ययमुकारः स्थूलसूक्ष्मबीजसाक्षिभिरुकाररूपैरुत्कर्षादुभयत्वाद्वा स्थूलत्वात् सूक्ष्मत्वाद्वीजत्वात् साक्षित्वाच्च। उत्कर्षति ह वै ज्ञानसंततिं समानश्च भवति य एवं वेद॥ ६॥

स्वप्नावस्था एवं उसके द्वारा उपलक्षित सूक्ष्म जगत् ही जिन परमात्मा का शरीर है और जो उपर्युक्त चार रूप में सम्पन्न हैं, उन पूर्णपुरुष परमात्मा के द्वितीय पादरूप तैजस हिरण्यगर्भ एवं ॐकार की द्वितीय मात्रा के रूप में प्राप्त होने वाला उपर्युक्त चार रूपों से युक्त ये - 'उकार' एक ही है। 'उकार' ही तैजस है। उकार के ये जो (स्थूल, सूक्ष्म, बीज एवं साक्षी) चार रूप हैं, इन्हीं के द्वारा निश्चय ही उकार भी तैजस पुरुष की तरह से चार रूपों वाला है। अत: इसी कारण दोनों में परस्पर समानता है। इस समानता के कारण भी उकार ही तैजस है। मात्र इतना ही नहीं; वे पूर्ववत् स्थूल, सूक्ष्म बीज एवं साक्षी रूप होने के कारण भी दोनों आपस में समान एवं अभिन्न हैं। जो ऐसा जानता है, वह निश्चय ही ज्ञान की परम्परा को शीर्षस्थ करता है और सभी में समभाव रखने वाला होता है॥ ६॥

सुषुप्तस्थानश्चतुरात्मा प्राज्ञ ईश्वरश्चतूरूपो मकार एव चतूरूपो ह्ययं मकारः स्थूलसूक्ष्मबीजसाक्षिभिर्मकाररूपैर्मितेरपीतेर्वा स्थूलत्वात्सूक्ष्मत्वाद्वीजत्वात् साक्षित्वाच्च। मिनोति ह वा इदं सर्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद॥ ७॥

सुषुप्ति और उसके द्वारा उपलक्षित समस्त जगत् की प्रलयावस्था ही जिनका एकमात्र स्थान (शरीर) है अर्थात् समष्टि कारणतत्त्व में जिसकी स्थिति है। जो इन (ओत, अनुज्ञातृ, अनुज्ञा एवं अविकल्प) चार रूपों से युक्त है, वही प्राज्ञ, ईश्वर है। यही परमात्मा के तृतीय पाद के रूप में कहा गया है। प्रणव के तृतीय मात्रा के रूप में उपलब्ध होने वाला उक्त चार रूपों से सम्पन्न मकार ही है। अवश्य ही यह मकार अपने इन स्वरूपों से (स्थूल, सूक्ष्म, बीज और साक्षी) चार रूपों से युक्त है तथा प्राज्ञ भी चार रूपों से सम्पन्न है। इसके अतिरिक्त मिति और अपीति अर्थात् माप करने तथा विलय करने से भी मकार एवं प्राज्ञ आपस में अभिन्न समानता रखते हैं। इन समानताओं से तथा इसके अलावा उक्त स्थूल, सूक्ष्म बीज एवं साक्षी होने से दोनों आपस में समान हैं। जो ऐसा जानता है, वह निश्चय ही इस सम्पूर्ण कारण-जगत् को सम्यक् रूप से जान लेता है और सभी को अपने में लय कर लेता है। अकार का उकार में लय होता है, उकार उसकी प्रतिमात्रा है और मकार उकार की प्रति- मात्रा है और मकार की प्रतिमात्रा ॐकार है। इस प्रकार ॐकार में ही सभी विलय होता है। इसलिए मनुष्य को अकार आदि मात्राओं को अपनी-अपनी मात्राओं में विलीन करने की भावना करनी चाहिए॥ ७॥

मात्राऽमात्राः प्रतिमात्राः कुर्यात्। अथ तुरीय ईश्वरग्रासः स स्वराट् स्वयमीश्वरः स्वप्रकाशश्चतुरात्मोतानुज्ञात्रनुज्ञाविकल्पैः। ओतो ह्ययमात्मा ह्यथैवेदं सर्वमन्तकाले कालाग्निः सूर्योस्त्रैः। अनुज्ञाता ह्ययमात्मा ह्यस्य सर्वस्य स्वात्मानं ददातीदं सर्वं स्वात्मानमेव करोति यथा तमः सविता। अनुज्ञैकरसो ह्ययमात्मा चिद्रूप एव यथा दाह्यं दग्ध्वाऽग्निः॥ ८॥

मात्रा, अमात्रा एवं अर्द्धमात्रा (वैश्वानर) आदि तीन पादों के अलावा जो परमेश्वर के चौथे पाद के रूप में वर्णित तुरीय परमात्मा हैं, वे (परमात्मा) आत्मा ईश्वर को भी अपना ग्रास बनाकर अपने में विलीन कर लेते हैं। वे (परमात्मा) स्वराट् हैं। ने अपनी निज की शक्ति से ही शक्तिमान् सम्राट् हैं; वे स्वयं ही समर्थ ईश्वर हैं और स्वप्रकाश से आलोकित होने वाले परमेश्वर हैं। उनके भी चार रूप ओत, अनुज्ञातृ, अनुज्ञा और अविकल्प हैं।

निश्चय ही ये परमात्मा ओत अर्थात् सर्वत्र संव्याप्त रहने वाली सत्ता हैं। वे ठीक वैसे ही हैं, जैसे विनाश की अवधि में कालाग्नि एवं सूर्य अपनी प्रचण्ड ज्वालाओं एवं प्रखर किरणों से इस सम्पूर्ण विश्व को बाह्य एवं अन्त: (भीतर) से संव्याप्त कर लेते हैं। ये परमात्मा अनुज्ञाता भी हैं अर्थात् सभी को अपने निज स्वरूप में वैसे ही बना लेते हैं, जिस प्रकार सूर्यदेव अँधेरे को अपना रूप बना लेते हैं। इसी तरह ये परमात्मा अनुज्ञैकरस अर्थात् एकमात्र ज्ञान के रस से युक्त हैं, अज्ञान को नष्ट करके चिन्मय रूप से ठीक वैसे ही वे (परमात्मा) प्रतिष्ठित हैं, जैसे ज्वलनशील योग्य काष्ठ आदि को भस्म कर अग्नि केवल तेजोमय रूप से प्रतिष्ठित हो जाती है॥ ८॥

अविकल्पो ह्ययमात्माऽवाङ्मनोगोचरत्वाच्चिद्रूपश्चतूरूप ॐकार एव चतूरूपो ह्ययमोंकार ओतानुज्ञात्रनुज्ञाऽविकल्पैरोंकाररूपैरात्मैव नामरूपात्मकं हीदं सर्वं तुरीयत्वात् चिद्रूपत्वाच्च ओतत्वात् अनुज्ञातृत्वात् अनुज्ञात्वात् अविकल्परूपत्वाच्च। अविकल्परूपं हीदं सर्वं नात्र काचन भिदाऽस्ति नैव तत्र काचन भिदाऽस्ति॥ ९॥

इसके साथ ही ये परमात्मा अविकल्प (भेद एवं संशय से रहित) भी हैं; क्योंकि ये मन एवं वाणी के विषय नहीं; वरन् चित्स्वरूप हैं। इस कारण से ये (परमात्मा) चार रूपों से युक्त ॐकार ही हैं। अवश्य ही वह प्रणव इन ओत, अनुज्ञातृ, अनुज्ञा एवं अविकल्प के अपने ही स्वरूपों से चार रूपों वाला कहा गया है। इसलिए ये परमात्मा तुरीय पाद के सदृश ओंकार भी हैं, क्योंकि यह सभी कुछ नाम एवं रूपमय ही है। अत: तुरीय, चित्स्वरूप, ओत, अनुज्ञातृ, अनुज्ञा एवं अविकल्परूप होने के कारण ॐकार एवं परमात्मा दोनों आपस में पृथक् नहीं हैं। जिस प्रकार वैश्वानर आदि का तुरीय में विलय होता है, वैसे ही ओत आदि का अविकल्प में विलय होता है। इसलिए यह सभी कुछ अविकल्परूप ही है। उसमें किसी भी तरह का कोई भी भेद नहीं है॥ ९॥

तस्यायमादेशोऽमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्य: प्रपञ्चोपशम: शिवोऽद्वैत: एवमोंकार आत्मैव संविशत्यात्मनाऽऽत्मानं य एवं वेद॥ १०॥

चतुर्थपाद के सन्दर्भ में श्रुति यह आदेश (उपदेश) करती है कि मात्रारहित ॐकार अर्थात् परमात्म-तत्त्व के नामात्मक ओंकार मात्रारहित (वार्तालाप में न आ सकने वाला) निराकार स्वरूप ही (मन एवं वाणी का अविषय होने से) व्यवहार में न प्रतिपादित होने वाला, प्रपञ्चों से परे, कल्याणमय और अनुपम परमात्मा का चौथा पाद है। जो मनुष्य ऐसा जानता है, वह आत्मा ही आत्मा से परमात्मा में सम्यक् रूप से प्रविष्ट हो जाता है। इसकी उपासना करने वाला पराक्रमी होता है। संसार में उसकी कभी पराजय नहीं होती॥ १०॥

एष वीरो नारसिंहेन वानुष्टुभा मन्त्रराजेन तुरीयं विद्यादेष ह्यात्मानं प्रकाशयति सर्वसंहारसमर्थ: परिभवासह: प्रभुर्व्याप्त: सदोज्ज्वलोऽविद्यातत्कार्यहीन: स्वात्मबन्धहर: सर्वदा द्वैतरहित आनन्दरूप: सर्वाधिष्ठानसन्मात्रो निरस्ताविद्यातमोमोहोऽहमेवेति। तस्मादेवमेवेममात्मानं परं ब्रह्मानुसंदध्यादेष वीरो नृसिंह एवेति ॥ ११॥

श्रीनृसिंहदेव से सम्बन्धित मन्त्रराज आनुष्टुभ के द्वारा तुरीय को जानना चाहिए। अवश्य ही यह परमात्मा के स्वरूप को आलोकित कर देता है; क्योंकि यह समस्त प्राणियों का संहार करने में पूर्ण समर्थ है, पराभव को सहन न करने वाला पराक्रमी वीर है, महान् ईश्वर (प्रभु) है, सर्वत्र संव्याप्त रहने वाला (विष्णु) है, सदैव शुभ्र

प्रकाशमय है, अविद्या एवं उसके कार्य से विहीन और अपने आत्मीय स्वजनों की अज्ञानता के बन्धनों को नष्ट कर देता है। सर्वदा द्वैत से रहित है, आनन्दमय, सभी का अधिष्ठान एवं सन्मात्र-स्वरूप है। अविद्या एवं उसके कार्य से विहीन और अपने आत्मीय स्वजनों के अज्ञानता के बन्धनों को नष्ट कर देता है। सर्वदा द्वैत से रहित है, आनन्दमय, सभी का अधिष्ठान एवं सन्मात्र-स्वरूप है। अविद्या, तम (अन्धकार) एवं मोह आदि को सदैव विनष्ट कर डालने में पूर्ण सक्षम है और 'अहम्' (मैं) का एकमात्र लक्ष्यार्थ सभी का आत्मा है। अत: इस मन्त्रराज को एवं इसके वाच्यार्थरूप भगवान् श्रीनृसिंहदेव को ही सभी का आत्मा और परमेश्वर जानकर सतत उनका ध्यान करते रहना चाहिए। इस प्रकार जानकर श्रद्धापूर्वक उपासना करने वाला यह पुरुष वीर और मनुष्यों में सिंह के सदृश महान् हो जाता है॥ ११॥

॥ तृतीयः खण्डः ॥

तस्य ह वै प्रणवस्य या पूर्वा मात्रा सा प्रथमः पादो भवति द्वितीया द्वितीयस्य तृतीया तृतीयस्य चतुर्थ्योतानुज्ञात्रनुज्ञाऽविकल्परूपा तया तुरीयं चतुरात्मानमन्विष्य चतुर्थपादेन च तया तुरीयेणानुचिन्तन्ग्रसेत्॥ १॥

अवश्य ही उस प्रणव की जो प्रथम मात्रा अकार है, वह अनुष्टुप् मन्त्रराज के प्रथमपाद के दोनों तरफ लगाई जाती है। इसी भाँति प्रणव की द्वितीय मात्रा 'उ' अनुष्टुप्-मन्त्र के द्वितीय पाद के प्रारम्भ एवं समाप्त होने पर लगाई जाती है। प्रणव की तृतीय मात्रा 'म' अनुष्टुप् मन्त्र के तृतीय पाद के आगे-पीछे लगायी जाती है और चतुर्थ मात्रा ओत, अनुज्ञातृ, अनुज्ञा एवं अविकल्परूपा है; उसके द्वारा उपर्युक्त चार रूपों वाले तुरीय पाद का ध्यान करते हुए अनुष्टुप् मन्त्र के चतुर्थ पाद से भी उक्त तुरीय पाद का चिन्तन (ध्यान) करना चाहिए। तत्पश्चात् पूर्वोक्त तुरीया (चतुर्थ) मात्रा के द्वारा तुरीय पाद का ध्यान करते हुए तुरीय-स्वरूप जो परमेश्वर हैं, उन्हीं के द्वारा सतत ध्यान के द्वारा समस्त जगत् को परमात्म-सत्ता में ही ग्रस ले अर्थात् विलीन कर देना चाहिए॥ १॥

तस्य ह वा एतस्य प्रणवस्य या पूर्वा मात्रा सा पृथिव्यकारः स ऋग्भिर्ऋग्वेदो ब्रह्मा वसवो गायत्री गार्हपत्यः सा प्रथमः पादो भवति भवति च सर्वेषु पादेषु चतुरात्मा स्थूलसूक्ष्मबीजसाक्षिभिः॥ २॥

उस प्रणव की जो प्रथम मात्रा है, निश्चय ही वह 'अकार' है, वही पृथिवी है और वही ऋक् सम्बन्धी मन्त्रों के साथ ऋग्वेद भी है। वह ब्रह्मा देवता है, वह वसुओं का गण है, गायत्री छन्द और गार्हपत्य अग्नि है। इस प्रकार वह मात्रा विराट् पुरुष वैश्वानर को प्रतिपादित करने वाली और परमात्मा का प्रथम पाद है। वह केवल प्रथम पाद में ही नहीं; वरन् सभी पादों में वह मात्रा रहती है। क्योंकि पूर्वानुसार उसके स्थूल, सूक्ष्म, बीज एवं साक्षी ये चार स्वरूप हैं॥ २॥

द्वितीयाऽन्तरिक्षं स उकारः स यजुर्भिर्यजुर्वेदो विष्णु-रुद्रास्त्रिष्टुब्दक्षिणाग्निः सा द्वितीयः पादो भवति भवति च सर्वेषु पादेषु चतुरात्मा स्थूलसूक्ष्म-बीजसाक्षिभिः॥ ३॥

प्रणवाक्षर 'ॐ' भी द्वितीय मात्रा 'उकार' है; वही अन्तरिक्षलोक है। वह यजु: मन्त्रों के साथ यजुष् है, वही विष्णु देव हैं, रुद्रादि देवों का गण है, त्रिष्टुप् छन्द है, दक्षिणाग्नि है। वह मात्रा तैजस हिरण्यगर्भ का साक्षात्कार

कराने वाली एवं परमात्मदेव का द्वितीय पाद है। द्वितीय पाद होते हुए भी वह समस्त (चारों) पादों में विद्यमान है; क्योंकि उसके चार स्वरूप-स्थूल, सूक्ष्म, बीज एवं साक्षी हैं॥ ३॥

तृतीया द्यौः स मकारः स सामभिः सामवेदो रुद्र आदित्या जगत्याहवनीयः सा तृतीयः पादो भवति भवति च सर्वेषु पादेषु चतुरात्मा स्थूलसूक्ष्मबीजसाक्षिभिः॥ ४॥

प्रणव की तृतीय मात्रा 'मकार' है; वह द्युलोक है, वह साम-मन्त्रों के सहित सामवेद भी है, रुद्रदेवता है, आदित्य नामक देवों का गण है, छन्द जगती है, आहवनीय अग्नि है। वह प्राज्ञ-ईश्वर का बोध कराने वाली तृतीय मात्रा परमात्मा का तृतीयपाद है। साथ ही वह अन्य समस्त पादों में भी रहती है; क्योंकि उसके स्थूल, सूक्ष्म, बीज एवं साक्षी--ये चार रूप हैं॥ ४॥

याऽवसानेऽस्य चतुर्थ्यर्धमात्रा सा सोमलोक ॐकारः साऽऽथर्वणैर्मन्त्रैरथर्ववेदः संवर्तकोऽग्निर्मरुतो विराडेकर्षिर्भास्वती स्मृता सा चतुर्थः पादो भवति भवति च सर्वेषु पादेषु चतुरात्मा स्थूलसूक्ष्मबीजसाक्षिभिः॥ ५॥

प्रणवान्त में जो उसकी चतुर्थ मात्रा (अर्धमात्रा) है, वह ॐकार (बिन्दु) है; वही सोमलोक है। वह अथर्वमन्त्रों के सहित अथर्ववेद है, संवर्तक-अग्नि देवता है, मरुत् देवों का गण है, विराट् छन्द है, एक ऋषि-अग्नि है। वह मात्रा बिन्दु आदि रूप के द्वारा तुरीय परमात्मा का बोधक होने के कारण भास्वती (अर्थात् आलोकमयी) कही गयी है। पूर्णब्रह्म परमेश्वर का एवं मन्त्रराज अनुष्टुप् का भी चौथा पाद है और वह अन्य सभी पादों में भी है; क्योंकि उसके ये चार स्वरूप स्थूल, सूक्ष्म, बीज एवं साक्षी हैं॥ ५॥

मात्राऽमात्राः प्रतिमात्राः कृत्वोतानुज्ञात्रनुज्ञाविकल्परूपं चिन्तयन्ग्रसेत्॥ ६॥

इस तरह व्यष्टि एवं समष्टि के ऐक्य भाव का चिन्तन करते हुए मात्रा को प्रतिमात्रा के रूप में परिणत कर देना चाहिए अर्थात् अकार एवं विराट् पुरुष को उकार और हिरण्यगर्भ में विलय करके, उकार तथा हिरण्यगर्भ को मकार एवं ईश्वर में विलय कर देना चाहिए। पुनः उसे भी अर्द्धमात्रा एवं तुरीय में विलीन करके क्रमानुसार ओत, अनुज्ञातृ, अनुज्ञा एवं अविकल्प का चिन्तन एवं पूर्व-पूर्व का उत्तरोत्तर में विलय करते हुए अन्त में सभी को अविकल्परूप परमेश्वर में विलीन कर देना चाहिए तथा निर्विशेष परमेश्वर का सतत चिन्तन करते हुए उन्हीं में अवस्थित हो जाना चाहिए॥ ६॥

ज्ञोऽमृतो हुतसंवित्कः शुद्धः संविष्टो निर्विघ्न इममसुनियमेऽनुभूयेहेदं सर्वं दृष्ट्वासप्रपञ्चहीनः॥ ७॥

नित्यप्रति अपने आपको शुद्ध, बुद्ध, अमृतमय समझकर अपनी बुद्धि की वृत्तियों को परमात्म-सत्ता में हवन (समर्पित) कर देना चाहिए अर्थात् स्वान्तःकरण को परमात्म-चेतना में समाहित कर बाह्य एवं अन्तः से पवित्र होकर शुद्ध स्थान एवं आसन पर सुखपूर्वक प्रतिष्ठित हो और समस्त प्रकार के अवरोधों का शमन करके प्राणायाम के द्वारा चिन्तन में परमात्मतत्त्व का अनुभव निरन्तर करना चाहिए। तत्पश्चात् परमात्मा में ही इस सम्पूर्ण प्रपञ्च की स्थिति को देखते हुए प्राणाग्निहोत्र एवं प्रपञ्च याग की रीति द्वारा प्राण और प्रपञ्चादि से अपना सम्पर्क अलग कर लेना चाहिए॥ ७॥

अथ सकलः साधारोऽमृतमयश्चतुरात्मा॥ ८॥ अथ महापीठे सपरिवारं तमेतं चतुःसप्तात्मानं चतुरात्मानं मूलाग्रावग्निरूपं प्रणवं संदध्यान् । सप्तात्मानं चतुरात्मानमकारं ब्रह्माणं नाभौ सप्तात्मानं चतुरात्मानं उकारं विष्णुं हृदये सप्तात्मानं चतुरात्मानं मकारं रुद्रं भ्रूमध्ये सप्तात्मानं चतुरात्मानं चतुःसप्तात्मानं चतुरात्मानमोंकारं सर्वेश्वरं द्वादशान्ते सप्तात्मानं चतुरात्मानं चतुः सप्तात्मानं चतुरात्मानमानन्दामृतरूपं षोडशान्ते॥ ९॥

तदनन्तर सर्वस्वरूप, आधार एवं अमृतमय, चतुरात्मा, सर्वमय एवं चतुरात्मा होकर श्रेष्ठ पीठ के ऊपर सपरिवार इस ॐकारमय परमात्मा का, जो चतुःसप्तात्मा, चतुरात्मा एवं मूलाधार- अग्निमण्डल में प्रतिष्ठित अग्निमय है; ऐसा ही सम्यक् रूप से चिन्तन करना चाहिए। सप्तात्मा चतुरात्मा 'अकार' रूप भगवान् ब्रह्माजी का चिन्तन (ध्यान) नाभिक्षेत्र में करना चाहिए, सप्तात्मा चतुरात्मा 'उकार' रूप भगवान् विष्णु का ध्यान हृदय कमल में करना चाहिए; सप्तात्मा चतुरात्मा 'मकार' रूप भगवान् रुद्र का 'भ्रूमध्य' में और सप्तात्मा चतुरात्मा चतुःसप्तात्मा तथा चतुरात्मा ॐकारमय सर्वेश्वर का द्वादशान्त (शिर से बारह अंगुल ऊपर) में ध्यान करना चाहिए। सप्तात्मा, चतुरात्मा, चतुःसप्तात्मा, चतुरात्मा और आनन्द-अमृतमय 'ॐकार' का ध्यान षोडशान्त (शिर से सोलह अंगुल ऊपर) में सतत करना चाहिए॥ ८-९॥

अथानन्दामृतेनैतांश्चतुर्धा संपूज्य तथा ब्रह्माणमेव विष्णुमेव रुद्रमेव विभक्तांस्त्रीनेवाविभक्तान् लिङ्गरूपानेव च संपूज्योपहारैश्चतुर्धा लिङ्गान् संहृत्य तेजसा शरीरत्रयं संव्याप्य तदधिष्ठानमात्मानं संज्वाल्य तत्तेज आत्मचैतन्यरूपं बलमवष्टभ्य तस्य गुणैरैक्यं संपाद्य महास्थूलं महासूक्ष्मे महासूक्ष्मं महाकारणे च संहृत्य मात्राभिरोतानुज्ञात्रनुज्ञाऽविकल्परूपं चिन्तयन् ग्रसेत्॥ १०॥

तत्पश्चात् इन सभी का उपर्युक्त आनन्दामृत द्वारा चार प्रकार से (देव, गुरु, मन्त्र एवं आत्मारूप में) पूजन करे और ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र का अलग-अलग तथा एक साथ भी इन तीनों देवों का और ज्योतिर्मय लिङ्गरूप में देव, गुरु, मन्त्र एवं आत्मारूप में चार बार सम्यक्रूप से विविध भेंट सामग्रियों से पूजन सम्पन्न करे। तदनन्तर ॐकार के उच्चारण द्वारा लिङ्गों का उपसंहार करके सभी को एकीभूत कर अमृताभिषेक करे तथा उस सर्वदेवोमय प्रकाश को प्रवर्द्धित करे। उपर्युक्त समस्त देवों के तेज से स्थूल, सूक्ष्म एवं कारणरूप त्रिविध शरीर को संव्याप्त करके उनके अधिष्ठानभूत आत्मा को प्रकाशित करे अर्थात् उसके तेजोमय रूप का ध्यान करे। इसके अनन्तर उस आत्मा चैतन्यरूप बल का निरोध करके उसके स्थूलत्व, सूक्ष्मत्व, बीजत्व आदि गुणों के द्वारा परमात्मा एवं ओंकार को पूर्व की भाँति एकीकृत करे। तत्पश्चात् महास्थूल को महासूक्ष्म में तथा महासूक्ष्म को महाकारण में विलय करके इन (अकार, उकार एवं मकार) मात्राओं से एक का दूसरी (मात्रा) में विलय करते हुए सभी को तुरीय प्रणव में विलय कर दे। फिर पूर्व की भाँति ओत, अनुज्ञातृ, अनुज्ञा एवं अविकल्पमय परमात्म-स्वरूप का चिन्तन करता हुआ उन्हीं में सभी का विसर्जन (विलय) कर देना चाहिए॥ १०॥

॥ चतुर्थः खण्डः॥

तं वा एतमात्मानं परमं ब्रह्मोंकारं तुरीयोंकाराग्रविद्योतमनुष्टुभा नत्वा प्रसाद्योमिति संहृत्याहमित्यनुसंदध्यात्॥ १॥

पूर्व में वर्णित इस आत्मा एवं परब्रह्मरूप 'प्रणव' को जो ओतादिरूप से प्रमुख तुरीय ॐकार के प्रथमभाग में साक्षी रूप से प्रकाशित है, मन्त्रराज अनुष्टुप् का 'नमामि' पद तक उच्चारण करे तथा उसी के द्वारा नमन करके आनन्दित करे। प्रसन्न करके भावनापूर्वक जगत् के उपसंहार की शक्ति अर्जित करे। तदनन्तर चार मात्राओं से युक्त ॐकार का उच्चारण करते हुए पूर्व में कहने के अनुसार विराट् एवं तैजस आदि का अन्त में शमन करके अनुष्टुप् मन्त्र के अवशिष्ट 'अहम्' पद का उच्चारण करते हुए अपने अन्तरात्मा का तुरीय-रूप में सतत अनुसंधान (अध्ययन) करता रहे॥ १॥

अथैतमेवात्मानं परमं ब्रह्मोंकारं तुरीयोंकाराग्रविद्योतमेकादशात्मानमात्मानं नारसिंहं नत्वोमिति संहरन्ननुसंदध्यात्॥ २॥

इस ध्यान के पश्चात् इस आत्मा एवं परमेश्वररूप प्रणव को ही, जो ओत-अनुज्ञातृ आदि के रूप में प्रख्यात तुरीय ॐकार प्रथम भाग में साक्षी रूप से आलोकित हो रहा है और जो उग्र, वीर आदि एकादश पद के गुणों से सम्पन्न एकादशात्मा नारसिंह मन्त्रात्मक हैं, उन्हें नमन करके ॐकार को उच्चारित करते हुए ओतादि का अनुज्ञातृ आदि में विलय कर दे। तदनन्तर तुरीय-तुरीय को प्राप्त करके 'उग्रम्' आदि एक-एक पद से उग्रत्व आदि विशिष्ट गुणों से निरन्तर ध्यान करता हुआ अपने आत्मारूप से नृसिंह देव का अनुसंधान करता रहे॥ २॥

अथैतमेवात्मानं परमं ब्रह्मोंकारं तुरीयोंकाराग्रविद्योतं प्रणवेन संचिन्त्यानुष्टुभानत्वा सच्चिदानन्द-पूर्णात्मसु नवात्मकं सच्चिदानन्दपूर्णात्मानं परमात्मानं परं ब्रह्म संभाव्याहमित्यात्मानमादाय मनसा ब्रह्मणैकीकुर्याद्यदनुष्टुभैव वा॥ ३॥

इसके पश्चात् इस आत्मा और परब्रह्ममय प्रणव का ही, जो ओत एवं अनुज्ञातृ आदि रूप में प्रख्यात तुरीय ॐकार के अग्रिमभाग में साक्षीरूप से आलोकित हो रहा है। ॐकार के द्वारा ही सम्यक् रूप से चिन्तन परमानन्दमय परमेश्वर का पूर्णरूपेण चिन्तन करता रहे। तदनन्तर अनुष्टुप् मन्त्र के पद द्वारा स्वयं अपने को स्वीकार करके नमन करता हुआ ब्रह्म के साथ अपने को विलीन कर लेना चाहिए अथवा एक मात्र अनुष्टुप् मन्त्र ही भगवान् नृसिंह देव की सर्वात्मता एवं सर्वरूपता का अनुसंधान (ध्यान) करना चाहिए॥ ३॥

एष उ एव नृ एष हि सर्वत्र सर्वदा सर्वात्मा नृसिंहोऽसौ परमेश्वरः असौ हि सर्वत्र सर्वदा सर्वात्मा सन्सर्वमत्ति नृसिंह एवैकल एष तुरीय एष एवोग्र एष एव वीर नृसिंह एष एव महानेष एव विष्णुरेष एव ज्वलन्नेष एव सर्वतोमुख नृसिंह एष एव भीषण एष एव भद्र एष एव मृत्युमृत्युरेष एव नमाम्येष एवाहमेवं योगारूढो ब्रह्मण्येवानुष्टुभं संदध्यादोंकार इति॥ ४॥

ये ही भगवान् 'नृ' (आत्मा) हैं, ये ही सर्वत्र सदैव सभी के आत्मा हैं। ये ही नृसिंह अर्थात् बन्धनों को काटने वाले हैं। ये ही श्रुति-स्मृति आदि में प्रख्यात परब्रह्म हैं; क्योंकि ये सर्वत्र सदैव सभी में आत्मारूप से विद्यमान रहकर सभी की अज्ञानता को ग्रास बनाकर (दूर करके), उन्हें अपने स्वरूप में मिला लेते हैं। इसलिए सबके आत्मा (नृ) एवं 'सि' बन्धन का 'ह' अर्थात् विनाश करने के कारण ये ही एकमात्र नृसिंहदेव हैं। ये ही तुरीय हैं। ये ही उग्र हैं। यही वीर हैं। ये ही श्रेष्ठ हैं। ये ही विष्णु हैं। ये ही ज्वलन (चतुर्दिक् प्रकाशमान) हैं। ये ही सर्वतोमुख हैं।

ये ही नृसिंहदेव हैं, ये ही भीषण (अर्थात् डराने वाले) हैं। ये ही भद्र (परम कल्याण एवं आनन्दमय) हैं तथा ये ही मृत्यु के भी मृत्यु हैं। ये ही नमन के योग्य हैं और ये ही 'अहम्' पद के एकमात्र आश्रय हैं। इस प्रकार पूर्व में वर्णित उपासना द्वारा यहाँ अनुष्टुप् पाद मिश्रित उपासना से प्रणवमय परमेश्वर के ध्यान योग में तत्पर हो ब्रह्ममय प्रणवमय परमेश्वर में ही अनुष्टुप् मन्त्र को अन्त: में निहित कर सभी कुछ ॐकार ही है, ऐसे प्रणववाची परमसत्ता का सतत ध्यान करना चाहिए॥ ४॥

इस सन्दर्भ में दो मन्त्र हैं, जिनका भावार्थ इस प्रकार है-

तदेतौ श्लोकौ भवतः-संस्तभ्य सिंहं स्वसुतान् गुणार्थान् संयोज्य शृङ्गैर्ऋषभस्य हत्वा। वश्यां स्फुरन्तीमसतीं निपीड्य संभक्ष्य सिंहेन स एष वीरः॥ ५॥

वस्तुत: जो सभी बन्धनों को काटने वाला तथा अविचल रहते हुए भी अविवेक के कारण चञ्चल सा प्रतीत हो रहा है, ऐसे 'सिंह' नाम से सम्बोधित आत्मा को; अपनी ही महिमा में केन्द्रित कर स्थूलत्व एवं स्थूलभोक्तृत्व आदि उपर्युक्त गुणों से सम्पन्न होकर वैश्वानर आदि के स्वरूप को प्राप्त कर लिए हैं; ऐसे आत्मा के स्थूल विश्वादिपुत्रों को वेदों में प्रमुख 'ॐ' कार की; अकार आदि मात्राओं से, आपस में समानता के कारण संयुक्त कर एवं परमात्मा के प्रथम, द्वितीय आदि पादों की समानता को अनुभव कर स्थूल का सूक्ष्म में तथा सूक्ष्म का कारण में विलय करते हुए क्रमशः सभी को तुरीय में विलीन कर दे। तदनन्तर वहाँ कारणमयी माया को ओतयोग द्वारा स्ववश कर अनुज्ञातृ-योग द्वारा आत्मसत्ता के वश ही उसकी सत्ता एवं स्फूर्ति है; ऐसा अनुभव कर अनुज्ञा-योग द्वारा उसकी पृथक् सत्ता का अभाव सा करके, उसे साक्षी चैतन्य में विलीन कर दे। तत्पश्चात् अज्ञानता से सदा असम्पृक्त विशुद्ध परमात्म-साक्षात्कार से उस माया के आवरण को विनष्ट करके जो प्रतिष्ठित हो जाता है, वही वास्तव में सच्चा उपासक वीर है, उसे कभी संसार से पराभव की प्राप्ति नहीं होती॥ ५॥

शृङ्गप्रोतान्पदा स्पृष्ट्वा हत्वा तामग्रसत् स्वयम्। नत्वा च बहुधा दृष्ट्वा नृसिंहः स्वयमुद्बभौ॥ इति॥ ६॥

ॐकार की मात्राओं से युक्त चतु:सप्तात्मा विराट् आदि एवं सर्वेश्वर ब्रह्म आदि को; अनुष्टुप् मन्त्र के प्रत्येक पाद से संयुक्त कर अर्थात् एकता का ध्यान करके क्रमानुसार उनका पूर्वोक्त विधि से संहार कर उस कारणमयी माया को (जिसने) स्वयं ग्रस लिया अर्थात् परमात्मानुभव से माया का सदैव के लिए संहार कर दिया है। (ऐसा वह उपासक) इसी खण्ड में कही हुई रीति से भगवान् को नमस्कार करे और मन्त्रराज नारसिंह के पदानुसार उग्र, वीर आदि विभिन्न रूपों में भगवान् का साक्षात्कार करके स्वयं नृसिंह रूप हो अथवा पुरुषों में श्रेष्ठ होकर प्रकाशित होता है, ऐसे ही ये दोनों मन्त्र हैं॥ ६॥

॥ पञ्चमः खण्डः ॥

अथैष उ एवाकार आप्ततमार्थ आत्मन्येव नृसिंहे देवे ब्रह्मणि वर्तत एष ह्येवाप्ततम एष हि साक्ष्येष ईश्वरोऽतः त्सर्वगतो न हीदं सर्वमेष हि व्याप्ततम इदं सर्वं यदयमात्मा मायामात्रमेष एवोग्र एष हि व्याप्ततम एष एव वीर एष हि व्याप्ततम एष एव महानेष हि व्याप्ततम एष एव विष्णुरेष हि

व्याप्ततम एष एव ज्वलन्नेष हि व्याप्ततम एष एव सर्वतोमुख एष हि व्याप्ततम एष एव नृसिंह एष हि व्याप्ततम एष एव भीषण एष हि व्याप्ततम एष एव भद्र एष हि व्याप्ततम एष एव मृत्युमृत्युरेष हि व्याप्ततम एष एव नमाम्येष हि व्याप्ततम एष एवाहमेष हि व्याप्ततम आत्मैव नृसिंहो देवो ब्रह्म भवति य एवं वेद सोऽकामो निष्काम आप्तकाम आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समवलीयन्ते ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येति॥ १ ॥

प्रणव की प्रथम मात्रारूप यह 'अकार' आप्ततम अर्थात् अतिशय व्यापक अर्थ वाला ही है। इसलिए यह आप्ततम अर्थ से युक्त आत्मा में ही संगत होता है। सभी के आत्मा भगवान् नृसिंह नाम से प्रख्यात हैं। इससे अलग रूप में यह सम्पूर्ण संसार अपना कोई भी अस्तित्व नहीं रखता; क्योंकि यही व्याप्ततम है। यह जो सभी कुछ दृष्टिगोचर होता है, वही आत्मा है। जो यह आत्मा है, वही सब कुछ है। जो कुछ प्रतीत होता है, सब मायामात्र ही है। आत्मा अथवा अकार से पृथक् रूप में इसकी सत्ता नहीं है। यह अकार ही उग्र है; क्योंकि यही व्याप्ततम है। यह अकार ही वीर है; क्योंकि यही अतिशय व्यापक है। यह अकार ही अति श्रेष्ठ है; क्योंकि यही व्याप्ततम है। यह अकार ही विष्णु है; क्योंकि यही व्याप्ततम है। यह अकार ही चतुर्दिक् दीप्तिमान् है; क्योंकि यही व्याप्ततम है। यह अकार ही सर्वतोमुख है; क्योंकि यही अतिशय व्यापक है। यह अकार ही नृसिंह है; क्योंकि यही व्याप्ततम है। यह अकार ही भीषण (कठिन) है; क्योंकि यही व्याप्ततम है। यह अकार ही भद्र है; क्योंकि यही अतिशय व्यापक है। यह अकार ही मृत्यु-मृत्यु है; क्योंकि यही अतिशय व्यापक है। यह अकार ही 'नमामि' अर्थात् आत्मा का आच्छादन करने वाली अज्ञानता से रहित है; क्योंकि यही अतिशय व्यापक है। यह अकार ही 'अहम्' है; क्योंकि यही अतिशय व्यापक है। जो मनुष्य ऐसा जानता है, वही नित्यमुक्त आत्मा हो जाता है। वह नृसिंहरूप ब्रह्म ही हो जाता है। वह अकाम होता है। उसके मस्तिष्क से समस्त लौकिक कामनाएँ क्षीण होकर समाप्त हो जाती हैं। उसके मन में किसी भी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा शेष नहीं रह जाती। वह एकमात्र आत्मा की ही इच्छा रखता है, अनात्मा की इच्छा नहीं रखता। मृत्यु के उपरान्त उसके प्राण उत्क्रमण नहीं करते; इसी अर्थात् आत्मतत्त्व में ही ऐक्य भाव को पा जाते हैं। वह पूर्व से ब्रह्ममय होता हुआ ही बारम्बार परब्रह्म को ही प्राप्त करता है॥ १ ॥

अथैष एवोकार उत्कृष्टतमार्थ आत्मन्येव नृसिंहे देवे ब्रह्मणि वर्तते तस्मादेष सत्यस्वरूपो न ह्यन्यदस्त्यमेयमनात्मप्रकाशमेष हि स्वप्रकाशोऽसङ्गोऽन्यन्न वीक्षत आत्माऽतो नान्यथाप्राप्तिरात्ममात्रं ह्येतदुत्कृष्टमेष एवोग्र एष ह्येवोत्कृष्ट एष एव वीर एष ह्येवोत्कृष्ट एष एव महानेष ह्येवोत्कृष्ट एष एव विष्णुरेष ह्येवोत्कृष्ट एष एव ज्वलन्नेष ह्येवोत्कृष्ट एष एव सर्वतोमुख एष ह्येवोत्कृष्ट एष एव नृसिंह एष ह्येवोत्कृष्ट एष एव भीषण एष ह्येवोत्कृष्ट एष एव भद्र एष ह्येवोत्कृष्ट एष एव मृत्युमृत्युरेष ह्येवोत्कृष्ट एष एव नमाम्येष ह्येवोत्कृष्ट एष एवाहमेष ह्येवोत्कृष्ट-स्तस्मादात्मानमेवैवं जानीयादात्मैव नृसिंहो देवो ब्रह्म भवति य एवं वेद। सोऽकामो निष्काम आप्तकाम आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समवलीयन्ते ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येति॥ २ ॥

ॐकार की दूसरी मात्रा 'उकार' है, यह भी उत्कृष्ट (श्रेष्ठ) अर्थवाला है। इसलिए (यह) सर्वोत्कृष्ट अर्थवाले आत्मा (नृसिंहदेवरूप परमात्मा) में गतार्थ (घटित) होता है। अत: यह 'उकार' ही सत्यरूप है। इससे पृथक् अन्य कोई वस्तु यथार्थ नहीं है। असत् होने के कारण उसमें मान-सम्बन्ध की योग्यता का अभाव है। वह

अनात्मप्रकाश अर्थात् अन्य को आलोकित करने वाली वस्तु है; उसमें स्वयं स्वप्रकाशित करने की सामर्थ्य न रहने से वह असत् है। यह उकाररूपी आत्मा स्वप्रकाशित है। असङ्ग है; इसलिए अपने अलावा अन्य किसी अनात्म वस्तु को नहीं देखता। अत: इसे अन्य किसी नाम से प्रसिद्धि नहीं मिली। यह तो मात्र उत्कृष्टतम आत्ममात्र है। यह आत्मा मात्र उकार ही अनुष्टुप् मन्त्र का अंगभूत उग्र है; क्योंकि यही उत्कृष्टतम है। यह उकार ही विष्णु है; क्योंकि यही उत्कृष्टतम है। यह उकार ही चतुर्दिक् प्रकाशमान है; क्योंकि यही सर्वोत्कृष्ट है। यह उकार ही नृसिंह है; क्योंकि यही सर्वश्रेष्ठ है। यह उकार ही भीषण (कठिन भयभीत करने वाला) है; क्योंकि यही सर्वश्रेष्ठ है। यह उकार ही भद्र (कल्याणप्रद) है; क्योंकि यही सर्वोत्कृष्ट है। यह उकार ही मृत्यु-मृत्यु है; क्योंकि यही सर्वोत्कृष्ट है। यह उकार ही 'अहम्' है; क्योंकि यही सर्वोत्कृष्ट है। इस कारण आत्मा को ही 'उकार' के रूप में जानना चाहिए। जो ऐसा जानता है, वह आत्मवत् ही होता है अर्थात् श्रीनृसिंहदेवमय ब्रह्म ही हो जाता है। वह अकाम होता है। उसके मन से समस्त लौकिक इच्छाएँ निकल जाती हैं। उसे समस्त इच्छाओं की फल-प्राप्ति स्वयमेव हो जाती है। वह मात्र आत्मा की ही इच्छा रखता है, अनात्मा की नहीं रखता। मृत्यु के बाद उसके प्राण उत्क्रमण नहीं करते, आत्मा में ही ऐक्यभाव को पा जाते हैं। वह पूर्व से ही ब्रह्ममय होता हुआ ही पुन: परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है॥ २॥

अथैष एव मकारो महाविभूत्यर्थ आत्मन्येव नृसिंहे देवे ब्रह्मणि वर्तते तस्मादयमनल्पोऽभिन्नरूप: स्वप्रकाशो ब्रह्मैव व्याप्ततम उत्कृष्टतम एतदेव ब्रह्मापि सर्वज्ञं महामायं महाविभूत्येतदेवोग्रमेतद्धि महाविभूत्येत देव वीरमेतद्धि। महाविभूत्येतदेव महदेतद्धि महाविभूत्येतदेव विष्ण्वेतद्धि महाविभूत्येतदेव ज्वलदेतद्धि महाविभूत्येतदेव सर्वतोमुखमेतद्धि महाविभूत्येतदेव नृसिंहमेतद्धि महाविभूत्येतदेव भीषणमेतद्धि महाविभूत्येतदेव भद्रमेतद्धि महाविभूत्येतदेव मृत्युमृत्य्वेतद्धि महाविभूत्येतदेव नमाम्येतद्धि महाविभूत्येतदेवाहमेतद्धि महाविभूति तस्मादकारोकाराभ्यामिममात्मानमाप्ततममुत्कृष्टतमं चिन्मात्रं सर्वद्रष्टारं सर्वसाक्षिणं सर्वग्रासं सर्वप्रेमास्पदं सच्चिदानन्दमात्रमेकरसं परमेव ब्रह्म मकारेण जानीयादात्मैव नृसिंहो देव: परमेव ब्रह्म भवति य एवं वेद। सोऽकामो निष्काम आप्तकाम आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समवलीयन्ते ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येती हैव प्रजापतिरुवाच॥ ३॥

प्रणव की तृतीय मात्रा 'मकार' है, वह असीम ऐश्वर्य के अर्थ वाली है। यह महान् ऐश्वर्य से सम्पन्न आत्मा ही श्रीनृसिंहदेव स्वरूप ब्रह्म में घटित होता है। इस कारण से यह मकाररूपी आत्मा अनल्प है। अभिन्न एवं अद्वितीय है, यह स्वप्रकाश से प्रकाशित है और यह मकाररूपी आत्मा ब्रह्ममय ही है। यही अतिशय व्यापक एवं अत्यन्त श्रेष्ठ है। यह ब्रह्म ही सर्वज्ञ, महामायावी और महाविभूतिवान् है। मकारस्वरूप ब्रह्म ही उग्र है; क्योंकि यही महाविभूतिवान् है। यह मकारस्वरूप ब्रह्म ही महत् (महान्) है; क्योंकि यही महाविभूति से युक्त है। यह मकारस्वरूप ब्रह्म ही विष्णु है; क्योंकि यही महान् ऐश्वर्यशाली है। यह मकारस्वरूप ब्रह्म ही ज्वलत् अर्थात् चतुर्दिक् कान्तिमान् है; क्योंकि यही महाविभूति से सम्पन्न है। यह मकारस्वरूप ब्रह्म ही सर्वतोमुख है; क्योंकि यही महाविभूति से सम्पन्न है। यह मकारस्वरूप ब्रह्म ही नृसिंह है; क्योंकि यही महाविभूति से सम्पन्न है। यह मकारस्वरूप ब्रह्म ही भीषण (कठिन, भयप्रदाता) है; क्योंकि यही महाविभूति से सम्पन्न है। यह मकारस्वरूप ब्रह्म ही भद्र (कल्याणकारी) है; क्योंकि यही महाविभूति से सम्पन्न है। यह मकारस्वरूप ब्रह्म ही मृत्यु-मृत्यु है; क्योंकि यही महाविभूति से सम्पन्न है। यह मकाररूपी ब्रह्म ही 'नमामि' है; क्योंकि यही महाविभूति से युक्त है।

यह मकाररूपी परब्रह्म ही 'अहम्' है; क्योंकि यही महाविभूति से सम्पन्न है। इस कारण से अकार एवं उकार द्वारा इस अतिशय व्यापक, सर्वोत्कृष्ट, चिन्मात्ररूप, सर्वद्रष्टा, सर्वसाक्षी सभी के स्व में विलीन करने वाले, सभी की प्रीति के एकमात्र आश्रय-प्रदाता सच्चिदानन्दरूप, एकरस आत्मा का, जो इस सत् चित् आदि के द्वारा वाच्य भेद से होने वाली भेद प्रतीति- के पहले से ही सभी के साक्ष्यरूप से सम्यक् रूप से आलोकित है। उसका चिन्तन करके मकार द्वारा उसे अतिशय व्यापक, सर्वोत्कृष्ट चिन्मात्ररूप, महामायायुक्त, महान् ऐश्वर्य से युक्त एकमात्र सच्चिदानन्दरूप एकरस परमेश्वर रूप में ही जानना चाहिए। जो विद्वान् पुरुष ऐसा जानता है, वह आत्मवत् ही हो जाता है। वह श्रीनृसिंहदेवमय परब्रह्म ही हो जाता है। वह अकाम हो जाता है। उसके मन से सभी इच्छाएँ बहिर्गमन कर जाती हैं। उसके मन से किसी भी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छाएँ शेष नहीं रहतीं। वह मात्र आत्मा की ही इच्छा रखता है, अनात्मा की इच्छा उसे नहीं रहती। उस विद्वान् पुरुष के प्राण कर्मफल भोग के लिए ऊर्ध्व लोकों में गमन नहीं करते। वह पूर्व में ब्रह्ममय होकर पुन: ब्रह्म को पा लेता है; ऐसा ही उन भगवान् प्रजापति ने देवों को बतलाया॥ ३॥

॥ षष्ठः खण्डः ॥

ते देवा इममात्मानं ज्ञातुमैच्छन् तान्हासुरः पाप्मा परिजग्राह। त ऐक्षन्त हन्तैनमासुरं पाप्मानं ग्रसाम इति। त एतमेवोंकाराग्रविद्योतं तुरीयतुरीयमात्मानमुग्रमनुग्रं वीरमवीरं महान्तममहान्तं विष्णुमविष्णुं ज्वलन्तमज्वलन्तं सर्वतोमुखमसर्वतोमुखं नृसिंहमनृसिंहं भीषणमभीषणं भद्रमभद्रं मृत्युमृत्युममृत्युमृत्युं नमाम्यनमाम्यहमनहं नृसिंहानुष्टुभैव बुबुधिरे। तेभ्यो हासावासुरः पाप्मा सच्चिदानन्दघनज्योतिरभवत्॥ १॥

(ब्रह्मा जी के द्वारा उपदेश श्रवण करने के पश्चात्) उन सभी देवों ने परमात्मा के तत्त्वज्ञान का अपरोक्ष अनुभव पा लेने की इच्छा की। (इस कारण वे इच्छानुकूल साधना एवं ध्यान आदि में संलग्न हो गये)। समयानुसार पापात्मा असुर-भाव ने (विषयासक्ति एवं अज्ञानादि के रूप में)उन देवों को सभी ओर से ग्रस लिया अर्थात् उन्हें श्रेष्ठ चिन्तन से रहित कर विषय-भोगों की ओर लगा दिया। (लेकिन कुछ साधना आदि कर लेने से विवेक जाग्रत् हो चुका था; इस कारण) वे देवगण सोचने लगे- अहो! इस पापात्मा असुर भाव को हम लोग ही क्यों न अपना ग्रास बना लें अर्थात् परमात्मा के ध्यान में निरत होकर इसे क्यों न विनष्ट कर डालें। ऐसा सोचकर उन सभी ने ओंकार के सम्मुख प्रकाशित होने वाले इन्हीं तुरीय-तुरीय परमात्मा को, जो उग्र एवं अनुग्र दोनों ही हैं, वीर भी हैं और अवीर भी हैं, महान् भी हैं और अमहान् भी अर्थात् (लघु) भी हैं। (वे) विष्णु (व्यापक) भी हैं एवं अविष्णु भी हैं, 'ज्वलन्त' (चतुर्दिक् आलोकित) भी हैं और 'अज्वलन्त' (आलोकरहित) भी हैं, सर्वतोमुख भी हैं एवं असर्वतोमुख भी हैं, नृसिंह भी हैं एवं अनृसिंह भी हैं, भीषण भी हैं एवं अभीषण भी हैं, भद्र एवं अभद्र भी हैं, मृत्यु-मृत्यु भी हैं, 'अमृत्युमृत्यु' भी हैं 'नमामि' एवं 'अनमामि' भी हैं, 'अहम्' भी हैं एवं 'अनहम्' भी है, उनका श्री नृसिंहदेव से सम्बन्धित अनुष्टुप्--मन्त्र से ही साक्षात्कार कर लिया है। तदनन्तर उनके ऊपर प्रहार के लिए आया हुआ वह उपर्युक्त पापात्मा असुर-भाव तुरीय-तुरीय परमात्मा के चिन्तन के प्रभाव से खुद भी सत्-चित्-आनन्दघन ज्योतिरूप हो गया है॥ १॥

तस्मादपक्वकषाय इममेवोंकाराग्रविद्योतं तुरीयतुरीयमात्मानं नृसिंहानुष्टुभैव जानीयात् तस्यासुरः पाप्मा सच्चिदानन्दघनज्योतिर्भवति ॥ २ ॥

अतः जब तक साधक के अन्तःकरण का मल (वासनाजाल) अपरिपक्व स्थिति में रहता है, तब तक उसे प्रणव के समक्ष आलोकित इन्हीं तुरीय-तुरीय परमेश्वर को श्रीनृसिंहदेव से सम्बन्धित अनुष्टुप् मन्त्र से जानने का प्रयत्न करना चाहिए। इस मन्त्र द्वारा उसके अन्तःकरण में प्रादुर्भूत पापात्मा असुरभाव सत्-चित्-आनन्द घन ज्योतिर्मय हो जाता है॥ २ ॥

ते देवा ज्योतिस्त्त्तितीर्षवो द्वितीयाद्भयमेव पश्यन्त इममेवोंकाराग्रविद्योतं तुरीयतुरीयमात्मानमनुष्टुभाऽन्विष्य प्रणवेनैव तस्मिन्नवस्थिताः तेभ्यस्तज्ज्योतिरस्य सर्वस्य पुरतः सुविभातमविभातमद्वैतमचिन्त्यमलिङ्गं स्वप्रकाशमानन्दघनं शून्यमभवत् एवंवित्स्वप्रकाशं परमेव ब्रह्म भवति॥ ३ ॥

इस प्रकार कारणात्मक ज्योतिरूप को अर्जित किये हुए वे देवगण उस ज्योति से भी ऊर्ध्वगमन के लिए प्रयासरत हैं; क्योंकि दूसरे भाव से वे भय का दर्शन कर रहे थे। फिर तो उन्होंने ओंकार के समक्ष आलोकित होने वाले इन्हीं तुरीय-तुरीय परमेश्वर का श्रीनृसिंहदेव से सम्बन्धित अनुष्टुप्-मन्त्र से चिन्तन करके ओंकार द्वारा ही उनमें स्थिरता प्राप्त की है। उन्हें मिली हुई वह कारणात्मक ज्योति इस समस्त कार्य-कारणमय जगत् के पूर्व से ही अच्छी तरह आलोकित, प्रतीति के अविषय, अद्वितीय, चिन्तन से परे, अलिङ्ग, स्वप्रकाश, आनन्दघन, विशेष शून्य परब्रह्ममय ही हो गयी। ऐसा जानने वाला विद्वान् अपने ही प्रकाश से प्रकाशित परब्रह्ममय ही हो जाता है॥ ३ ॥

ते देवाः पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च ससाधनेभ्यो व्युत्थाय निरागारा निष्परिग्रहा अशिखा अयज्ञोपवीता अन्धा बधिरा मुग्धाः क्लीबा मूका उन्मत्ता इव परिवर्तमानाः शान्ता दान्ता उपरतास्तितिक्षवः समाहिता आत्मरतय आत्मक्रीडा आत्ममिथुना आत्मानन्दाः प्रणवमेव परं ब्रह्मात्मप्रकाशं शून्यं जानन्तस्तत्रैव परिसमाप्तास्तस्मात्तद्देवानां व्रतमाचरन्नोंकारे परे ब्रह्मणि पर्यवसितो भवेत्स आत्मन्येवात्मानं परं ब्रह्म पश्यति॥ ४ ॥

परमात्मतत्त्व में एकनिष्ठता की क्षमता विकसित हो जाने पर वे देवगण (साधक गण) साधनों (साधना के माध्यम) से पुत्रैषणा, वित्तैषणा एवं लोकैषणा से परे रहकर (ऊपर उठकर) उन सभी की कामना एवं प्रयास का सदैव त्याग कर घरों से बाहर आकर संशय-अहंकारशून्य एवं परिग्रहशून्य हो जाय। शिखा एवं यज्ञोपवीत का भी परित्याग कर संन्यास में प्रविष्ट होकर अन्ध, बधिर, भोले-भाले, नपुंसक, गूँगे एवं पागलों की तरह यत्र-तत्र विचरण करते हुए, शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान (एवं श्रद्धा) आदि षट्-सम्पत्तियों से परिपूर्ण होकर आत्मा में ही रमण, आत्मा में ही क्रीड़ा, आत्मा में ही संयोग एवं आनन्दानुभव करते हुए और ॐकार को ही स्वप्रकाश, विशेषण शून्य, परमेश्वर को जानकर उन्हीं में विलीन हो जाना चाहिए। इस कारण देवों के व्रत का आचरण करके ॐकार के वाच्यार्थभूत परमात्मतत्त्व में विलीन हो जाना चाहिए। ऐसा जानने एवं क्रिया करने वाला विद्वान् मनुष्य आत्मा द्वारा ही आत्मा को परब्रह्ममय देखता है॥ ४ ॥

तदेष श्लोकः- शृङ्गेष्वशृङ्गं संयोज्य सिंहं शृङ्गेषु योजयेत्। शृङ्गाभ्यां शृङ्गमाबध्य त्रयो देवा उपासते इति॥ ५॥

ॐकार की (अकार, उकार एवं मकार) इन मात्राओं में अवयवरहित तुरीय परमात्मतत्त्व को ही प्रणव का वाच्यार्थ जान करके श्रीनृसिंहदेव से सम्बन्धित मन्त्रराज अनुष्टुप् को ही प्रणव में अन्तर्निहित कर देना चाहिए। तदनन्तर ॐकार की दो मात्राओं (अकार एवं उकार) के द्वारा, ॐकार की मात्रा मकार को, आबद्ध कर अर्थात् मकार में उन दोनों मात्राओं के विलय की भावना करते हुए ध्यान करना चाहिए। इस प्रकार तीन देव (उत्तम, मध्यम एवं अधम अधिकारी) उच्च स्थिति को पा लेते हैं॥ ५॥

॥ सप्तमः खण्डः॥

देवा ह वै प्रजापतिमब्रुवन्भूय एव नो भगवान्विज्ञापयत्विति॥ १॥ तथेत्यजत्वादमरत्वादजरत्वादमृतत्वादभयत्वादशोकत्वादमोहत्वादनशनायत्वादपिपासत्वादद्वैतत्वाच्चाकारेणेममात्मानमन्विष्योदुत्कृष्टत्वादुदुत्पादकत्वादुदुत्प्रवेष्टत्वादुदुत्थापयितृत्वादुदुद्द्रष्ट त्वादुदुत्कर्तृत्वादुदुत्पथवारकत्वादुदुद्ग्रासत्वादुदुद्भ्रान्तत्वादुदुत्तीर्णविकृतित्वाच्चोकारेणेममात्मानं परमं ब्रह्म नृसिंहमन्विष्याकारेणेममात्मानमुकारपूर्वार्धमाकृष्य सिंहीकृत्योत्तरार्धेन सिंहमाकृष्य महत्त्वान्महस्त्वान्मानत्वान्मुक्तत्वान्महादेवत्वान्महेश्वरत्वान्महासत्त्वान्महाचित्त्वान्महानन्दत्वान्महाप्रभुत्वाच्च मकारार्धेनानेनात्मनैकीकुर्यात्॥ २॥ अशरीरो निरिन्द्रियोऽप्राणोऽतमाः सच्चिदानन्दमात्रः स स्वराड् भवति य एवं वेद॥ ३॥

देवताओं ने प्रजापति से पुनः कहा– 'हे भगवन्! हमें ज्ञानोपदेश प्रदान करने की कृपा करें।' ऐसा श्रवण कर प्रजापति ने तथाऽस्तु कहकर उपदेश देना शुरू किया— यह आत्मा अज (अजन्मा), अजर, अमृतमय, अभय, शोकरहित, मोहविहीन, भूखरहित, प्यासरहित एवं द्वैतरहित है। अकार इन समस्त विशेषण-शब्दों का आदिभूत है। इसलिए अकार से इन अजत्व आदि गुणों से श्रेष्ठ आत्मा का अनुसंधान करे। तदनन्तर अतिशय श्रेष्ठतम, उदुत्पादक (सबके स्रष्टा), उदुत्प्रवेष्टा (परमात्मारूप से संसार की सृष्टि करके जीवरूप से प्रविष्ट होने वाला), उदुत्थापयिता (नियन्तारूप से सभी को मर्यादा में प्रतिष्ठित करने वाला), उदुद्द्रष्टा (विष्णुरूप से पालन करते समय सभी को विशेष रूप से देखने वाला), उदुत्कर्त्ता (सर्वश्रेष्ठ कर्त्ता), उदुत्पथवारक (स्वयं ही बुद्धि, विवेक एवं आश्रय देकर सबको सदा कुमार्ग से निवृत्त करने वाला), उदुद्ग्रासक (रुद्ररूप से सबके संहारक), उदुद्भ्रान्त (कारणरूप से सर्वत्र संव्याप्त) एवं उदुत्तीर्णविकृति (साक्षीरूप होने से समस्त विकारों से परे) होने के कारण उकार के द्वारा परमसिंह (परब्रह्म) का अनुसंधान करना चाहिए। तदनन्तर अकारस्वरूप इस आत्मा को उकार के पूर्वार्द्धस्वरूप ब्रह्म के प्रति आकृष्ट करना चाहिए अर्थात् आत्मा को ही ब्रह्ममय जानना चाहिए। फिर उकार के उत्तरार्ध भाग द्वारा पूर्वोक्त ब्रह्म को स्वीकार करके मकार के अर्थभूत इस आत्मा के साथ एकीभूत करना चाहिए। प्रणव की तृतीय मात्रा मकार के द्वारा आत्मा का ग्रहण इसलिए किया जाता है कि मकार और आत्मा दोनों ही सर्वव्यापी, चिन्मय तेज से युक्त सर्वसाधक प्रमाणरूप, मुक्त, महादेव, महेश्वर, महासत्, महाचित्, महानन्द एवं महाप्रभुरूप हैं। आत्मा महत्त्व आदि गुणों से उत्कृष्ट है तथा मकार 'महत्' आदि शब्दों का आदि होने से

तत्तत्स्वरूप है। जो इस प्रकार से इसे जानता है, वह अशरीर, इन्द्रियविहीन, प्राणविहीन, तम अर्थात् मोह एवं अज्ञान से रहित एवं शुद्ध सच्चिदानन्दमय स्वराट् (स्वयं प्रकाशरूप परब्रह्म) हो जाता है॥ १-३॥

कस्त्वमित्यहमिति होवाचैवमेवेदं सर्वं तस्मादहमिति सर्वाभिधानं तस्यादिरयमकारः स एव भवति। सर्वं ह्ययमात्मायं हि सर्वान्तरो न हीदं सर्वं अहमिति होवाचैव निरात्मकमात्मैवेदं सर्वं तस्मात्सर्वात्मकेनाकारेण सर्वात्मकमात्मानमन्विच्छेत्॥ ४॥

जब कोई मनुष्य किसी से प्रश्न करता है कि 'तुम कौन हो?' तब वह 'अहम्' अर्थात् मैं हूँ, इस प्रकार उत्तर देता है। इस तरह यह सम्पूर्ण प्राणियों का समूह 'अहम्' संबोधित कर अपने को सूचित करता है। इसलिए 'अहम्' ही सभी का वाचक है। इस 'अहम्' का प्रारम्भिक अक्षर यह ॐकार की प्रथम मात्रास्वरूप अकार है। अतः यह अकार भी सभी का वाचक होने के कारण सर्वरूप है; वह पूर्वोक्त भाँति से जिज्ञासु मनीषी वही (सर्वमय) हो जाता है। यह सम्पूर्ण विश्व ही आत्मा है; क्योंकि यह सभी का अन्तरात्मा है। यह सम्पूर्ण विश्व आत्मा के अभाव में नहीं रह सकता है। इसलिए यह आत्मा ही सभी कुछ है। अतः सर्वात्मक अकार के सहित सर्वात्मक आत्मा का निरन्तर अनुसंधान करना चाहिए। सत्, चित्, आनन्दमय परमात्मा है। यह सब जगत् है। यह सभी कुछ सच्चिदानन्दमय ही है॥ ४॥

ब्रह्मैवेदं सर्वं सच्चिदानन्दरूपं सच्चिदानन्दरूपमिदं सर्वं सद्धीदं सर्वं सत् सदिति चिद्धीदं सर्वं काशते प्रकाशते चेति॥ ५॥

यह सभी कुछ अवश्य ही सत्यरूप है; क्योंकि 'तत् सत् (वह है), ऐसा आभास सभी को होता है। यह सभी कुछ अवश्य ही चित् अर्थात् चिन्मय है; घट आलोकित होता है, पट प्रकाशित होता है इत्यादि रूपों में सभी कुछ आलोकमय (चिन्मय) ही आभासित होता है॥ ५॥

किं सदितीदमिदं नेत्यनुभूतिरिति॥ ६॥

हे देवो! क्या तुमने जान लिया कि 'सत्' क्या है? (देवों ने कहा-) यह-यह सत् है अर्थात् 'इदम्' रूप से आभासित होने वाली घट-पट आदि समस्त वस्तुएँ सत् ही हैं। (प्रजापति ने कहा-) नहीं। 'इदम्' रूप से प्रतिभासित होने वाला सम्पूर्ण विश्व ही असत् (नाशवान्) है; इसलिए वह सत् नहीं है। 'अनुभूति' ही सत् है॥ ६॥

कैषेतीयमियं नेत्यवचनेनैवानुभवन्नुवाचैवमेव चिदानन्दावप्यवचनेनैवानुभवन्नुवाच। सर्वमन्यदपि स परम आनन्दस्य ब्रह्मणो नाम ब्रह्मेति तस्यान्त्योऽयं मकारः स एव भवति तस्मान्मकारेण परमं ब्रह्मान्विच्छेत्॥ ७॥

(यदि यह पूछते हो कि) यह अनुभूति क्या है, तो श्रवण करो। 'इयम्-इयम्' (अर्थात् यह अनुभूति है) ऐसा कहने से अनुभूति का बोध नहीं होता। अनुभूति वाणी का विषय नहीं अनुभव का है, अतः प्रजापति ने अनुभव करते हुए देवों को उसका स्वरूप बतलाते हुए कहा कि स्वतः-सिद्ध रूप ही अनुभूति है। इसी तरह 'चित्' और 'आनन्द' को भी बिना कुछ कहे स्वयं अनुभव करते हुए प्रजापति ने देवों को अनुभव कराया। इस तरह परमात्मशक्ति के अन्य सभी लक्षण भी आत्मवत् स्वतः-सिद्ध हैं। उनका वाणी से प्रकाशन नहीं हो सकता

है; वे सभी अनुभवगम्य हैं। ब्रह्माजी के मौन हो जाने पर देवता ब्रह्मा का स्वरूप ठीक तरह से नहीं समझ पाये। अत: प्रजापति 'आनन्द' शब्द से ब्रह्म के स्वरूप का बोध कराते हैं। वह ब्रह्म परमानन्दमय है। इस 'ब्रह्म' शब्द में अन्तिम अक्षर मकार है, इसलिए यह भी शब्दमय ब्रह्म ही है और इसी कारण मकार द्वारा परब्रह्म का ही निरन्तर ध्यान करना चाहिए॥ ७॥

किमिदम्। एवमित्यकार इत्येवाहाविचिकित्सन्नकारेणेममात्मानमन्विष्य मकारेण ब्रह्मणा संदध्यादुकारेणाविचिकित्सन्नशरीरोऽनिरिन्द्रियोऽप्राणोऽतमाः सच्चिदानन्द मात्रः स स्वराड् भवति य एवं वेद॥ ८॥

जब कोई व्यक्ति किसी से पूछता है कि 'क्या यह बात ऐसी ही है?' तो वह व्यक्ति (यदि उसको पूछे हुए विषय में शंका नहीं रहती, तो) 'उ' अर्थात् हाँ, ऐसी ही है? ऐसा दृढ़ निश्चयी हो उत्तर देता है। अत: 'उ' अवधारणार्थक है। इसीलिए अ, उ, म् इन्हीं तीन मात्राओं में से अकार के द्वारा ही आत्मा का चिन्तन कर मकार रूप परब्रह्म के सहित उसको एकीकृत करे तथा उकार के द्वारा इस एकीकृत विषय में संशयरहित हो अपना निश्चय प्रकट कर देना चाहिए अर्थात् अ- आत्मा, उ-अवश्य ही, म्- परब्रह्म है; ऐसा अवश्य ही जान लेना चाहिए। जो ऐसा जानता है, वह पुरुष अशरीरी, निरिन्द्रिय, प्राणविहीन तथा ज्ञानी, एकमात्र सच्चिदानन्दमय आलोकमय आत्मवत् हो जाता है॥ ८॥

ब्रह्म वा इदं सर्वमत्तृत्वादुग्रत्वाद्वीरत्वान्महत्त्वाद्विष्णुत्वाज्ज्वलत्त्वात् सर्वतोमुखत्वान्नृसिंह-त्वाद्भीषणत्वाद्भद्रत्वान्मृत्युमृत्युत्वान्नमामित्वादहत्वादिति सततं ह्येतद्ब्रह्मोग्रत्वाद्वीरत्वान्मह-त्त्वाद्विष्णुत्वाज्ज्वलत्त्वात्सर्वतोमुखत्वान्नृसिंहत्वाद्भीषणत्वाद्भद्रत्वान्मृत्युमृत्युत्वा-न्नमामित्वादहंत्वादिति॥ ९॥

अवश्य ही यह सभी कुछ ब्रह्ममय है; क्योंकि वह अत्ता अर्थात् कारणरूप से सभी का संहार करने वाला, उग्र अर्थात् संहार शक्ति से उत्कृष्ट, वीर, महान्, विष्णु (व्यापक), ज्वलत् (चतुर्दिक् आलोकमय), सर्वव्यापी, नृसिंह अर्थात् बन्धननाशक परमात्मा, भीषण, भद्र (कल्याणकारी), मृत्यु का भी मृत्यु, अज्ञान शून्य एवं 'अहम्' इस नाम का परमाश्रय (परमाधार) है। अवश्य ही वह ब्रह्म निरन्तर-देश, काल एवं वस्तु की सीमा से विहीन है; क्योंकि वह उग्र, वीर, महान्, विष्णु, ज्वलत्, सर्वतोमुख, नृसिंह, भीषण, भद्र, मृत्युमृत्यु, नमामि एवं 'अहम्' है॥ ९॥

तस्मादकारेण परमं ब्रह्मान्विष्य मकारेण मनआद्यवितारं मनआदिसाक्षिणमन्विच्छेत्॥ १०॥

इस कारण प्रणव में स्थित अकार द्वारा परब्रह्म का ध्यान करके, मकार द्वारा मन आदि की रक्षा करना एवं मन आदि के साक्षीरूप आत्मा का सतत अनुसंधान करते रहना चाहिए॥ १०॥

यदैतत्सर्वमुपेक्षते तदैतत्सर्वमस्मिन्प्रविशति स यदा प्रबुध्यते तदैतत्सर्वमस्मादेवोत्तिष्ठति॥ ११॥

वह साक्षीरूप आत्मा जब सुषुप्तावस्था में इस कारणरूप सम्पूर्ण जगत् की उपेक्षा कर, इसके लिए मद एवं मोह के भाव का परित्याग कर देता है, तभी यह सब इस ब्रह्ममय आत्मा में प्रविष्ट हो जाता है, उसी में विलीन

हो जाता है। इससे अलग जगत् की सत्ता नहीं है। जब यह जाग्रत् अवस्था को प्राप्त होता है, तभी यह सब जगत् पुनः इसी से उत्पन्न हो जाता है। यह आत्मा स्वयं से ही प्रादुर्भूत हुए इन सभी माया-प्रपञ्चों को कुछ काल तक अपने में ही प्रतिष्ठित करके रख लेता है॥ ११॥

स एतत्सर्वं निरूह्य प्रत्यूह्य संपीड्य संज्वाल्य संभक्ष्य स्वात्मानमेवैषां ददात्यत्युग्रोऽतिवीरोऽतिमहानतिविष्णुरतिज्वलन्नतिसर्वतोमुखोऽतिनृसिंहोऽतिभीषणोऽतिभद्रो-ऽतिमृत्युमृत्युरतिनमाम्यत्यहं भूत्वा स्वे महिम्नि सदा समासते॥ १२-१३॥

तत्पश्चात् वह पुनः स्वयं में ही इसका संहार करके इसको सभी तरफ से संव्याप्त कर लेता है। इसके बाद इसे चिन्मय प्रकाशरूप में परिणत कर स्वयं अपने में ही विलीन कर लेता है। इस तरह इन सब पदार्थों को ही यह आत्मा का रूप दे देता है। (उपर्युक्त यह सभी कुछ कर लेने की इसमें पूर्ण शक्ति निहित है; क्योंकि) यह अति उग्र, अतिवीर, अतिश्रेष्ठ, अतिशय व्यापक, अत्यन्त आलोकमय, अतिसर्वतोमुख, अतिनृसिंह, अतिभीषण, अतिभद्र, अतिमृत्यु-मृत्यु, अतिनमामि (अज्ञान से अत्यन्त दूर) एवं अति अहम् होकर सदैव अपनी महिमा में प्रतिष्ठित रहता है ॥ १२-१३॥

तस्मादेनमकारार्थेन परेण ब्रह्मणैकीकुर्यादुकारेणाविचिकित्सन्नशरीरो निरिन्द्रियोऽप्राणोऽतमाः सच्चिदानन्दमात्रः स स्वराड् भवति य एवं वेद॥ १४॥

इस कारण से आत्मा को अकार अर्थभूत परमेश्वर के सहित एकीकृत करे एवं उकार द्वारा इस एकता के प्रति संशय-रहित हो जाए। (इसी तरह पुनः उस परमेश्वर का मकार के अर्थभूत आत्मा के सहित भी ऐक्य भाव का अनुभव एवं ध्यान करना चाहिए) जो ऐसा जानता है, वह अशरीरी, निरिन्द्रिय, प्राणविहीन एवं ज्ञानरूप एकमात्र सत्, चित्, आनन्दमय स्वप्रकाशित परमेश्वर का स्वरूप हो जाता है॥ १४॥

तदेष श्लोकः-शृङ्गं शृङ्गार्धमाकृष्य शृङ्गेणानेन योजयेत्। शृङ्गमेनं परे शृङ्गे तमनेनापि योजयेत्॥ १५॥

इस सन्दर्भ में यह श्लोकार्थ है— शृङ्ग अर्थात् शब्द ब्रह्म (ॐ तथा शृङ्गार्ध अर्थात् जीव को आकृष्ट करके अर्थात् एक में मिलाकर शब्द ब्रह्म से जोड़ देना चाहिए। तत्पश्चात् इस जीव को परशृङ्ग अर्थात् परब्रह्म में समाहित कर देना चाहिए ॥१५॥

॥ अष्टमः खण्डः॥

अथ तुरीयेणोतश्च प्रोतश्च ह्ययमात्मा सिंहोऽस्मिन्हि सर्वमयं सर्वात्माऽयं हि सर्वं नैवातोऽद्वयो ह्ययमात्मैकल एवाविकल्पो न हि वस्तु सदयं ह्योत इव सद्धनोऽयं चिद्धन आनन्दघन एकरसोऽव्यवहार्यः केनचनाद्वितीय ओतश्च प्रोतश्चैष ओंकारः॥ १॥

इस खण्ड में तुरीयस्वरूप विभक्तिरहित प्रणव के द्वारा 'ओत', 'अनुज्ञातृ,' 'अनुज्ञा' एवं 'अविकल्प'

रूप से आत्मा के साक्षात्कार के प्रकार का वर्णन किया गया है। यह प्रख्यात है कि यह ब्रह्ममय तुरीय आत्मा सर्वत्र ओत-प्रोत (अर्थात् सर्वत्र संव्याप्त) है। इस ब्रह्मरूप आत्मा में सम्पूर्ण विश्व है; क्योंकि यही सबका आत्मा है। अत: यह सर्वरूप है। यह आत्मा निश्चय ही अद्वितीय है। यह आत्मा एकमात्र होने से ही 'अद्वय' कहलाता है। यह अविकल्प (निर्विशेष) है। कोई भी पदार्थ, जो आत्मा से पृथक् है, वह सत् नहीं है। अत: यह आत्मा 'ओत' अर्थात् व्यापक की भाँति है। व्याप्य की सत्ता न होने से यह आत्मा व्यापक न होकर व्यापक के सदृश है। यह आत्मा 'सद्घन-स्वरूप' है। इसी प्रकार यह आत्मा चिद्घन एवं आनन्दघन भी है। यह आत्मा निश्चय ही एकरस है। यही किसी भी एक शब्द अथवा एक नाम के द्वारा व्यवहार में नहीं लाया जा सकता है; क्योंकि यह आत्मा अद्वितीय है॥ १ ॥

एवं नैवमिति पृष्ट ओमित्येवाह वाग्वा ओंकारो वागेवेदं सर्वं न ह्यशब्दमिवेहास्ति चिन्मयो ह्ययमोंकारश्चिन्मयमिदं सर्वं तस्मात्परमेश्वर एवैकमेव तद्भवत्येतदमृतमभयमेतद्ब्रह्माभयं वै ब्रह्माभयं हि वै ब्रह्म भवति य एवं वेदेति रहस्यम्॥ २ ॥

यह प्रणव ही ओत-प्रोत अर्थात् (व्यापक) है; क्योंकि जब भी कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति से पूछता है कि 'क्या यह बात' ऐसी ही है ? क्या यह बात ऐसी नहीं है ? तब उसके उत्तर में वह (व्यक्ति) ॐ ही बोलता है। अवश्य ही यह वाणीमात्र ॐकार है। यह सभी कुछ वाणीमात्र ही है। इस संसार में कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जो बिना शब्द अथवा नाम के हो। अवश्य ही यह प्रणव चिन्मय है। अत: परमेश्वर के लक्षणभूत चिन्मयत्व से युक्त होने के कारण यह प्रणव ही परमात्मा है। इस प्रकार परमेश्वर एवं ॐकार दोनों की चिन्मयता एक ही है। यह प्रणव एवं परमेश्वर-स्वरूप एकमात्र ब्रह्म अमृतमय एवं सदैव अभय है। अवश्य ही यह ब्रह्म अभय एवं भय से अत्यन्त दूर है। जो ऐसा जानता है, वह भी निश्चय ही अभय होकर ब्रह्ममय हो जाता है। यह इस प्रसङ्ग का अत्यन्त गूढ़ रहस्य है॥ २ ॥

अनुज्ञाता ह्ययमात्मैष ह्यस्य सर्वस्य स्वात्मानमनुजानाति न हीदं सर्वं स्वत आत्मवन्नह्ययमोतो नानुज्ञाताऽसङ्गत्वादविकारित्वादसत्त्वादन्यस्यानुज्ञाता ह्ययमोंकार ओमिति ह्यनुजानाति वाग्वा ओंकारो वागेवेदं सर्वमनुजानाति चिन्मयो ह्ययमोंकारश्चिद्धीदं सर्वं निरात्मकमात्मसात्करोति तस्मात्परमेश्वर एवैकमेव तद्भवत्येतदमृतमभयमेतद्ब्रह्माभयं वै ब्रह्माभयं हि वै ब्रह्म भवति य एवं वेदेति रहस्यम्॥ ३ ॥

(उपर्युक्त पंक्तियों में तुरीय-स्वरूप प्रणव एवं आत्मा की सर्वव्यापकता तथा एकता का वर्णन किया गया है। अब उन दोनों की अनुज्ञातृरूपता का वर्णन करते हैं-) अवश्य ही यह आत्मा अनुज्ञाता है; क्योंकि यह आत्मा ही इस सम्पूर्ण विश्व को अपना स्वरूप प्रदान कर देता है। यह सभी कुछ जड़मय होने से स्वत: आत्मवान् नहीं हो सकता। आत्मा ही इसे अपने में विलय करके आत्मवत् बना सकता है। सच तो यह है कि यह आत्मा न ओत है और न ही अनुज्ञाता है; क्योंकि यह असङ्ग एवं विकाररहित है और इससे अलग किसी अन्य वस्तु की सत्ता भी नहीं है। ऐसे ही यह ॐकार भी अनुज्ञाता है; क्योंकि जब भी कोई किसी से कुछ याचना करते हुए कहता है कि 'क्या मैं आपकी अमुक वस्तु का उपयोग कर लूँ ? तब वह 'ओम्' अर्थात् (हाँ) ऐसा कहकर ही अपनी अनुमति दे देता है। अवश्य ही वाणीमात्र ओंकार ही है। वाणी ही इन सभी के संदर्भ में आज्ञा प्रदान करती है। यह ओंकार ही वास्तव में चिन्मय है; क्योंकि यह चित् शक्ति इस समस्त अनात्मा जगत् को अपने में विलीन कर

लेती है। इस कारण ॐकार ही साक्षात् परमेश्वर है। एकमात्र वे दोनों ही साक्षात् परमेश्वर हैं। एकमात्र वे दोनों ही साक्षात् ब्रह्म हैं। यह अमृतमय है, यह ब्रह्म हमेशा अभय ही रहता है। ऐसा प्रख्यात है कि ब्रह्म सदैव भयरहित है। जो मनुष्य ऐसा जान लेता है, वह निश्चय ही ब्रह्ममय हो जाता है। यही इस प्रकरण का गूढ़ रहस्य है॥ ३॥

अनुज्ञैकरसो ह्ययमात्मा प्रज्ञानघन एवार्यं ह्यस्मात्सर्वस्मात्पुरतः सुविभातोऽतश्चिद्घन एव न ह्ययमोतो नानुज्ञातैतदात्म्यं हीदं सर्वम् सदैवानुज्ञैरसो ह्ययमोंकार ओमिति ह्येवानुजानाति वाग्वा ओंकारो वागेव ह्यनुजानाति चिन्मयो ह्ययमोंकारश्चिदेव ह्यनुज्ञाता तस्मात्परमेश्वर एवैकमेव तद्भवत्येतदमृतमभयमेतद्ब्रह्माभयं वै ब्रह्माभयं हि वै ब्रह्म भवति य एवं वेदेति रहस्यम्॥ ४॥

यह आत्मा अवश्य ही अनुज्ञैकरस अर्थात् एकरस बोधमय है; क्योंकि यही प्रज्ञानघन है। इस समस्त कार्य-कारणमय विश्व के पहले से ही यह सम्यक्रूप से आलोकित है। अतः यह घनीभूत चैतन्यमय ही है। यथार्थ में तो यह आत्मा न ओत है और न ही अनुज्ञाता है; क्योंकि यह सभी जगह आत्मा की ही अपेक्षा रखने वाला है। स्वयं तो अनात्मा होने से असत् ही है। (इस कारण कौन किसमें व्यापक हो तथा कौन किसका अनुज्ञाता हो?)। यह ॐकार भी निश्चित ही अनुज्ञैकरस है; क्योंकि 'ॐ' इस प्रकार कहकर ही व्यक्ति किसी पदार्थ के लिए अपनी अनुज्ञा प्रकट करता है। निश्चय ही वाणीमात्र ही ॐकार है; क्योंकि वाणी ही आज्ञा प्रदान करती है। अवश्य ही यह ॐकार चिन्मय है; क्योंकि चित् ही अनुज्ञा है। इसलिए चिन्मय होने से ओंकार ही साक्षात् परम ईश्वर है। इस तरह वे दोनों एकमात्र परब्रह्म ही हैं। यह अमृतमय है, यह ब्रह्म सदैव भयविहीन है। ऐसा प्रख्यात है कि ब्रह्म हमेशा भय से शून्य ही रहता है। जो मनुष्य ऐसा जान लेता है, वह भयशून्य ब्रह्ममय ही हो जाता है। यही इस प्रकरण का गूढ़ रहस्य है॥ ४॥

अविकल्पो ह्ययमात्माऽद्वितीयत्वादविकल्पो ह्ययमोंकारोऽद्वितीयत्वादेव चिन्मयो ह्ययमोंकारस्तस्मात्परमेश्वर एवैकमेव तद्भवत्यविकल्पो नाविकल्पोऽपि नात्र काचन भिदाऽस्ति नैवात्र काचन भिदाऽस्त्यत्रहि भिदामिव मन्यमानः शतधा सहस्रधा भिन्नो मृत्योर्मृत्युमाप्नोति तदेतदद्वयं स्वप्रकाशं महानन्दमात्मैवैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्माभयं वै ब्रह्माभयं हि वै ब्रह्म भवति य एवं वेदेति रहस्यम्॥ ५॥

यह आत्मा निश्चय ही विकल्परहित (निर्विशेष) है; क्योंकि इसके अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु नहीं है। यह ओंकार भी निश्चय ही विकल्परहित है; क्योंकि यह भी अद्वितीय है। निश्चय ही यह ॐकार चिन्मय है। इसलिए परमेश्वररूप ही है। इस तरह वे दोनों एकमात्र ब्रह्म ही हैं; क्योंकि वह ब्रह्म विकल्प से रहित है। यथार्थ में वह परमात्मा अविकल्प भी नहीं है; क्योंकि उसमें कोई भेद नहीं है। भेद की सत्ता होने पर ही सविकल्प एवं अविकल्प आदि भेद हो सकते हैं। इस परमात्मा में कोई भी भेद प्राप्त नहीं होता। इस परमात्म तत्त्व में जो व्यक्ति भेद मान लेता है, वह सैकड़ों एवं सहस्रों तरह से भेद को प्राप्त कर सहस्रों पृथक्-पृथक् योनियों में जन्म ग्रहण कर मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त करता रहता है। अतः यह अद्वितीय, स्वयं प्रकाशमय एवं महानन्दमय तत्त्व आत्मा ही है। यह ब्रह्म अमृतमय है, यह ब्रह्म सर्वथा भय से शून्य है, ऐसी प्रसिद्धि है कि ब्रह्म भय से विहीन ही है। जो मनुष्य ऐसा जान लेता है, वह भयरहित ब्रह्ममय ही हो जाता है। यही इस प्रकरण का गूढ़ रहस्य है॥ ५॥

॥ नवमः खण्डः ॥

देवा ह वै प्रजापतिमब्रुवन्निममेव नो भगवन्नोंकारमात्मानमुपदिशेति॥ १ ॥

अवश्य ही प्रसिद्ध देवों ने प्रजापति ब्रह्मा जी से कहा– हे भगवन्! आप हम सभी के लिए इस प्रणव के लक्ष्यार्थभूत आत्मा का उपदेश प्रदान करें॥ १ ॥

तथेत्युपद्रष्टाऽनुमन्तैष आत्मा सिंहश्चिद्रूप एवाविकारो ह्युपलब्धः सर्वत्र न ह्यस्ति द्वैतसिद्धिरात्मैव सिद्धोऽद्वितीयः॥ २ ॥

प्रजापति 'तथास्तु' कह बोले– हे देवो! 'उपद्रष्टा' एवं 'अनुमन्ता' के गुणों से युक्त आत्मा 'सिंह' (बन्धनों को नष्ट करने वाला) परमात्मा है। चित्स्वरूप, विकाररहित एवं सर्वत्र साक्षिमात्र भी यही है। इसलिए द्वैत की सिद्धि न होकर, एकमात्र आत्मा ही सिद्ध होता है। एकमात्र आत्मा की सत्ता प्रमाणित होती एवं अनुभूति में आती है। आत्मा अद्वितीय है, उससे पृथक् अन्य किसी वस्तु की सत्ता नहीं है॥ २ ॥

मायया ह्यन्यदिव स वा एष आत्मा पर एवैषैव सर्वं तथा हि प्राज्ञे सैषाऽविद्या जगत्सर्वमात्मा परमात्मैव स्वप्रकाशोऽप्यविषयज्ञानत्वाज्जानन्नेव ह्यत्र न विजानात्यनुभूतेः॥ ३ ॥

माया द्वारा ही अन्य वस्तु की प्रतीति-सी होती है। उपद्रष्टा आदि के रूप में कहा गया यह आत्मा ही साक्षात् परमात्मा है। यह माया ही समस्त द्वैत-प्रपञ्च के रूप में प्रतिभासित होती है। ठीक ऐसी ही बात है, वही यह माया प्राज्ञ में अविद्यारूप से प्रतिष्ठित होकर उसके स्वरूप पर आवरण डालती है। वह सम्पूर्ण विश्व के रूप में प्रतिभासित होती है। विशुद्ध रूप से आत्मा ही परमात्मा है। यद्यपि यह अपने आलोक से आलोकित एवं सर्वज्ञ है, फिर भी यहाँ सुषुप्तावस्था में जानते हुए भी अपने और दूसरे को अलग-अलग नहीं जानता है; क्योंकि वह उस समय अविषयरूप है, सत्तामात्र से अलग किसी भी विषय का उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। ऐसे ही वह अज्ञानरूप भी है॥ ३ ॥

माया च तमोरूपाऽनुभूतेस्तदेतज्जडं मोहात्मकमनन्तं तुच्छमिदं रूपमस्यास्य व्यञ्जिका नित्यनिवृत्ताऽपि मूढैरात्मेव द्रष्टाऽस्य सत्त्वमसत्त्वं च दर्शयति सिद्धत्वासिद्धत्वाभ्यां स्वतन्त्रास्वतन्त्रत्वेन॥ ४ ॥

यह तमोमयी माया भी अनुभव के आधार पर जानी जाती है। अतः जड़-मोहात्मक, प्रवाहरूप से अनन्त एवं अत्यन्त तुच्छ यह दृश्यमान संसार ही उसका रूप है। यह माया ही इस पुरुष के समक्ष 'इदम्' रूप से प्रतीत होने वाले इस दृश्य प्रपञ्च को अभिव्यक्त करने वाली है। फिर भी यह नित्य निवृत्य है, खोज करने पर कभी इसकी सत्ता प्राप्त नहीं होती। तथापि अज्ञानी मनुष्यों को यह आत्मा की भाँति अपना स्वरूप ही दृष्टिगोचर होता है। यह इस चेतन आत्मा की सत्ता तथा असत्ता का भी साक्षात्कार कराती है। सिद्धता एवं असिद्धता तथा स्वतन्त्रता एवं परतन्त्रता के कारण भी यह आत्मा सत्ता एवं असत्ता का आभास कराती है॥ ४ ॥

सैषा वटबीजसामान्यवदनेकवटशक्तिरेकैव। तद्यथा वटबीजसामान्यमेकमनेकान्स्वाव्यतिरिक्तान्वटान्सबीजानुत्पाद्य तत्र तत्र पूर्णं सत्तिष्ठत्येवमेवैषा माया स्वाव्यतिरिक्तानि परिपूर्णानि क्षेत्राणि दर्शयित्वा जीवेशावाभासेन करोति माया चाविद्या च स्वयमेव भवति॥ ५॥

वही यह प्रख्यात माया सामान्य से वट-बीज की तरह से एकाकार होकर भी अनेक वट वृक्षों के सदृश असंख्य जीवों की उत्पादन प्रक्रिया की शक्ति का केन्द्र है। यह किस प्रकार है? सो कहते हैं— जिस प्रकार एक साधारण वट-बीज अपने से ही अभिन्न अनेकों वट-वृक्षों को सबीज प्रादुर्भूत करके उन सभी में अपनी पूर्ण शक्ति के सहित विद्यमान रहता है, उसी तरह यह माया अपने से अभिन्न एवं परिपूर्ण शरीरों को दिखाकर अनुभव से चेतन आत्मा को जीव एवं ईश्वर के भेद में स्थित कर देती है। यह स्वयमेव माया एवं अविद्या बन जाती है॥ ५॥

सैषा विचित्रासुदृढा बह्वङ्कुरा स्वयं गुणभिन्नाऽङ्कुरेष्वपि गुणभिन्ना सर्वत्र ब्रह्मविष्णुशिवरूपिणी चैतन्यदीप्ता तस्मादात्मन एव त्रैविध्यं सर्वत्र योनित्वमपि॥ ६॥

यह माया अत्यन्त विचित्र, अति दृढ़, विभिन्न अंकुरों से युक्त, स्वयमेव तीन गुणों में अलग-अलग होकर अङ्कुरों में भी त्रिगुणमय रूप से प्रतिष्ठित रहने वाली, सर्वत्र ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवरूप में उपस्थित तथा आत्म-चैतन्यता से दीप्तित रहने वाली है। अत: सर्वत्र जो गुण-भेद से त्रिविध-स्वरूप की प्राप्ति होती है, वह आत्मा का ही स्वरूप है। कारणरूप में भी वही स्थित है। माया से ही जीव एवं ईश्वर का भेद है॥ ६॥

अभिमन्ता जीवो नियन्तेश्वर: सर्वाहंमानी हिरण्यगर्भस्त्रिरूप ईश्वरवद्व्यक्तचैतन्य: सर्वगो ह्येष हेश्वर: क्रियाज्ञानात्मा सर्वं सर्वमयं सर्वे जीवा: सर्वमया: सर्वावस्थासु तथाप्यल्पा:॥ ७॥

शरीर के प्रति अभिमान रखने वाली चेतना जीव कहलाती है तथा उस पर नियन्त्रण (सन्तुलन, अनुशासन) रखने वाला ईश्वर कहलाता है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अर्थात् समष्टि शरीर में अभिमान रखने वाले जीव का नाम ही 'हिरण्यगर्भ' है। गुण भेद से उसके भी तीन रूप हैं। ईश्वर की तरह उसमें भी आत्म-चैतन्य का साक्षात्कार स्वत: प्रादुर्भूत होता है। यह 'हिरण्यगर्भ' सर्वव्यापी ईश्वर है, क्रिया एवं ज्ञानरूप है। सम्पूर्ण क्षेत्र समुदाय सर्वमय है। सभी अवस्थाओं में उत्पन्न हुए सभी जीव भी सर्वमय ही हैं, फिर भी अल्प शरीर में अभिमान रखने से ही वे अल्प कहलाते हैं॥ ७॥

स वा एष भूतानीन्द्रियाणि विराजं देवता: कोशांश्च सृष्ट्वा प्रविश्यामूढो मूढ इव व्यवहरन्नास्ते माययैव तस्मादद्वय एवायमात्मा सन्मात्रो नित्य: शुद्धो बुद्ध: सत्यो मुक्तो निरञ्जनो विभुरद्वय आनन्द: पर: प्रत्यगेकरस: प्रमाणैरेतैरवगत:॥ ८॥

वही यह परमात्म-चेतना समस्त प्राणियों, इन्द्रियों, विराट् ब्रह्माण्ड, इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवगणों तथा अन्नमय आदि पाँच कोशों की सृष्टि कर उनमें प्रवेश कर जाता है तथा प्रवेश करके ज्ञानी होते हुए भी अज्ञानियों की तरह व्यवहार करता है। यह सभी कुछ माया द्वारा ही होता है। अत: यह आत्मा एकमात्र अद्वितीय ही है। यह आत्मा सन्मात्र-रूप, नित्य, पवित्र, बुद्ध, सत्य, मुक्त, निरञ्जन, विभु, अद्वैत, आनन्दमय पर एवं प्रत्यगेकरस अर्थात् आत्मा में ही एकमात्र रस की उपलब्धि करने वाला है। इन प्रत्यक्ष आदि तथा सत्, चित्, आनन्द की प्राप्ति आदि प्रमाणों से इसका ज्ञान प्राप्त होता है॥ ८॥

सत्तामात्रं हीदं सर्वं सदेव पुरस्तात्सिद्धं हि ब्रह्म न ह्यत्र किञ्चनानुभूयते नाविद्याऽनुभवात्मनि स्वप्रकाशे सर्वसाक्षिण्यविक्रियेऽद्वये पश्यतेहापि सन्मात्रमसदन्यत्सत्यं हीत्थं पुरस्तादयोनिः स्वात्मस्थमानन्दचिद्घनं सिद्धं ह्यसिद्धम्॥ ९ ॥

यह सभी कुछ सत्तामात्र ही है। इस कार्य-कारणरूप जगत् के पहले से मात्र सत्स्वरूप ब्रह्म ही स्वत: सिद्ध है। इस ब्रह्म में उससे पृथक् अन्य किसी वस्तु की अनुभूति नहीं होती। परब्रह्म में अविद्या का अभाव है; क्योंकि वह ज्ञानमय, स्वयंप्रकाशरूप, सभी का साक्षी, विकाररहित एवं अनुपम है। वहाँ इस संसार में जो कुछ दृष्टिगोचर हो रहा है, वह भी सन्मात्र है। जो सत् से पृथक् है, वही असत् है। इस तरह समस्त कल्पनाओं के साक्षीरूप से सत्यस्वरूप ब्रह्म की ही पूर्व से प्राप्ति होती है। सही रूप में कार्य की सत्ता न होने से यह परब्रह्म कारणमय भी नहीं है। यह सत्-स्वरूप परब्रह्म अपने आत्मा में ही स्थित, आनन्दमय चिद्घन तथा स्वत: सिद्ध है। अवश्य ही किन्हीं अन्य दूसरे प्रमाणों के द्वारा इसकी अभीष्ट सिद्धि प्राप्त नहीं होती॥ ९ ॥

तद्विष्णुरीशानो ब्रह्माऽन्यदपि सर्वं सर्वगतं सर्वमत एव शुद्धोऽबाध्यस्वरूपो बुद्धः सुखरूप आत्मा न ह्येतन्निरात्मकमपि नात्मा पुरतो हि सिद्धो न हीदं सर्वं कदाचिदात्मा हि स्वमहिमस्थो निरपेक्ष एक एव साक्षी स्वप्रकाशः॥ १० ॥

वह ही विष्णु, शिव एवं ब्रह्मा भी है। अन्य समस्त रूपों में भी वही प्राप्त होता है। वह (परमात्मा) सर्वत्र व्यापक तथा सर्वमय है, अत: वह नित्य शुद्ध-पवित्र है। उसका कभी बाधक स्वरूप नहीं होता। वह ज्ञानरूप, सुखमय आत्मा है। यह सम्पूर्ण निरात्मक (आत्मा से रहित) नहीं है और निरपेक्ष आत्मा भी वह नहीं है; क्योंकि स्वतन्त्र आत्मा तो इस जगत् के प्राकट्य के पूर्व से ही स्वत: सिद्ध है। यह सम्पूर्ण जगत् निश्चय ही सत्य नहीं है। आत्मा अपनी ही महिमा में प्रतिष्ठित, सदैव निरपेक्ष, एकमात्र साक्षी एवं स्वयं प्रकाशमय है॥ १० ॥

किं तन्नित्यमात्माऽत्र ह्येव न विचिकित्स्यमेतद्धीदं सर्वं साधयति द्रष्टा द्रष्टुः साक्ष्यविक्रियः सिद्धो निरविद्यो बाह्यान्तरवीक्षणात्सुविस्पष्टस्तमसः परस्तात् ॥११ ॥

देवों ने प्रजापति से पूछा— हे भगवन्! वह नित्य, शुद्ध, बुद्ध एवं आत्मभूत-तत्त्व क्या है? प्रजापति ने कहा— यह तत्त्व वही आत्मा है। उस परब्रह्म के आत्मा होने में किसी भी तरह की शंका नहीं करनी चाहिए। यह आत्मारूपी ब्रह्म ही सम्पूर्ण जगत् की संरचना करता है। यह द्रष्टा का भी द्रष्टा, विकाररहित, साक्षी, नित्य सिद्ध एवं अज्ञानता से रहित है; क्योंकि यह बाह्य एवं अन्तरंग में स्थित है और कार्य एवं कारण की भी जाँच करने वाला है। यह पूर्व से ही सम्यक्रूप से आलोकित है एवं अज्ञानमय अन्धकार से हमेशा परे रहता है॥ ११ ॥

ब्रूतैष दृष्टोऽदृष्टो वेति दृष्टोऽव्यवहार्योऽप्यल्पः॥ १२ ॥

प्रजापति ने इतना उपदेश प्रदान करने के बाद पूछा— हे देवो! यह तो बतलाओ कि मेरे द्वारा उपदेश प्रदान करने पर तुम सबको आत्मा के स्वरूप का बोध हुआ या नहीं? देवों ने कहा— हे भगवन्! हम सभी ने आत्मा के स्वरूप का बोध तो कर लिया है; किन्तु वह अव्यवहार्य एवं अत्यल्प है॥ १२ ॥

नाल्पः साक्ष्यविशेषोऽन्योऽसुखदुःखोऽद्वयः परमात्मा सर्वज्ञोऽनन्तोऽभिन्नोऽद्वयः सर्वदाऽसंवित्तिर्मायया नासंवित्तिः स्वप्रकाशे यूयमेव दृष्टः॥ १३॥

ऐसा श्रवण कर प्रजापति ने कहा— नहीं, आत्मा अत्यल्प नहीं है। वह सबका साक्षी है, निर्विशेष है; उससे पृथक् अन्य कोई भी वस्तु नहीं है। वह सुख एवं दु:ख दोनों से परे है। वह अद्वितीय परमात्मा है। सर्वज्ञ एवं अनन्त है। अभिन्न एवं अद्वैत है। माया द्वारा ही उसकी सत्ता भली-भाँति प्राप्ति नहीं होती; किन्तु यथार्थ में वह आलोकित न होने वाला नहीं है। इसका कारण यह है कि वह स्वयं प्रकाशरूप है। माया एवं अज्ञान भी आत्मा पर कल्पित होने से ही आत्मा से पृथक् नहीं है। तुम सब लोग ही आत्मा हो॥ १३॥

किम् अद्वयेन द्वितीयमेव न यूयमेव॥ १४॥

प्रजापति ने इतना कहने के पश्चात् फिर पूछा— हे देवो! क्या तुम्हें अब आत्मतत्त्व का दर्शन हो गया? यदि हो गया, तो अद्वैतरूप से अथवा द्वैतरूप से? देवों ने कहा हमको तो द्वैत का ही दर्शन हो रहा है। प्रजापति ने कहा— तुम्हें द्वैतरूप में आत्मा का दर्शन नहीं होता; क्योंकि तुम स्वयं ही आत्मा हो। वह तुमसे पृथक् नहीं है॥ १४॥

ब्रूह्येव भगवन्निति देवा ऊचुः यूयमेव। दृश्यते चेन्नात्मज्ञाः। असङ्गो ह्ययमात्माऽतो यूयमेव स्वप्रकाशा इदं हि सत्संविन्मयत्वाद्यूयमेव॥ १५॥

तदनन्तर देवों ने पुन: कहा— हे भगवन्! आप फिर से उपदेश करने की कृपा करें। प्रजापति ने कहा— 'तुम स्वयं ही' आत्मा हो। तुमसे अलग द्वैत का कहीं पर भी दर्शन नहीं होता। फिर भी तुम्हें द्वैत दृष्टिगोचर होता है, तो फिर तुम आत्मज्ञ नहीं हो; क्योंकि आत्मा असंग है। तुम स्वयं को आत्मा का द्वैतदर्शी मानते हो, इस कारण तुमको आत्मा का ज्ञान नहीं है। अत: तुम सभी लोग स्वप्रकाशरूप आत्मा हो। तुम स्वयमेव द्वैतरूप में प्रतिभासित होते हो, सही रूप में अद्वैत आत्मा ही है। यह जो कुछ भी दृष्टिगोचर हो रहा है, वह सब कुछ सत्स्वरूप आत्मा ही है; क्योंकि सभी कुछ संवित् (ज्ञान) रूप है। अत: तुम्हीं सत् एवं संविद्रूप आत्मा हो॥ १५॥

नेति होचुर्हन्तासङ्गा वयमिति होचुः कथं पश्यन्तीति होवाच न वयं विद्म इति होचुस्ततो यूयमेव स्वप्रकाशा इति होवाच न च सत्संविन्मया एतौ हि पुरस्तात्सुविभातमव्यवहार्यमेवाद्वयं ज्ञातो ह्येवैष विज्ञातो विदिताविदितात् पर इति होचुः॥ १६॥

ऐसा श्रवणकर उन प्रसिद्ध देवों ने कहा— 'नहीं' यह बात नहीं है। अरे! हम तो असङ्ग ही हैं, हमारी कहीं पर भी आसक्ति नहीं है। तदनन्तर प्रजापति ने कहा— यदि तुम असङ्ग हो, तो द्वैत किस प्रकार दृष्टिगोचर होता है। तब प्रजापति ने अपनी निश्चयात्मक दृष्टि से कहा कि तुम तो स्वयमेव द्वैतरूप में आलोकित हो रहे हो। तुम ससङ्ग सत्संविद्-रूप नहीं हो; सत् एवं संवित् ये दोनों ही शब्द आत्मतत्त्व का लक्ष्य प्राप्त कराते हैं। जो सृष्टि संरचना के पूर्व से ही सम्यक्रूप से आलोकित है, वह अव्यवहार्य होता हुआ भी अनुपम है। हे देवो! क्या अब आत्मा को जान लिया? देवों ने प्रजापति को आश्वस्त करते हुए कहा— हे भगवन्! हमने अच्छी तरह से जान लिया है, यह आत्मा विदित एवं अविदित इन दोनों से परे है॥ १६॥

स होवाच तद्वा एतद्ब्रह्माद्वयं बृहत्त्वान्नित्यं शुद्धं बुद्धं मुक्तं सत्यं सूक्ष्मं परिपूर्णमद्वयं सदानन्दं चिन्मात्रमात्मैवाव्यवहार्यं केनचन तदेतदात्मानमोमित्यपश्यन्तः पश्यत तदेतत्सत्यमात्मा ब्रह्मैव ब्रह्मात्मैवात्र ह्येव न विचिकित्स्यमित्यों सत्यं तदेतत्पण्डिता एव पश्यन्ति॥ १७॥

इसके बाद उन प्रजापति ने कहा— वही अद्वय ब्रह्म है। वह बृहत् अर्थात् श्रेष्ठ से भी अतिश्रेष्ठ होने से नित्य है, शुद्ध, बुद्ध एवं मुक्तरूप है। वह सत्य, सूक्ष्म, चतुर्दिक् परिपूर्ण, द्वैतरहित, सत्स्वरूप, आनन्दमय एवं चिन्मात्र आत्मा ही है। दूसरे अन्य किसी के भी द्वारा वह व्यवहार्य (वाच्य) नहीं है। फिर भी आत्मा दृष्टि का विषय न होने से तुम लोग उसे देख नहीं पाते हो; लेकिन इस परब्रह्म को, जो ॐकाररूप ही है, उसे अपने आत्मारूप में देखने का प्रयास करो। वही यह सत्य है। आत्मा ही ब्रह्म है तथा ब्रह्म ही आत्मा है। दृढ़ निश्चयी होकर कभी इस विषय में शंका न करे। हाँ! निश्चय ही यही सत्य है। इस सत्य को ज्ञानी विद्वज्जन ही देख पाते हैं॥ १७॥

एतद्ध्यशब्दमस्पर्शमरूपमरसमगन्धमव्यक्तमनादातव्यमगन्तव्यमविसर्जयितव्यमनानन्दयितव्यममन्तव्यमबोद्धव्यमनहंकर्तव्यमचेतयितव्यमप्राणयितव्यमनपानयितव्यमव्यानयितव्यमनुदानयितव्यमसमानयितव्यमनिन्द्रियमविषयमकरणमलक्षणमसङ्गमगुणमविक्रियमव्यपदेश्यमसत्त्वमरजस्कमतमस्कममायमप्यौपनिषदमेव सुविभातं सकृद्विभातं पुरतोऽस्मात्सर्वस्मात्सुविभातमद्वयं पश्यत हंसः सोऽहमिति॥ १८ ॥

यह आत्मतत्त्व अथवा ब्रह्म न शब्द है और न ही स्पर्श, न रूप है, न रस है और न ही गन्ध है। (वह) वाणी के द्वारा बोलने योग्य भी नहीं है और न ही हाथ द्वारा ग्रहणीय। वह पैरों द्वारा पहुँचने के योग्य कोई स्थल भी नहीं है। गुदा द्वारा त्याग करने अथवा उपस्थेन्द्रिय से विषयानन्द के रूप में अनुभूति करने के योग्य भी नहीं है। वह मन द्वारा मनन करने योग्य तथा बुद्धि द्वारा जानने के योग्य भी नहीं है। (वह) अहङ्कार का तथा चित्त का विषय भी नहीं है। वह इन पञ्च प्राणों— प्राण, अपान, व्यान, उदान एवं समान आदि का विषय भी नहीं है। वह (आत्मा) न इन्द्रियरूप है और न ही विषयरूप। वह कारण एवं लक्षण भी नहीं है। वह असङ्ग, गुणरहित, विकाररहित, अनिर्देश्य, सत्त्व, रज एवं तमोगुण से विहीन एवं माया से भी रहित है। वह उपनिषदों द्वारा लक्षणा शैली के द्वारा जानने के योग्य है। वह सम्यक् रूपेण प्रकाशित है। निरन्तर एकरस आलोकमय है। इस सम्पूर्ण कार्य एवं कारणरूप जगत् के पूर्व से ही अच्छी तरह से प्रकाशित है। उस अद्वय तत्त्व को 'मैं वह हूँ तथा वह मेरा स्वरूप है' ऐसा तुम लोगों को देखना चाहिए॥ १८॥

स होवाच किमेष दृष्टोऽदृष्टो वेति दृष्टो विदिताविदितात्पर इति होचुः क्वैषा कथमिति होचुः किं तेन न किंचनेति होचुर्यूयमाश्चर्यरूपा इति न चेत्याहोमित्यनुजानीध्वं ब्रूतैनमिति ज्ञातोऽज्ञातश्चेति होचुर्न चैवमिति होचुरिति ब्रूतैवैनमात्मसिद्धमिति होवाच पश्याम एव भगवन्न च पश्यामो नैव वयं वक्तुं शक्नुमो नमस्तेऽस्तु भगवन् प्रसीदेति होचुर्न भेतव्यं पृच्छतेति होवाच कैषाऽनुज्ञेत्येष एवात्मेति होवाच ते होचुर्नमस्तुभ्यं वयं त इतीति - ह प्रजापतिर्देवाननुशशासानुशशासेति॥ १९॥

ऐसा कहकर प्रजापति पुनः बोले— हे देवो! क्या तुम सभी ने इस आत्मा को देखा या फिर नहीं देखा? देवों ने कहा— हे भगवन्! हम सभी ने आत्मा को देखा है। वह विदित एवं अविदित से परे है। अरे! यह माया कहाँ प्रस्थान कर गयी? और किस तरह इस प्रकाशमय आत्मा में पहले रह सकी? प्रजापति ने कहा- उससे क्या? अर्थात् इस बात को न जानने से क्या तुममें कोई कमी आ जाती है? देवों ने कहा— नहीं, हममें कुछ भी कमी नहीं आती। प्रजापति पुनः कहने लगे— इस माया के लिए कुछ भी आश्चर्य करने की जरूरत नहीं है। तुम स्वयं ही आश्चर्यमय हो; क्योंकि तुम सभी के ही आश्रित होकर माया विचित्र तरह के कार्य करने की शक्ति प्राप्त करती है। परन्तु वास्तव में तुम सभी लोग भी आश्चर्यमय नहीं हो; (क्योंकि स्वरूपभूत सत्तामात्र के द्वारा ही तुम माया की आश्चर्यरूपता में सहायक होते हो, विकारग्रस्त होकर नहीं। इसलिए सदैव एकरूप होने के कारण तुमको आश्चर्यरूप भी नहीं कहा जा सकता)। प्रजापति ने आगे कहा— हे देवो! जो कुछ कहा गया है, इसे 'हाँ' कहकर 'अनुज्ञा' रूप से स्वीकार करो तथा इस आत्मा के सन्दर्भ में बतलाओ। देवों ने उत्तर दिया— हे भगवन्! आत्मा ज्ञात एवं अज्ञात दोनों ही है तथा आगे यह भी कहा कि वह ऐसा भी नहीं अर्थात् ज्ञात एवं अज्ञात भी नहीं है। प्रजापति ने पुनः कहा कि फिर भी उसके आत्मसिद्ध स्वरूप को तो कहो ही। तदनन्तर देवगण बोले— हे भगवन्! हम तो देखते हुए भी नहीं देखते। हम उस आत्मा को कह करके भी नहीं कह सकते। हे भगवन्! आपको प्रणाम है। आप हम सभी पर प्रसन्न हों। देवों की इस तरह नम्रतापूर्ण वाणी को सुनकर प्रजापति फिर बोले— हे देवो! डरो मत। प्रश्न करो, तुम सब क्या जानने की आकांक्षा रखते हो? देवगण बोले— हे भगवन्! यह 'अनुज्ञा' क्या है? प्रजापति ने कहा— यह आत्मा ही अनुज्ञा है। तब देवों ने कहा— हे भगवन्! आपको नमन वंदन है, हम सभी आपके ही हैं। इस तरह उन प्रख्यात प्रजापति ने देवों को उपदेश प्रदान किया॥ १९॥

तदेष श्लोकः - ओतमोतेन जानीयादनुज्ञातारमान्तरम्। अनुज्ञामद्वयं लब्ध्वा उपद्रष्टारमाव्रजेदित्युपद्रष्टारमाव्रजेदिति॥ २०॥

इस सन्दर्भ में यह श्लोकार्थ प्रस्तुत है- ओत (व्यापक) आत्मा को ओत अर्थात् ओंकार के द्वारा ही जानना चाहिए। फिर भी अनुज्ञाता आत्मा को जानना चाहिए। तदनन्तर अनुज्ञा ॐकार के द्वारा अनुज्ञारूप आत्मा को समझे एवं अविकल्प रूप ॐकार से अविकल्पमय आत्मा को जानकर उपद्रष्टा भाव को प्राप्त करके-साक्षीरूप से प्रतिष्ठित हो जाना चाहिए॥ २०॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः .... इति शान्तिः॥

॥ इति नृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत्समाप्ता॥

॥ पिण्डोपनिषद् ॥

॥ शान्तिपाठः ॥

॥ ॐ पूर्णमदः..................इति शान्तिः ॥ (द्रष्टव्य- तारसारोपनिषद्)

ॐ देवता ऋषयः सर्वे ब्रह्माणमिदमब्रुवन्।
मृतस्य दीयते पिण्डं कथं गृह्णन्त्यचेतसः ॥ १ ॥

देवता तथा ऋषियों ने ब्रह्माजी से प्रश्न किया-मृतक को जो पिण्ड दिया जाता है, सो अचेतनावस्था में वह कैसे ग्रहण करता है ॥ १ ॥

भिन्ने पञ्चात्मके देहे गते पञ्चसु पञ्चधा।
हंसस्त्यक्त्वा गतो देहं कस्मिन् स्थाने व्यवस्थितः ॥ २ ॥

शरीर के पाँच भौतिक तत्त्व पञ्च- महाभूतों में मिल जाते हैं, तो हंस (जीवात्मा) किस स्थान पर अवस्थित रहता है ॥ २ ॥

त्र्यहं वसति तोयेषु त्र्यहं वसति चाग्निषु।
त्र्यहमाकाशगो भूत्वा दिनमेकन्तु वायुगः ॥ ३ ॥

(ब्रह्माजी समाधान करते हैं) हंस (जीवात्मा) तीन दिन जल में रहता है तथा तीन दिन अग्नि में रहता है। तीन दिन आकाश में रहकर एक दिन वायु में रहता है ॥ ३ ॥

प्रथमेन तु पिण्डेन कलानां तस्य सम्भवः।
द्वितीयेन तु पिण्डेन मांसत्वक्च्छोणितोद्भवः ॥ ४ ॥

पहले पिण्ड से कलाओं की उत्पत्ति होती है। दूसरे पिण्ड से मांस, त्वचा, शोणित (रक्त) का उद्भव होता है ॥ ४ ॥

तृतीयेन तु पिण्डेन मतिस्तस्याभिजायते।
चतुर्थेन तु पिण्डेन अस्थि मज्जा प्रजायते ॥ ५ ॥

तीसरे पिण्ड से उसकी बुद्धि पैदा होती है। चौथे पिण्ड से अस्थि-मज्जा उत्पन्न होती है ॥ ५ ॥

पञ्चमेन तु पिण्डेन हस्ताङ्गुल्यः शिरो मुखम्।
षष्ठेन कृतपिण्डेन हृत्कण्ठं तालु जायते ॥ ६ ॥

पञ्चम पिण्ड से हाथ की अँगुलियाँ, सिर और मुख बनते हैं। छठे पिण्ड से हृदय, कण्ठ, तालु पैदा होते हैं ॥ ६ ॥

सप्तमेन तु पिण्डेन दीर्घमायुः प्रजायते।
अष्टमेन तु पिण्डेन वाचं पुष्यति वीर्यवान्॥ ७॥

सातवें पिण्ड से दीर्घ आयु प्राप्त करता है। आठवें पिण्ड से उसकी वाणी पुष्ट होती है॥ ७॥

नवमेन तु पिण्डेन सर्वेन्द्रियसमाहृतिः। दशमेन तु पिण्डेन भावनां प्लवनं तथा।
पिण्डे पिण्डे शरीरस्य पिण्डदानेन सम्भवः॥ ८॥ हरिः ॐ तत्सदित्युपनिषत्॥

नौवें पिण्ड से सारी इन्द्रियों से युक्त हो जाता है। दसवें पिण्ड से भावना और विचारों का प्रवाह चालू हो जाता है। पिण्ड और शरीर की उत्पत्ति पिण्डदान से ही संभव है॥ ८॥ हरिॐ तत्सत्। यह उपनिषद् है।

॥ ॐ पूर्णमदः .... इति शान्तिः॥

॥ इति पिण्डोपनिषत्समाप्ता॥

॥ पैप्पलादोपनिषद् ॥

॥ शान्तिपाठः ॥

॥ ॐ भद्रं कर्णेभिः.... इति शान्तिः ॥ (द्रष्टव्य– अथर्वशिखोपनिषद्)

ॐ अथ पैप्पलादो ब्रह्माणमुवाच। भो भो भगवन्ब्रह्मविष्णुरुद्राणां मध्ये कोऽधिकतरोध्येयश्च तमेव नो ब्रूहीति।

एकबार मुनि पैप्पलाद ने ब्रह्मा जी से पूछा कि हे ब्रह्मन्! ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र– इन तीनों देवों में अधिक श्रेष्ठ और वन्दनीय कौन है? आप हमें बतायें।

तस्मै स होवाच पितामहः प्रभुः। हे पिप्पलाद! शृणु वाक्यमेतत्।
बहूनि पुण्यानि कृतानि येन तेनैव लभ्यः परमेभवरोऽसौ।
यस्यांगजाः स्युः हरिरिन्द्रमुख्या मोहान्न जानन्ति सुरेन्द्रमुख्याः
प्रभुं वरेण्यं पितरं महेशं।
यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं वेदांश्च सर्वान्प्रहिणोति चाग्रयम्।
तं वै प्रभुं पितरं देवतानां नमामि विष्णोर्जनकं देवमाद्यम्॥

उन पैप्पलाद को पितामह ब्रह्मा ने कहा कि हे पैप्पलाद! तुम मेरी इस बात को सुनो–

"यह सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर उसको प्राप्त होता है, जिसने बहुत सारे पुण्य–कर्म किए हों। हरि–इन्द्र जैसे प्रमुख देव उस परमेश्वर के शरीर से पैदा होने पर भी मोहवश उसकी महिमा को नहीं जानते हैं। वे महेश सबके पिता और सबमें श्रेष्ठ हैं। सृष्टि के आरम्भ में वे ही समस्त ज्ञान को धारण करते हैं और सर्वज्ञानमय सभी वेदों को सर्वप्रथम धरती पर सम्प्रेषित करते हैं। उन देवताओं के पिता, सृष्टिपालक विष्णु के भी जनक आदिदेव प्रभु को मैं प्रणाम करता हूँ।"

यभचान्तकाले सर्वलोकान् जहार स एव श्रेष्ठभच वरिष्ठरुद्रः।
यो घोरं वेषमास्थाय शरभाख्यं महेश्वरः।
नृसिंह लोकहन्तारं स जघान महाबलः।
हरिं हरंतं पादाभ्यामनुयन्ति सुरेभवराः॥

जो सृष्टि-संहार (प्रलय) के समय सभी लोकों को अपने अन्दर समाहित करते हैं, वे ही वरिष्ठ रुद्र सब में श्रेष्ठ हैं। जिन महाबली ने भयावह सिंह से भी बलवान् शरभ नामक नृसिंह का वेष धारण कर लोगों का उत्पीड़न करने वाले हिरण्यकशिपु का वध कर डाला, उन्हीं कष्ट हरने वाले परमेश्वर के पदचिह्नों का देवगण अनुंकरण करते हैं।

मावधीः पुरुषं विष्णुं विक्रमः स महेश्वरः ।
कृपया भगवान् विष्णुं विददार नखैः खरैः ॥
चर्मांबरो महादेवो वीरभद्रो वभूव हि ।
स एको रुद्रो ध्येयः सर्वेषामपि सिद्धये ॥

उन पराक्रमी परमेश्वर ने परम पुरुष विष्णु के अस्तित्व को बचाया । स्वयं विष्णु बनने का दावा करने वाले हिरण्यकशिपु का अपने तीखे नाखूनों से विदारण किया । चमड़े को धारण करने वाले वे ही महादेव दक्ष-यज्ञ में वीरभद्र बने । नाना रूपों को धारण करने वाले वे ही एक रुद्र सभी प्रकार की सिद्धियों के लिए उपासनीय-वन्दनीय हैं ।

यो ब्रह्मणः पञ्चमवक्रहन्ता तस्मै रुद्राय नमोऽस्तु ।
यो दक्षयज्ञे सुरसंघान्निहत्य विष्णुं बबंधोरगपाभोन ॥
यो विस्फुलिंगेन ललाटजेन सर्वं जगद्भस्मसात्करोति ।
पुनभच सृष्ट्वा पुनरप्यरक्षदेवं स्वातंत्र्यं प्रकटीकरोति ॥
तस्मै रुद्राय नमोऽस्तु ॥

जिनने ब्रह्मा के पाँचवें मुख का हनन किया, उन रुद्र को नमस्कार है। जिनने दक्ष के यज्ञ में देवसभा से विष्णु को घसीट कर सर्प-पाश से बाँध डाला। जिनने अपने ललाट से निकले अंगारों से इस सारे जगत् को राख कर दिया और फिर से जगत् का सृजन कर उसकी रक्षा की। ऐसा कर उनने अपने पूर्ण स्वातंत्र्य को सिद्ध किया। उन रुद्र को नमस्कार है।

यो लीलयैव त्रिपुरं ददाह विष्णुं सोमं भाल्यमग्निं च वाणं ।
सर्वे देवाः पभुतामापुरस्य तस्मै रुद्राय नमोऽस्तु ॥
यौ वै पभूनां पतिर्लोकसिद्धः कामं ददाहाक्षिजपावकेन तस्मै रुद्राय नमोऽस्तु ।
यो वामपादेन जघान कालं घोरं पपौ हालाहलं दहन्तं तस्मै रुद्राय नमोऽस्तु ॥

जिनने अपनी लीलामात्र से विष्णु, सोम, शल्य अग्नि और वाण (तत्त्वपञ्चकम्) के साथ त्रिपुर को जला डाला। सभी देवता जिनकी अधीनता को स्वीकारते हैं, उन रुद्र को नमस्कार है। पशुओं के पति-पशुपति- के रूप में जिनकी लोक-प्रसिद्धि है, जिनने अपनी आँख से निकलने वाली आग से कामदेव को जला डाला, उन रुद्र को नमस्कार है। जिनने काल को अपने बायें पैर के वश में कर दिया और दहकते हुए भयानक कालकूट जहर को पी डाला, उन रुद्र को नमस्कार है।

यः पादपद्मार्च्चि विष्णुनेत्रस्तस्मै ददौ चक्रमतीव हृष्टः। तस्मै रुद्राय नमोऽस्तु ।
यो मत्स्यकूर्मादिवराहसिंहान् विष्णुं क्रमन्तं वामनादिविष्णुम् ।
शशास चान्यांश्च सुरेन्द्रवन्द्यस्तस्मै रुद्राय नमोऽस्तु ।
विष्णोः कलायामवतीर्णदेहान् चिच्छेद शूलेन जलान्तकाले तस्मै रुद्राय नमोऽस्तु ।

विष्णु का ज्ञाननेत्र जिनके पादपद्मों की मरीचियों का प्रसाद है, जिनने चक्र प्रदान कर विष्णु को प्रसन्न किया, उन रुद्र को नमस्कार है। जिनने मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह एवं एक ही पैर से पृथ्वी को लाँघने वाले वामनादि अवतारों तथा अन्य सुरेन्द्र के द्वारा वन्द्य देवों पर भी शासन किया, उन रुद्र के लिए नमस्कार है। प्रलय काल में विष्णु की माया से देह धारण करने वाले देहधारियों के शरीरों का शूल से जो उच्छेदन करते हैं, उन रुद्र को नमस्कार है।

नानाविधानि दुःखानि जहार परमेश्वरः।
शंकरो भगवानाद्यो ररक्ष सकलाः प्रजाः॥
यत्पादाम्बुरुहद्वन्द्वं मृग्यते विष्णुना सदा।
स्तुताः स्तुत्यं महेशानमवाङ्मनसगोचरम्॥
भक्त्या नम्रतनोर्विष्णोः प्रसादमकरोच्छिवः॥

परमेश्वर भक्तों के नाना प्रकार के दुःखों को हरते हैं। प्राणियों का कल्याण करने वाले शंकर, सृष्टि के आद्य देव समस्त प्रजा की रक्षा करते हैं। स्वयं विष्णु जिनके चरण-कमलद्वय का सदा अनुसन्धान करते रहते हैं। वाणी और मन की पहुँच से परे वे सबके स्वामी, सभी के स्तुत्य हैं। भक्ति से विनत विष्णु पर शिव की कृपादृष्टि सदा बनी रहती है।

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।
आनन्दं शंकरं ज्ञात्वा न विभेति कुतश्चन ॥
अणोरणीयान् महतो महीयानात्मास्य जन्तो निहितो गुहायाम् ।
तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम् ॥
वसिष्ठवैयासिक-वामदेवमुनीन्द्रमुख्यैर्हृदिभाव्यमानः ।
सनत्सुजातादिसनातनाद्यैर्गिरीशो महेशो भगवानादिदेवः ॥

जहाँ से वाणी लौट आती है, मन जिनको प्राप्त नहीं कर सकता (जो मन और वाणी के विषय नहीं बनते) आनन्दरूप उन शंकर को जानने के बाद भय की सम्भावना ही नहीं रहती। वे छोटे से छोटे और बड़े से भी बड़े हैं तथा प्रत्येक प्राणी की हृदयरूपी गुफा में रहते हैं। वीतशोक-निर्मलचित्तवाला प्रभु की कृपा से उस परम ऐश्वर्यशाली अविनश्वर तत्त्व का साक्षात्कार करता है। वसिष्ठ, व्यास-पुत्र, वामदेव जैसे मुनिश्रेष्ठ जिनका सदा हृदय से ध्यान करते हैं। सनक, सनन्दन, सनातन आदि मुनिगण भी इन्हीं गिरीश आदिदेव की स्तुति- प्रार्थनाओं में तल्लीन रहते हैं।

सत्यो नित्यः सर्वसाक्षी महेशोनित्यानन्दो निर्गुणो निर्विभागः ।
अचिन्त्यशक्तिर्भगवान् गिरीशः स्वाविद्यया मोहितानातनोति ॥
अतिमोहकरी माया विष्णोश्च मम सुव्रत !
तस्य पादाम्बुजध्यानमन्तरा दुस्तरा भवेत् ॥

वे सर्वसाक्षी महेश सत्य, नित्य, नित्यानन्द, निर्गुण, एवं निर्विभाग (अखण्ड) हैं। अचिन्त्यशक्तिसम्पन्न ये भगवान् गिरीश अपनी अविद्या से मोहित प्राणियों के जीवन का विस्तार करते हैं। हे सुव्रत! विष्णु की यह माया अति मोहकारी है। उन परमेश्वर के चरण-कमलों के ध्यान के बिना इस संसार-सागर को पार करना कठिन है।

भूतं च भव्यं च भविष्यदर्थान् स्वाविद्यया कल्पयामास भूयः।
तस्य मायावशादेव मोहिता महदादयः॥
विष्णुश्च-भगवानीशः सुरेन्द्राद्याः सुरेश्वराः।
अहं च सर्वे देवाश्च यस्याज्ञापरिपालकाः॥
तस्य माहात्म्यलेशांशो वक्तुं केनाप्यशक्यते।
परात्परतरं ब्रह्मा तत्परात्परतो हरिः॥
तत्परात्परतोधीशस्तस्मात्तुल्योऽधिको न हि॥

भूत, वर्तमान एवं भविष्य के सभी विषय उन परमेश्वर ने अपनी माया- शक्ति से ही कल्पित किए हैं। उन्हीं की माया के कारण बुद्धि, मन, इन्द्रियाँ आदि सभी प्रमाण और प्रमेय मोहित हैं। विष्णु आदि सभी देवता, सुरेन्द्र आदि सभी सुरेश्वर, मैं और सभी देवगण उन्हीं की आज्ञा का पालन करने वाले हैं। उनकी कृपा के बिना किसी की जुबान भी नहीं हिल सकती। दूसरे सभी देवताओं में ब्रह्मा श्रेष्ठ हैं, उनसे भी परतर-श्रेष्ठतर-हरि हैं। वे परमेश्वर उनसे भी श्रेष्ठतम हैं। उन जैसा या उनसे भी श्रेष्ठ दूसरा कोई नहीं है- 'सा काष्ठा सा परा गतिः'।

यः शिवेन समानः स्यान् मोहान्धीकृतचेतसा।
वदन्त्येष महापापो नरकञ्च प्रविशेत्खलु॥
वदन्ति शिवदासान्ये तेषु प्रीतिर्हि नस्तराम।
शक्तानन्न्यां प्रपश्यामो दुर्बुद्धीन्पापकर्म्मिणः॥
शिव एव पतिः शम्भू पश्य वो वपमेव हि।
भूम्यामङ्गानि देवस्य शंकरस्यास्मदादिभिः॥
प्रतिष्ठाप्येव विधिना पूजितानि निदर्शनम्।
स एव भोगमोक्षञ्च प्रददात्याश्रितस्य हि॥
तस्य देवस्य माहात्म्यं को वा वेदितुमुत्सहेत्॥

जो अन्धकार से आवृत चित्त वाले स्वयं को शिव के समान मानने का दावा करते हैं, वे महापापी निश्चित ही नरक में प्रवेश करते हैं। लेकिन जो स्वयं को शिव का दास कहते हैं, उन पर शिव का स्नेह बरसता है। उन दुर्बुद्धि पापकर्मियों के शिव ही एकमात्र शरण हैं। वे ही सबके रक्षक हैं, उनके समान दूसरा कोई नहीं है। देवाधिदेव शंकर के सभी प्रतीक

चिह्नों की विधिवत् पूजा- प्रतिष्ठा करनी चाहिए। वे ही शंकर अपने आश्रितों को भोग एवं मोक्ष दोनों प्रदान करते हैं। न के माहात्म्य को समझने का सामर्थ्य किसमें है?

विष्णुर्विश्वजगद्योनिः स्वांशभूतैः स्वकैः सह ।
ममांशसम्भवो भूत्वा पालयत्यखिलं जगत् ॥
विनाशं प्रलये याति किं नित्यं गम्यते नघ ।
अथ साक्षात्स्वयं ज्योतिःस्वरूपः परमेश्वरः ॥
एक एव सदा नित्यस्ततोऽन्यत्सकलं मृषा ।
तस्मात्परान् परित्यज्य हेयान्विष्ण्वादिकान् सुरान् ॥
शिव एव सदा ध्येयः सर्वसंसारनाशनः ।
तस्मै महाग्रासाय महेश्वराय नमो नमः ॥
एको विष्णुर्महद्भूतं पृथग्भूतान्यनेकशः ।
त्रीन्लोकान्व्याप्य भूतात्मा भुङ्क्तेविश्वभुगव्ययः॥ तस्मै रुद्राय नमोऽस्तु ।

विष्णु अपनी समस्त कलाओं के साथ इस समस्त संसार के आदि कारण हैं। वे मेरे ही अंश से उत्पन्न होकर इस समस्त संसार का पालन करते हैं। इस संसार में जो कुछ भी है, वह सब प्रलय के समय विनाश को प्राप्त हो जाता है। यहाँ ऐसा कुछ भी नहीं, जो स्थाई एवं नित्य हो। एकमात्र साक्षात् स्वयं ज्योतिस्वरूप परमेश्वर ही सत्य एवं नित्य हैं, उनके अतिरिक्त सभी कुछ असत्य और अनित्य है। इसलिए दूसरे विष्णु आदि मेरे अंश से समुद्भूत देवताओं का परित्याग कर संसाररूपी समस्त दु:खों के नाशक (मुझ) शिव का ही सदा ध्यान करना चाहिए (ऐसा शिव का कथन है)। उन महाग्रास महेश्वर के लिए नमस्कार है। सबसे बड़े तत्त्व 'भूत' विष्णु हैं, शेष तत्त्व उन्हीं के अलग-अलग भेद हैं। सभी भूतों का सार वे अव्यय, विश्व को अपना भोजन बनाने वाले परमेश्वर तीनों लोकों को व्याप्त कर उस विश्व का भोग करते हैं। उन रुद्ररूप परमेश्वर को नमस्कार है।

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणाहुतं ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥
सदा जीवास्तदङ्गेषु नित्यं भाति हरिः स्वयम् ।
ब्रह्मैव सरणः साक्षान्मोक्षदो यं महात्मने ॥

'अर्पण' ब्रह्म है, 'हवि' भी ब्रह्म है, जिस अग्नि में हवि का होम होता है वह 'अग्नि' भी ब्रह्म है, जलने वाला द्रव्य 'हुत' भी ब्रह्म है। ज्ञान-कर्म और समाधि का 'गन्तव्य' ब्रह्म ही है। समस्त जीवों और विश्व-ब्रह्माण्ड के अवयवों में नित्य स्वयं हरि ही प्रकाशित होते हैं। आत्मा का उन्नयन करने वाले प्राणी को ब्रह्म सीधे ही मोक्ष को देने वाले हैं।

एतां पैप्पलादोपनिषदं न वदेद्यस्य कस्यचित् ।
नास्तिकाय नाभक्ताय न शठाय न दाम्भिके ॥
सच्छिष्याय विरक्ताय सुदृढायैकभक्तये ।
दातव्या शम्भुभक्ताय गुरुभक्ताय धीमते ॥
दातव्या भक्तियुक्ताय न दातव्या हि कस्यचित् ।
सदा गोप्या हि गुरुभिर्यत्नेनापि सदि भुवि ॥

इस पैप्लादोपनिषद् को जिस किसी 'ऐरे-गैरे' को नहीं बताना चाहिए। न नास्तिक को, न भक्तिरहित को, न धूर्त को और न ही दम्भी व्यक्ति को बताया जाना चाहिए। इसका उपदेश उसे देना चाहिए, जो सुपात्र शिष्य हो, विरक्त हो, जिसकी भक्ति दृढ़ हो जो शम्भु का भक्त हो (कल्याणकारी मार्ग में प्रवृत्त हो), गुरु का भक्त हो एवं बुद्धिमान् हो। भक्तियुक्त को ही इसका उपदेश दिया जाना चाहिए, अन्य किसी को भी नहीं। गुरुओं को चाहिए कि प्रयत्नपूर्वक इसके रहस्य को इस संसार में गुप्त ही रखें।

आहूयापि च दातव्या शुद्धतत्त्वाय योगिने।
नान्यथा सिध्यते मंत्र इत्याह भगवान्भवः । इत्याह भगवान्भवः। इत्याह भगवान्भवः ।

जहाँ अपात्रों के सामने इसके ज्ञान को सर्वथा अप्रकाशित रखना चाहिए, वहीं शुद्ध अन्तःकरण वाले योगियों को इसका उपदेश बुला-बुला कर भी दिया जाना चाहिए। भगवान् भूतभावन का कहना है कि अन्यथा मंत्र की सिद्धि नहीं होती। त्रिरावृत्ति (इत्याह भगवान्भवः मंत्र का तीन बार दुहराया जाना) ग्रन्थ की समाप्ति की सूचक है।

इदं शिवरहस्यं पैप्पलादोपनिषदं योऽधीते स गर्भवासद्विमुक्तो भवति। स सर्ववेदाध्यायी भवति। स पवमानाध्यायी भवति। श्री रुद्राध्यायी भवति। शिवस्य हृदयंगमो भवति। न स पुनरावर्तते। पुनरावर्तते इत्याह भगवान्ब्रह्मा।

इस शिवरहस्य वाली पैप्पलाद उपनिषद् का जो अध्ययन करता है, वह गर्भवास से विमुक्त हो जाता है। वह सर्ववेदाध्यायी एवं रुद्राध्यायी हो जाता है। वह शिव का हृदयंगम होता है। उसका पुनर्जन्म नहीं होता। वह फिर से जन्म-मृत्यु के चक्र से छुटकारा पा लेता है, ऐसा स्वयं भगवान् ब्रह्मा का कहना है।

॥ ॐ भद्रं कर्णेभिः..........इति शान्तिः ॥

॥ इति पैप्पलादोपनिषत्समाप्ता ॥

॥ बाष्कलमन्त्रोपनिषद् ॥

मेधातिथिं काण्वमिन्द्रो जहार द्या मेषभूयोपगतो विदानः।
तमन्य इत्तमनं परिप्राट् पद एनं नियुयुजे परस्मिन्॥ १ ॥

मेधातिथि काण्व जो सामवेद ब्राह्मण के नाम से प्रसिद्ध था, ज्ञानी इन्द्र ने मेष का रूप धारण करके उसका अपहरण कर लिया तथा उसे स्वर्ग ले गया। इस हरण-क्रिया से मन में ग्लानि भाव रखते हुए भी मेधातिथि ने मेष रूप बनाने में समर्थ जानकर परमपद को पूछने की इच्छा से (इन्द्र का) गुरु रूप में वरण कर लिया। यह कोई विलक्षण देव है मेष नहीं है, ऐसा जान, तात्त्विक स्वरूप जानने की इच्छा से वक्ष्यमाण प्रश्न में नियुक्त कर दिया॥ १ ॥

को ह स्मैष भवसि व्यवायो नावायो म इह शश्वदस्ति।
सुशेवमिच्चंक्रमसि प्रपश्यन्नित्था न कश्चोरणमाचचक्षे॥ २ ॥

मेधातिथि ने पूछा— तुम कौन हो? यह बताओ, क्योंकि मेरा तुमसे निश्चय ही कोई परिचय नहीं है। तुम रूप बदलना अच्छी तरह जानते हो। भला बताओ तो किसने ऐसे रूप बदलने वाले बहुरुपिये को मेष रूप में देखकर ऐसा प्रश्न किया होगा? ऐसा क्रममाण (गतिशील) मेष भी किसी ने न देखा होगा॥ २ ॥

नेमामस्पृक्षदिदुदस्यमानः को अद्धामूमभिचङ्क्रमीति।
तदिच्छाधि यो असि सर्ववित्तमो न त्वाश्रवद्ब्रह्म रिषा मयस्वि॥ ३ ॥

जो इस पृथिवी को छलाँगता हुआ ही स्पर्श नहीं करता; अपितु इसी शरीर से स्वर्ग का भी अभिक्रमण करता है। अतः मुझे निजस्वरूप का उपदेश कीजिए; क्योंकि आप सर्वज्ञतम हैं। हे तेजस्विन्! ब्राह्मण का क्रोध तुम्हें स्पर्श न करे (अर्थात् मैं अपहरण से क्रोधित होकर शाप न दूँ), अतः उसका बताना ही उचित है॥ ३ ॥

इन्द्रो नृचक्षा वृषभस्तुराषाट् प्रसासहिस्तपसा मा विचक्षे।
स इद्देवो ऋतमन्वयन्तं प्रभीमकर्मा तवसोऽपविद्धात्॥ ४ ॥

(मेष रूप इन्द्र ने पूछा-) यह शाप देने का बल तुम्हें कहाँ से मिला? प्रश्न के उत्तर में मेधातिथि कहता है— इन्द्र अर्थात् परमेश्वर सब जगत् के लोगों का कर्मसाक्षी, कर्मफल देने वाला है तथा दूसरों के बल को तिरस्कृत करने वाला भी है। अतः वह देव (परमेश्वर) सत्य मार्ग पर न चलने वाले को जब तक वज्र प्रहार (कठोर दण्ड) से भयभीत न करे, उससे पूर्व ही उस आचरण से बचना चाहिए॥ ४ ॥

कुहेव मावशमितो नयातै कुहेव ते चित्रतमप्रतिष्ठा।
कुहाचिदेष स्वपिता पिता नो यो न वेद न हृतं हरन्तम्॥ ५ ॥

(पुन: मेधातिथि ने कहा—) मुझे यहाँ से कहाँ ले जाओगे? तुम्हारे इस चित्रतम रूप की प्रतिष्ठा कहाँ है? (इस बीच ऋषि ईश्वर का स्मरण करते हुए कहते हैं—) यह मानस-प्रत्यक्ष (मन में प्रतिष्ठित) हमारा पिता (ईश्वर) क्या सो रहा है? जो इस प्रकार मुझ अपहृत को और अपहरण कर्त्ता को नहीं जान पाया॥ ५॥

प्रत्यङ्ङवाङ्प्राङिन्तरौ च नेह नाहमेनाननुपतस्थिरद्धा।
न मामिमे नूनमित्था पथो विदुर्ये मा न यन्ति मिथु चाकशाना:॥ ६॥

क्या पाँचों दिशाओं में वर्तमान प्राण-पञ्चक के अधिष्ठातृ देवता भी नहीं हैं? ये देवता होंगे तो निश्चित; किन्तु मुझे इस स्थिति में जान नहीं पाये, अन्यथा वे प्रकाशमान होकर मुझे वापस अवश्य ले जाते॥ ६॥

पर: स्मियानो अविवरस्य शूकं किं सीमिच्छरणं मन्यमान:।
न ह त्वाहमप्रणीय स्वविष्ठामित्था जहामि शपमानमिन्त्रु॥ ७॥

इन्द्र हँसते हुए मेधातिथि की शङ्का का निवारण करते हैं— हे मेधातिथि! तुम इस स्थिति में किसको अपना शरणस्थान मानते हो? अरे! मैं अज्ञान-पङ्क में निमग्न एवं शाप देने को तत्पर तुमको भी तब तक मुक्त नहीं करूँगा, जब तक तुम्हें निजस्वरूप का बोध नहीं करा देता हूँ॥ ७॥

अहमस्मि जरितृणामु दावा अहमाशिरमहमिदं दधग्वान्।
अहं विश्वा भुवना विचक्षन्नहं देवानामासन्नवोऽद:॥ ८॥

मैं यजमानों के यज्ञादि कर्मों का फलदाता हूँ। इस हवि का दाहक भी मैं ही हूँ। सारे भुवनों का साक्षी होकर मैं देवताओं के मुख में अन्नादि देता हूँ॥ ८॥

मम प्रतिष्ठा भुव आण्डकोशा वि चैमि सं च हि नु यो विरश्पी।
अहं न्वहिं पर्वते शिश्रियाणमुग्रो न्वहं तवसावस्युरद्धा॥ ९॥

चित्रतम प्रतिष्ठा का उत्तर देते हुए इन्द्र कहते हैं— कि मैं ब्रह्माण्डों का उत्पादक हूँ। मैं इनसे वियुक्त हुआ तथा संगत हुआ विविध शब्द करता हूँ। मैं ही वेद प्रवक्ता हूँ। मैंने ही पर्वत का आश्रय लिए वृत्र को मारा था। निश्चित रूप से वज्र से क्रूर कर्म करने वाला ऐश्वर्येच्छुक मैं ही हूँ॥ ९॥

प्रवङ्क्षणा अभिदं पर्वतानां यत्सीमिन्द्रो अकरोदनीकै:।
को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् को अश्नवदभिमातिं विजघ्नुष:॥ १०॥

मैं ही पर्वतों के पक्षों (पंखों) का भेदन करने वाला हूँ। जो पुरुष-साध्यकर्म इन्द्र ने अनीक-समूह द्वारा किया है, वह मैंने ही किया है। सत्य ही है कि मेरे स्वरूप को कौन जान सका? अथवा कौन कह पाया? शत्रु सेना का संहार करते हुए मेरी व्यापकता अर्थात् मेरी सामर्थ्य को जानने में कौन समर्थ है?॥ १०॥

को मे अवो दाशुषो विष्वगूतीरित्था ददश्रे भुवनाधि विश्वा।
रूपं रूपं जनुषा बोभवीमि मायाभिरेको अभिचाकशानः॥ ११॥

अन्न देने वाली मेरी शक्तियों को सारे भुवनों में कौन देख पाया है ? मैं शरीर ग्रहण करके अनेक रूप होता हूँ। मैं एक हूँ, तो भी विचित्र-शक्तिसम्पन्न अपनी माया से अनेक रूपों में भासमान होता हूँ॥ ११॥

विश्वं विचक्षे यमयन्नभीको नेशे मे कश्च महिमानमन्यः।
अहं द्यावापृथिवी आततानो बिभर्मि धर्ममवसे जनानाम्॥ १२॥

मैं निर्भय होकर अन्तर्यामी स्वरूप से स्थित हुआ विश्व का नियमन करता हूँ और देखता हूँ कि मेरी महिमा को कौन प्राप्त कर सकता है ? मैं द्यावा-पृथिवी में व्याप्त हुआ लोगों की रक्षा के लिए उन्हें कर्म मार्ग में प्रवृत्त करता हूँ॥ १२॥

अहमु ह प्रवतिं यज्ञियामियां अहं वेद भुवनस्य नाभिम्।
आपिः पिता सूरहमस्य विष्वङ् अहं दिव्या आन्तरिक्ष्यास्तुका वहम्॥ १३॥

मैं ही यज्ञ सम्बन्धी कर्म का फलदाता हूँ। मैं त्रैलोक्यवर्ती सभी पदार्थों का ज्ञाता हूँ। मैं ही इस विश्व का पितामह, जनक तथा माता हूँ। अन्तरिक्ष में वर्तमान दिव्य जल की बूँदों को धारण करता हूँ अर्थात् वृष्टिकर्त्ता हूँ॥ १३॥

अहं वेदानामुत यज्ञानामहं छन्दसामविदं रयीणाम्।
अहं पचामि सरसः परस्य यदिदेतीव सरिरस्य मध्ये॥ १४॥

मैं वेदों को, यज्ञों को, छन्दों को, उनसे प्राप्त होने वाले ऐश्वर्यों को जानता हूँ। समुद्र के मध्य बड़वानल स्वरूप से स्थित मैं ही उसके जल को पचाता हूँ॥ १४॥

अहमिन्नु परमो जातवेदा यमध्वर्युरथिलोकं पृणैधीत्।
यमन्वाह नभसो न पक्षीकाष्ठा भिन्दन् गोभिरितोऽमुतश्च॥ १५॥

मैं ही वह परमपवित्र अग्नि हूँ, जिस अग्नि को इष्ट कामनाओं से लक्ष्य करके अध्वर्यु लोग प्रदीप्त करते हैं तथा जिसे लक्ष्य बनाकर आकाश में पक्षी की भाँति अपनी वाणियों द्वारा दिशाओं को भेदते हुए उड़ाते हैं अर्थात् इष्टफलोन्मुख करते हैं॥ १५॥

अहमु यन्नपतता रथेन द्विषडारेण प्रधिनैकचक्रः।
अहमिन्नु दिद्युतानो दिवे दिवे तन्वं पुपुष्यानमृतं वहामि॥ १६॥

मैं ही बारह अरों वाले चक्र से सम्पन्न रथ पर आरूढ़ होकर अन्तरिक्ष में विचरण करता हूँ (बारह मासात्मक वर्ष से सूर्य नारायण समय की गणना कराते हैं)। मैं ही दिन-दिन (प्रतिदिन) कृश शरीर का पोषण करता हुआ, प्रकाशमान रहकर प्रजाओं के लिए अमृत को धारण करता हूँ॥ १६॥

अहं दिशः प्रदिश आदिशश्च विष्वक् पुनानः पर्येमि लोकम्।
अहं विश्वा ओषधीर्गर्भ आधां याभिरिदं धिनुयुर्दाशुषः प्रजाः ॥१७॥

मैं ही दिशा विदिशा में चारों ओर पवित्र करता हुआ लोक में विचरण करता हूँ। यजमान की प्रजा जिन अन्नौषधियों से इस विश्व को प्रसन्न करती है, मैं ही उन सारे अन्नों और औषधियों को धारण करता हूँ॥ १७॥

अहं चरामि भुवनस्य मध्ये पुनरुच्चावचं व्यश्नुवानः।
यो मा वेद निहितं गुहा चित् स इदित्था बोभवीदाशयध्यै॥ १८॥

ब्रह्म से स्तम्बपर्यन्त जीवरूप में मैं ही विद्यमान हूँ। जो मुझ हृदय गुफा में बैठे हुए को उपर्युक्त रूप से अभेद रूप में जानता है, वही इस प्रकार का अभेद-द्रष्टाज्ञानी मेरे तुल्य हो जाता है॥१८॥

अहं पञ्चधा दशधा चैकधा च सहस्रधा नैकधा चासमत्र।
मया ततमितीदमश्नुते तदन्यथासद्यदि मे असद्विदुः॥ १९॥

मैं इस समग्र विश्व-ब्रह्माण्ड में पाँच होकर, दस होकर,एक होकर, हजार होकर, अनेक होकर विद्यमान हूँ। सारा विश्व मुझमें व्याप्त है, जो ऐसा अनुभव करता है, वही तत्त्वज्ञ है, अन्यथा असत् है। जो अन्यथा प्रकार से कहते हैं, वे असत्य कहते हैं॥ १९॥

न मामश्नोति जरिता न कश्चन न मामश्नोति परि गोभिराभिः।
न मेऽनाश्वानुत् दाश्वानजग्रभीत् सर्व इन्मामुपयन्ति विश्वतः॥ २०॥

कोई यजमान कर्म से, प्रजा से अथवा धन से मुझे प्राप्त नहीं कर सकता, न ही इन वेद-वाणियों से मुझे पा सकता है। न मुझको अनशन करके, न दान करके पा सकता है; क्योंकि ये सब लोकप्राप्ति के साधन हैं। मैं किसी एक लोक में नहीं रहता। केवल ज्ञानीजन ही मुझे सब में व्याप्त मानकर अनुभव करते हैं और वही मुझे प्राप्त कर सकते हैं॥ २०॥

क्व शरारुः क्व सृमरः क्व नूरणः सर्वमिदं त्वत्त्वदितो वहामि।
यन्मदिमे बिभ्यति तन्म एकं ते मे अक्षन्नहमु ताननुक्षम्॥ २१॥

कहीं व्याघ्र हैं, कहीं भेड़िये हैं, कहीं मेष हैं। इन सबको सृष्टि-क्रम से धारण करता हूँ। व्याघ्र से भेड़िये भय खाते हैं, भेड़िये से मेष भय खाते हैं; किन्तु व्याघ्रादि भी जिससे डरते हैं, वह मैं हूँ। मैं उन सब में समान रूप से विद्यमान हूँ। वे मुझे नहीं खा सकते; अपितु मैं उनको निश्चय ही खा जाता हूँ॥ २१॥

यत्तप्यथा बहुधा मे पुरा चित्तन्नु भुवेऽहमुरणो बोभुवे।
ऋतस्य पन्थामसि हि प्रपन्नोऽयसे स मे सत्यमिदेकमेहि॥ २२॥

तुमने जो मेरे लिए पहले बहुत तप किया है, इसी कारण तुम्हारी सत्ता के लिए, ज्ञान से तुम्हारे ही स्वरूप की प्राप्ति के लिए मैं मेष हुआ हूँ। अब ब्रह्म की प्राप्ति के लिए सत्य के मार्ग को प्राप्त हुए वह तुम मेरे

एकमात्र सत्य को प्राप्त हुए हो न कि किसी सांसारिक फल भोग को। मैं ही बन्धनरहित ज्योतिस्वरूप अमृतरूप हूँ॥ २२॥

अहं ज्योतिरहममृतं विनद्धिरहं जातं जनि जनिष्यमाणम्।
अहं त्वमहमहं त्वमिन्नु त्वमहं चक्ष्व विचिकित्सीर्म ऋज्वा॥ २३॥

मैं ही पैदा हुआ, हो रहा और होऊँगा। अत: हे मेधातिथे! मैं और तू दो नहीं हैं, मैं ही तू है तथा तू ही मैं हूँ। मैं दृश्यमान हूँ, तू मेरा प्रतिबिम्ब है। यदि तू दृश्यमान है, तो मैं तेरा प्रतिबिम्ब हूँ। तेरी-मेरी सत्ता एक ही है। तू मुझसे भिन्न नहीं तथा मैं तुझसे भिन्न नहीं, ऐसा निश्चय जान। मैं अब्रह्मज्ञ हूँ, ऐसा संशय मन में मत ला॥२३॥

विश्वशास्ता विधरणो विश्वरूपो रुद्रः प्रणीती तमनः प्रजापतिः।
हंसो विशोको अजरः पुराण ऋतीयमानो अहमस्मि नाम॥ २४॥

मैं विश्व का शासन करने वाला, विश्व को धारण करने वाला, विश्वरूप रुद्र, जगत् का प्रणेता अन्तर्यामी स्वरूप से सब में विद्यमान, यमरूप में दण्ड विधान करने वाला प्रजापति हूँ। हंसवत् उचित-अनुचित का विवेचन करने वाला, सर्वज्ञ, घृणा भाव से निर्लेप हुआ, शोकरहित, जरारहित, सबसे पूर्व सत्रूप में विद्यमान मैं ही हूँ॥ २४॥

अहमस्मि जरिता सर्वतोमुखः पर्यारणः परमेष्ठी नृचक्षाः।
अहं विष्वङ्ङहमस्मि प्रसत्वानहमेकोऽस्मि यदिदं नु किं च॥२५॥

मैं ही यजमान हूँ, मैं ही सर्वतोमुख, व्यापक परमेष्ठी तथा साक्षी हूँ। मैं अखिल ब्रह्माण्ड में व्यापक हुआ सबके कर्मफलों का साक्षी हूँ। यह जो कुछ भी दृश्यमान जगत् है, वह मैं अकेला ही हूँ॥ २५॥

॥ इति बाष्कलमन्त्रोपनिषत्समाप्ता॥

॥ बिल्वोपनिषद्॥

॥ शान्तिपाठः ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः .... इति शान्तिः ॥ (द्रष्टव्य- अथर्वशिखोपनिषद्)

अथ वामदेवः परमेश्वरं सृष्टिस्थितिलयकारणमुमासहितं स्वशिरसा प्रणम्येति होवाच। अधीहि भगवन् सर्वविद्यां सर्वरहस्यवरिष्ठां सदा सद्भिः पूज्यमानां निगूढाम्। कया च पूजया सर्वपापं व्यपोह्य परात्परं शिवसायुज्यमाप्नोति? केनैकेन वस्तुना मुक्तो भवति? तं होवाच भगवान् सदाशिवः।

वामदेव ऋषि सृष्टि, स्थिति एवं लय के कारणभूत परमेश्वर को उमासहित सिर से प्रणाम करके बोले— भगवन्! सब विद्याओं में श्रेष्ठ, सब रहस्यों में वरिष्ठ, सदा सज्जनों से पूजित गूढ़तम विद्या का उपदेश कीजिए। किस पूजा से सब पापों से छूटकर परात्पर शिव का सायुज्य प्राप्त करता है ? किस एक वस्तु से मुक्त होता है ? तब भगवान् शिव ने इस प्रकार उपदेश किया।

न वक्तव्यं न वक्तव्यं न वक्तव्यं कदाचन। मत्स्वरूपस्त्वयं ज्ञेयो बिल्ववृक्षो विधानतः। एकेन बिल्वपत्रेण संतुष्टोऽस्मि महामुने। इति ब्रुवन्तं परमेश्वरं पुनः प्रणम्येति होवाच॥ ॥१॥

देखो, कभी यह रहस्य किसी श्रद्धारहित नास्तिक से मत कहना। यह बिल्ववृक्ष तो विधान से मेरा स्वरूप ही है, ऐसा समझना चाहिए। हे महामुने! मैं तो एक बिल्वपत्र से ही सन्तुष्ट हो जाता हूँ। यह श्रवणकर सदाशिव को प्रणाम करके मुनि फिर बोले- ॥ १ ॥

भगवन् सर्वलोकेश सत्यज्ञानादिलक्षण। कथं पूजा प्रकर्तव्या तां वदस्व दयानिधे। इति पुनः पृच्छन्तं वामदेवमालिङ्ग्येति होवाच॥ २॥

सब लोकों के ईश्वर सत्य ज्ञानादि लक्षणों से युक्त हे भगवन्! कृपा करके यह बताने का कष्ट करें कि आपकी पूजा कैसे करनी चाहिए ? इस प्रकार पूछते हुए वामदेव को आलिंगन करके सदाशिव ने (पुनः) उपदेश किया॥ २॥

बुद्धिमांस्त्वमिति ज्ञात्वा वक्ष्यामि मुनिसत्तम। मम प्रियेण बिल्वेन त्वं कुरुष्व मदर्चनम्। द्रव्याणामुत्तमैर्लोके मम पूजाविधौ तव। पत्रपुष्पाक्षतैर्दिव्यैर्बिल्वपत्रैः समर्चय॥ ३॥

हे श्रेष्ठ महामुने! तुम बुद्धिमान् हो। अतः तुम्हें बताता हूँ। मेरे प्रिय बिल्वपत्रों से मेरी पूजा करो। मेरी पूजा अन्य उत्तम द्रव्यों की अपेक्षा पत्र, पुष्प, अक्षत और दिव्य बिल्वपत्रों से करो॥ ३॥

बिल्वपत्रं विना पूजा व्यर्था भवति सर्वदा। मम रूपमिति ज्ञेयं सर्वरूपं तदेव हि॥ प्रातः स्नात्वा विधानेन सन्ध्याकर्म समाप्य च। भूतिरुद्राक्षभरण उदीचीं दिशमाश्रयेत्॥ सद्योजातादिभिर्मन्त्रैर्नमस्कृत्य पुनःपुनः। प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा शिवरूपमिति स्फुटम्॥ देवीं ध्यायेत्तथा वृक्षे विष्णुरूपं च सर्वदा। ब्रह्मरूपं च विज्ञेयं सर्वरूपं विभावयेत्॥ ४॥

बिल्वपत्रों के बिना सारी पूजा व्यर्थ होती है। बिल्वपत्र मानो मेरा रूप ही है, वही सर्वरूप भी है। प्रात:काल स्नान करके विधिपूर्वक सन्ध्या वन्दन करके, भस्म और रुद्राक्ष धारण किये उत्तर दिशा की ओर अभिमुख हो **'सद्योजात'** इत्यादि मन्त्रों से बार-बार नमस्कार करते हुए तीन प्रदक्षिणा करके शिवरूप को स्पष्टरूप से देखते हुए देवी का ध्यान करे तथा वृक्ष पर विष्णुरूप, ब्रह्मरूप का तथा सर्वरूप की भाव करे॥ ४॥

सद्योजातादि मंत्र इस प्रकार हैं—

१- सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः। भवे भवे नातिभवे भवस्व माम् भवोद्भवाय नमः।

२- तत्पुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ।

३- वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः रुद्रायनमः कालायनमः बलविकरणाय नमो बलप्रमथाय नमः दमनाय मनोन्मनाय नमः ।

४- अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्योघोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वभूतेभ्यो नमो नमः ।

५- ईशानः सर्व विधानां ईश्वरः सर्व भूतानाम् ब्रह्माधिपतिब्रह्मोधिपतिः ब्रह्मा शिवोमऽस्तु सदा शिवोम् । (रुद्राष्टाध्यायी शान्त्यध्यायः)

वामदक्षिणमध्यस्थं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्। इन्द्रादयश्च यक्षान्ता वृन्तभागे व्यवस्थिताः॥ पृष्ठभागेऽमृतं यस्मादर्चयेन्मम तुष्टये। उत्तानबिल्वपत्रं च यः कुर्यान्मम मस्तके॥ मम सायुज्यमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा। त्रिमूर्तिस्त्रिगुणं बैल्वमग्निरूपं तथैव च। ब्रह्मरूपं कलारूपं वेदरूपं महामुने॥ पुरातनोऽहं पुरुषोऽहमीशो हिरण्मयोऽहं शिवरूपमस्मि। सबिल्वरूपं सगुणात्मरूपं त्रिमूर्तिरूपं शिवरूपमस्मि॥ पृष्ठभागेऽमृतं न्यस्तं देवैर्ब्रह्मादिभिः पुरा। उत्तानबिल्वपत्रेण पूजयेत् सर्वसिद्धये॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन बिल्वपत्रैः सदार्चय। बिल्वपत्रं विना वस्तु नास्ति किंचित्तवानघ॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन बिल्वपत्रैः सदार्चय॥ ५॥

बाएँ दाएँ एवं बीच में ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव की भावना करे तथा इन्द्रादि देवता और यक्षों की वृन्तभाग (डण्ठल) में भावना करे। पृष्ठभाग में अमृत होता है, अत: मेरी प्रसन्नता के लिए बिल्वपत्रों से मेरा अर्चन करे। जो भक्त उत्तान उल्टे बिल्व पत्र को (वृन्त वाला भाग ऊपर को करके) मेरे मस्तक पर रखता है, वह मेरा सायुज्य प्राप्त करता है। इसकी सत्यता में तनिक भी विचार नहीं करना चाहिए। हे महामुने! बिल्वपत्र की त्रिमूर्तिरूप, त्रिगुण (सत, रज, तम) रूप तथा अग्निरूप में भावना करो। यही ब्रह्मरूप, कलारूप और वेदरूप है। मैं पुरातन पुरुष हूँ। मैं ईश हूँ, ब्रह्मा हूँ, शिवरूप हूँ। बिल्व के साथ मेरा रूप त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) का सगुणरूप है, जो शिवत्व का परिचायक है। बिल्व के पृष्ठभाग में ब्रह्मादि देवताओं ने पूर्वकाल में अमृत को रखा था, अत: उत्तान

बिल्वपत्र से सर्वसिद्धि के लिए मेरी पूजा करनी चाहिए। बिल्वपत्र के बिना कोई वस्तु मुझे प्रसन्नतादायक नहीं है, अतः प्रयत्नपूर्वक बिल्वपत्र से पूजा करो॥ ५॥

[सूत्र है कि "शिवो भूत्वा शिवं यजेत्" अर्थात् साधक शिवस्वरूप होकर ही शिव का अर्चन करे। बिल्वपत्र, शिवरूप है। साधक भी यह भाव करे कि मैं भी बिल्वपत्ररूप हूँ। शिव भाव से शिव को अर्पित हो रहा हूँ। मैं भी त्रिगुणात्मक हूँ। तीनों गुणों का संतुलन ही शिव है। अतः संतुलित जीवन लेकर मैं शिव को समर्पित होऊँ। सृजन-पालन-संहाररूप क्रियाएँ मेरे भी जीवन में चल रही हैं। इन तीनों दलों को मेरा डण्ठल जैसा व्यक्तित्व बाँधे है। मेरे अन्दर यह तीनों क्रियाएँ शिव-कल्याणकारीरूप में चलें, जो मैं भी बिल्वरूप हो जाऊँ। इस शिवत्व की साधना में प्रत्यक्ष में कष्ट-कठिनाइयाँ भले अनुभव हों। इसका पृष्ठ भाग (छिपा हुआ भाग अर्थात् परिमाण) अमृतमय है। इसलिए मुझे बिल्वरूप होकर-शिवरूप होकर शिव को समर्पित होना है, इस भाव से ही शिव आराधना करे। जब साधक बिल्वरूप बनकर शिव को समर्पित होता है, तभी उस पर शिव प्रसन्न होते हैं। इसके सिवा अन्य पूजा विधान उन्हें रास नहीं आते]

उत्तानपत्रपूजां च यः कुर्यान्मम मस्तके॥ इह लोकेऽखिलं सौख्यं प्राप्नोत्यन्ते पुरे मम। तिष्ठत्येव महावीरः पुनर्जन्मविवर्जितः॥ सोदकैर्बिल्वपत्रैश्च यः कुर्यान्मम पूजनम्। मम सान्निध्यमाप्नोति प्रमथैः सह मोदते॥ सत्यं सत्यं पुनः सत्यमुद्धृत्य भुजमुच्यते। बिल्वपूजनतो लोके मत्पूजायाः परा न हि॥ त्रिसुपर्णं त्रिऋचां रूपं त्रिसुपर्णं त्रयीमयम्। त्रिगुणं त्रिजगन्मूर्तित्रयं शक्तित्रयं त्रिदृक्॥ कालत्रयं च सवनत्रयं लिङ्गत्रयं त्रिपात्। तेजस्त्रयमकारोकारमकार-प्रणवात्मकम्॥ देवेषु ब्राह्मणोऽहं हि त्रिसुपर्णमयाचितम्। मह्यं वै ब्राह्मणायेदं मया विज्ञसकामिकम्॥ दद्याद्ब्रह्मभ्रूणवीरहत्यायाश्चान्यपातकैः। मुक्तोऽखण्डानन्द बोधो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥ ६॥

जो भक्त उत्तान बिल्व पत्र से मेरे मस्तक पर पूजा करता है, वह इस लोक में सारा सुख प्राप्त करता है तथा अन्त में मेरे लोक को प्राप्त करता हुआ, वह महावीर वहीं स्थित रहता है। उसका पुनर्जन्म नहीं होता। जो जल समेत बिल्वपत्रों से मेरा पूजन करता है, वह गणों के साथ मेरे लोक में प्रसन्नतापूर्वक निवास करता है। मैं भुजा उठाकर सत्य घोषणा करता हूँ कि बिल्व पूजा से श्रेष्ठ मेरी कोई पूजा नहीं है। बिल्व (तीन सुपर्ण वाला) त्रिऋचारूप है, ऋग्यजु- सामस्वरूप है। त्रिगुण (सत्त्व, रज, तम) रूप है। त्रिजगत् (स्वर्ग-मर्त्य-पाताल) रूप है। मूर्तित्रय (ब्रह्मा-विष्णु-महेश) रूप है। शक्तित्रय (सरस्वती-लक्ष्मी-पार्वती) (आध्यात्मिक-आधिदैविक-आधिभौतिक) रूप है। त्रिदृक् (सृष्टि-स्थिति-विनाश)(स्वार्थ-परमार्थ-निष्काम) रूप है। कालत्रय (भूत-वर्तमान-भविष्यत्) रूप है। सवनत्रय (प्रातः-मध्याह्न-सायं) रूप है। लिङ्गत्रय (पुल्लिंग-स्त्रीलिंग-नपुंसक) रूप है। त्रिपात् (वामन के तीन डग) स्वरूप है। तेजस्त्रयम्-तीन तेज (तेजस्-वर्चस्-ओजस्) (अग्नि-विद्युत्-सूर्य) रूप है। अकार-उकार-मकार से वह प्रणवरूप है। देवों में मैं ब्राह्मण हूँ। जो मुझे बिना माँगे बिल्वपत्र प्रदान करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओं का फल पाता है। ब्रह्महत्या भ्रूणहत्या-वीरहत्या अथवा अन्य पातकों से मुक्त हो जाता है। अखण्ड आनन्द ज्ञानस्वरूप हुआ ब्रह्मरूप को प्राप्त होता है॥ ६॥

त्रिसुपर्णोपनिषदः पठनात्पङ्क्तिपावनः। बोधको ह्या सहस्त्राद्वै पङ्क्तिं पावयते ध्रुवम्॥ त्रिसुपर्णश्रुतिर्ह्येषा निष्कृतौ त्रिदले रता। श्रद्धत्स्व विद्वन्नाद्यं तदिति वेदानुशासनम्॥ अखण्डानन्दसंबोधमयो यस्मादहं मुने। विन्यस्तामृतभागेन सुपर्णेनावकुण्ठय॥ अमृतं मोक्षवाचन्तु तेनास्मदवकुण्ठनात्। प्राप्येते भोगमोक्षौ हि स्थित्यन्ते मदनुग्रहात्॥ उत्तानभागपर्णेन मूर्ध्नि मे न्युब्जमर्पयेत्। मोक्षेऽमृतावकुण्ठोऽहं भवेयं तव कामधुक्॥ येन केन प्रकारेण बिल्वकेनापि मां यज। तीर्थदानतपोयोगस्वाध्याया नैव तत्समाः॥ बिल्वं विधानतः स्थाप्य वर्धयित्वा च तद्दलैः। यः पूजयति मां भक्त्या सोऽहमेव न संशयः॥ ७॥

इस बिल्वोपनिषद् को पढ़ने वाला, समझने वाला सहस्त्र वर्षों तक अपनी अगली-पिछली पीढ़ियों को निश्चय ही पवित्र करता है। यह त्रिसुपर्ण श्रुति इसके तीन दलों में विद्यमान है। इसकी उद्धार क्षमता (पापमोचनक्षमता) में श्रद्धा करो। हे विद्वान्! ॐ तत् ही वेद का अनुशासन है। हे मनु, क्योंकि मैं अखण्डानन्द बोधस्वरूप हूँ। अतः जिसके पृष्ठभाग में अमृत रखा हुआ है, उस सुपर्ण (बिल्व) से मेरा अवगुण्ठन करो (मुझे ढको)। ऐसा करने से मोक्ष तथा अमृत वाणी की प्राप्ति होती है। जीवनपर्यन्त भोगों की तथा अन्त में मोक्ष की प्राप्ति मेरी कृपा से होती है। उत्तान भाग पर्ण को मेरे मस्तक पर झुका हुआ रखने से मैं उनके लिए मोक्ष और अमृतरूप काम को निर्बाधरूप से प्रदान करने वाला हूँ। जैसे भी हो छोटे बिल्व से भी मेरी पूजा करो। इसके समान तीर्थ-दान, तप-योग, स्वाध्याय कुछ भी नहीं है। बिल्व वृक्ष को विधि-विधान से स्थापित करके, बढ़ाकर, उसके दलों से जो मुझे भक्तिपूर्वक पूजता है, वह मेरा ही स्वरूप है, इसमें संशय नहीं॥ ७॥

य एतदधीते ब्रह्महाऽब्रह्महा भवति। स्वर्णस्तेय्यस्तेयी भवति। सुरापाय्यपायी भवति। गुरुवधूगाम्यगामी भवति। महापातकोपपातकेभ्यः पूतो भवति। न च पुनरावर्तते। न च पुनरावर्तते। न च पुनरावर्तते। ॐ सत्यम्॥

जो इसे पढ़ता (अध्ययन) करता है, वह ब्रह्महत्या (के पाप) से मुक्त होता है। स्वर्ण चोरी के पाप से, सुरापान के पाप से, गुरुपत्नीगामी होने के पाप से तथा अन्य महापातकों से पवित्र हो जाता है। उसका पुनरागमन नहीं होता। ॐ सत्यम् अर्थात् यह सत्य है॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः .... इति शान्तिः॥

॥ इति बिल्वोपनिषत्समाप्ता॥

॥ बृहज्जाबालोपनिषद्॥

॥ शान्तिपाठः ॥

॥ ॐ भद्रं कर्णेभिः .... इति शान्तिः ॥ (द्रष्टव्य- अथर्वशिखोपनिषद्)

॥ अथ प्रथमं ब्राह्मणम् ॥

ॐ अपो वा इदमासीत्सलिलमेव ॥ स प्रजापतिरेकः पुष्करपर्णे समभवत् ॥ तस्यान्तर्मनसि कामः समवर्तत इदं सृजेयमिति। तस्माद्यत्पुरुषो मनसाभिगच्छति। तद्वाचा वदति। तत्कर्मणा करोति। तदेषाभ्यनूक्ता। कामस्तदग्रे समवर्तताधि। मनसा रेतः प्रथमं यदासीत्। सतो बन्धुमसति निरविन्दन्। हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषेति। उपैनं तदुपनमति। यत्कामो भवति। य एवं वेद। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा स एतं भुसुण्डः कालाग्निरुद्रमगमदागत्य भो विभूतेर्माहात्म्यं ब्रूहीति। तथेति प्रत्यवोचत् भुसुण्डं वक्ष्यमाणं किमिति विभूतिरुद्राक्षयोर्माहात्म्यं बभाणेति। आदावेव पैप्पलादेन सहोक्तमिति। तत्फलश्रुतिरिति। तस्योर्ध्वं किं वदामेति। बृहज्जाबालाभिधां मुक्तिश्रुतिं ममोपदेशं कुरुष्वेति। ॐ तथेति। सद्योजातात्पृथिवी। तस्याः स्यान्निवृत्तिः। तस्याः कपिलवर्णानन्दा। तद्गोमयेन विभूतिर्जाता। वामदेवादुदकम्। तस्मात्प्रतिष्ठा। तस्याः कृष्णवर्णा भद्रा। तद्गोमयेन भसितं जातम्। अघोराद्वह्निः। तस्माद्विद्या। तस्या रक्तवर्णा सुरभिः। तद्गोमयेन भस्म जातम्। तत्पुरुषाद्वायुः। तस्माच्छान्तिः। तस्याः श्वेतवर्णा सुशीला। तस्या गोमयेन क्षारं जातम्। ईशानादाकाशम्। तस्माच्छान्त्यतीता। तस्याश्चित्रवर्णा सुमनाः। तद्गोमयेन रक्षा जाता। विभूतिर्भसितं भस्म क्षारं रक्षेति भस्मनो भवन्ति पञ्च नामानि। पञ्चभिर्नामभिर्भृशमैश्वर्यकारणाद्भूतिः। भस्म सर्वाघभक्षणात्। भासनाद्भसितम्। क्षारणादापदां क्षारम्। भूतप्रेतपिशाचब्रह्मराक्षसापस्मारभवभीतिभ्योऽभिरक्षणाद्रक्षेति ॥

(सृष्टि के पूर्व) यह जल या सलिल ही था। वह प्रजापति अकेला कमल पत्र पर (प्रकट) हुआ। उसके मन में इच्छा हुई कि इसे (सृष्टि को) बनाऊँ। इस प्रकार वह पुरुष जो मन से सोचता है, वही वाणी से बोलता है और वैसा ही कर्म करता है। जैसा कि कहा गया है— सर्वप्रथम उसमें कामना उत्पन्न हुई। मन से सर्वप्रथम धातु या वीर्य (प्रकट हुआ) था। सत् (अस्तित्व) से बन्धु (सहकार भाव) असत् में प्राप्त हुआ। कविगण कामना को मन में (हृदय में) देखते हैं, (वे) पास जाकर उन प्रजापति को प्रणाम करते हैं। जो काम (कामना) को इस प्रकार जानता है, वह प्रजापति पद को प्राप्त करता है। उसने (प्रजापति ने) तपस्या की। तपस्या करके वे भुसुण्ड प्रजापति प्रलयाग्नि के समान भीषण रुद्र के पास पहुँचे। पहुँचकर (कहा)-विभूति (भस्म) की महत्ता बताइए (ऐसा पूछा)। उन्होंने कहा- ठीक है। तब भुसुण्ड प्रजापति ने पूछा- विभूति और रुद्राक्ष का माहात्म्य क्या है? सो बताइए। इस

पर (उन कालाग्नि रुद्र ने कहा) पहले (आदि में) ही पैप्पलाद के साथ कहा था- वही फलश्रुति है, उसके बाद क्या कहें? (तब भुसुण्ड नामक प्रजापति ने कहा–) बृहज्जाबाल नामक मुक्ति की श्रुति (या वेद) का मुझे उपदेश (या ज्ञान) दीजिए।

ठीक है। 'सद्योजात' से पृथ्वी, उससे निवृत्ति, उससे कपिल (पीले) रंग की नन्दा (गाय), उसके गोबर से विभूति (भस्म तैयार) हुई। वामदेव से जल हुआ। उस जल से प्रतिष्ठा अथवा पृथ्वी, उससे काले रंग की भद्रा गाय तथा उसके गोबर से भस्म उत्पन्न हुई। यज्ञ में घी डालने से अग्नि, अग्नि से विद्या, उससे लाल रंग की सुरभि (गाय) तथा उसके गोबर से भस्म तैयार हुई। उस पुरुष (तत्पुरुष) से वायु, उससे शान्ति, उससे श्वेत वर्ण की सुशीला गाय तथा उसके गोबर से क्षार या राख उत्पन्न हुई। ईशान (शिव, सूर्य या विष्णु) से आकाश हुआ। उससे शान्ति, उससे रंगबिरंगी सुमना गाय तथा उसके गोबर से रक्षा-भस्म उत्पन्न हुई। इस प्रकार भस्म के पाँच नाम हुए– विभूति, भसित, भस्म, क्षार और रक्षा। इन पाँच नामों में से विशिष्ट ऐश्वर्य के कारण भूति (विभूति) कहलाई। सब पापों के भक्षण के कारण भस्म, चमकने के कारण भसित, आपदाओं को नष्ट करने के कारण क्षार तथा भूत, प्रेत, पिशाच, ब्रह्मराक्षस, अपस्मार (मिर्गी) आदि सांसारिक भयों से पूरी तरह रक्षा करने के कारण रक्षा कहलाती है॥ १॥

॥ अथ द्वितीयं ब्राह्मणम् ॥

अथ भुसुण्डः कालाग्निरुद्रमग्नीषोमात्मकं भस्मस्नानविधिं पप्रच्छ। अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव। एवं भस्म सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥ अग्नीषोमात्मकं विश्वमित्यग्निरित्याचक्षते। रौद्री घोरा या तैजसी तनूः। सोमः शक्त्यमृतमयः शक्तिकरी तनूः। अमृतं यत्प्रतिष्ठा सा तेजोविद्या कला स्वयम्। स्थूलसूक्ष्मेषु भूतेषु त एव रसतेजसी॥ १॥

तब भुसुण्ड ने कालाग्निरुद्र से अग्नीषोममय भस्मस्नान की विधि पूछी। जिस प्रकार अकेला अग्नि भुवन (जिस किसी आश्रय) में प्रविष्ट हुआ और कई रूप—प्रतिरूप वाला हो गया। उसी प्रकार भस्म सभी भूतों का अन्तरात्मा है और बाहर उसके कई रूप-प्रतिरूप हैं। पूरा विश्व अग्नीषोमात्मक (अग्नि और सोम से युक्त) है, इसलिए अग्नि कहलाता है। उसके शरीर रौद्र, घोर और तेजस् होते हैं। अमृतमय शक्ति प्रदान करने वाला शरीर सोम है। जो अमृत की प्रतिष्ठा है, वह स्वयं तेजोविद्या कला है। स्थूल एवं सूक्ष्म भूतों में वही रस एवं तेज है॥ १॥

द्विविधा तेजसो वृत्तिः सूर्यात्मा चानलात्मिका। तथैव रसशक्तिश्च सोमात्मा चानलात्मिका॥ २॥

तेज की दो प्रकार की वृत्ति है– सूर्यात्मिका और अनलात्मिका (अग्निपरक)। उसी प्रकार रसशक्ति सोमात्मिका और अनलात्मिका होती है॥ २॥

वैद्युदादिमयं तेजो मधुरादिमयो रसः। तेजोरसविभेदैस्तु वृतमेतच्चराचरम्॥ ३॥

तेज विद्युत् आदि से सम्पन्न होता है और रस मधुर आदि से सम्पन्न होता है। तेज और रस के भेदोपभेदों से यह चराचर (जगत्) सम्पन्न हुआ॥ ३॥

अग्नेरमृतनिष्पत्तिरमृतेनाग्निरेधते। अत एव हविः क्लृप्तमग्नीषोमात्मकं जगत्॥ ४॥

अग्नि से अमृत उत्पन्न हुआ और अमृत से अग्नि बढ़ती है। इसलिए (अग्नीषोम रूपी) हवि से बढ़ने वाला यह जगत् अग्नि और सोमात्मक है॥ ४॥

ऊर्ध्वशक्तिमयः सोम अधःशक्तिमयोऽनलः। ताभ्यां संपुटितं तस्माच्छश्वद्विश्वमिदं जगत्॥ ५॥

सोम ऊर्ध्वशक्ति (आकाश में स्थित शक्ति) से सम्पन्न है और अनल अधःशक्ति (धरती पर स्थित शक्ति) वाला होता है। उन दोनों से आवृत या ढका होने से यह सारा संसार शाश्वत है॥ ५॥

अग्नेरूर्ध्वं भवत्येषा यावत्सौम्यं परामृतम्। यावदग्न्यात्मकं सौम्यममृतं विसृजत्यधः॥ ६॥

जब तक परामृत सौम्य रहता है, तब तक यह अग्नि से ऊपर होता है। जब तक सौम्य अग्निमय होता है, तब तक अमृत का नीचे विसर्जन करता है॥ ६॥

अत एव हि कालाग्निरधस्ताच्छक्तिरूर्ध्वगा। यावदादहनश्चोर्ध्वमधस्तात्पावनं भवेत्॥ ७॥

इसलिए कालाग्नि नीचे होती है और शक्ति की दिशा ऊपर होती है। जब तक ऊपर का दहन होता है, तब तक नीचे का पवित्र होता है॥ ७॥

आधारशक्त्यावधृतः कालाग्निरयमूर्ध्वगः। तथैव निम्नगः सोमः शिवशक्तिपदास्पदः॥ ८॥

ऊर्ध्वगामी इस कालाग्नि को आधार शक्ति ने धारण कर रखा है। उसी प्रकार अधोगामी सोम शिव-शक्ति का पदस्थान रहता है॥ ८॥

शिवश्चोर्ध्वमयः शक्तिरूर्ध्वशक्तिमयः शिवः। तदित्थं शिवशक्तिभ्यां नाव्याप्तमिह किंचन॥ ९

शिव ऊर्ध्वमय शक्ति है और ऊर्ध्वशक्तिमय शिव है। सो इस प्रकार शिव और शक्ति से कुछ अव्याप्त नहीं है अर्थात् सर्वत्र शिव और शक्ति ही विद्यमान है॥ ९॥

असकृच्चाग्निना दग्धं जगत्तद्भस्मसात्कृतम्। अग्नेर्वीर्यमिदं प्राहुस्तद्वीर्यं भस्म यत्ततः॥ १०॥

जगत् अग्नि से अनेक बार जलकर भस्मीभूत हुआ। इसे अग्नि का वीर्य कहा गया। जो भस्म है, वही वीर्य है॥ १०॥

यश्चेत्थं भस्मसद्भावं ज्ञात्वाभिस्नाति भस्मना। अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैर्दग्धपापः स मुच्यते॥ ११॥

इस प्रकार अग्नि इत्यादि मन्त्रों से जो भस्म के अस्तित्व को जानकर भस्म से स्नान करता है। उसके पाप जल जाते हैं और वह मुक्त हो जाता है॥ ११॥

अग्नेर्वीर्यं च तद्भस्म सोमेनाप्लावितं पुनः। अयोगयुक्त्या प्रकृतेरधिकाराय कल्पते॥ १२॥

वह भस्म, जो अग्नि का वीर्य है, सोम से पुन: आप्लावित या गीला होता है। अयोगयुक्ति से प्रकृति के अधिकार के लिए माना जाता है॥ १२॥

योगयुक्त्या तु तद्भस्म प्लाव्यमानं समंततः। शाक्तेनामृतवर्षेण ह्यधिकारान्निवर्तते॥ १३॥

वह भस्म योग–युक्ति से चारों ओर से आप्लावित हो जाती है। शक्ति की अमृत वर्षा के द्वारा अधिकार (मन्दबुद्धिता) से निवृत्त हो जाता है॥ १३॥

अतो मृत्युंजयायेत्थममृतप्लावनं सताम्। शिवशक्त्यमृतस्पर्शे लब्ध एव कुतो मृतिः॥ १४॥

इसलिए मृत्युंजय के लिए इस प्रकार अमृत की बाढ़ (प्लावन) आना, शिव–शक्ति के अमृत स्पर्श में (जीवन) प्राप्ति ही है, मरण कहाँ?॥ १४॥

यो वेद गहनं गुह्यं पावनं च ततोदितम्। अग्नीषोमपुटं कृत्वा न स भूयोऽभिजायते॥ १५॥

जो इस बताये गये गहन, गूढ़, पवित्र (रहस्य) को जानता है, अग्नि तथा सोम का पुट करके वह पुन: जन्म नहीं लेता॥ १५॥

शिवाग्निना तनुं दग्ध्वा शक्तिसोमामृतेन यः। प्लावयेद्योगमार्गेण सोऽमृतत्वाय कल्पते सोऽमृतत्वाय कल्पत इति॥ १६॥

शिव—अग्नि से शरीर जलाकर शक्तिरूप सोमामृत से जो योग मार्ग से आप्लावित कर दे, वह अमृतत्व के योग्य होता है, वह अमृतत्व के योग्य होता है॥ १६॥

॥ अथ तृतीयं ब्राह्मणम्॥

अथ भुसुण्डः कालाग्निरुद्रं विभूतियोगमनुब्रूहीति स होवाच। विकटाङ्गामुन्मत्तां महाखला मलिनामशिवादिचिह्नान्वितां पुनर्धेनुं कृशाङ्गां वत्सहीनामशान्तामदुग्धदोहिनीं निरिन्द्रियां जग्धतृणां केशचेलास्थिभक्षिणीं संधिनीं नवप्रसूतां रोगार्तां गां विहाय प्रशस्तगोमयमाहरेद्गोमयं स्वस्थं ग्राह्यं शुभे स्थाने वा पतितमपरित्यज्यात ऊर्ध्वं मर्दयेद्द्रव्येन गोमयग्रहणं कपिला वा धवला वा अलाभे तदन्या गौः स्याद्दोषवर्जिता कपिलागोभस्मोक्तं लब्धं गोभस्म नो चेदन्यगोक्षारं यत्र क्वापि स्थितं च यत्तन्न हि धार्यं संस्कारसहितं धार्यम्॥

इसके बाद भुसुण्ड ने कालाग्निरुद्र से कहा—विभूति योग बताइये। उन्होंने कहा— ऐसी गाय को छोड़ दें जिसके अङ्ग विकट (कुरूप) हों, जो उन्मत्त या पागल हो, बड़ी दुष्ट हो, मलिन हो, अकल्याणकारी चिह्नों से युक्त हो। जिसके अंग पतले हों, जो बिना बछड़े की हो, जो अशान्त या चंचल हो, जो दूध न दुहने दे, इन्द्रियरहित, जिसने घास को खा लिया हो, केश, कपड़े, हड्डी आदि खाने वाली हो। गर्मायी हुई या असमय दुही जाने वाली,

नवप्रसूता तथा रोग से ग्रस्त गाय को छोड़कर (अन्य गाय का) प्रशस्त गोबर लाया जाय। वह गोबर स्वस्थ और ग्राह्य हो। शुभ स्थान पर गिरा हो, वह ग्राह्य है। उसके बाद गोमूत्र, दूध, दही आदि गव्य से मसलें। गोबर लेने में ध्यान रखें या तो वह कपिला (पीली) गाय का हो या धवला (सफेद) का हो। ये नहीं मिलें, तो अन्य गाय (का गोबर लेने) में दोष नहीं। कपिला गाय प्राप्त गोभस्म नहीं हो, तो अन्य गाय-जहाँ- कहीं भी स्थित हो, जो कहीं धारण योग्य न हो (उसे भी) संस्कारसहित धारण कर लेना चाहिए।

तत्रैते श्लोका भवन्ति– विद्या शक्तिः समस्तानां शक्तिरित्यभिधीयते। गुणत्रयाश्रया विद्या सा विद्या च तदाश्रया॥ १ ॥

इस विषय में ये श्लोक हैं— सबकी विद्या-शक्ति ही शक्ति कहलाती है। तीनों गुणों का आश्रय विद्या है और विद्या का आश्रय गुण है॥ १ ॥

गुणत्रयमिदं धेनुर्विद्याऽभूद्गोमयं शुभम्। मूत्रं चोपनिषत्प्रोक्तं कुर्याद्भस्म ततः परम्॥ २ ॥

ये तीनों गुण धेनु है और विद्या शुभ गोबर है। मूत्र उपनिषत् है। इसके बाद (यह तथ्य समझकर) भस्म तैयार करें॥ २ ॥

वत्सस्तु स्मृतयश्चास्यास्तत्संभूतं तु गोमयम्। आगाव इति मन्त्रेण धेनुं तत्राभिमन्त्रयेत्॥३ ॥

इसका वत्स (बछड़ा) स्मृतियाँ हैं। उससे गोबर उत्पन्न हुआ। 'आ गावो अग्रमन्नुत भद्रमक्रन्' आदि मन्त्र से धेनु को अभिमंत्रित करें॥ ३ ॥

गावो भगो गाव इति प्राशयेत्तर्पणं जलम्। उपोष्य च चतुर्दश्यां शुक्ले कृष्णेऽथवा व्रती॥ ४॥
परेद्युः प्रातरुत्थाय शुचिर्भूत्वा समाहितः। कृतस्नानो धौतवस्त्रः पयोर्ध्वं च सृजेच्च गाम्॥ ५ ॥

'गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छात्' इस मन्त्र से तर्पण का जल प्रदान करें। शुक्लपक्ष या कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को उपवास करके व्रती दूसरे दिन प्रातः उठकर तल्लीनता से पवित्र होकर स्नान करके धोती (धुला वस्त्र) पहनकर गाय को पानी के लिए छोड़े॥ ४-५ ॥

उत्थाप्य गां प्रयत्नेन गायत्र्या मूत्रमाहरेत्। सौवर्णे राजते ताम्रे धारयेन्मृण्मये घटे॥ ६ ॥
पौष्करेऽथ पलाशे वा पात्रे गोशृङ्ग एव वा । आदधीत हि गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम्॥ ७॥
आभूमिपातं गृह्णीयात्पात्रे पूर्वोदिते गृही। गोमयं शोधयेद्विद्वाञ्छ्रीर्मे भजतु मन्त्रतः॥ ८ ॥

प्रयत्नसहित गाय को उठाकर गायत्री (मन्त्र) के द्वारा गोमूत्र सोने, चाँदी, ताँबे या मिट्टी के घड़े में अथवा नीलकमल या पलाश के पात्र में अथवा गाय के सींग में ले लें। गोमूत्र लेकर गन्धद्वारा (मन्त्र से) गोबर पूर्वोक्त पात्र में ही गृहस्थ बिना भूमि पर गिरा हुआ ले लें। तब विद्वान् 'श्रीर्मे भजतु' मन्त्र से गोबर को शुद्ध कर लें॥ ६-८ ॥

अलक्ष्मीर्म इति मन्त्रेण गोमयं धान्यवर्जितम्। सं त्वा सिञ्चामि मन्त्रेण गोमूत्रं गोमये क्षिपेत्॥

'अलक्ष्मीर्मे' इस मन्त्र से धान्यरहित गोबर को 'सं त्वा सिञ्चामि' इस मन्त्र से गोबर पर गोमूत्र के छींटे लगाएँ॥ ९ ॥

पञ्चानां त्वेति मन्त्रेण पिण्डानां च चतुर्दश। कुर्यात्संशोध्य किरणैः सौरकैराहरेत्ततः॥ १०॥

'पंचानां तु' इस मंत्र से चौदह पिण्ड बनाएँ। सूर्य किरणों से शोधन कर उन्हें ले आएँ॥ १०॥

निदध्यादथ पूर्वोक्तपात्रे गोमयपिण्डकान्। स्वगृह्योक्तविधानेन प्रतिष्ठाप्याग्निमीजयेत्॥ ११॥

तब पूर्वोक्त पात्र में गोबर के पिण्डों को रख दें। स्वगृह्योक्त (अपने गृह्य सूत्रानुसार) विधान के साथ स्थापित की गई अग्नि को लगाएँ॥ ११॥

पिण्डांश्च निक्षिपेत्तत्र आद्यन्तं प्रणवेन तु। षडक्षरस्य सूक्तस्य व्याकृतस्य तथाक्षरैः॥ १२॥
स्वाहान्ते जुहुयात्तत्र वर्णदेवाय पिण्डकान्। आघारावाज्यभागौ च प्रक्षिपेव्द्याहृती: सुधीः॥ १३॥

(गोबर) पिण्डों को आदि और अन्त में ओम् के उच्चारण के साथ रखें। छः अक्षर के सूक्त के विकार अक्षरों से अन्त में स्वाहा करते हुए पिण्डों का वर्ण देव (अक्षर) के लिए हवन करें। यज्ञघृत और पिघले घी को (व्याहृति-भूः भुवः आदि-मन्त्र) पाठ करते सुधी (ज्ञानी) (अग्नि में) डालें॥ १२-१३॥

ततो निधनपतये त्रयोविंशज्जुहोति च। होतव्याः पञ्च ब्रह्माणि नमो हिरण्यबाहवे॥ १४॥

तब निधनपति यमराज को २३ आहुति दें। 'नमो हिरण्यबाहवे' के साथ ब्रह्म को पाँच आहुतियाँ दें॥ १४॥

इति सर्वाहुतीर्हुत्वा चतुर्थ्यन्तैश्च मन्त्रकैः। ऋतं सत्यं कद्रुद्राय यस्य वैकंकतीति च॥ १५॥ एतैश्च जुहुयाद्विद्वानना ज्ञातत्रयं तथा। व्याहृतीरथ हुत्वा च ततः स्विष्टकृतं हुनेत्॥ १६॥

इस प्रकार चतुर्थी लगाकर मंत्रों से आहुतियों द्वारा हवन करके-'ऋतं सत्यं कद्रुद्राय यस्य वैकंकतीति च' इनसे जानकार व्यक्ति हवियाँ दें। 'विद्वानना ज्ञातत्रयं' तथा व्याहृतियों से हवन करके 'स्विष्टकृत्' हवन करें॥ १५-१६॥

इध्मशेषं तु निर्वर्त्यपूर्णपात्रोदकं तथा। पूर्णमसीति यजुषा जलेनान्येन बृंहयेत्॥ १७॥ ब्राह्मणेष्वमृतमिति तज्जलं शिरसि क्षिपेत्। प्राच्यामिति दिशं लिङ्गैर्दिक्षु तोयं विनिक्षिपेत्॥ १८॥ ब्राह्मणे दक्षिणां दत्त्वा शान्त्यै पुलकमाहरेत्। आहरिष्यामि देवानां सर्वेषां कर्मगुप्तये॥ १९॥ जातवेदसमेनं त्वां पुलकैश्छादयाम्यहम्। मन्त्रेणानेन तं वह्निं पुलकैश्छादयेत्ततः॥ २०॥

इन्धन शेष रहे तब रुककर पात्र भर जल को 'पूर्णमसि' इत्यादि यजुर्वेद के मन्त्र के द्वारा अन्य जल से उसकी वृद्धि (छिड़काव) करें। 'ब्राह्मणेष्वमृतं' इत्यादि मंत्र से वह जल सिर पर छिड़कें। पूर्व आदि दिशाओं में पानी छिड़कें। ब्राह्मण दक्षिणा प्रदान कर शान्ति के लिए पुआ-पुरोडाश लाएँ। सब देवों के कर्म की रक्षा के लिए लाऊँगा (ऐसा कहे)। 'जातवेदसमेनं त्वां पुलकैश्छादयाम्यहम्' इस मन्त्र से उस अग्नि को उस पुरोडाश से ढँक दें॥ १७-२०॥

त्रिदिनं ज्वलनस्थित्यैछादनं पुलकैः स्मृतम्। ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः॥ २१॥

तीन दिन तक जलते रहने के लिए रोटों (पुरोडाश-रोटी का बड़ा रूप) से छादन (ढकने) की व्यवस्था है। (तत्पश्चात्) भक्तिपूर्वक ब्राह्मणों को भोजन करवाएँ, तब स्वयं मौन होकर भोजन करें॥ २१॥

भस्माधिक्यमभीप्सुस्तु अधिकं गोमयं हरेत्। दिनत्रयेण यदि वा एकस्मिन्दिवसेऽथवा॥ २२॥ तृतीये वा चतुर्थे वा प्रातः स्नात्वा सिताम्बरः। शुक्लयज्ञोपवीती च शुक्लमाल्यानुलेपनः॥ २३॥ शुक्लदन्तो भस्मदिग्धो मन्त्रेणानेन मन्त्रवित्। ॐ तद्ब्रह्मेति चोच्चार्य पौलकं भस्मसंत्यजेत्॥२४॥

जो अधिक भस्म चाहते हैं, वे अधिक गोबर लाएँ। तीन दिन में अथवा एक दिन में। तीसरे या चौथे दिन प्रात:काल स्नान कर श्वेत वस्त्र पहनकर श्वेत यज्ञोपवीत और श्वेत माला और श्वेत (चन्दन आदि) अनुलेप लगाकर श्वेत दाँत सम्पन्न, भस्म से सने हुए वे मन्त्रज्ञ इस मन्त्र 'ओम् तद्‌ब्रह्म' का उच्चारण कर रोट (रोटी का बड़ा रूप) और वह भस्म त्याग दें॥ २२-२४॥

तत्र चावाहनमुखानुपचारांस्तु षोडश। कुर्याद्व्याहृतिभिस्त्वेवं ततोऽग्निमुपसंहरेत् ॥ २५॥

तब आवाहन आदि सोलह उपचारों तथा व्याहृतियों के साथ अग्नि का (पूजन करके) उपसंहार करें॥ २५॥

अग्निर्भस्मेति मन्त्रेण गृह्णीयाद्भस्म चोत्तरम्। अग्निरित्यादिमन्त्रेण प्रमृज्य च ततः परम्॥ २६॥ संयोज्य गन्धसलिलैः कपिलामूत्रकेण वा । चन्द्रकुङ्कुमकाश्मीरमुशीरं चन्दनं तथा॥ २७॥ अगरुत्रितयं चैव चूर्णयित्वा तु सूक्ष्मतः। क्षिपेद्भस्मनि तच्चूर्णमोमिति ब्रह्ममन्त्रतः॥ २८॥

'अग्निर्भस्म' इत्यादि मंत्र से बाद में भस्म लें। तब 'अग्नि' इत्यादि मन्त्र से मसलकर गन्ध, सलिल, कपिला के मूत्र से मिलाकर चन्द्र या कपूर, कुंकुम, केसर, खस, चन्दन तीनों प्रकार का अगरु आदि का बारीक चूर्ण कर भस्म में 'ओम्' इस ब्रह्म मंत्र के साथ डाल दें॥ २६-२८॥

प्रणवेनाहरेद्विद्वान्बृहतो वटकानथ। अणोरणीयानिति हि मन्त्रेण च विचक्षणः॥ २९॥

ज्ञानीजन प्रणव मंत्र के साथ 'अणोरणीयान्' आदि विशिष्ट मन्त्र के साथ बड़ी बाटी लाएँ॥ २९॥

इत्थं भस्म सुसंपाद्य शुष्कमादाय मन्त्रवित्। प्रणवेन विमृज्याथ सप्तप्रणवमन्त्रितम् ॥ ३०॥

इस प्रकार भस्म सम्पन्न कर (बनाकर) मन्त्रज्ञ उस सूखी भस्म को सात ओम् से अभिमन्त्रित कर प्रणव द्वारा शरीर पर मसल लें॥ ३०॥

ईशानेति शिरोदेशं मुखं तत्पुरुषेण तु । ऊरुदेशमघोरेण गुह्यं वामेन मन्त्रयेत्॥ ३१॥ सद्यो जातेन वै पादान्सर्वाङ्गं प्रणवेन तु। तत उद्धूल्य सर्वाङ्गमापादतलमस्तकम्॥ ३२॥ आचम्य वसनं धौतं ततश्चैतत्प्रधारयेत्। पुनराचम्य कर्म स्वं कर्तुमर्हसि सत्तम॥ ३३॥

ईशान आदि मंत्र से सिर का भाग, तत्पुरुष मंत्र से मुख का भाग, अघोर से जाँघें, वाम से गुह्य को सद्योजात से पैरों को तथा प्रणव से सभी अंगों को अभिमन्त्रित करें। तब पैर से मस्तक तक सब अङ्गों को (भस्म से) धूसरित कर तथा आचमन कर श्वेत वस्त्र तथा भस्म धारण करें। हे पुरुष श्रेष्ठ! पुनः आचमन कर अपना सन्ध्या-वन्दन का कार्य सम्पन्न किया जा सकता है॥ ३१-३३॥

अथ चतुर्विधं भस्मकल्पम्। प्रथममनुकल्पम्। द्वितीयमुपकल्पम्। उपोपकल्पं तृतीयम्। अकल्पं चतुर्थम्। अग्निहोत्र समुद्भूतं विरजानलजमनुकल्पम्। वने शुष्कं शकृत्संगृह्य कल्पोक्तविधिना कल्पितमुपकल्पं स्यात्। अरण्ये शुष्कगोमयं चूर्णीकृत्यानुसंगृह्य गोमूत्रैः पिण्डीकृत्य यथाकल्पं संस्कृतमुपोपकल्पम्। शिवालयस्थमकल्पं शतकल्पं च। इत्थं चतुर्विधं भस्म पापं निकृन्तयेन्मोक्षं ददातीति भगवान्कालाग्निरुद्रः ॥ ३४॥

भस्म कल्प चार प्रकार का होता है— प्रथम अनुकल्प, द्वितीय उपकल्प, तृतीय उपोपकल्प और चतुर्थ अकल्प। अग्निहोत्र से उत्पन्न बिना धूल का या रंग का अनुकल्प होता है। वन में सूखे कण्डों को एकत्र कर उचित विधि से तैयार उपकल्प होता है। वन में सूखे गोबर का चूराकर गोमूत्र से पिंड बनाकर पूर्वोक्त प्रकार से संस्कार किया हुआ उपोपकल्प है। शिवालय में स्थित अकल्प और शतकल्प होता है। इस प्रकार चार प्रकार का भस्म पाप काट देता है और मोक्ष प्रदान करता है। ऐसा भगवान् कालाग्निरुद्र ने कहा॥ ३४॥

॥ अथ चतुर्थं ब्राह्मणम् ॥

अथ भुसुण्डः कालाग्निरुद्रं भस्मस्नानविधिं ब्रूहीति। स होवाचाथ प्रणवेन विमृज्याथ सप्तप्रणवेनाभिमन्त्रितमागमेन तु तेनैव दिग्बन्धनं कारयेत्पुनरपि तेनास्त्रमन्त्रेणाङ्गानि मूर्धादीन्युद्धूलयेन्मलस्नानमिदमीशानाद्यैः पञ्चभिर्मन्त्रैस्तनुं क्रमादुद्धूलयेत्। ईशानेति शिरोदेशं मुखं तत्पुरुषेण तु। ऊरुदेशमघोरेण गुह्यकं वामदेवतः। सद्योजातेन वै पादौ सर्वाङ्गं प्रणवेन तु। आपादतलमस्तकं सर्वाङ्गं तत उद्धूल्याचम्य वसनं धौतं श्वेतं प्रधारयेद्विधिस्नानमिदम्। तत्र श्लोका भवन्ति। भस्ममुष्टिं समादाय संहितामन्त्रमन्त्रिताम्। मस्तकात्पादपर्यन्तं मलस्नानं पुरोदितम्॥ १ ॥ तन्मन्त्रेणैव कर्तव्यं विधिस्नानं समाचरेत्। ईशाने पञ्चधा भस्म विकिरेन्मूर्ध्नि यत्नतः॥ २॥ मुखे चतुर्थवक्त्रेण अघोरेणाष्टधा हृदि। वामेन गुह्यदेशे तु त्रिदशस्थानभेदतः॥ ३॥ अष्टावङ्गेन साध्येन पादावुद्धूल्य यत्नतः। सर्वाङ्गोद्धूलनं कार्यं राजन्यस्य यथाविधि॥ ४॥

तब भुसुण्ड (रूप प्रजापति) के कालाग्निरुद्र से भस्मस्नान की विधि पूछने पर वह बोले, प्रणव मन्त्र से (उसे) मसलकर, सात ओंकार से अभिमन्त्रित और उसी आगम विधि से दिग्बन्धन करे, फिर उसी 'अस्त्र' आदि मन्त्र से सिर आदि अङ्गों में बुरकें। यह मल स्नान (भस्म स्नान) ईशान आदि पाँच मन्त्रों से क्रमशः शरीर पर बुरकें। ईशानादि से सिर, तत्पुरुष से मुख, अघोर से ऊरु या जाँघों को, वामदेव से गुह्य को तथा सद्योजात मन्त्र से पैरों को। इस प्रकार सभी अंगों को प्रणव मन्त्र से पैर के तले से मस्तक तक सभी अंगों पर भस्म बुरक कर आचमन कर, श्वेत धुला वस्त्र पहनें—यह विधि भस्म स्नान की है। इस (सम्बन्ध) में श्लोक है–

भस्म की मुट्ठी लेकर (वेद) संहिता के मंत्र से मंत्रित मस्तक से पैर तक मलस्नान (भस्म स्नान) जैसा कि पहले कहा गया है, उस मन्त्र से ही विधिपूर्वक स्नान करें। 'ईशान' में पाँच बार भस्म सिर पर सयत्न डालें। मुख पर चतुर्थ वक्त्र के द्वारा, 'अघोर' द्वारा हृदय पर आठ बार। वाम द्वारा गुह्य स्थान पर देव के स्थान भेद से 'अष्टावङ्गेन साध्येन' द्वारा पैरों पर बुरक कर सभी अंगों पर भस्म विधिपूर्वक डालें॥ १-४॥

मुखं विना च सत्सर्वमुद्धूल्य क्रमयोगतः। संध्याद्वये निशीथे च तथा पूर्वावसानयोः॥ ५॥

मुख के अतिरिक्त समस्त शरीर पर भस्म डालकर प्रातः-संध्या तथा आधी रात को एवं दिवस के पूर्वार्ध और दिवस के अवसान पर (भस्म स्नान करे)॥ ५॥

सुप्त्वा भुक्त्वा पयः पीत्वा कृत्वा चावश्यकादिकम्। स्त्रियं नपुंसकं गृध्रं बिडालं बकमूषिकम्॥ ६॥ स्पृष्ट्वा तथाविधानन्यान्भस्मस्नानं समाचरेत्। देवाग्निगुरुवृद्धानां समीपेऽन्त्यजदर्शने॥ ७॥ अशुद्धभूतले मार्गे कुर्यान्नोद्धूलनं व्रती। शङ्खतोयेन मूलेन भस्मना मिश्रणं भवेत्॥ ८॥ योजितं चन्दनेनैव वारिणा भस्मसंयुतम्। चन्दनेन समालिम्पेज्ज्ञानदं चूर्णमेव तत्॥ ९॥ मध्याह्नात्प्राग्जलैर्युक्तं तोयं तदनुवर्जयेत्॥ अथ भुसुण्डो भगवन्तं कालाग्निरुद्रं त्रिपुण्ड्रविधिं पप्रच्छ। तत्रैते श्लोका भवन्ति-त्रिपुण्ड्रं कारयेत्पश्चाद्ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्। मध्याङ्गुलीभिरादाय तिसृभिर्मूलमन्त्रतः॥ १०॥ अनामामध्यमाङ्गुष्ठैरथवा स्यात्त्रिपुण्ड्रकम्। उद्धूलयेन्मुखं विप्रः क्षत्रियस्तच्छिरोदितम्॥ ११॥ द्वात्रिंशत्स्थानके चार्धं षोडशस्थानकेऽथवा। अष्टस्थाने तथा चैव पञ्चस्थानेऽपि योजयेत्॥ १२॥ उत्तमाङ्गे ललाटे च कर्णयोर्नेत्रयोस्तथा। नासावक्त्रे गले चैवमंसद्वयमतः परम्॥ १३॥ कूर्परे मणिबन्धे च हृदये पार्श्वयोर्द्वयोः। नाभौ गुह्यद्वये चैवमूर्वोः स्फिग्बिम्बजानुनि॥१४॥ जङ्घाद्वये च पादौ च द्वात्रिंशत्स्थानमुत्तमम्। अष्टमूर्त्यष्टविद्येशान्दिक्पालान्वसुभिः सह॥ १५॥ धरो ध्रुवश्च सोमश्च कृपश्चैवानिलोऽनलः। प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टावितीरिताः॥ १६॥ एतेषां नाममन्त्रेण त्रिपुण्ड्रान्धारयेद्बुधः। विदध्यात्षोडशस्थाने त्रिपुण्ड्रं तु समाहितः॥ १७॥

सोकर, खाकर, पानी पीकर और आवश्यक (कार्य) करके स्त्री, नपुंसक, गृद्ध, बिल्ली, बगुला, चूहा आदि का स्पर्श करके, ऐसे ही अन्य कारणों की स्थिति में भस्मस्नान करने चाहिए। देव, अग्नि, गुरु, वृद्ध के समीप, अन्त्यज दर्शन पर, अशुद्ध भूमि या मार्ग पर (भस्म) व्रत वाले भस्म न लगाएँ। शंख के मूल जल से, भस्म के साथ मिश्रण हो। चन्दन मिले पानी से भस्म को मिलाकर चन्दन से उस आनन्द चूर्ण का लेप करें। मध्याह्न से पहले पानी मिलाकर बाद में और पानी न मिलाएँ।

तब भुसुण्ड ने भगवान् कालाग्निरुद्र से त्रिपुण्ड्र की विधि पूछी। उसमें ये श्लोक हैं— भस्म लगाने के बाद ब्रह्मा, विष्णु और शिवात्मक त्रिपुण्ड्र बनाएँ। मूलमंत्र का पाठ करते हुए मध्य की तीन अँगुलियों से लेकर अथवा अनामा (अनामिका), मध्यमा तथा अँगूठे से त्रिपुण्ड्र होता है। पीस कर मुख में लगाने की यह पद्धति विप्रों की है। इनके सिरे से क्षत्रियों की पद्धति है। बत्तीस या उसके आधे सोलह स्थान या आठ स्थान या पाँच स्थानों पर भी लगाएँ। सिर पर, ललाट पर, कानों पर, नेत्रों पर, नाक पर, मुख पर, गले और दोनों कन्धों पर। कूबड़, कलाई, हृदय, दोनों बगल, नाभि, दोनों गुह्य स्थान, दोनों जाँघ, कूल्हा, घुटना, दोनों पिंडलियों पर, दोनों पैरों पर इस प्रकार बत्तीस स्थान उत्तम हैं। अष्टमूर्ति, अष्ट विद्येश, अष्टदिक्पाल, अष्टवसुओं सहित, धर, ध्रुव, सोम, कृप, अनिल, अनल, प्रत्यूष, प्रभास ये आठ वसु बताये गये हैं, इनका नाम स्मरण करते हुए त्रिपुण्ड्र धारण करें, सोलह स्थानों पर त्रिपुण्ड्र बनाएँ॥ ६-१७॥

शीर्षके च ललाटे च कण्ठे चांसद्वये तथा। कूर्परे मणिबन्धे च हृदये नाभिपार्श्वयोः॥ १८॥
पृष्ठे चैकं प्रतिस्थानं जपेत्तत्राधिदेवताः। शिवंशक्तिं च सादाख्यामीशं विद्याऽऽख्यमेव च॥ १९॥
वामादिनवशक्तीश्च एतेषोडशदेवताः। नासत्यो दस्त्रकश्चैव अश्विनौ द्वौ समीरितौ॥ २०॥

सिर, ललाट, कान, कण्ठ, दोनों कंधे, कूबड़, मणिबन्ध, हृदय, नाभि, बगल, पीठ पर एक-एक उनके अधिदेवता- शिव, शक्ति, साद, ईश, विद्या, वामादि, नवशक्ति तथा नासत्य और दस्त्रक नामक दो अश्विनीकुमारों का जप करते हुए (भस्म लगाए) ॥१८-२०॥

अथवा मूर्ध्न्यलोके च कर्णयोः श्वसने तथा। बाहुद्वये च हृदये नाभ्यामूर्वोर्युगे तथा॥ २१॥
जानुद्वये च पदयोः पृष्ठभागे च षोडश। शिवश्चेन्द्रश्च रुद्रार्कौ विघ्नेशो विष्णुरेव च॥ २२॥
श्रीश्चैव हृदयेशश्च तथा नाभौ प्रजापतिः। नागश्च नागकन्याश्च उभे च ऋषिकन्यके ॥ २३॥
पादयोश्च समुद्राश्च तीर्थाः पृष्ठेऽपि च स्थिताः। एवं वा षोडशस्थानमष्टस्थानमथोच्यते॥ २४॥
गुरुस्थानं ललाटं च कर्णद्वयमवान्तरं। अंसयुग्मं च हृदयं नाभिरित्यष्टमं भवेत्॥ २५॥

अथवा सिर, आँख, कान, नाक, दोनों बाहु, हृदय, नाभि, दोनों जाँघें, घुटने, पैर, पीठ ये सोलह। शिव, इन्द्र, रुद्र, सूर्य, गणेश, विष्णु श्री हृदयेश तथा नाभि पर प्रजापति। नाग और नाग कन्या- ये दोनों ऋषि कन्याएँ। पैरों में समुद्र तथा पीठ पर तीर्थ स्थित हैं। इस प्रकार ये सोलह स्थान हैं। अब आठ स्थान बताते हैं। गुरु स्थान (सिर), ललाट, दोनों कान, दोनों कन्धे, हृदय और आठवाँ क्रम नाभि का है॥ २१-२५॥

ब्रह्मा च ऋषयः सप्त देवताश्च प्रकीर्तिताः। अथवा मस्तकं बाहू हृदयं नाभिरेव च॥ २६॥
पञ्च स्थानान्यमून्याहुर्भस्मतत्त्वविदो जनाः। यथासंभवतः कुर्याद्देशकालाद्यपेक्षया॥ २७॥

ब्रह्मा एवं सप्तर्षि देवता हैं अथवा मस्तक, दोनों बाहु, हृदय और नाभि। ये पाँच स्थान भस्म तत्त्व के ज्ञाता जानते हैं। देश-काल की अपेक्षानुसार यथासंभव (इनमें भस्म लेपन) करें॥ २६-२७॥

उद्धूलनेऽप्यशक्तश्चेत्त्रिपुण्ड्रादीनि कारयेत्। ललाटे हृदये नाभौ गले च मणिबन्धयोः॥ २८॥ बाहुमध्ये बाहुमूले पृष्ठे चैव च शीर्षके। ललाटे ब्रह्मणे नमः। हृदये हव्यवाहनाय नमः। नाभौ स्कन्दाय नमः। गले विष्णवे नमः। मध्ये प्रभञ्जनाय नमः। मणिबन्धे वसुभ्यो नमः। पृष्ठे हरये नमः। ककुदि शंभवे नमः। शिरसि परमात्मने नमः। इत्यादिस्थानेषु त्रिपुण्ड्रं धारयेत्। त्रिनेत्रं त्रिगुणाधारं त्रयाणां जनकं प्रभुम्। स्मरन्नमः शिवायेति ललाटे तत् त्रिपुण्ड्रकम्॥ २९॥

भस्म लगाने में अशक्त हों, तो त्रिपुण्ड्र आदि बनवा लें। ललाट, हृदय, नाभि, गला तथा दोनों कलाई, बाहुमध्य, बाहुमूल, पीठ व सिर पर; इनके मन्त्र इस प्रकार हैं-

ललाटे ब्रह्मणे नमः। हृदये हव्यवाहनाय नमः। नाभौ स्कन्दाय नमः। गले विष्णवे नमः। मध्ये प्रभञ्जनाय नमः। मणिबन्धे वसुभ्यो नमः। पृष्ठे हरये नमः। ककुदि शंभवे नमः। शिरसि परमात्मने नमः। इत्यादि स्थानों पर त्रिपुण्ड्र धारण करें। इस श्लोक का पाठ करते जाएँ।

त्रिनेत्रं त्रिगुणाधारं त्रयाणां जनकं प्रभुम्।
स्मरन्नमः शिवायेति ललाटे तत् त्रिपुण्ड्रकम्॥ २९॥

कूर्पराधः पितृभ्यां तु ईशानाभ्यां तदोपरि। ईशाभ्यां नम इत्युक्त्वा पार्श्वयोश्च त्रिपुण्ड्रकम्॥ ३०॥

कोहनी से नीचे पितृभ्यां नमः कहकर, कोहनी से ऊपर ईशानाभ्यां नमः कहकर दोनों बगल में त्रिपुण्ड्रक या तिलक लगायें॥ ३०॥

स्वच्छाभ्यां नम इत्युक्त्वा धारयेत्तत्प्रकोष्ठयोः। भीमायेति तथा पृष्ठे शिवायेति च पार्श्वयोः॥ ३१॥
नीलकण्ठाय शिरसि क्षिपेत्सर्वात्मने नमः। पापं नाशयते कृत्स्नमपि जन्मान्तरार्जितम्॥ ३२॥

स्वच्छाभ्यां नमः कहकर पहुँचों में लगाएँ। भीमाय नमः कहकर पीठ पर तथा शिवाय नमः कहकर दोनों बगल में लगाएँ। नीलकण्ठाय नमः कहकर सिर पर लगाएँ। सर्वात्मने नमः कहकर सम्पूर्ण शरीर पर छिड़क लें, इससे सम्पूर्ण पाप नष्ट होते हैं, चाहे वे जन्म-जन्म के ही क्यों न हों॥ ३१-३२॥

कण्ठोपरि कृतं पापं नष्टं स्यात्तत्र धारणात्। कर्णे तु धारणात्कर्णरोगादिकृतपातकम्॥ ३३॥
बाह्वोर्बाहुकृतं पापं वक्षःसु मनसा कृतम्। नाभ्यां शिश्नकृतं पापं पृष्ठे गुदकृतं तथा॥ ३४॥
पार्श्वयोर्धारणात्पापं परस्त्र्यालिङ्गनादिकम्। तद्भस्मधारणं कुर्यात्सर्वत्रैव त्रिपुण्ड्रकम्॥ ३५॥

कण्ठ से ऊपर तिलक धारण करने से किये हुए सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। कान पर धारण करने से कर्णरोग आदि से हुए पाप दूर होते हैं। बाहुओं पर लगाने से भुजा द्वारा हुए पाप दूर होते हैं। वक्ष पर लगाने से मन से किये पाप दूर होते हैं। नाभि पर लगाने से लिंगकृत पाप दूर होते हैं। पीठ पर लगाने से गुदा से किया पाप नष्ट होता है। बगलों में तिलक धारण करने से दूसरे से आलिंगन का पाप दूर होता है। इसलिए ऊपर कहे हुए स्थानों पर त्रिपुण्ड्र वाले भस्म धारण करें॥ ३३-३५॥

ब्रह्मविष्णुमहेशानां त्र्यग्नीनां च धारणम्। गुणलोकत्रयाणां च धारणं तेन वै श्रुतम्॥ ३६॥

त्रिपुण्ड्र धारण करने से ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों अग्नि का धारण हो जाता है। तीनों गुण, तीनों लोकों का भी धारण हो जाता है। ऐसा वेद कहता है या ऐसा कहा गया है॥ ३६॥

॥ अथ पञ्चमं ब्राह्मणम्॥

मानस्तोकेति मन्त्रेण मन्त्रितं भस्म धारयेत्। ऊर्ध्वपुण्ड्रं भवेत्सामं मध्यपुण्ड्रं त्रियायुषम्॥ १॥

'मानस्तोके तनये०' इस मन्त्र से अभिमन्त्रित कर भस्म को धारण करें। खड़ा तिलक 'साम' होता है और लेटा तिलक त्रियायुष (याजुष्) होता है॥ १॥

त्रियायुषाणि कुरुते ललाटे च भुजद्वये। नाभौ शिरसि हृत्पार्श्वे ब्राह्मणाः क्षत्रियास्तथा॥ २॥

त्रियायुष ललाट और दोनों भुजाओं पर किया जाता है। नाभि एवं सिर पर तथा हृदय के पास ब्राह्मण तथा क्षत्रिय लगाते हैं॥ २॥

त्रैवर्णिकानां सर्वेषामग्निहोत्रसमुद्भवम्। इदं मुख्यं गृहस्थानां विरजानलजं भवेत्॥ ३॥
विरजानलजं चैव धार्यं प्रोक्तं महर्षिभिः। औपासनसमुत्पन्नं गृहस्थानां विशेषतः॥ ४॥

सभी तीन वर्ण के लोग अग्निहोत्र से उत्पन्न भस्म लगाते हैं। बिना धूल की अग्नि से उत्पन्न यह भस्म गृहस्थों के लिए होती है, ऐसी अग्नि से उत्पन्न भस्म ही महर्षिगण भी धारण करें। गृहस्थ लोग विशेषकर गृह्याग्नि (से उत्पन्न) भस्म ही लगाएँ॥ ३-४॥

समिदग्निसमुत्पन्नं धार्यं वै ब्रह्मचारिणा। शूद्राणां श्रोत्रियागारपचनाग्निसमुद्भवम्॥ ५॥

ब्रह्मचारी समिधा की अग्नि की भस्म लगाएँ। श्रोत्रियों के घर (भोजन) पकाने की अग्नि (से उत्पन्न भस्म) शूद्रों के लिए उपयुक्त है॥ ५॥

अन्येषामपि सर्वेषां धार्यं चैवानलोद्भवम्। यतीनां ज्ञानदं प्रोक्तं वनस्थानां विरक्तिदम्॥ ६॥

अन्य भी सभी लोग अग्नि से उत्पन्न भस्म धारण करें। भस्म यतियों को ज्ञान देती है और वनवासियों (वानप्रस्थों) को विरक्ति॥ ६॥

अतिवर्णाश्रमाणां तु श्मशानाग्निसमुद्भवम्। सर्वेषां देवालयस्थं भस्म शिवाग्निजं शिवयोगिनाम्। शिवालयस्थं तल्लिङ्गलिप्तं वा मन्त्रसंस्कारदग्धं वा। अत्रैते श्लोका भवन्ति। तेनाधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम्। येन विप्रेण शिरसि त्रिपुण्ड्रं भस्मना धृतम्॥ ७॥

वर्णाश्रम से रहित लोग श्मशान की अग्नि की भस्म लगाएँ। सबके लिए देवालय में तैयार भस्म तथा शिव योगियों के लिए शिवाग्नि की भस्म। शिवालय में स्थित या शिवलिंग पर लगी या मन्त्र संस्कार से जली भस्म लगाएँ। इस सम्बन्ध में ये श्लोक हैं- उसने वेद पढ़ा, उसने सभी अनुष्ठान किये, जिस विप्र ने अपने सिर पर भस्म का त्रिपुण्ड्र धारण किया॥ ७॥

त्यक्तवर्णाश्रमाचारो लुप्तसर्वक्रियोऽपि यः। सकृत्तिर्यक्त्रिपुण्ड्राङ्कधारणात्सोऽपि पूज्यते॥ ८॥

जिसने वर्णाश्रम का आचार छोड़ दिया, जिसकी सब क्रियाएँ लुप्त हो गयीं। वह भी एक बार तिरछा (तिर्यक्) त्रिपुण्ड्र धारण कर पूजनीय हो जाता है॥ ८॥

ये भस्मधारणं त्यक्त्वा कर्म कुर्वन्ति मानवाः। तेषां नास्ति विनिर्मोक्षः संसाराज्जन्मकोटिभिः॥ ९॥

जो लोग भस्म धारण के बिना ही कर्म करते हैं, उनका करोड़ों जन्म के बाद भी संसार से मोक्ष नहीं होता॥ ९॥

महापातकयुक्तानां पूर्वजन्मार्जितागसाम्। त्रिपुण्ड्रोद्धूलनद्वेषो जायते सुदृढं बुधाः॥ १०॥

पूर्व जन्म और इस जन्म के महापापियों द्वारा त्रिपुण्ड्र लगाये जाने पर विद्वज्जन उनसे अत्यधिक द्वेषयुक्त हो जाते हैं॥ १०॥

येषां कोपो भवेद्ब्रह्मल्ललाटे भस्मदर्शनात्। तेषामुत्पत्तिसांकर्यमनुमेयं विपश्चिता॥ ११॥

ललाट पर भस्म देखने से जिन्हें क्रोध होता है, उन्हें विद्वान् लोग वर्णसंकर बताते हैं॥ ११॥

येषां नास्ति मुने श्रद्धा श्रौते भस्मनि सर्वदा। गर्भाधानादिसंस्कारस्तेषां नास्तीति निश्चयः॥१२॥

हे मुने! जिनकी सदा श्रौत भस्म में श्रद्धा नहीं होती, उनका गर्भाधान आदि संस्कार बिल्कुल नहीं हुआ, ऐसा सुनिश्चित मानना चाहिए॥ १२॥

ये भस्मधारिणं दृष्ट्वा नराः कुर्वन्ति ताडनम्। तेषां चाण्डालतो जन्म ब्रह्मन्नूह्यं विपश्चिता॥ १३॥
येषां क्रोधो भवेद्भस्मधारणे तत्प्रमाणके। ते महापातकैर्युक्ता इति शास्त्रस्य निश्चयः॥ १४॥
त्रिपुण्ड्रं ये विनिन्दन्ति निन्दन्ति शिवमेव ते। धारयन्ति च ये भक्त्या धारयन्ति शिवं च ते॥१५॥

जो लोग देखते ही भस्मधारियों को पीटते हैं। उनका जन्म चाण्डाल से हुआ बताते हैं। यह शास्त्र का निश्चय है कि जिन्हें भस्मधारण में क्रोध होता है, वे महापापी होते हैं। जो त्रिपुण्ड्र की निन्दा करते हैं, वे शिव की निन्दा करते हैं। जो भक्तिपूर्वक त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं, वे शिव को ही धारण करते हैं॥ १३-१५॥

धिग्भस्मरहितं भालं धिग्ग्राममशिवालयम्। धिगनीशार्चनं जन्म धिग्विद्यामशिवाश्रयाम्॥ १६॥

भस्मरहित भाल को धिक्कार है, बिना शिवमन्दिर के ग्राम को धिक्कार है, ईश्वर की पूजा के बिना जन्म को धिक्कार है, उस विद्या को धिक्कार है, जो अशिव पर आधारित हो॥ १६॥

रुद्राग्नेर्यत्परं वीर्यं तद्भस्म परिकीर्तितम्। तस्मात्सर्वेषु कालेषु वीर्यवान्भस्मसंयुतः॥ १७॥

रुद्राग्नि का जो परम वीर्य है, वह भस्म कहलाता है। इसलिए भस्मधारी सब समय वीर्यवान् रहता है॥ १७॥

भस्मनिष्ठस्य दह्यन्ते दोषा भस्माग्निसंगमात्। भस्मस्नानविशुद्धात्मा भस्मनिष्ठ इति स्मृतः॥ १८॥

भस्माग्नि के संगम से भस्मनिष्ठ के दोष जल जाते हैं। भस्म स्नान से शुद्धात्मा भस्मनिष्ठ बन जाता है॥ १८॥

भस्मसंदिग्धसर्वाङ्गो भस्मदीप्तत्रिपुण्ड्रकः। भस्मशायी च पुरुषो भस्मनिष्ठ इति स्मृतः॥ १९॥

प्रत्येक अंग में भस्म लगाने वाला, भस्म से चमकता त्रिपुण्ड्र और भस्म पर सोने वाला पुरुष भस्मनिष्ठ कहलाता है॥ १९॥

॥ अथ षष्ठं ब्राह्मणम्॥

अथ भुसुण्डः कालाग्निरुद्रं नामपञ्चकस्य माहात्म्यं ब्रूहीति होवाच। अथ वसिष्ठवंशजस्य शतभार्यासमेतस्य धनंजयस्य ब्राह्मणस्य ज्येष्ठभार्यायाः पुत्रः करुण इति नाम। तस्य शुचिस्मिता भार्या। असौ करुणो भ्रातृवैरमसहमानो भवानीतटस्थं नृसिंहमगमत्। तत्रदेवसमीपेऽन्येनोपायनार्थं

समर्पितं जम्बीरफलं गृहीत्वाजिघ्रत्तदा तत्रस्था अशपन्पाप मक्षिको भव वर्षाणां शतमिति। सोऽपि शापमादाय मक्षिकः सन्स्वचेष्टितं तस्यै निवेद्य मां रक्षेति स्वभार्यामवदत्तदा मक्षिकोऽभवत्तमेवं ज्ञात्वा ज्ञातयस्तैलमध्ये ह्यधारयन्सा मृतं पतिमादाया- रुन्धतीमगमद्धो शुचिस्मितेऽमुं जीवयेति सोवाच शोकेनालमरुन्धत्यहममुं जीवयाम्यद्य विभूतिमादायेति। एषाग्निहोत्रजं भस्म-मृत्युंजयेन मन्त्रेण मृतजन्तौ तदाक्षिपत्। मन्दवायुस्तदा जज्ञे व्यजनेन शुचिस्मितः॥ १॥ उदतिष्ठत्तदा जन्तुर्भस्मनोऽस्य प्रभावतः। ततो वर्षशते पूर्णे ज्ञातिरेको ह्यमारयत्॥ २॥

तब भुसुण्ड ने कालाग्नि रुद्र से कहा कि नामपञ्चक का माहात्म्य बताओ। (कालाग्निरुद्र ने कहा-) वसिष्ठ के वंशज धनञ्जय ब्राह्मण की सौ स्त्रियों में सबसे बड़ी भार्या का पुत्र करुण और उसकी पत्नी शुचिस्मिता थी। यह करुण भाइयों की शत्रुता न सहन कर पाने के कारण भवानी के तट पर स्थित नृसिंह के पास गया। वहाँ अन्य किसी के द्वारा देव को समर्पित चकोतरे नींबू का फल लेकर सूँघ (खा) लिया, तब वहाँ (देव के द्वारा) शाप दिया गया- पापी, सौ वर्षों तक मक्खी बन। वह शाप लेकर मक्खी होता हुआ, वैसी चेष्टा करने लगा और अपनी पत्नी से बोला कि मेरी रक्षा कर। उसे मक्खी बना जानकर (भाई-बन्धुओं द्वारा) तैल में रखकर वह मृत पति को लेकर अरुन्धती के पास गयी और बोली, हे शुचिस्मिते (अरुन्धती का एक विशेषण)! इसे जीवित करो। वह बोली- दुःखी मत हो। मैं विभूति लेकर अभी इसे जीवित करती हूँ। तब उसने अग्निहोत्र की भस्म को मृत्युञ्जय मन्त्र से मृतशरीर पर फेंका। उस पर पंखे से धीरे-धीरे हवा की। तब वह प्राणी उस भस्म के प्रभाव से पवित्र मुस्कराहट के साथ उठ गया। तब सौ वर्ष पूरे होने पर जाति के एक व्यक्ति के द्वारा (बाद में) मार डाला गया॥ १-२॥

भस्मैव जीवयामास काश्यां पञ्च तदाभवन्। देवानपि तथाभूतान्मामप्येतादृशं पुरा॥ ३॥ तस्मात्तु भस्मना जन्तुं जीवयामि तदानघे। इत्येवमुक्त्वा भगवान्दधीचिः समजायत॥ ४॥ स्वरूपं च ततो गत्वा स्वमाश्रमपदं ययाविति॥ इदानीमस्य भस्मनः सर्वाघभक्षणसामर्थ्यं विधत्त इत्याह। श्रीगौतमविवाहकाले तामहल्यां दृष्ट्वा सर्वे देवाः कामातुरा अभवन्। तदा नष्टज्ञाना दूर्वाससं गत्वा पप्रच्छुः। स तद्दोषं शमयिष्यामीत्युवाच। ततः शतरुद्रेण मन्त्रेण मन्त्रितं भस्म वै पुरा। मयापि दत्तं तेनैव ब्रह्महत्याऽऽदि शान्तम्। इत्येवमुक्त्वा दूर्वासा दत्तवान्भस्म चोत्तमम्। जाता मद्वचनात्सर्वे यूयं तेऽधिकतेजसः॥ ५॥ शतरुद्रेण मन्त्रेण भस्मोद्धूलितविग्रहाः। निर्धूतरजसः सर्वे तत्क्षणाच्च वयं मुने॥ ६॥ आश्चर्यमेतज्जानीमो भस्मसामर्थ्यमीदृशम्। अस्य भस्मनः शक्तिमन्यां शृणु। एतदेव हरिशंकरयोर्ज्ञानप्रदम्। ब्रह्महत्याऽऽदिपापनाशकम्। महाविभूतिदमिति। शिववक्षसि स्थितं नखेनादाय प्रणवेनाभिमन्त्र्य गायत्र्या पञ्चाक्षरेणाभिमन्त्र्य हरिर्मस्तकगात्रेषु समर्पयेत्। तथा हृदि ध्यायस्वेति हरिमुक्त्वा हरः स्वहृदि ध्यात्वा दृष्टो दृष्ट इति शिवमाह। ततो भस्म भक्षयेति हरिमाह हरस्ततः। भक्षयिष्ये शिवं भस्म स्नात्वाऽहं भस्मना पुरा॥ ७॥

भस्म द्वारा जीवित होकर काशी में वह पाँचरूपों में प्रकट हुआ, जैसा पूर्व में देवताओं तथा अन्य प्राणियों के साथ हुआ, वैसा ही मेरे साथ भी। इसलिए हे पुण्यशीले! भस्म से प्राणी जीवित कर देता हूँ। यह कहकर भगवान् दधीचि उत्पन्न हुए। अपने स्वरूप को प्राप्त कर अपने आश्रम को गये।

अब इस भस्म को सब पापों को खा जाने की सामर्थ्य रखने वाला बताते हैं। श्री गौतम के विवाह के समय उस अहल्या को देखकर सब देव कामातुर हो गये। ज्ञान नष्ट होने से उन्होंने (देवों ने) दुर्वासा के पास जाकर पूछा। उन्होंने कहा कि वह दोष नष्ट कर दूँगा। तब पहले से शतरुद्र मन्त्र से अभिमन्त्रित भस्म मैंने दी, तो ब्रह्महत्यादि भी शान्त हो गयी, यह कहकर दुर्वासा ने उत्तम भस्म प्रदान की। मेरे वचन से तुम सब अधिक तेजस्वी हो गये। शतरुद्र मन्त्र से शरीर पर भस्म लगाने पर हे मुने! उसी क्षण हम सब रज (गुण) से रहित हो गये। भस्म की ऐसी आश्चर्यकारी शक्ति हम जान रहे हैं।

इस भस्म की अन्य शक्ति सुनो। यही विष्णु और शंकर का ज्ञान देती है। ब्रह्महत्यादि पाप का नाश करती है। महाविभूति प्रदान करने वाली है। इसलिए शिव के वक्ष पर स्थित है। उसे नख से लेकर ओम से अभिमन्त्रित कर गायत्री के पाँच अक्षरों से अभिमंत्रित कर हरि (के) मस्तक और शरीर पर लगाएँ तथा (ऐसा भाव करें कि) 'हृदि ध्यायस्व' ऐसा हरि (विष्णु को कहकर (हर--शंकर ने) अपने हृदय में ध्यानकर कल्याणकारी तत्त्व तब हर (शिव) ने हरि (विष्णु) से कहा भस्म खाओ। (उन्होंने कहा) पहले भस्म से स्नान कर इस कल्याणकारी भस्म को खाऊँगा॥ ३-७॥

पृष्ठेश्वरं भक्तिगम्यं भस्माभक्षयदच्युतः। तत्राश्चर्यमतीवासीत्प्रतिबिम्बसमद्युतिः॥ ८॥

शिवजी से पूछकर विष्णु जी ने भक्ति से प्राप्त भस्म का भक्षण किया। तब अत्यन्त आश्चर्यकारी प्रतिबिम्ब के समान (उनकी) कांति (ज्योति) हो गयी॥ ८॥

वासुदेवः शुद्धमुक्ताफलवर्णोऽभवत्क्षणात्। तदाप्रभृति शुक्लाभो वासुदेवः प्रसन्नवान्॥ ९॥

वासुदेव (विष्णु) पलभर में शुद्ध मोती के वर्ण के हो गये। तब से प्रसन्नता से परिपूर्ण वासुदेव श्वेत कांति के हो गये॥ ९॥

न शक्यं भस्मनो ज्ञानप्रभावं ते कुतो विभो। नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु त्वामहं शरणं गतः॥ १०॥
त्वत्पादयुगले शंभो भक्तिरस्तु सदा मम। भस्मधारणसंपन्नो मम भक्तो भविष्यति॥ ११॥

(तत्पश्चात् विष्णु ने शिव की स्तुति करते हुए कहा-) विभो! आपकी भस्म का प्रभाव जानना और ज्ञान की थाह पाना संभव नहीं। आपको प्रणाम। आपकी शरण में हूँ। हे शंभो! आपके दोनों चरणों में मेरी सदा भक्ति रहे। मेरा भक्त भस्म धारण से सम्पन्न होगा॥ १०-११॥

अत एवैषा भूतिर्भूतिकरीत्युक्ता। अस्य पुरस्ताद्वसव आसन्रुद्रा दक्षिणत आदित्याः पश्चाद्विश्वेदेवा उत्तरतो ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा नाभ्यां सूर्याचन्द्रमसौ पार्श्वयोः। तदेतदृचाभ्युक्तम्- ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधिविश्वे निषेदुः। यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते। य एतद्बृहज्जाबालं सार्वकामिकं मोक्ष द्वारमृङ्मयं यजुर्मयं साममयं ब्रह्ममयममृतमयं भवति। एतद्बृहज्जाबालं बालो वा युवा वा वेद स महान्भवति। स गुरुः सर्वेषां मन्त्राणामुपदेष्टा भवति। मृत्युतारकं गुरुणा लब्धं कण्ठे बाहौ शिखायां बध्नीत। सप्तद्वीपवती भूमिर्दक्षिणार्थं नावकल्पते तस्माच्छ्रद्धया यां कांचिद्गां दद्यात्सा दक्षिणा भवति॥ १२॥

इसलिए यह भस्म विभूति (प्रदान) करने वाली है- यह कहा गया है। इसके सामने वसु हैं, दक्षिण में रुद्र हैं, आदित्य पीछे हैं, विश्वेदेवा उत्तर में हैं। नाभि में ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर हैं, आसपास (दोनों बगल) सूर्य और चन्द्र हैं। ऋचा में यह कहा गया है– ऋचाएँ अनश्वर पर-आकाश में (विराजमान हैं,) जिसमें सभी देव विराजते हैं। जो उसे नहीं जानता (उसका) ऋचा क्या कर लेगी ? जो उसे जानते हैं, वे इन्हें पा लेते हैं।

जो इस बृहज्जाबाल (को जानता है वह) सबके लिए अपेक्षित मोक्षद्वार ऋक्, यजु, साम, ब्रह्म तथा अमृतमय हो जाता है। जो कोई बालक या युवक इस बृहज्जाबाल को जानता है, वह महान् हो जाता है। वह सभी मंत्रों का उपदेशक गुरु हो जाता है। गुरु के द्वारा प्राप्त मृत्युतारक (भस्म) को कण्ठ, बाहु या शिखा में बाँध लें। सात द्वीपों वाली पृथ्वी का दक्षिणा के लिए संकल्प नहीं किया जा सकता। इसीलिए जिस किसी गाय को श्रद्धा से दिया जाय, वही दक्षिणा हो जाती है॥ १२॥

॥ अथ सप्तमं ब्राह्मणम् ॥

अथ जनको वैदेहो याज्ञवल्क्यमुपसमेत्योवाच भगवन् त्रिपुण्ड्रविधिं नो ब्रूहीति। स होवाच सद्योजातादिपञ्चब्रह्ममन्त्रैः परिगृह्याग्निरिति भस्मेत्यभिमन्त्र्य मानस्तोक इति समुद्धृत्य त्रियायुषमिति जलेन संसृज्य त्र्यम्बकमिति मन्त्रेण शिरो ललाटवक्षःस्कन्धेषु धृत्वा पूतो भवति मोक्षी भवति शतरुद्रेण यत्फलमवाप्नोति तत्फलमश्नुते स एष भस्मज्योतिरिति वै याज्ञवल्क्यः॥ १॥

जनक विदेह एक बार याज्ञवल्क्य के पास जाकर बोले- हमें त्रिपुण्ड्र की विधि बताएँ। उन्होंने कहा- सद्योजातादि पाँच ब्रह्म मन्त्रों से लेकर अग्नि० इत्यादि, भस्म० इत्यादि से अभिमंत्रित कर मानस्तोक० इत्यादि लेकर त्रियायुष० इत्यादि द्वारा जल से मार्जन कर त्र्यम्बक० इत्यादि मंत्र द्वारा सिर, ललाट, वक्ष, कन्धे पर धारण कर पवित्र होता है, मोक्ष पाने वाला होता है। शतरुद्र से जो फल पाते हैं, वह (इस भस्म धारण से) फल पाते हैं। वही भस्म ज्योति है, ऐसा याज्ञवल्क्य ने कहा॥ १॥

जनको ह वैदेहः स होवाच याज्ञवल्क्यं भस्मधारणात्किं फलमश्नुत इति। स होवाच तद्भस्मधारणादेव मुक्तिर्भवति तद्भस्मधारणादेव शिवसायुज्यमवाप्नोति न स पुनरावर्तते न स पुनरावर्तते स एष भस्मज्योतिरिति वै याज्ञवल्क्यः॥ २॥

उन जनक विदेह ने याज्ञवल्क्य से कहा– भस्मधारण से क्या फल मिलता है ? उन्होंने कहा– भस्मधारण से ही मुक्ति होती है। भस्म धारण से ही शिव की निकटता प्राप्त होती है। वह फिर नहीं लौटता (अर्थात् उसका पुनर्जन्म नहीं होता)। वही यह भस्म ज्योति है, यह याज्ञवल्क्य ने कहा॥ २॥

जनको ह वैदेहः स होवाच याज्ञवल्क्यं भस्मधारणात्किं फलमश्नुते न वेति। तत्र परमहंसा नाम संवर्तकारुणिश्वेतकेतुदूर्वासऋभुनिदाघजडभरतदत्तात्रेयरैवतकभुसुण्डप्रभृतयो विभूतिधारणादेव मुक्ताः स्युः स एष भस्मज्योतिरिति वै याज्ञवल्क्यः॥ ३॥

उन विदेह जनक ने याज्ञवल्क्य से पूछा- भस्म लगाने से कोई फल मिलता है अथवा नहीं? अनेक परमहंस हुए- संवर्तक, आरुणि, श्वेतकेतु, दुर्वासा, ऋभु, निदाघ, जड़भरत, दत्तात्रेय, रैवतक, भुसुण्ड आदि विभूति धारण करने से ही मुक्त हुए- वही यह भस्म ज्योति है- ऐसा याज्ञवल्क्य ने कहा॥ ३॥

जनको ह वैदेहः स होवाच याज्ञवल्क्यं भस्मस्नानेन किं जायत इति। यस्य कस्यचिच्छरीरे यावन्तो रोमकूपास्तावन्ति लिङ्गानि भूत्वा तिष्ठन्ति ब्राह्मणो वा क्षत्रियो वा वैश्यो वा शूद्रो वा तद्भस्मधारणादेतच्छब्दस्य रूपं यस्यां तस्यां ह्येवावतिष्ठते॥ ४॥

उन जनक विदेह ने याज्ञवल्क्य से कहा- भस्म स्नान से क्या (सम्पन्न) होता है? जिस किसी के शरीर में जितने रोमकूप हैं, उतने लिङ्ग (चिह्न) बनकर विद्यमान रहते हैं। चाहे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र कोई भी हो। भस्म धारण करने से यह जैसा कहा गया उसी रूप में अर्थात् प्रत्येक रोमकूप (स्पष्टतः) शिवलिङ्ग के रूप में ही अवस्थित रहता है॥ ४॥

जनको ह वैदेहः पैप्पलादेन सह प्रजापतिलोकं जगाम तं गत्वोवाच भो प्रजापते त्रिपुण्ड्रस्य माहात्म्यं ब्रूहीति। तं प्रजापतिरब्रवीद्यथैवेश्वरस्य माहात्म्यं तथैव त्रिपुण्ड्रस्येति॥ ५॥

जनक विदेह पिप्पलाद के साथ प्रजापति (ब्रह्मा) लोक गये। वहाँ जाकर बोले-हे प्रजापते! त्रिपुण्ड्र की महत्ता बताइए। उनसे प्रजापति ने कहा- जैसा माहात्म्य ईश्वर का है, वैसा ही त्रिपुण्ड्र का है॥ ५॥

अथ पैप्पलादो वैकुण्ठं जगाम तं गत्वोवाच भो विष्णो त्रिपुण्ड्रस्य माहात्म्यं ब्रूहीति। यथैवेश्वरस्य माहात्म्यं तथैव त्रिपुण्ड्रस्येति विष्णुराह॥ ६॥

तब पिप्पलाद वैकुण्ठ में गये— वहाँ जाकर बोले— हे विष्णो! त्रिपुण्ड्र का माहात्म्य बताइये। जैसा ईश्वर का माहात्म्य है, वैसा ही त्रिपुण्ड्र का— ऐसा विष्णु ने कहा॥ ६॥

अथ पैप्पलादः कालाग्निरुद्रं परिसमेत्योवाचाधीहि भगवन् त्रिपुण्ड्रस्य विधिम्। त्रिपुण्ड्रस्य विधिर्मया वक्तुं न शक्य इति सत्यमिति होवाचाथ भस्माच्छन्नः संसारान्मुच्यते भस्मशय्याशयानस्तच्छब्दगोचरः शिवसायुज्यमवाप्नोति न स पुनरावर्तते न स पुनरावर्तते रुद्राध्यायी सन्नमृतत्वं च गच्छति। स एष भस्मज्योतिर्विभूतिधारणाद्ब्रह्मैकत्वं च गच्छति विभूतिधारणादेव सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति विभूतिधारणाद्वाराणस्यां स्नानेन यत्फलमवाप्नोति तत्फलमश्नुते। स एष भस्म ज्योतिर्यस्य कस्यचिच्छरीरे त्रिपुण्ड्रस्य लक्ष्म वर्तते प्रथमा प्रजापतिर्द्वितीया विष्णुस्तृतीया सदाशिव इति स एष भस्मज्योतिरिति स एष भस्मज्योतिरिति॥ ७॥

तब पिप्पलाद कालाग्निरुद्र के पास जाकर बोले भगवान् त्रिपुण्ड्र की विधि बताइये। (वे बोले)— त्रिपुण्ड्र की विधि बताने में मैं समर्थ नहीं, यह सत्य है। फिर बोले—भस्म से ढका हुआ (व्यक्ति) संसार से मुक्त हो जाता है। भस्म की शय्या पर सोने वाला तत् (परम शिव) शब्द से प्रकट शिव की निकटता पाता है, वह वापस नहीं लौटता, नहीं लौटता— वह रुद्र के पास जाकर अमरता को पाता है। वही यह (व्यक्ति) भस्मज्योति विभूति

के धारण से ब्रह्म से एकरूपता या तादात्म्य प्राप्त कर लेता है। विभूति धारण से ही वह सब तीर्थों में स्नान किया हुआ हो जाता है, विभूतिधारण से वाराणसी में स्नान का फल प्राप्त करता है। यह वही भस्म ज्योति है, (जिसके द्वारा) जिस किसी के शरीर पर त्रिपुण्ड्र का चिह्न बना होता है— उसकी प्रथम (रेखा) प्रजापति, द्वितीय विष्णु और तृतीय सदाशिव है— यह वही भस्मज्योति है॥ ७॥

अथ कालाग्निरुद्रं भगवन्तं सनत्कुमारः पप्रच्छाधीहि भगवन् रुद्राक्षधारणविधिं। स होवाच रुद्रस्य नयनादुत्पन्ना रुद्राक्षा इति लोके ख्यायन्ते सदाशिवः संहारकाले संहारं कृत्वा संहाराक्षं मुकुलीकरोति तन्नयनाज्जाता रुद्राक्षा इति होवाच। तस्माद्रुद्राक्षाणां रुद्राक्षत्वमिति। तद्रुद्राक्षे वाग्विषये कृते दशगोप्रदानेन यत्फलमवाप्नोति तत्फलमश्नुते स एष भस्मज्योती रुद्राक्ष इति तद्रुद्राक्षं करेण स्पृष्ट्वा धारणमात्रेण द्विसहस्रगोप्रदानफलं भवति। तद्रुद्राक्षे कर्णयोर्धार्यमाणे एकादशसहस्रगोप्रदानफलं भवति एकादशरुद्रत्वं च गच्छति। तद्रुद्राक्षे शिरसि धार्यमाणे कोटिगोप्रदानफलं भवति। एतेषां स्थानानां कर्णयोः फलं वक्तुं न शक्यमिति होवाच। मूर्ध्नि चत्वारिंशच्छिखायामेकं त्रयं वा श्रोत्रयोर्द्वादश कण्ठे द्वात्रिंशद्बाह्वोः षोडश षोडश द्वादश द्वादश मणिबन्धयोः षट् षडङ्गुष्ठयोस्ततः संध्यां सकुशोऽहरहरुपासीताग्निर्ज्योतिरित्यादिभिरग्नौ जुहुयात्॥ ८॥

तब भगवान् कालाग्नि रुद्र को सनत्कुमार ने पूछा— हे भगवन्! रुद्राक्ष धारण करने की विधि बताइए। उन्होंने कहा- संसार में विख्यात है कि यह रुद्र की आँख से उत्पन्न हुआ है, इसलिए रुद्राक्ष कहलाता है। सदाशिव संहार (प्रलय) काल में संहार करके संहार की आँख बन्द करते हैं। उस नयन से उत्पन्न रुद्राक्ष कहलाता है। इसीलिए रुद्राक्षों की रुद्राक्षता है। उस रुद्राक्ष को वाणी का विषय (गुण) मानने से दस गोदान का फल मिलता है। वह यह भस्मज्योति रुद्राक्ष है। उस रुद्राक्ष को हाथ से छूकर धारण करने मात्र से दो हजार गोदान का फल प्राप्त होता है। उस रुद्राक्ष को कानों में धारण करने से ग्यारह हजार गोदान का फल प्राप्त होता है और वह एकादश रुद्रता को प्राप्त होता है। उस रुद्राक्ष को सिर पर धारण करने पर एक करोड़ गोदान का फल प्राप्त होता है। इन स्थानों का (और) कानों का फल (पूर्ण रुपेण) कहा नहीं जा सकता। सिर पर चालीस, शिखाओं में एक या तीन, कानों में बारह, कण्ठ में बत्तीस, बाहुओं में सोलह-सोलह, कलाई में बारह-बारह, अँगूठों में छः-छः (रुद्राक्ष धारण करें) तब संध्या में कुश सहित प्रतिदिन उपासना करें-अग्निर्ज्योति० इत्यादि (मंत्र) के द्वारा अग्नि में हवन करें॥ ८॥

॥ अथ अष्टमं ब्राह्मणम्॥

अथ बृहज्जाबालस्य फलं नो ब्रूहि भगवन्निति। स होवाच य एतद्बृहज्जाबालं नित्यमधीते सोऽग्निपूतो भवति स वायुपूतो भवति स आदित्यपूतो भवति स सोमपूतो भवति स ब्रह्मपूतो भवति स विष्णुपूतो भवति स रुद्रपूतो भवति स सर्वपूतो भवति स सर्वपूतो भवति॥ १॥

हे भगवन्! अब बृहज्जाबाल (उपनिषद् के अध्ययन) का हमें फल बताएँ— ऐसा कहने पर उन्होंने कहा— इस बृहज्जाबाल का जो नित्य अध्ययन करता है, वह अग्नि से पवित्र, वायु से पवित्र, आदित्य से पवित्र, सोमपूत, ब्रह्मपूत, विष्णुपूत, रुद्रपूत तथा सर्वपूत हो जाता है॥ १॥

य एतद्बृहज्जाबालं नित्यमधीते सोऽग्निं स्तम्भयति स वायुं स्तम्भयति स आदित्यं स्तम्भयति स सोमं स्तम्भयति स उदकं स्तम्भयति स सर्वान्देवान्स्तम्भयति स सर्वान्ग्रहान्स्तम्भयति स विषं स्तम्भयति स विषं स्तम्भयति॥ २॥

जो इस बृहज्जाबाल को नित्य पढ़ता है, वह अग्नि को स्तम्भित कर सकता है। वह वायु को स्तम्भित कर सकता है। वह आदित्य को स्तम्भित कर सकता है, वह सोम को स्तम्भित कर सकता है, वह जल को स्तम्भित कर सकता है, वह सब देवों को स्तम्भित कर सकता है, वह सभी ग्रहों को स्तम्भित करता है, वह विष को स्तम्भित करता है॥ २॥

य एतद्बृहज्जाबालं नित्यमधीते स मृत्युं तरति स पाप्मानं तरति स ब्रह्महत्यां तरति स भ्रूणहत्यां तरति स वीरहत्यां तरति स सर्वहत्यां तरति स संसारं तरति स सर्वं तरति सर्वं तरति॥ ३॥

जो इस बृहज्जाबाल का नित्य पाठ करता है, वह पाप (अपराध) को पार कर जाता है। वह ब्रह्म हत्या को पार कर जाता है। वह भ्रूण हत्या को पार कर जाता है। वह वीर हत्या को पार कर जाता है। वह सबकी हत्या को पार कर जाता है॥ ३॥

य एतद्बृहज्जाबालं नित्यमधीते स भूर्लोकं जयति स भुवर्लोकं जयति स सुवर्लोकं जयति स महर्लोकं जयति स जनोलोकं जयति स तपोलोकं जयति स सत्यलोकं जयति स सर्वांल्लोकाञ्जयति स सर्वांल्लोकाञ्जयति॥ ४॥

जो इस बृहज्जाबाल का नित्य पाठ करता है, वह भू:लोक को जीतता है, वह भुव:लोक को जीतता है, वह सुव:लोक को जीतता है, वह मह:लोक को जीतता है, वह जन:लोक को जीतता है, वह तपोलोक को जीतता है। वह सत्यलोक को जीतता है, वह सभी लोकों को जीतता है, वह सभी लोकों को जीत लेता है॥ ४॥

य एतद्बृहज्जाबालं नित्यमधीते स ऋचोऽधीते स यजूंष्यधीते स सामान्यधीते सोऽथर्वणमधीते सोऽङ्गिरसमधीते स शाखा अधीते स कल्पानधीते। स नाराशंसीरधीते स पुराणान्यधीते स ब्रह्मप्रणवमधीते स ब्रह्मप्रणवमधीते॥ ५॥

जो इस बृहज्जाबाल का नित्य पाठ करता है, वह ऋग्वेद पढ़ लेता है, वह यजुर्वेद पढ़ लेता है, वह सामवेद पढ़ लेता है, वह अथर्ववेद पढ़ लेता है, वह अङ्गिरा को पढ़ लेता है अर्थात् अभिचार को भी पढ़ लेता है, वह शाखा अर्थात् प्रातिशाख्य पढ़ लेता है, वह कल्पों को पढ़ लेता है, वह नाराशंसी को पढ़ लेता है, वह पुराणों को पढ़ लेता है, वह ब्रह्मप्रणव (ॐ) को पढ़ लेता है (अन्तिम ब्रह्मप्रणवमधीते० मन्त्र समाप्ति सूचक है)॥ ५॥

अनुपनीतशतमेकमेकेनोपनीतेन तत्सममुपनीतशतमेकमेकेन गृहस्थेन तत्समं गृहस्थशतमेकमेकेन वानप्रस्थेन तत्समं वानप्रस्थशतमेकमेकेन यतिना तत्समं यतीनां तु शतं पूर्णमेकमेकेन रुद्रजापकेन तत्समं रुद्रजापकशतमेकमेकेन अथर्वशिर: शिखाऽध्यापकेन तत्सममथर्वशिर:शिखाऽध्यापकशतमेकमेकेन बृहज्जाबालोपनिषदध्यापकेन तत्समं। तद्वा एतत्परं

धाम बृहज्जाबालोपनिषज्जपशीलस्य यत्र न सूर्यस्तपति यत्र न वायुर्वाति यत्र न चन्द्रमा भाति यत्र न नक्षत्राणि भान्ति यत्र नाग्निर्दहति यत्र न मृत्युः प्रविशति यत्र न दुःखानि प्रविशन्ति सदानन्दं परमानन्दं शान्तं शाश्वतं सदाशिवं ब्रह्मादिवन्दितं योगिध्येयं परं पदं यत्र गत्वा न निवर्तन्ते योगिनः। तदेतदृचाभ्युक्तम्- तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्॥ तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते। विष्णोर्यत्परमं पदम्॥ ॐ सत्यमित्युपनिषत्॥ ६॥

एक यज्ञोपवीती सौ बिना यज्ञोपवीत वालों के बराबर होता है। सौ यज्ञोपवीती के बराबर एक गृहस्थ होता है, सौ गृहस्थों के बराबर एक वानप्रस्थ, सौ वानप्रस्थों के बराबर एक यति, सौ यतियों के बराबर एक रुद्र जपनेवाला, सौ रुद्र जपने वालों के बराबर एक अथर्वशिर और शिखा का अध्यापक, सौ अथर्वशिर और शिखा के अध्यापक के बराबर एक बृहज्जाबालोपनिषद् का (अध्ययन जप) करने वाला होता है। इससे भी ऊपर वह स्थान (धाम) है, जहाँ न सूर्य तपता है, न वायु बहता है, न चन्द्रमा चमकता है, न नक्षत्र चमकते हैं, जहाँ न अग्नि जलता है, न मृत्यु प्रवेश करती है, न दुःख प्रवेश करते हैं, सदा आनन्द, परमानन्द, शान्त, शाश्वत, सदाशिव ब्रह्मादि के द्वारा अभिवन्दित योगियों के ध्यान के योग्य परम पद है जहाँ जाकर योगीजन लौटते नहीं हैं(ऐसा स्थान बृहज्जाबालोपनिषद् के जपशील को प्राप्त होता है)। इस सन्दर्भ में ऋचा कहती है— विष्णु का वह परम पद है, जिसे ज्ञानीजन द्युलोक में फैले हुए प्रकाश के सदृश सदा देखते हैं। विष्णु का जो पद है, उसे कर्म कुशल सतत जागरूक रहने वाले ज्ञानीजन भलीभाँति प्रकाशित हुआ सदा देखते रहते हैं। ॐ (परमात्मा) ही सत्य है, यही उपनिषद् है॥ ६॥

॥ ॐ भद्रकर्णेभिः....................इति शान्तिः॥

॥ इति बृहज्जाबालोपनिषद्॥

॥ भस्मजाबालोपनिषद् ॥

॥ शान्तिपाठः ॥

॥ ॐ भद्रं कर्णेभिः ....इति शान्तिः ॥ (द्रष्टव्य- अथर्वशिखोपनिषद्)

॥ प्रथमोऽध्यायः ॥

अथ जाबालो भुसुण्डः कैलासशिखरावासमोंकारस्वरूपिणं महादेवमुमार्धकृतशेखरं सोमसूर्याग्निनयनमनन्तेन्दुरविप्रभं व्याघ्रचर्माम्बरधरं मृगहस्तं भस्मोद्धूलितविग्रहं तिर्यक्त्रिपुण्ड्ररेखाविराजमानभालप्रदेशं - स्मितसंपूर्णपञ्चविधपञ्चाननं वीरासनारूढमप्रमेयमनाद्यनन्तं निष्कलं निर्गुणं शान्तं निरञ्जनमनामयं हुम्फट्कुर्वाणं शिवनामान्यनिशमुच्चरन्तं हिरण्यबाहुं हिरण्यरूपं हिरण्यवर्णं हिरण्यनिधिमद्वैतं चतुर्थं ब्रह्मविष्णुरुद्रातीतमेकमाशास्यं भगवन्तं शिवं प्रणम्य मुहुर्मुहुरभ्यर्च्य श्रीफलदलैस्तेन भस्मना च नतोत्तमाङ्गः कृताञ्जलिपुटः पप्रच्छाधीहि भगवन्वेदसारमुद्धृत्य त्रिपुण्ड्रविधिं यस्मादन्या नपेक्षमेव मोक्षोपलब्धिः। किं भस्मनो द्रव्यम्। कानि स्थानानि। मनवोऽप्यत्र के वा । कति वा तस्य धारणम्। के वात्राधिकारिणः। नियमस्तेषां को वा । मामन्तेवासिनमनुशासयमोक्षमिति ॥ १ ॥

कैलाश शिखर पर रहने वाले, ओंकार स्वरूप महादेव उमा से अर्धांग सुशोभित हुए चन्द्र सूर्य अग्नि नेत्र वाले, अनन्त चन्द्र- सूर्यों के समान आभा वाले, व्याघ्रचर्म धारण करने वाले, मृगछाला हाथ में धारण किये हुए, भस्म से उद्धूलित (आच्छादित) देह वाले, कुछ टेढ़ी त्रिपुण्ड्र रेखाओं से सजे मस्तक वाले, पाँच प्रकार के पाँचों मुखों पर मुस्कराहट लिए , वीरासन से बैठे अप्रमेय (नाप से परे) अनादि, अनन्त, निष्कल, निर्गुण, शान्त, निरञ्जन, अनामय, हुम्फट् करते हुए, शिव-शिव अनवरत जपते हुए, सुवर्ण के रंग जैसी भुजा वाले, सुवर्णरूप, सुवर्णवर्ण, स्वर्ण भण्डार, अद्वैत, ब्रह्मा- विष्णु- रुद्र से व्यतिरिक्त चौथे केवल एक, मानो सभी दिशाओं में व्याप्त हों, ऐसे भगवान् शिव को जाबाल भुसुण्ड ने प्रणाम करके बिल्व पत्रों और भस्म से उनकी बार-बार पूजा की। फिर मस्तक झुकाए करबद्ध प्रार्थना की- भगवन्! वेद के सार तत्त्व से निकालकर त्रिपुण्ड्र विधि का उपदेश कीजिए , जिससे किसी अन्य की अपेक्षा किये बिना मोक्ष प्राप्ति की जा सके। भस्म का द्रव्य क्या हो, स्थान कौन हो, कौन मनुष्य (बनाने के अधिकारी) हैं, कितने धारण प्रकार हैं। कौन इसे धारण करने के अधिकारी हैं। उसके नियम क्या हैं ? अपने समीप रहने वाले (शिष्य को) मुझे आप मोक्षप्राप्ति के अनुशासन बताने की कृपा करें ॥ १ ॥

अथ स होवाच भगवान्परमेश्वरः परमकारुणिकः प्रमथान्सुरानपि सोऽन्वीक्ष्य पूतं प्रातरुदयाद्गोमयं ब्रह्मपर्णे निधाय त्र्यम्बकमिति मन्त्रेण शोषयेत्। येन केनापि तेजसा तत्स्वगृह्योक्तमार्गेण प्रतिष्ठाप्य वह्निं तत्र तद्गोमयद्रव्यं निधाय सोमाय स्वाहेति मन्त्रेण ततस्तिलव्रीहिभिः साज्यैर्जुहुयात्। अयं तेनाष्टोत्तरसहस्त्रं सार्धमेतद्वा। तत्राज्यस्य पर्णमयी जुहूर्भवति। तेन न पापं शृणोति। तद्धोममन्त्रस्त्र्यम्बकमित्येव अन्ते स्विष्टकृत्पूर्णाहुतिस्तेनैवाष्टदिक्षु बलिप्रदानम्॥ २-३ ॥

तब भगवान् परमेश्वर जो परम कारुणिक हैं, अपने गणों और देवों से इस प्रकार बोले— सूर्योदय से पूर्व ही पवित्र गोमय (गोबर) को पीपल के पत्ते पर रख 'त्र्यम्बकं' मन्त्र से सुखाये। फिर किसी भी प्रकार या अपने गृह्य-सूत्र के तरीके से अग्नि की स्थापना करके गोमय द्रव्य को उसमें रख, 'सोमाय स्वाहा' इस मन्त्र से प्रज्वलित करके, तिल, चावल, घी से १००८ अथवा इसकी आधी आहुतियों से हवन करे। घी छोड़ने का पात्र जुहू पत्ते का हो, उससे पाप नहीं छूता। हवन 'त्र्यम्बकं यजामहे' इत्यादि मन्त्र से करे, फिर स्विष्टकृत्-पूर्णाहुति करे। फिर उसी मन्त्र से आठों दिशाओं में बलि प्रदान करे॥ २-३॥

तद्भस्म गायत्र्या संप्रोक्ष्य तद्धैमे राजते ताम्रे मृण्मये वा पात्रे निधाय रुद्रमन्त्रैः पुनरभ्युक्ष्य शुद्धदेशे संस्थापयेत्। ततो भोजयेद्ब्राह्मणान्। ततः स्वयं पूतो भवति॥ ४॥

तब हवन की भस्म को गायत्री मन्त्र से प्रोक्षण करे। फिर उसे सोने, चाँदी, ताँबे अथवा मिट्टी के पात्र में रखकर रुद्र मन्त्रों से पुनः अभिषिंचन करके शुद्ध स्थान पर रखे। फिर ब्राह्मण भोजन कराये। तब वह स्वयं पवित्र होता है॥ ४॥

मानस्तोक इति सद्यो जातमित्यादि पञ्चब्रह्ममन्त्रैर्भस्म संगृह्याग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म व्योमेति भस्म देवा भस्म ऋषयो भस्म। सर्वं ह एतदिदं भस्म पूतं पावनं नमामि सद्यः समस्ताघशासकमिति शिरसाभिनम्य। पूते वामहस्ते वामदेवायेति निधाय त्र्यम्बकमिति संप्रोक्ष्य शुद्धं शुद्धेनेति संमृज्य संशोध्य तेनैवापादशीर्षमुद्धूलनमाचरेत्। तत्र ब्रह्ममन्त्राः पञ्च॥ ५॥

'मानस्तोक' और 'सद्योजातम्' इत्यादि पाँच ब्रह्ममन्त्रों से भस्म लें (तथा इस प्रकार भाव जाग्रत् करें), भस्म अग्नि है, भस्म वायु है, भस्म जल है, भस्म पृथिवी है, भस्म आकाश है, भस्म ही देवगण हैं, भस्म ही ऋषिगण हैं। यह सारा प्रपञ्च भस्मरूप है, यह पवित्र भस्म सारे पापों को तुरन्त निर्मूल करने वाली है, इसे प्रणाम करता हूँ। ऐसा कह मस्तक झुकाये, वह पवित्र भस्म बाएँ हाथ पर 'वामदेवाय' कहकर रखे। 'त्र्यम्बकम्' इति मन्त्र से प्रोक्षण करके शुद्ध भस्म को शुद्ध जल में मिला, भली प्रकार शुद्ध करके उससे पैर से मस्तक तक उद्धूलन (लेपन) करे। उसके लिए पाँच ब्रह्म मन्त्र हैं॥ ५॥

[इस मन्त्र में सृष्टिगत पदार्थों एवं ऋषि आदि चेतन धाराओं को यज्ञभस्म कहा गया है। यह विशिष्ट भाव है। यज्ञभस्म की उत्पत्ति यज्ञ से होती है। इस सृष्टि, चराचर जगत् की उत्पत्ति भी परमात्मा के सृजन-यज्ञ से हुई है। इसीलिए परमात्मा को यज्ञपुरुष कहा गया है। इसी दृष्टि से उपनिषद्कार ने इस मन्त्र में विश्व की सभी विभूतियों को यज्ञभस्म कहा है। कर्मकाण्ड के माध्यम से यही भाव साधक के अन्तःकरण में स्थापित होना चाहिए। आगे के क्रम में भस्म धारण के जो पुण्य कहे गये हैं, वे केवल कार्मकाण्ड से नहीं; उक्त भाव धारण करने को लक्ष्य करके बतलाये गये हैं।]

ततः शेषस्य भस्मनो विनियोगः। तर्जनीमध्यमानामिकाभिरग्नेर्भस्मासीति भस्म संगृह्य मूर्धानमिति मूर्धन्यग्रे न्यसेत्। त्रयम्बकमिति ललाटे नीलग्रीवायेति कण्ठे कण्ठस्य दक्षिणे पार्श्वे

त्र्यायुषमितिवामेति कपोलयोः कालायेति नेत्रयोस्त्रिलोचनायेति श्रोत्रयोः शृणवामेति वक्त्रे प्रब्रवामेति हृदये आत्मन इति नाभौ नाभिरिति मन्त्रेण दक्षिणभुजमूले भवायेति तन्मध्ये रुद्रायेति तन्मणिबन्धे दूरेवाधायेति तत्करपृष्ठे नमो हन्त्र इति अंशे शंकरायेति यथाक्रमं भस्म धृत्वा सोमायेति शिवं नत्वा ततः प्रक्षाल्य तद्भस्मापः पुनन्त्विति पिबेत्। नाधो त्याज्यं नाधो त्याज्यम्॥ ६ ॥

पुनः शेष भस्म का उपयोग इस प्रकार करे– तर्जनी, मध्यमा, अनामिका अँगुलियों से 'अग्नि ही भस्म है' ऐसा उच्चारण कर भस्म लेकर 'मूर्धानम्' मन्त्र से सिर के अग्रभाग पर, त्र्यम्बकम् से ललाट पर, 'नीलग्रीवाय' से कण्ठ में और कण्ठ के दक्षिण ओर कण्ठ के बायें भाग पर 'त्र्यायुषम्' से, दोनों कपोलों पर 'कालाय' से, नेत्रों पर 'त्रिलोचनाय' से, कानों पर, 'शृणुवाम' से, मुख पर 'प्रब्रवाम' से, हृदय पर 'आत्मनः' से, नाभि पर 'नाभिः' से, दाहिने हाथ के पृष्ठ पर 'पशुपतये' से, बाईं भुजा के मूल पर 'उग्राय' से, भुजा के मध्य में 'अग्रेवधाय' से, बाईं कलाई पर 'दूरे वधाय' से, वाम करपृष्ठ पर 'नमो हन्त्रे' इससे कन्धे पर, 'शङ्कराय' से यथा क्रम भस्म धारण करके 'सोमाय' से शिव को नमन करके हाथ धोकर उस भस्मजल को 'पुनन्तु' इस मंत्र से पी जाये। नीचे कभी न डाले॥ ६ ॥

एतन्मध्याह्नसायाह्नेषु त्रिकालेषु विधिभस्मधारणमप्रमादेन कार्यम्। प्रमादात्पतितो भवति॥ ७॥ ब्राह्मणानामयमेव धर्मोऽयमेव धर्मः। एवं भस्मधारणमकृत्वा नाश्नीयादापोऽन्नमन्यद्वा। प्रमादात्त्यक्त्वा भस्मधारणं न गायत्रीं जपेत्। न जुहुयादग्नौ तर्पयेद्देवानृषीन्पित्रादीन्। अयमेव धर्मः सनातनः सर्वपापनाशको मोक्षहेतुः। नित्योऽयं धर्मो ब्राह्मणानां ब्रह्मचारिगृहिवानप्रस्थयतीनाम्। एतदकरणे प्रत्यवैति ब्राह्मणः॥ ८ ॥ अकृत्वा प्रमादेनैतदष्टोत्तरशतं जलमध्ये स्थित्वा गायत्रीं जप्त्वोपोषणेनैकेन शुद्धो भवति । यतिर्भस्मधारणं त्यक्त्वैकदोपोष्य द्वादशसहस्रप्रणवं जप्त्वा शुद्धो भवति। अन्यथेन्द्रो यतीन्सालावृकेभ्यः पातयति॥ ९ ॥

यह भस्मधारण क्रिया प्रातः, मध्याह्न, सायं प्रमादरहित होकर करे। प्रमाद के साथ करने पर पतित हो जाता है। ब्राह्मण के लिए यही धर्म है। बिना अन्नादि खाये हुए करे। प्रमादवश भस्म धारण किये बिना गायत्री जप नहीं करना चाहिए। न अग्नि में हवन करे, न देव-ऋषि-पितरों का तर्पण करे। यही सनातन धर्म है तथा पापनाशक व मोक्ष का हेतु है। ब्राह्मण, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी इन सभी का यह नित्य धर्म है। इसके न करने से ब्राह्मण को दोष लगता है। प्रमादवश न करने से (प्रायश्चित्त स्वरूप) एक माला गायत्री मन्त्र जल में खड़ा होकर जपे तथा एकदिन का उपवास करे, ऐसा करने से शुद्ध होता है। संन्यासी भस्म धारण को त्यागकर एक दिन का उपवास तथा बारह हजार प्रणव का जप करने से शुद्ध होता है। अन्यथा इन्द्र उन्हें सालावृक्कों (मांसाहारी कुत्तों) के आगे फेंक देता है॥ ७-९ ॥

भस्मनो यद्यभावस्तदा नर्यभस्मदाहन-जन्यमन्यद्वाऽवश्यं मन्त्रपूतं धार्यम्॥ १०॥ एतत्प्रातः प्रयुञ्जानो रात्रिकृतात्पापात्पूतो भवति। स्वर्णस्तेयात्प्रमुच्यते। मध्यन्दिने माध्यन्दिनं कृत्वोपस्थानान्तं ध्यायमान आदित्याभिमुखोऽधीयानः सुरापानात्पूतो भवति। स्वर्णस्तेयात् पूतो भवति। ब्राह्मण बधात् पूतो भवति।

गोवधात् पूतो भवति। अश्ववधात्पूतो भवति। गुरुवधात्पूतो भवति। मातृवधात्पूतो भवति। पितृवधात्पूतो भवति। त्रिकालमेतत्प्रयुञ्जानः सर्ववेदपारायणफलमवाप्नोति। सर्वतीर्थफलम-श्रुते। अनपब्रुवः सर्वमायुरेति। विन्दते प्राजापत्यं रायस्पोषं गौपत्यम्। एवमावर्तयेदुपनिषदमित्याह भगवान्सदाशिवः साम्बः सदाशिवः साम्बः ॥११॥

यदि कोई भी भस्म न मिले, तो चिता की भस्म ही मन्त्रपूत करके धारण की जा सकती है। **[यहाँ उपनिषद्कार पुनः संकेत करते हैं कि भस्म के साथ जुड़े कर्मकाण्ड का बहुत अधिक महत्त्व नहीं है। महत्त्व है भस्म के माध्यम से अपने चित्त को मंत्रपूत-भावपूत बनाने का। भस्म के भाव चित्त में बैठते हैं, मन आदि स्वतः पापों से विमुख होने लगते हैं।,** इसे प्रातः धारण करने से रात्रिकृत पाप से पवित्र हो जाता है। स्वर्ण चोरी से मुक्त होता है। मध्याह्नकाल में माध्यदिन कृत्य (मध्याह्न द्यी;द्म) करके सूर्य के सम्मुख नीचे मुँह करके ध्यान करता हुआ, सुरापान, स्वर्ण की चोरी, ब्राह्मण वध, गोवध, अश्ववध, गुरुवध, मातृवध, पितृवध (जन्य पाप) से पवित्र हो जाता है। तीनों समय इसका प्रयोग करने से सारे वेदपारायण का फल प्राप्त करता है। सभी तीर्थों का फल प्राप्त करता है, दीर्घ आयु प्राप्त करता है, धन, धान्य, सन्तान, गोधन प्राप्त करता है। इस प्रकार इस भस्मोपनिषद् को व्यवहार में लाये, जिसे अम्बा सहित भगवान् शिव ने अपने श्रीमुख से प्रकट किया है॥ १०-११॥

॥ इति भस्मजाबालोपनिषत्सु प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

द्वितीयोऽध्यायः

अथ भुसुण्डो जाबालो महादेवं साम्बं प्रणम्य पुनः पप्रच्छ किं नित्यं ब्राह्मणानां कर्तव्यं यदकरणे प्रत्यवैति ब्राह्मणः। कः पूजनीयः। को वा ध्येयः। कः स्मर्तव्यः। कथं ध्येयः। क्व स्थातव्यमेद् ब्रूहीति॥ १॥

भुसुण्ड जाबाल ने अम्बा सहित महादेव को प्रणाम कर फिर पूछा- ब्राह्मणों का नित्यकर्म क्या है? जिसे न करने से ब्राह्मण पतित होता है। कौन पूजनीय है? किसका ध्यान करना चाहिए? किसका स्मरण करें? कैसे ध्यान करें? कहाँ रहें? सो कृपा कर बताइये॥ १॥

समासेन तं होवाच। प्रागुदयान्निर्वर्त्य शौचादिकं ततः स्नायात्। मार्जनं रुद्रसूक्तैः। ततश्चाहतं वासः परिधत्ते पाप्मनोऽपहत्यै। उद्यन्तमादित्यमभिध्यायन्नुद्धूलिताङ्गः कृत्वा यथास्थानं भस्मना त्रिपुण्ड्रं श्वेतेनैव रुद्राक्षाञ्छ्वेतान्बिभृयात्। नैतत् संमर्शः। तथाऽन्ये। मूर्ध्नि चत्वाङ्करशत्। शिखायामेकं त्रयं वा। श्रोत्रयोर्द्वादश। कण्ठे द्वात्रिंशत्। बाह्वोः षोडश षोडश। द्वादश द्वादश मणिबन्धयोः। षट्षडङ्गुष्ठयोः। ततः संध्यां सकुशोऽहरहरुपासीत। अग्निर्ज्योतिरित्यादिभिरग्नौ जुहुयात्॥ २॥

भगवान् महादेव ने संक्षेप में बताया- सूर्योदय से पूर्व शौचादि से निवृत्त होकर स्नान करे। फिर रुद्रसूक्त से मार्जन करे। धुले हुए वस्त्र ही पापों से निवृत्ति के हेतु हैं। उदय होते सविता का ध्यान कर, अंगों पर मृत्तिका लगाकर, यथास्थान बैठकर श्वेत- भस्म से त्रिपुण्ड्र लगाये तथा श्वेत-रुद्राक्षों को ही धारण करे। यद्यपि इसमें एक

मत नहीं है। फिर भी कुछ मत है-सिर पर चालीस, शिखा पर एक या तीन, कानों पर बारह, कण्ठ में बत्तीस, बाहुओं में सोलह-सोलह, कलाइयों पर बारह-बारह, अँगूठों पर छः-छः धारण करे। फिर कुश हाथ में लेकर नित्य सन्ध्योपासना करे। ''अग्निर्ज्योतिः'' इत्यादि मन्त्रों से अग्नि में हवन करे॥ २॥

शिवलिङ्गं त्रिसंध्यमभ्यर्च्य कुशेष्वासीनो ध्यात्वा साम्बं मामेव वृषभारूढं हिरण्यबाहुं हिरण्यवर्णं हिरण्यरूपं पशुपाशविमोचकं पुरुषं कृष्णपिङ्गलमूर्ध्वरेतसं विरूपाक्षं विश्वरूपं सहस्राक्षं सहस्रशीर्षं सहस्रचरणं विश्वतोबाहुं विश्वात्मानमेकमद्वैतं निष्कलं निष्क्रियं शान्तं शिवमक्षरमव्ययं हरिहरहिरण्यगर्भस्रष्टारमप्रमेय-मनाद्यन्तं रुद्रसूक्तैरभिषिच्य सितेन भस्मना श्रीफलदलैश्च त्रिशाखैरार्द्रैरनार्द्रैर्वा। न तत्र संस्पर्शः। तत्पूजासाधनं कल्पयेच्च नैवेद्यं। ततश्चैकादशगुणरुद्रो जपनीयः। एकगुणोऽनन्तः॥ ३॥

शिवलिङ्ग की तीनों (प्रातः, मध्याह्न, सायं) कालों में पूजा कर कुशासन पर बैठ अम्बा सहित मेरा (शिव का) वृषभारूढ़ हुए, हिरण्यबाहु वाले, हिरण्यवर्ण और रूप वाले, पशु-पाश से मुक्त कराने वाले कृष्ण-पिङ्गल पुरुष को, ऊर्ध्वरेता, विरूपाक्ष, विश्वरूप सहस्राक्ष (हजार नेत्र वाले), हजार सिर, हजार चरण वाले, सारे विश्व को भुजाओं में समेटे, विश्वात्मा, एक अद्वैत निष्कल-निष्क्रिय-शान्त-शिव (कल्याणकारी) अक्षररूप, अव्यय, ब्रह्मा-विष्णु-महेशादि के भी जनक, अप्रमेय (जो मापने योग्य नहीं है) आदि-अन्तरहित मुझे रुद्रसूक्त से अभिषिञ्चित करके, श्वेत-भस्म और तीन शाखा वाले बिल्व पत्रों से (आर्द्र या आर्द्रता रहित) पूजन करे। इसमें स्पर्श की आवश्यकता नहीं। वह पूजा के साधन और नैवेद्य प्रस्तुत करे। इसके पश्चात् ग्यारह गुण वाले रुद्रसूक्त का जप करे अथवा रुद्र सूक्त को ग्यारह बार जपे। एक गुण ही अनन्त है॥ ३॥

षडक्षरोऽ-ष्टाक्षरो वा शैवो मन्त्रो जपनीयः। ओमित्यग्रे व्याहरेत्। नम इति पश्चात्। ततः शिवायेत्यक्षरत्रयम्। ओमित्यग्रे व्याहरेत्। नम इति पश्चात्। ततो महादेवायेति पञ्चाक्षराणि। नातस्तारकः परमो मन्त्रः। तारकोऽयं पञ्चाक्षरः। कोऽयं शैवो मनुः। शैवस्तारकोऽयमुपदिश्यते मनुरविमुक्ते शैवेभ्यो जीवेभ्यः। शैवोऽयमेव मन्त्रस्तारयति। स एव ब्रह्मोपदेशः॥ ४॥

फिर षडक्षर वाले अथवा आठ अक्षर वाले शिव मन्त्र को जपना चाहिए। ओम् को पहले, नमः को बाद में तत्पश्चात् शिवाय के तीन अक्षर, यह षडक्षर (मन्त्र) है। ओम् को पहले, नमः को बाद में, इस प्रकार महादेवाय यह पाँच अक्षर, यह अष्टाक्षर (मन्त्र) है। इससे बड़ा तारक मन्त्र अन्य कोई नहीं। यह पञ्चाक्षर मन्त्र तारक मन्त्र है। यह शैव मनु कौन है ? यह तारक मन्त्र ही शैव मनु है। जिसके लिए यह उपदेश है। शैव जीवों के लिए भगवान् शिव अविमुक्त स्थान (काशी वा भ्रूमध्य देश) में इस तारक मन्त्र का उपदेश करते हैं। यह शैव मन्त्र ही भवसागर से पार करता है। वही ब्रह्म का उपदेश है॥ ४॥

ब्रह्म सोमोऽहं पवनः सोमोऽहं पवते सोमोऽहं जनिता मलीनां सोमोऽहं जनिता पृथिव्याः सोमोऽहं जनिताऽग्नेः सोमोऽहं जनिता सूर्यस्य सोमोऽहं जनितेन्द्रस्य सोमोऽहं जनितोत विष्णोः सोमोऽहमेव जनिता स यश्चन्द्रमसो देवानां भूर्भुवः स्वरादीनां सर्वेषां लोकानां च॥ ५॥ विश्वं भूतं भुवनं चित्रं बहुधा जातं जायमानं च यत्सर्वस्य सोमोऽहमेव जनिता विश्वाधिको रुद्रो महर्षिः॥ ६॥

[उनिषद्कार भगवान् शिव द्वारा धारणा की जाने वाली भस्म को धारण करके अपने स्व में स्थित शिवत्व को जाग्रत् करने के सूत्र बतलाते हैं]

ब्रह्म सोम मैं हूँ। पवन सोम मैं हूँ। पवित्रताकारक सोम मैं हूँ। बुद्धियों का उत्पत्तिकारक सोम मैं हूँ। पृथिवी का जनित (जनक) सोम मैं हूँ। अग्नि का जनक सोम मैं हूँ। सूर्य का जनक सोम मैं हूँ। इन्द्र का जनक सोम मैं हूँ। विष्णु का जनक सोम मैं हूँ। चन्द्रमा का जनक, देवों का जनक, भूर्भुवः स्वरादि लोकों का जनक मैं हूँ। इस समस्त विश्व का, भूत-वर्तमान-भविष्यत् का तथा उत्पन्न हुए, उत्पन्न होने वाले सभी चर-अचर भूतों का जनक सोम मैं हूँ। समस्त विश्व से अधिक रुद्र महर्षि मैं हूँ॥ ५-६ ॥

हिरण्यगर्भादीनहं जायमानान्पश्यामि। यो रुद्रो अग्नौ यो अप्सु य ओषधीषु यो रुद्रो विश्वा भुवना विवेशैवमेव। अहमेवात्माऽन्तरात्मा ब्रह्मज्योतिर्यस्मान्न मत्तोऽन्यः परः। अहमेव परो विश्वाधिकः॥ ७॥ मामेव विदित्वाऽमृतत्वमेति। तरति शोकम्। मामेव विदित्वा सांसृतिकीं रुजं द्रावयति। तस्मादहं रुद्रो यः सर्वेषां परमा गतिः। सोऽहं सर्वाकारः॥ ८॥

मैं (ही) ब्रह्मादिकों को पैदा होते हुए देखता हूँ। जो रुद्र जल में, अग्नि में, ओषधियों में, समस्त लोकों में व्याप्त है। यही आत्मा-अन्तरात्मा, ब्रह्मज्योति मुझसे पृथक् कोई अन्य नहीं, मैं ही पर, विश्वाधिक हूँ। मुझे ही जानकर (जीव) अमृत भाव को प्राप्त करता है। शोक से पार हो जाता है। मुझे ही जानकर सांसारिक यातना व रोग से मुक्त हो जाता है। इसी से सबकी परम गति रुद्र मैं ही हूँ। वह मैं सर्वाकार हूँ॥ ७-८॥

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्य-भिसंविशन्ति। तं मामेव विदित्वोपासीत। भूतेभिर्देवेभिरभिष्टुतोऽहमेव॥ ९॥ भीषास्माद्वातः पवते। भीषोदेति सूर्यः भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च॥ १०॥ सोमोऽत एव योऽहं सर्वेषामधिष्ठाता सर्वेषां च भूतानां पालकः। सोऽहं पृथिवी। सोऽहमापः। सोऽहं तेजः। सोऽहं वायुः। सोऽहं कालः। सोऽहं दिशः। सोऽहमात्मा। मयि सर्वं प्रतिष्ठितम्॥ ११॥ ब्रह्मविदाप्नोति परम्। ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम्॥ १२॥

जिससे ये सारे भूत जन्म लेते हैं। जिससे पैदा हुए जीवित रहते हैं। जिससे निकलते हैं, जिसमें प्रवेश करते हैं। उसे मुझे ही जानकर उपासना करो। सारे प्राणियों से, देवताओं से पूजित मैं ही हूँ। वायु मुझसे डरा हुआ बहता है। मेरे डर से सूर्य उदय होता है। अग्नि व चन्द्रमा अपनी स्थिति बनाए रखते हैं। वह सोम मैं ही हूँ, जो सारे जीवनधारियों का अधिष्ठाता तथा सबका पालक है। मैं ही पृथिवी हूँ। मैं ही जल हूँ। मैं ही काल हूँ। मैं ही दिशा हूँ। मैं ही आत्मा हूँ। मुझमें ही सारा कुछ प्रतिष्ठित है। ब्रह्मविद् का ज्ञेय परम मैं ही हूँ। ब्रह्मा-शिव सब मेरे ही रूप हैं, मैं सदा शिव ओम् हूँ॥ ९-१२॥

अचक्षुर्विश्वतश्चक्षुरकर्णो विश्वतः कर्णोऽपादो विश्वतः पादोऽपाणिर्विश्वतः पाणिरहमशिराविश्वतः शिरा विद्यामन्त्रैकसंश्रयो विद्यारूपो विद्यामयो विश्वेश्वरोऽहमजरोऽहम्॥ १३॥ मामेवं विदित्वा संसृतिपाशात्प्रमुच्यते। तस्मादहं पशुपाशविमोचकः। पशवश्चामानवान्तं मध्यवर्तिनश्च युक्तात्मानो यतन्ते मामेवप्राप्तुम्। प्राप्यन्ते मां न पुनरावर्तन्ते॥ १४॥

चक्षुरहित भी हजारों नेत्र वाला, कर्णरहित भी हजारों कान वाला, पैररहित भी हजारों पैर वाला, हाथरहित भी हजारों हाथ वाला, सिररहित भी हजारों सिर वाला, विद्या-मन्त्रों का एकमात्र आश्रय, विद्यारूप, विद्यामय, विश्वेश्वर- अजर मैं हूँ। मुझे ही जानकर ज्ञानी भवसागर से पार होते हैं। इसी से मैं पशुपाश-विमोचक (पशु अज्ञान) के फन्दे से मुक्त करने वाला हूँ। पशु से मानव तक भूलोक वासी प्राणी, योगीजन मुझे ही पाने का प्रयत्न (साधना) करते हैं। मुझे प्राप्त कर पुन: इस संसार में नहीं लौटते, नहीं लौटते॥ १३-१४॥

त्रिशूलगां काशीमधिश्रित्य त्यक्तासवोऽपि मय्येव संविशन्ति। प्रज्वलद्वह्निगं हविर्यथा न यजमानमासादयति तथासौ त्यक्त्वा कुणपं न तत्तादृशं पुरा प्राप्नुवन्ति। एष एवादेशः एष उपदेशः। एष एव परमो धर्मः॥ १५॥

त्रिशूल पर स्थित काशी का आश्रय लेकर प्राण त्यागने वाले मुझमें ही प्रवेश करते हैं। जलती अग्नि में डाली गयी हवि जैसे यजमान के पास लौटकर नहीं आती, इसी प्रकार काशी में शरीर छोड़कर फिर उसे प्राप्त नहीं करता। यही आदेश है। यही उपदेश है। यही परम धर्म है॥ १५॥

[अगले मंत्र में ऋषि पुनःस्पष्ट करते हैं कि कर्मकाण्ड के सत्य मानसिक स्थिति को भी उसी के अनुरूप बनाना अनिवार्य है। शरीर से श्रम न करने की प्रवृत्ति को आलस्य तथा मानसिक श्रम से बचने की प्रवृत्ति को प्रमाद कहते हैं। साधक कर्मकाण्ड भर करते हैं, उसके साथ मानस का संयोग नहीं बनाते, उन्हें प्रमादि कहना उचित है। ऋषि मत है कि प्रमाद के कारण कर्मकाण्ड प्राणहीन हो जाता है।]

सत्यात्तत्र कदाचिन्न प्रमदितव्यं तत्रोद्धूलनत्रिपुण्ड्राभ्याम्। तथा रुद्राक्षाधारणात्तथा मदर्चनाच्च। प्रमादेनापि नान्तर्देवसदने पुरीषं कुर्यात्। व्रतान्न प्रमदितव्यम्। तद्धि तपस्तद्धि तपः काश्यामेव मुक्तिकामानाम्॥ १६॥ न तत्त्याज्यं न तत्त्याज्यं मोचकोऽहमविमुक्ते निवसताम्। नाविमुक्तात्परं स्थानम्। नाविमुक्तात्परं स्थानम्॥ १७॥

इस (भस्म धारण रूप) साधना में सत्य से कभी प्रमाद नहीं करना चाहिए और न कभी भस्म से त्रिपुण्ड्र लगाने में और कभी रुद्राक्ष धारण करने तथा मेरी अर्चना में प्रमाद करना चाहिए। कभी भी प्रमादवश देवमंदिर परिसर में शौचादि नहीं करना चाहिए। व्रत में भी प्रमाद नहीं करना चाहिए। मुक्तिकामियों को काशी में ही तप करना चाहिए। उस अविमुक्त स्थान (काशी-भ्रूमध्य) में निवास करने वाले को वह तप कभी नहीं त्यागना चाहिए; क्योंकि मुक्त कराने वाला मैं ही हूँ। अविमुक्त से बढ़कर कोई स्थान पवित्र नहीं है॥ १६-१७॥

काश्यां स्थानानि चत्वारि। तेषामभ्यर्हितमन्तर्गृहम्। तत्राप्यविमुक्तमभ्यर्हितम्। तत्र स्थानानि पञ्च। तन्मध्ये शिवागारमभ्यर्हितम्। तत्र प्राच्यामैश्वर्यस्थानम्। दक्षिणायां विचालनस्थानम्। पश्चिमायां वैराग्यस्थानम्। उत्तरायां ज्ञानस्थानम्। तस्मिन्यदन्तर्निर्लिप्तमव्ययमनाद्यन्तमशेषवेदवेदान्तवेद्यमनिर्देश्यमनिरुक्तमप्रच्यवमाशास्यमद्वैतं सर्वाधारमनाधारमनिरीक्ष्यमहरहर्ब्रह्मविष्णु पुरन्दराद्यमरवरसेवितं मामेव ज्योतिःस्वरूपं लिङ्गं

मामेवोपासितव्यं तदेवोपासितव्यम्॥ १८॥ नैव भावयन्ति तल्लिङ्गं भानुश्चन्द्रोऽग्निर्वायुः। स्वप्रकाशं विश्वेश्वराभिधं पातालमधितिष्ठति। तदेवाहम्॥ १९॥

काशी में चार स्थान हैं। उनमें अन्तर्गृही ही श्रेष्ठ है। उसमें भी अविमुक्त को श्रेष्ठ कहा है। वहाँ भी पाँच स्थान हैं, उनके मध्य में शिव का स्थान है। पूर्व में ऐश्वर्य स्थान है। दक्षिण में विचालन स्थान है। पश्चिम में वैराग्य स्थान तथा उत्तर में ज्ञान स्थान है (ब्रह्म साक्षात्कार की ये क्रमिक अवस्थाएँ हैं, जिन्हें स्थान की संज्ञा देकर अभिहित किया है)। उसमें (ज्ञान-स्थान में) जो निर्लिप्त भाव से अन्दर बैठा है, जो अव्यय, आदि-अन्तरहित, अशेष, वेद-वेदान्त से जानने योग्य, निर्देशरहित, विग्रहरहित, अपतनशील, एकमात्र प्राप्त करने योग्य, द्वैतरहित, सर्वाधार, आधाररहित, दिखाई न देने योग्य, नित्य ब्रह्माविष्णुइन्द्रादि सुरवरों से सेवित ज्योतिस्वरूप है, ऐसे लिङ्ग रूप में मुझे ही पूजा का विषय बनाना चाहिए। निश्चय, मात्र मुझे ही। सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु उस लिङ्ग को प्रकाशित (प्रभावित) नहीं कर पाते। वह तो स्वप्रकाश, विश्वेश्वर नामधारी पाताल तक आसन जमाए है। वह मैं ही हूँ॥ १८-१९॥

तत्रार्चितोऽहम् साक्षादर्चितः। त्रिशाखैर्बिल्वदलै-र्दीप्तैर्वा योऽभिसंपूजयेन्मन्मना मय्याहितासुर्मय्येवार्पिताखिलकर्मा भस्मदिग्धाङ्गो रुद्राक्षभूषणो मामेव सर्वभावेन प्रपन्नो मदेकपूजानिरतः संपूजयेत्। तदहमश्नामि तं मोचयामि संसृतिपाशात्। अहरहरभ्यर्च्य विश्वेश्वरं लिङ्गं तत्र रुद्रसूक्तैरभिषिच्य तदेव स्नपनं पयस्त्रिः पीत्वा महापातकेभ्यो मुच्यते। न शोकमाप्नोति। मुच्यते संसारबन्धनात्॥ २०॥

मेरे उस स्वरूप को त्रिशाखा वाले बिल्वपत्रों से मुझमें मन-प्राण लगाये, सारे कर्मों को मुझे समर्पित किये हुए, भस्माङ्ग धारण किये हुए, रुद्राक्ष के आभूषण पहने हुए, सर्वभाव से मुझे ही प्राप्त हुआ, मात्र मेरी ही पूजा में लगा जो मुझे पूजता है, उसके द्वारा समर्पित सामग्री को मैं खाता हूँ तथा उसे भवपाश से मुक्त कराता हूँ। जो साधक नित्य प्रति विश्वेश्वरलिङ्ग को रुद्रसूक्त से अभिषिक्त करके, उसी अभिषेक जल को तीन बार पी लेता है, वह महापातकों से मुक्त होता है। फिर शोक प्राप्त नहीं करता। संसार बन्धन से मुक्त हो जाता है॥ २०॥

तदनभ्यर्च्य नाश्नीयात्फलमन्नमन्यद्वा। यदश्नी-याद्रेतोभक्षीभवेत्। नापः पिबेत्। यदि पिबेत्पूयपो भवेत्। प्रमादेनैकदा त्वनभ्यर्च्य मां भुक्त्वा भोजयित्वा केशान्वापयित्वा गव्यानां पञ्च संगृह्योपोष्य जले रुद्रस्नानम्। जपेत्त्रिवारं रुद्रानुवाकम्। आदित्यं पश्यन्नभिध्यायन्स्वकृतकर्मकृद्रौद्रैरेव मन्त्रैः कुर्यान्मार्जनम्। ततो भोजयित्वा ब्राह्मणान्पूतो भवति। अन्यथा परेतो यातनामश्नुते। पत्रैः फलैर्वा जलैर्वान्यैर्वाभिपूज्य विश्वेश्वरं मां ततोऽश्नीयात्॥२१॥

अतः बिना लिङ्ग पूजा किये कुछ भी फल- अन्नादि नहीं खाना चाहिए। यदि खाता है, वीर्य ही खाता है। न जल पिये, यदि पीता है, तो मानो पूय (घृणित पेय) पीता है। प्रमादवश एक बार भी पूजा न करके खाता है, खिलाता है अथवा केश-शृंगार करता है, तो पञ्चगव्य पीने से, उपवास रखने से, जल में रुद्र स्नान करने से पवित्र होता है तथा तीन बार रुद्रानुवाक जपने के पश्चात् ध्यानपूर्वक सूर्य को देखता हुआ स्वकर्मकारी रुद्रमन्त्रों से मार्जन करे, फिर ब्राह्मण भोजन कराये, तब वह पवित्र होता है। अन्यथा परलोक में यातना सहता है। पत्ते, फल, जल अथवा अन्य किसी वस्तु से भी मुझ विश्वेश्वर की पूजा करने के पश्चात् ही खाना चाहिए॥ २१॥

कापिलेन पयसाभिषिच्य रुद्रसूक्तेन मामेव शिवलिङ्गरूपिणं ब्रह्महत्यायाः पूतो भवति। कापिलेनदध्नाभिषिच्य सुरापानात्पूतो भवति। कापिलेनाज्येनाभिषिच्य स्वर्णस्तेयात्पूतो भवति। मधुनाभिषिच्य गुरुदारगमनात्पूतोभवति। सितया शर्करयाभिषिच्य सर्वजीववधात्पूतो भवति॥२२॥ क्षीरादिभिरेतैरभिषिच्य सर्वानवाप्नोति कामान्। इत्येकैकं महान्प्रस्थ-शतं महान्प्रस्थशतमानैः शतैरभिपूज्य मुक्तो भवति संसारबन्धनात्॥२३॥

कपिला गौ के दुग्ध से रुद्रसूक्त बोलते हुए शिवलिङ्गरूपी मेरा अभिषेक करने से ब्रह्महत्या के पाप से भी पवित्र हो जाता है। गो-दधि से अभिषेक करके सुरापान से पवित्र हो जाता है। गोघृत से अभिषेक करके स्वर्ण चोरी के पाप से मुक्त होता है। मधु से अभिषेक करके गुरु-पत्नी-गमन के पाप से मुक्त होता है। सफेद शर्करा (चीनीबूरा) से अभिषेक करके सब प्रकार के जीवों के वध से पवित्र होता है। दूध इत्यादि वस्तुओं से किया अभिषेक सब कामनाओं की पूर्ति कराता है। इस प्रकार प्रत्येक सौ सेर की मात्रा से अभिषेक करने से संसार-बन्धन से भी मुक्त हो जाता है॥ २२-२३॥

मामेव शिवलिङ्गरूपिणमार्द्रायांपौर्णमास्यां वाऽमावास्यायां वा महाव्यतीपाते ग्रहणे संक्रान्तावभिषिच्य तिलैः सतण्डुलैः सयवैः संपूज्य बिल्वदलैरभ्यर्च्य कापिलेनाज्यान्वितगन्धसारधूपैः परिकल्प्य दीपं नैवेद्यं साज्यमु-पहारं कल्पयित्वा दद्यात्पुष्पाञ्जलिम्। एवं प्रयतोऽभ्यर्च्य मम सायुज्यमेति॥ २४॥ शतैर्महाप्रस्थैरखण्डैस्तण्डुलैरभिषिच्य चन्द्रलोककामश्चन्द्रलोकमवाप्नोति। तिलैरेतावद्भिर-भिषिच्य वायुलोककामो वायुलोकमवाप्नोति। माषैरेतावद्भिरभिषिच्य वरुणलोककामो वरुणलोकमवाप्नोति। यवैरेतावद्भिरभिषिच्य सूर्यलोककामः सूर्यलोकमवाप्नोति। एतैरेतावद्भिः द्विगुणैरभिषिच्यस्वर्गलोककामः स्वर्गलोकमवाप्नोति। ऐतैरेतावद्भिः चतुर्गुणैरभिषिच्य ब्रह्मलोककामो ब्रह्मलोकमवाप्नोति। एतैरेतावद्भिः शतगुणैरभिषिच्य चतुर्जालं ब्रह्मकोशं यन्मृत्युर्नावपश्यति। तमतीत्य मल्लोककामो मल्लोकमवाप्नोति नान्यं मल्लोकात्परम् यमवाप्य न शोचति। न स पुनरावर्तते न स पुनरावर्तते॥ २५॥

आर्द्रा नक्षत्र में पूर्णमासी या अमावस में अथवा महाव्यतीपात योग में, ग्रहण में, संक्रान्ति में, जौ-चावल-तिलों से पूजा करके, बिल्वपत्रों को चढ़ा, गोघृत मिले गन्ध सार धूपों से सुसज्जित मुझे समर्पित करने पर मेरे सायुज्य को प्राप्त करता है। शत सेर संख्या में पक्के अखण्ड चावलों से किया अभिषेक चन्द्रलोक की कामना को पूर्ण कराता है। सौ सेर पक्के तिलों से किया अभिषेक वायु लोक को प्राप्त कराता है। इतने ही उड़दों से किया अभिषेक वरुण लोक को प्राप्त कराता है। इतने जौ से किया हुआ अभिषेक सूर्यलोक की प्राप्ति कराता है। इन वस्तुओं की दुगुनी मात्रा से किया अभिषेक स्वर्गलोक प्राप्ति की इच्छापूर्ण कराता है। इन वस्तुओं की चतुर्गुणी मात्रा से किया अभिषेक ब्रह्मलोक प्राप्ति की कामना पूर्ण कराता है। इन वस्तुओं की सौगुनी मात्रा से किया अभिषेक चतुर्जाल ब्रह्मकोश की प्राप्ति कराता है, जहाँ मृत्यु का वश नहीं चलता। फिर उसे पार कर साधक मेरे लोक को प्राप्त करता है। मेरे लोक से परे कोई लोक नहीं। जिसे प्राप्त करके शोक नहीं रहता, न उसका पुनरागमन होता है, वहाँ जाकर पुनः नहीं लौटना पड़ता॥ २४-२५॥

लिङ्गरूपिणं मां संपूज्य चिन्तयन्ति योगिनः सिद्धाः सिद्धिं गताः। यजन्ति यज्वानः। मामेव स्तुवन्ति वेदाः साङ्गाः सोपनिषदः सेतिहासाः। न मत्तोऽन्यदहमेव सर्वम्। मयि सर्वं प्रतिष्ठितम्। ततः काश्यां प्रयतैरेवाहमन्वहं पूज्यः॥ २६॥ तत्र गणा रौद्रानना नानामुखा नानाशस्त्रधारिणो नानारूपधरा नानाचिह्निताः। ते सर्वे भस्मदिग्धाङ्गा रुद्राक्षाभरणाः कृताञ्जलयो नित्यमभिध्यायन्ति। तत्र पूर्वस्यां दिशि ब्रह्मा कृताञ्जलिरहर्निशं मामुपास्ते। दक्षिणस्यां दिशि विष्णुः कृत्वैव मूर्धाञ्जलिं मामुपास्ते। प्रतीच्यामिन्द्रः सन्नताङ्ग उपास्ते। उदीच्यामग्निकायमुमाऽनुरक्ता हेमाङ्गविभूषणा हेमवस्त्रा मामुपासते मामेव वेदाश्चतुर्मूर्तिधराः॥ २७॥

लिङ्ग रूप में मुझे पूजकर, चिन्तनशील योगी व सिद्ध सिद्धि को प्राप्त हुए। याज्ञिक मेरा ही यजन करते हैं। समस्त अङ्गों व उपनिषदों, इतिहासों सहित वेद मेरी ही स्तुति करते हैं। मुझसे अन्य कुछ नहीं, मैं ही सब कुछ हूँ। मुझमें सब प्रतिष्ठित है। समर्पित भाव से काशी में मैं ही पूज्य हूँ। वहाँ भयङ्कर मुख वाले, नाना प्रकार के मुँह वाले, भाँति-भाँति के शस्त्र धारण किये, अनेक रूपधारी, अनेक चिह्नों वाले गण हैं। वे सारे भस्म लपेटे, रुद्राक्ष धारण किये, हाथ जोड़े नित्य ध्यान करते रहते हैं। वहाँ पूर्व दिशा में हाथ जोड़े ब्रह्मा मेरी उपासना करते रहते हैं। दक्षिण दिशा में विष्णु सिर पर हाथ जोड़े मेरी उपासना करते हैं। पश्चिम में इन्द्र सिर झुकाये पूजा करते हैं। उत्तर दिशा में सुवर्ण के आभूषण पहने, सुनहरी साड़ी पहने उमा अनुरक्त भाव से मुझ अग्नि शरीर वाले की उपासना करती हैं। चार वेद मूर्ति धारण किये मात्र मेरी उपासना करते हैं॥ २६-२७॥

दक्षिणायां दिशि मुक्तिस्थानं तन्मुक्तिमण्डपसंज्ञितम्। तत्रानेकगणाः पालकाः सायुधाः पापघातकाः। तत्र ऋषयः शांभवाः पाशुपता महाशैवा वेदावतंसं शैवं पञ्चाक्षरं जपन्तस्तारकं सप्रणवं मोदमानास्तिष्ठन्ति। तत्रैका रत्नवेदिका। तत्राहमासीनः काश्यां त्यक्तकुणपाञ्छैवानानीय स्वस्याङ्के संनिवेश्य भसितरुद्राक्षभूषितानुपस्पृश्य मा भूदेतेषां जन्म मृतिश्चेति तारकं शैवं मनुमुपदिशामि। ततस्ते मुक्ता मामनुविशन्ति विज्ञानमयेनाङ्गेन। न पुनरावर्तन्ते हुताशनप्रतिष्ठं हविरिव तत्रैव मुक्त्यर्थमुपदिश्यते शैवोऽयं मन्त्रः पञ्चाक्षरः। तन्मुक्तिस्थानम्। तत ओंकाररूपम्। ततो मदर्पितकर्मणां मदाविष्टचेतसां मद्रूपता भवति। नान्येषामियं ब्रह्मविद्येयं ब्रह्मविद्या॥ २८॥

दक्षिण दिशा में 'मुक्तिमण्डप' नाम वाला मुक्ति स्थान है। वहाँ अनेक गण हैं, कुछ पालक हैं, कुछ शस्त्रधारी पाप की सजा देने वाले हैं। वहाँ ऋषिगण, शाम्भव, पाशुपत, महाशैव, वेदावतंस शैव-पंचाक्षर तारकमन्त्र को प्रणवसहित जपते हुए आनन्दमग्न रहते हैं। वहाँ एक रत्नवेदी होती है। वहाँ स्थित मैं काशी में शरीर छोड़े शैवों को अपनी गोद में लेकर उन रुद्राक्ष धारण किये भक्तों को स्पर्श करके 'इनका पुनर्जन्म-मृत्यु न हो' ऐसा कह तारक शैव-मन्त्र का उपदेश करता हूँ। इसके पश्चात् वे अपने विज्ञानमय शरीर से मुझमें ही प्रवेश कर जाते हैं। अग्नि में डाली गई सामग्री की भाँति वे पुनः संसार में नहीं आते, अतः वहीं पर मुक्ति के लिए तारक पञ्चाक्षर मन्त्र का उपदेश किया जाता है। वही मुक्ति का स्थान है। तभी ओङ्काररूप मुझे अपने कर्म अर्पित करने वाले, मुझमें मन लगाने वाले भक्तों की मेरे साथ एकरूपता होती है। यह ब्रह्मविद्या है। यह ब्रह्मविद्या सामान्य लोगों के लिए नहीं है॥ २८॥

मुमुक्षवः काश्यामेवासीना वीर्यवन्तो विद्यावन्तः। विज्ञानमयं ब्रह्मकोशम्। चतुर्जालं ब्रह्मकोशम्। यन्मृत्युर्नावपश्यति। यं ब्रह्मा नावपश्यति। यं विष्णुर्नावपश्यति। यमिन्द्राग्नी नावपश्येताम्। यं वरुणादयो नावपश्यन्ति। तमेव तत्तेजःप्लुष्टविड्भावं हैममुमां संश्लिष्य वसन्तं चन्द्रकोटिसमप्रभं चन्द्रकिरीटं सोमसूर्याग्निनयनं भूतिभूषितविग्रहं शिवं मामेवमभिध्यायन्तो मुक्तकिल्बिषास्त्यक्तबन्धा मय्येव लीना भवन्ति॥ २९॥ ये चान्ये काश्यां पुरीषकारिणः प्रतिग्रहरतास्त्यक्तभस्मधारणास्त्यक्तरुद्राक्षधारणास्त्यक्तसोमवारव्रतास्त्यक्तग्रहयागास्त्यक्त विश्वेश्वरार्चनास्त्यक्तपञ्चाक्षरजपास्त्यक्तभैरवार्चना भैरवीं घोरादियातनां नानाविधां काश्यां परेता भुक्त्वा ततः शुद्धा मां प्रपद्यन्ते च। अन्तर्गृहे रेतो मूत्रं पुरीषं वा विसृजन्ति तदा तेन सिञ्चन्ते पितृन्। तमेव पापकारिणं मृतं पश्यन्नीललोहितो भैरवस्तं पातयत्यस्त्रमण्डले ज्वलज्ज्वलनकुण्डेष्वन्येष्वपि। ततश्चाप्रमादेन निवसेदप्रमादेन निवसेत्काश्यां लिङ्गरूपिण्यामित्युपनिषत्॥ ३०॥ हरिःॐ तत्सत्॥

मुक्ति के इच्छुक काशी में ही रहते हैं, वे ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करते हुए ब्रह्मविद्या का अभ्यास करते हैं। ब्रह्मकोश विज्ञानमय है। ब्रह्मकोश चतुर्जाल है। जिसे मृत्यु नहीं देख पाती। जिसे ब्रह्मा-विष्णु भी नहीं देख पाते। जिसे इन्द्र-अग्नि भी नहीं देख पाते। जिसे वरुणादि भी नहीं देख पाते। उन्हीं को जिन्हें अपने तेज से विड्भाव (मल-विक्षेप) को भस्म कर दिया है। हेमवर्ण वाली उमा के साथ एकरूप ही रहते हुए , करोड़ों चन्द्रों जैसी प्रभा वाले, चन्द्रमा को मस्तक पर धारण किये, चन्द्र-सूर्य-अग्नि नेत्र वाले, भस्म से अलंकृत विग्रह वाले, ऐसे मुझ शिव को ही ध्यान में लाते हुए , पापों से मुक्त हो, बन्धनों को त्याग कर मुझमें ही लीन हो जाते हैं तथा जो अन्य लोग काशी में पुरीष (मल) करने वाले (सामान्य जीवन व्यतीत करने वाले) अथवा संचय करने में लगे हुए अथवा भस्म धारण को त्यागे हुए, रुद्राक्ष को न धारण करने वाले, सोमवार व्रत को त्यागने वाले, गृहयाग (अग्निहोत्र बलिवैश्वदेवादि) त्यागने वाले, विश्वेश्वर की उपासना त्यागे हुए, पञ्चाक्षर मन्त्र को न जपने वाले, भैरव की पूजा न करने वाले; ये सब भैरवी घोर यातना, नाना प्रकार से काशी में शरीर त्यागकर प्रेत बनकर भोगते हैं, इसके पश्चात् शुद्ध हो मुझे प्राप्त करते हैं। जो लोग मन्दिर में टट्टी-पेशाब-वीर्य त्याग करते हैं, वे अपने पितरों को ही उनसे सींचते हैं। ऐसे पापी मृतात्मा को देखते हुए नीलरक्तवर्ण वाले भैरवजी जलते अस्त्र-मण्डल में अथवा जलते अग्नि कुण्डों में गिराकर दण्ड देते हैं। अतः प्रमादरहित होकर काशी में निवास करे। प्रमादरहित होकर लिङ्गरूपिणी काशी में निवास करे। इस प्रकार यह उपनिषत् (पूर्ण हुई) है॥ २९-३०॥

॥ ॐ भद्रं कर्णेभिः............इति शान्तिः॥

॥ इति भस्मजाबालोपनिषत्समाप्ता॥

॥ मठाम्नायोपनिषद् ॥

॥ शान्तिपाठः ॥

ॐ आप्यायन्तु .... इति शान्तिः ॥ (द्रष्टव्य- अव्यक्तोपनिषद्)

ॐ ऊर्ध्वाम्नायगुरूपदेशभुवनाकारसिंहासनसिद्धाचारवन्दितं समस्तवेदवेदान्त-सारनिर्माणं परात्परं निरञ्जनज्ञानार्थषट्चक्रजाग्रतीमयं परावाचापरात्परं सर्वसाक्षिधृतं चिन्मयं ज्योतिर्लिङ्गं निराकारं गलितं पूर्णप्रभाशोभितं शान्तं चन्द्रोदयनिभं भज मनस्तच्छ्रीगुरुचैतन्यं प्रणमामि ॥ १ ॥

ॐ ऊर्ध्वाम्नाय सम्प्रदाय के गुरु के उपदेशरूप भुवनाकार सिंहासन पर आसीन सिद्धों के आचारों से वन्दित, समस्त वेद, वेदाङ्ग के सार का निर्माण करने वाले, पर से भी पर, निरञ्जन ज्ञान के लिए छः चक्रों को जगाने की प्रेरणा देने वाले, परावाणी की पकड़ से भी बाहर, सबके साक्षि-रूप में धारण किये हुए, चिन्मयज्योति लिङ्ग-स्वरूप, निराकार, बन्धनरहित, पूर्ण प्रभा से सुशोभित, शान्त, उदय होते चन्द्रमा की शोभा जैसे स्वरूप को हे मन! भज, ध्यानकर, इसके लिए श्री गुरु चैतन्य को प्रणाम करता हूँ॥ १ ॥

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् । तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥ २ ॥

अखण्ड मण्डलाकार चराचर जिससे व्याप्त है, उस पद को जिन्होंने दिखाया है, उन श्री गुरु को नमन करता हूँ॥ २ ॥

ॐ प्रथमे पश्चिमाम्नायः शारदामठः कीटवारिसंप्रदायः तीर्थाश्रमपदं द्वारकाक्षेत्रं सिद्धेश्वरो देवः भद्रकाली देवी ब्रह्मस्वरूपाचार्यः गङ्गागोमतीतीर्थं स्वरूपब्रह्मचारी सामवेदप्रपठनं "तत्त्वमसि" इत्यादिवाक्य विचारः नित्यानित्यविवेकेनात्मनोपास्तिं आत्मतीर्थे आत्मोद्धारार्थे साक्षात्कारार्थे संन्यासग्रहणं करिष्ये। ॐ नमो नारायणायेति ॥ ३ ॥

ॐ पहले में पश्चिमाम्नाय शारदा मठ है, जिसमें कीटवारि सम्प्रदाय, तीर्थाश्रमपद, द्वारका क्षेत्र है, सिद्धेश्वर देव हैं, भद्रकाली देवी, ब्रह्मस्वरूप आचार्य, गङ्गा-गोमतीतीर्थ हैं, स्वरूप ब्रह्मचारी है, सामवेद का पठन-पाठन 'तत्त्वमसि' यह वाक्य विचार है, नित्यानित्य विवेक से आत्मा की उपासना के लिए आत्म तीर्थ पर आत्मोद्धार के निमित्त, आत्मसाक्षात्कार के प्रयोजनार्थ संन्यास ग्रहण करता हूँ। ॐ नमो नारायणाय ॥ ३ ॥

ॐ द्वितीये पूर्वाम्नायः गोवर्धनमठः भोगवारिसंप्रदायः वनारण्ये पुरुषोत्तमं क्षेत्रं जगन्नाथः विमला देवी भद्रपद्मपादाचार्यः महोदधितीर्थं प्रकाशब्रह्मचारी ऋग्वेदप्रपठनं तमेवैक्यं जानथ "प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म" इत्यादिवाक्यविचारः नित्यानित्यविवेकेनात्मनोपास्तिं आत्मतीर्थेआत्मो-द्धारार्थे साक्षात्कारार्थे संन्यासग्रहणं करिष्ये। ॐ नमो नारायणायेति ॥ ४ ॥

ॐ द्वितीय में पूर्वाम्नाय, गोवर्धन मठ, भोगवारि सम्प्रदाय है। वन, अरण्य ये उपाधियाँ, पुरुषोत्तम क्षेत्र हैं, जगन्नाथ देव हैं, विमलादेवी, भद्र पद्मपाद आचार्य हैं, महोदधि (बंगखाड़ी) तीर्थ है, प्रकाश ब्रह्मचारी है, ऋग्वेद का पठन-पाठन है। उसी एक को जानो। 'प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म' इत्यादि वाक्यार्थ विचार है, नित्यानित्य विवेक से आत्मोपासना को आत्मा तीर्थ पर आत्मोद्धार के लिए आत्म-साक्षात्कार के प्रयोजन से संन्यास ग्रहण करता हूँ। ॐ नमो नारायणाय॥ ४॥

ॐ तृतीये उत्तराम्नायः ज्योतिर्मठः आनन्दवारिसंप्रदायः गिरिपर्वतसागरपदानि बदरिकाश्रमक्षेत्रं नारायणो देवता पूर्णगिरी देवी त्रोटकाचार्यः अलकनन्दातीर्थं आनन्दब्रह्मचारी अथर्वणवेदपठनं तमे वैक्यं जानथ ''अयमात्मा ब्रह्म'' इत्यादिवाक्यविचारः नित्यानित्यविवेकेनात्मनोपास्तिं आत्मतीर्थेआत्मोद्धारार्थे साक्षात्कारार्थे संन्यासग्रहणं करिष्ये। ॐ नमो नारायणायेति॥ ५॥

ॐ तृतीय में उत्तर आम्नाय ज्योतिर्मठ है। आनन्दवारि सम्प्रदाय है। गिरि-सागर-पर्वत पद हैं। बदरिका आश्रमक्षेत्र है। नारायण देवता, पूर्णगिरी देवी, त्रोटकाचार्य हैं। अलकनन्दा तीर्थ है, आनन्द ब्रह्मचारी है। अथर्ववेद का पठन-पाठन है। उसी एक को जानो ''अयमात्माब्रह्म'' इत्यादि वाक्य विचार है। नित्यानित्य विवेक से आत्मोपासना हेतु आत्मतीर्थ आत्मोद्धारार्थ, साक्षात्कार के प्रयोजनार्थ संन्यास ग्रहण करता हूँ। ॐ नमो नारायणाय॥ ५॥

ॐ चतुर्थे दक्षिणाम्नायः शृङ्गेरीमठः भूरिवारिसंप्रदायः सरस्वतीभारतीपुरी चेतिपदानि रामेश्वरक्षेत्रं आदिवराहो देवता कामाक्षी देवी शृंगी ऋषिः पृथ्वीधराचार्यः तुङ्गभद्रातीर्थं चैतन्यब्रह्मचारी यजुर्वेदप्रपठनं तमेवैक्यं जानथ ''अहं ब्रह्मास्मि'' इत्यादिवाक्यविचारः नित्यानित्यविवेकेनात्मनोपास्तिं आत्मतीर्थे आत्मोद्धारार्थे साक्षात्कारार्थे संन्यासग्रहणं करिष्ये। ॐ नमो नारायणायेति॥ ६॥

ॐ चतुर्थ में दक्षिण आम्नाय शृंगेरीमठ है। भूरिवारिसम्प्रदाय है। सरस्वती, भारती, पुरी ये पद हैं। रामेश्वर क्षेत्र है। आदि वराह देवता है। कामाक्षी देवी, शृंगी ऋषि, पृथ्वीधर आचार्य हैं। तुंगभद्रा तीर्थ है। चैतन्य ब्रह्मचारी है। यजुर्वेद का पठन-पाठन है। उसी एक को जानो, इस निमित्त ''अहं ब्रह्मास्मि'' इत्यादि वाक्य विचार है। नित्यानित्य विवेक से आत्मोपासना हेतु आत्मतीर्थ पर आत्मोद्धार के लिए, आत्मसाक्षात्कार के प्रयोजनार्थ संन्यास ग्रहण करता हूँ। ॐ नमो नारायणाय॥ ६॥

ॐ पञ्चमे ऊर्ध्वाम्नायः सुमेरुमठः काशीसंप्रदायः जनकयाज्ञवल्क्यादिशुकवाम-देवादिजीवन्मुक्ताः एतत्सनकसनन्दनकपिलनारदादिब्रह्मनिष्ठाः नित्यब्रह्मचारी कैलासक्षेत्रं मानससरोवरं तीर्थं निरञ्जनो देवता माया देवी ईश्वराचार्यः अनन्तब्रह्मचारी शुकदेववामदेवा-दिजीवन्मुक्तानां सुसंवेदप्रपठनं परोरजसेऽसावदों 'संज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इत्यादिवाक्यविचारः नित्यानित्यविवेकेनात्मनोपास्तिं आत्मतीर्थे आत्मोद्धारार्थे साक्षात्कारार्थे संन्यासग्रहणं करिष्ये। ॐ नमो नारायणायेति॥ ७॥

ॐ पञ्चम में ऊर्ध्वाम्नाय सुमेरुमठ है। काशीसम्प्रदाय; जनक, याज्ञवल्क्यादि, शुकवामदेवादि जीवन्मुक्त जन, सनक-सनन्दन, कपिल, नारदादि ब्रह्मनिष्ठजन नित्य ब्रह्मचारी हैं, कैलास क्षेत्र है, मानसरोवर तीर्थ है, निरञ्जन देवता है, माया देवी है, ईश्वर आचार्य है, अनन्त-ब्रह्मचारी शुकदेव, वामदेवादि जीवन्मुक्तों का सुसंवेद पठन-पाठन परोरजसेऽसावदोम् है, 'संज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इत्यादि वाक्य विचार है। नित्यानित्य विवेक से आत्मोपासना हेतु आत्मतीर्थ में आत्मोद्धार के लिए, आत्मसाक्षात्कार के निमित्त संन्यास ग्रहण करता हूँ। ॐ नमो नारायणाय ॥ ७ ॥

ॐ षष्ठे आत्माम्नायः परमात्मा मठः सत्यसुसंप्रदायः नाभिकुण्डलिक्षेत्रं त्रिकुटी तीर्थं हंसो देवी परमहंसो देवता अजपासोऽहंमहामन्त्रः ब्रह्मविष्णुमहेश्वराद्याः जीवब्रह्मचारी हंसविद उपास्तिः उपाधिभेदसंन्यासार्थं ज्ञानसंन्यासग्रहणं करिष्ये। ॐ नमो नारायणेति ॥ ८ ॥

ॐ छठे में आत्माम्नाय परमात्मा मठ है। सत्य सुसम्प्रदाय है, नाभि कुण्डलि क्षेत्र है। त्रिकुटी तीर्थ, हंस देवी, परमहंस देवता, अजपासोऽहं महामन्त्र है, ब्रह्माविष्णुमहेश्वर आदि आचार्य, जीव ब्रह्मचारी, हंसवित् की उपासना, उपाधि भेद के संन्यास के लिए ज्ञान--संन्यास ग्रहण करता हूँ। ॐ नमो नारायणाय ॥ ८ ॥

ॐ सप्तमे जम्बूद्वीपः सम्यज्ज्ञानं शिखा न सूत्रं वेद्यवेदकः श्रद्धा नदी विमलातीर्थं आत्मलिङ्गशान्त्यर्थे विचारः नित्यानित्यविवेकेन आत्मनोपास्तिं आत्मतीर्थे आत्मोद्धारार्थे साक्षात्कारार्थे संन्यासग्रहणं करिष्ये। ॐ नमो नारायणायेति ॥ ९ ॥

ॐ सातवें में जम्बूद्वीप, सम्यक् ज्ञान, शिखा-सूत्रविहीन वेद्य को (जानने योग्य को) जानने वाला, श्रद्धा नदी, विमला तीर्थ, आत्मलिङ्ग शान्ति प्रयोजन के लिए विचार, नित्यानित्य विवेक से आत्मोपासना, आत्मतीर्थ में आत्मोद्धार के लिए, आत्मसाक्षात्कार के लिए संन्यास ग्रहण करता हूँ। ॐ नमो नारायणाय ॥ ९ ॥

॥ ॐ आप्यायन्तु..................इति शान्तिः ॥

॥ इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छङ्कराचार्यविरचिता मठाम्नायोपनिषत् समाप्ता ॥

॥ महोपनिषद् ॥

॥ शान्तिपाठः ॥

॥ ॐ भद्रं कर्णेभिः.................. इति शान्तिः ॥ (द्रष्टव्य- अथर्वशिखोपनिषद्)

अथातो महोपनिषदमेव। तदाहुरेको ह वै नारायण आसीन्न ब्रह्मा न ईशानो नापो नाग्नीषोमौ नेमे द्यावापृथिवी न नक्षत्राणि न सूर्यः स एकाकी नर एव। तस्य ध्यानान्तःस्थस्य यन्नःस्तोममुच्यते। तस्मिन् पुरुषाश्चतुर्दशाजायन्त एका कन्या। दशेन्द्रियाणि मन एकादशम्। तेजो द्वादशम्। अहङ्कारस्त्रयोदशः। प्राणाश्चतुर्दश आत्मा। पञ्चदशी बुद्धिः। पञ्चतन्मात्राणि पञ्चमहाभूतानि। स एष पञ्चविंशकः पुरुषः। तं पुरुषं पुरुषो निवेश्य। नास्य प्रजा नसंवत्सरा जायन्ते संवत्सरादधि जायन्ते॥ १ ॥

अब हम महोपनिषद् का वर्णन करते हैं। जिसमें कहा गया है- एक नारायण ही थे, न ब्रह्मा थे, न शङ्कर थे, न जल था, न अग्नि- चन्द्रमा थे, न ये आकाश पृथिवी थे, न नक्षत्र, न सूर्य ही। वे एकाकी नर थे। जब वे अन्तःकरण में ध्यानस्थ हुए जिसे अन्धकार कहा जाता है। उसमें चौदह पुरुष तथा एक कन्या उत्पन्न हुई। दस इन्द्रियाँ, ग्यारहवाँ मन, बारहवाँ तेज। तेरहवाँ अहङ्कार। चौदहवाँ प्राणस्वरूप आत्मा। पन्द्रहवीं बुद्धि। पञ्चमहाभूत, पञ्च तन्मात्राएँ। यह पच्चीस तत्त्व वाला पुरुष हुआ। उस पुरुष में पुरुष का प्रवेश हुआ अर्थात् चेतन तत्त्व का प्रवेश हुआ। अभी न प्रजा न संवत्सर उत्पन्न हुआ था। इसके बाद संवत्सर अर्थात् काल बना। इसके बाद सृष्टि का प्रारम्भ हुआ॥ १॥

इत्यथ पुनरेव नारायणः सोऽन्यत्कामो मनसा ध्यायेत तस्य ध्यानान्तःस्थस्य ललाटात्त्र्यक्षः शूलपाणिः पुरुषोऽजायत बिभ्रच्छ्रियं सत्यं ब्रह्मचर्यं तपो वैराग्यं मन ऐश्वर्यं सप्रणवा व्याहृतय ऋग्यजुःसामाथर्वाङ्गिरसः सर्वाणि छन्दांसि तान्यङ्गेष्वाश्रितानि॥ २ ॥

इसके पश्चात् वे नारायण प्रजा के संकल्प से मन से ध्यानस्थ हुए। अन्तःकरण में ध्यान से उनके ललाट से तीन नेत्र वाला शूलपाणि पुरुष उत्पन्न हुआ, जो श्री, सत्य, ब्रह्मचर्य, तप, वैराग्य, मन एवं ऐश्वर्य को धारण किये हुए था। ॐकार सहित वेद-ऋग् यजुष् साम अथर्वाङ्गिरस, सारे छन्द उसके अंगों में आश्रित थे॥ २॥

अथ पुनरेव नारायणः सोऽन्यत्कामो मनसा ध्यायेत। तस्य ध्यानान्तःस्थस्य ललाटात्स्वेदोऽपतत्। ता इमाः प्रतता आपस्तासु तेजो हिरण्मयमण्डं तत्र ब्रह्मा चतुर्मुखोऽजायत। सोऽध्यायत पूर्वामुखो भूत्वा भूरिति व्याहृतिर्गायत्रं छन्द ऋग्वेदः। पश्चिमामुखो भूत्वा भुव इति व्याहृतिस्त्रैष्टुभं छन्दो यजुर्वेदः। उत्तरामुखो भूत्वों स्वरिति व्याहृतिर्जागतं छन्दः सामवेदः। दक्षिणामुखो भूत्वों जनदिति व्याहृत्यानुष्टुभं छन्दोऽथर्ववेदः। ॐ सहस्त्रशीर्षं देवं सहस्त्राक्षं विश्वशम्भुवम्। विश्वतः परमं नित्यं विश्वं नारायणं हरिम्। विश्वमेवेदं पुरुषं तं विश्वमुपजीवति। ऋषिं विश्वेश्वरं देवं समुद्रेतं विश्वरूपिणम्। पद्मकोशप्रतीकाशं

लम्बत्यकोशसन्निभम्। हृदये चाप्यधोमुखं सन्तते शीकराभिश्च। तस्य मध्ये महानर्चिर्विश्वार्चिविश्वतोमुखम्। तस्य मध्ये वह्निशिखा अणीयोर्ध्वा व्यवस्थिता। तस्यै शिखायै मध्ये पुरुषः परमात्मा व्यवस्थितः। स ब्रह्मा स ईशानः सोऽक्षरः परमः स्वराट्॥ ३॥

इसके पश्चात् नारायण ने सृष्टि प्रक्रिया के विस्तार की कामना से पुनः ध्यान किया। ध्यानावस्था में उनके ललाट से स्वेद (पसीना) गिरा। जिससे विस्तार पाकर ये जल उत्पन्न हुआ, उसमें तेज, हिरण्यमय अण्ड, उसमें चतुर्मुख ब्रह्मा का जन्म हुआ। उन्होंने पूर्वाभिमुख होकर भूः व्याहृति वाले गायत्री छन्द से ऋग्वेद का ध्यान किया। पश्चिमाभिमुख होकर भुवः इस व्याहृति के साथ त्रैष्टुभ छन्द से यजुर्वेद का ध्यान किया। दक्षिणाभिमुख होकर स्वः इस व्याहृति के साथ जागत छन्द से सामवेद का ध्यान किया। दक्षिणाभिमुख होकर ॐ जनः इस व्याहृति के साथ आनुष्टुभ छन्द से अथर्ववेद का ध्यान किया। ॐ सहस्रशीर्ष वाला, सहस्रनेत्रों वाला, विश्व की उत्पत्ति का कारणस्वरूप, विश्व से परे, नित्य विश्वस्वरूप यह पुरुष ही नारायण है। यह सारा विश्व ही वह पुरुष है। यह उसी से जीवित है, उसी के आश्रित है। उन नारायण ऋषिदेव को, जिनके तेज से विश्वरूपधारी, पद्मकोश की शोभा वाला, लम्बाई में कुछ अधिक अर्थात् लम्बी नालयुक्त कमल उत्पन्न हुआ, जो हृदय में अधोमुख अवस्था में जल बिन्दुयुक्त सर्वदा विद्यमान था। उसके मध्य में महान् अर्चि, विश्वार्चि विश्वतोमुख रूप से विद्यमान था। उस अर्चि के मध्य में पतली वह्निशिखा ऊर्ध्वमुखी व्यवस्थित थी। उस शिखा के मध्य में पुरुष परमात्मा विद्यमान थे। वही ब्रह्मा, वही शिव, वही अक्षर, वही परम स्वराट् है॥३॥

य इदं महोपनिषदं ब्राह्मणोऽधीतेऽश्रोत्रियः श्रोत्रियो भवत्यनुपनीत उपनीतो भवति। सोऽग्निपूतो भवति। स वायुपूतो भवति। स सूर्यपूतो भवति। स सोमपूतो भवति। स सत्यपूतो भवति। स सर्वपूतो भवति। स सर्वैर्देवैर्ज्ञातो भवति। स सर्वैर्वेदैरनुध्यातो भवति। स सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति। तेन सर्वैः क्रतुभिरिष्टं भवति। गायत्र्याः षष्टिसहस्राणि जप्तानि भवन्ति। इतिहासपुराणानां रुद्राणां शतसहस्राणि जप्तानि भवन्ति। प्रणवानामयुतं जप्तं भवति। आ चक्षुषः पंक्तिं पुनात्यासप्तमात्पुरुषयुगात्पुनातीत्याह भगवान् हिरण्यगर्भः। जाप्येनामृतत्वं गच्छत्यमृतत्वं गच्छतीति॥ ४॥

इस महोपनिषद् को जो ब्राह्मण पढ़ता है, भले ही वह श्रोत्रिय हो अथवा अश्रोत्रिय हो, वह अनुपवीत (बिना यज्ञोपवीत का) भी उपवीत हो जाता है। वह अग्निपूत होता है। वह वायुपूत होता है। वह सूर्यपूत होता है। वह सोमपूत होता है। वह सत्यपूत होता है। वह सभी से पवित्र हुआ हो जाता है। सब देवों द्वारा ज्ञात (उपकृत) होता है। सब वेदों के अध्ययन का फल प्राप्त करता है। सब तीर्थों के स्नान का पुण्यलाभ प्राप्त करता है। सारे यज्ञों के अनुष्ठान का फलभागी होता है। साठ सहस्र गायत्री के जप का फलभागी होता है। इतिहास पुराण, शिवपुराण, आदि के लाखों परायण करने का फलभागी होता है। दस करोड़ प्रणव जपने का पुण्य लाभ प्राप्त करता है। जितने उसके सम्मुख होते हैं, उन सभी परिवार वालों को तथा कुल (परिवार) की सात पीढ़ियों के जनों (लोगों) का उद्धार करता है, ऐसा भगवान् हिरण्यगर्भ कहते हैं। जपने से अमृतत्व अर्थात् मुक्ति को प्राप्त करता है॥४॥

॥ ॐ भद्रं कर्णेभिः.............इति शान्तिः॥

॥ इति महोपनिषत्समाप्ता॥

॥ मुक्तिकोपनिषद् ॥

॥ शान्तिपाठः ॥

॥ ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं..............इति शान्तिः ॥ (द्रष्टव्य- तारसारोपनिषद्)

॥ अथ प्रथमोध्यायः ॥

अयोध्यानगरे रम्ये रत्नमण्डपमध्यमे। सीताभरतसौमित्रिशत्रुघ्नाद्यैः समन्वितम्॥ १ ॥

(एक समय) सुरम्य अयोध्यापुरी में भगवती सीता, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न आदि के सहित भगवान् श्रीरामचन्द्रजी रत्नजटित मण्डप के मध्य सिंहासन पर विराजमान थे॥ १ ॥

सनकाद्यैर्मुनिगणैर्वसिष्ठाद्यैः शुकादिभिः। अन्यैर्भागवतैश्चापि स्तूयमानमहर्निशम्॥ २ ॥

वसिष्ठ आदि गुरुजन- सनक- सनन्दनादि मुनिगण एवं शुकदेव आदि अनेक भगवत्- परायण लोग उनकी वन्दना कर रहे थे॥ २ ॥

धीविक्रियासहस्राणां साक्षिणं निर्विकारिणम्। स्वरूपध्याननिरतं समाधिविरमे हरिम्॥ ३ ॥
भक्त्या शुश्रूषया रामं स्तुवन्पप्रच्छ मारुतिः। राम त्वं परमात्मासि सच्चिदानन्दविग्रहः॥ ४॥
इदानीं त्वां रघुश्रेष्ठ प्रणमामि मुहुर्मुहुः। त्वद्रूपं ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतो राम मुक्तये॥ ५ ॥

बुद्धि के द्वारा उत्पन्न हजारों बुराइयों को साक्षीभाव से देखने वाले, निर्विकार, सर्वान्तर्यामी, भगवान् श्री रामचन्द्रजी एक बार आत्मचिन्तन करते हुए समाधि-अवस्था से जब विरत हुए, उस समय भक्तिपूर्वक सेवा करते हुए प्रार्थनापूर्वक हनुमान् जी ने भगवान् श्रीरामचन्द्रजी से प्रश्न किया— हे भगवन्! आप सत्, चित्, आनन्द स्वरूप परमपिता परमात्मा हैं, इसलिए हे रघुश्रेष्ठ! आपको बारम्बार नमस्कार है, हे श्रीराम! मैं आपके मुक्तिप्रदायक स्वरूप को यथार्थरूप से जानना चाहता हूँ॥ ३-५ ॥

अनायासेन येनाहं मुच्येयं भवबन्धनात्। कृपया वद मे राम येन मुक्तो भवाम्यहम्॥ ६ ॥

जिसके जान लेने से इस संसार के बन्धन से मैं बिना प्रयास ही छूट जाऊँ। हे राम! आप कृपा करके वह मार्ग बतायें, जिससे मैं मुक्ति प्राप्त कर सकूँ॥ ६ ॥

साधु पृष्टं महाबाहो वदामि शृणु तत्त्वतः। वेदान्ते सुप्रतिष्ठोऽहं वेदान्तं समुपाश्रय॥ ७॥

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने कहा— हे महाबाहु हनुमान्! तुम्हारा प्रश्न बहुत सुन्दर है। सुनो, मैं यथार्थ बात कहता हूँ। मैं वेदान्त में प्रतिष्ठित रहता हूँ। वहीं मेरा सत्स्वरूप भली प्रकार वर्णित है, इसलिए हे साधु! तुम वेदान्त का आश्रय ग्रहण करो॥ ७॥

वेदान्ताः के रघुश्रेष्ठ वर्तन्ते कुत्र ते वद। हनूमञ्छृणु वक्ष्यामि वेदान्तस्थितिमञ्जसा॥ ८॥

(तब) हनुमान् जी ने (पुनः) प्रश्न किया— हे रघुश्रेष्ठ! वेदान्त क्या है और वह कहाँ स्थित है? श्री रामचन्द्रजी ने कहा— हे हनुमान्! सुनो, मैं भली प्रकार वेदान्त की स्थिति तुम्हें बताऊँगा॥ ८॥

निःश्वासभूता मे विष्णोर्वेदा जाताः सुविस्तराः। तिलेषु तैलवद्वेदे वेदान्तः सुप्रतिष्ठितः॥९॥

मुझ विष्णु के निःश्वास से चारों वेद निःसृत हुए। जिस प्रकार तिलों में तेल होता है, उसी प्रकार वेदों में वेदान्त सुप्रतिष्ठित है॥ ९॥

राम वेदाः कतिविधास्तेषां शाखाश्च राघव। तासूपनिषदः काः स्युः कृपया वद तत्त्वतः॥ १०॥

हनुमान् जी ने प्रश्न किया— हे श्रीरामचन्द्र जी! हे राघव! कितने प्रकार के वेद हैं और वेदों की शाखाएँ कितनी हैं एवं उनकी कौन-कौन सी उपनिषदें हैं? (यह सब) मुझे यथार्थ रूप से बताने की कृपा करें॥ १०॥

श्रीराम उवाच। ऋग्वेदादिविभागेन वेदाश्चत्वार ईरिताः। तेषां शाखा ह्यनेकाः स्युस्तासूपनिषदस्तथा॥ ११॥

भगवान् श्रीरामचन्द्र जी ने कहा— ऋग्वेद आदि (ऋग्, यजु, साम, अथर्व) विभाग के अनुसार चार वेद कहे गये हैं। उन वेदों की अनेक शाखाएँ हैं एवं उन शाखाओं की उपनिषद् भी अनेक कही गयी हैं॥ ११॥

ऋग्वेदस्य तु शाखाः स्युरेकविंशतिसंख्यकाः।
नवाधिकशतं शाखा यजुषो मारुतात्मज॥ १२॥
सहस्रसंख्यया जाताः शाखाः साम्नः परन्तप।
अथर्वणस्य शाखाः स्युः पञ्चाशद्भेदतो हरे॥ १३॥

हे पवनपुत्र! इक्कीस शाखाएँ ऋग्वेद की और एक सौ नौ शाखाएँ यजुर्वेद की हैं। हे परन्तप! सहस्र शाखाएँ सामवेद की और पचास भेद (विभाग) अथर्ववेद के कहे गये हैं॥ १२-१३॥

एकैकस्यास्तु शाखाया एकैकोपनिषन्मता। तासामेकामृचं यश्च पठते भक्तितो मयि॥ १४॥
स मत्सायुज्यपदवीं प्राप्नोति मुनिदुर्लभाम्। राम केचिन्मुनिश्रेष्ठ मुक्तिरेकेति चक्षिरे॥ १५॥

(उन सभी शाखाओं में) प्रत्येक शाखा की एक-एक उपनिषद् कही गयी है, उनमें से किसी भी शाखा की एक ऋचा के भक्तिपूर्वक पाठ करने मात्र से मानव मुनियों के लिए भी दुर्लभ मेरी सायुज्य मुक्ति प्राप्त कर लेता है। हनुमान् जी ने कहा— हे श्रीरामजी! कई मुनिश्रेष्ठ कहते हैं कि मुक्ति एक ही तरह की है॥ १४-१५॥

केचित्त्वन्नामभजनात्काश्यां तारोपदेशतः। अन्ये तु सांख्ययोगेन भक्तियोगेन चापरे॥ १६॥

कुछ मुनियों का कहना है कि तुम्हारे नाम के स्मरण करने वाले को मुक्ति मिलती है एवं जिनकी मृत्यु काशी में होती है, उनको भगवान् शंकर तारकमन्त्र का उपदेश देते हैं। अन्य मुनिजन कहते हैं कि सांख्ययोग के द्वारा तथा कुछ मुनियों का कहना है कि भक्तियोग के द्वारा प्राणी को मुक्ति मिलती है॥ १६॥

अन्ये वेदान्तवाक्यार्थविचारात्परमर्षयः। सालोक्यादिविभागेन चतुर्धा मुक्तिरीरिता॥ १७॥

अनेक महर्षिजन कहते हैं कि वेदान्त के वाक्यों का अर्थपूर्वक विचार करने से मुक्ति मिलती है। सालोक्य आदि (सालोक्य, सारूप्य, सायुज्य, सामीप्य) के विभाग से मुक्ति चार प्रकार की कही गयी है॥ १७॥

स होवाच श्रीरामः। कैवल्यमुक्तिरेकैव पारमार्थिकरूपिणी। दुराचाररतो वापि मन्नामभजनात्कपे॥ १८॥ सालोक्यमुक्तिमाप्नोति न तु लोकान्तरादिकम्। काश्यां तु ब्रह्मनालेऽस्मिन्मृतो मत्तारमाप्नुयात्॥ १९॥

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने कहा– कैवल्य मुक्ति एक ही तरह की है, जिसे परमार्थरूपिणी कहा गया है। हे कपिवर! यदि दुराचारी व्यक्ति भी हमारा नाम स्मरण (जप) करता है, तो वह भी सालोक्य–मुक्ति को प्राप्त होता है, अन्य लोकों में नहीं जाता। काशी–तीर्थ में ब्रह्मनाल नाम के क्षेत्र में जिसकी मृत्यु होती है, उसे हमारा तारकमन्त्र प्राप्त होता है॥ १८–१९॥

पुनरावृत्तिरहितां मुक्तिं प्राप्नोति मानवः। यत्र कुत्रापि वा काश्यां मरणे स महेश्वरः॥ २०॥ जन्तोर्दक्षिणकर्णे तु मत्तारं समुपादिशेत्। निर्धूताशेषपापौघो मत्सारूप्यं भजत्ययम्॥ २१॥

(तारक मन्त्र के प्रभाव से) मनुष्य पुनरावृत्ति रहित मुक्ति प्राप्त करता है। काशी तीर्थ में यदि कहीं भी प्राणी की मृत्यु हो जाये, तो उस जीव के दक्षिण कान में भगवान् शंकर जी मेरे तारकमंत्र का उपदेश करते हैं। उसके प्रभाव से जीव के समस्त पापसमूह नष्ट होकर वह मेरी सारूप्य मुक्ति को प्राप्त हो जाता है॥ २०–२१॥

सैव सालोक्यसारूप्यमुक्तिरित्यभिधीयते। सदाचाररतो भूत्वा द्विजो नित्यमनन्यधीः॥ २२॥ मयिसर्वात्मके भावो मत्सामीप्यं भजत्ययम्। सैव सालोक्यसारूप्यसामीप्या मुक्तिरिष्यते॥ २३॥

उसी को सारूप्य–सामीप्य, सालोक्य मुक्ति कहते हैं। सदाचार में निरत रहकर जो द्विज नित्य अनन्य भाव से मेरा ध्यान करता है और मुझे सर्वात्मभाव से भजता है, उसे हमारी सामीप्य मुक्ति प्राप्त होती है। उसे ही सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य मुक्ति कहा जाता है॥ २२–२३॥

गुरूपदिष्टमार्गेण ध्यायन्मद्गुणमव्ययम्। मत्सायुज्यं द्विजः सम्यग्भजेद्भ्रमरकीटवत्॥ २४॥ सैव सायुज्यमुक्तिः स्याद्ब्रह्मानन्दकरी शिवा। चतुर्विधा तु या मुक्तिर्मदुपासनया भवेत्॥ २५॥

जब साधक गुरु के द्वारा बताये हुए मार्ग पर चलते हुए मेरे शाश्वत, निर्विकार स्वरूप का ध्यान करता है, तब वह द्विज भ्रमर–कीट की तरह मेरी सायुज्य मुक्ति को प्राप्त करता है। वही शिवस्वरूप ब्रह्मानन्द प्राप्त कराने वाली सायुज्य–मुक्ति है। मेरी उपासना के द्वारा चार तरह की मुक्ति प्राप्त होती है। (१. सालोक्य, २. सारूप्य, ३. सायुज्य और ४. सामीप्य– ये चार प्रकार की मुक्तियाँ कही गई हैं)॥ २४–२५॥

इयं कैवल्यमुक्तिस्तु केनोपायेन सिध्यति। माण्डूक्यमेकमेवालं मुमुक्षूणां विमुक्तये॥ २६॥

जिस उपाय के द्वारा कैवल्य मुक्ति की सिद्धि होती है, वह तुम्हें बताता हूँ। सुनो! केवल माण्डूक्य उपनिषद् का अध्ययन–मनन ही मुमुक्षुजनों को मुक्ति प्रदान करने में सक्षम है॥ २६॥

तथाप्यसिद्धं चेज्ज्ञानं दशोपनिषदं पठ। ज्ञानं लब्ध्वाऽचिरादेव मामकं धाम यास्यसि॥ २७॥

उससे भी यदि ज्ञान की सिद्धि न हो, तो दस-उपनिषदों का अध्ययन-मनन किया जाये। उस ज्ञान के सिद्ध हो जाने पर साधक शीघ्र ही मेरे तेज:स्वरूप अद्वैत धाम को प्राप्त हो जायेगा॥ २७॥

तथापि दृढता नो चेद्विज्ञानस्याञ्जनासुत। द्वात्रिंशाख्योपनिषदं समभ्यस्य निवर्तय॥ २८॥

हे अञ्जनीनन्दन! यदि उनके पाठ से भी दृढ़ ज्ञान न हो, तो बत्तीस उपनिषदों का भली प्रकार अभ्यास करके सांसारिक बंधनों से मुक्त हो जाओ॥ २८॥

विदेहमुक्ताविच्छा चेदष्टोत्तरशतं पठ। तासां क्रमं सशान्तिं च शृणु वक्ष्यामि तत्त्वत:॥ २९॥

यदि विदेह मुक्ति (शरीर छोड़ने के उपरान्त मुक्ति प्राप्ति) की इच्छा हो, तो (जीवनकाल में ही) एक सौ आठ उपनिषदों का पाठ करो। उनके नाम, क्रम एवं शान्तिपाठ के साथ तत्त्व रूप से वर्णन करता हूँ, सुनो॥ २९॥

ईशकेनकठप्रश्नमुण्डमाण्डूक्यतित्तिरि:। ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं तथा॥ ३०॥ ब्रह्मकैवल्यजाबालश्वेताश्वो हंस आरुणि:। गर्भोनारायणो हंसो बिन्दुर्नादशिर: शिखा॥ ३१॥ मैत्रायणी कौषीतकी बृहज्जाबालतापनी। कालाग्निरुद्रमैत्रेयी सुबालक्षुरिमन्त्रिका॥ ३२॥ सर्वसारं निरालम्बं रहस्यं वज्रसूचिकम्। तेजोनादध्यानविद्यायोगतत्त्वात्मबोधकम्॥ ३३॥ परिव्राट् त्रिशिखी सीता चूडा निर्वाणमण्डलम्। दक्षिणा शरभं स्कन्दं महानारायणाह्वयम्॥ ३४॥ रहस्यं रामतपनं वासुदेवं च मुद्गलम्। शाण्डिल्यं पैङ्गलं भिक्षुमहच्छारीरकं शिखा॥ ३५॥ तुरीयातीतसंन्यासपरिव्राजाक्षमालिका। अव्यक्तैकाक्षरं पूर्णा सूर्याक्ष्यध्यात्मकुण्डिका॥ ३६॥ सावित्र्यात्मा पाशुपतं परं ब्रह्मावधूतकम्। त्रिपुरातपनं देवीत्रिपुरा कठभावना। हृदयं कुण्डली भस्म रुद्राक्षगणदर्शनम्॥ ३७॥ तारसारमहावाक्यपञ्चब्रह्माग्निहोत्रकम्। गोपालतपनं कृष्णं याज्ञवल्क्यं वराहकम्॥ ३८॥ शाट्यायनी हयग्रीवं दत्तात्रेयं च गारुडम्। कलिजाबालिसौ-भाग्यरहस्यऋचमुक्तिका॥ ३९॥

१. ईश
२. केन
३. कठ
४. प्रश्न
५. मुण्डक
६. माण्डूक्य
७. तैत्तिरीय
८. ऐतरेय
९. छान्दोग्य
१०. बृहदारण्यक

११. ब्रह्म

१२. कैवल्य

१३. जाबाल

१४. श्वेताश्वतर

१५. हंस

१६. आरुणिक

१७. गर्भ

१८. नारायण

१९. परमहंस

२०. अमृतबिन्दु

२१. अमृतनाद

२२. अथर्वशिरस्

२३. अथर्वशिखा

२४. मैत्रायणी

२५. कौषीतकि ब्राह्मण

२६. बृहज्जाबाल

२७. नृसिंहतापनीय

२८. कालाग्नि

२९. मैत्रेयी

३०. सुबाल

३१. क्षुरिका

३२. मंत्रिका

३३. सर्वसार

३४. निरालम्ब

३५. शुकरहस्य

३६. वज्रसूचिका

३७. तेजोबिन्दु

३८. नादबिन्दु

३९. ध्यानबिन्दु

४०. ब्रह्मविद्या

४१. योगतत्त्व

४२. आत्मतत्त्व

४३. नारदपरिव्राजक

४४. त्रिशिखब्राह्मण

४५. सीता

४६. योग चूड़ामणि

४७. निर्वाण

४८. मण्डल ब्राह्मण

४९. दक्षिणामूर्ति

५०. शरभ

५१. स्कन्द

५२. त्रिपाद विभूति महानारायण

५३. अद्वय तारक

५४. रामरहस्य

५५. रामतापनीय

५६. वासुदेव

५७. मुद्‌गल

५८. शाण्डिल्य

५९. पैंगल

६०. भिक्षुक

६१. महत्(महोपनिषद्)

६२. शारीरक

६३. योग शिखा

६४. तुरीयातीत

६५. संन्यास

६६. परमहंस परिव्राजक

६७. अक्षमाला

६८. अव्यक्त

६९. एकाक्षर

७०. अन्नपूर्णा

७१. सूर्य
७२. अक्षि
७३. अध्यात्म
७४. कुण्डिका
७५. सावित्री
७६. आत्मा
७७. पाशुपत
७८. परब्रह्म
७९. अवधूत
८०. त्रिपुरतापनीय
८१. देवी
८२. त्रिपुरा
८३. कठरुद्र
८४. भावना
८५. रुद्र रहस्य
८६. योग कुण्डली
८७. भस्म जाबाल
८८. रुद्राक्ष जाबाल
८९. गणपति
९०. जाबाल दर्शन
९१. तारसार
९२. महावाक्य
९३. पञ्चब्रह्म
९४. प्राणाग्निहोत्र
९५. गोपाल तापनीय
९६. कृष्ण
९७. याज्ञवल्क्य
९८. वराह
९९. शाट्यायनीय
१००. हयग्रीव

१०१. दत्तात्रेय

१०२. गरुड़

१०३. कलि संतरण

१०४. जाबालि

१०५. सौभाग्यलक्ष्मी

१०६. सरस्वती रहस्य

१०७. ऋच (बह्वृच)

१०८. मुक्तिकोपनिषद्॥ ३०-३९॥

एवमष्टोत्तरशतं भावनात्रयनाशनम् । ज्ञानवैराग्यदं पुंसां वासनात्रयनाशनम्॥ ४०॥

इन १०८ उपनिषदों के स्वाध्याय से मानव के तीनों ताप (आधिदैविक, आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक) तथा तीनों वासना (देहवासना, मनवासना और बुद्धिवासना) समाप्त होकर ज्ञान और वैराग्य की प्राप्ति होती है॥ ४०॥

पूर्वोत्तरेषु विहिततत्तच्छान्तिपुरःसरम्। वेदविद्याव्रतस्नातदेशिकस्य मुखात्स्वयम्॥ ४१॥
गृहीत्वाऽष्टोत्तरशतं ये पठन्ति द्विजोत्तमाः। प्रारब्धक्षयपर्यन्तं जीवन्मुक्ता भवन्ति ते॥ ४२॥

प्रत्येक उपनिषद् के पूर्व तथा अंत में दिये हुए शान्तिपाठ को करके वेदविद्या में पारंगत, आत्मतत्त्व का उपदेश करने वाले उपदेष्टा के श्रीमुख से जो द्विजश्रेष्ठ इन एक सौ आठ उपनिषदों का पाठ करते हैं (पढ़ते हैं), वे प्रारब्ध कर्म के क्षीण होने तक जीवन्मुक्त रहते हैं॥ ४१-४२॥

ततः कालवशादेव प्रारब्धे तु क्षयं गते। वैदेहीं मामकीं मुक्तिं यान्ति नास्त्यत्र संशयः॥ ४३॥

तदनन्तर समय आने पर जब प्रारब्ध कर्म समाप्त हो जाता है, तब उन्हें मेरी वैदेही (मरणोपरांत विदेह) मुक्ति प्राप्त हो जाती है॥ ४३॥

सर्वोपनिषदां मध्ये सारमष्टोत्तरं शतम्। सकृच्छ्रवणमात्रेण सर्वाघौघनिकृन्तनम्॥ ४४॥

ये एक सौ आठ उपनिषदें समस्त उपनिषदों की सार कही गई हैं। एक बार भी यदि इनका श्रवण कर लिया जाये, तो समस्त पापों से छुटकारा मिल जाता है॥ ४४॥

मयोपदिष्टं शिष्याय तुभ्यं पवननन्दन। इदं शास्त्रं मयादिष्टं गुह्यमष्टोत्तरं शतम्॥ ४५॥

हे पवनतनय! तुम मेरे शिष्य हो, इस कारण तुम्हारे हित की कामना से इस शास्त्र को कहा है, मेरे द्वारा उपदिष्ट यह अष्टोत्तरशत-उपनिषद् शास्त्र अत्यन्त गोपनीय है॥ ४५॥

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि पठतां बन्धमोचकम्। राज्यं देयं धनं देयं याचतः कामपूरणम्॥ ४६॥
इदमष्टोत्तरशतं न देयं यस्य कस्यचित्। नास्तिकाय कृतघ्नाय दुराचाररताय वै ॥ ४७॥

इसकी महत्ता को जानकर या बिना जाने अथवा संयोगवश भी यदि इसका पाठ कर लिया जाये, तो संसार-बन्धन से मुक्ति मिल जाती है। माँगने वाले को राज्य अथवा धन दे दिया जाये, परन्तु इन अष्टोत्तरशत- उपनिषदों को हर किसी को नहीं देना चाहिए। नास्तिक, कृतघ्न और दुराचारी को तो देना ही नहीं चाहिए॥ ४६-४७॥

मद्भक्तिविमुखायापि शास्त्रगर्तेषु मुह्यते। गुरुभक्तिविहीनाय दातव्यं न कदाचन॥ ४८॥

जो मेरी भक्ति से रहित हो, जो शास्त्र के गर्त में गिरकर मोह में फँस गया हो। (केवल शास्त्र चर्चा ही करता हो, उसे आचरण में न लाया हो) एवं जो गुरु-भक्त न हो, उसको कभी नहीं देना चाहिए॥ ४८॥

सेवापराय शिष्याय हितपुत्राय मारुते। मद्भक्ताय सुशीलाय कुलीनाय सुमेधसे। सम्यक् परीक्ष्य दातव्यमेवमष्टोत्तरं शतम्। यः पठेच्छृणुयाद्वापि स मामेति न संशयः॥ ४९॥

हे पवनपुत्र! आज्ञाकारी पुत्र को, सेवा करने वाले शिष्य को या जो भी मेरा भक्त हो, श्रेष्ठ कुल में पैदा हुआ हो, सुशील हो, उसकी अच्छी तरह से परीक्षा करके तब एक सौ आठ उपनिषदों को देना चाहिए (पढ़ाना चाहिए)। इस तरह से जो साधक इन उपनिषदों का पाठ करता है या श्रवण करता है, वह हमारा है, हमें प्राप्त होता है, इसमें कोई संशय नहीं है॥ ४९॥

तदेतदृचाभ्युक्तम्-विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा शेवधिष्टेऽहमस्मि। असूयकायानृजवे शठाय मा मा ब्रूया वीर्यवती तथा स्याम्। यमेव विद्याश्रुतमप्रमत्तं मेधाविनं ब्रह्मचर्योपपन्नम्। तस्मा इमामुपसन्नाय सम्यक् परीक्ष्य दद्याद्वैष्णवीमात्मनिष्ठाम्॥ इति॥ ५०॥

इस विषय में ऋचा में भी कहा गया है– 'एक बार वेद विद्या (उपनिषद्) ने ब्राह्मण के पास जाकर कहा– मैं तुम्हारी सम्पत्ति हूँ, मेरी रक्षा करो- सुरक्षित रखो। निन्दा करने वालों, झूठ बोलने वालों तथा दुश्चरित्र लोगों को मुझे मत देना, मत कहना, जिससे मैं सामर्थ्यवान् बनी रहूँ। गुरु को चाहिए कि जो शास्त्राध्ययनरत हो, प्रमाद करने वाला न हो, मेधावी हो, ऐसे शिष्य की परीक्षा लेकर तब उसे इस वैष्णवी (आत्मविषयक) विद्या को देना चाहिए'॥ ५०॥

अथ हैनं श्रीरामचन्द्रं मारुतिः पप्रच्छ ऋग्वेदादिविभागेन पृथक् शान्तिमनुब्रूहीति। स होवाच श्रीरामः। ऐतरेयकौषीतकीनादबिन्द्वात्मप्रबोधनिर्वाणमुद्गलाक्षमालिकात्रिपुरासौभाग्य-बह्वृचानामृग्वेदगतानां दशसंख्याकानामुपनिषदां वाङ्मे मनसीति शान्तिः॥ ५१॥

इसके बाद श्रीहनुमान् जी ने श्रीरामचन्द्रजी से प्रश्न किया– हे भगवन्! आप ऋग्वेदादि के उपनिषदों के विभागों के अनुसार अलग-अलग शांति-मन्त्रों को कहने की कृपा करें। तब श्रीराम बोले– ऐतरेय कौषीतकि, नादबिन्दु, आत्मप्रबोध, निर्वाण, मुद्गल, अक्षमालिका, त्रिपुरा, सौभाग्य, बह्वृच आदि ऋग्वेदीय दस-उपनिषदों का शान्ति मन्त्र है- वाङ्मे मनसि... इत्यादि॥ ५१॥

ईशावास्यबृहदारण्यजाबालहंसपरमहंससुबालमन्त्रिकानिरालम्बत्रिशिखीब्राह्मण-मण्डलब्राह्मणाद्वयतारकपैङ्गलभिक्षुतुरीयातीताध्यात्मतारसारयाज्ञवल्क्यशाट्यायनीमुक्तिकानां शुक्लयजुर्वेदगतानामेकोनविंशतिसंख्याकानामुपनिषदां पूर्णमद इति शान्तिः॥ ५२॥

ईशावास्य, बृहदारण्यक, जाबाल, हंस, परमहंस, सुबाल, मन्त्रिका, निरालम्ब, त्रिशिखिब्राह्मण, मण्डलब्राह्मण, अद्वयतारक, पैङ्गल, भिक्षुक, तुरीयातीत, अध्यात्म, तारसार, याज्ञवल्क्य, शाट्यायनी और मुक्तिका- ये शुक्लयजुर्वेदीय उपनिषदें हैं। इनकी संख्या उन्नीस है, इनका शांति मंत्र 'पूर्णमदः पूर्णमिदं..... इत्यादि' है॥ ५२॥

कठवल्लीतैत्तिरीयकब्रह्मकैवल्यश्वेताश्वतरगर्भनारायणामृतबिन्दुमृतनाद-कालाग्निरुद्रक्षुरिकासर्वसारशुकरहस्यतेजोबिन्दुध्यानबिन्दुब्रह्मविद्यायोगतत्त्वदक्षिणा-मूर्तिस्कन्दशारीरकयोगशिखैकाक्षराक्ष्यवधूतकठरुद्रहृदययोगकुण्डलिनी पञ्चब्रह्म-प्राणाग्निहोत्रवराहकलिसंतरणसरस्वतीरहस्यानां कृष्णयजुर्वेदगतानां द्वात्रिंशत्संख्या-कानामुपनिषदां स ह नाववत्विति शान्तिः॥ ५३॥

कठवल्ली, तैत्तिरीय, ब्रह्म, कैवल्य, श्वेताश्वतर, गर्भ, नारायण, अमृतबिन्दु, अमृतनाद, कालाग्निरुद्र, क्षुरिका, सर्वसार, शुकरहस्य, तेजोबिन्दु, ध्यानबिन्दु, ब्रह्मविद्या, योगतत्त्व, दक्षिणामूर्ति, स्कन्द, शारीरक, योगशिखा, एकाक्षर, अक्षि, अवधूत, कठरुद्र, रुद्रहृदय, योगकुण्डली, पञ्चब्रह्म, प्राणाग्निहोत्र, वराह, कलिसंतरण और सरस्वती रहस्य- ये बत्तीस उपनिषदें कृष्ण यजुर्वेद की हैं। इनका शान्ति मन्त्र है- 'सह नाववतु, सह नौ भुनक्तु' इत्यादि॥ ५३॥

केनच्छान्दोग्यारुणिमैत्रायणिमैत्रेयीवज्रसूचिकायोगचूडामणि वासुदेवमहत्संन्यासा-व्यक्तकुण्डिकासावित्रीरुद्राक्षजाबालदर्शनजाबालीनां सामवेदगतानां षोडशसंख्याकानामुप-निषदामाप्यायन्त्विति शान्तिः॥ ५४॥

केन, छान्दोग्य, आरुणिक, (अथवा आरुणि) मैत्रायणी, मैत्रेयी, वज्रसूचिका, योगचूड़ामणि, वासुदेव, महत् (महोपनिषद्) संन्यास, अव्यक्त, कुण्डिका, सावित्री, रुद्राक्षजाबाल, जाबालदर्शन और जाबालि- ये सोलह उपनिषद् सामवेद से सम्बद्ध हैं, इनका शांति मंत्र 'आप्यायन्तु ममाङ्गानि' इत्यादि है॥ ५४॥

प्रश्नमुण्डकमाण्डूक्याथर्वशिरोऽथर्वशिखाबृहज्जाबालनृसिंहतापनीनारद परिव्राजकसीताशरभ-महानारायणरामरहस्यरामतापनीशाण्डिल्यपरमहंसपरिव्राजकान्नपूर्णा-सूर्यात्मपाशुपतपरब्रह्म त्रिपुरातपनदेवीभावनाब्रह्मजाबालगणपतिमहावाक्यगोपालतपनकृष्ण-हयग्रीवदत्तात्रेयगारुडानामथर्ववेदगतानामेकत्रिंशत्संख्याकानामुपनिषदां भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः॥ ५५॥

प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, अथर्वशिरस्, अथर्वशिखा, बृहज्जाबाल, नृसिंहतापनीय, नारदपरिव्राजक, सीता, शरभ, त्रिपाद्विभूतिमहानारायण, रामरहस्य, रामतापनीय, शाण्डिल्य, परमहंसपरिव्राजक, अन्नपूर्णा, सूर्य, आत्मा, पाशुपत, परब्रह्म, त्रिपुरातापनीय, देवी, भावना, भस्मजाबाल, गणपति, महावाक्य, गोपालतापनीय, कृष्ण, हयग्रीव, दत्तात्रेय और गरुड़-ये इकतीस उपनिषदें अथर्ववेद से सम्बद्ध हैं, इनका शांतिमंत्र 'भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम' इत्यादि है॥ ५५॥

मुमुक्षवः पुरुषाः साधनचतुष्टयसंपन्नाः श्रद्धावन्तः सुकुलभवं श्रोत्रियं शास्त्रवात्सल्य-गुणवन्तमकुटिलं सर्वभूतहिते रतं दयासमुद्रं सद्गुरुं विधिवदुपसंगम्योपहारपाणयोऽष्टोत्तरशतोपनिषदं विधिवदधीत्य श्रवणमनननिध्यासनानि नैरन्तर्येण कृत्वा प्रारब्धक्षयाद्देहत्रयभङ्गं प्राप्योपाधि-

विनिर्मुक्तघटाकाशवत्परिपूर्णता विदेहमुक्तिः। सैव कैवल्यमुक्तिरिति। अत एव ब्रह्मलोकस्था अपि ब्रह्ममुखाद्वेदान्तश्रवणादि कृत्वा तेन सह कैवल्यं लभन्ते। अतः सर्वेषां कैवल्यमुक्तिर्ज्ञानमात्रेणोक्ता। न कर्मसांख्ययोगोपासनादिभिरित्युपनिषत्॥ ५६॥

साधन-चतुष्टय [विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति (शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान), मुमुक्षुत्व] सम्पन्न मोक्षाभिलाषी लोग श्रद्धावान्, कुलीन, वेदज्ञान-सम्पन्न, शास्त्रप्रेमी गुणवान् सरलहृदय, सबके हित की कामना वाले, दया के सागर जैसे गुणों को धारण करने वाले सद्गुरु के पास उपहार सहित (समित्पाणि) विधिवत् पहुँचकर एक सौ आठ उपनिषदों को विधिपूर्वक पढ़ते एवं उसका नियमित चिन्तन-मनन करते हुए निरन्तर अभ्यास करके प्रारब्ध-कर्म के समाप्त होने पर तथा स्थूल, सूक्ष्म, अतिवाहक शरीरों के नष्ट होने पर उपाधि रहित होकर घटाकाश के समान (घट के टूटने पर महाकाश में मिलने की तरह) पूर्णब्रह्म में लीन हो जाते हैं (विदेहमुक्त हो जाते हैं)। वही कैवल्यमुक्ति कही गयी है।

इसीलिए ब्रह्मलोक के निवासी भी ब्रह्माजी के मुखारविन्द से (इस) वेदान्त को सुनते, मनन करते एवं नित्य उस पर आचरण करके ब्रह्माजी के साथ ही कैवल्य मुक्तिलाभ करते हैं। अतः समस्त प्राणियों के लिए एकमात्र ज्ञानोपलब्ध होने पर ही कैवल्य मुक्ति प्राप्त होती है। सांख्ययोग, कर्मयोग, उपासना आदि के द्वारा कैवल्यमुक्ति प्राप्त नहीं होती, यह उपनिषद् (रहस्य) है॥ ५६॥

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

तथा हैनं श्रीरामचन्द्रं मारुतिः पप्रच्छ। केयं वा तत्सिद्धिः सिद्ध्या वा किं प्रयोजनमिति। स होवाच श्रीरामः। पुरुषस्य कर्तृत्वभोक्तृत्वसुखदुःखादिलक्षणश्चित्तधर्मः क्लेशरूपत्वाद्बन्धो भवति। तन्निरोधनं जीवन्मुक्तिः। उपाधिविनिर्मुक्तघटाकाशवत्प्रारब्धक्षयाद्विदेहमुक्तिः। जीवन्मुक्तिविदेहमुक्त्योरष्टोत्तरशतोपनिषदः प्रमाणम्। कर्तृत्वादिदुःखनिवृत्तिद्वारा नित्यानन्दावाप्तिः प्रयोजनं भवति। तत्पुरुषप्रयत्नसाध्यं भवति। यथा पुत्रकामेष्टिना पुत्रं वाणिज्यादिना वित्तं ज्योतिष्टोमेन स्वर्गं तथा पुरुषप्रयत्नसाध्यवेदान्तश्रवणादिजनितसमाधिना जीवन्मुक्त्यादिलाभो भवति। सर्ववासनाक्षयात्तल्लाभः। अत्र श्लोका भवन्ति- उच्छास्त्रं शास्त्रितं चेति पौरुषं द्विविधं मतम्। तत्रोच्छास्त्रमनर्थाय परमार्थाय शास्त्रितम्। लोकवासनया जन्तोः शास्त्रवासनयापि च। देहवासनया ज्ञानं यथावन्नैव जायते॥ १-२॥

तदनन्तर हनुमान्जी ने भगवान् श्रीरामचन्द्रजी से प्रश्न किया– हे भगवन्! जीवन्मुक्ति और विदेह मुक्ति क्या है तथा प्राणी जीवन्मुक्त या विदेहमुक्त हो गया, इसका क्या प्रमाण है एवं उनकी सिद्धि कैसे होती है और उनकी सिद्धि का क्या प्रयोजन है?

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने कहा– जीव को, जो 'मैं कर्त्ता हूँ', 'मैं भोक्ता हूँ', 'मैं दुःखी हूँ', 'मैं सुखी हूँ' आदि लक्षणों की अनुभूति होती है, उसे चित्त का धर्म कहा गया है, यह ज्ञान ही क्लेशरूप होने से बन्धन का कारण बनता है। इस तरह उसका निरोध ही जीवन्मुक्ति है। जब जीव घटरूपी उपाधि से मुक्त होकर घट के आकाश की तरह प्रारब्धरूपी उपाधि से भी मुक्त हो जाता है, तब उसे विदेह मुक्ति कहते हैं। एक सौ आठ

उपनिषदों का ज्ञान ही जीवन्मुक्ति एवं विदेहमुक्ति होने का प्रमाण है। जीव के अपने कर्त्तापन एवं भोक्तापन आदि दु:खों की अनुभूति समाप्त होकर शाश्वत आनन्द प्राप्त कर लेना ही इसका उद्देश्य है। पुरुषार्थ के द्वारा वह आनन्दप्राप्ति सिद्ध होती है। जिस प्रकार पुत्र की प्राप्ति पुत्रेष्टि यज्ञ से, धन की प्राप्ति व्यापार से तथा स्वर्ग की प्राप्ति ज्योतिष्टोम यज्ञ के द्वारा होती है, उसी तरह पुरुषार्थ के द्वारा प्रयास करके वेदान्त के श्रवण, चिन्तन और नियमित अभ्यास से समाधि के द्वारा जीवन्मुक्ति आदि की सिद्धि होती है। समस्त वासनाओं के क्षय हो जाने पर उसकी प्राप्ति होती है। इस विषय में ये श्लोक कहे गये हैं— शास्त्र के अनुकूल आचरण करना एवं शास्त्र के प्रतिकूल आचरण करना, यह दो प्रकार का पुरुषार्थ कहा गया है। उनमें शास्त्र के प्रतिकूल आचरण करना अनर्थ का तथा शास्त्रानुकूल आचरण करना परमार्थ का कारण बनता है। लोक वासना (सांसारिक जनों के अनुरूप आचरण करने की प्रवृत्ति), शास्त्रवासना [शास्त्रानुसार आचरण करके (कर्म करके) अपने को उत्कृष्ट मानने की प्रवृत्ति] एवं देहवासना (शरीर की आवश्यकता की पूर्ति करते रहने की प्रवृत्ति) इन तीनों के रहते यथार्थ ज्ञान नहीं प्राप्त होता। जिसमें शास्त्रानुकूल पुरुषार्थ से परमार्थ सिद्ध होता तथा शास्त्र के विपरीत आचरण (पुरुषार्थ) अनर्थ का कारण होता है॥ १-२॥

द्विविधो वासनाव्यूहः शुभश्चैवाशुभश्च तौ। वासनौघेन शुद्धेन तत्र चेदनुनीयसे॥३॥
तत्क्रमेणाशु तेनैव मामकं पदमाप्नुहि। अथ चेदशुभो भावस्त्वां योजयति संकटे॥ ४॥

शुभ और अशुभ दो प्रकार की वासनाओं का समूह होता है। हे हनुमान्। शुद्ध (श्रेष्ठ) वासना के द्वारा ज्ञानार्जन से मेरे पद को प्राप्त करोगे और अशुभ भाव का चिन्तन तो महान् विपत्ति का कारण बनता है॥ ३-४॥

प्राक्तनस्तदसौ यत्नाज्जेतव्यो भवता कपे। शुभाशुभाभ्यां मार्गाभ्यां वहन्ती वासनासरित्॥ ५॥

हे कपीश! पूर्वार्जित संस्कारों को प्रयत्नपूर्वक समाप्त करना चाहिए। वासनारूपी नदी जो शुभाशुभ मार्गों में बहती है, उसे पुरुषार्थ के द्वारा श्रेष्ठ मार्ग में लाना चाहिए॥ ५॥

पौरुषेण प्रयत्नेन योजनीया शुभे पथि। अशुभेषु समाविष्टं शुभेष्वेवावतारयेत्॥ ६॥

गलत रास्ते पर चल रहे वासना-प्रवाह को श्रेष्ठ मार्गों में उतारना चाहिए; क्योंकि मन की यह सहज प्रकृति होती है कि गलत रास्ते से रोका जायेगा, तो श्रेष्ठ रास्ते पर चलना चाहेगा॥ ६॥

अशुभाच्चालितं याति शुभं तस्मादपीतरत्। पौरुषेण प्रयत्नेन लालयेच्चित्तबालकम्॥ ७॥

यदि श्रेष्ठ रास्ते से मन हटता है, तो वह गलत रास्ते पर जायेगा। इसलिए साधक को चाहिए कि बालक की तरह बहला-फुसला कर प्रयत्न और पुरुषार्थ के द्वारा चित्त को शुभ मार्ग में ही लगाये रखे॥ ७॥

द्रागभ्यासवशाद्याति यदा ते वासनोदयम्। तदाभ्यासस्य साफल्यं विद्धि त्वमरिमर्दन॥ ८॥

हे अरिमर्दन! जब अभ्यास करते-करते तुम्हारी शुभवासनाएँ जाग्रत् हो जायेंगी, तब समझ लेना कि उस अभ्यास में सफलता मिल गयी॥ ८॥

संदिग्धायामपि भृशं शुभामेव समाचर। शुभायां वासनावृद्धौ न दोषाय मरुत्सुत॥ ९॥

हे मारुतिनन्दन! वासना का अस्तित्व संदेहास्पद होने पर शुभ वासनाओं में ही मन लगाना चाहिए; क्योंकि श्रेष्ठ वासनाओं की वृद्धि से दोष उत्पन्न नहीं होते॥ ९॥

वासनाक्षयविज्ञानमनोनाशा महामते। समकालं चिराभ्यस्ता भवन्ति फलदा मताः॥ १०॥

महामते! वासनाओं को नष्ट करने के लिए, विज्ञान (विशिष्टज्ञान) के लिए और मन की वृत्तियों को समाप्त करने के लिए–इन तीनों का लम्बे समय तक एक साथ अभ्यास करने पर फल प्राप्त होता है॥ १०॥

त्रय एवं समं यावन्नाभ्यस्ताश्च पुनः पुनः। तावन्न पदसंप्राप्तिर्भवत्यपि समाशतैः॥ ११॥

इन तीनों का सम्यक्‌रूप से एक साथ जब तक लम्बे समय तक अभ्यास नहीं किया जायेगा, तब तक सैंकड़ों वर्ष बाद भी कैवल्य प्राप्ति सम्भव नहीं॥ ११॥

एकैकशो निषेव्यन्ते यद्येते चिरमप्यलम्। तन्न सिद्धिं प्रयच्छन्ति मन्त्राः संकीर्णिता इव॥ १२॥

जिस प्रकार टुकड़े–टुकड़े करके जप करने से कीलित की तरह मन्त्र सिद्ध नहीं होते (मन्त्र कीलित होने पर सिद्ध नहीं होते), उसी तरह इन तीनों का चिरकाल तक अलग–अलग अभ्यास करने पर भी सिद्धि नहीं मिलती॥ १२॥

त्रिभिरेतैश्चिराभ्यस्तैर्हृदयग्रन्थयो दृढाः। निःशङ्कमेव त्रुट्यन्ति बिसच्छेदाद्गुणा इव ॥ १३॥

इन तीनों (विज्ञान, वासनाक्षय और मनोनाश) का यदि दीर्घकाल तक दृढ़तापूर्वक अभ्यास किया जाये, तो हृदय की ग्रन्थियाँ उसी प्रकार नष्ट हो जाती हैं, जैसे कमलनाल तोड़ने पर उसके रेशे टूट जाते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिए॥ १३॥

जन्मान्तरशताभ्यस्ता मिथ्या संसारवासना। सा चिराभ्यासयोगेन विना न क्षीयते क्वचित्॥ १४॥

जन्म–जन्मान्तरों से जिन मिथ्या सांसारिक भोगों–वासनाओं का अभ्यास हो रहा है, वह बिना दीर्घकाल तक की साधना के कभी क्षीण नहीं हो सकता॥ १४॥

तस्मात्सौम्य प्रयत्नेन पौरुषेण विवेकिना। भोगेच्छां दूरतस्त्यक्त्वा त्रयमेव समाश्रय॥ १५॥

इसलिए हे प्यारे, (हनुमान्)! प्रयत्नपूर्वक पुरुषार्थ करके विवेक के द्वारा सोच–विचार कर भोगेच्छा को दूर से ही त्याग कर इन तीनों का एक साथ अभ्यास करो॥ १५॥

तस्माद्वासनया युक्तं मनो बद्धं विदुर्बुधाः। सम्यग्वासनया त्यक्तं मुक्तिरित्यभिधीयते। मनोनिर्वासनीभावमाचराशु महाकपे॥ १६॥

ज्ञानियों ने विषयासक्त मन को बन्धनयुक्त बताया है तथा सम्यक् प्रकार से जिनके मन से वासनाएँ नष्ट हो गयी हैं, उन्हें मुक्त कहा जाता है। इसलिए हे महाकपि! मन से समस्त वासनाओं को शीघ्र ही निकाल दो॥१६॥

सम्यगालोचनात्सत्याद्वासना प्रविलीयते। वासनाविलये चेतः शममायाति दीपवत्॥ १७॥

सम्यक् प्रकार से विचार करके सत्य का अभ्यास करने से वासनाएँ नष्ट होती हैं और वासनाओं की समाप्ति के साथ ही चित्त उसी तरह विलीन हो जाता है, जैसे तेल न रहने पर दीपक बुझ जाता है॥ १७॥

वासनां संपरित्यज्य मयि चिन्मात्रविग्रहे। यस्तिष्ठति गतव्यग्रः सोऽहं सच्चित्सुखात्मकः॥ १८॥

जो वासनाओं को अच्छी तरह से त्यागकर प्रभु के चैतन्यस्वरूप में निश्चल भाव से स्थित रहता है, वह आत्मस्वरूप होकर मुझ सच्चिदानन्द को ही प्राप्त होता है॥ १८॥

समाधिमथ कार्याणि मा करोतु करोतु वा। हृदयेनात्तसर्वेहो मुक्त एवोत्तमाशयः॥ १९॥

जिनके हृदय से विषयासक्ति सदा के लिए समाप्त हो जाती है, वे समाधि या अन्य किन्हीं कर्मों का अनुष्ठान करें, चाहे न करें, वे मुक्त ही हैं। वे ही श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न हैं॥ १९॥

नैष्कर्म्येण न तस्यार्थस्तस्यार्थोऽस्ति न कर्मभिः। न संसाधनजाप्याभ्यां यस्य निर्वासनं मनः॥ २०॥

मन से वासनाओं के दूर हो जाने से साधक के कर्मानुष्ठान अथवा कर्मों के त्याग का कोई अर्थ नहीं रह जाता। जिसका मन वासनारहित हो गया, उसे समाधान (षट्सम्पत्ति) एवं जप करने की भी आवश्यकता नहीं रह जाती॥ २०॥

संत्यक्तवासनान्मौनादृते नास्त्युत्तमं पदम्॥ २१॥

मन से समस्त वासनाओं को निकालकर मौन धारण कर लेने के अलावा दूसरा कोई परमपद नहीं है॥ २१॥

वासनाहीनमप्येतच्चक्षुरादीन्द्रियं स्वतः। प्रवर्तते बहिः स्वार्थे वासनामात्रकारणम्॥ २२॥

प्रत्यक्षरूप से वासनारहित होने पर भी चक्षु आदि इन्द्रियाँ स्वतः अपने-अपने विषयों की ओर प्रवृत्त दिखाई पड़ती हैं, उनमें कोई न कोई वासना ही सूक्ष्मरूप से उसका कारण होती है॥ २२॥

अयत्नोपनतेष्वक्षि दृग्द्रव्येषु यथा पुनः। नीरागमेव पतति तद्वत्कार्येषु धीरधीः॥ २३॥

जिस प्रकार नेत्र आदि इन्द्रियों के सामने विषयों के आ जाने से वे उसमें आसक्तिरहित भाव से ही प्रवृत्त होते हैं, उसी तरह धीर पुरुष प्रत्येक कार्य को आसक्तिरहित होकर ही करते हैं॥ २३॥

भावसंवित्प्रकटितामनुरूपा च मारुते। चित्तस्योत्पत्त्युपरमा वासनां मुनयो विदुः॥ २४॥

हे पवन पुत्र! जो सत्ता बुद्धि से उत्पन्न होती है और उसी के अनुकूल होती है और जिसमें चित्त का प्राकट्य एवं विलय भी होता है, ऋषि-मुनि उसी स्वभाव को वासना के नाम से सम्बोधित करते हैं॥ २४॥

दृढाभ्यस्तपदार्थैकभावनादतिचञ्चलम्। चित्तं संजायते जन्मजरामरणकारणम्॥ २५॥

दीर्घकाल से परिचित पदार्थों के दृढ़ अभ्यास से जो चित्त में अत्यधिक चञ्चलता प्रादुर्भूत हो जाती है; वह चित्त की चञ्चलता ही जन्म, जरा एवं मृत्यु का एकमात्र कारण होती है॥ २५॥

वासनावशतः प्राणस्पन्दस्तेन च वासना। क्रियते चित्तबीजस्य तेन बीजाङ्कुरक्रमः॥ २६॥

वासना से ही प्राणों में स्पन्दन (सक्रियता) होता है तथा उससे पुनः वासना प्रादुर्भूत होती है, इस तरह से चित्तरूपी बीज में अंकुरण होता रहता है॥ २६॥

द्वे बीजे चित्तवृक्षस्य प्राणस्पन्दनवासने। एकस्मिंश्च तयोः क्षीणे क्षिप्रं द्वे अपि नश्यतः॥ २७॥

चित्तरूपी वृक्ष के दो बीज हैं- प्रथम- प्राण स्पन्दन (प्राणों की सक्रियता) एवं द्वितीय- वासना। इनमें से किसी एक के भी कमजोर होने पर दोनों ही विनष्ट हो जाते हैं॥ २७॥

असङ्गव्यवहारत्वाद्भवभावनवर्जनात्। शरीरनाशदर्शित्वाद्वासना न प्रवर्तते। वासनासंपरित्यागाच्चित्तं गच्छत्यचित्तताम्॥ २८॥

आसक्ति-रहित होकर व्यवहार करने से, सांसारिक चिन्तन का त्याग कर देने से तथा शरीर की नश्वरता का निरन्तर दर्शन-भाव करते रहने से वासना का प्रादुर्भाव नहीं होता। वासना का पूर्णरूपेण त्याग हो जाने से चित्त अचित्तता को प्राप्त होता है अर्थात् उसकी वासनात्मक प्रवृत्ति पूरी तरह से विनष्ट हो जाती है॥ २८॥

अवासनत्वात्सतं यदा न मनुते मनः। अमनस्ता तदोदेति परमोपशमप्रदा॥ २९॥

जब समस्त वासनाएँ विनष्ट हो जाती हैं और मन चिन्तन-मनन का परित्याग कर देता है। तब मन के द्वारा निराकृत हो जाने पर परम शांतिमय विवेक का प्रादुर्भाव होता है॥ २९॥

अव्युत्पन्नमना यावद्भवानज्ञाततत्पदः। गुरुशास्त्रप्रमाणैस्तु निर्णीतं तावदाचर॥ ३०॥

जब-तक तुम्हारे अन्तःकरण में ज्ञान का प्राकट्य नहीं हो जाता है और जब-तक तुम्हें अपना परमपद अज्ञात है, तब तक गुरु एवं शास्त्र-प्रमाण द्वारा निश्चय किये गये मार्ग का अनुसरण करते रहना चाहिए॥ ३०॥

ततः पक्वकषायेण नूनं विज्ञातवस्तुना। शुभोऽप्यसौ त्वया त्याज्यो वासनौघो निराधिना॥ ३१॥

इसके पश्चात् जब कषाय-कल्मषों का परिपाक (जीर्णावस्था) हो जाये और निश्चयपूर्वक तत्त्वज्ञान का पूर्ण बोध हो जाये, तब निश्चिन्त होकर के तुम्हें सभी शुभाशुभ वासनाओं का परित्याग कर देना चाहिए॥ ३१॥

द्विविधश्चित्तनाशोऽस्ति सरूपोऽरूप एव च। जीवन्मुक्तः सरूपः स्यादरूपो देहमुक्तिगः॥ ३२॥

चित्तनाश के दो भेद होते हैं-प्रथम सरूप एवं द्वितीय अरूप। जीवन्मुक्त का चित्तनाश सरूप और विदेहमुक्त का अरूप होता है अर्थात् जीवन्मुक्त का चित्त स्वरूप से तो होता है, किन्तु वह अचित्त हुआ होता है और विदेहमुक्त हो जाने पर उसका स्वरूप पूरी तरह से विनष्ट हो जाता है॥ ३२॥

अस्य नाशमिदानीं त्वं पावने श्रृणु सादरम्॥ ३३॥ चित्तनाशाभिधानं हि यदा ते विद्यते पुनः। मैत्र्यादिभिर्गुणैर्युक्तं शान्तिमेति न संशयः। भूयोजन्मविनिर्मुक्तं जीवन्मुक्तस्य तन्मनः॥ ३४॥ सरूपोऽसौ मनोनाशो जीवन्मुक्तस्य विद्यते। अरूपस्तु मनोनाशो वैदेहीमुक्तिगो भवेत्॥ ३५॥

हे पवनतनय! अब चित्त को एकाग्र करके मनोनाश के सन्दर्भ में श्रवण करें। जब तुम्हारा मन चित्त के विनष्ट होने की स्थिति को प्राप्त हो जायेगा अर्थात् उसकी अन्वेषणात्मिका वृत्ति शान्त हो जायेगी और तब मैत्री, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा आदि गुणों से सम्पन्न होकर वह (मन) परमशान्ति की प्राप्ति कर लेगा,इसमें कुछ भी संशय नहीं है। जीवन्मुक्त का मन गमनागमन से मुक्त हो जाता है। उसका वह मनोनाश सरूप कहलाता है। विदेहमुक्ति के प्राप्त हो जाने पर जो मनोनाश होता है, वह स्थिति अरूपता की कहलाती है॥ ३३-३५॥

सहस्राङ्कुरशाखात्मफलपल्लवशालिनः। अस्य संसारवृक्षस्य मनोमूलमिदं स्थितम्। संकल्प एव तन्मन्ये संकल्पोपशमेन तत्॥३६-३७॥ शोषयाशु यथा शोषमेति संसारपादपः उपाय एक एवास्ति मनसः स्वस्य निग्रहे॥ ३८॥ मनसोऽभ्युदयो नाशो मनोनाशो महोदयः। ज्ञमनो नाशमभ्येति मनो ज्ञस्य हि श्रृंखला॥ ३९॥

अतः सहस्रों अङ्कुर, त्वचा, शाखा, पत्र, पुष्प एवं फलों से सम्पन्न इस संसाररूपी वृक्ष का यह 'मन' ही मूल कारण है और यह मन ही सङ्कल्पमय है। सङ्कल्प का शमन करके उस मनस् तत्त्व को शुष्क कर डालो, जिससे कि यह संसाररूपी पादप भी रसहीन होकर शुष्क हो जाये। अपने मन का निग्रह करने का मात्र एक ही उपाय है और वह है, यह निश्चय करना कि मन का अभ्युदय ही उसका पतन है। उस (मन) के विनष्ट होने में उसका महान् अभ्युदय है। ज्ञान द्वारा ही मनोनाश होता है। अज्ञानी मनुष्य का मन स्वयं उसके लिए श्रृंखलारूप-बन्धन का कारण होता है॥ ३६-३९॥

तावन्निशीव वेताला वल्गन्ति हृदि वासनाः। एकतत्त्वदृढाभ्यासाद्यावन्न विजितं मनः॥ ४०॥

रात्रिकाल में वेतालों के सदृश हृदय में वासनाओं का आवेग तब तक बना रहता है, जब तक एक तत्त्व के कठिन अभ्यास से मन पर विजय प्राप्त नहीं कर ली जाती है॥ ४०॥

प्रक्षीणचित्तदर्पस्य निगृहीतेन्द्रियद्विषः। पद्मिन्य इव हेमन्ते क्षीयन्ते भोगवासनाः॥ ४१॥

जिनके चित्त एवं अभिमान बिल्कुल समाप्त (नष्ट) हो गये हैं तथा इन्द्रियरूपी शत्रु वश में हो गये हैं, ऐसे उन श्रेष्ठ लोगों की वासनाएँ ठीक वैसे ही नष्ट हो जाती हैं, जैसे हेमन्त ऋतु के आने पर कमलिनी का पौधा स्वयं ही विनाश को प्राप्त हो जाता है॥ ४१॥

हस्तं हस्तेन संपीड्य दन्तैर्दन्तान्विचूर्ण्य च। अङ्गान्यङ्गैः समाक्रम्य जयेदादौ स्वकं मनः॥ ४२॥

हाथ से हाथ को मलकर, दाँत से दाँत पीसकर और अवयवों के द्वारा अवयव को दबाकर यानी अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर के सर्वप्रथम अपने मन को वश में करना चाहिए॥ ४२॥

उपविश्योपविश्यैकां चिन्तकेन मुहुर्मुहुः। न शक्यते मनो जेतुं विना युक्तिमनिन्दिताम् ॥ ४३ ॥

एकाग्र चित्त से बार-बार एक स्थल पर बैठने एवं सद्युक्ति के द्वारा आत्मा का चिन्तन-ध्यान करने के सिवाय मन को अपने वश में करने का अन्य कोई उपाय नहीं होता॥ ४३ ॥

अङ्कुशेन विना मत्तो यथा दुष्टमतङ्गजः। अध्यात्मविद्याधिगमः साधुसंगतिरेव च॥ ४४॥
वासनासंपरित्यागः प्राणस्पन्दनिरोधनम्। एतास्ता युक्तयः पुष्टा सन्ति चित्तजये किल॥ ४५ ॥
सतीषु युक्तिष्वेतासु हठान्नियमयन्ति ये। चेतसो दीपमुत्सृज्य विचिन्वन्ति तमोऽञ्जनैः ॥ ४६ ॥

जिस तरह से मदोन्मत्त हाथी अङ्कुश के अभाव में वश में नहीं रहता, उसी तरह से चित्त को अपने वश में करने के लिए आध्यात्मिक विद्या का ज्ञान, श्रेष्ठजनों का संग, वासनाओं का पूर्णरूपेण परित्याग एवं प्राणवायु की स्थिरता अर्थात् प्राणायाम की प्रक्रिया आदि ही श्रेष्ठतम उपाय हैं। इन श्रेष्ठतम उपायों के रहते हुए जो मनुष्य हठपूर्वक चित्त को निरुद्ध करने का प्रयास करते हैं, वे दीपक का परित्याग करके अन्धकार में ही भ्रमित होते रहते हैं॥ ४४-४६ ॥

विमूढाः कर्तुमुद्युक्ता ये हठाच्चेतसो जयम्। ते निबध्नन्ति नागेन्द्रमुन्मत्तं बिसतन्तुभिः॥ ४७॥

जो अज्ञानी मनुष्य हठपूर्वक चित्त को अपने वश में करने का प्रयत्न करते रहते हैं, वे उन्मत्त हाथी को कमलनाल की तन्तुओं द्वारा बाँधने का प्रयास करते हैं॥ ४७॥

द्वे बीजे चित्तवृक्षस्य वृत्तिव्रततिधारिणः। एकं प्राणपरिस्पन्दो द्वितीयं दृढभावना॥ ४८॥

वृत्तिरूपी लताओं के आश्रयभूत चित्तरूपी वृक्ष के दो बीज कहे गये हैं, जिसमें से प्रथम प्राणों की गतिशीलता है और द्वितीय दृढ़भावना है॥ ४८॥

सा हि सर्वगता संवित्प्राणस्पन्देन चाल्यते। चित्तैकाग्र्याद्यतो ज्ञानमुक्तं समुपजायते॥ ४९॥

प्राणवायु की सक्रियता से घट-घट में संव्याप्त समष्टि-चेतना गतिमान् हो उठती है। चित्त की एकाग्रता से ज्ञान प्रकट होता है तथा उसी से मुक्ति-लाभ भी मिल जाता है॥ ४९॥

तत्साधनमथो ध्यानं यथावदुपदिश्यते। विनाप्यविकृतिं कृत्स्नां संभवत्यत्ययक्रमात्। यशोऽरिष्टं च चिन्मात्रं चिदानन्दं विचिन्तय॥ ५०॥

अतः चित्त की एकाग्रता के साधनों में ध्यान-चिन्तन की यथा-उचित विधि कही जाती है। चित्त हमेशा के लिए विकाररहित न हो, तब भी यश के आविर्भाव एवं अरिष्ट के तिरोभाव के क्रमानुसार एकमात्र चिदानन्दमय परब्रह्म का ही ध्यान करना चाहिए॥ ५०॥

अपानेऽस्तंगते प्राणो यावन्नाभ्युदितो हृदि। तावत्सा कुम्भकावस्था योगिभिर्याऽनुभूयते॥ ५१॥
बहिरस्तंगते प्राणे यावन्नापान उद्गतः। तावत्पूर्णांसमावस्थां बहिष्ठं कुम्भकं विदुः॥ ५२॥

अपानवायु को अन्दर रोक देने पर जब तक हृदय में प्राणवायु का प्राकट्य नहीं होता, तब तक वह कुम्भक की अवस्था बनी रहती है, इसी की योगीगण निरन्तर अनुभूति करते रहते हैं और प्राणवायु को बाहर रोक

देने पर जब तक अपानवायु का प्राकट्य नहीं होता, तब तक जो पूर्णरूप से समावस्था बनी रहती है, उसे ही बाह्यकुम्भक कहा जाता है॥ ५१-५२॥

ब्रह्माकारमनोवृत्तिप्रवाहोऽहंकृतिं विना। संप्रज्ञातसमाधिः स्याद्ध्यानाभ्यासप्रकर्षतः॥ ५३॥

दीर्घावधि तक निरन्तर ध्यान का अभ्यास करते रहने पर जब अहंकार का शमन हो जाता है तथा मनोवृत्ति ब्रह्म के रूप में प्रवहमान होने लगती है, तब उस स्थिति को सम्प्रज्ञात-समाधि कहते हैं॥ ५३॥

प्रशान्तवृत्तिकं चित्तं परमानन्ददायकम्। असंप्रज्ञातनामायं समाधिर्योगिनां प्रियः॥ ५४॥

जब चित्त की समस्त वृत्तियाँ शान्त हो जाती हैं, तब उस समय परम आनन्द प्रदात्री 'असम्प्रज्ञात' नामक समाधि होती है। समाधि की यही अवस्था योगियों को परमानन्द प्रदान करने वाली कही गयी है॥ ५४॥

प्रभाशून्यं मनःशून्यं बुद्धिशून्यं चिदात्मकम्। अतद्‍व्यावृत्तिरूपोऽसौ समाधिर्मुनिभावितः॥ ५५॥

इस समाधि की अवस्था में कुछ भी आभास नहीं होता। हो भी कैसे? ऐसी उस समाधि की स्थिति में मन एवं बुद्धि का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। एकमात्र चित्स्वरूप की अवस्थिति होती है। इस समाधि की अवस्था में चित्त अवलम्बरहित होकर कैवल्य की स्थिति में रहता है। मुनिगण इसी समाधि- अवस्था की इच्छा-भावना करते रहते हैं॥ ५५॥

ऊर्ध्वपूर्णमधःपूर्णं मध्यपूर्णं शिवात्मकम्। साक्षाद्विधिमुखो ह्येष समाधिः पारमार्थिकः॥ ५६॥

इस समाधि की अवस्था में ऊर्ध्व, अधः एवं मध्य में चतुर्दिक् सर्वत्र भगवान् शिव के रूप में पूर्ण परब्रह्म ही अनुभूत होते हैं, यह समाधि-अवस्था परमार्थ-परायणा अर्थात् मुक्तिरूपा है और यही साक्षात् प्रजापति ब्रह्माजी के श्रीमुख से उपदिष्ट हुई है॥ ५६॥

दृढभावनयात्यक्तपूर्वापरविचारणम्। यदादानं पदार्थस्य वासना सा प्रकीर्तिता॥ ५७॥

दृढ़ भावना द्वारा पूर्व एवं पश्चात् के विचार को त्यागकर चित्त जिस पदार्थ के रूप को धारण करता है, उसी चित्त- विकार को वासना कहा जाता है॥ ५७॥

भावितं तीव्रसंवेगादात्मना यत्तदेव सः। भवत्याशु कपिश्रेष्ठ विगतेतरवासनः॥ ५८॥

हे कपिवर! चित्त के तीव्र संवेग द्वारा आत्मा (आत्मतत्त्व) जिस तरह की भावना करता है, इतर वासनाओं से मुक्ति को प्राप्त कर वह यथाशीघ्र तदनुरूप हो जाता है॥ ५८॥

तादृग्रूपो हि पुरुषो वासनाविवशीकृतः। संपश्यति यदैवैतत्सद्वस्त्विति विमुह्यति॥ ५९॥

इस तरह का पुरुष वासना के वश में रहता हुआ, जो भी कुछ दृष्टिगत करता है, उसी को यथार्थ मानकर मोह को प्राप्त हो जाता है॥ ५९॥

वासनावेगवैचित्र्यात्स्वरूपं न जहाति तत्। भ्रान्तं पश्यति दुर्दृष्टिः सर्वं मदवशादिव॥ ६०॥

वासना के वेग की विचित्रता के कारण चित्त अपने वासनात्मक रूप का परित्याग नहीं करता। एक वासना का त्याग करते-करते दूसरी वासना में रमण करने लगता है। जिस तरह नशे से मनुष्य की विवेक बुद्धि विनष्ट हो जाती है, उसी तरह से वह दुर्बुद्धि भ्रान्त हो सभी पर कुदृष्टिपात करता रहता है॥ ६०॥

वासना द्विविधा प्रोक्ता शुद्धा च मलिना तथा।
मलिना जन्महेतुः स्याच्छुद्धा जन्मविनाशिनी॥ ६१॥

वासना दो प्रकार की कही गई है, प्रथम-शुद्ध एवं द्वितीय-मलिन। मलिन वासना जन्म-मृत्यु की हेतु कही गई है और शुद्ध वासना मनुष्य को जन्म-मृत्यु से मुक्त कर भवबन्धन से छुड़ा देती है॥ ६१॥

अज्ञानसुघनाकारा घनाहंकारशालिनी। पुनर्जन्मकरी प्रोक्ता मलिना वासना बुधैः। पुनर्जन्माङ्कुरं त्यक्त्वा स्थितिः संभृष्टबीजवत्॥ ६२॥

विद्वज्जनों का मत है कि मलिन-वासना निबिड़ अहंकार एवं सघन अज्ञानमय होती है। वही पुनर्जन्म प्रदात्री भी कही गयी है। जब बीज भली-भाँति भुन जाता है, तब उससे अङ्कुरण नहीं होता, वैसे ही सांसारिक वासना के विनष्ट हो जाने पर पुनर्जन्म नहीं होता। इसलिए सदैव दग्ध (भुने) बीज के सदृश स्थिति बनी रहनी चाहिए॥ ६२॥

बहुशास्त्रकथाकन्थारोमन्थेन वृथैव किम्। अन्वेष्टव्यं प्रयत्नेन मारुते ज्योतिरान्तरम्॥ ६३॥

हे मारुतिनन्दन! पिसे हुए को पीसने की भाँति भिन्न-भिन्न शास्त्रों की व्यर्थ में आलोचना (अध्ययन-शोध) करने से क्या लाभ? निरन्तर प्रयत्न तो अन्तः के प्रकाश को ढूँढ़ने के लिए करना चाहिए॥ ६३॥

दर्शनादर्शने हित्वा स्वयं केवलरूपतः। य आस्ते कपिशार्दूल ब्रह्म स ब्रह्मवित्स्वयम्॥ ६४॥

हे कपिशार्दूल! दर्शन और अदर्शन इन दोनों का परित्याग कर जो स्वयं कैवल्यावस्था में विद्यमान रहता है, वह ब्रह्मविद् ही नहीं; वरन् स्वयं ब्रह्ममय ही हो जाता है॥ ६४॥

अधीत्य चतुरो वेदान्सर्वशास्त्राण्यनेकशः। ब्रह्मतत्त्वं न जानाति दर्वी पाकरसं यथा॥ ६५॥

जो मनुष्य चार वेद एवं अन्य समस्त शास्त्रों का अध्ययन करने के पश्चात् भी ब्रह्मतत्त्व को नहीं जानता, वह परमानन्द से वैसे ही वञ्चित रहता है, जिस प्रकार कलछुल भोज्य पदार्थों में रहती हुई भी उनके रसों को नहीं जान पाती॥ ६५॥

स्वदेहाशुचिगन्धेन न विरज्येत यः पुमान्। विरागकारणं तस्य किमन्यदुपदिश्यते॥ ६६॥

जिसे स्वयं अपने स्थूल शरीर की अशुद्ध गन्ध को प्रत्यक्ष करके भी उससे विराग नहीं होता, उसे विराग प्रादुर्भूत करने वाला अन्य और कौन-सा उपदेश दिया जा सकता है?॥ ६६॥

अत्यन्तमलिनो देहो देही चात्यन्तनिर्मलः। उभयोरन्तरं ज्ञात्वा कस्य शौचं विधीयते॥ ६७॥

यह देह (शरीर) अत्यन्त मलिन है और आत्मा अत्यन्त निर्मल है। दोनों के अन्तर को जानकर किस की पवित्रता को उपदिष्ट किया जाये?॥ ६७॥

बद्धो हि वासनाबद्धो मोक्षः स्याद्वासनाक्षयः। वासनां संपरित्यज्य मोक्षार्थित्वमपि त्यज॥६८॥

जो (मनुष्य) वासना के बन्धन से बँधा है, वही बद्ध है और वासनाओं का विनाश ही मोक्ष है। अतः वासनाओं का ही भली--भाँति परित्याग करके मोक्ष प्राप्ति की वासना का भी त्याग कर देना चाहिए॥ ६८॥

मानसीर्वासनाः पूर्वं त्यक्त्वा विषयवासनाः। मैत्र्यादिवासनानाम्नीर्गृहाणामलवासनाः॥ ६९॥

सर्वप्रथम मानसी वासनाओं को छोड़ कर विषय वासनाओं का भली–भाँति परित्याग करके, मैत्र्यादि वासना के नाम से कथित 'निर्मल–वासना' अर्थात् मोक्ष–प्राप्ति की वासना का भी परित्याग कर देना चाहिए॥ ६९॥

ता अप्यतः परित्यज्य ताभिर्व्यवहरन्नपि। अन्तः शान्तः समस्नेहो भव चिन्मात्रवासनः॥ ७०॥

इसके पश्चात् उन दोषरहित वासनाओं का भी परित्याग करके अथवा उन श्रेष्ठ वासनाओं को व्यवहार में रखते हुए भी भीतर से शान्त अर्थात् सभी तरह की वासनाओं से मुक्त होकर सभी के प्रति समान स्नेह रखते हुए एकमात्र चित्स्वरूप में निरन्तर अपनी वासना को लगाते रहना चाहिए॥ ७०॥

तामप्यथ परित्यज्य मनोबुद्धिसमन्विताम्। शेषस्थिरसमाधानो मयि त्वं भव मारुते॥ ७१॥

हे मारुते! तदुपरान्त पुनः उस चिद् वासना को भी मन एवं बुद्धि के सहित छोड़कर तुम मुझमें ही पूर्णरूपेण प्रतिष्ठित हो जाओ॥ ७१॥

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत्।
अनामगोत्रं मम रूपमीदृशं भजस्व नित्यं पवनात्मजार्तिहन्॥ ७२॥

हे पवनतनय! तुम निरन्तर मेरे स्वरूप का ही चिंतन करते हुए भजन करो; क्योंकि एक मात्र मेरा स्वरूप ही शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्धादि से रहित है। वह कभी विकारग्रस्त नहीं होता, उसका न कोई नाम है और न ही कोई गोत्र है। वही सभी प्रकार के दुःखों का हरण करने में समर्थ है॥ ७२॥

दृशिस्वरूपं गगनोपमं परं सकृद्विभातं त्वजमेकमक्षरम्।
अलेपकं सर्वगतं यदद्वयं तदेव चाहं सकलं विमुक्त ॐ॥ ७३॥

हे हनुमान्! जो साक्षिरूप है, आकाश के सदृश अन्तरहित, जिसके एक बार जान लेने के पश्चात् कुछ भी जानना शेष नहीं रह जाता, जो अजन्मा है, अद्वितीय है, निर्लिप्त है, सर्वत्र संव्याप्त रहने वाला एवं अनुपम है। जो अकार–उकार–मकार रूप तीनों कलाओं से सम्पन्न एवं सम्पूर्ण कलाओं से विमुक्त अद्वय–तत्त्व है, वह प्रणवरूप अक्षर–अविनाशी ब्रह्म स्वयं मैं ही हूँ॥ ७३॥

दृशिस्तु शुद्धोऽहमविक्रियात्मको न मेऽस्ति कश्चिद्विषयः स्वभावतः।
पुरस्तिरश्चोर्ध्वमधश्च सर्वतः सुपूर्णभूमाहमितीह भावय॥ ७४॥

मैं द्रष्टा हूँ, स्वयं शुद्धरूप हूँ, कभी विकारग्रस्त नहीं होता हूँ तथा मेरे सिवा कोई दूसरा पदार्थ नहीं है, जो मेरा विषय बने अर्थात् मेरा द्रष्टापन भी मात्र कहने भर के लिए है। मैं आगे एवं पीछे, ऊपर एवं नीचे, यत्र-तत्र-सर्वत्र सम्यक्‌रूप से पूर्ण हूँ। मैं भूमा हूँ, मुझमें किसी भी तरह का अभाव नहीं है। हे हनुमान्! तुमको मेरे इसी स्वरूप का निरन्तर चिन्तन करते रहना चाहिए॥ ७४॥

अजोऽमरश्चैव तथाऽजरोऽमृतः स्वयंप्रभः सर्वगतोऽहमव्ययः।
न कारणं कार्यमतीत्य निर्मलः सदैव तृप्तोऽहमितीह भावय॥ ७५॥

मैं अजन्मा हूँ, अजर-अमर हूँ, अमृत हूँ, स्वयंप्रकाश हूँ, सर्वत्र संव्याप्त रहने वाला हूँ, अव्यय हूँ, मेरा कोई कारण नहीं-मैं ही स्वयं प्रादुर्भूत हूँ, सभी क्रिया-कलापों से ऊपर रहने वाला मैं शब्द स्वरूप हूँ, नित्य प्रति तृप्त रहता हूँ। ऐसा ही तुम्हें निरन्तर चिन्तन करते रहना चाहिए॥ ७५॥

जीवन्मुक्तपदं त्यक्त्वा स्वदेहे कालसात्कृते। विशत्यदेहमुक्तत्वं पवनोऽस्पन्दतामिव॥ ७६॥

जब इस तरह से ध्यान करते-करते काल के वश हो शरीर का पतन हो जायेगा, तब वायु की गति-शीलता के सदृश तुम जीवन्मुक्त-पद को त्याग करके निर्वाण मुक्ति (विदेहमुक्ति) की स्थिति में प्रतिष्ठित हो जाओगे॥ ७६॥

तदेतदृचाभ्युक्तम्- तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्॥ तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते। विष्णोर्यत्परमं पदम्॥ ॐ सत्यमित्युपनिषत्॥ ७७॥

उपर्युक्त यह बात इस ऋचा में भी कही गई है- जो परमसत्ता आकाश में तेजोमय सूर्यमण्डल के सदृश,परम व्योम में चिन्मय आलोक द्वारा सर्वत्र संव्याप्त है, भगवान् विष्णु के उस परमधाम को विद्वान् साधक निरन्तर ही देखते रहते हैं। साधना में सतत जाग्रत् रहने वाले कामनारहित उपासक ब्राह्मण वहाँ प्रतिष्ठित होकर उस परम अविनाशी धाम को और भी अधिक आलोकित किये रहते हैं, उसे ही विष्णु का परमपद कहा जाता है। वही परमपद कामनारहित साधक को मिल जाता है। जो ऐसा जान लेता है, वह ऊपर वर्णित फल का उपभोग करता है, यही सत्य है। यही महान् मुक्ति उपनिषद् है॥ ७७॥

ॐ पूर्णमदः........................इति शान्तिः॥

॥ इति मुक्तिकोपनिषत्समाप्ता॥

॥ मृत्युलाङ्गूलोपनिषद्॥

अथ मृत्युलाङ्गूलं व्याख्यास्यामः। अस्य मृत्युलाङ्गूलमन्त्रस्य वसिष्ठ ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। कालाग्निरुद्रो यमश्च देवता। मृत्यूपस्थाने विनियोगः।

अब (हम) मृत्युलाङ्गूल उपनिषद् का व्याख्यान करते हैं। इस मृत्युलाङ्गूल मन्त्र के वसिष्ठ ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, कालाग्निरुद्र और यम देवता हैं। इसका मृत्यूपस्थान में विनियोग किया जाता है।

अथातो योगजिह्वः साधुमतियोजितं स मे वाह कालं पुरुषमूर्ध्वलिङ्गं विरूपाक्षं विश्वरूपाय नमो नमः। पशुपतये नमः। य इदं श्रृणुयान्नित्यं मृत्युलाङ्गूलं त्रिसन्ध्यं कीर्तयति वा स ब्रह्महत्यां व्यपोहति। सुवर्णस्तेय्यस्तेयी भवति। गुरुदाराभिगाम्यगामी भवति। सर्वेभ्यः पातकेभ्य उपपातकेभ्यश्च सद्यो विमुक्तो भवति। सकृज्जप्तेनानेन गायत्र्याः षष्टिसहस्राणि फलितानि भवन्ति। अष्टौ ब्राह्मणान् ग्राहयित्वा ब्रह्मलोकमवाप्नोति। यः कश्चिन्न ददाति स श्वित्री कुष्ठी कुनखी वा भवेत्। यः कश्चिद्दीयमानं न गृह्णाति सोऽन्धो बधिरो मूको वा भवति। मृत्युमुपस्थितः षण्मासादर्वाक्। बन्धोऽयं नश्यति इत्यनेन मृत्युलाङ्गूलाख्यस्य च महामन्त्रस्य शतकृत्वो जप्तेन भगवान् धर्मराट् मम प्रीयताम्।

योगजिह्व ने जो अतियोजित साधु से कहा, वही उसने मुझसे कहा- **कालं पुरुषमूर्ध्वलिङ्गं विरूपाक्षं विश्वरूपाय नमो नमः। पशुपतये नमः।** जो इस मृत्युलाङ्गूल मन्त्र को नित्य सुनता है अथवा तीन समय कीर्तन करता है, वह ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है। स्वर्ण की चोरी का पाप करने वाला इससे मुक्त हो जाता है। गुरुपत्नीगामी उस पाप से मुक्त हो जाता है। सब पातकों, उपपातकों से तत्काल मुक्त हो जाता है। इसके एकबार जपने से साठ हजार गायत्री जप का फल प्राप्त होता है। आठ ब्राह्मणों को यह मन्त्र ग्रहण कराने से ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है। जो इसे (सुपात्रों को) नहीं देता है, वह श्वित्री, कोढ़ी (सफेद दाग वाला), गलितकुष्ठी, कुनखी (नाखून का रोगी)हो जाता है। जो (सत्पुरुष द्वारा) देते हुए (मन्त्र) को नहीं लेता, वह अन्धा, बहरा, गूँगा हो जाता है। छः महीने के अन्दर-अन्दर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। **बन्धोऽयं नश्यति** इस मृत्युलाङ्गूल महामन्त्र के सौ बार जाप से भगवान् धर्मराज मुझ पर प्रसन्न हों।

ऋतं नष्टं यदा काले षण्मासेन मरिष्यति।
ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्णपिङ्गलम्॥
ऊर्ध्वलिङ्गं विरूपाक्षं विश्वरूपं नमाम्यहम्।
सत्यं तु पञ्चमे मासे परं ब्रह्म चतुर्थके॥
पुरुषं च तृतीये वा द्वितीये कृष्णपिङ्गलम्।

ऊर्ध्वलिङ्गं तु मासेन विरूपाक्षं तदर्धके।
विश्वरूपं तृतीयेऽह्नि सद्यश्चैव नमो नमः॥

जब ऋत (सत्य) नष्ट हो जाता है, तो छः मास में मरता है। **ऋतं सत्यं परब्रह्म पुरुषं कृष्णपिङ्गलम्। ऊर्ध्वलिङ्गं विरूपाक्षं विश्वरूपं नमाम्यहम्॥** सत्य पाँचवें मास में, परब्रह्म चौथे मास में, पुरुष तृतीय मास में, कृष्णपिङ्गल दूसरे में, ऊर्ध्वलिंग तो एक मास में, विरूपाक्ष पन्द्रह दिन में, विश्वरूप तृतीय दिवस में ही अपना कार्य पूरा कर देता है अथवा तुरन्त ही कर देता है। इसके लिए बार-बार नमस्कार है।

॥ इति मृत्युलाङ्गूलोपनिषत् समाप्ता ॥

॥ यज्ञोपवीतोपनिषद् ॥

यज्ञोपवीती धृतचक्रधारी यो ब्रह्मविद्ब्रह्मविदां मनीषी हिरण्यमादाय सुदर्शनं कृत्वा वह्निसंयुक्तं स्त्री शूद्रो बाहुभ्यां धारयेत्। तस्माद्गर्भेण जायते। ब्राह्मणस्य शरीरं जायते। श्री विष्णुं सर्वेश्वरं भजन्ति।

नासादिकेशपर्यन्तमूर्ध्वपुण्ड्रं तु धारयेत्। उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना॥ भूमिर्धेनुर्धरणी लोकधारिणी॥ मृत्तिके हन मे पापं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्॥

तस्माद्द्विरेखं भवति तं देवकीपुत्रं समाश्रये। अग्निना वै होत्रा चक्रं पाञ्चजन्यं प्रतप्तं द्वयोर्भुजयोर्धारयेत्। आत्मकृतमाचरेत्। आचार्यस्य संमुखं प्रपद्येत। तस्माद्वैकुण्ठं न पुनरागमनं सालोक्यसामीप्यसारूप्यसायुज्यं गच्छति। य एवं वेद। इत्युपनिषत्॥

यज्ञोपवीतधारी, चक्रधारी (विष्णु प्रतीक) को धारण किए हुए, जो ब्रह्मविद्या का जानकार, ब्रह्मवेत्ताओं में भी अति विचारवान् हो, वह सुवर्ण को अग्नि में तपाकर सुदर्शन (दर्शन में शोभनीय) करके स्त्री शूद्र की भुजाओं में बाँधे। इसके पश्चात् जो गर्भ स्थापन होगा, उसे ब्राह्मण का शरीर प्राप्त होगा। श्री विष्णु जो सर्वेश्वर हैं, उनका भजन करे।

नासा (नाक) से केश पर्यन्त श्वेत मिट्टी से ऊर्ध्व पुण्ड्र को धारण करे। '**उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना भूमिर्धेनुर्धरणी लोकधारिणी मृत्तिके हन मे पापं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्**'॥

इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करके उससे दो रेखाएँ बनाए। देवकीपुत्र कृष्ण का आश्रय लेता हूँ, ऐसा उच्चारण करे। फिर हवन करने वाले के द्वारा अग्नि में तपाया चक्र और पाञ्चजन्य शंख दोनों भुजाओं में धारण करे। आत्मा के लिए शुभ कर्मों का आचरण करे। आचार्य के सम्मुख बैठे। इससे वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है। संसार में पुनरागमन नहीं होता। सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य मुक्ति प्राप्त होती है। जो ऐसा जानता है (उसका कल्याण होता है।) यह उपनिषद् (रहस्य) है।

॥ इति यज्ञोपवीतोपनिषत्समाप्ता ॥

॥ योगशिखोपनिषद्॥

॥ शान्तिपाठः ॥

॥ ॐ पूर्णमदः..............इति शान्तिः ॥ (द्रष्टव्य- तारसारोपनिषद्)

॥ प्रथमः खण्डः ॥

ॐ योगशिखां प्रवक्ष्यामि सर्वज्ञानेषु चोत्तमाम्। यदा तु ध्यायते मन्त्रं गात्रकम्पोऽभिजायते॥ १ ॥ आसनं पद्मकं बद्ध्वा यच्चान्यद्वापि रोचते। कुर्यान्नासाग्रदृष्टिं च हस्तौ पादौ च संयतौ॥ २ ॥ मनः सर्वत्र संयम्य ओंकारं तत्र चिन्तयेत्। ध्यायेत सततं प्राज्ञो हृत्कृत्वा परमेष्ठिनम्॥ ३ ॥ एक स्तम्भे नवद्वारे त्रिस्थूणे पञ्चदैवते। ईदृशे तु शरीरे वा मतिमानुपलक्षयेत्॥ ४॥ आदित्यमण्डलं दिव्यं रश्मिज्वालासमाकुलम्। तस्य मध्यगतो वह्निः प्रज्वलेद्दीपवर्तिवत्॥ ५ ॥

ॐ सब ज्ञानों में उत्तम योगशिखा (उपनिषद्) को कहते हैं। जब मन्त्र का ध्यान करते हुए शरीर में कम्पन हो जाय (तो वह उत्तम स्थिति है)। इसके लिए पद्मासन अथवा जो सुगम हो, आसन लगाकर बैठना चाहिए। हाथ पैर को संयत करके नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि रखें। मन को सब ओर से नियन्त्रित करके ओंकार का चिन्तन करें। हृदयदेश में भगवान् परमपिता का ध्यान करें। एक स्तम्भ (रीढ़ की हड्डी) वाले, नवद्वार (दो आँख, दो कान, मुख, दो नासिकाछिद्र, गुदा-मूत्र स्थान) वाले, त्रिस्थूण (तीन स्थूल) (दो पैर, एक धड़) वाले, पाँच देवता (ज्ञानेन्द्रियों) वाले शरीर में साधक को इष्ट की परिकल्पना करनी चाहिए। किरणों की ज्वाला से व्याप्त दिव्य आदित्य मण्डल के मध्य में दीपक की बत्ती (वर्तिका) के समान भावना से अग्नि प्रज्वलित करें॥ १-५ ॥

॥ द्वितीयः खण्डः ॥

दीपशिखायां या मात्रा सा मात्रा परमेष्ठिनः॥ १ ॥ भिन्दन्ति योगिनः सूर्यं योगाभ्यासेन वै पुनः॥ २ ॥ द्वितीयं सुषुम्नाद्वारं परिशुद्धं विसर्पति। कपालसंपुटं भित्त्वा ततः पश्यन्ति तत्परम्॥ ३ ॥

दीपशिखा में स्थित मात्रा ही परमात्मा की मात्रा है। योगीजन योगाभ्यास से सूर्यमण्डल का भेदन करते हैं। सुषुम्ना का दूसरा द्वार योगाभ्यास से परिशुद्ध होकर खुलता है। साधक का मन इस द्वार से प्रविष्ट होकर षट्चक्र में भेदन करता हुआ कपाल-संपुट (ब्रह्मरन्ध्र) का भेदन कर उस परमतत्त्व अथवा परमपद को देखता है॥ १-३ ॥

॥ तृतीयः खण्डः ॥

अथ न ध्यायेज्जन्तुरालस्याच्च प्रमादतः। यदि त्रिकालमावर्तेत्स गच्छेत्परमं पदम्॥ १ ॥ पुण्यमेतत्समासाद्य संक्षेपात्कथितं मया। लब्धयोगेन बोद्धव्यं प्रसन्नं परमेष्ठिनम्॥ २ ॥

जन्मान्तरसहस्रेषु यदा नाश्नाति किल्बिषम्। तदा पश्यन्ति योगेन संसारच्छेदनं परं संसारच्छेदनं परमिति॥ ३॥

जीव को कभी आलस्य व प्रमाद नहीं करना चाहिए। यदि तीनों समय इसका अभ्यास करे, तो परमपद को प्राप्त करता है। यह पुण्य अवसर पाकर संक्षेप से मैंने यह कहा है। यदि ऐसा अवसर प्राप्त हो, तो परमात्मा को प्रसन्न समझना चाहिए; क्योंकि बिना भगवान् की कृपा के मनुष्य ऐसे कार्य में नहीं लगता। सहस्रों जन्मों में अभ्यास करते-करते जब प्राणी पाप मुक्त होता है, तब इस योग से संसार का छेदन होता है, तभी उस परम (तत्त्व) का दर्शन होता है॥ १-३॥

॥ ॐ पूर्णमदः ....इति शान्तिः॥

॥ इति योगशिखोपनिषत्समाप्ता॥

॥ लिङ्गोपनिषद् ॥

ॐ धर्मजिज्ञासा । ज्ञानं बुद्धिश्च । ज्ञानान्मोक्षकारणम् । मोक्षान्मुक्ति स्वरूपम् । तथा ब्रह्मज्ञानाद्बुद्धिश्च। लिङ्गैक्यं देहो लिङ्गभेदे न । अज्ञानात् ज्ञानं बुद्धिश्च । चतुर्वर्णानां धारणां कुर्यात् । पशुपक्षिमृगकीटक- लिङ्गधारणमुच्यते । पञ्चबन्धस्वरूपेण पञ्चबन्धा ज्ञानस्वरूपाः । पिण्डाज्जननम् । तज्जननकाले धारणमुच्यते । "सर्वलिङ्गं स्थापयति पाणिमन्त्रं पवित्रम्", "अयं मे हस्तो भगवान्" इति धारयेत् । "या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी", "रुद्रपते जनिमा चारु चित्रम्", "वयं सोम व्रते तव । मनस्तनूषु बिभ्रतः । प्रजावन्तो अशीमहि ।", "त्रियम्बकं यजामहे" इति धारयेत् । ब्राह्मणानां धारणां कुर्यात् । "पवित्र ते विततं ब्रह्मणस्पते", "सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम् । अवस्यतं मुंचतं यन्नो अस्ति तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत् । सोमापूषणा जनना रयीणां जनना दिवो जनना पृथिव्याः । जातौ विश्वस्य भुवनस्य गोपौ देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ।" इति प्राकट्यं कुर्यात् । न कुर्यात्पशुभाषणम् । श्रौतानामुपनयनकाले धारणम् । चतुर्थाश्रमः संन्यासः । पञ्चमो लिङ्गधारणम् । अत्याश्रमाणां मध्ये लिङ्गधारी श्रेष्ठो भवति । शिरसि महादेवस्तिष्ठतु इति धारयेत् । अन्यायो न्यायः । पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाश इति पञ्चस्वरूपं लिङ्गम् । त्वक्छ्रोत्रनेत्रजिह्वाघ्राणपञ्चस्वरूपमिति लिङ्गम् । रेतोबुद्ध्यापमनस्स्वरूपमिति लिङ्गम् । सङ्कल्प इति लिङ्गम् । ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वरूपमिति लिङ्गम् । व्रतं चरेत् । संतिष्ठेन्नियमेन । सर्वं शाम्भवीरूपम् । शाम्भवी विद्योच्यते । चरेदेतानि सूत्राणि । पञ्चमुखं पञ्चस्वरूपं पञ्चाक्षरं पञ्चसूत्रं ज्ञानम् । सिद्धिर्भवत्येव । ज्ञानाद्धारणं लिङ्गदेह-प्रकार उच्यते । शिरःपाणिपादपायूपस्थं सर्वं लिङ्गस्वरूपम् । ब्राह्मणो वदेत् । ओङ्कारो बाणः शक्ति रेव पीठं सिन्दूरवर्णं सर्वं लिङ्गस्वरूपम् । कैवल्यं केवलं विद्यात् । व्यवहारपरः स्यात् । प्राण एव प्राणः । पूर्वं ब्रह्मा पीठम् । विष्णुर्बाणः । रुद्रः स्वरूपम् । सर्वभूतैरथापरित्याज्यश्च । विग्रहमनुग्रहलिङ्गेषु शक्तिकपालेषु सर्ववशङ्करं विद्यात् । जातिविषयान् त्यजेत्। श्रौताश्रौतेषु धारणम् । वेदोक्तविधिना श्रौतं तद्रहितमश्रौतम् । सर्ववर्णेषु धारणं कैलाससिद्धिर्भवति । धारणं देहे कैलासस्वरूपम् । धारणं देहे कैवल्यस्वरूपम् । धारणं देहे प्राणवस्वरूपम् । धारणं देहे वेदस्वरूपम्। धारणं देहे ब्रह्मस्वरूपम्। धारणं देहे शिवस्वरूपम् । शिरसि बाणं बाहुनाभिपीठप्रकृतिरूपकं देहे धारणं यस्य न विद्यते तद्देहं न पश्येत्। शिरःकपालं केशान् न कुर्यात् । शिरःपीठं लिङ्गात्मकं सर्वम् । शाम्भवीविग्रह उच्यते । प्राणादिलिङ्गस्वरूपं

गुरोर्लिङ्गम् । गुरुसंभवात्मकं लिङ्गं प्रगुरोः । ततः प्रथमं प्रणिपतति । प्रणवस्वरूपं लिङ्गं ब्रह्मलिङ्गम्। प्रकाशात्मकं लिङ्गं विद्यालिङ्गम् । विद्यालिङ्गं ज्ञानस्वरूपम् । लिङ्गं प्रचरेच्छास्त्रात्। लिङ्गस्वरूपेयं सिद्धिर्भविष्यति । सर्वदेहेषु लिङ्गधारणं भवति । इति वेदपुरुषो मन्यते । महापुरुषोपेतं यो वेद स एव नित्यपूतस्थः । स एव नित्यपूतस्थः स्याद्दैवलौकिकः पुरुषः । स एवामुष्मिपुरुष इति मन्यन्ते । जीवात्मा परमात्मा च स एवोच्यते ।

इष्टप्राणाभावेषु लिङ्गधारणं वदन्ति । इष्टे धारणम् । तिस्रः पुरस्त्रिपदा विश्वचर्षणी । पुरनाशे लिङ्गस्वरूपाज्ञासिद्धिर्भवत्यवज्ञानेऽसति । संयुक्तं लिङ्गं मोक्ष एव भवत्येव । मोक्षमेव धारणं विद्यात् । उशंतीव मातरं कुर्यात् । इत्येवं वेदेत्युपनिषत् ॥ ॐ तत्सत् ॥

धर्म की जिज्ञासा पर व्याख्यान करते हैं। ज्ञान और बुद्धि इसके मुख्य तत्त्व हैं। ज्ञान ही मोक्ष का कारण है। मोक्ष मुक्ति का स्वरूप है। ब्रह्मज्ञान से बुद्धि की सार्थकता है। लिङ्ग एक ही है, उसमें भेद नहीं है। अज्ञान से ही ज्ञान तथा बुद्धि का अहंकार होता है। चार वर्णों की धारणा करे। पशु पक्षी मृग कीट इत्यादि का लिङ्ग का धारण कहते हैं। पञ्चबन्ध-स्वरूप से पञ्चबन्ध ही ज्ञान के स्वरूप हैं। पिण्ड से उत्पत्ति होती है। जन्म के समय लिंगधारण को कहते हैं "सर्वलिङ्ग स्थापयति पाणिमन्त्रं पवित्रम्", "अयं मे हस्तो भगवान्" इति इस प्रकार लिङ्गधारण करे। "याते रुद्र शिवातनूरघोराऽपापकाशिनी", "रुद्रपते जनिमा चारुचित्रम्", "वयं सोमव्रते तव। मनस्तनूषु बिभ्रतः। प्रजावन्तो अशीमहि।" "त्रियम्बकं यजामहे" इन मन्त्रों से लिङ्गधारण करे। ब्राह्मणों की धारणा (कल्पना) की जाय। "पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते", "सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे विश्वा तनुषु भेषजानि धत्तम्। अवस्यतं मुंचतं यन्नो अस्ति तनुषु बद्धंकृतमेनो अस्मत्। सोमा पूषणाजनना रयीणां जनना दिवो जनना पृथिव्याः। जातौ विश्वस्य भुवनस्य गोपौ देवा अकृण्वन्नमृतस्यनाभिम्।" इस प्रकार प्राकट्य किया जाये। चतुर्थ आश्रम संन्यास है। पाँचवाँ लिङ्गधारण है। सभी आश्रमों में लिङ्गधारी श्रेष्ठ है। सिर पर महादेव बैठे हैं, यह धारणा करे। अन्याय भी भगवान् का न्याय है। पृथिवी-जल-तेज-वायु-आकाश ये लिङ्ग के पाँच स्वरूप हैं। त्वक्-श्रोत्र-नेत्र-जिह्वा-घ्राण यों भी पाँच स्वरूप वाला लिङ्ग है। सङ्कल्प लेना ही लिङ्गधारण करना है। इस का व्रत के रूप में निर्वाह करे। नियम से रहे। सारी सृष्टि शाम्भवीरूप है। शाम्भवी विद्या कहते हैं। इन सूत्रों का आचरण करे। पञ्चमुख पञ्चस्वरूप, पञ्चाक्षर पञ्चसूत्र इनका ज्ञान ही ज्ञान है। फिर सिद्धि तो होगी ही। ज्ञान से धारण के लिङ्ग देह का वर्णन करते हैं। शिर, पाणि, पाद, वायु और उपस्थ लिङ्ग के स्वरूप हैं। ऐसा ही ब्राह्मण कहता है। ओङ्कार ही बाण है। शक्ति ही पीठ है। सिन्दूर वर्ण सम्पूर्ण लिङ्गस्वरूप है। कैवल्य केवल एक को ही जानो। (साधक को) व्यवहारपरक होना चाहिए। प्राण ही प्राण है। पहले ब्रह्मा पीठ है। विष्णु बाण है। रुद्र स्वरूप है। सब प्राणियों द्वारा ऐसा ही ग्रहण किया जाना चाहिए। इस विग्रह को अनुग्रह लिङ्गों में शक्ति कपालों में सबको वश में करने वाला जानना चाहिए। जाति विषयों को त्याग देवे। श्रौत-अश्रौत सभी में लिङ्गधारण का विधान है। वेदोक्त विधि से किया हुआ श्रौत है। उससे रहित अश्रौत है। सब वर्णों में धारण का विधान है, इस से कैलास सिद्धि होती है । लिङ्ग धारण शरीर में कैलास का ही स्वरूप है। शरीर में लिङ्गधारण मुक्ति का स्वरूप है। धारण करना देह में प्रणवस्वरूप है। धारण करना देह में वेदस्वरूप है। धारण करना देह में ब्रह्मस्वरूप है। धारण करना देह में शिवस्वरूप है। जिसके सिर पर

बाण तथा बाहु, नाभि, पीठ पर प्रकृतिरूपक देह धारण चिह्न नहीं है, उसे नहीं देखना चाहिए अर्थात् उसे देखना पाप है। सिर पर कपाल स्थान पर केशों को नहीं काटना चाहिए। सिर, पीठ सब लिङ्गात्मक हैं। यह शाम्भवी विग्रह कहलाता है। प्राणादि लिङ्गस्वरूप गुरु का लिङ्ग है। गुरु सम्भवात्मक प्रगुरु लिङ्ग है। पहले प्रणाम करे। प्रणव स्वरूप लिङ्ग ब्रह्मलिङ्ग है। प्रकाशात्मक लिङ्ग विद्यालिङ्ग है। विद्या लिङ्ग ज्ञानस्वरूप है। शास्त्र विधान से लिङ्ग का धारण करे। यह लिङ्गस्वरूपा सिद्धि होगी। लिङ्गधारण सब देहों में होता है। यही वेदपुरुष की मान्यता है। महापुरुष को प्राप्त हुआ जो जान गया, वही नित्यपूत है। वही नित्यपूत दैवलौकिक पुरुष होता है। वही उस लोक का पुरुष होता है। यह मान्यता है। वही जीवात्मा, परमात्मा वही कहलाता है। इष्ट प्राण के अभाव में लिङ्गधारण को बताते हैं-इष्ट में धारण होना चाहिए। तिस्र पुरस्त्रिपदा विश्वचर्षणी। पुर-नाश होने पर लिङ्गस्वरूपा आज्ञासिद्धि होती है। ज्ञान न होने पर नहीं होती। संयुक्तलिङ्ग ही मोक्ष है। मोक्ष को ही धारण करना जानना चाहिए। इसे जो जानता है (वह महानता को प्राप्त करता है) धारणरूप मोक्ष को मातृपद प्रदान करे, जैसे दूध पीने की इच्छा करते हुए शिशु को माता अपना दूध पिलाती है, ऐसे ही मोक्ष का इच्छुक धारण को मातृपद प्रदान करे।

॥ इति लिङ्गोपनिषत् समाप्ता ॥

॥ वटुकोपनिषद् ॥

अथ वटुकोपनिषदं व्याख्यास्यामः।
वालाग्रमात्रं हृदयस्य मध्ये विश्वं देवं जातरूपं वरेण्यम्
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिर्भविता नेतरेषाम् ॥ १ ॥

अब वटुकोपनिषद् की व्याख्या करते हैं। बाल के अग्रभाग के समान सूक्ष्म, हृदयदेश में स्थित, समस्त विश्व में व्याप्त श्रेष्ठ अग्निवर्ण देव को जो धीर पुरुष अपने आत्मा में स्थित देख पाते हैं, उन्हीं को शान्ति प्राप्त होती है। इनके अतिरिक्त किसी को शान्ति प्राप्त नहीं होती॥ १ ॥

यो वै वटुकः स भगवान् यश्च ब्रह्मा तस्मै वै नमो नमः।
यो वै वटुकः स भगवान् यश्च विष्णुस्तस्मै वै नमो नमः॥ २ ॥

जो वटुक भगवान् हैं, वे ही ब्रह्मा हैं, उन्हें नमस्कार है। जो भगवान् वटुक हैं, वे ही विष्णु हैं, उन्हें नमस्कार है ॥ २ ॥

यो वै वटुकः स भगवान् यश्च रुद्रस्तस्मै वै नमो नमः।
यो वै वटुकः स भगवान् यश्चेन्द्रस्तस्मै वै नमो नमः॥ ३ ॥

जो भगवान् वटुक हैं, वे ही भगवान् रुद्र हैं, उन्हें नमस्कार है। जो भगवान् वटुक हैं, वे ही इन्द्र हैं, उनके लिए नमस्कार है॥ ३ ॥

यो वै वटुकः स भगवान् यश्चाग्निस्तस्मै वै नमो नमः।
यो वै वटुकः स भगवान् यश्च वायुस्तस्मै वै नमो नमः॥ ४ ॥

जो भगवान् वटुक हैं, वे ही अग्नि हैं, उन्हें नमस्कार है। जो भगवान् वटुक हैं, वे ही वायु हैं, उन्हें नमस्कार है॥ ४ ॥

यो वै वटुकः स भगवान् यश्च सूर्यस्तस्मै वै नमो नमः।
यो वै वटुकः स भगवान् यश्च सोमस्तस्मै वै नमो नमः॥ ५ ॥

जो भगवान् वटुक हैं, वे ही भगवान् सूर्य हैं, उन्हें नमस्कार है। जो भगवान् वटुक हैं, वे ही सोम हैं, उन्हें नमस्कार है॥ ५ ॥

यो वै वटुकः स भगवान् यश्च ग्रहास्तस्मै वै नमो नमः।
यो वै वटुकः स भगवान् यश्चोपग्रहास्तस्मै वै नमो नमः॥ ६ ॥

जो भगवान् वटुक हैं, वे ही समस्त ग्रह हैं, उन्हें नमस्कार है। जो भगवान् वटुक हैं, वे ही समस्त उपग्रह हैं, उन्हें नमस्कार है॥ ६ ॥

यो वै वटुकः स भगवान् यश्च भूस्तस्मै वै नमो नमः।
यो वै वटुकः स भगवान् यश्च भुवस्तस्मै वै नमो नमः॥ ७॥

जो भगवान् वटुक हैं, वे ही भूः हैं, उन्हें नमस्कार है। जो भगवान् वटुक हैं, वे ही भुवः हैं, उन्हें नमस्कार है॥ ७॥

यो वै वटुकः स भगवान् यश्च स्वस्तस्मै वै नमो नमः।
यो वै वटुकः स भगवान् यश्चान्तरिक्षं तस्मै वै नमो नमः॥ ८॥

जो भगवान् वटुक हैं वे ही स्वः हैं उन्हें नमस्कार है। जो भगवान् वटुक हैं वे ही अन्तरिक्ष हैं उन्हें नमस्कार है॥ ८॥

यो वै वटुकः स भगवान् यश्च द्यौस्तस्मै वै नमो नमः।
यो वै वटुकः स भगवान् यश्चापस्तस्मै वै नमो नमः॥ ९॥

जो भगवान् वटुक हैं, वे ही द्यौः हैं, उन्हें नमस्कार है। जो भगवान् वटुक हैं, वे ही आपः हैं, उन्हें नमस्कार है॥ ९॥

यो वै वटुकः स भगवान् यश्च तेजस्तस्मै वै नमो नमः।
यो वै वटुकः स भगवान् यश्च कालस्तस्मै वै नमो नमः॥ १०॥

जो भगवान् वटुक हैं, वे ही तेज हैं, उन्हें नमस्कार है। जो भगवान् वटुक हैं, वे ही काल हैं, उन्हें नमस्कार है॥ १०॥

यो वै वटुकः स भगवान् यश्च मृत्युस्तस्मै वै नमो नमः।
यो वै वटुकः स भगवान् यश्चामृत्युस्तस्मै वै नमो नमः॥ ११॥

जो भगवान् वटुक हैं, वे ही मृत्यु हैं, उन्हें नमस्कार है। जो भगवान् वटुक हैं, वे ही अमृत्यु हैं, उन्हें नमस्कार है॥ ११॥

यो वै वटुकः स भगवान् यश्चाकाशस्तस्मै वै नमो नमः।
यो वै वटुकः स भगवान् यश्च विश्वं तस्मै वै नमो नमः॥ १२॥

जो भगवान् वटुक हैं, वे ही आकाश हैं, उन्हें नमस्कार है। जो भगवान् वटुक हैं, वे ही विश्व हैं, उन्हें नमस्कार है॥ १२॥

यो वै वटुकः स भगवान् यश्च शुक्लं तस्मै वै नमो नमः।
यो वै वटुकः स भगवान् यश्च दम्भस्तस्मै वै नमो नमः॥ १३॥

जो भगवान् वटुक हैं, वे ही शुक्ल हैं, उन्हें नमस्कार है। जो भगवान् वटुक हैं, वे ही दम्भ हैं, उन्हें नमस्कार है॥ १३॥

यो वै वटुकः स भगवान् यश्चादम्भस्तस्मै वै नमो नमः।
यो वै वटुकः स भगवान् यश्च सूक्ष्मं तस्मै वै नमो नमः॥ १४॥

जो भगवान् वटुक हैं, वे ही अदम्भ हैं, उन्हें नमस्कार है। जो भगवान् वटुक हैं, वे ही सूक्ष्म हैं, उन्हें नमस्कार है॥ १४॥

यो वै वटुकः स भगवान् यश्च स्थूलं तस्मै वै नमो नमः।
यो वै वटुकः स भगवान् यश्च कृष्णस्तस्मै वै नमो नमः॥ १५॥

जो भगवान् वटुक हैं, वे ही स्थूल हैं,उन्हें नमस्कार है। जो भगवान् वटुक हैं, वे ही कृष्ण हैं,उन्हें नमस्कार है॥ १५॥

यो वै वटुकः स भगवान् यश्चाकृष्णस्तस्मै वै नमो नमः।
यो वै वटुकः स भगवान् यश्च सत्यं तस्मै वै नमो नमः
यो वै वटुकः स भगवान् यश्च सर्वं तस्मै वै नमो नमः॥ १६॥

जो भगवान् वटुक हैं,वे ही अकृष्ण हैं, उन्हें नमस्कार है। जो भगवान् वटुक हैं, वे ही सत्य हैं, उन्हें नमस्कार है। जो भगवान् वटुक हैं, वे ही सर्वरूप हैं, उन्हें नमस्कार है॥ १६॥

भूस्ते आदिर्मध्यं भुवः स्वस्ते शीर्षं विश्वरूपोऽसि ब्रह्मैकस्त्वं द्विधा त्रिधा बुद्धिस्त्वं शान्तिस्त्वं पुष्टिस्त्वं हुतमहुतं दत्तमदत्तं सर्वमसर्वं विश्वमविश्वं कृतमकृतं परमपरं परायणं च त्वम्। अपाम सोमममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान्। किं नूनमस्मान्कृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृतं मर्त्यस्य। सोमसूर्यपुरस्तात् सूक्ष्मः पुरुषः। सर्वं जगद्धितं वा एतदक्षरं प्राजापत्यं सूक्ष्मं सौम्यं पुरुषं ग्राह्यमग्राह्येण भावं भावेन सौम्यं सौम्येन सूक्ष्मं सूक्ष्मेण वायव्यं वायव्येन ग्रसति स्वेन तेजसा तस्मादुपसंहर्त्रे महाग्रासाय वै नमो नमः॥ १७॥

भूः तुम्हारा आदि है, भुवः मध्य है, स्वः शीर्ष है। तुम विश्वरूप हो। तुम एक ब्रह्म भी दो भागों में, तीन भागों में बँटे हो। तुम ही बुद्धि हो, तुम ही शान्ति तथा पुष्टि हो। तुम ही हुताहुत, दिया हुआ-न दिया हुआ, सर्वासर्व और विश्व-अविश्व हो। तुम ही किया-न किया, पर-अपर और परायण हो। हे सोम! आप यज्ञ की समृद्धि को बढ़ाने वाले हैं। हम यजमान आपके सहयोग से सूर्यरूप ज्योति से ज्योतित होकर अमरत्व को प्राप्त करें। हम भू लोक से दिव्यलोक में आरोहण करें। हम देवों के ज्योतिर्मय स्वर्गलोक को देखने में समर्थ हों। चन्द्र-सूर्य से पूर्व सूक्ष्म पुरुष है। वही अक्षर ब्रह्म, प्रजापति ब्रह्मा से सृष्ट इस समस्त जगत् को सूक्ष्मरूप में विद्यमान सौम्य पुरुष को, ग्रहण करने योग्य को अग्राह्य संकल्प से, भाव को भाव से, सौम्य को सौम्य से, सूक्ष्म को सूक्ष्म से, वायव्य को वायव्य से अपने तेज से ग्रस लेता है। अतः उन उपसंहार करने वाले महाग्रास भगवान् को नमस्कार है॥ १७॥

हृदिस्था देवताः सर्वा हृदि प्राणाः प्रतिष्ठिताः।
हृदि त्वमसि यो नित्यं तिस्रो मात्राः परस्तु सः॥ १८॥

हृदय में सारे देवता स्थित हैं। हृदय में प्राण प्रतिष्ठित हैं। हृदय में तुम नित्यस्वरूप विद्यमान हो। तीन मात्राओं (अकार, उकार, मकार) से परे वह अक्षर तत्त्व है॥ १८॥

तस्योत्तरतः शिरो दक्षिणतः पादौ य उत्तरतः स ओङ्कारो य ओङ्कारः स प्रणवो यः प्रणवः स सर्वव्यापी यः सर्वव्यापी सोऽनन्तो योऽनन्तस्तत्तारं यत्तारं तत्सूक्ष्मं यत्सूक्ष्मं तच्छुक्लं यच्छुक्लं तद्वैद्युतं यद्वैद्युतं तत्परं ब्रह्म यत्परं ब्रह्म स एको य एकःस रुद्रो यो रुद्रः स ईशानो य ईशानः स भगवान् महेश्वरो यो भगवान् महेश्वरः स भगवान् वटुकेश्वरो यो भगवान् वटुकेश्वरः॥ १९॥

उसका उत्तर की ओर सिर है, दक्षिण की ओर पैर हैं, जो उत्तर की ओर से विद्यमान है, वह ओङ्कार है। जो ओंकार है, वह प्रणव है। जो प्रणव है, वह सर्वव्यापी है। जो सर्वव्यापी है, वह अनन्त है। जो अनन्त है, वह तार है। जो तार है, वह सूक्ष्म है। जो सूक्ष्म है, वह शुक्ल है। जो शुक्ल है, वह वैद्युत है। जो वैद्युत है, वह परब्रह्म है। जो परब्रह्म है, वह एक है। जो एक है, वह रुद्र है। जो रुद्र है , वह ईशान है। जो ईशान है, वह भगवान् महेश्वर हैं। जो भगवान् महेश्वर हैं, वही भगवान् वटुकेश्वर हैं॥ १९॥

अथ कस्मादुच्यत ओङ्कारो यस्मादुच्चार्यमाण एव प्राणानूर्ध्वमुत्क्रामयति तस्मादुच्यत ओङ्कारः। अथ कस्मादुच्यते प्रणवो यस्मादुच्चार्यमाण एव ऋग्यजुस्सामाथर्वाङ्गिरसं ब्रह्म ब्राह्मणेभ्यः प्रणामयति नामयति च तस्मादुच्यते प्रणवः। अथ कस्मादुच्यते सर्वव्यापी यस्मादुच्चार्यमाण एव सर्वान् लोकान् व्याप्नोति स्नेहो यथा पलल पिण्डमिव शान्तरूपमोतप्रोतमनु प्राप्तो व्यतिषक्तश्च तस्मादुच्यते सर्वव्यापी। अथ कस्मादुच्यतेऽनन्तो यस्मादुच्चार्यमाण एव तिर्यगूर्ध्वमधस्ताच्चास्यान्तो नोपलभ्यते तस्मादुच्यतेऽनन्तः। अथ कस्मादुच्यते तारं यस्मादुच्चार्यमाण एव गर्भजन्मव्याधिजरामरणसंसारमहाभयात्तारयति त्रायते च तस्मादुच्यते तारम्। अथ कस्मादुच्यते सूक्ष्मं यस्मादुच्चार्यमाण एव सूक्ष्मो भूत्वा शरीराण्यधितिष्ठति सर्वाणि चाङ्गान्यभिमृशति तस्मादुच्यते सूक्ष्मम्। अथ कस्मादुच्यते शुक्लं यस्मादुच्चार्यमाण एव क्लन्दते क्लामयति च तस्मादुच्यते शुक्लम्। अथ कस्मादुच्यते वैद्युतं यस्मादुच्चार्यमाण एवाव्यक्ते महति तमसि द्योतयति तस्मादुच्यते वैद्युतम्। अथ कस्मादुच्यते परं ब्रह्म यस्मात् परमपरं परायणं च बृहद्बृहत्या बृंहयति तस्मादुच्यते परं ब्रह्म। अथ कस्मादुच्यते एको यः सर्वान् प्राणान् संभक्ष्य संभक्षणेनाजः संसृजति विसृजति तीर्थमेके व्रजन्ति तीर्थमेके दक्षिणाः प्रत्यञ्च उदञ्चः प्राञ्चोऽभिव्रजन्त्येके तेषां सर्वेषामिह सद्गतिः। साकं स एको भूतश्चरति प्रजानां तस्मादुच्यत एकः। अथ कस्मादुच्यते रुद्रो यस्मादृषिभिर्नान्यैर्भक्तैर्द्रुतमस्य रूपमुपलभ्यते तस्मादुच्यते रुद्रः। अथ कस्मादुच्यत ईशानो यः सर्वान् देवानीशत ईशानीभिर्जननीभिश्च परमशक्तिभिः। अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः। ईशानमस्य जगतः सुवर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः। तस्मादुच्यत ईशानः। अथ कस्मादुच्यते भगवान् महेश्वरो यस्माद्भक्ता ज्ञानेन भजन्त्यनुगृह्णाति च वाचं संसृजति विसृजति च सर्वान् भावान् परित्यज्यात्मज्ञानेन योगैश्वर्येण महति महीयते तस्मादुच्यते भगवान्

महेश्वरः। अथ कस्मादुच्यते भगवान् वटुकेश्वरो यस्मादन्तर्जलौषधिवीरुधानाविश्येमं विश्वं भुवनानि वा अवते तस्मादुच्यते भगवान् वटुकेश्वरः। तदेतद्रुद्रचरितम्॥ २०॥

ओङ्कार क्यों कहा जाता है? क्योंकि उच्चारण के साथ ही प्राणों को ऊपर की ओर उत्क्रमण कराता है। अत: ओङ्कार कहलाता है। प्रणव क्यों कहा जाता है? क्योंकि उच्चारण के साथ ऋग्, यजु:, साम, अथर्वाङ्गिरस से प्रतिपद्यमान ब्रह्म, ब्राह्मणों को प्रणाम और नमन कराता है। सर्वव्यापी किस कारण से कहा जाता है? क्योंकि उच्चारण के साथ ही सब लोकों को उसी प्रकार व्याप्त करता है, जैसे घृत शान्तभाव से ही मांस पिण्ड में ओत-प्रोत और अनुषिक्त हो जाता है, अत: सर्वव्यापी कहलाता है। अनन्त किस कारण से कहा जाता है? क्योंकि उच्चारण के साथ ही इधर-उधर, ऊपर-नीचे कहीं भी उसका अन्त प्राप्त नहीं होता, अत: अनन्त कहा जाता है। तार किस कारण से कहा जाता है? क्योंकि उच्चारण के साथ ही गर्भ, जन्म, मरण, जरा, व्याधि तथा संसार के महाभय से निस्तार करता है-रक्षा करता है। अत: तार कहलाता है। सूक्ष्म क्यों कहलाता है? क्योंकि उच्चारण के साथ ही सूक्ष्म होकर शरीरों में अधिष्ठित होता है तथा समस्त अंगों का स्पर्श करता है, इससे सूक्ष्म कहलाता है। शुक्ल किस कारण से कहलाता है? क्योंकि उच्चारण के साथ ही मन की दूषित वृत्तियों को घबराहट से भर देता है तथा मन थककर चूर-चूर हो जाता है, इससे शुक्ल कहलाता है। वैद्युत क्यों कहलाता है? क्योंकि उच्चारण के साथ ही अव्यक्त महान् अज्ञान-अन्धकार में विद्युत् की भाँति तीव्र प्रकाश भर देता है, इससे वैद्युत कहा जाता है। परब्रह्म किस कारण से कहा जाता है? क्योंकि पर-अपर तथा परायण को बृहत् से बृहत्तर-बृहत्तम कराता है, इससे परब्रह्म कहा जाता है। तब फिर एक क्यों कहलाता है? क्योंकि जो परमात्मा सारे प्राणों का भक्षण करके उन्हें पुनर्जन्म देते हैं, फिर मृत्यु देते हैं, कुछ लोग दक्षिण, उत्तर, पूर्व, पश्चिम कहीं भी तीर्थ स्थानों पर शरीर त्यागते हैं, उन सभी की सद्गति होती है; क्योंकि समस्त प्रजा के साथ-साथ एक ही प्राणतत्त्व-चेतन अंश विचरण करता है, इसलिए एक कहलाता है। रुद्र क्यों कहलाता है? क्योंकि अनन्य भक्त, ऋषि शीघ्र ही इसके रूप को प्राप्त कर लेते हैं, अत: रुद्र कहलाता है। ईशान क्यों कहा जाता है? क्योंकि जो सब देवों को अपनी सामर्थ्य से अभिभूत किये है तथा अपनी सृजन शक्तियों तथा परम शक्तियों (इस विश्व की रचना, स्थिति और प्रलय की सामर्थ्य) से युक्त है। वह इन्द्ररूप (ईशान) इस स्थावर जंगम जगत् का स्वामी है। दिव्य-दृष्टि सम्पन्न उसके लिए सभी उसी प्रकार लालायित रहते हैं, जैसे बिना दुही गौएँ बछड़ों के लिए लालायित रहती हैं; इससे वह ईशान कहा जाता है। फिर भगवान् महेश्वर क्यों कहे जाते हैं? क्योंकि भक्त लोग ज्ञानपूर्वक भजते हैं, उनकी प्रार्थना भगवान् ग्रहण करते हैं फिर कृपा करके (भक्तों के) सभी भावों का परित्याग कराकर आत्मज्ञानरूप योग-ऐश्वर्य से भक्तों को महान् बनाते हैं, अत: भगवान् महेश्वर कहे जाते हैं। भगवान् वटुकेश्वर क्यों कहे जाते हैं? क्योंकि जल, ओषधि, वृक्ष, लताओं के अन्दर प्रवेश करके इस विश्व के समस्त भुवनों की रक्षा करते हैं, इससे भगवान् वटुकेश्वर कहे जाते हैं। यह रुद्र चरित है॥ २०॥

एको ह देवः प्रदिशो नु सर्वा पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः।
स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः॥ २१॥

एक ही देव दिशा-विदिशाओं में विद्यमान हैं। वे ही सबसे पूर्व थे, वे ही गर्भ के अन्दर प्रविष्ट हैं। वे ही उत्पन्न जीव में तथा उत्पन्न होने वाले जीवों में विद्यमान हैं। वे सर्वतोमुख हुए प्रत्येकजन में स्थित हैं॥ २१॥

एको वटुको न द्वितीयाय तस्मै
य इमान् लोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति सञ्चुकोचान्तकाले।
संसृज्य विश्वा भुवनानि गोप्ता॥ २२॥

जो इन लोकों को अपनी ईश्वरीय शक्तियों से अभिभूत किये हैं, वे वटुक एक ही हैं, दूसरा कोई नहीं। जो सभी के अन्त:करण में विराजमान हैं तथा जो इस सृष्टि का सृजन व रक्षण करके अन्त में संकोच (विनाश व संहार) भी करते हैं॥ २२॥

यस्मिन् क्रोधं यां च तृष्णां क्षमां च
ह्यक्षमां हित्वा हेतुजालस्य मूलम्।
बुद्ध्या सञ्चितं स्थापयित्वा तु रुद्रे
शाश्वतं वै रुद्रमेकत्वमाहुः॥ २३॥
वटुको हि शाश्वतेन पुराणेन
वेषमूर्जेण तपसा नियन्ता॥ २४॥

साधक लोग क्रोध-तृष्णा, क्षमा-अक्षमा इत्यादि जगत् के हेतुभूत भावों को त्यागकर अपनी बुद्धि से सञ्चित करके इसे जिन रुद्र में स्थापित करते हैं, उन रुद्र को शाश्वत (नित्य) तथा एकत्वयुक्त बताया गया है। वटुकेश्वर भगवान् ही अपने ऊर्जायुक्त तेज से शाश्वत, पुराण वेष को धारण किये तप से संलग्न हो सृष्टि का नियमन करते हैं॥ २३-२४॥

अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म व्योमेति भस्म सर्वं ह वेदं भस्म मन एतानि चक्षूंषि यस्माद्व्रतमिदं पाशुपतं यद्भस्मनाङ्गानि संस्पृशेत्तस्माद्ब्रह्म तदेतद्वटुकं पशुपाशविमोक्षणाय॥ २५॥

अग्नि भी भस्म, वायु भी भस्म, जल भी भस्म, पृथिवी भी भस्म और आकाश भी भस्म, यहाँ तक जो भी मन की परिधि में तथा जो भी नेत्रों से दृश्यमान पदार्थ समूह है, वह एक दिन विनाश को प्राप्त होकर भस्म होना है। इसलिए यह पाशुपत व्रत है, जिसमें भस्म से सब अंगों का संस्पर्श किया जाता है। जीवात्मारूप पशु को बन्धन मुक्त कराने वाले वटुकेश्वर ही ब्रह्मरूप हैं॥ २५॥

यस्मिन्निदं सर्वमोतप्रोतं तस्मादन्यन्न परं किञ्चनास्ति। न तस्मात्पूर्वं न परं तदस्ति न भूतं नोत भव्यं यदासीत्। अक्षराज्जायते कालः कालाद्व्यापक उच्यते॥ २६॥

जिसमें यह दृश्य-अदृश्य सभी ओत-प्रोत है, उससे अतिरिक्त अन्य कोई बड़ी सत्ता नहीं है। न उससे पूर्व थी, न उसके पश्चात् है। न हुई है, न है और न होगी। अक्षर ब्रह्म से काल उत्पन्न हुआ है, काल ही व्यापक कहा जाता है॥ २६॥

व्यापको हि भगवान् वटुको भोगायमानो यदा शेते रुद्रस्तदा संहरते प्रजाः। उच्छ्वासिते तमो भवति तमस आपोऽप्स्वङ्गुल्या मथिते मथितं शिशिरे शिशिरं मथ्यमानं फेनं भवति फेनादण्डं भवत्यण्डाद्ब्रह्मा भवति ब्रह्मणो वायुर्वायोरोङ्कार ओङ्कारात्सावित्री सावित्र्या गायत्री गायत्र्या लोकाः भवन्ति। एतद्धि परमं तपः। आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों नम इति॥ २७॥

व्यापक भगवान् वटुक अपना मुख फैलाकर सोते हैं, तब रुद्र प्रजा का संहार करते हैं। उनके उच्छ्वास लेने पर तम हो जाता है। तम से जल की उत्पत्ति होती है। जल में अंगुली से मथने पर ठण्डा हुआ फेन जन्म लेता है। फेन से अण्ड, अण्ड से ब्रह्मा होते हैं। ब्रह्मा से वायु, वायु से ओङ्कार, ओङ्कार से सावित्री, सावित्री से गायत्री, गायत्री से लोक उत्पन्न होते हैं। यही परम तप है। आप: (जल) ही ज्योति रस, अमृतरूप ब्रह्म है। वह ब्रह्म भू: , भुव:, स्व: तीनों में विद्यमान है, उस ब्रह्म को नमन है॥ २७॥

य इमां वटुकोपनिषदं ब्राह्मणोऽधीतेऽश्रोत्रियः श्रोत्रियो भवति। अनुपनीत उपनीतो भवति। स हाग्निपूतो भवति। स वायुपूतो भवति। स सूर्यपूतो भवति। स सोमपूतो भवति। स सत्यपूतो भवति। स सर्वपूतो भवति। स सर्वैर्देवैरनुज्ञातो भवति। स सर्वैर्वेदैरनुध्यातो भवति। स सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति। स सर्वविद्भवति। स सर्वायुरारोग्यवान् भवति। स कालज्ञानी भवति। स गुर्वनुग्रहभागी भवति। इत्येवं भगवद्वटुकेश्वरं यः स्तौति स वेद्यं वेदेति॥ २८॥

जो ब्राह्मण इस वटुकोपनिषद् का अध्ययन करता है, वह अश्रोत्रिय भी श्रोत्रिय हो जाता है तथा गुरु से बिना दीक्षा लिए भी दीक्षित हो जाता है। वह अग्निपूत हो जाता है। वह वायुपूत हो जाता है। वह सूर्यपूत हो जाता है। वह सोमपूत हो जाता है। वह सत्यपूत हो जाता है। वह सर्वपूत हो जाता है। वह सब देवों से समर्थित तथा सब वेदों का अनुध्याता (चिंतन-मनन करने वाला) हो जाता है। वह समस्त तीर्थों में स्नान किया हुआ हो जाता है। वह सब कुछ जानने वाला हो जाता है। वह पूरी आयु आरोग्यवान् रहता है। वह कालज्ञानी हो जाता है। वह गुरु का कृपापात्र बन जाता है। इस प्रकार भगवान् वटुकेश्वर की जो स्तुति करता है, वह जानने योग्य सभी कुछ जान जाता है॥ २८॥

॥ इति वटुकोपनिषत् समाप्ता ॥

॥ वराहोपनिषद्॥

॥ शान्तिपाठः ॥

॥ सह नाववतु................ इति शान्तिः। (द्रष्टव्य- गणेशोत्तरतापिन्युपनिषद्)

॥ अथ प्रथमोऽध्यायः ॥

अथ ऋभुर्वै महामुनिर्देवमानेन द्वादशवत्सरं तपश्चचार। तदवसाने वराहरूपी भगवान्प्रादुरभूत्। स होवाचोत्तिष्ठोत्तिष्ठ वरं वृणीष्वेति। सोदतिष्ठत्। तस्मै नमस्कृत्योवाच भगवन्कामिभिर्यद्यत्कामितं तत्तत्त्वत्सकाशात्स्वप्नेऽपि न याचे। समस्तवेदशास्त्रेतिहासपुराणानि समस्तविद्याजालानि ब्रह्मादयः सुराः सर्वे त्वद्रूपज्ञानान्मुक्तिमाहुः। अतस्त्वद्रूपप्रतिपादिकां ब्रह्मविद्यां ब्रूहीति होवाच।

हरि ॐ ऋभुमुनि ने देवमान के बारह वर्षों तक तप किया। उसके (तप के) अवसान पर भगवान् वराह रूप में प्रकट हुए। वे बोले–उठो–उठो! वर माँगो। मुनि उठकर उन्हें नमस्कार करके बोले– 'भगवन्! कामी पुरुष जिस–जिस की कामना करते हैं, आपके दर्शन पाकर वह स्वप्न में भी नहीं माँगूँगा। समस्त वेद– शास्त्र, इतिहास–पुराण, समस्त विद्या समूह, ब्रह्मादि देवगण सभी यही बताते हैं कि आपके स्वरूप के ज्ञान से ही मुक्ति होती है। अतः अपने स्वरूप का प्रतिपादन करने वाली ब्रह्मविद्या का उपदेश कीजिए।'

[ऋभु का अर्थ होता है — दिव्यतायुक्त। ऋभु मुनि ने अपना नाम सार्थक करते हुए मनोगत हीन कामनाओं को निरस्त करते हुए-दिव्यबोध कराने वाली ब्रह्मविद्या जानने की इच्छा प्रकट की ।]

तथेति स होवाच वराहरूपी भगवान् – चतुर्विंशतितत्त्वानि केचिदिच्छन्ति वादिनः। केचित्षट्त्रिंशत्तत्त्वानि केचित्षण्णवतीनि च॥ १ ॥ तेषां क्रमं प्रवक्ष्यामि सावधानमनाः शृणु। ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चैव श्रोत्रत्वग्लोचनादयः॥ २॥ कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैव वाक्पाण्यङ्घ्र्यादयः क्रमात्। प्राणादयस्तु पञ्चैव पञ्च शब्दादयस्तथा॥ ३ ॥ मनोबुद्धिरहंकारश्चित्तं चेति चतुष्टयम्। चतुर्विंशतितत्त्वानि तानि ब्रह्मविदो विदुः॥ ४॥

तब वराहरूपी भगवान् ने कहा— कुछ मनीषी चौबीस तत्त्वों को मानते हैं, कुछ छत्तीस तत्त्वों को तथा कुछ विद्वान् छियानवे तत्त्वों को भी मान्यता देते हैं। उनका क्रम अब बतलाता हूँ, सावधान होकर सुनो। श्रोत्र, त्वचा, नेत्र आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ; वाणी, पैर, हाथ आदि पाँच कर्मेन्द्रियाँ; प्राण, अपान, उदान, व्यान और समान ये पाँच प्राण; शब्दादि (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध) पाँच विषय; मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार यह अन्तःकरण–चतुष्टय, इस प्रकार ये चौबीस तत्त्व ब्रह्मवेत्ता पुरुष बताते हैं॥ १–४॥

एतैस्तत्त्वैः समं पञ्चीकृतभूतानि पञ्च च। पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च॥ ५॥
देहत्रयं स्थूलसूक्ष्मकारणानि विदुर्बुधाः। अवस्थात्रितयं चैव जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तयः॥ ६॥
आहत्य तत्त्वजातानां षट्त्रिंशन्मुनयो विदुः। पूर्वोक्तैस्तत्त्वजातैस्तु समं तत्त्वानि योजयेत्॥ ७॥
षड्भावविकृतिश्चास्ति जायते वर्धतेऽपि च। परिणामं क्षयं नाशं षड्भावविकृतिं विदुः॥ ८॥

इनके तत्त्वों के साथ पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश इत्यादि पञ्चीकृतभूत पञ्चमहाभूत होते हैं। स्थूल, सूक्ष्म, कारण तीन शरीर; जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तीन अवस्थाएँ; (यह ग्यारह) और चेतन तत्त्व, इस प्रकार पूर्वोक्त चौबीस में ये बारह जोड़कर छत्तीस तत्त्व हुए। उत्पन्न होना, विद्यमान रहना, बढ़ना, परिणाम (परिवर्तित होना), क्षय (क्षीण होना) तथा नाश होना (पूर्णतः विनष्ट होना), इन्हें षड्भाव विकृति कहा है॥ ५-८॥

अशना च पिपासा च शोकमोहौ जरा मृतिः। एते षडूर्मयः प्रोक्ताः षट्कोशानथ वच्मि ते॥ ९॥
त्वक्च रक्तं मांसमेदोमज्जास्थीनि निबोधत। कामक्रोधौ लोभमोहौ मदो मात्सर्यमेव च॥ १०॥
एतेऽरिषट्का विश्वश्च तैजसः प्राज्ञ एव च। जीवत्रयं सत्त्वरजस्तमांसि च गुणत्रयम्॥ ११॥
प्रारब्धागाम्यर्जितानि कर्मत्रयमितीरितम्। वचनादानगमनविसर्गानन्दपञ्चकम्॥ १२॥

भूख, प्यास, शोक, मोह, जरा, मरण ये छः ऊर्मियाँ कही गई हैं। अब षट्कोशों को बताता हूँ- त्वचा रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा ये षट्कोश हैं। काम, क्रोध, लोभ मोह, मद, मात्सर्य ये छः शत्रु हैं। विश्व, तैजस, प्राज्ञ ये तीन प्रकार के जीव हैं। सत्त्व, रज, तम ये तीन गुण हैं। प्रारब्ध, आगामी, अर्जित ये तीन कर्म हैं। वचन, आदान, गमन, विसर्जन और आनन्दग्रहण ये पाँच क्रियाएँ हैं॥ ९-१२॥

संकल्पोऽध्यवसायश्च अभिमानोऽवधारणा। मुदिता करुणा मैत्री उपेक्षा च चतुष्टयम्॥ १३॥
दिग्वातार्कप्रचेतोऽश्विवह्नीन्द्रोपेन्द्रमृत्युकाः। तथा चन्द्रश्चतुर्वक्त्रो रुद्रः क्षेत्रज्ञ ईश्वरः॥ १४॥
आहत्य तत्त्वजातानां षण्णवत्यस्तु कीर्तिताः। पूर्वोक्ततत्त्वजातानां वैलक्षण्यमनामयम्॥ १५॥
वाराहरूपिणं मां ये भजन्ति मयि भक्तितः। विमुक्ताज्ञानतत्कार्या जीवन्मुक्ता भवन्ति ते॥ १६॥
ये षण्णवतितत्त्वज्ञा यत्र कुत्राश्रमे रताः। जटी मुण्डी शिखी वापि मुच्यते नात्र संशयः॥ १७॥

संकल्प, अध्यवसाय, अभिमान, अवधारणा ये चार भाव हैं। मुदिता, करुणा, मैत्री, उपेक्षा ये भी चार भाव हैं। दिग् (दिशा), वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, यम, चन्द्र, ब्रह्मा, रुद्र, क्षेत्रज्ञ, ईश्वर इन (६० तथा ३६ पूर्वोक्त) सबको जोड़कर ९६ तत्त्व कहे गये हैं। इन पूर्वोक्त तत्त्वों की विलक्षणता यह है कि ये विकाररहित हैं। जो मुझ वराहरूपधारी को भक्तिपूर्वक भजते हैं, वे अज्ञानजनित कार्यों से विमुक्त होकर जीवन्मुक्त हो जाते हैं। जो ९६ तत्त्वों के ज्ञाता हैं, वे जहाँ कहीं भी किसी ब्रह्मचर्यादि आश्रम में साधनारत हों, जटी (जटाधारी), मुण्डी (बाल घुटाकर रहने वाले), शिखी (शिखा रखने वाले) कोई भी हों, वे मुक्त हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं॥ १३-१७॥

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

ऋभुर्नाम महायोगी क्रोडरूपं रमापतिम्। वरिष्ठां ब्रह्मविद्यां त्वमधीहि भगवन्मम॥ १॥
एवं स पृष्टो भगवान्प्राह भक्तार्तिभञ्जनः। स्ववर्णाश्रमधर्मेण तपसा गुरुतोषणात्॥ २॥
साधनं प्रभवेत्पुंसां वैराग्यादिचतुष्टयम्। नित्यानित्यविवेकश्च इहामुत्र विरागता॥ ३॥
शमादिषट्कसंपत्तिर्मुमुक्षा तां समभ्यसेत्। एवं जितेन्द्रियो भूत्वा सर्वत्र ममतामतिम्॥ ४॥

महायोगी ऋभु ने वराहरूपी भगवान् रमापति (विष्णु) से निवेदन किया— हे भगवन् ! आप मुझे वरिष्ठ ब्रह्मविद्या का उपदेश कीजिए। तब इसका उत्तर देते हुए भक्तों की पीड़ा हरने वाले भगवान् इस प्रकार बोले— साधक को अपने वर्णाश्रम धर्म के अनुरूप गुरु की संतुष्टि प्राप्त करके वैराग्यादि साधन-चतुष्टय का अभ्यास करना चाहिए। नित्यानित्य विवेक (ब्रह्म ही नित्य है, इसके अतिरिक्त सब अनित्य है), लोक-परलोक से विरागता (सृक् चन्दन वनितादि स्वर्गीय भोगों में इच्छारहित होना), शमादि षट्क सम्पत्ति (शम-दम-उपरति-तितिक्षा-श्रद्धा और समाधान) का अभ्यास करना चाहिए। [इनमें अन्त:करण के निग्रह को शम, बाह्यकरण के निग्रह को दम, सर्वकर्म संन्यास को उपरति, शीतोष्ण द्वन्द्व सहन को तितिक्षा, श्रुत्याचार्य वाक्य विश्वास को श्रद्धा, चित्त की एकाग्रता को समाधान कहते हैं।] इन सभी के सहित मुमुक्षा (मुक्त होने की इच्छा) भी आवश्यक है। चारों (नित्यानित्य विवेक, वैराग्य, शमादि षट्क सम्पत्ति और मुमुक्षा) साधनों का अभ्यास करने से साधक ममता बुद्धि से परे होकर जितेन्द्रिय हो जाता है॥ १-४॥

विहाय साक्षिचैतन्ये मयि कुर्यादहंमतिम्। दुर्लभं प्राप्य मानुष्यं तत्रापि नरविग्रहम्॥ ५॥
ब्राह्मण्यं च महाविष्णोर्वेदान्तश्रवणादिना। अतिवर्णाश्रमं रूपं सच्चिदानन्दलक्षणम्॥ ६॥
यो न जानाति सोऽविद्वान्कदा मुक्तो भविष्यति। अहमेव सुखं नान्यदन्यच्चेन्नैव तत्सुखम्॥ ७॥
अमदर्थं हि न प्रेयो मदर्थं तु स्वतः प्रियम्। परप्रेमास्पदतया मा न भूवमहं सदा॥ ८॥
भूयासमिति यो द्रष्टा सोऽहं विष्णुर्मुनीश्वर। न प्रकाशोऽहमित्युक्तिर्यत्प्रकाशैकबन्धना॥ ९॥

इस प्रकार जितेन्द्रिय होकर, ममता बुद्धि को त्यागकर, साक्षि-चैतन्य मुझमें अहंभाव से युक्त बुद्धि वाला बने। यह मनुष्य शरीर पाकर, उसमें मनुष्यता अत्यन्त दुर्लभ है। इसे प्राप्त करके वेदान्तादि शास्त्रों के श्रवण आदि से वर्णाश्रम से अतीत, ब्रह्मभावापन्न महाविष्णु के सच्चिदानन्द लक्षण वाले स्वरूप को जो नहीं जान पाता, वह अविद्वान् कब मुक्त होगा ? मैं ही सुखस्वरूप हूँ। मुझसे अन्यत्र कहीं भी सुख नहीं, मुझसे असम्बद्ध सुख कभी प्रेय नहीं हो सकता। मुझसे सम्बद्ध निश्चय ही स्वत: प्रिय होगा। परम प्रेमास्पद होने से मैं सुखरूप नहीं हूँ, ऐसा नहीं, अपितु हूँ ही। यह देखने वाला भी मैं विष्णु ही हूँ। हे मुनीश्वर! मैं प्रकाशरूप (प्रकट) नहीं हूँ, यह उक्ति भी प्रकाश से सम्बद्ध एक बन्धन मात्र है॥ ५-९॥

स्वप्रकाशं तमात्मानमप्रकाशः कथं स्पृशेत्। स्वयं भातं निराधारं ये जानन्ति सुनिश्चितम्॥१०॥
ते हि विज्ञानसंपन्ना इति मे निश्चिता मतिः। स्वपूर्णात्मातिरेकेण जगज्जीवेश्वरादयः॥ ११॥
न सन्ति नास्ति माया च तेभ्यश्चाहं विलक्षणः। अज्ञानान्धतमोरूपं कर्मधर्मादिलक्षणम्॥१२॥

स्वयंप्रकाशमात्मानं नैव मां स्प्रष्टुमर्हति। सर्वसाक्षिणमात्मानं वर्णाश्रमविवर्जितम्॥ १३॥
ब्रह्मरूपतया पश्यन्ब्रह्मैव भवति स्वयम्। भासमानमिदं सर्वं मानरूपं परं पदम् ॥ १४॥

स्वप्रकाश उस आत्मा को भला अप्रकाश (अन्धकार) कैसे छू सकता है? जो स्वयं उस प्रकाशमान, निराधार को निश्चित रूप से जानते हैं, वे ही विज्ञानसम्पन्न हैं, यह मेरा निश्चित मत है। स्वपूर्णात्मा के अतिरिक्त जगत्-जीव-ईश्वर नहीं है, न ही माया है। मैं उनके लिए विलक्षण हूँ। अज्ञानान्धकाररूपी अन्धता से ग्रस्त (मानव) धर्म-कर्म आदि के माध्यम से स्वयं-प्रकाश मुझ आत्मा का स्पर्श भी नहीं कर सकते। आत्मा को सर्वसाक्षीरूप, वर्णाश्रम से रहित ब्रह्मरूप से देखता हुआ स्वयं ब्रह्म ही है। यह दृश्यमान जगत् प्रतीत होता है, वास्तविक नहीं; किन्तु वह आत्मा परमपद और वास्तविक है॥ १०-१४॥

पश्यन्वेदान्तमानेन सद्य एव विमुच्यते। देहात्मज्ञान वज्ज्ञानं देहात्मज्ञानबाधकम्॥ १५॥
आत्मन्येव भवेद्यस्य स नेच्छन्नपि मुच्यते। सत्यज्ञानानन्दपूर्णलक्षणं तमसः परम्॥ १६॥

इस प्रकार वेदान्त के मान से (वेदान्त के अनुसार) देखता हुआ तत्काल मुक्त हो जाता है। देह तथा आत्मा को एक मानने वाला ज्ञान, देह आत्मा के पार्थक्य के ज्ञान में बाधक है। जो आत्मा में ही सत्यज्ञान, आनन्दमय तम से परे तत्त्व के दर्शन करता है, वह न चाहता हुआ भी मुक्त हो जाता है॥ १५-१६॥

ब्रह्मानन्दं सदा पश्यन्कथं बध्येत कर्मणा। त्रिधामसाक्षिणं सत्यज्ञानानन्दादिलक्षणम्॥ १७॥

त्रिधाम (भूः भुवः स्वः) में साक्षिरूप सत्य ज्ञानानन्द लक्षण, ब्रह्मानन्द को सदा देखता हुआ भला कर्म बन्धन से कैसे जकड़ सकता है?॥ १७॥

त्वमहंशब्दलक्ष्यार्थमसक्तं सर्वदोषतः। सर्वगं सच्चिदानन्दं ज्ञानचक्षुर्निरीक्षते॥ १८॥

'तुम' और 'मैं' शब्दों के लक्ष्यार्थ वाले सब दोषों से असक्त (अलिप्त) सर्वत्र गतिमान् सच्चिदानन्द को ज्ञानचक्षु ही देख पाते हैं॥ १८॥

अज्ञानचक्षुर्नेक्षेत भास्वन्तं भानुमन्धवत्। प्रज्ञानमेव तद्ब्रह्म सत्य प्रज्ञानलक्षणम्॥ १९॥

जिस प्रकार अन्धा व्यक्ति दीप्तिमान् सूर्य को भी नहीं देख सकता, उसी प्रकार अज्ञान-चक्षु सत्य -प्रज्ञान-लक्षण उस ब्रह्म को नहीं देख पाता॥ १९॥

एवं ब्रह्मपरिज्ञानादेव मर्त्योऽमृतो भवेत्। तद्ब्रह्मानन्दमद्वन्द्वं निर्गुणं सत्यचिद्घनम्॥ २०॥
विदित्वा स्वात्मनो रूपं न बिभेति कुतश्चन। चिन्मात्रं सर्वगं नित्यं संपूर्णं सुखमव्ययम्॥ २१॥
साक्षाद्ब्रह्मैव नान्योऽस्तीत्येवं ब्रह्मविदां स्थितिः। अज्ञस्य दुःखौघमयं ज्ञस्यानन्दमयं जगत्॥ २२॥

इस प्रकार ब्रह्म के परिज्ञान से ही मनुष्य अमृतरूप होता है। उस ब्रह्मानन्द को जो अद्वन्द्व, निर्गुण और सच्चिदानन्दघन है,उस आत्मरूप को पहचान कर कहीं भी नहीं डरता। चिन्मात्र, (समग्र चेतना) सर्वगत, नित्य, सम्पूर्ण सुखरूप, एकमात्र ब्रह्म ही है, कोई अन्य नहीं। यही ब्रह्मवेत्ताओं की स्थिति है। यह जगत् अज्ञानी के लिए दुःख से भरा है, किन्तु ज्ञानी के लिए आनन्दमय है॥ २०-२२॥

अन्धं भुवनमन्धस्य प्रकाशं तु सुचक्षुषाम्। अनन्ते सच्चिदानन्दे मयि वाराहरूपिणि॥ २३॥
स्थितेऽद्वितीयभावः स्यात्को बद्धः कश्च मुच्यते। स्व स्वरूपं तु चिन्मात्रं सर्वदा सर्वदेहिनाम्॥ २४॥

यह जगत् अन्धे के लिए अन्धकाररूप तथा नेत्र वाले के लिए प्रकाशरूप है। अनन्त, सच्चिदानन्द वाराहरूपी मुझमें स्थित होने पर, अद्वैत भावापन्न होने पर भला कौन बद्ध है और कौन मुक्त है? सभी शरीर धारियों का स्व-स्वरूप चिन्मात्र ही है॥ २३-२४॥

नैव देहादिसंघातो घटवद्दृशिगोचरः। स्वात्मनोऽन्यतयाभातं चराचरमिदं जगत्॥ २५॥

(उक्त बोध हो जाने पर) देहादि संघात टूटे घट (घड़े) के समान दृष्टिगोचर नहीं होता। यह चराचर जगत् जो सामान्य रूप से दूसरा दिखाई पड़ता है, फिर नहीं दिखाई पड़ता॥ २५॥

स्वात्ममात्रतया बुद्ध्वा तदस्मीति विभावय। स्वस्वरूपं स्वयं भुङ्क्ते नास्ति भोज्यं पृथक् स्वतः॥ २६॥

केवल स्व आत्मा ही है, यह जानकर सब कुछ मैं ही हूँ, यह विचार करो, स्व-स्वरूप स्वयं ही भोग करता है। उसका कोई पृथक् भोज्य पदार्थ नहीं है॥ २६॥

अस्ति चेदस्तितारूपं ब्रह्मैवास्तित्वलक्षणम्। ब्रह्मविज्ञानसंपन्नः प्रतीतमखिलं जगत्॥ २७॥
पश्यन्नपि सदा नैव पश्यति स्वात्मनः पृथक्। मत्स्वरूपपरिज्ञानात्कर्मभिर्न स बध्यते॥ २८॥

है तो केवल वही, यही ब्रह्म का अस्तित्व है। ब्रह्मविज्ञान से सम्पन्न (साधक) प्रतीत होते सारे जगत् को देखता हुआ भी अपनी आत्मा से पृथक् नहीं देखता। वह मेरे (वराहरूप भगवान्) स्वरूप के परिज्ञान से कर्मों के बन्धन में नहीं बँधता॥ २७-२८॥

यः शरीरेन्द्रियादिभ्यो विहीनं सर्वसाक्षिणम्। परमार्थैकविज्ञानं सुखात्मानं स्वयंप्रभम्॥ २९॥
स्वस्वरूपतया सर्वं वेद स्वानुभवेन यः। स धीरः स तु विज्ञेयः सोऽहंतत्त्वं ऋभो भव॥ ३०॥

जो शरीर एवं इन्द्रियादिकों से रहित है, सर्व साक्षिरूप है, परमार्थरूप एक-विज्ञान है, सुख-स्वरूप स्वयं प्रकाशमान है, स्वानुभव से जो स्वस्वरूप को प्राप्त हुआ है; वह सब को जान जाता है, वही धीर है, वही अहं-तत्त्व-विज्ञेय है। हे ऋभो! तुम ऐसे बनो॥ २९-३०॥

अतः प्रपञ्चानुभवः सदा न हि स्वरूपबोधानुभवः सदा खलु। इति प्रपश्यन्परिपूर्णवेदनो न बन्धमुक्तो न च बद्ध एव तु॥ ३१॥

इस प्रकार जो सदा प्रपञ्च का अनुभव नहीं करता और न ही सदा स्वरूपबोध का अनुभव करता है, वह परिपूर्ण ज्ञानवान् इस प्रकार देखता हुआ न तो मुक्त ही होता है और न बद्ध ही॥ ३१॥

स्वस्वरूपानुसंधानान्नृत्यन्तं सर्वसाक्षिणम्। मुहूर्तं चिन्तयेन्मां यः सर्वबन्धैः प्रमुच्यते॥ ३२॥

स्वस्वरूप के अनुसन्धान से नृत्य करने वाले (लीला करने वाले) मुझ सर्वसाक्षी का, जो क्षण भर भी चिन्तन करता है, वह सब बन्धनों से छूट जाता है॥ ३२॥

सर्वभूतान्तरस्थाय नित्यमुक्त चिदात्मने। प्रत्यक्कैतन्यरूपाय मह्यमेव नमो नमः॥ ३३॥

सब भूतों के अन्तरात्मा में विद्यमान, नित्यमुक्त, चित्स्वरूप, प्रत्यक्चैतन्यरूप मेरे लिए ही नमस्कार किया जाता है॥ ३३॥

त्वं वाऽहमस्मि भगवोऽहं वै त्वमसि देवते। तुभ्यं मह्यमनन्ताय मह्यं तुभ्यं चिदात्मने ॥ ३४॥

जो तू है, वह मैं हूँ। जो तेरा है, वह मेरा है। तेरे मेरे (चैतन्य रूप में विद्यमान) अनन्त के लिए, मेरे तेरे चिदात्म (चैतन्य आत्मस्वरूप) के लिए नमस्कार है॥ ३४॥

नमो मह्यं परेशाय नमस्तुभ्यं शिवाय च। किं करोमि क्व गच्छामि किं गृह्णामि त्यजामि किम्॥ ३५॥

मुझ परेश (परमात्मा) के लिए नमन (किया जाता) है। शिवरूप तेरे लिए नमन है। क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? क्या ग्रहण करूँ, किसका परित्याग करूँ?॥ ३५॥

यन्मया पूरितं विश्वं महाकल्पाम्बुना यथा। अन्तःसङ्गं बहिः सङ्गमात्मसङ्गं च यस्त्यजेत्। सर्वसङ्गनिवृत्तात्मा स मामेति न संशयः॥ ३६॥

जिस विश्व को मैंने महाकल्प में जल पूरित किया, उसके जल में निमग्र होने से सबका परस्पर संग छूट गया, इसी प्रकार जो अन्तःसङ्ग को, बहिःसङ्ग को तथा आत्मसङ्ग को छोड़ देता है, सब सङ्गों में निवृत्त हुआ वह, मुझे प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं है॥ ३६॥

अहिरिव जनयोगं सर्वदा वर्जयेद्यः, कुणपमिव सुनारीं त्यक्तकामो विरागी। विषमिव विषयादीन्मन्यमानो दुरन्ताञ्जगति परमहंसो वासुदेवोऽहमेव॥ ३७॥

जो सर्प के समान भीड़ से दूर रहता है। मुर्दे के समान सुनारी (सुन्दर स्त्री) को भी त्यागने की इच्छा लिए, वैराग्यवान् हुआ, विषयों को विष मानता हुआ, ''मैं ही वासुदेव हूँ'' यह भाव लिए जगत् में परमहंस रूप में विचरण करता है (वह ब्रह्मरूप हो जाता है)॥ ३७॥

इदं सत्यमिदं सत्यं सत्यमेतदिहोच्यते। अहं सत्यं परं ब्रह्म मत्तः किंचिन्न विद्यते॥ ३८॥

यह सत्य है, यह सत्य है, यह सत्य ही है, मैं ही परब्रह्म हूँ। मुझसे पृथक् कुछ नहीं है॥ ३८॥

उप समीपे यो वासो जीवात्मपरमात्मनोः। उपवासः स विज्ञेयो न तु कायस्य शोषणम्॥ ३९॥

जीवात्मा परमात्मा का समीपवास ही उपवास है, न कि शरीर का शोषण करना उपवास है॥ ३९॥

कायशोषणमात्रेण का तत्र ह्यविवेकिनाम्। वल्मीकताडनादेव मृतः किं नु महोरगः॥ ४०॥

जैसे साँप की बाँबी पीटने से साँप नहीं मरता, इसी प्रकार काया का शोषण करने से अविवेकी पुरुषों को कुछ हाथ नहीं लगता॥ ४०॥

अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद परोक्षज्ञानमेव तत्। अहंब्रह्मेति चेद्वेद साक्षात्कारः स उच्यते॥ ४१॥

ब्रह्म है, ऐसा ज्ञान यदि किसी को है, तो वह परोक्षज्ञान है। 'मैं ही ब्रह्म हूँ' यदि ऐसा ज्ञान है, तो वह साक्षात्कार (आत्मसाक्षात्कार) है॥ ४१॥

यस्मिन्काले स्वमात्मानं योगी जानाति केवलम्। तस्मात्कालात्समारभ्य जीवन्मुक्तो भवेदसौ॥ ४२॥

जिस समय से योगी अपने आत्मा को केवलरूप में (सर्वत्र केवल यह आलतत्व ही संव्याप्त है) जान लेता है, वह उस समय से जीवन्मुक्त हो जाता है॥ ४२॥

अहंब्रह्मेति नियतं मोक्षहेतुर्महात्मनाम्। द्वे पदे बन्धमोक्षाय निर्ममेति ममेति च ॥ ४३॥

मैं ही ब्रह्म हूँ, यह पद निश्चित रूप से महात्माओं के लिए मोक्ष का हेतु है। 'निर्मम' (इदं न मम-यह मेरा नहीं) और 'मम' (यह मेरा है) ये दो पद ही बन्ध और मोक्ष के कारण हैं। निर्मम अर्थात् मुझसे रहित, मम अर्थात् मेरा ही मेरा, किसी अन्य का नहीं। अथवा ममतारहित होना मोक्ष का कारण तथा ममतायुक्त होना बन्धन का कारण है॥ ४३॥

ममेति बध्यते जन्तुर्निर्ममेति विमुच्यते। बाह्यचिन्ता न कर्तव्या तथैवान्तरचिन्तिका। सर्वचिन्तां समुत्सृज्य स्वस्थो भव सदा ऋभो॥ ४४॥

मेरा कहने से बँधता है। मेरा कुछ नहीं है (ऐसा कहने से) मुक्त होता है। बाह्य चिन्ता नहीं करनी चाहिए और न ही कोई अन्य चिन्ता करनी चाहिए। सब चिन्ताओं को छोड़कर हे ऋभो! स्वस्थ (स्वयं में आत्मा में स्थित) होओ॥ ४४॥

संकल्पमात्रकलनेन जगत्समग्रं संकल्पमात्रकलने हि जगद्विलासः। संकल्पमात्र-मिदमुत्सृज निर्विकल्पमाश्रित्य मामकपदं हृदि भावयस्व॥ ४५॥

संकल्प मात्र करने से जगत् और उसका समस्त विलास उपस्थित हो जाता है। अत: समस्त संकल्पों को त्यागो और निर्विकल्प का आश्रय लेकर मेरे पद (धाम) की हृदय में भावना करो॥ ४५॥

मच्चिन्तनं मत्कथनमन्योऽन्यं मत्प्रभाषणम्। मदेकपरमो भूत्वा कालं नय महामते॥ ४६॥

हे महामते! मेरा चिन्तन, मेरा गुणगान, परस्पर मेरी चर्चा करते हुए, मेरे अनन्य भक्त के रूप में जीवन यापन करो॥ ४६॥

चिदिहास्तीति चिन्मात्रमिदं चिन्मयमेव च। चित्त्वं चिदहमेते च लोकाश्चिदिति भावय॥ ४७॥

यहाँ केवल चित् ही है। यह समस्त दृश्य प्रपञ्च चिन्मात्र है- चिन्मय है। तुम चित्स्वरूप हो, मैं चित्स्वरूप हूँ, ये समस्त जन चित्स्वरूप हैं, यह भावना करो॥ ४७॥

रागं नीरागतां नीत्वा निर्लेपो भव सर्वदा। अज्ञानजन्यकर्त्रादिकारकोत्पन्नकर्मणा॥ ४८॥

आसक्ति को निरासक्ति में बदलकर अज्ञानजन्य कर्त्ता इत्यादि कारकों से उत्पन्न कर्मों से निर्लेप हो जाओ॥ ४८॥

श्रुत्युत्पन्नात्मविज्ञानप्रदीपो बाध्यते कथम्। अनात्मतां परित्यज्य निर्विकारो जगत्स्थितौ॥ ४९॥

जगत् की स्थिति में अनात्मता अर्थात् आत्महीनता को त्यागकर जब तुम निर्विकार भाव से अनासक्त हो जाओगे, तब श्रुतियों के अभ्यास से उत्पन्न विज्ञान का दीपक क्यों बुझेगा?॥ ४९॥

एकनिष्ठतयाऽन्त:स्थसंविन्मात्रपरो भव। घटाकाशमठाकाशौ महाकाशे प्रतिष्ठितौ ॥ ५०॥

जैसे घटाकाश- मठाकाश की उपस्थिति महाकाश में ही है, वैसे ही तुम भी एकनिष्ठ हुए अन्त:स्थ चेतना मात्र की ही अनुभूति में परायण रहो॥ ५०॥

एवं मयि चिदाकाशे जीवेशौ परिकल्पितौ। या च प्रागात्मनो मे मा तथाऽन्ते च तिरस्कृता॥ ५१॥

मुझ चिदाकाश में ही जीव-ईश्वर की परिकल्पना की गई है। जो आत्मबोध से पूर्व थी, बाद में उसे तिरस्कृत कर दिया॥ ५१॥

ब्रह्मवादिभिरुद्गीता सा मायेति विवेकत:। मायातत्कार्यविलये नेश्वरत्वं न जीवता॥ ५२॥

ब्रह्मवादियों ने विवेक से इसे जाना और माया नाम दिया; क्योंकि माया के कार्य विलुप्त हो जाने पर न ईश्वरत्व रहा न जीवत्व रहा॥ ५२॥

तत: शुद्धश्चिदेवाहं व्योमवन्निरुपाधिक:। जीवेश्वरादिरूपेण चेतनाचेतनात्मकम्॥ ५३॥

इससे आकाश की भाँति मैं निरुपाधिक शुद्ध आत्मा हूँ। जीव- ईश्वरादि रूप से चेतन-अचेतनात्मक दृश्य प्रपञ्च है॥ ५३॥

ईक्षणादिप्रवेशान्ता सृष्टिरीशेन कल्पिता। जाग्रदादिविमोक्षान्त: संसारो जीवकल्पित:॥ ५४॥

देखने से लेकर विलुप्त होने तक यह सृष्टि ईश्वर के द्वारा कल्पित है। जाग्रत् आदि से मोक्ष पर्यन्त संसार जीव के द्वारा कल्पित है॥ ५४॥

त्रिणाचिकादियोगान्ता ईश्वरभ्रान्तिमाश्रिता:। लोकायतादिसांख्यान्ता जीवविभ्रान्तिमाश्रिता:॥ ५५॥

त्रिणाचिक आदि से योग पर्यन्त (त्रि-नाचिकेत अग्नि- यज्ञ-योगादिक दर्शन) 'ईश्वर भ्रान्ति' (ईश्वर की सत्ता के बारे में भ्रम) पर आश्रित है। लोकायत (चार्वाक दर्शन) से सांख्य पर्यन्त 'जीव भ्रान्ति' (जीवात्मा की सत्ता के बारे में भ्रम) पर आधारित है॥ ५५॥

तस्मान्मुमुक्षुभिर्नैव मतिर्जीवेशवादयोः। कार्या किंतु ब्रह्मतत्त्वं निश्चलेन विचार्यताम्॥ ५६॥

अतः मुमुक्षुओं को जीवेश (जीव और ईश्वर) वाद के भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए; अपितु निश्चल मन से ब्रह्मतत्त्व का ही विचार करना चाहिए॥ ५६॥

अद्वितीयब्रह्मतत्त्वं न जानन्ति यथा तथा। भ्रान्ता एवाखिलास्तेषां क्व मुक्तिः क्वेह वा सुखम्॥ ५७॥

जो अद्वितीय ब्रह्मतत्त्व को नहीं जानते, वे सब वास्तव में (कुल मिलाकर) भ्रान्त ही हैं। उन्हें कहाँ मुक्ति प्राप्त होगी और कहाँ सुख प्राप्त होगा?॥ ५७॥

उत्तमाधमभावश्चेत्तेषां स्यादस्ति तेन किम्। स्वप्नस्थराज्यभिक्षाभ्यां प्रबुद्धः स्पृशते खलु॥ ५८॥

यदि उनमें उत्तम-अधम भाव हैं। तब इससे क्या होगा? कोई स्वप्न में प्राप्त राज्यत्व अथवा भिक्षात्व को जागने पर प्राप्त नहीं करता (अर्थात् स्वप्न में मिला राज्य अथवा भिक्षा जागने पर काम नहीं आते, उनका अस्तित्व तो केवल स्वप्नावस्था रहने तक ही है)॥ ५८॥

अज्ञाने बुद्धिविलये निद्रा सा भण्यते बुधैः। विलीनाज्ञानतत्कार्ये मयि निद्रा कथं भवेत्॥ ५९॥

अज्ञान के बुद्धि में विलय को ही विद्वान् लोग निद्रा कहते हैं। अस्तु; सम्बन्धित कार्यों के सन्दर्भ में अज्ञान का लोप हो जाने पर निद्रा कैसे होगी?॥ ५९॥

बुद्धेः पूर्णविकासोऽयं जागरः परिकीर्त्यते। विकारादिविहीनत्वाज्जागरो मे न विद्यते॥ ६०॥

अपने में जाग्रत् हो जाना, बुद्धि का पूर्ण विकास है। विकार से रहित होने पर अब मुझमें जागरण नाम की कोई वस्तु नहीं॥ ६०॥

सूक्ष्मनाडिषु संचारो बुद्धेः स्वप्नः प्रजायते। संचारधर्मरहिते मयि स्वप्नो न विद्यते॥ ६१॥

बुद्धि का सूक्ष्म नाड़ियों में संचार करना ही स्वप्न का कारण बनता है। संचारधर्म से रहित होने पर मुझमें स्वप्न भी नहीं है॥ ६१॥

सुषुप्तिकाले सकले विलीने तमसावृते। स्वरूपं महदानन्दं भुङ्क्ते विश्वविवर्जितः॥ ६२॥

सुषुप्ति काल में सब कुछ तमोलीन हो जाने से, विश्व की उपस्थिति से रहित (जीव) महदानन्द स्वरूप का भोग करता है॥ ६२॥

अविशेषेण सर्वं तु यः पश्यति चिदन्वयात्। स एव साक्षाद्विज्ञानी स शिवः स हरिर्विधिः॥ ६३॥

जो सामान्य रूप से ही चिदात्मक दृश्य प्रपञ्च को देखता है, वही साक्षात् विज्ञानी है, वही ब्रह्मा, विष्णु और महेश है॥ ६३॥

दीर्घस्वप्नमिदं यत्तद्दीर्घं वा चित्तविभ्रमम्। दीर्घं वाऽपि मनोराज्यं संसारं दुःखसागरम्। सुप्तेरुत्थाय सुप्त्यन्तं ब्रह्मैकं प्रविचिन्त्यताम्॥ ६४॥

यह बड़ा लम्बा स्वप्न रहा अथवा अब तक चित्त भ्रान्त रहा अथवा मन की परिकल्पनाजन्य यह संसार दु:खों का सागर है; इस निद्रा से जागकर एकमात्र ब्रह्म का चिन्तन करे॥ ६४॥

आरोपितस्य जगतः प्रविलापनेन चित्तं मदात्मकतया परिकल्पितं नः। शत्रून्निहत्य गुरुषट्कगणान्निपाताद्गन्धद्विपो भवति केवलमद्वितीयः॥ ६५॥

साधक आरोपित जगत् की असत्य मान्यता से चित्त को मुक्त करके तथा मदात्मकता (सब कुछ मुझ ब्रह्म से युक्त है इस भाव) से परिपूर्ण करके, गुरुकृपा से षट्शत्रुओं (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर) को मारकर उत्तम हाथी के समान केवल, अद्वितीय हो जाता है॥ ६५॥

अद्यास्तमेतु वपुराशशितारमास्तां कस्तावतापि मम चिद्वपुषो विशेषः। कुम्भे विनश्यति चिरं समवस्थिते वा कुम्भाम्बरस्य नहि कोऽपि विशेषलेशः॥ ६६॥

मेरा यह शरीर चाहे आज नष्ट हो जाये, चाहे चन्द्र, तारों की अवधि तक स्थित रहे। इससे मेरे अस्तित्व पर क्या प्रभाव पड़ता है? घड़े के नष्ट होने से घट स्थित आकाश की कुछ भी हानि नहीं होती॥ ६६॥

अहिनिर्ल्वयनी सर्पनिर्मोको जीववर्जितः। वल्मीके पतितस्तिष्ठेत्तं सर्पो नाभिमन्यते॥ ६७॥

सर्प की केंचुली सर्प के लिए भी व्यर्थ है; क्योंकि अनुपादेय-अनुपयोगी है। ऐसी केंचुली को बाँबी पर डाल देने से उसे कोई भी तो सर्प नहीं मानेगा॥ ६७॥

एवं स्थूलं च सूक्ष्मं च शरीरं नाभिमन्यते। प्रत्यग्ज्ञानशिखिध्वस्ते मिथ्याज्ञाने सहेतुके। नेति नेतीति रूपत्वादशरीरो भवत्ययम्॥ ६८॥

इसी प्रकार स्थूल और सूक्ष्म शरीर को भी वह (आत्मा अपना अस्तित्व) नहीं मानता। प्रत्यग् (विरुद्ध) ज्ञानाग्नि से सहेतुक (कारणसहित) मिथ्याज्ञान नष्ट हो जाता है। नेति-नेति इस मान्यता से ओत-प्रोत हुआ शरीरविहीन हो जाता है॥ ६८॥

शास्त्रेण नस्यात्परमार्थदृष्टिः कार्यक्षमं पश्यति चापरोक्षम्। प्रारब्धनाशात्प्रतिभाननाश एवं त्रिधा नश्यति चात्ममाया॥ ६९॥

मात्र शास्त्र पढ़ने से परमार्थ दृष्टि प्राप्त नहीं होती। वह अपरोक्ष (आत्मज्ञान) को मात्र कामचलाऊ रूप से ही प्राप्त करता है। प्रारब्धनाश से प्रतीयमान (प्रतीत होने वाला स्वप्नवत् जगत्) भाव नष्ट हो जाता है, इस प्रकार तीन प्रकार से आत्ममाया नाश को प्राप्त होती है (तत्पश्चात् परमतत्व का ज्ञान प्राप्त हो जाता है)॥ ६९॥

ब्रह्मत्वे योजिते स्वस्मिन् जीवभावो न गच्छति। अद्वैते बोधिते तत्त्वे वासना विनिवर्तते॥ ७०॥

स्वात्मा में ब्रह्मत्व को योजित करने (जुड़ा हुआ समझने) पर जीवभाव समाप्त नहीं होता। अद्वैत-तत्त्व का बोध होने पर वासना ही लौट जाती है। (समाप्त हो जाती है)॥ ७०॥

आरब्धान्ते देहहानिर्मायेत्थं क्षीयतेऽखिला। अस्तीत्युक्ते जगत्सर्वं सद्रसं ब्रह्म तद्भवेत्॥ ७१ ॥

प्रारब्ध समाप्त होने पर देह का अन्त हो जाता है। 'अस्ति' यह कहने पर सारा जगत् सद्‌रस ब्रह्म हो जाता है अर्थात् अस्तित्व के रूप में केवल सद्‌रस ब्रह्म ही जगत् में दिखाई पड़ता है॥ ७१ ॥

भातीत्युक्ते जगत्सर्वं भानं ब्रह्मैव केवलम्। मरुभूमौ जलं सर्वं मरुभूमात्रमेव तत्। जगत्त्रयमिदं सर्वं चिन्मात्रं स्वविचारतः॥ ७२ ॥

'भाति'- प्रतीत होता है, यह कहने के साथ ही सारा जगत् मात्र प्रतीत होता है। केवल ब्रह्म ही वास्तविक सत्तावान् है। जैसे मरुभूमि में दिखने वाले जल (मृग मरीचिका) में जल की सत्ता नहीं रहती, मरुभूमि ही दीख पड़ती है। उसी प्रकार ये तीनों लोक, स्व 'आत्मतत्त्व' का विचार होने से चिन्मात्र (चैतन्य स्वरूप) ही हैं॥ ७२ ॥

अज्ञानमेव न कुतो जगतः प्रसङ्गो जीवेशदेशिकविकल्पकथातिदूरे। एकान्त केवलचिदेकरसस्वभावे ब्रह्मैव केवलमहं परिपूर्णमस्मि॥ ७३ ॥

जब यह अज्ञान ही नहीं है, तब जगत् का प्रसंग कहाँ है? जीव, ईश्वर, देश, काल का विकल्प तो कहना ही क्या? एकान्त में केवल चिन्मात्र के रस को स्वभाव में उतार लेने पर मैं ही केवल परिपूर्ण ब्रह्म हूँ॥ ७३ ॥

बोधचन्द्रमसि पूर्णविग्रहे मोहराहुमुषितात्मतेजसि। स्नानदानयजनादिकाः क्रिया मोचनावधि वृथैव तिष्ठते॥ ७४ ॥

आत्मतेजयुक्त बोधरूप पूर्ण चन्द्र के उदित होने पर, मोहरूप राहु से मुक्ति प्राप्त हो जाती है। मोचन (मुक्त होने) के पश्चात् स्नान, दान, हवन इत्यादि क्रियाएँ वृथा हो जाती हैं॥ ७४ ॥

सलिले सैन्धवं यद्वत्साम्यं भवति योगतः। तथाऽऽत्ममनसोरैक्यं समाधिरिति कथ्यते॥ ७५ ॥

जैसे जल में नमक मिलाने पर दोनों एकरूप हो जाते हैं, वैसे ही आत्मा और मन की एकता समाधि कहलाती है अर्थात् समाधि की स्थिति में आत्मा और मन दोनों मिलकर एक हो जाते हैं॥ ७५ ॥

दुर्लभो विषयत्यागो दुर्लभं तत्त्वदर्शनम्। दुर्लभा सहजावस्था सद्गुरोः करुणां विना॥ ७६ ॥

विषयों का त्याग ही दुर्लभ है फिर तत्त्वदर्शन अधिक दुर्लभ है। सद्‌गुरु की करुणा (कृपा) के बिना सहजावस्था तो बहुत ही दुर्लभ है॥ ७६ ॥

उत्पन्नशक्तिबोधस्य त्यक्तनिःशेषकर्मणः। योगिनः सहजावस्था स्वयमेव प्रकाशते॥ ७७॥

शक्तिबोध उत्पन्न होने पर, निःशेष (सम्पूर्ण) कर्मों के प्रति कर्तापन का भाव त्याग करने वाले योगी की सहजावस्था, स्वयं ही प्रकाशित हो जाती है॥ ७७॥

रसस्य मनसश्चैव चञ्चलत्वं स्वभावतः। रसो बद्धो मनो बद्धं किं न सिद्ध्यति भूतले॥ ७८ ॥

रस की तथा मन की चञ्चलता स्वभाव से ही है। यदि रस को बाँध लिया तथा मन को बाँध लिया (वश में कर लिया), तो भूतल पर क्या सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती? अर्थात् सब कुछ प्राप्त हो सकता है॥ ७८॥

मूर्च्छितो हरति व्याधिं मृतो जीवयति स्वयम्। बद्धः खेचरतां धत्ते ब्रह्मत्वं रसचेतसि॥ ७९॥

मूर्च्छित (मन एवं रस) व्याधि को हरता (सांसारिक आकर्षण से विमुख करता) है। मरा हुआ (पूर्णतः समाप्तप्राय) मनोरस स्वयं को (आत्मबोध को) जीवित (चैतन्य) कर देता है और अनुशासन में बँध । (मन एवं रस) किन्तु मन में बाँधा हुआ रस आकाशचारिता (महत् चेतना से सम्पर्क की क्षमता) उत्पन्न करता है। जिससे साधक ब्रह्मत्व को धारण करता है॥ ७९॥

इन्द्रियाणां मनो नाथो मनोनाथस्तु मारुतः। मारुतस्य लयो नाथस्तन्नाथं लयमाश्रय॥ ८०॥

मन इन्द्रियों का स्वामी है। मन का स्वामी मारुत (प्राण)है। मारुत (प्राण) का स्वामी लय है, अतः लय (परा चेतना के साथ लयबद्ध होने की प्रवृत्ति) का आश्रय लो॥ ८०॥

निश्चेष्टो निर्विकारश्च लयो जीवति योगिनाम्। उच्छिन्नसर्वसंकल्पो निःशेषाशेषचेष्टितः। स्वावगम्यो लयः कोऽपि मनसां वागगोचरः॥ ८१॥

योगियों का लय निश्चेष्ट और निर्विकार होकर जीता है। समस्त संकल्पों का जिसने नाश किया है, सारे क्रिया- कलाप जिसके निःशेष हो गये हैं, ऐसा लय स्वानुभूतिगम्य ही होता है, वह मन वाणी से अगोचर होता है॥ ८१॥

पुङ्खानुपुङ्खविषयेक्षणतत्परोऽपि ब्रह्मावलोकनधियं न जहाति योगी। सङ्गीतताललय-वाद्यवशं गताऽपि मौलिस्थकुम्भपरिरक्षणधीर्नटीव॥ ८२॥

योगी एक-एक करके (सम्पूर्ण) विषयों को देखता हुआ भी, ब्रह्म अवलोकन बुद्धि को उसी प्रकार नहीं त्यागता; जैसे नर्तकी सङ्गीत के ताल,लय, वाद्य के वश हुई भी सिर पर रखे घट की रक्षण बुद्धि को नहीं भूलती॥ ८२॥

सर्वचिन्तां परित्यज्य सावधानेन चेतसा। नाद एवानुसंधेयो योगसाम्राज्यमिच्छता॥ ८३॥

अतः योग साम्राज्य के इच्छुक को सारी चिन्ताओं को छोड़कर सावधान चित्त से नाद (लय) का ही अनुसंधान करना उचित है॥ ८३॥

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः॥

न हि नानास्वरूपं स्यादेकं वस्तु कदाचन। तस्मादखण्ड एवास्मि यन्मदन्यन्न किंचन॥ १॥

एक वस्तु कभी भी नानारूपों वाली नहीं हो सकती। अतः मैं अखण्ड ही हूँ। मुझसे अन्य कुछ भी नहीं है॥ १॥

दृश्यते श्रूयते यद्ब्रह्मणोऽन्यन्न तद्भवेत्। नित्यशुद्धविमुक्तैकमखण्डानन्दमद्वयम्। सत्यं ज्ञानमनन्तं यत्परं ब्रह्माहमेव तत्॥ २॥

ब्रह्म से अन्य (अतिरिक्त) जो देखा या सुना जाता है, वास्तव में वह है नहीं। नित्य, शुद्ध, विमुक्त, अखण्ड, आनन्दरूप, अद्वय, सत्य, ज्ञान, अनन्त, जो परब्रह्म है, वही मैं हूँ॥ २॥

आनन्दरूपोऽहमखण्डबोध: परात्परोऽहं घनचित्प्रकाश:। मेघा यथा व्योम न च स्पृशन्ति संसारदु:खानि न मां स्पृशन्ति॥ ३॥

मैं आनन्दरूप, अखण्डबोधस्वरूप, परात्पर, घनचित्प्रकाश हूँ। जैसे- पृथिवी आकाश को नहीं छू सकती, ऐसे ही संसार के दु:ख मेरा स्पर्श नहीं कर सकते॥ ३॥

सर्वं सुखं विद्धि सुदु:खनाशात्सर्वं च सद्रूपमसत्यनाशात्। चिद्रूपमेव प्रतिभानयुक्तं तस्मादखण्डं मम रूपमेतत्॥ ४॥

दु:ख के समूल नाश होने पर ही सुख की पूर्णता होती है। असत्यनाश से सद्रूप (सत्‌रूप) की स्थिति होती है। चिद्रूप (चैतन्यरूप) ही प्रतीयमान (अनुभव में आने वाला) है। अत: यही मेरा अखण्ड रूप है॥ ४॥

न हि जनिर्मरणं गमनागमौ न च मलं विमलं न च वेदनम्। चिन्मयं हि सकलं विराजते स्फुटतरं परमस्य तु योगिन:॥ ५॥

परमयोगी के लिए न तो जन्म है, न मृत्यु है, न गमनागमन (आना-जाना) है, न मल या विमल ही है। वह तो पूर्णत: चिन्मय रूप में ही प्रतिष्ठित है॥ ५॥

सत्यचिद्घनमखण्डमद्वयं सर्वदृश्यरहितं निरामयम्। यत्पदं विमलमद्वयं शिवं तत्सदाऽहमिति मौनमाश्रय॥ ६॥

सत् चिद्घन, अखण्ड, अद्वय सब दृश्यों से रहित, निरामय, विमल और शिव जो पद है, वह मैं ही हूँ, यह जानकर मौन का आश्रय लो॥ ६॥

जन्ममृत्युसुखदु:खवर्जितं जातिनीतिकुलगोत्रदूरगम्। चिद्विवर्तजगतोऽस्य कारणं तत्सदाऽहमिति मौनमाश्रय॥ ७॥

जन्म-मृत्यु, सुख-दु:ख से रहित, जाति-नीति कुल-गोत्र से दूर, इस जगत् का कारणभूत चिद् विवर्त मैं ही हूँ, यह जानकर मौन का आश्रय लो॥ ७॥

पूर्णमद्वयमखण्डचेतनं विश्वभेदकलनादिवर्जितम्। अद्वितीयपरसंविदंशकं तत्सदाऽहमिति मौनमाश्रय॥ ८॥

पूर्ण, अद्वय, अखण्ड, चेतन, विश्वभेद से रहित (सार्वदेशिक) एवं गणना से रहित (काल-आकार आदि की गणना से रहित), अद्वितीय, पराचेतन शक्ति का अंशरूप, वह सदा मैं ही हूँ, यह सोचकर मौन का आश्रय लो॥ ८॥

केनाप्यबाधितत्वेन त्रिकालेऽप्येकरूपत:। विद्यमानत्वमस्त्येतत्सद्रूपत्वं सदा मम॥ ९॥

किसी से भी अबाधित होने से त्रिकाल में एकरूप रहने वाला है। अत: वह सद्रूप मैं हूँ, यह सोच कर मौन रहो॥ ९॥

निरुपाधिकनित्यं यत्सुप्तौ सर्वसुखात्परम्। सुखरूपत्वमस्त्येतदानन्दत्वं सदा मम॥ १०॥

जो निरुपाधिक नित्य है, जो सुषुप्ति में भी सब सुखों से ऊपर है, वह सुखरूपता, आनन्दरूपता सदा मेरी ही है॥ १०॥

दिनकरकिरणैर्हि शार्वरं तमो निबिडतरं झटिति प्रणाशमेति। घनतरभवकारणं तमो यद्धरिदिनकृत्प्रभया न चान्तरेण॥ ११॥

सूर्य की किरणों से रात्रि का अन्धकार भी तत्काल नष्ट हो जाता है। ऐसे ही भव कारण (संसार कारण) का सघन अन्धकार भी हरिरूप दिनकर की प्रभा से नष्ट हो जाता है, अन्य किसी से नहीं॥ ११॥

मम चरणस्मरणेन पूजया च स्वकतमस: परिमुच्यते हि जन्तु:। न हि मरणप्रभवप्रणाशहेतुर्मम चरणस्मरणादृतेऽस्ति किंचित्॥ १२॥

मेरी (ईश्वर की) चरणपूजा और स्मरण से जीव, आत्मा पर पड़े अज्ञान के पर्दे से मुक्त हो जाता है। जन्म-मृत्यु के नाश का कारण मेरे चरणों के स्मरण के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है॥ १२॥

आदरेण यथा स्तौति धनवन्तं धनेच्छया। तथा चेद्विश्वकर्तारं को न मुच्येत बन्धनात्॥ १३॥

जैसे कोई धनेच्छु किसी धनवान् की स्तुति करता है, ऐसी स्तुति यदि विश्व के कर्त्ता की करे, तो भला कौन बन्धन से मुक्त नहीं होगा?॥ १३॥

आदित्यसंनिधौ लोकश्चेष्टते स्वयमेव तु। तथा मत्संनिधावेव समस्तं चेष्टते जगत्॥ १४॥

जिस प्रकार सूर्य की उपस्थिति से समस्त जगत् चेष्टावान् हो जाता है। उसी प्रकार मेरी समीपता में ही सम्पूर्ण जगत् चेष्टा करता हुआ क्रियाशील होता है॥ १४॥

शुक्तिकायां यथा तारं कल्पितं मायया तथा। महदादिजगन्मायामयं मय्येव केवलम्॥ १५॥

जैसे भ्रम से सीपी में चाँदी की कल्पना कर ली जाती है, उसी प्रकार माया से महदादि (महत्तत्त्व से लेकर प्रत्यक्ष पदार्थों तक) जगत् की भी मुझ में ही कल्पना की जाती है॥ १५॥

चण्डालदेहे पश्वादिस्थावरे ब्रह्मविग्रहे। अन्येषु तारतम्येन स्थितेषु न तथा ह्यहम्॥ १६॥

चाण्डाल शरीर में, पशु आदि में, पर्वतादि में, ब्राह्मण शरीर में तथा अन्य क्रमिक जीवों में, मैं जैसा हूँ वैसा दीख नहीं पड़ता॥ १६॥

विनष्टदिग्भ्रमस्यापि यथापूर्वं विभाति दिक्। तथा विज्ञानविध्वस्तं जगन्मे भाति तन्न हि ॥ १७॥

दिशा का भ्रम नष्ट हो जाने पर, जैसे दिशाएँ पहले जैसी दीख पड़ती हैं, वैसे ही विज्ञान से ध्वस्त हुआ वह जगत् मुझे भासित नहीं होता अर्थात् विज्ञान (विशिष्ट ज्ञान) हो जाने पर जगत् उस रूप में नहीं दिखाई पड़ता जैसा अज्ञानावस्था में दिखाई पड़ता है। तात्पर्य यह है कि ज्ञान हो जाने पर पूर्व का संसार ध्वस्त हो जाता है, जिससे भासित नहीं होता, जिससे वह संसार में रहते हुए भी नहीं रहता॥ १७॥

न देहो नेन्द्रियप्राणो न मनोबुद्ध्यहंकृतिः। न चित्तं नैव माया च न च व्योमादिकं जगत्॥ १८॥

न शरीर, न इन्द्रिय-प्राण, न मन-बुद्धि-अहंकार, न चित्त, न माया और न आकाशादि ही जगत् है॥ १८॥

न कर्ता नैव भोक्ता च न च भोजयिता तथा। केवलं चित्सदानन्दब्रह्मैवाहं जनार्दनः॥ १९॥

न कर्त्ता, न भोक्ता, न भोजयिता कोई है, केवल मैं जनार्दन ही सच्चिदानंद ब्रह्म हूँ॥ १९॥

जलस्य चञ्चलादेव चञ्चलत्वं यथा रवेः। तथाऽहंकारसंबन्धादेव संसार आत्मनः॥ २०॥

जैसे जल की चञ्चलता (कम्पन करने) से सूर्य की चंचलता दीख पड़ती है, वैसे ही अहङ्कार से सम्बन्धित होने से आत्मा का संसार दीख पड़ता है॥ २०॥

चित्तमूलं हि संसारस्तत्प्रयत्नेन शोधयेत्। हन्त चित्तमहत्तायां कैषा विश्वासता तव॥ २१॥

संसार के मूल का कारण चित्त ही है। उसे प्रयत्नपूर्वक शुद्ध करना चाहिए। खेद है कि तुम्हें चित्त की महत्ता में कितना विश्वास है?॥ २१॥

क्वधनानि महीपानां ब्राह्मणः क्व जगन्ति वा। प्राक्तनानि प्रयातानि गताः सर्गपरम्पराः। कोटयो ब्रह्मणां याता भूपा नष्टाः परागवत्॥ २२॥

कहाँ तो राजाओं के धन हैं, कहाँ ब्राह्मण है, कहाँ जगत् है? पूर्वजन्म के संस्कारों की सृष्टि परम्परा चल रही है, करोड़ों ब्राह्मण चले गये, करोड़ों राजा फूलों के पराग के समान नष्ट हो गये॥ २२॥

स चाध्यात्माभिमानोऽपि विदुषोऽप्यासुरत्वतः। विदुषोऽप्यासुरश्चेत्स्यान्निष्फलं तत्त्वदर्शनम्॥ २३॥

अध्यात्म का अभिमान भी विद्वान् में आसुरी भाव उत्पन्न करता है, यदि विद्वान् में भी आसुरी भाव है, तो फिर तत्त्वदर्शन निष्फल है॥ २३॥

उत्पाद्यमाना रागाद्या विवेकज्ञानवह्निना। यदा तदैव दह्यन्ते कुतस्तेषां प्ररोहणम्॥ २४॥

राग और द्वेष उत्पन्न होते ही विवेकरूपी अग्नि द्वारा जला दिये जाते हैं, फिर उनमें पुनः कोंपल फूटने की सम्भावना नहीं रहती अर्थात् वे पुनः उत्पन्न नहीं होते॥ २४॥

यथा सुनिपुणः सम्यक् परदोषेक्षणे रतः। तथा चेन्निपुणः स्वेषु को न मुच्येत बन्धनात्॥ २५॥

जिस प्रकार मनुष्य दूसरों के दोष देखने में बहुत कुशल होता है अर्थात् पर-दोष दर्शन में बड़ा सतर्क रहता है, उसी प्रकार यदि अपने दोष देखने में सतर्क हो, तो फिर कौन बन्धन से मुक्त नहीं हो अर्थात् सभी (मनुष्य) बन्धन मुक्त हो जाएँ॥ २५॥

अनात्मविदमुक्तोऽपि सिद्धिजालानि वाञ्छति। द्रव्यमन्त्रक्रियाकालयुक्त्याऽऽप्नोति मुनीश्वर॥ २६॥
नात्मज्ञस्यैष विषय आत्मज्ञो ह्यात्ममात्रदृक्। आत्मनाऽऽत्मनि संतृप्तो नाविद्यामनुधावति॥ २७॥

हे मुनीश्वर! अनात्मवान् अमुक्त हुआ भी, सिद्धियों की कामना करता है। मन्त्र, द्रव्य, क्रिया, काल, युक्ति से उन्हें प्राप्त भी कर लेता है; किन्तु आत्मज्ञ का यह विषय नहीं है। आत्मज्ञ तो केवल आत्म-तत्त्व के दर्शन कर रहा है। आत्मा में आत्मा से तृप्त हुआ वह अविद्या की ओर नहीं दौड़ता॥ २६-२७॥

ये केचन जगद्भावास्तानविद्यामयान्विदुः। कथं तेषु किलात्मज्ञस्त्यक्ताविद्यो निमज्जति॥ २८॥

जो भी जगत् सम्बन्धी भाव हैं वे सब अविद्यामय हैं; फिर भला अविद्या से मुक्त हुआ आत्मज्ञ उनमें क्यों डूबेगा?॥ २८॥

द्रव्यमन्त्रक्रियाकालयुक्तयः साधुसिद्धिदाः। परमात्मपदप्राप्तौ नोपकुर्वन्ति काश्चन॥ २९॥

द्रव्य, मन्त्र, क्रिया, काल, युक्तियाँ भले ही सिद्धि देने वाली हों, किन्तु परमात्मपद- प्राप्ति में वे कुछ भी सहायता नहीं कर पातीं अर्थात् इससे परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती॥ २९॥

सर्वेच्छाकलनाशान्तावात्मलाभोदयाभिधः। स पुनः सिद्धिवाञ्छायां कथमर्हत्यचित्ततः॥ ३०॥

सब इच्छाओं के व्यापारों के शान्त हो जाने पर आत्मलाभ का उदय होता है। भला 'अचित्त' हुआ योगी फिर लौटकर सिद्धियों की कामना क्यों करेगा? अर्थात् चित्तरहित हो जाने पर योगी सिद्धियों की कामना से रहित हो जाता है॥ ३०॥

॥ अथ चतुर्थोऽध्यायः॥

(१) ब्राह्मणम् (ब्राह्मणभागः)

अथ ह ऋभुं भगवन्तं निदाघः पप्रच्छ जीवन्मुक्तिलक्षणमनुब्रूहीति॥ १॥

निदाघ ने भगवान् ऋभु से पूछा— भगवन्! जीवन्मुक्ति का लक्षण बताएँ॥ १॥

तथेति स होवाच। सप्तभूमिषु जीवन्मुक्ताश्चत्वारः॥ २॥

तब वे बोले— सप्त भूमियों (भूमिकाओं) में चार जीवन्मुक्त हैं॥ २॥

शुभेच्छा प्रथमा भूमिका भवति। विचारणा द्वितीया। तनुमानसी तृतीया। सत्त्वापत्तिस्तुरीया। असंसक्तिः पञ्चमी। पदार्थभावना षष्ठी। तुरीयगा सप्तमी॥ ३॥

शुभेच्छा प्रथम भूमिका है, विचारणा दूसरी, तनुमानसी तीसरी, सत्त्वापत्ति चौथी, असंसक्ति पाँचवीं, पदार्थ भावना छठी और तुरीयगा अथवा तुर्यगा सातवीं भूमिका है॥ ३॥

प्रणवात्मिका भूमिकाऽकारोकारमकारार्धमात्रात्मिका॥ ४॥

प्रणवात्मिका भूमिका, अकार-उकार-मकार-अर्धमात्रा वाली है॥ ४॥

स्थूलसूक्ष्मबीजसाक्षिभेदेनाकारादयश्चतुर्विधाः ॥ ५॥

स्थूल, सूक्ष्म, बीज, साक्षिभेद से अकारादि चतुर्विध हैं॥ ५॥

तदवस्था जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुरीयाः॥ ६॥

वे अवस्थाएँ जाग्रत् -स्वप्न-सुषुप्ति-तुरीय हैं॥ ६॥

अकारस्थूलांशे जाग्रद्विश्वः। सूक्ष्मांशे तत्तैजसः। बीजांशे तत्प्राज्ञः। साक्ष्यंशे तत्तुरीयः॥ ७॥

अकार स्थूलांश में जाग्रत् विश्व है। सूक्ष्मांश में तैजस, बीजांश (मूल) में प्राज्ञ तथा साक्षी अंश में तुरीय है॥ ७॥

उकार स्थूलांशे स्वप्नविश्वः। सूक्ष्मांशे तत्तैजसः। बीजांशे तत्प्राज्ञः। साक्ष्यंशे तत्तुरीयः॥ ८॥
मकार स्थूलांशे सुषुप्तविश्वः। सूक्ष्मांशे तत्तैजसः। बीजांशे तत्प्राज्ञः। साक्ष्यंशे तत्तुरीयः॥ ९॥
अर्धमात्रास्थूलांशे तुरीयविश्वः। सूक्ष्मांशे तत्तैजसः। बीजांशे तत्प्राज्ञः। साक्ष्यंशे तुरीयतुरीयः॥ १०॥

उकार स्थूलांश में स्वप्न विश्व है। सूक्ष्मांश में तैजस, बीजांश (मूल) में प्राज्ञ तथा साक्षी अंश में तुरीय है। मकार स्थूलांश में सुषुप्त विश्व है। सूक्ष्मांश में तैजस, बीजांश में प्राज्ञ तथा साक्षी अंश में तुरीय है। अर्धमात्रा स्थूलांश में तुरीय विश्व, सूक्ष्मांश में तैजस, बीजांश में प्राज्ञ तथा साक्षी अंश में तुरीय है॥ ८-१०॥

अकारादितुरीयांशाः प्रथमद्वितीयतृतीयभूमिकाः। उकारतुरीयांशाः चतुर्थी भूमिका। मकारतुरीयांशा पञ्चमी। अर्धमात्राप्रविभक्तप्रथमद्वितीयतृतीयांशाः षष्ठी भूमिका। तदतीता सप्तमी भूमिका॥ ११॥

अकार आदि तुरीयांश प्रथम, द्वितीय, तृतीय भूमिका वाले हैं। उकार तुरीयांश चौथी भूमिका वाला है। मकार तुरीयांश पाँचवीं भूमिका वाला है। अर्धमात्रा प्रथम, द्वितीय, तृतीय अंश में प्रविभक्त (बँटी हुई) छठी भूमिका वाली है। इन सभी से अतीत (परे) सप्तमी (सातवीं) भूमिका है॥ ११॥

भूमित्रयेषु विहरन्मुमुक्षुर्भवति। तुरीयभूम्यां विहरन्ब्रह्मविद् भवति। पञ्चमभूम्यां विहरन्ब्रह्मविद्वरो भवति। षष्ठभूम्यां विहरन् ब्रह्मविद्वरीयान् भवति। सप्तमभूम्यां विहरन् ब्रह्मविद्वरिष्ठो भवति॥ १२॥

तीनों भूमिकाओं में विहार करते हुए साधक मुमुक्षु होता है। तुरीय (चौथी) भूमिका में विहार करते हुए योगी ब्रह्मविद् हो जाता है। पाँचवीं भूमिका में विहार करता हुआ ब्रह्मविद्वर हो जाता है। छठी भूमिका में विहार करता हुआ ब्रह्मविद्वरीयान् हो जाता है। सातवीं भूमिका में आकर ब्रह्मविद् वरिष्ठ हो जाता है॥ १२॥

मन्त्रः (मन्त्रभागः)

तत्रैते श्लोका भवन्ति-

इस सम्बन्ध में ये श्लोक हैं।

ज्ञानभूमिः शुभेच्छा स्यात्प्रथमा समुदीरिता। विचारणा द्वितीया तु तृतीया तनुमानसी॥ १॥

ज्ञान के आधार वाली प्रथम भूमिका शुभेच्छा कही जाती है। विचारणा दूसरी और तनुमानसी तीसरी भूमिका है॥ १॥

सत्त्वापत्तिश्चतुर्थी स्यात्ततोऽसंसक्तिनामिका। पदार्थभावना षष्ठी सप्तमी तुर्यगा स्मृता॥ २॥

सत्त्वापत्ति चौथी, असंसक्ति पाँचवीं, पदार्थ-भावना छठी तथा तुर्यगा सातवीं भूमिका कही गई है॥ २॥

स्थितः किंमूढ एवास्मि प्रेक्ष्योऽहं शास्त्रसज्जनैः। वैराग्यपूर्वमिच्छेति शुभेच्छेत्युच्यते बुधैः॥ ३॥

क्या मैं संसार में आकर मूढ़ (मूर्ख) ही रहूँगा? शास्त्रों का अध्ययन किया, सज्जनों के सम्पर्क में भी आया; किन्तु माया न छोड़ सका, मैं कितना अज्ञानी हूँ। ज्ञानियों ने वैराग्य से पूर्व की इस इच्छा को शुभेच्छा कहा है॥ ३॥

शास्त्रसज्जनसंपर्कवैराग्याभ्यासपूर्वकम्। सदाचारप्रवृत्तिर्या प्रोच्यते सा विचारणा॥ ४॥

शास्त्र-सज्जनों के सम्पर्क से वैराग्यपूर्वक अभ्यास करते हुए जो सदाचार की प्रवृत्ति बनती है, उसको विचारणा कहा गया है॥ ४॥

विचारणाशुभेच्छाभ्यामिन्द्रियार्थेषुरक्तता। यत्र सा तनुतामेति प्रोच्यते तनुमानसी॥ ५॥

विचारणा और शुभेच्छा से इन्द्रियार्थों (इन्द्रियों के विषयों) में आसक्ति कम होने लगती है, इस स्थिति को तनुमानसी भूमिका कहा गया है॥ ५॥

भूमिकात्रितयाभ्यासाच्चित्तेऽर्थविरतेर्वशात्। सत्त्वात्मनि स्थिते शुद्धे सत्त्वापत्तिरुदाहृता॥ ६॥

तीनों भूमिकाओं के अभ्यास से चित्त में विषयों से विरक्ति होने लगती है तथा साधक शुद्ध सत्त्व में स्थित हो जाता है। इस स्थिति को सत्त्वापत्ति कहा गया है॥ ६॥

दशाचतुष्टयाभ्यासादसंसर्गफला तु या। रूढसत्त्वचमत्कारा प्रोक्ताऽ संसक्तिनामिका॥ ७॥

इन चारों स्थितियों के अभ्यास से विषय-संसर्ग से राहित्य हो जाता है। सत्त्वभाव रूढ़ हो जाता है, अतः यह स्थिति असंसक्ति नाम से कही गई है॥ ७॥

भूमिकापञ्चकाभ्यासात्स्वात्मारामतया भृशम्। आभ्यन्तराणां बाह्यानां पदार्थानामभावनात्॥ ८॥

पाँचों भूमिकाओं के अभ्यास से साधक स्वात्मा में रमण करने लगता है। उसमें भीतरी-बाहरी पदार्थों की उपस्थिति का भान नहीं होता। अतः विद्वानों ने इस स्थिति को पदार्थभावना नाम दिया है॥ ८॥

परप्रयुक्तेन चिरं प्रत्ययेनावबोधनम्। पदार्थभावना नाम षष्ठी भवति भूमिका॥ ९॥

क्योंकि दूसरों के द्वारा चिरकाल तक पदार्थ का विश्वास कराने से बोध होता है। अतः यह पदार्थ भावना नाम की छठी भूमिका होती (कहलाती) है॥ ९॥

षड्भूमिकाचिराभ्यासाद्भेदस्यानुपलम्भनात्। यत्स्वभावैकनिष्ठत्वं सा ज्ञेया तुर्यगागतिः॥ १०॥

इन छः भूमिकाओं का चिरकाल तक अभ्यास करने से साधक भेद का ग्रहण नहीं कर पाता अर्थात् अभेद स्वरूप (ईश्वर-जीव में) हो जाता है। वह सहज रूप से आत्मा में एकनिष्ठ हो जाता है। अतः यह भूमिका अन्तिम है, इसीलिए यह तुर्यगा भूमिका कही गई है॥ १०॥

शुभेच्छादित्रयं भूमिभेदाभेदयुतं स्मृतम्। तथावद्वेद बुद्ध्येदं जगज्जाग्रति दृश्यते॥ ११॥

शुभेच्छादि तीन भूमिकाएँ भेदाभेद युक्त कही गई हैं; क्योंकि प्रारम्भ में बुद्धि से जगत्, जाग्रत् अवस्था जैसा ही दिखाई देता है॥ ११॥

अद्वैते स्थैर्यमायाते द्वैते च प्रशमं गते। पश्यन्ति स्वप्नवल्लोकं तुर्यभूमिसुयोगतः॥ १२॥

धीरे-धीरे अद्वैत के स्थिर होने पर तथा द्वैतभाव के शान्त होने पर तुर्यभूमि (चौथी भूमिका) के सुयोग से योगी जगत् को स्वप्नवत् देखता है॥ १२॥

विच्छिन्नशरदभ्रांशविलयं प्रविलीयते। सत्त्वावशेष एवास्ते हे निदाघ दृढीकुरु॥ १३॥

जिस प्रकार शरदकाल में मेघ पूरी तरह विलय (विनष्ट) हो जाते हैं, उसी प्रकार तुर्य भूमिका में समस्त विकार नष्ट हो जाते हैं, तब केवल सत्त्व ही शेष रह जाता है। हे निदाघ! इसी भाव को दृढ़ करो॥ १३॥

पञ्चभूमिं समारुह्य सुषुप्तिपदनामिकाम्। शान्ताशेषविशेषांशस्तिष्ठत्यद्वैतमात्रके॥ १४॥

पाँचवीं भूमिका 'सुषुप्तिपद' नाम वाली है। (इसे ही असंसक्ति भूमिका भी कहते हैं।) इसमें स्थित हुआ योगी सम्पूर्ण विशेषों (समस्त सांसारिक विषयों-उपाधियों) का शमन करके अद्वैतमात्र में रमण करता है॥ १४॥

अन्तर्मुखतया नित्यं बहिर्वृत्तिपरोऽपि सन्। परिश्रान्ततया नित्यं निद्रालुरिव लक्ष्यते॥ १५॥

(पदार्थभावना नामक छठी भूमिका में साधक) अन्तर्मुखी होने से नित्य बाह्य वृत्तियों में परायण सा दीखता हुआ भी परिश्रान्त होने से निद्रालु जैसा परिलक्षित होता है॥ १५॥

कुर्वन्नभ्यासमेतस्यां भूम्यां सम्यग्विवासनः। सप्तमी गूढसुप्त्याख्या क्रमप्राप्ता पुरातनी॥ १६॥

इस भूमिका में अभ्यास करता हुआ योगी सभी वासनाओं से रहित गूढ़ सुप्ति अथवा तुर्यगा (सातवीं प्रगाढ़ निद्रा वाली स्थिति) पुरातन भूमिका को प्राप्त करता है॥ १६॥

यत्र नासन्न सद्रूपो नाहं नाप्यनहंकृतिः। केवलं क्षीणमनन आस्तेऽद्वैतेऽतिनिर्भयः॥ १७॥

जहाँ न सत् है न असत् है, न अहंकार है न अनहङ्कार है। इस अवस्था में योगी केवल क्षीणमनन हुआ अति निर्भय हुआ अद्वैत में स्थित होता है॥ १७॥

अन्तःशून्यो बहिःशून्यः शून्यकुम्भ इवाम्बरे। अन्तःपूर्णो बहिःपूर्णः पूर्णकुम्भ इवार्णवे॥ १८॥

आकाश में कुम्भ अन्दर-बाहर दोनों ही स्थितियों में शून्य है। वही सागर में अन्दर-बाहर दोनों में पूर्ण है। ऐसे कुम्भ के समान ही उस (योगी) की स्थिति होती है॥ १८॥

मा भव ग्राह्यभावात्मा ग्राहकात्मा च मा भव। भावनामखिलां त्यक्त्वा यच्छिष्टं तन्मयो भव॥ १९॥

हे निदाघ! तुम न तो ग्राह्य भाव रखो न ही ग्राहक भाव रखो। समस्त भावनाओं का त्याग करके, जो शेष रहे उसमें मगन रहो॥ १९॥

द्रष्टृदर्शनदृश्यानि त्यक्त्वा वासनया सह। दर्शनप्रथमाभासमात्मानं केवलं भज॥ २०॥

द्रष्टा-दर्शन-दृश्य को वासनासहित त्यागकर, दर्शन में प्रथम आभासमान केवल आत्मा को भजो अर्थात् केवल आत्मा में रमण करो॥ २०॥

यथास्थितमिदं यस्य व्यवहारवतोऽपि च। अस्तङ्गतं स्थितं व्योम स जीवन्मुक्त उच्यते॥ २१॥

यथास्थिति व्यवहार करते हुए भी जिस साधक का स्थित-आकाश अस्त हो गया है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है॥ २१॥

नोदेति नास्तमायाति सुखे दुःखे मनःप्रभा। यथाप्राप्तस्थितिर्यस्य स जीवन्मुक्त उच्यते॥ २२॥

सुख-दुःख में जिसकी मनःप्रभा (मानसिक स्थिति) समान रहती है। प्रत्येक घटनाक्रम में जो यथा स्थिति (एक-सा) रहता है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है॥ २२॥

यो जागर्ति सुषुप्तिस्थो यस्य जाग्रन्न विद्यते। यस्य निर्वासनो बोधः स जीवन्मुक्त उच्यते॥ २३॥

जो सोता हुआ भी जागता है, जो जाग्रत् अवस्था में भी नहीं रहता, जिसका समस्त बोध वासनारहित है, उसे जीवन्मुक्त कहते हैं॥ २३॥

रागद्वेषभयादीनामनुरूपं चरन्नपि। योऽन्तर्व्योमवदत्यच्छः स जीवन्मुक्त उच्यते॥ २४॥

जो राग, द्वेष, भय इत्यादि भावों के अनुरूप अभिनय सा करता हुआ भी अन्तर्व्योम में स्पष्टतः पृथक् रहता है, वह योगी जीवन्मुक्त कहलाता है॥ २४॥

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते। कुर्वतोऽकुर्वतो वापि स जीवन्मुक्त उच्यते॥ २५॥

जिसमें अहंकार का भाव समाप्त हो गया है। जिसकी बुद्धि विषयों में लिप्त नहीं है, जो कर्म करता हुआ अथवा न करता हुआ एक समान है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है॥ २५॥

यस्मान्नो द्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः। हर्षामर्षभयोन्मुक्तः स जीवन्मुक्त उच्यते॥ २६॥

जिससे संसार उद्वेग प्राप्त नहीं करता और न जो संसार से ही उद्वेलित होता है। जो हर्ष, क्रोध, भय आदि से मुक्त हो जाता है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है॥ २६॥

यः समस्तार्थजालेषु व्यवहार्यपि शीतलः। परार्थेष्विव पूर्णात्मा स जीवन्मुक्त उच्यते॥ २७॥

जो समस्त अर्थ जालों (अर्थों) में व्यवहार करता हुआ भी शीतल है। जो परोपकार करता हुआ ही पूर्णात्मा है, वह जीवन्मुक्त है॥ २७॥

प्रजहाति यदा कामान्सर्वाश्चित्त गतान्मुने। मयि सर्वात्मके तुष्टः स जीवन्मुक्त उच्यते॥ २८॥

(योगी) जब समस्त चित्तगत कामनाओं को त्याग देता है। सर्वात्मक मुझमें ही तुष्ट रहता है, तब वह जीवन्मुक्त कहा जाता है॥ २८॥

चैत्यवर्जितचिन्मात्रे पदे परमपावने। अक्षुब्धचित्तो विश्रान्तः स जीवन्मुक्त उच्यते॥ २९॥

(साधक) जब चित्त के विकारों से वर्जित हुआ, परम पावन चिन्मात्र में अक्षुब्ध चित्त से रमण करता है, तब वह जीवन्मुक्त कहा जाता है॥ २९॥

इदं जगदहं सोऽयं दृश्यजातमवास्तवम्। यस्य चित्ते न स्फुरति स जीवन्मुक्त उच्यते॥ ३०॥

मैं (अहं भाव), यह दृश्यमान अवास्तविक जगत् जिसके चित्त में स्फुरण नहीं करता, वह जीवन्मुक्त कहा गया है॥ ३०॥

सद्ब्रह्मणि स्थिरे स्फारे पूर्णे विषयवर्जिते। आचार्यशास्त्रमार्गेण प्रविश्याशु स्थिरो भव॥ ३१॥

हे निदाघ! विषयों से वर्जित, पूर्ण स्थिर, विस्तृत सद्ब्रह्म में, आचार्य- शास्त्र मार्ग से प्रवेश करो तथा स्थिर होओ॥ ३१॥

शिवो गुरुः शिवो वेदः शिवो देवः शिवः प्रभुः। शिवोऽस्म्यहं शिवः सर्वं शिवादन्यन्न किंचन॥ ३२॥

शिव गुरु है, शिव वेद है, शिव देव है, शिव प्रभु है, मैं स्वयं ही शिव हूँ, शिव से अन्य कुछ नहीं है॥ ३२॥

तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः। नानुध्यायाद्बहूञ्छब्दान्वाचो विग्लापनं हि तत्॥ ३३॥

धीर ब्राह्मण इसे ही जानकर प्रज्ञा को प्राप्त करे। बिना मनन-चिन्तन किये बहुत शब्दों का वाचन मात्र विग्लापन (उबाने वाली वाचालता) ही है॥ ३३॥

शुको मुक्तो वामदेवोऽपि मुक्तस्ताभ्यां विना मुक्तिभाजो न सन्ति। शुकमार्गं येऽनुसरन्ति धीराः सद्यो मुक्तास्ते भवन्तीह लोके॥ ३४॥

शुक मुक्त हैं, वामदेव भी मुक्त हैं, उनकी कृपा के बिना मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। जो धीर साधक संसार में शुक मार्ग (विहंगम मार्ग) का अनुसरण करते हैं, वे शीघ्र ही मुक्त हो जाते हैं॥ ३४॥

वामदेवं येऽनुसरन्ति नित्यं मृत्वा जनित्वा च पुनः पुनस्तत्। ते वै लोके क्रममुक्ता भवन्ति योगैः सांख्यैः कर्मभिः सत्त्वयुक्तैः॥ ३५॥

जो साधक वामदेव मार्ग (पिपीलिका मार्ग) का अनुसरण करते हैं, वे बार-बार मरते-जीते हैं। वे संसार में सांख्य योग तथा सत्त्वयुक्त भक्तियुक्त कर्मों से क्रमशः क्रमिक गति से मुक्त हो जाते हैं॥ ३५॥

शुकश्च वामदेवश्च द्वे सृती देवनिर्मिते। शुको विहङ्गमः प्रोक्तो वामदेवः पिपीलिका॥ ३६॥

शुक और वामदेव ये दो सरणियाँ (मार्ग) देवनिर्मित हैं। शुक को आकाशचारी (आकाश में विचरण करने वाला) तथा वामदेव को पिपीलिका (चींटी) कहा है अर्थात् पक्षी किसी मार्ग को शीघ्र तय कर लेता है, चींटी उसे दस गुने अथवा इससे भी अधिक समय में रेंगकर ही तय करेगी॥ ३६॥

अतद्व्यावृत्तिरूपेण साक्षाद्विधिमुखेन वा। महावाक्यविचारेण सांख्ययोगसमाधिना॥ ३७॥
विदित्वा स्वात्मनो रूपं संप्रज्ञातसमाधितः। शुकमार्गेण विरजाः प्रयान्ति परमं पदम्॥ ३८॥

अतद्व्यावृत्तिरूप (नेति-नेति की प्रक्रिया) से साक्षात् ब्रह्मा (गुरु या वेद) के मुख से अथवा वेदान्त के सोऽहम् इत्यादि महावाक्यों के विचार करने से अथवा सांख्य योग द्वारा निर्दिष्ट समाधि से स्वात्मा का रूप जानकर, संप्रज्ञात समाधि लगाकर, धीर साधक निष्कल्मष (निष्पाप) होकर परमपद प्राप्त करते हैं॥ ३७-३८॥

यमाद्यासनजायासहठाभ्यासात्पुनःपुनः। विघ्नबाहुल्यसंजात अणिमादिवशादिह॥ ३९॥
अलब्ध्वापि फलं सम्यक्पुनर्भूत्वा महाकुले। पूर्ववासनयैवायं योगाभ्यासं पुनश्चरन्॥ ४०॥

यमादि आसन प्राणायाम द्वारा श्रमसाध्य हठयोग के अभ्यास से अणिमा आदि सिद्धियों की प्राप्ति से (परमात्मपद की प्राप्ति में) विघ्न बाहुल्य होता है। योग्यफल को बिना प्राप्त किये (साधक) फिर अगले जन्म में किसी महाकुल में पैदा होकर, पूर्व वासना (संस्कार) से ही वह योगाभ्यास करता है॥ ३९-४०॥

अनेकजन्माभ्यासेन वामदेवेन वै पथा। सोऽपि मुक्तिं समाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्॥ ४१॥

इस प्रकार (साधक)अनेक जन्मों के अभ्यास से वामदेव मार्ग से भी मुक्ति को प्राप्त कर लेता है, जो विष्णु का परमपद है॥ ४१॥

द्वाविमावपि पन्थानौ ब्रह्मप्राप्तिकरौ शिवौ। सद्योमुक्तिप्रदश्चैकः क्रममुक्तिप्रदः परः। अत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥ ४२॥

(शुक और वामदेव नामक) ये दोनों ही मार्ग ब्रह्म की प्राप्ति और कल्याण कराने वाले हैं। एक शीघ्र मुक्तिप्रद है, दूसरा क्रमशः मुक्तिप्रद है। जो उस परासत्ता से एकत्व का अनुभव कर रहा है, उसके लिए यहाँ क्या मोह है ? क्या शोक है ?॥ ४२ ॥

यस्यानुभवपर्यन्ता बुद्धिस्तत्त्वे प्रवर्तते। तद्दृष्टिगोचराः सर्वे मुच्यन्ते सर्वपातकैः॥ ४३॥

जिसकी बुद्धि अनुभव की सीमा तक तत्त्व में प्रवर्तित है, ऐसे योगी की कृपा पाकर समस्त जीव ही पापों से मुक्त हो जाते हैं॥ ४३ ॥

खेचरा भूचराः सर्वे ब्रह्मविद्दृष्टिगोचराः। सद्य एव विमुच्यन्ते कोटिजन्मार्जितैरघैः॥ ४४॥

ब्रह्मज्ञानी द्वारा देखे हुए (अर्थात् ब्रह्मज्ञानी की कृपादृष्टि से) सारे खेचर (आकाश में विचरण करने वाले) भूचर (पृथिवी पर चलने वाले) प्राणी करोड़ों जन्मों के पापों से मुक्त हो जाते हैं॥ ४४॥

॥ अथ पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथ हैनं ऋभुं भगवन्तं निदाघः पप्रच्छ योगाभ्यासविधिमनुब्रूहीति। तथेति स होवाच। पञ्चभूतात्मको देहः पञ्चमण्डलपूरितः। काठिन्यं पृथिवीमेकां पानीयं तद्द्रवाकृति॥ १ ॥

भगवान् ऋभु से निदाघ ने पूछा— भगवन्! योगाभ्यास विधि का उपदेश कीजिए। ऋषि बोले— पञ्चभूतात्मक देह पञ्चमण्डल से पूरित है। काठिन्य (कठोरता) पृथिवीरूप है, जल द्रवाकृति (जलरूप) है॥ १॥

दीपनं च भवेत्तेजः प्रचारो वायुलक्षणम्। आकाशःसत्त्वतः सर्वं ज्ञातव्यं योगमिच्छता॥ २॥

तेज दीपनरूप (ज्योतिरूप) है, वायु प्रसरणशील (संचरणशील) है। आकाश सत्त्वरूप है, ऐसा योग की सिद्धि चाहने वाले को जानना चाहिए॥ २॥

षट्शतान्यधिकान्यत्र सहस्राण्येकविंशतिः। अहोरात्रवहैः श्वासैर्वायुमण्डलघाततः॥ ३॥

रात-दिन (चौबीस घण्टे) में वायुमंडल घात से इक्कीस हजार छः सौ श्वास-प्रश्वास चलते हैं॥ ३॥

तत्पृथ्वीमण्डले क्षीणे वलिरायाति देहिनाम्। तद्वदापो गणापाये केशाः स्युः पाण्डराःक्रमात्॥ ४॥

पृथिवीमण्डल क्षीण होने पर देहधारियों को वलि (झुर्रियाँ) आ जाती हैं। इसी प्रकार जल क्षीण होने पर केश क्रमशः श्वेत होने लगते हैं॥ ४॥

तेजःक्षये क्षुधा कान्तिर्नश्यते मारुतक्षये। वेपथुः संभवेन्नित्यं नाभसे नैव जीवति॥ ५॥

तेज के क्षय होने पर भूख और कान्ति नष्ट होने लगती है। वायु के क्षय होने पर कम्पन होने लगता है, आकाश का क्षय होने पर जीवित ही नहीं रहता॥ ५॥

इत्थंभूतक्षयान्नित्यं जीवितं भूतधारणम्। उड्याणं कुरुते यस्मादविश्रान्तं महाखगः॥ ६॥

इस प्रकार नित्यक्षय से भूतों (प्राणियों) को धारण करने वाला जीवनरूपी पक्षी अविश्रांत स्थान की ओर उड़ना चाहता है॥ ६॥

उड्डियाणं तदेव स्यात्तत्र बन्धोऽभिधीयते। उड्डियाणो ह्यसौ बन्धो मृत्यु मातङ्गकेसरी॥ ७॥

जब वह उड़ान भरता है, तब उसको बन्ध कहा जाता है। उड़ता हुआ यह बन्ध मृत्युरूप मातंग (हाथी) के लिए केसरी (सिंह) के समान है॥ ७॥

तस्य मुक्तिस्तनोः कायात्तस्य बन्धो हि दुष्करः। अग्नौ तु चालिते कुक्षौ वेदना जायते भृशम्॥ ८॥

उसकी मुक्ति तो कृश शरीर से हो ही जाती है, किन्तु उसका बन्ध दुष्कर है। कुक्षि में अग्नि के संचरित होने पर बड़ी वेदना होती है॥ ८॥

न कार्या क्षुधितेनापि नापि विण्मूत्रवेगिना। हितं मितं च भोक्तव्यं स्तोकं स्तोकमनेकधा॥ ९॥

यह क्रिया भूखे को नहीं करनी चाहिए और न मल-मूत्रादि वेग वाले को करनी चाहिए। इसके लिए हितकारी तथा स्वल्प मात्रा में आहार थोड़ा-थोड़ा कई बार खाना चाहिए॥ ९॥

मृदुमध्यममन्त्रेषु क्रमान्मन्त्रं लयं हठम्। लयमन्त्रहठा योगा योगो ह्यष्टाङ्गसंयुतः॥ १०॥

मृदु-मध्यम मन्त्रों से क्रमशः मन्त्र, लय, हठ का अभ्यास करना होता है। लय, मन्त्र, हठ वाली ये योग क्रियाएँ हैं। योग अष्टांग (आठ अंगों) वाला है॥ १०॥

यमश्च नियमश्चैव तथा चासनमेव च। प्राणायामस्तथा पश्चात्प्रत्याहारस्तथा परम्॥ ११॥
धारणा च तथा ध्यानं समाधिश्चाष्टमो भवेत्। अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयार्जवम्॥ १२॥
क्षमा धृतिर्मिताहारः शौचं चेति यमा दश। तपः सन्तोषमास्तिक्यं दानमीश्वरपूजनम्॥ १३॥
सिद्धान्तश्रवणं चैव ह्रीर्मतिश्च जपो व्रतम्। एते हि नियमाः प्रोक्ता दशधैव महामते॥ १४॥

उसके यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये आठ अंग हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, आर्जव, क्षमा, धृति, मिताहार और शौच ये दस यम हैं। तप, सन्तोष, आस्तिकता, दान, ईश्वरपूजन, सिद्धान्तश्रवण, ह्री (लज्जा), मति, जप, व्रत ये दस नियम बताये गये हैं॥ ११-१४॥

एकादशासनानि स्युश्चक्राद्या मुनिसत्तम। चक्रं पद्मासनं कूर्मं मयूरं कुक्कुटं तथा॥ १५॥
वीरासनं स्वस्तिकं च भद्रं सिंहासनं तथा। मुक्तासनं गोमुखं च कीर्तितं योगवित्तमैः॥ १६॥

हे मुनि सत्तम! चक्र आदि एकादश आसन हैं। चक्र, पद्मासन, कूर्म, मयूर, कुक्कुट, वीरासन, स्वस्तिक, भद्र, सिंहासन, मुक्तासन और गोमुख ये ग्यारह आसन योगविदों द्वारा कहे गये हैं॥ १५-१६॥

सव्योरु दक्षिणे गुल्फे दक्षिणं दक्षिणेतरे। निदध्यादृजुकायस्तु चक्रासनमिदं मतम्॥ १७॥

वाम ऊरु को दाहिने गुल्फ (टखने) पर तथा दाहिने को बाएँ गुल्फ पर रखे, कमर सीधी करके बैठे, इसे चक्रासन कहा है॥ १७॥

पूरकः कुम्भकस्तद्वद्रेचकः पूरकः पुनः। प्राणायामाः स्वनाडीभिस्तस्मान्नाडीः प्रचक्षते॥ १८॥

पूरक, कुम्भक, रेचक फिर पूरकादि क्रम से प्राणायाम नाड़ियों से किया जाता है। अतः (प्राणायाम को) नाड़ी कर्म भी कहा जाता है॥ १८॥

शरीरं सर्वजन्तूनां षण्णवत्यङ्गुलात्मकम्। तन्मध्ये पायुदेशात्तु द्वयङ्गुलात्परतः परम्॥ १९॥
मेढ्रदेशादधस्तात्तु द्वयङ्गुलान्मध्यमुच्यते। मेढ्रान्नवाङ्गुलादूर्ध्वं नाडीनां कन्दमुच्यते॥ २०॥

सब प्राणियों का शरीर ९६ अंगुल का होता है। उसके मध्य गुदाभाग से दो अंगुल परे मेढ्र भाग से नीचे दो अंगुल को मध्य कहा जाता है। यह मेढ्र से नौ अङ्गुल ऊपर नाड़ियों का कन्द है॥ १९-२०॥

चतुरङ्गुलमुत्सेधं चतुरङ्गुलमायतम्। अण्डाकारं परिवृतं मेदोमज्जास्थिशोणितैः॥ २१॥

(यह नाड़ी कन्द) चार अंगुल ऊँचा, चार अंगुल चौड़ा, अण्डाकार, मेद, मज्जा, अस्थि, शोणित (रक्त) से घिरा है॥ २१॥

तत्रैवनाडीचक्रं तु द्वादशारं प्रतिष्ठितम्। शरीरं ध्रियते येन वर्तते तत्र कुण्डली॥ २२॥

वहीं पर बारह अरों वाला नाड़ीचक्र प्रतिष्ठित है, जिससे शरीर धारण किया जाता है। वहीं पर कुण्डलिनी-शक्ति विद्यमान है॥ २२॥

ब्रह्मरन्ध्रं सुषुम्ना या वदनेन पिधाय सा। अलम्बुसा सुषुम्नायाः कुहूर्नाडी वसत्यसौ॥ २३॥

ब्रह्मरन्ध्र को सुषुम्ना अपने मुख से ढके रहती है। सुषुम्ना के पास ही अलम्बुसा और कुहू नामक नाड़ियाँ रहती हैं॥ २३॥

अनन्तरारयुग्मे तु वारुणा च यशस्विनी। दक्षिणारे सुषुम्नायाः पिङ्गला वर्तते क्रमात्॥ २४॥

इसके बाद दो अरों में वारुणा और यशस्विनी रहती हैं। सुषुम्ना के दाहिने अरे में क्रम से पिङ्गला स्थित है॥ २४॥

तदन्तरारयोः पूषा वर्तते च पयस्विनी। सुषुम्ना पश्चिमे चारे स्थिता नाडी सरस्वती॥ २५॥

उसके बाद के अरों में पूषा और पयस्विनी स्थित हैं। सुषुम्ना के पश्चिम अरे में सरस्वती नाड़ी स्थित है॥ २५॥

शङ्खिनी चैव गान्धारी तदनन्तरयोः स्थिते। उत्तरे तु सुषुम्नाया इडाख्या निवसत्यसौ॥ २६॥

इसके बाद के अरों में शंखिनी और गान्धारी स्थित हैं। सुषुम्ना के उत्तर में इडा नाम की नाड़ी स्थित है॥ २६॥

अनन्तरं हस्तिजिह्वा ततो विश्वोदरी स्थिता। प्रदक्षिण क्रमेणैव चक्रस्यारेषु नाडयः॥ २७॥

इसके बाद हस्तिजिह्वा फिर विश्वोदरी स्थित है। प्रदक्षिणा क्रम से (क्लाक वाइज) चक्र के अरों में नाड़ियाँ स्थित हैं॥ २७॥

वर्तन्ते द्वादश ह्येता द्वादशानिलवाहकाः। पटवत्संस्थिता नाड्यो नानावर्णाः समीरिताः॥ २८॥

ये नाड़ियाँ बारह की संख्या में हैं तथा बारह वायुओं का वहन करती हैं। कपड़े के समान रखी ये नाड़ियाँ विभिन्न वर्णों की हैं॥ २८॥

पटमध्यं तु यत्स्थानं नाभिचक्रं तदुच्यते। नादाधारा समाख्याता ज्वलन्ती नादरूपिणी॥ २९॥

पट (वस्त्र) के मध्य में जो स्थान (तन्तुओं का) है, वही (स्वरूप नाड़ियों के मिलने से बनता है, जो) नाभिचक्र कहलाता है। जलती (प्रकाशित) हुई नादरूपिणी नाड़ियाँ नाद का आधार कही गई हैं॥ २९॥

पररन्ध्रा सुषुम्ना च चत्वारो रत्नपूरिताः। कुण्डल्या पिहितं शश्वद्ब्रह्मरन्ध्रस्य मध्यमम्॥ ३०॥

सुषुम्ना के छिद्रों से ये सभी नाड़ियाँ जुड़ी हैं। इनमें चार रत्नपूरित हैं। ब्रह्मरन्ध्र का मध्यभाग कुण्डलिनी से सदैव ढँका रहता है॥ ३०॥

एवमेतासु नाडीषु चरन्ति दश वायवः। एवं नाडीगतिं वायुगतिं ज्ञात्वा विचक्षणः॥ ३१॥
समग्रीवशिरः कायः संवृतास्यः सुनिश्चलः। नासाग्रे चैव हृन्मध्ये बिन्दुमध्ये तुरीयकम्॥ ३२॥
स्त्रवन्तममृतं पश्येन्नेत्राभ्यां सुसमाहितः। अपानं मुकुलीकृत्य पायुमाकृष्य चोन्मुखम्॥ ३३॥

इस प्रकार इन नाड़ियों में दस वायुओं का संचरण होता है। चतुर साधक नाड़ी गति तथा वायु गति का ज्ञान प्राप्त करके गर्दन, सिर, कमर सीधी करके, मुख बन्द किये, सुनिश्चल होकर बैठे, तब नासा के अग्रभाग पर एवं हृदय के मध्य पर बूँद-बूँद टपकते अमृत को सुसमाहित हो नेत्रों से देखे। अपान वायु का संकोचन करके गुदा को ऊपर की ओर खींचे॥ ३१-३३॥

प्रणवेन समुत्थाप्य श्रीबीजेन निवर्तयेत्। स्वात्मानं च श्रियं ध्यायेदमृतप्लावनं ततः॥ ३४॥

प्रणव (ॐ) से प्रारम्भ करके श्रीबीज से समाप्त करे। स्वात्मा का श्री रूप में ध्यान करे, तब उसे अमृत प्लावन (अमृत से अभिषेक किये जाने का ध्यान करे) कराये॥ ३४॥

कालवञ्चनमेतद्धि सर्वमुख्यं प्रचक्षते। मनसा चिन्तितं कार्यं मनसा येन सिध्यति॥ ३५॥

यह प्रक्रिया काल को भी धोखा देने वाली है अर्थात् जीत लेने वाली है, इसी कारण सबसे मुख्य भी कही जाती है। मन से सोचा हुआ कार्य, इसी प्रक्रिया से मन से ही सिद्ध होता है॥ ३५॥

जलेऽग्निज्वलनाच्छाखापल्लवानि भवन्ति हि। नाधन्यं जागतं वाक्यं विपरीता भवेत्क्रिया॥ ३६॥

जल में अग्नि जलने से शाखा पल्लव उत्पन्न होते हैं। जगत् का वाक्य धन्य होता है तथा क्रिया विपरीत हो जाती है॥ ३६॥

[यहाँ साधक को ऊर्ध्वरेता बनने का संकेत किया गया है। रसानुभूति तथा जीवन जल (तीर्थ) की सहज गति नीचे की ओर है। उसे सङ्कल्प एवं मन्त्र शक्ति से ऊर्जित करना जल में अग्नि का संचार करना है। इससे रस का ऊर्ध्वगमन होता है। तब साधना पल्लवित होने लगती है। मन्त्रादि वाक्य सार्थक हो जाते हैं तथा रस के प्रवाह के विपरीत होकर अधोगामी से ऊर्ध्वगामी हो जाते हैं।]

मार्गे बिन्दुं समाबध्य वह्निं प्रज्वाल्य जीवने। शोषयित्वा तु सलिलं तेन कायं दृढं भवेत्॥ ३७॥

(सुषुम्ना) मार्ग में बिन्दु (मन) को बाँधकर (आकुंचन के द्वारा) जीवन (मूलाधार) में अग्नि जलाकर प्राणसहित वायु से उस जल को (सुषुम्ना नाड़ी में स्थित वसा को) सुखाने से प्राण स्तम्भित हो जाता है, जिससे काया दृढ़ हो जाती है॥ ३७॥

गुदयोनिसमायुक्तं आकुञ्चत्येककालतः। अपानमूर्ध्वगं कृत्वा समानेन नियोजयेत्॥ ३८॥

गुदा योनि का एक साथ आकुञ्चन कर, अपान को ऊपर की ओर ले जाकर समान में नियुक्त करे॥ ३८॥

स्वात्मानं च श्रियं ध्यायेदमृतप्लावनं ततः। बलं समारभेद्योगी मध्यमद्वारभागतः॥ ३९॥

स्व-आत्मा का श्री रूप में ध्यान करके अमृत का प्लावन कराये अर्थात् उसका अमृत द्वारा अभिषेक होने का भाव करे। योगी मध्यम द्वार भाग से ही (यथाशक्ति कुम्भक से योग क्रियाएँ) प्रारम्भ करे॥ ३९॥

भावयेदूर्ध्वगत्यर्थं प्राणापानसुयोगतः। एष योग वरो देहे सिद्धिमार्गप्रकाशकः॥ ४०॥

ऊर्ध्वगति के लिए प्राणापान (प्राण और अपान) को एक करे। यह श्रेष्ठ योग शरीर में सिद्धि मार्ग का प्रकाशक है॥ ४०॥

यथैवापां गतः सेतुः प्रवाहस्य निरोधकः। तथा शरीरगाच्छाया ज्ञातव्या योगिभिः सदा॥ ४१॥

जैसे जल में बाँधा गया पुल जल का निरोधक होता है, उसी प्रकार योगियों द्वारा शरीरगा छाया (चित्त छाया) भी ज्ञातव्य है अर्थात् जाननी चाहिए॥ ४१॥

सर्वासामेव नाडीनामेष बन्धः प्रकीर्तितः। बन्धस्यास्य प्रसादेन स्फुटीभवति देवता॥ ४२॥

सभी नाड़ियों का यह बन्ध (चतुष्पथ बन्ध) कहा गया है, इस बन्ध की कृपा से देवता का साक्षात्कार होता है॥ ४२॥

एवं चतुष्पथो बन्धो मार्गत्रयनिरोधकः। एकं विकासयन्मार्गं येन सिद्धाः सुसङ्गताः॥ ४३॥

यों चार स्थानों पर यह बन्ध (चतुष्पथ बन्ध-जहाँ सुषुम्ना, इड़ा, पिङ्गला और कुहू नाड़ियाँ एकत्र होती

हैं), चतुर्द्वार मूलाधार का आश्रयरूप है, इसे ही मूलबन्ध कहते हैं, यह तीन मार्गों का अवरोधक है (सुषुम्ना बिल में प्राण के प्रवेश से सुषुम्ना को विकसित करते हुए इस बन्ध द्वारा साधक इड़ा, पिंगला और कुहू नाड़ीगत मार्गत्रय का अवरोधक होता है।), एक मार्ग का विकास करने पर भी अन्य मार्गों की सिद्धि सुगम हो जाती है॥ ४३॥

उदानमूर्ध्वगं कृत्वा प्राणेन सह वेगतः। बन्धोऽयं सर्वनाडीनामूर्ध्वं याति निरोधकः॥ ४४॥

उदानवायु को वेगपूर्वक ऊपर की ओर मोड़कर प्राण के साथ बन्ध लगाना, सब नाड़ियों के ऊपर की ओर जाने का निरोधक है। (नाड़ियों की शक्ति को बिखरने से रोकता है)॥ ४४॥

अयं च संपुटो योगो मूलबन्धोऽप्ययं मतः। बन्धत्रयमनेनैव सिध्यत्यभ्यासयोगतः॥ ४५॥

यह संपुटयोग है, इसे मूलबन्ध भी कहते हैं। इसके अभ्यास से तीनों बन्ध (मूलबन्ध, उड्डयान बन्ध, जालन्धर बन्ध) सिद्ध होते हैं॥ ४५॥

दिवारात्रमविच्छिन्नं यामे यामे यदा तदा। अनेनाभ्यासयोगेन वायुरभ्यसितो भवेत्॥ ४६॥

दिन में, रात में अर्थात् दिन और रात्रि के निश्चित प्रहर में अविच्छिन्न रूप से इस अभ्यास के करने से योगी वायु-- अभ्यस्त हो जाता है॥ ४६॥

वायावभ्यसिते वह्निः प्रत्यहं वर्धते तनौ। वह्नौ विवर्धमाने तु सुखमन्नादि जीर्यते॥ ४७॥

वायु के अभ्यस्त हो जाने पर नित्य प्रति शरीर में अग्नि बढ़ती है। अग्नि बढ़ने पर अन्नादि सुखपूर्वक (सरलता से) पचते हैं॥ ४७॥

अन्नस्य परिपाकेन रसवृद्धिः प्रजायते। रसे वृद्धिङ्गते नित्यं वर्धन्ते धातवस्तथा॥ ४८॥

अन्न के परिपाक से रसवृद्धि होती है, रस की वृद्धि होने से अन्य धातुएँ (शरीर के अन्दर स्थित सप्त धातुएँ) वृद्धि को प्राप्त होती हैं ॥ ४८॥

धातूनां वर्धनेनैव प्रबोधो वर्धते तनौ। दह्यन्ते सर्वपापानि जन्मकोट्यर्जितानि च ॥ ४९॥

धातुओं की वृद्धि से शरीर में प्रबोध उत्पन्न होता है। फिर करोड़ों जन्मों के अर्जित पाप भस्म (नष्ट) हो जाते हैं॥ ४९॥

गुदमेढ्रान्तरालस्थं मूलाधारं त्रिकोणकम्। शिवस्य बिन्दुरूपस्य स्थानं तद्धि प्रकाशकम्॥ ५०॥

गुदा और मेढ्र (उपस्थ) के अन्तराल में स्थित तिकोना मूलाधार है। बिन्दुरूप शिव का प्रकाशक यही स्थान है॥ ५०॥

यत्र कुण्डलिनी नाम परा शक्तिः प्रतिष्ठिता। यस्मादुत्पद्यते वायुर्यस्माद्वह्निः प्रवर्धते॥ ५१॥

जहाँ कुण्डलिनी नाम की पराशक्ति प्रतिष्ठित है, जिससे वायु उत्पन्न होती है, जिससे अग्नि प्रवर्द्धित होती है॥ ५१॥

यस्मादुत्पद्यते बिन्दुर्यस्मान्नादः प्रवर्धते। यस्मादुत्पद्यते हंसो यस्मादुत्पद्यते मनः॥ ५२॥

जिससे बिन्दु उत्पन्न होता है, जिससे नाद प्रवर्धित होता है। जिससे हंस उत्पन्न होता है, जिससे मन उत्पन्न होता है॥ ५२॥

मूलाधारादिषट्चक्रं शक्तिस्थानमुदीरितम्। कण्ठादुपरि मूर्धान्तं शांभवं स्थानमुच्यते॥ ५३॥

मूलाधार आदि षट्चक्र शक्ति के स्थान कहे गये हैं। कण्ठ से ऊपर मूर्धा तक शाम्भव-स्थान (शिव क्षेत्र) कहा जाता है॥ ५३॥

नाडीनामाश्रयः पिण्डो नाड्यः प्राणस्य चाश्रयाः। जीवस्य निलयः प्राणो जीवो हंसस्य चाश्रयः॥ ५४॥

नाड़ियों का आश्रय पिण्ड है, प्राण का आश्रय नाड़ियाँ हैं, जीव का निलय (वास स्थान) प्राण में है, हंस का आश्रय जीव है॥ ५४॥

हंसः शक्तेरधिष्ठानं चराचरमिदं जगत्। निर्विकल्पः प्रसन्नात्मा प्राणायामं समभ्यसेत्॥ ५५॥

शक्ति का अधिष्ठान हंस है। इस चराचर जगत् में निर्विकल्प रूप में प्रसन्नात्मा होकर प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए॥ ५५॥

सम्यग्बन्धत्रयस्थोऽपि लक्ष्यलक्षणकारणम्। वेद्यं समुद्धरेन्नित्यं सत्यसंधान मानसः॥ ५६॥

बन्धत्रय में ठीक प्रकार स्थित होने पर भी लक्ष्य-लक्षण-कारण के सत्य की खोज में मन लगाये जाने का प्रयत्न करे, वही जानने योग्य है॥ ५६॥

रेचकं पूरकं चैव कुम्भमध्ये निरोधयेत्। दृश्यमाने परे लक्ष्ये ब्रह्मणि स्वयमाश्रितः॥ ५७॥

रेचक, पूरक को कुम्भक में रोके तथा स्वयं इस दृश्यमान से परे लक्ष्य ब्रह्म में आश्रित रहे॥ ५७॥

बाह्यस्थविषयं सर्वं रेचकः समुदाहृतः। पूरकं शास्त्रविज्ञानं कुम्भकं स्वगतं स्मृतम्॥ ५८॥

बाहर स्थित सारा विषय रेचक कहा गया है। पूरक शास्त्र विज्ञान है। कुम्भक को स्वगत कहा गया है॥ ५८॥

एवमभ्यासचित्तश्चेत्स मुक्तो नात्र संशयः। कुम्भकेन समारोप्य कुम्भकेनैव पूरयेत्॥ ५९॥

चित्त में इस प्रकार का अभ्यास करने से साधक निश्चित रूप से मुक्त हो जाता है। कुम्भक से समारोपित करके कुम्भक से ही पूर्ण करे॥ ५९॥

कुम्भेन कुम्भयेत्कुम्भं तदन्तःस्थः परं शिवम्। पुनरास्फालयेदद्य सुस्थिरं कण्ठमुद्रया॥ ६०॥

कुम्भ से कुम्भ को पूर्ण करे, उसके अन्दर शिव स्थित है, फिर सुस्थिर हुआ कण्ठमुद्रा से आस्फालन (अभ्यास) करे॥ ६०॥

वायूनां गतिमावृत्य धृत्वा पूरककुम्भकौ। समहस्तयुगं भूमौ समं पादयुगं तथा॥ ६१॥

वायुओं की गति रोककर, पूरक-कुम्भक को धारण करके, दोनों हाथों को तथा दोनों पैरों को भूमि पर समस्थिति में रखे॥ ६१॥

वेधकत्रययोगेन चतुष्पीठं तु वायुना। आस्फालयेन्महामेरुं वायुवक्त्रे प्रकोटिभिः॥ ६२॥

वेधकत्रय (क्रम) योग से चतुष्पीठ को वायु से आस्फालित करे रगड़े। वायु के मुख में महामेरु को अनेक बार प्रताड़ित करे॥ ६२॥

पुटद्वयं समाकृष्य वायुः स्फुरति सत्वरम्। सोमसूर्याग्निसंबन्धाज्जानीयादमृताय वै॥ ६३॥

दोनों पुटों को खींचकर जो ऐसा अभ्यास करता है, उसे वायु शीघ्र ही स्फुरित हो जाती है। सोम, सूर्य, अग्नि के सम्बन्ध से यह अमृत प्राप्ति का उपाय है॥ ६३॥

मेरुमध्यगता देवाश्चलन्ते मेरुचालनात्। आदौ संजायते क्षिप्रं वेधोऽस्य ब्रह्मग्रन्थितः॥ ६४॥

मेरुमध्य-स्थित देवता मेरु के चलाने से चलायमान होते हैं। प्रारम्भ में इसका वेध ब्रह्मग्रन्थि से शीघ्र ही हो जाता है॥ ६४॥

ब्रह्मग्रन्थिं ततो भित्त्वा विष्णुग्रन्थिं भिनत्त्यसौ। विष्णुग्रन्थिं ततो भित्त्वा रुद्रग्रन्थिं भिनत्त्यसौ॥ ६५॥

ब्रह्मग्रन्थि को भेदकर विष्णुग्रन्थि को भेदता है, विष्णुग्रन्थि को भेदकर फिर रुद्रग्रन्थि का भेदन करता है॥ ६५॥

रुद्रग्रन्थिं ततो भित्त्वा छित्त्वा मोहमलं तथा। अनेकजन्मसंस्कारगुरुदेवप्रसादतः॥ ६६॥ योगाभ्यासात्ततो वेधो जायते तस्य योगिनः। इडापिङ्गलयोर्मध्ये सुषुम्नानाडिमण्डले॥ ६७॥ मुद्राबन्धविशेषेण वायुमूर्ध्वं च कारयेत्। ह्रस्वो दहति पापानि दीर्घो मोक्षप्रदायकः॥ ६८॥

रुद्रग्रन्थि को भेदने के बाद मोह के कषाय-कल्मषों को काटकर अनेक जन्मों के संस्कार और गुरु कृपा से तथा योग के अभ्यास से योगी की ग्रन्थित्रय (तीनों ग्रन्थियों) का वेध होता है। इड़ा-पिङ्गला के बीच में सुषुम्ना नाड़ि-मण्डल में मुद्रा के विशेष बन्ध से वायु को ऊपर की ओर प्रवाहित करे, ह्रस्व (एक मात्रात्मक प्रणव जप) पापों को जलाता है तथा दीर्घ (द्विमात्रात्मक प्रणव का जप) मोक्ष प्रदायक है॥ ६६-६८॥

आप्यायनः प्लुतो वापि त्रिविधोच्चारणेन तु। तैलधारामिवाच्छिन्नं दीर्घघण्टानिनादवत्॥ ६९॥

अथवा ऊँचे स्वर में बोला गया प्लुत (त्रिमात्रात्मक अथवा चतुर्मात्रात्मक प्रणव जप) इन तीनों प्रकार के उच्चारणों से अविच्छिन्न तैल की धारा के समान दीर्घ घण्टा निनाद सदृश शब्दवान् हो जाता है॥ ६९॥

अवाच्यं प्रणवस्याग्रं यस्तं वेद स वेदवित्। ह्रस्वं बिन्दुगतं दैर्घ्यं ब्रह्मरन्ध्रगतं प्लुतम्। द्वादशान्तगतं मन्त्रं प्रसादं मन्त्रसिद्धये॥ ७०॥

प्रणव का अग्रभाग वाचन में नहीं आता। जो इसे जान गया, वही पूरा वेदज्ञ है, ह्रस्व बिन्दुगत (हृदयगत) दीर्घ बोला गया ब्रह्मरन्ध्र गत होता है तथा प्लुत द्वादश अरों वाले नाड़ीचक्र (ब्रह्मरन्ध्र के ऊर्ध्वभाग) तक पहुँचता है। अतः ऐसा मन्त्र, सिद्धि और देव-प्रसाद (देवता की प्रसन्नता) को प्राप्त करता है॥ ७०॥

सर्वविघ्नहरश्चायं प्रणवः सर्वदोषहा। आरम्भश्च घटश्चैव पुनः परिचयस्तथा॥ ७१॥ निष्पत्तिश्चेतिकथिताश्चतस्त्रस्तस्य भूमिकाः। करणत्रयसंभूतं बाह्यं कर्म परित्यजन्॥ ७२॥ आन्तरं कर्म कुरुते यत्रारम्भः स उच्यते। वायुः पश्चिमतो वेधं कुर्वन्नापूर्य सुस्थिरम्॥ ७३॥ यत्र तिष्ठति सा प्रोक्ता घटाख्या भूमिका बुधैः। न सजीवो न निर्जीवः काये तिष्ठति निश्चलम्। यत्र वायुः स्थिरः खे स्यात्सेयं प्रचयभूमिका॥ ७४॥

यह प्रणव सब विघ्नों को हरने वाला, सब दोषों को दूर करने वाला है। योग की चार भूमिकाएँ कही गई हैं। ये क्रमशः आरम्भ, घट, परिचय (प्रचय) और निष्पत्ति हैं। तीन कारणों (मन, वाणी और काया) से उत्पद्यमान कर्मों को त्यागकर जहाँ आन्तर कर्म करता है, वह 'आरम्भ' कहलाता है (अर्थात् उसे आरम्भिक भूमिका कहते हैं।)

पीछे से सुषुम्ना मार्ग से वायु को शरीर में भरकर ग्रन्थित्रय का वेधन करते हुए जहाँ ठहरता है (स्थिर हो जाता है) वह स्थिति (भूमिका) विद्वानों द्वारा 'घट' बताई गई है। वह न सजीव है न निर्जीव है। ऐसे शरीर में सहस्राराकाश (सहस्रार वक्र में स्थित रिक्त स्थान) में वायु निश्चल रूप में स्थिर होता है। वह भूमिका 'प्रचय' (परिचय) नाम से कही गई है॥ ७१-७४॥

यत्रात्मना सृष्टिलयौ जीवन्मुक्तिदशांगतः। सहजः कुरुते योगं सेयं निष्पत्तिभूमिका॥ ७५॥

जहाँ योगी आत्मा से जाग्रत् आदि प्रपञ्च सृष्टि में लय करके (सृष्टि लय के भाव को भुलाकर) जीवन मुक्ति की दशा को प्राप्त हुआ, सहज (असम्प्रज्ञात) योग करता है, वह 'निष्पत्ति' भूमिका कही गई है॥ ७५॥

इत्येतदुपनिषदं योऽधीते सोऽग्निपूतो भवति। स वायुपूतो भवति। सुरापानात्पूतो भवति। स्वर्णस्तेयात्पूतो भवति। स जीवन्मुक्तो भवति। तदेतदृचाभ्युक्तम् तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्। तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते। विष्णोर्यत्परमं पदमित्युपनिषत्॥ ७६-७७॥

इस उपनिषद् का जो अध्ययन करता है, वह अग्निपूत (अग्नि से पवित्र) होता है, वायुपूत (वायु से पवित्र) होता है। सुरापान के पाप से पवित्र होता है, सुवर्ण चोरी के पाप से पवित्र (मुक्त) होता है। वह जीवन्मुक्त हो जाता है। यह इस ऋचा में भी कहा गया है— ज्ञानीजन भगवान् विष्णु के सर्वोच्च पद को द्युलोक में व्याप्त दिव्य प्रकाश की भाँति देखते हैं। (उस परमसत्ता की व्यापकता का अनुभव करते हैं)। ब्रह्मनिष्ठ जीवन यापन करने वाले आलस्य--प्रमाद आदि से सदैव दूर रहने वाले, श्रेष्ठ कर्मकर्त्ता साधक, परमात्मा के परमपद को प्राप्त करते हैं। यही रहस्य है॥ ७६-७७॥

॥ ॐ सह नाववतु..................इति शान्तिः॥

॥ इति वराहोपनिषत्समाप्ता॥

॥ वासुदेवोपनिषद् ॥

ॐ नमस्कृत्य नारदः सर्वेश्वरं वासुदेवं पप्रच्छ अधीहि भगवन्नूर्ध्वपुण्ड्रविधिं द्रव्यमन्त्रस्थानादिसहितं मे ब्रूहीति॥ १ ॥

एक बार सर्वेश्वर भगवान् वासुदेव को नमन-वन्दन करके देवर्षि नारद ने पूछा— हे भगवन्! द्रव्य, मन्त्र एवं स्थान आदि के सहित ऊर्ध्वपुण्ड्र की विधि बतलाने की कृपा करें॥ १ ॥

तं होवाच भगवान्वासुदेवो वैकुण्ठस्थानादुत्पन्नं मम प्रीतिकरं मद्भक्तैर्ब्रह्मादिभिर्धारितं विष्णुचन्दनं ममाङ्गे प्रतिदिनमालिप्तं गोपीभिः प्रक्षालनाद्गोपीचन्दनमाख्यातं मदङ्गलेपनं पुण्यं चक्रतीर्थान्तः स्थितं चक्रसमायुक्तं पीतवर्णं मुक्तिसाधनं भवति॥ २ ॥

तदनन्तर भगवान् वासुदेव ने देवर्षि नारद का समाधान करते हुए कहा— हे नारद! जिस चन्दन को त्रिदेव-ब्रह्मा आदि हमारे भक्त धारण करते हैं, ऐसा वह (चन्दन) वैकुण्ठ धाम में प्रादुर्भूत मुझे आनन्दित करने वाला विष्णु चन्दन मैंने स्वयं ही वैकुण्ठ धाम से लाकर द्वारका में प्रतिष्ठित किया है। कुङ्कुमादि के सहित विष्णु चन्दन ही श्रेष्ठ चन्दन है। मेरे सम्पूर्ण अङ्गों में वह चन्दन गोपियों के द्वारा उपलेपित एवं प्रक्षालित होने के कारण ही गोपीचन्दन कहलाता है। हमारे अङ्ग का वह पवित्र उपलेपन चक्रतीर्थ में प्रतिष्ठित है। चक्र अर्थात् गोमती चक्र के सहित और पीत वर्ण का ही वह मुक्ति प्रदाता है॥ २ ॥

[आगे के मन्त्रों में भगवान् पहले प्रतीकरूप ऊर्ध्वपुण्ड्र के स्थूल रूप तथा उसे धारण करने का कर्मकाण्ड बतलाते हैं। उसके बाद ऊर्ध्वपुण्ड्र चेतना को ऊर्ध्वगति देने वाले अन्तरङ्ग सूक्ष्म पुण्ड्र, उसके दर्शन एवं भाव को स्पष्ट करते हैं। कर्मकाण्ड को कलेवर तथा उसके दर्शन एवं भाव को कलेवर-स्थित प्राण कहा जाता है। साधकों को चाहिए कि कलेवर-कर्मकाण्ड को-प्राणवान् बनाकर ही अपनायें।]

अथ गोपीचन्दनं नमस्कृत्योद्धृत्य गोपीचन्दन पापघ्न विष्णुदेहसमुद्भव। चक्राङ्कित नमस्तुभ्यं धारणान्मुक्तिदो भव॥ ३ ॥

सर्वप्रथम गोपीचन्दन को प्रणाम करें, तदुपरान्त उसे उठायें और फिर इस मन्त्र (गोपीचन्दन पापघ्न.. भव॥) से प्रार्थना करें। मन्त्रार्थ इस प्रकार है—

भगवान् विष्णु के शरीर से प्रादुर्भूत, पापों को शमन करने वाले हे गोपीचन्दन! हे चक्राङ्कित! आपको प्रणाम है। धारण करने से आप हमारे लिए मुक्ति प्रदान करने वाले हों॥ ३ ॥

इमं मे गङ्गे इति जलमादाय विष्णोर्नुकमिति मर्दयेत्। अतो देवा अवन्तु न इत्येतैर्मन्त्रैर्विष्णुगायत्र्या केशवादिनामभिर्वा धारयेत्॥ ४ ॥

प्रार्थना करने के पश्चात् 'इमं मे गंगे.....' से जल लेकर के 'विष्णोर्नुकम्' इस मन्त्र द्वारा उस चन्दन को

घिसना चाहिए। तदुपरान्त 'अतो देवा अवन्तु न' आदि ऋग्वेदिक मन्त्रों से तथा विष्णु-गायत्री मन्त्र एवं केशवादि नामों द्वारा तीन बार अभिमन्त्रित कर धारण करना चाहिए॥ ४॥

ब्रह्मचारी वानप्रस्थो वा ललाटहृदयकण्ठबाहुमूलेषु वैष्णवगायत्र्या कृष्णादिनामभिर्वा धारयेत्। इति त्रिवारमभिमन्त्र्य- शङ्खचक्रगदापाणे द्वारकानिलयाच्युत। गोविन्द पुण्डरीकाक्ष रक्ष मां शरणागतम्। इति ध्यात्वा गृहस्थो ललाटादिद्वादशस्थलेष्वनामिकाङ्गुल्या वैष्णवगायत्र्या केशवादिनामभिर्वा धारयेत्॥ ५॥

ब्रह्मचारी अथवा वानप्रस्थ ललाट (मस्तक), कण्ठ, हृदय एवं बाहुमूल पर विष्णु-गायत्री से अथवा कृष्णादि पाँच नामों द्वारा (चन्दन) लगाए तथा इस प्रकार तीन बार अभिमन्त्रित करे, तत्पश्चात् प्रार्थना करे कि हाथ में शङ्ख, चक्र एवं गदा धारण करने वाले, द्वारका धाम में निवास करने वाले हे अच्युत! हे पुण्डरीकाक्ष गोविन्द! मैं आपके शरणागत हूँ, आप मेरी रक्षा करें। ऐसा ध्यान करके गृहस्थ को ललाट आदि बारह स्थानों पर विष्णु-गायत्री द्वारा अथवा केशवादि नामों से (चन्दन) धारण करना चाहिए॥ ५॥

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा ललाटहृदयकण्ठबाहुमूलेषु वैष्णवगायत्र्या कृष्णादिनामभिर्वा धारयेत्॥६॥

ब्रह्मचारी अथवा गृहस्थ को ललाट, हृदय, कण्ठ एवं बाहुमूल में विष्णु-गायत्री मन्त्र के द्वारा अथवा कृष्णादि के नामों द्वारा (चन्दन) लगाना चाहिए॥ ६॥

यतिस्तर्जन्या शिरोललाट हृदयेषु प्रणवेनैव धारयेत्॥ ७॥

यति (संन्यासी) को तर्जनी अँगुली के द्वारा शिर, ललाट एवं हृदय में प्रणव (ॐकार) के द्वारा (चन्दन) धारण करना चाहिए॥ ७॥

[उक्त कर्मकाण्ड के बाद आगे के मन्त्रों में उपनिषत्कार कर्मकाण्ड के प्राणरूप उसके सूक्ष्म तत्त्व, दर्शन एवं भाव पक्ष पर प्रकाश डालते हैं।]

ब्रह्मादयस्त्रयो मूर्तयस्तिस्रो व्याहृतयस्त्रीणि छन्दांसि त्रयोऽग्नय इति ज्योतिष्मन्तस्त्रयः कालास्तिस्रोऽवस्थास्त्रय आत्मानः पुण्ड्रास्त्रय ऊर्ध्वा अकार उकारो मकार एते प्रणवमयोर्ध्वपुण्ड्रस्तदात्मा सदेतदोमिति॥ ८॥

ब्रह्मादि तीनों मूर्तियाँ, तीनों व्याहृतियाँ, तीनों छन्द, तीनों वेद (ऋक्, यजु, साम), तीनों स्वर, तीनों अग्नियाँ, तीनों ज्योतिष्मान् (चन्द्र, सूर्य, अग्नि), तीनों काल, तीनों अवस्थाएँ, तीनों आत्मा (क्षर, अक्षर, परमात्मा), तीनों पुण्ड्र (अकार, उकार, मकार) ये सभी प्रणवात्मक तीनों ऊर्ध्वपुण्ड्र के स्वरूप हैं॥ ८॥

तानेकधा समभवत् ऊर्ध्वमुन्नमयत इत्योंकाराधिकारी। तस्मादूर्ध्वपुण्ड्रं धारयेत्॥ ९॥

ऊर्ध्व की ओर उन्नत ये तीनों रेखाएँ एकत्रित होकर ॐकार रूप में अधिकारी हो जाती हैं अर्थात् ये तीनों पुण्ड्र मिलकर ॐकार रूप हो जाते हैं। अतः उस ऊर्ध्वपुण्ड्र को ही धारण करना चाहिए॥ ९॥

परमहंसो ललाटे प्रणवेनैकमूर्ध्वपुण्ड्रं वा धारयेत्॥ १०॥

परमहंस (संन्यासियों की एक श्रेणी) को प्रणव के द्वारा मात्र एक ही ऊर्ध्वपुण्ड्र, ललाट (मस्तक) पर धारण करना चाहिए॥ १०॥

तत्त्वप्रदीपप्रकाशं स्वात्मानं पश्यन्योगी मत्सायुज्यमवाप्नोति॥ ११॥
अथवा न्यस्तहृदयपुण्ड्रमध्ये वा। हृदयकमलमध्ये वा॥ १२॥

वहाँ (मस्तक) पर प्रज्वलित दीपक के प्रकाश के सदृश (योगी) अपने आप पर दृष्टिपात करता हुआ और 'मैं ही ब्रह्म हूँ' ऐसी अवधारणा करता हुआ मेरे सायुज्य पद (मोक्ष) को प्राप्त कर लेता है। इसके पश्चात् अन्य (परमहंस के अलावा) संन्यासीगण अपने हृदय में ऊर्ध्वपुण्ड्र के मध्य में अथवा हृदय कमल के मध्य में अपने आत्मतत्त्व का भावनापूर्वक चिन्तन करें॥ ११-१२॥

तस्य मध्ये वह्निशिखा अणीयोर्ध्वा व्यवस्थिता। नीलतोयदमध्यस्थाविद्युल्लेखेव भास्वरा। नीवारशूकवत्तन्वी परमात्मा व्यवस्थित इति॥ १३॥

उस (हृदय कमल) के मध्य में नीले बादल के बीच में प्रकाशित विद्युल्लता के सदृश अतिसूक्ष्म ऊपर की ओर मुख किये हुए अग्निशिखा अवस्थित है। (वह) नीवार के पीतवर्ण शूक (कोपल मूल) की भाँति अत्यन्त पतली, पीतवर्णमय एवं प्रकाशयुक्त अणु के सदृश है॥ १३॥

अतः पुण्ड्रस्थं हृदयपुण्डरीकेषु तमभ्यसेत्। क्रमादेवं स्वात्मानं भावयेन्मां परं हरिम्॥ १४॥

अतः सर्वप्रथम हृदयक्षेत्र के ऊपर ऊर्ध्वपुण्ड्र में (स्थित अग्निशिखा के मध्य में परमात्मसत्ता का भावनापूर्वक) अभ्यास करना चाहिए। तदुपरान्त हृदय कमल में (उसी तत्त्व का) सतत चिन्तन करते रहना चाहिए। इस तरह क्रमानुसार अपने आत्मस्वरूप का मुझ परमश्रेष्ठ हरिरूप से भावनापूर्वक ध्यान करना चाहिए॥ १४॥

एकाग्रमनसा यो मां ध्यायते हरिमव्ययम्। हृत्पङ्कजे च स्वात्मानं स मुक्तो नात्र संशयः॥ १५॥
मद्रूपमद्वयं ब्रह्म आदिमध्यान्तवर्जितम्। स्वप्रभं सच्चिदानन्दं भक्त्या जानाति चाव्ययम्॥ १६॥

जो मनुष्य मन को एकाग्र करके मुझ अद्वैतरूप श्रीहरि का अपने हृदय-कमल में आत्मरूप से चिन्तन करता है, वह मुक्तात्मा हो जाता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं रहता अथवा जो भक्तिवश हो मेरे अव्यय ब्रह्म, आदि, मध्य एवं अन्त से रहित, स्वयं प्रकाशमय सत्, चित्, आनन्दमय स्वरूप को जान लेता है, वह भी मोक्ष को प्राप्त कर लेता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं रह जाता है॥ १५-१६॥

[भगवान् साधकों को यह निर्देश देते हैं कि उनके अद्वैत रूप पर अपनी आस्था दृढ़ करें, उनके सत्-चित्-आनन्दमयरूप को सर्वत्र देखें और मोक्ष के अधिकारी बनें। किन्तु अधिकांश लोग कर्मकाण्ड और स्थूल स्वरूप पर आस्था बढ़ाते हुए भेद बुद्धि के बन्धन में बँध जाते हैं। ऐसी भूल न होने देना ही साधकों के हित में है।]

एको विष्णुरनेकेषु जङ्गमस्थावरेषु च। अनुस्यूतो वसत्यात्मा भूतेष्वहमवस्थितः॥ १७॥

मैं अकेला एक ही विष्णु विभिन्न रूपों वाले समस्त स्थावर-जंगम भूतों (प्राणियों) में ओत-प्रोत होकर उनके आत्मरूप से उन्हीं में वास करता हूँ॥ १७॥

तैलं तिलेषु काष्ठेषु वह्निः क्षीरे घृतं यथा। गन्धः पुष्पेषु भूतेषु तथात्माऽवस्थितो ह्यहम्॥ १८॥

जिस प्रकार तिल में तेल, काष्ठ में अग्नि, दुग्ध में घृत एवं पुष्प में गंध (संव्याप्त) है, उसी प्रकार उन समस्त प्राणियों में उनके आत्मरूप से मैं उन्हीं में अवस्थित हूँ॥ १८॥

ब्रह्मरन्धे भ्रुवोर्मध्ये हृदये चिद्रविं हरिम्। गोपीचन्दनमालिप्य तत्र ध्यात्वाप्नुयात्परम्॥ १९॥

ब्रह्मरन्ध्र भ्रूमध्य एवं हृदय में चेतना को आलोकित करने वाले श्रीहरि का (निरन्तर) चिन्तन करते रहना चाहिए। उपर्युक्त तीनों स्थानों को गोपीचन्दन से उपलेपित करके तथा वहाँ पर (श्रीहरि का) ध्यान करके साधक परमात्मतत्त्व को प्राप्त कर लेता है॥ १९॥

ऊर्ध्वदण्डोर्ध्वरेताश्च ऊर्ध्वपुण्ड्रोर्ध्वयोगवान्। ऊर्ध्वं पदमवाप्नोति यतिरूर्ध्वचतुष्कवान्॥ २०॥

ऊर्ध्वदण्डी, ऊर्ध्वरेता (ब्रह्मचारी), ऊर्ध्वपुण्ड्र (धारण करने वाले), ऊर्ध्वयोग अर्थात् उत्तम गति प्रदान करने वाले योग की जानकारी रखने वाले संन्यासी ऊर्ध्वपद अर्थात् दिव्यधाम को प्राप्त कर लेते हैं॥ २०॥

इत्येतन्निश्चितं ज्ञानं मद्भक्त्या सिध्यति स्वयम्। नित्यमेकाग्रभक्तिः स्याद्गोपीचन्दनधारणात्॥ २१॥

निश्चय ही इस प्रकार से यह शाश्वत ज्ञान है। यह मेरी भक्ति से स्वयमेव सिद्ध हो जाता है। नित्यप्रति गोपीचन्दन को धारण कर लेने से एकाग्र भक्ति की प्राप्ति होती है॥ २१॥

ब्राह्मणानां तु सर्वेषां वैदिकानामनुत्तमम्। गोपीचन्दनवारिभ्यामूर्ध्वपुण्ड्रं विधीयते॥ २२॥

वैदिक ज्ञान से ओत-प्रोत समस्त उत्तम ब्राह्मणों के लिए जल के साथ मिलाते हुए घिसकर गोपीचन्दन के ऊर्ध्वपुण्ड्र करने का नियम बतलाया गया है॥ २२॥

[अगले मन्त्र में श्रीभगवान् यह स्पष्ट करते हैं कि पदार्थविशेष का महत्त्व कम है, संस्कारित पदार्थों के संसर्ग से अपने अन्दर ऊर्ध्वगमन का संस्कार स्थापित करना अधिक महत्त्वपूर्ण है।]

यो गोपीचन्दनाभावे तुलसीमूलमृत्तिकाम्। मुमुक्षुर्धारयेन्नित्यमपरोक्षात्मसिद्धये॥ २३॥

जो साधक मुमुक्षु है, उसे अपरोक्ष आत्मदर्शन की अभीष्ट सिद्धि हेतु जब पास में गोपीचन्दन उपलब्ध न हो, तब तुलसी की जड़ की मिट्टी से प्रतिदिन (तिलक) धारण करना चाहिए॥ २३॥

अतिरात्राग्निहोत्रभस्मनाग्नेर्भसितमिदं विष्णुस्त्रीणि पदेति मन्त्रैर्वैष्णवगायत्र्या प्रणवेनोद्धूलनं कुर्यात्॥ २४॥

(दिन में तो गोपीचन्दन का ऊर्ध्वपुण्ड्र करे) तथा रात्रिकाल में अग्निहोत्र की भस्म द्वारा 'अग्नेर्भस्मास्यग्नेः पुरीषमसि चितःस्थ परिचितऽऊर्ध्वचितः श्रयद्ध्वम् (वाजसनेयि संहिता १२/४६)' आदि मन्त्र से (भस्म लेकर) इदं विष्णु० आदि मन्त्र द्वारा मलकर एवं 'त्रीणि पदा०' मन्त्र से विष्णुगायत्री द्वारा सम्पूर्ण शरीर में मर्दन करे॥ २४॥

[एक आम मान्यता है कि वैष्णव भक्त चन्दन का तथा शैव भक्त भस्म का प्रयोग करें। इस मन्त्र से स्पष्ट हो जाता है कि ऐसी भेद बुद्धि उचित नहीं है। वैष्णवों को भी भस्म का प्रयोग करना चाहिए। प्रातः चन्दन का ऊर्ध्वपुण्ड्र अपने दिव्य पुरुषार्थ को जाग्रत्-विकसित करने का प्रतीक है, तथा रात्रि में भस्म धारण करना काया की नश्वरता को ध्यान में रखकर-प्रभुचरणों में अपने पुरुषार्थ को समर्पित कर देने की साधना का निर्देशक है।]

एवं विधिना गोपीचन्दनं च धारयेत्॥ २५॥

इस प्रकार उपर्युक्त विधि से गोपीचन्दन को (समस्त शरीर में) धारण करना चाहिए॥ २५॥

यस्त्वधीते वा स सर्वपातकेभ्यः पूतो भवति। पाप बुद्धिस्तस्य न जायते स सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति। स सर्वैर्यज्ञैर्याजितो भवति। स सर्वैर्देवैः पूज्यो भवति। श्रीमन्नारायणे मय्यचञ्चला भक्तिश्च भवति। स सम्यग् ज्ञानं च लब्ध्वा विष्णुसायुज्यमवाप्नोति। न च पुनरावर्तते। न च पुनरावर्तते॥ २६॥ इत्याह भगवान्वासुदेवः॥ २७॥ यस्त्वेतद्वाधीते सोऽप्येवमेव भवतीत्योंसत्यमित्युपनिषत्॥ २८॥

जो साधक इस उपनिषद् का पाठ करता है, वह सभी महान् पातकों से मुक्त हो पूर्ण शुद्ध हो जाता है। उस (साधक) के अन्तःकरण में पाप-बुद्धि प्रकट नहीं होती। वह समस्त तीर्थों में स्नान कर लेता है अर्थात् सभी तीर्थों के पुण्यफल को पा लेता है। वह सम्पूर्ण यज्ञों का यजन करने वाला हो जाता है अर्थात् उनके यजन के फल को प्राप्त कर लेता है। सभी देवों के द्वारा (वह) पूज्य हो जाता है तथा उस साधक की मुझ श्रीमन्नारायण में अचला भक्ति होती है। वह भली-भाँति सद्ज्ञान पाकर भगवान् विष्णु के सायुज्य पद को प्राप्त कर लेता है। उसका पुनरागमन नहीं होता अर्थात् पुनः इस नश्वर जगत् में वह नहीं आता, नहीं आता, ऐसा भगवान् वासुदेव ने कहा है। इसी प्रकार जो साधक इस उपनिषद् का अध्ययन (पाठ) करता है, वह भी ॐकार स्वरूप हो जाता है। ऐसा ही सत्यस्वरूप यह ॐकारमय उपनिषद् है॥ २६-२८॥

॥ ॐ आप्यायन्तु..................इति शान्तिः।

॥ इति वासुदेवोपनिषत्समाप्ता॥

॥ विश्रामोपनिषद् ॥

[प्रस्तुत उपनिषद् में हृदय के अष्टदल कमल में मन की स्थिति का विश्लेषण किया गया है।]

ॐ पूर्वदले श्वेतवर्णे यदा विश्राम्यते मनः। तदा धैर्यमुदारं च धर्मकीर्तिमतिर्भवेत् ॥ १ ॥

(कहते हैं कि) पूर्व दिशा के श्वेतवर्ण वाले दल में जब मन विश्राम करता है, तब धैर्य, उदारता, धर्म तथा कीर्ति के प्रति बुद्धि का रुझान होना चाहिए ॥ १ ॥

अग्निदले रक्तवर्णे यदा विश्राम्यते मनः । तदा क्रोधश्च कामश्च मन्दं बुद्धिर्मतिर्भवेत् ॥ २ ॥

आग्नेय कोण वाले रक्तवर्ण दल में जब मन का विश्राम होता है, तो काम क्रोध का आवेग होता है। बुद्धि मन्द होती है।। २ ॥

कृष्णवर्णे दक्षिणदले यदा विश्राम्यते मनः । निद्रालस्यभयं देवि मत्सरे च मतिर्भवेत् ॥ ३ ॥

कृष्णवर्ण वाले दक्षिण दिशा के दल में जब मन की स्थिति होती है, तो मनुष्य निद्रा-आलस्य-भय से ग्रस्त होता है तथा अन्य लोगों से द्वेषभाव की वृद्धि होती है।। ३ ॥

नैर्ऋतदले नीलवर्णे यदा विश्राम्यते मनः । तदा क्रोधश्च कामश्च मनोभिन्नमतिर्भवेत् ॥ ४ ॥

नैऋत्य कोण के नीलवर्ण वाले दल में जब मन की स्थिति होती है, तब (भी) काम- क्रोध का वेग बढ़ता है तथा मन भी सामान्य से भिन्न बुद्धि वाला हो जाता है।। ४ ॥

पश्चिमदले कपिलवर्णे यदा विश्राम्यते मनः । तदा हास्यविनोदौ च उत्साहे च मतिर्भवेत् ॥ ५ ॥

पश्चिम के कपिल वर्ण वाले दल में जब मन स्थित होता है, तब हास्य- विनोद और साहसिक कार्यों में बुद्धि की प्रवृत्ति होती है।। ५ ॥

श्यामवर्णे वायुदले यदा विश्राम्यते मनः । तदा चिन्तोच्चाटनं च वैराग्ये च मतिर्भवेत् ॥ ६ ॥

वायव्य कोण के श्याम वर्ण वाले दल में जब मन की स्थिति होती है, तब चिन्ता बढ़ती है। उच्चाटन होता है तथा वैराग्य में प्रवृत्ति होती है।। ६ ॥

पीतवर्णोत्तरदले यदा विश्राम्यते मनः । तदा शृंगारभोगौ च कल्पनायां मतिर्भवेत् ॥ ७ ॥

उत्तर दिशा के पीत वर्ण वाले दल में जब मन की स्थिति होती है, तब शृंगार में रुचि होती है। भोग में प्रवृत्ति बढ़ती है तथा बुद्धि कल्पनापरक हो जाती है। (काव्य कला ऐसी बुद्धि की ही देन होती है)।। ७ ।।

गौरवर्णेशानदले यदा विश्राम्यते मनः । तदा कृमात्मानं धर्मकीर्तिमतिर्भवेत् ॥ ८ ॥

ईशान कोण वाले गौरवर्णीय दल में जब मन की स्थिति होती है तब, मनुष्य आत्मदर्शी होने का प्रयास करता है। धार्मिककृत्यों तथा यशोपार्जन में बुद्धि की प्रवृत्ति होती है।। ८ ।।

सन्धौ-सन्धौ मिश्रितानां यदा विश्राम्यते मनः । तदा देहो गृहं राज्यं निर्दोषा च मतिर्भवेत् ॥ ९ ॥

दलों में मिश्रित सन्धियों पर जब मन की स्थिति होती है, तब वह स्वदेह को ही घर और राज्य अनुभव करता है तथा बुद्धि दोषरहित हो जाती है।। ९ ।।

श्यामवर्णे मध्यदले यदा विश्राम्यते मनः । तदा सर्वगुणं ज्ञानं चैतन्यं च मतिर्भवेत् ॥ १० ॥

श्याम वर्ण वाले मध्यदल में जब मन स्थित होता है, तब गुणों में आस्था होती है। ज्ञान-प्राप्ति के प्रति चैतन्य भाव जाग्रत् होता है।। १० ।।

यस्य स्मरणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते । ये पठन्ति सदा भक्त्या सायुज्यपदमाप्नुयुः॥ ११ ॥

जिसके स्मरणमात्र से साधक सब पापों से मुक्त हो जाता है। ऐसे उपनिषद् को जो भक्तिपूर्वक पढ़ते हैं, वे सायुज्य मुक्ति प्राप्त करते हैं।। ११ ।।

॥ इति विश्रामोपनिषत् सम्पूर्णा ॥

॥ श्रीरामोत्तरतापिन्युपनिषद्॥

॥ शान्तिपाठः॥

॥ ॐ भद्रं कर्णेभिः..............इति शान्तिः ॥ (द्रष्टव्य- अथर्वशिखोपनिषद्)

॥ प्रथमः खण्डः ॥

बृहस्पतिरुवाच याज्ञवल्क्यम्-यदनु कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम्॥ १॥

ऋषि बृहस्पति ऋषि याज्ञवल्क्य से बोले— प्राणों का कुरुक्षेत्र (कर्मक्षेत्र) क्या है? देवों के देवयजन का अभिप्राय क्या है ? एवं समस्त प्राणियों का ब्रह्मसदन क्या है ?॥ १॥

अविमुक्तं वै कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम्। तस्माद्यत्र क्वचन गच्छत् तदेव मन्येतेतीदं वै कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम्। अत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे येनासावमृती भूत्वा मोक्षी भवति। तस्मादविमुक्तमेव निषेवेत। अविमुक्तं न विमुञ्चेत्॥ २॥

[अविमुक्त का शब्दार्थ होता है "न विमुक्तः" अर्थात् जो मुक्त नहीं है, बद्ध है। अर्थात् वह क्षेत्र जहाँ रहकर क्रियाशील होने के लिए परमात्मतत्त्व का एक अंश प्रतिबद्ध है। गीता में उल्लेखित कुरुक्षेत्र की आध्यात्मिक व्याख्या जैसा तत्त्वदर्शन ऋषि यहाँ प्रस्तुत करते हैं]

याज्ञवल्क्य ने उत्तर देते हुए कहा— अविमुक्त (तीर्थ या क्षेत्र) ही प्राणों का कुरुक्षेत्र है। उसे ही देवों (इन्द्रियों अथवा देवशक्तियों) का देवयजन कहा गया है और वही समस्त प्राणियों का ब्रह्मसदन है। अस्तु, किसी भी स्थान पर जाने वाले को यही समझना चाहिए कि वही (कुरुक्षेत्र) प्राण-स्थान इन्द्रियों का देवयजन है और समस्त प्राणियों का (ब्रह्मसदन) ब्रह्मस्थान है। जब इस जगत्-जीव के प्राण का उत्क्रमण होता है, उस समय रुद्रदेव तारक ब्रह्म का उपदेश करते हैं, जिससे वह जीव अमृततत्त्व पाकर मोक्ष-पद की प्राप्ति करता है। इसीलिए प्राणी के लिए उचित है कि वह सदैव अविमुक्त क्षेत्र में ही रहे, उसे कभी न छोड़े॥ २॥

एवमेवैतद्याज्ञवल्क्यः॥ ३॥

इस प्रकार ऋषि याज्ञवल्क्य ने यह तथ्य प्रतिपादित किया॥ ३॥

[महर्षि याज्ञवल्क्य ने उपनिषद् के अगले (दूसरे) खण्ड में तारकमन्त्र, तारनहार की व्याख्या की है। तथा तीसरे खण्ड में अविमुक्त क्षेत्र को समझाया है। उसे क्रमशः भू क्षेत्र (भूमि पर) कार्यक्षेत्र (शरीर में) तथा भावक्षेत्र में स्थित कहा है]

॥ द्वितीयः खण्डः ॥

अथ हैनं भरद्वाजः पप्रच्छ याज्ञवल्क्यं-किं तारकं किं तारयतीति॥ १॥

इसके पश्चात् भरद्वाज जी ने याज्ञवल्क्य जी से प्रश्न किया— हे ब्रह्मन्! तारक अर्थात् तारने वाला कौन है और किसको तारता है?॥ १॥

[उपनिषद्कार आगे क्रमशः अष्टाक्षरी तथा षडक्षरी तारक मन्त्रों का उल्लेख करते हैं। अष्टाक्षरी मंत्र 'राम' परक है तथा षडक्षरी ओङ्कार परक। पुनः ऋषि ने राम विग्रह और ओङ्कार की एकरूपता भी प्रदर्शित की है। 'राम' से उनका तात्पर्य किसी इतिहास पुरुष से नहीं; बल्कि अविमुक्त क्षेत्र में रमण करने वाले परमचेतन से है। ओङ्कार भी उसी का बोध कराता है।]

स होवाच याज्ञवल्क्यः- तारकं दीर्घानलं बिन्दुपूर्वकं दीर्घानलं पुनारामाय नमश्चन्द्राय नमो भद्राय नम इत्येतद्ब्रह्मात्मकाः सच्चिदानन्दाख्या इत्युपासितव्यम्॥ २॥

महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा— तारक (मन्त्र) दीर्घ आकार युक्त अनल (रेफ रकार) बिन्दु अर्थात् अनुस्वार से पहले स्थित हो। तत्पश्चात् दीर्घ-आकारयुक्त अनल (रेफ रा) हो, पुनः 'माय नमः' ये दो पद हों। इस तरह ''रां रामाय नमः'' यह तारक ब्रह्म षडक्षर मन्त्र के रूप में कहा गया है। इसी के साथ 'राम' इस पद के सहित 'चन्द्राय नमः' और 'भद्राय नमः' ये दोनों अर्थात् 'रां रामचन्द्राय नमः' 'रां रामभद्राय नमः' यह अष्टाक्षर मन्त्र भी तारक मंत्र कहा गया है। इसलिए इस ब्रह्ममय सत्, चित्, आनन्द रूप धारण करने वाले तारक मन्त्र की सदैव उपासना करनी चाहिए॥ २॥

अकारः प्रथमाक्षरो भवति। उकारो द्वितीयाक्षरो भवति। मकारस्तृतीयाक्षरो भवति। अर्धमात्रश्चतुर्थाक्षरो भवति। बिन्दुः पञ्चमाक्षरो भवति। नादः षष्ठाक्षरो भवति। तारकत्वात्तारको भवति। तदेव तारकं ब्रह्म त्वं विद्धि। तदेवोपासितव्यमिति ज्ञेयम्। गर्भजन्मजरामरणसंसारमहद्भयात् संतारयतीति। तस्मादुच्यते षडक्षरं तारकमिति॥ ३॥

तारण करने वाले ॐकार का प्रथमाक्षर अकार, द्वितीयाक्षर उकार, तृतीयाक्षर मकार है। अर्धमात्रा चौथा अक्षर, बिन्दु (अनुस्वार) पञ्चमाक्षर (तथा) नाद को छठा अक्षर कहा गया है। इस प्रकार यह षडक्षर मन्त्र, तारक मंत्र अर्थात् तारने वाला कहा गया है। इसलिए इस तारक मंत्र की तुम सदैव उपासना करो। यह गर्भ, जन्म, जरा (बुढ़ापा), मृत्यु एवं संसार के महाभयों से तार (मुक्त कर) देता है। इसी कारण इस षडक्षर मंत्र को तारक मंत्र कहते हैं॥ ३॥

['रां' के उच्चारण से भी ॐ के उच्चारण जैसे ही ध्वनि कम्पन एवं भाव संवेग उत्पन्न होते हैं। मंत्र रूप में इनके उपयोग के लिए स्वर एवं भाव सधे हुए सर्वाङ्गपूर्ण होने चाहिए, उनका वाञ्छित प्रभाव होता है]

य एतत्तारकं ब्रह्म ब्राह्मणो नित्यमधीते स पाप्मानं तरति स मृत्युं तरति स ब्रह्महत्यां तरति स भ्रूणहत्यां तरति स वीरहत्यां तरति स सर्वहत्यां तरति स संसारं तरति स सर्वं तरति सोऽविमुक्तमाश्रितो भवति स महान् भवति सोऽमृतत्वं च गच्छति॥ ४॥

इस तारकब्रह्म-मंत्र का जो ब्राह्मण नित्य जप करता है, वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। वह मृत्यु पर विजयी होता है, वह ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है। वह भ्रूणहत्या के पाप से मुक्त हो जाता है। वह वीर (भ्रातृ) हत्या दोष से भी मुक्त हो जाता है। वह समस्त प्रकार की हत्याओं के दोष से मुक्त होकर संसार- सागर से पार जाकर सबसे मुक्त हो जाता है। वह सदैव अविमुक्त क्षेत्र (काशी) के आश्रित होकर महान् हो जाता है तथा अमृतत्व को प्राप्त हो जाता है॥ ४॥

अत्रैते श्लोका भवन्ति-

अकाराक्षरसंभूतः सौमित्रिर्विश्वभावनः। उकाराक्षरसंभूतः शत्रुघ्नस्तैजसात्मकः॥ ५॥

इस विषय में इन श्लोकों में कहा भी गया है– प्रणव ॐकार के अकार अक्षर से सौमित्र लक्ष्मण जी प्रकट हुए हैं, (जाग्रत्) विश्व के रूप में इनकी भावना करनी चाहिए। परम तेजोरूप स्वप्न के अभिमानी देव शत्रुघ्न जी प्रणव के 'उ' कार अक्षर से प्रादुर्भूत हुए हैं॥ ५॥

प्राज्ञात्मकस्तु भरतो मकाराक्षरसंभवः। अर्धमात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैकविग्रहः॥ ६॥

महाप्राज्ञरूप सुषुप्ति के अभिमानी देव भरत जी प्रणव के मकार अक्षर से प्रकट हुए। प्रणव की अर्धमात्रा से साक्षात् आनन्द विग्रह के रूप में भगवान् श्रीराम प्रकट हुए हैं। तुरीयावस्था में अनुभव करने योग्य परम पुरुष पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम ही हैं॥ ६॥

श्रीरामसान्निध्यवशाज्जगदाधारकारिणी। उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी सर्वदेहिनाम्॥ ७॥

जो भगवान् श्रीराम के सान्निध्यमात्र से सम्पूर्ण जगत् का आधार बनकर उत्पत्ति, पालन एवं संहार करती हैं और सम्पूर्ण देहधारियों को आनन्द प्रदान करने वाली हैं, वे प्रणव में स्थित नाद-बिन्दुस्वरूपा भगवती सीता हैं॥ ७॥

सा सीता भवति ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिका। प्रणवत्वात् प्रकृतिरिति वदन्ति ब्रह्मवादिनः॥ ८॥

ब्रह्मवादी- जन उन्हें (सीताजी को) प्रणव से अभिन्न 'प्रकृति' के रूप में कहते हैं। वे भगवती सीताजी 'मूल प्रकृति' के नाम से जानने योग्य हैं॥ ८॥

ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भव्यं भविष्यदिति सर्वमोंकार एव। यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव। सर्वं ह्येतद्ब्रह्म। अयमात्मा ब्रह्म। सोऽयमात्मा चतुष्पात्॥ ९॥

ॐ यह अक्षर-अविनाशी (ब्रह्म का प्रतीक) है, उसकी महिमा को प्रकट करने वाला यह विश्व ब्रह्माण्ड है। भूत, भविष्यत् और वर्तमान-तीन कालों वाला यह संसार भी ॐकार ही है और तीन कालों से अन्य जो भी तत्त्व है, वह भी ॐकार ही है। यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मरूप ही है, आत्मा भी ब्रह्मरूप ही है। वह (ब्रह्म) और यह (आत्मा) चार चरण वाला (अर्थात्- स्थूल या प्रत्यक्ष, सूक्ष्म, कारण एवं अव्यक्त रूपों में प्रभावी) है॥ ९॥

जागरितस्थानो बहिःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः॥ १०॥

अगले मंत्रों में चारों चरणों के स्थान और गुण-धर्मों को व्यक्त किया गया है-

प्रथम चरण स्थूल-वैश्वानर (स्थूल विश्व का संचालक) है, जो जाग्रत् स्थान (जाग्रदवस्था) में रहने वाला, बहिष्प्रज्ञ (बाहर का बोध कराने वाला) तथा सात अंगों (सप्त लोकों या सप्त किरणों से युक्त) उन्नीस मुखों (दस इन्द्रियाँ, पाँच प्राण तथा अन्त:करण चतुष्टय) वाला तथा स्थूल का भोक्ता है॥ १०॥

स्वप्नस्थानोऽन्तः प्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः प्रविविक्तभुक् तैजसो द्वितीयः पादः॥ ११॥

स्वप्न के सदृश अव्यक्त विश्व जिसका अधिष्ठान (स्थान-स्वप्नावस्था) है, जिसके द्वारा अदृश्य लोक का ज्ञान अंत:चक्षुओं से होता है, जो सूक्ष्म विषयों (वासनादि) का भोक्ता है और ज्योतिर्मय है, वही तैजस (ब्रह्म या आत्मा का) द्वितीय चरण है॥ ११॥

यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते न कंचन स्वप्नं पश्यति तत् सुषुप्तम्। सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक् चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः॥ १२॥

जिस अवस्था में प्रसुप्त मनुष्य किसी भोग की कामना नहीं करता और न ही स्वप्न देखता है, ऐसी सुषुप्त-अवस्था में जो एकाग्रवृत्ति वाला, प्रकृष्ट ज्ञानस्वरूप और आनन्दरूप ही रहता है एवं जो एकमात्र आनन्द का ही भोक्ता है, जिसका मुख तेजोमय चैतन्यरूप है, वह 'प्राज्ञ' ही ब्रह्म का तृतीय चरण है॥ १२॥

एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम्॥ १३॥

वह ब्रह्म ही सबका ईश्वर है, वह सर्वज्ञ, अंतर्यामी और सम्पूर्ण जगत् का कारणभूत है। वही सब भूतों की उत्पत्ति, स्थिति तथा विनाश का कारण है॥ १३॥

नान्तःप्रज्ञं न बहिःप्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञं नाप्रज्ञं न प्रज्ञानघनमदृश्यमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्म प्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः॥ १४॥

जो अंत: अथवा बाह्य प्रज्ञा वाला नहीं है, जो दोनों ओर की प्रज्ञा वाला नहीं है, जो प्रकृष्ट ज्ञानपुञ्ज नहीं है, न ज्ञानरूप है, न अज्ञान ही है, जो ज्ञानेन्द्रियगम्य नहीं है, जो कर्मेन्द्रियगम्य भी नहीं है, जो क्रियारहित है, जो प्रतीकों से भिन्न है, जो चिन्तन की सीमा से परे तथा कथन की सीमा से भी परे है, जो एकमात्र अनुभवगम्य है, जो सम्पूर्ण प्रपञ्चों का लयस्थान है, जो शान्तस्वरूप, कल्याणकारी और अद्वैतरूप है, वही ब्रह्म का चतुर्थ चरण है, वही आत्मा (या परमात्मा) है, वही जानने योग्य है॥ १४॥

सदोज्ज्वलोऽविद्यातत्कार्यहीनः स्वात्मबन्धहरः सर्वदा द्वैतरहित आनन्दरूपः सर्वाधिष्ठानसन्मात्रो निरस्ताविद्यातमोमोहोऽहमेवेति संभाव्योऽहम्॥ १५॥

वे परात्पर ब्रह्म परमात्मा (श्रीराम) सदैव परम उज्ज्वल कीर्ति से सुशोभित अविद्या एवं उसके द्वारा कार्य-व्यापार से मुक्त, अपने आत्मीयों (भक्तों) के बन्धनों को भी मुक्त करने वाले हैं। वे सर्वदा अद्वैत (एकरस) साक्षात् आनन्दमूर्ति हैं। वे भगवान् सर्वाधिष्ठातृ, सर्वसत्तासीन, अविद्या एवं मोह के अंधकार से मुक्त हैं। उनकी शरण में जाने से मानव इन अंधकारों से मुक्त हो जाता है॥ १५॥

ओं तत् सद्यत् परं ब्रह्म रामचन्द्रश्चिदात्मकः। सोऽहमोन्तद्रामभद्रपरं ज्योती रसोऽहमोम्॥ १६॥

ॐ तत्, सत्, यत्, परं एवं ब्रह्म आदि नामों के द्वारा जिन चिदानन्द भगवान् श्रीरामचन्द्र जी की गाथा गाई गई है, मैं उनका ही स्वरूप हूँ, ऐसा अनुभव करना चाहिए। जो श्रीराम भद्र ओंकारस्वरूप सच्चिदानन्दमय परम प्रकाशित हैं, मैं वही हूँ, मैं वही हूँ, ऐसा बार-बार चिन्तन करे॥ १६॥

इत्यात्मानमादाय मनसा ब्रह्मणैकीकुर्यात्॥ १७॥

इस तरह मन के द्वारा अपने को भगवान् के सामने लाकर भगवान् श्रीराम से एकाकार हो जाये॥ १७॥

सदा रामोऽहमस्मीति तत्त्वतः प्रवदन्ति ये। न ते संसारिणो नूनं राम एवं न संशयः॥ १८॥

जो सदैव भगवत्तत्त्व को यथार्थ रूप से जानते हुए, 'मैं सीता-राम हूँ' यह कहते हैं, वे निश्चित ही भगवान् के स्वरूप हैं, संसारी नहीं हैं, इसमें कोई संदेह नहीं करना चाहिए॥ १८॥

इत्युपनिषत्। य एवं वेद स मुक्तो भवतीति याज्ञवल्क्यः॥ १९॥

यह उपनिषद् है, इस प्रकार जानने वाला मुक्त हो जाता है, ऐसा याज्ञवल्क्य जी ने कहा ॥ १९॥

॥ तृतीयः खण्डः ॥

अथ हैनमत्रिः पप्रच्छ याज्ञवल्क्यं - य एषोऽनन्तोऽव्यक्तपरिपूर्णानन्दैकचिदात्मा तं कथमहं विजानीयामिति॥ १॥

इसके पश्चात् ब्रह्मपुत्र अत्रि मुनि ने महर्षि याज्ञवल्क्य से पूछा– हे मुने! इस अव्यक्त अनन्त आनन्द से परिपूर्ण आत्मा (परमात्मा) को कैसे जानें?॥ १॥

स होवाच याज्ञवल्क्यः-सोऽविमुक्त उपास्यो य ऐषोऽनन्तोऽव्यक्त आत्मा सोऽविमुक्ते प्रतिष्ठित इति॥ २॥

तब उन प्रसिद्ध ऋषि याज्ञवल्क्य ने कहा– जो अविमुक्त क्षेत्र की उपासना करता है, वह उस अनन्त और अव्यक्त आत्मा को प्राप्त करता है; क्योंकि वह अविमुक्त क्षेत्र में प्रतिष्ठित है॥ २॥

सोऽविमुक्तः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति॥ ३॥

पुनः अत्रि मुनि ने प्रश्न किया– वह अविमुक्त क्षेत्र कहाँ प्रतिष्ठित है?॥ ३॥

वरणायां नास्यां च मध्ये प्रतिष्ठित इति॥ ४॥

(उन्होंने कहा) वरणा एवं नासा के बीच में अविमुक्त क्षेत्र स्थित है॥ ४॥

का वै वरणा का च नासीति॥ ५॥

प्रश्न– यह वरणा क्या है? तथा नासा किसे कहते हैं?॥ ५॥

जन्मान्तरकृतान् सर्वान् दोषान् वारयतीति तेन वरणा भवतीति। सर्वानिन्द्रियकृतान् पापान् नाशयतीति तेन नासी भवतीति॥ ६॥

उत्तर– जन्म-जन्मान्तरों के किये हुए समस्त दोषों का जो वारण (निवारण) करती है, उसे वरणा कहते हैं और समस्त इन्द्रियों के द्वारा किये हुए पापों का जो नाश करती है, उसे 'नासी' कहते हैं॥ ६॥

कतमं चास्य स्थानं भवतीति॥ ७॥

प्रश्न– इस अविमुक्त क्षेत्र का स्थान कहाँ है?॥ ७॥

भ्रुवोर्घ्राणस्य च यः सन्धिः स एष द्यौर्लोकस्य परस्य च सन्धिर्भवतीति। एतद्वै सन्धि सन्ध्यां ब्रह्मविद उपासत इति। सोऽविमुक्त उपास्य इति। सोऽविमुक्तं ज्ञानमाचष्टे यो वा एतदेवं वेद॥ ८॥

उत्तर– जो नासिका एवं भौंहों की संधि का स्थल है, उसे द्युलोक एवं परम प्रकाशमय परमधाम का संधि-स्थल कहा गया है। ब्रह्मज्ञानी पुरुष इस संधि-स्थल की ही 'संध्या' के रूप में (संध्याकाल-संध्यावन्दन रूप में) उपासना करते हैं। **[काया में यह स्थल नासामूल (नाक से ऊपरी अन्तरंग भाग) और भ्रूमध्य (आज्ञाचक्र) का सन्धिस्थल सिद्ध होता है। आज्ञाचक्र तृतीय नेत्र काम का दहन करने वाला, पूर्व जन्मों की वासनाओं को समाप्त कर देने वाला तारणकर्ता है। नासामूल जहाँ श्वास लेते समय प्राण के ऊर्ध्वगमन का बोध होता है, वह नासी है। प्राणप्रवाह जब ऊर्ध्वगामी हो उठता है, तो इन्द्रियों के हीन रस-पाप आदि नष्ट हो जाते हैं। काया में यह क्षेत्र उक्त सन्धिस्थल है। आध्यात्मिक अर्थों में जहाँ शिवदृष्टि-शिव सङ्कल्प तथा प्राण-पुरुषार्थ एक हो जाते हैं, वहाँ अविमुक्तभाव क्षेत्र बनता है। भू क्षेत्र में इसे वरणा और उसी के बीच के भूमिखण्ड वाराणसी या काशी रूप में जाना जाता है।]**

इसलिए वह अविमुक्त क्षेत्र ही मुख्य रूप से उपासना करने योग्य है। उस अविमुक्त क्षेत्र में स्थित ज्योतिलिङ्गरूपी परमात्मा ही साधक को शाश्वत ज्ञान का उपदेश करता है; क्योंकि वह अनन्त, अविनाशी, अव्यक्त, परिपूर्णानन्द परमात्मा चिन्मय विग्रह के रूप में अविमुक्त क्षेत्र में नित्य प्रतिष्ठित है॥ ८॥

इसके पश्चात् महर्षि याज्ञवल्क्य ने यह उपाख्यान वर्णित किया–

मुमूर्षूणां शिवकृतरामतारकोपदेशः

अथ तं प्रत्युवाच–

श्रीरामस्य मनुं काश्यां जजाप वृषभध्वजः। मन्वन्तरसहस्रैस्तु जपहोमार्चनादिभिः॥ ९॥
ततः प्रसन्नो भगवान् श्रीरामः प्राह शंकरम्। वृणीष्व यदभीष्टं तद्दास्यामि परमेश्वर॥ इति॥ १०॥

एक बार काशी-अधिपति भगवान् शंकर ने एक सहस्र मन्वन्तर तक होम अर्चन एवं मंत्र जप के द्वारा भगवान् श्रीराम की आराधना की। भगवान् श्रीराम उस उपासना से प्रसन्न हुए और उन्होंने भगवान् शंकर जी से कहा कि हे परमेश्वर! जो आपकी इच्छा हो, वह वरदान माँगो, मैं देने के लिए तैयार हूँ॥ ९-१०॥

अथ सच्चिदानन्दात्मानं श्रीराममीश्वरः पप्रच्छ-
मणिकर्ण्यां मम क्षेत्रे गङ्गायां वा तटे पुनः।
म्रियते देहि तज्जन्तोर्मुक्तिं नातो वरान्तरम्॥ ११॥

तब सच्चिदानन्द भगवान् शंकर ने भगवान् श्रीरामचन्द्र जी से कहा– मेरे क्षेत्र काशी में मणिकर्णिका तीर्थ में अथवा गंगाजी के किनारे जो भी प्राणों का विसर्जन करे, आप उसे मुक्ति प्रदान करें, मुझे यही वरदान चाहिए॥ ११॥

स होवाच श्रीरामः-
क्षेत्रेऽस्मिंस्तव देवेश यत्र कुत्रापि वा मृताः। कृमिकीटादयोऽप्याशु मुक्ताः सन्तु न चान्यथा॥ १२॥

तब सच्चिदानन्द भगवान् शंकर से भगवान् श्रीरामचंद्र जी ने कहा– हे देवेश्वर! तुम्हारे इस परम पावन तीर्थ में यदि कोई भी जीव-जन्तु, कीड़े-मकोड़े, शरीर छोड़ेंगे, तो वे तत्काल मुक्ति को प्राप्त हो जायेंगे। इसमें कोई संशय नहीं है॥ १२॥

अविमुक्ते तव क्षेत्रे सर्वेषां मुक्तिसिद्धये। अहं संनिहितस्तत्र पाषाणप्रतिमाऽऽदिषु॥ १३॥

समस्त जीवों की मुक्ति की सिद्धि के लिए तुम्हारे इस अविमुक्त क्षेत्र में पाषाण मूर्ति आदि के रूप में मैं सदैव विद्यमान रहूँगा॥ १३॥

क्षेत्रेऽस्मिन् योऽर्चयेद्भक्त्या मन्त्रेणानेन मां शिव।
ब्रह्महत्याऽऽदिपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥ १४॥

हे शिवजी! इस (अविमुक्त) क्षेत्र में जो मेरे तारक मंत्र (अष्टाक्षरी या षडाक्षरी मंत्र) के द्वारा मेरा पूजन अर्चन करेगा, मैं उसको ब्रह्महत्यादि दोषों से मुक्त (पवित्र) कर दूँगा। इसमें कोई शंका नहीं करनी चाहिए॥ १४॥

त्वत्तो वा ब्रह्मणो वाऽपि ये लभन्ते षडक्षरम्।
जीवन्तो मन्त्रसिद्धाः स्युर्मुक्ता मां प्राप्नुवन्ति ते॥ १५॥

जो कोई तुम्हारे या ब्रह्माजी के मुख से मेरे इस षडक्षर मंत्र को प्राप्त करते हैं, उन्हें इस जन्म में मंत्र सिद्धि प्राप्त होती है तथा मृत्यु के पश्चात् वे मुक्ति को प्राप्त हो जाते हैं (जन्म-मरण के बन्धन से छूट जाते हैं)॥ १५॥

मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम्।
उपदेक्ष्यसि मन्मन्त्रं स मुक्तो भविता शिव॥ १६॥ इति श्रीरामचन्द्रेणोक्तम्॥

हे शिव! मेरे इस मंत्र को जिस किसी मरणासन्न जीव के दाहिने कान में तुम स्वयं उपदेश करोगे, वह निश्चित रूप से आवागमन से मुक्त हो जायेगा॥ १६॥ ऐसा श्रीरामचन्द्र जी ने कहा।

[परब्रह्मरूप श्रीराम इस मन्त्र को तभी प्रभावी मानते हैं, जब वह ब्रह्माजी अथवा शिव जी के मुख से प्राप्त हो। ब्रह्मा सृजनकर्त्ता हैं। वे किसी सृजनशील से ही प्रसन्न होकर उसे मन्त्र दे

सकते हैं। शिव कल्याणरूप हैं। वे कल्याणकारी प्रयोजनों में निष्ठापूर्वक लगे हुए साधकों पर प्रसन्न होते हैं, उन्हीं को मन्त्र उपदेश करते हैं। इस रहस्य को समझकर उनकी कसौटी पर खरा सिद्ध होने वाला ही तारक मन्त्र का वास्तविक लाभ प्राप्त कर सकता है। उपनिषद् के पञ्चम खण्ड में वर्णित माहात्म्य का लाभ उन्हें ही प्राप्त होता है।]

॥ चतुर्थः खण्डः ॥

अथ हैनं भरद्वाजो याज्ञवल्क्यमुवाच- अथ कैर्मन्त्रैः स्तुतः श्रीरामचन्द्रः प्रीतो भवति स्वात्मानं दर्शयति तान्नो ब्रूहि भगवन्निति।

स होवाच याज्ञवल्क्यः- पूर्वं सत्यलोके श्रीरामचन्द्रेणैवं शिक्षितो ब्रह्मा पुनरेतया गाथया नमस्करोति-

विश्वरूपधरं विष्णुं नारायणमनामयम्।
पूर्णानन्दैकविज्ञानं परंब्रह्मस्वरूपिणम्॥
मनसा संस्मरन् ब्रह्मा तुष्टाव परमेश्वरम्॥

ॐ यो ह वै श्रीरामचन्द्रः स भगवानद्वैतपरमानन्द आत्मा यत् परं ब्रह्म भूर्भुवः सुवस्तस्मै वै नमो नमः॥ १॥ [ज्ञातव्यौ यथा प्रथममन्त्रोक्तावद्यन्तौ तथा सर्वमन्त्रेषु] ... यश्चाखण्डैकरसात्मा ... ॥ २॥ .....यच्च ब्रह्मानन्दामृतम्... ॥ ३॥ ......यत्तारकं ब्रह्म .... ॥ ४॥ ...यो ब्रह्मा विष्णुर्महेश्वरो यः सर्वदेवात्मा .... ॥ ५॥ ....ये सर्वे वेदाः साङ्गाः सशाखाः सेतिहासपुराणाः ... ॥ ६॥ ...यो जीवान्तरात्मा .... ॥ ७॥ ....यः सर्वभूतान्तरात्मा .... ॥ ८॥ ....ये देवासुरमनुष्यादिभावाः ..... ॥ ९॥ ...... ये मत्स्यकूर्माद्यवताराः ..... ॥ १०॥ ... योऽन्तःकरणचतुष्टयात्मा ..... ॥ ११॥ ....यश्च प्राणः .... ॥ १२॥ .....यश्च यमः .... ॥ १३॥ ....यश्चान्तकः ..... ॥ १४॥ ....यश्च मृत्युः ... ॥ १५॥ ....यश्चामृतम् .... ॥ १६॥ ....यानि च पञ्च महाभूतानि .... ॥ १७॥ .... यः स्थावरजङ्गमात्मा .... ॥ १८॥ ....ये पञ्चाग्नयः .... ॥ १९॥ ....याः सप्त महाव्याहृतयः .... ॥ २०॥ ... या विद्या ... ॥ २१॥ .... या सरस्वती .... ॥ २२॥ ....या लक्ष्मीः ..... ॥ २३॥ .... या गौरी .... ॥ २४॥ ....या जानकी......... ॥ २५॥ ..... यच्च त्रैलोक्यम् .... ॥ २६॥ .....यः सूर्यः .... ॥ २७॥ ....यः सोमः .... ॥ २८॥ ....यानि च नक्षत्राणि ..... ॥ २९॥ ....ये च नवग्रहाः ..... ॥ ३०॥ .....ये चाष्टौ लोकपालाः .... ॥ ३१॥ ..... ये चाष्टौवसवः....... ॥ ३२॥ ......ये चैकादशरुद्राः ..... ॥ ३३॥ .....ये च द्वादशादित्याः ..... ॥ ३४॥ .... यच्च भूतं भव्यं भविष्यत् .... ॥ ३५॥ .....यद्ब्रह्माण्डस्य बहिर्व्याप्तम् ..... ॥ ३६॥ ....यो हिरण्यगर्भः .... ॥ ३७॥ ...... या प्रकृतिः .... ॥ ३८॥ .... यश्चोंकारः ..... ॥ ३९॥ ....याश्चतस्त्रोऽर्धमात्राः .... ॥ ४०॥ ..... यः परमपुरुषः ..... ॥ ४१॥ ......यश्च महेश्वरः .... ॥ ४२॥ ....यश्च महादेवः ... ॥ ४३॥ .....य ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ..... ॥४४॥ .....यो

महाविष्णु: .... ॥ ४५ ॥ ...य: परमात्मा .... ॥ ४६ ॥ ....यो विज्ञानात्मा .... ॥ ४७ ॥

ॐ यो ह वै श्रीरामचन्द्र: स भगवानद्वैतपरमानन्द आत्मा य: सच्चिदानन्दाद्वैतैकचिदात्मा भूर्भुव: सुवस्तस्मै वै नमो नम: ॥ इति ॥

तान् ब्रह्माऽब्रवीत्- सप्तचत्वारिंशन्मन्त्रैर्नित्यं देवं स्तुध्वम्। ततो देव: प्रीतो भवति। स्वात्मानं दर्शयति। तस्माद्य एतैर्मन्त्रैर्नित्यं देवं स्तौति स देवं पश्यति सोऽमृतत्वं च गच्छतीति महोपनिषत् ॥

इसके पश्चात् प्रसिद्ध ऋषि याज्ञवल्क्य जी से भरद्वाज जी ने प्रश्न किया– हे भगवन्! श्रीरामचन्द्र जी किन मंत्रों से प्रार्थना करने पर प्रसन्न होकर अपने स्वरूप का साक्षात् दर्शन देते हैं। आप हमें उन मंत्रों का उपदेश करें। तब उन प्रसिद्ध याज्ञवल्क्य जी ने कहा– हे ब्रह्मन्! पूर्वकाल में सत्यलोक में भगवान् श्रीरामचन्द्र जी ने भगवान् शिव जी से जो कथा कही थी, पुन: उनने ब्रह्माजी को भी उसी तरह का उपदेश किया था। उनसे दीक्षित होकर ब्रह्मा जी ने निम्न गद्यमय मंत्रों से स्तुति की थी।

जो परम प्रकाशमय विश्वरूप धारण करने वाले हैं, विज्ञानघन, रोग-शोकादिरहित पूर्णानन्द नारायण हैं, भगवान् ब्रह्माजी ने उन परमपिता परमेश्वर की मन ही मन प्रार्थना करते हुए इस प्रकार स्तुति की-

ॐ जो जगत्प्रसिद्ध श्रीरामचन्द्र जी हैं, वे निश्चित ही भगवान् (षड्विध ऐश्वर्य से सम्पन्न) हैं, अद्वितीय परमानन्द स्वरूप हैं। जो परं ब्रह्म भूर्भुव: स्व: में व्याप्त हैं, उनको मेरा बारम्बार नमन है ॥ १ ॥

जो श्रीरामचन्द्र अखण्डैक रस आत्मस्वरूप हैं। जो भूर्भुव: स्व: में व्याप्त हैं, उनको मेरा बारम्बार नमन है ॥ २ ॥

जो श्रीरामचन्द्र साक्षात् ब्रह्मानन्दरूप अमृत हैं। भूर्भुव: स्व: में व्यापक, उनको मेरा बारम्बार नमन है ॥ ३ ॥

जो श्रीरामचन्द्र स्वयं तारक ब्रह्म हैं। भूर्भुव: स्व: में समाये हैं, उनको मेरा बारम्बार नमन है ॥ ४ ॥

जो श्रीरामचन्द्र ही ब्रह्मा, विष्णु, महेशस्वरूप हैं, जो सब देवों की आत्मा हैं, भूर्भुव: स्व: में व्याप्त हैं, उनको मेरा बारम्बार नमन है ॥ ५ ॥

जो श्रीरामचन्द्र हैं, वही भगवान् हैं। वे ही सारे वेद-शास्त्र-पुराण स्वरूप हैं अर्थात् सब वाणियाँ उनकी हैं। भूर्भुव: स्व: में व्याप्त हैं, उनको मेरा बारम्बार नमन है ॥ ६ ॥

वे श्रीरामचन्द्र ही सब जीवों की आत्मा हैं। भूर्भुव: स्व: में समाये, उनको मेरा बारम्बार नमन है ॥ ७ ॥

वे श्रीरामचन्द्र भगवान् सब प्राणियों के अन्त:करण में स्थित हैं। उन भूर्भुव: स्व: में व्याप्त को मेरा बारम्बार नमन है ॥ ८ ॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र देव, असुर एवं मनुष्य रूपों में विद्यमान हैं। भूर्भुव: स्व: में व्यापक, उनको मेरा बारम्बर नमन है ॥ ९ ॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र मत्स्य, कूर्म, वराहादि अवतारों में प्रकट हुए हैं। भूर्भुव: स्व: में व्याप्त, उनको मेरा बारम्बार नमन है ॥ १० ॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र अन्त:करण चतुष्टय (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) स्वरूप हैं। भूर्भुव: स्व: में व्याप्त, उनको मेरा बारम्बार नमन है ॥ ११ ॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र प्राणियों के प्राणस्वरूप हैं। भूर्भुव: स्व: में व्याप्त उनको मेरा बारम्बार नमन है ॥ १२ ॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र ही यमस्वरूप हैं। भूर्भुव: स्व: में व्याप्त उनको मेरा बारम्बार नमन है ॥ १३ ॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र अन्तक रूप में स्थित हैं। भूर्भुव: स्व: में व्याप्त उनको मेरा बारम्बार नमन है ॥ १४ ॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र मृत्यु रूप में कार्यरत हैं। भूर्भुव: स्व: में व्याप्त उनको मेरा बारम्बार नमन है ॥ १५ ॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र अमृतस्वरूप हैं। भूर्भुव: स्व: में व्याप्त उनको मेरा बारम्बार नमन है ॥ १६ ॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र ही पञ्चमहाभूतों में विद्यमान हैं। भूर्भुव: स्व: में व्याप्त उनको मेरा बारम्बार नमन है ॥ १७ ॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्रजी स्थावर-जंगम प्राणियों में विद्यमान हैं तथा जो भूर्भुवः स्वः में भी समाये हैं, उनको मेरा बारम्बार नमन है ॥ १८ ॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र पंचाग्निस्वरूप हैं। भूर्भुवः स्वः में व्याप्त, उनको मेरा बारम्बार नमन है ॥ १९ ॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र सप्तमहाव्याहृतियों में विद्यमान हैं। भूर्भुवः स्वः में व्याप्त, उनको बारम्बार नमन है॥ २० ॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र ही विद्यास्वरूप हैं। भूर्भुवः स्वः में व्याप्त, उन श्रीरामचन्द्र को मेरा बारम्बार नमन है॥ २१ ॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र सरस्वतीस्वरूप हैं। भूर्भुवः स्वः में व्याप्त, उनको मेरा बारम्बार नमन है ॥ २२ ॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र लक्ष्मीस्वरूप हैं। भूर्भुवः स्वः में व्याप्त, उनको मेरा बारम्बार नमन है ॥ २३ ॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र ही गौरीस्वरूप हैं। भूर्भुवः स्वः में व्याप्त, उनको मेरा बारम्बार नमन है ॥ २४ ॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र ही जानकीस्वरूप हैं। भूर्भुवः स्वः में व्याप्त, उनको मेरा बारम्बार नमन है ॥ २५ ॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र त्रिलोकीस्वरूप हैं। भूर्भुवः स्वः में व्याप्त, उनको मेरा बारम्बार नमन है ॥२६ ॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र जी सूर्यरूप में प्रकाशमान हैं। भूर्भुवः स्वः में व्याप्त, उनको मेरा बारम्बार नमन है॥ २७ ॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र ही सोम अर्थात् चन्द्रमारूप से प्रकाशमान हैं। भूर्भुवः स्वः में व्याप्त, उनको मेरा बारम्बार नमन है ॥ २८ ॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र सब नक्षत्रों के रूप में प्रकाशमान हैं। भूर्भुवः स्वः में व्याप्त, उनको मेरा बारम्बार नमन है ॥ २९ ॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र नवग्रहरूप में विद्यमान हैं। भूर्भुवः स्वः में व्याप्त, उनको मेरा बारम्बार नमन है॥ ३० ॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र आठ-लोकपालों के रूप में विद्यमान हैं। भूर्भुवः स्वः में व्याप्त, उनको मेरा बारम्बार नमन है ॥ ३१ ॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र आठ-वसुओं के रूप में विद्यमान हैं। भूर्भुवः स्वः में व्याप्त, उनको मेरा बारम्बार नमन है ॥ ३२ ॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र एकादश-रुद्ररूप से विद्यमान हैं। भूर्भुवः स्वः में व्याप्त, उनको मेरा शतशः नमन है ॥ ३३ ॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र बारह आदित्यरूप में विद्यमान हैं। उन भूर्भुवः स्वः में व्याप्त श्रीरामचन्द्रजी को मेरा बारम्बार नमन है ॥ ३४ ॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र भूत-भव्य (वर्तमान)-भविष्यत् के रूप में विद्यमान हैं। भूर्भुवः स्वः में व्याप्त, उनको बारम्बार नमन करता हूँ ॥ ३५ ॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र ब्रह्माण्ड के अन्दर-बाहर व्याप्त हैं। भूर्भुवः स्वः में व्याप्त, उनको मेरा बारम्बार नमन है ॥ ३६ ॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र ही हिरण्यगर्भरूप से जाने जाते हैं। भूर्भुवः स्वः में व्याप्त, उनको मेरा बारम्बार नमन है॥ ३७ ॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र प्रकृतिरूप हैं। भूर्भुवः स्वः में व्याप्त, उनको मेरा बारम्बार नमन है ॥ ३८ ॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र ओङ्कारस्वरूप हैं। भूर्भुवः स्वः में व्याप्त, उनको मेरा शतशः नमन है ॥ ३९ ॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र चार अर्धमात्रास्वरूप हैं। भूर्भुवः स्वः में व्याप्त, उनको मेरा शतशः नमन है॥ ४० ॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र ही परमपुरुष हैं। भूर्भुवः स्वः में व्याप्त, उन श्रीरामचन्द्रजी को मेरा बारम्बार नमन है॥ ४१ ॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र महेश्वररूप में प्रतिष्ठित हैं। भूर्भुवः स्वः में भी व्याप्त हैं, उनको मेरा बारम्बार नमन है॥ ४२ ॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र महादेवस्वरूप हैं। भूर्भुवः स्वः में व्याप्त, उनको मेरा बारम्बार नमन है ॥ ४३ ॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' मन्त्ररूप हैं। जो साक्षात् विष्णुरूप हैं। भूर्भुवः स्वः

में व्याप्त, उन श्रीरामचन्द्र को शत-शत नमन है॥ ४४॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र महाविष्णुस्वरूप हैं। जो भूर्भुवः स्वः में व्याप्त हैं, उनको मेरा बारम्बार नमन है॥ ४५॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र साक्षात् परमात्मास्वरूप हैं। जो भूर्भुवः स्वः में व्याप्त हैं, उन्हें मेरा बारम्बार नमन है॥ ४६॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र विज्ञानात्मा रूप से ध्येय हैं। भूर्भुवः स्वः में व्याप्त हैं, उनको मेरा बारम्बार नमन है॥ ४७॥

जो भगवान् श्रीरामचन्द्र अद्वैत, परमानन्द, आत्मास्वरूप, चिदात्मा एवं सच्चिदानन्द हैं। भूर्भुवः स्वः में व्याप्त, उनको मेरा बारम्बार नमन है।

(उपर्युक्त ४७ मंत्रों में ऋषि ने षडैश्वर्य-सम्पन्न, (ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य) भूः आदि तीनों लोकों के स्वामी एवं समस्त विभूतिस्वरूप भगवान् श्रीरामचन्द्र जी की बारम्बार प्रार्थना की है।)

ब्रह्मा जी ने उनसे कहा— इन सैंतालीस मंत्रों से जो नियमित भगवान् श्रीरामचन्द्र जी की स्तुति करता है, उसके ऊपर वे देव प्रसन्न होते हैं। उसे आत्मदर्शन का लाभ प्राप्त होता है। इसलिए जो इन मंत्रों से भगवान् श्री रामचन्द्र जी की स्तुति करता है, उसे भगवान् के दर्शन प्राप्त होते हैं। वह अमृतत्व को प्राप्त कर लेता है। यह महान् उनिषद् है।

॥ पञ्चमः खण्डः ॥

अथ हैनं भरद्वाजो याज्ञवल्क्यमुपसमेत्योवाच श्रीराममन्त्रराजस्य माहात्म्यमनुब्रूहीति॥ १॥

इसके पश्चात् महर्षि याज्ञवल्क्य के पास जाकर भरद्वाज जी ने कहा— हे महर्षे! आप भगवान् श्री रामचन्द्र जी के मन्त्रराज का माहात्म्य वर्णन करने की कृपा करें॥ १॥

स होवाच याज्ञवल्क्यः -

स्वप्रकाशः परं ज्योतिः स्वानुभूत्येकचिन्मयः। तदेव रामचन्द्रस्य मनोराद्यक्षरः स्मृतः॥ २॥

याज्ञवल्क्य जी ने कहा— भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के षडक्षर मंत्र का प्रथम अक्षर (रां) स्वयं प्रकाशित परम-प्रकाशरूप, चिन्मात्रस्वरूप अपने ही अनुभव से जानने योग्य परमात्मा का साक्षात् रूप है, ऐसा कहा गया है॥ २॥

अखण्डैकरसानन्दस्तारकब्रह्मवाचकः। रामायेति सुविज्ञेयः सत्यानन्दचिदात्मकः॥ ३॥

सदा एकरस, अखण्ड आनन्द प्रदान करने वाला तारकब्रह्म का वाचक 'रामाय' पद सत्, चित्, आनन्दस्वरूप समझना चाहिए॥ ३॥

नमः पदं सुविज्ञेयं पूर्णानन्दैकविग्रहम्। सदा नमन्ति हृदये सर्वे देवा मुमुक्षवः॥ ४॥ इति॥

षडक्षर मन्त्र का 'नमः' पद साक्षात् पूर्णानन्दस्वरूप है, समस्त देवगण एवं मुमुक्षु (मोक्षार्थी) जिसका हृदय से सदैव नमन-वन्दन किया करते हैं॥ ४॥

य एतं मन्त्रराजं श्रीरामचन्द्रषडक्षरं नित्यमधीते सोऽग्निपूतो भवति स वायुपूतो भवति स आदित्यपूतो भवति स सोमपूतो भवति स ब्रह्मपूतो भवति स विष्णुपूतो भवति स रुद्रपूतो भवति स सर्वैर्देवैर्ज्ञातो भवति स सर्वक्रतुभिरिष्टवान् भवति तेनेतिहासपुराणानां रुद्राणां शतसहस्राणि जप्तानि फलानि

भवन्ति। श्रीरामचन्द्रमनुस्मरणेन गायत्र्याः शतसहस्राणि जप्तानि फलानि भवन्ति। प्रणवानामयुतकोटिजप्ता भवति। दश पूर्वान् दशोत्तरान् पुनाति। स पङ्क्तिपावनो भवति। स महान् भवति। सोऽमृतत्वं च गच्छति॥ ५॥

भगवान् श्रीरामचन्द्र जी के इस प्रकार षडक्षर मंत्रराज का जो नित्य जप करता है, वह अग्नि में तपाये हुए की तरह पवित्र हो जाता है। उसे ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, चन्द्र और वायु देवता पवित्र कर देते हैं। समस्त देवताओं में वह विख्यात हो जाता है। मंत्र जप करने वाला समस्त यज्ञों से प्राप्त होने वाले फल को प्राप्त कर लेता है। रुद्र मन्त्रों के लक्ष बार जप करने एवं इतिहास-पुराणों के पाठ करने का फल उसे प्राप्त होता है। भगवान् श्रीरामचन्द्र जी का स्मरण करने से लक्ष गायत्री जप करने वाले के समान हो जाता है। वह अपनी पहले की दस पीढ़ियों तथा आने वाली दस पीढ़ियों का उद्धार कर देता है। वह पंक्ति पावन हो जाता है, वह महानता को प्राप्त कर लेता है तथा अमृतत्व को प्राप्त हो जाता है॥ ५॥

अत्रैते श्लोका भवन्ति-

गाणपत्येषु शैवेषु शाक्तसौरेष्वभीष्टदः। वैष्णवेष्वपि सर्वेषु राममन्त्रः फलाधिकः॥ ६॥

इसके विषय में ये श्लोक कहे गये हैं- गाणपत्य (गणपति के उपासक), शैव (शिवजी के उपासक), वैष्णव (विष्णु के उपासक) एवं शाक्त (शक्ति के उपासक) इन सभी के मन्त्रों से ज्यादा राम मन्त्र की महिमा कही गई है अर्थात् वह अधिक फल देने वाला है॥ ६॥

गाणपत्यादिमन्त्रेषु कोटिकोटिगुणाधिकः। मन्त्रस्तेष्वप्यनायासफलदोऽयं षडक्षरः॥ ७॥

यह षडक्षर मन्त्र, जप करने वाले को अनायास ही गाणपत्यादि के करोड़ों-करोड़ मंत्रों के जप का फल प्रदान करता है॥ ७॥

षडक्षरोऽयं मन्त्रः स्यात् सर्वाघौघनिवारणः। मन्त्रराज इति प्रोक्तः सर्वेषामुत्तमोत्तमः॥ ८॥

यह षडक्षर मन्त्र समस्त पापों का निवारण करने वाला है, इसीलिए सबसे उत्तम इस मंत्र को मंत्रराज कहा गया है॥ ८॥

कृतं दिने यद्दुरितं पक्षमासर्तुवर्षजम्। सर्वं दहति निःशेषं तूलाचलमिवानलः॥ ९॥

दिन, पक्ष, मास, ऋतु एवं वर्ष में किये हुए समस्त पापों को यह मंत्र उसी प्रकार भस्म कर देता है, जैसे रुई के पहाड़ को अग्नि भस्म कर डालती है॥ ९॥

ब्रह्महत्यासहस्राणि ज्ञानाज्ञानकृतानि च। स्वर्णस्तेयसुरापानगुरुतल्पायुतानि च॥ १०॥
कोटिकोटिसहस्राणि उपपातकजान्यपि। सर्वाण्यपि प्रणश्यन्ति राममन्त्रानुकीर्तनात्॥ ११॥

ज्ञात अथवा अज्ञात अवस्था में किया हुआ हजारों ब्रह्महत्या का पाप एवं दसियों हजार बार किए हुए स्वर्ण चोरी, सुरापान, गुरुघात जैसे पाप तथा करोड़ों-करोड़ हजार बार किये हुए उपपातक, ये सब भगवान् श्रीराम के मंत्र के कीर्तन से समाप्त हो जाते हैं॥ १०-११॥

भूतप्रेतपिशाचाद्याः कूष्माण्डब्रह्मराक्षसाः। दूरादेव प्रधावन्ति राममन्त्रप्रभावतः॥ १२॥

भगवान् श्रीरामचन्द्र जी के मन्त्र के प्रभाव से भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड (पिशाचों का एक भेद), ब्रह्मराक्षस आदि दूर से ही भाग जाते हैं॥ १२॥

ऐहलौकिकमैश्वर्यं स्वर्गाद्यं पारलौकिकम्। कैवल्यं भगवत्त्वं च मन्त्रोऽयं साधयिष्यति॥ १३॥

इस मन्त्र के प्रभाव से इस लोक में समस्त ऐश्वर्य एवं स्वर्ग के समस्त पारलौकिक भोग तथा कैवल्य पद प्राप्ति व भगवत्त्व-बोध साधक को सहज ही प्राप्त हो जाता है॥ १३॥

ग्राम्यारण्यपशुघ्नत्वं संचितं दुरितं च यत्। मद्यपानेन यत् पापं तदप्याशु विनाशयेत्॥ १४॥

गाँव में रहने वाले अथवा जंगल में रहने वाले पशुओं के मारने से संचित पाप और सुरापान करने से जो पाप होता है, वह इस मंत्र के प्रभाव से समाप्त हो जाता है॥ १४॥

अभक्ष्यभक्षणोत्पन्नं मिथ्याज्ञानसमुद्भवम्। सर्वं विलीयते राममन्त्रस्यास्यैव कीर्तनात्॥ १५॥

अभक्ष्य-भक्षण करने से होने वाला पाप एवं दुर्बुद्धि से होने वाले पाप, ये सभी राम मन्त्र के कीर्तन करने से विलीन हो जाते हैं॥ १५॥

श्रोत्रियस्वर्णहरणाद्यच्च पापमुपस्थितम्। रत्नादेश्चापहारेण तदप्याशु विनाशयेत्॥ १६॥

वेदपाठी ब्राह्मण के स्वर्ण (धन) का हरण करने से होने वाला पाप एवं रत्न आदि के अपहरण करने से होने वाले समस्त पाप इस मंत्र के प्रभाव से शीघ्र समाप्त हो जाते हैं॥ १६॥

ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं हत्वा च किल्बिषम्। संचिनोति नरो मोहाद्यद्यत्तदपि नाशयेत्॥ १७॥

यदि मोह आदि के वशीभूत होकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की हत्या का पाप संचित हो, तो वह भी इसके प्रभाव से नष्ट हो जाता है॥ १७॥

गत्वाऽपि मातरं मोहादगम्याश्चैव योषितः। उपास्यानेन मन्त्रेण रामस्तदपि नाशयेत्॥ १८॥

पाप, मोह आदि के वशीभूत होकर माँ पर कुदृष्टि डालने वाले तथा परस्त्रीगामी के पाप को भी इस मन्त्र की उपासना से भगवान् श्रीराम नष्ट कर देते हैं॥ १८॥

महापातकपापिष्ठसङ्गत्या संचितं च यत्। नाशयेत्तत्कथाऽऽलापशयनासनभोजनैः॥ १९॥

जो व्यक्ति भगवान् श्रीरामचन्द्र जी की कथा सोते, जागते, भोजन करते, चलते-फिरते करता रहता है, उसके जीवन में महापाप करने वालों की संगति से संचित समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं॥ १९॥

पितृमातृवधोत्पन्नं बुद्धिपूर्वमघं च यत्। तदनुष्ठानमात्रेण सर्वमेतद्विलीयते॥ २०॥

उसके (षडक्षर मंत्र के) अनुष्ठान मात्र से ही माता-पिता के वध करने से होने वाला एवं जानते हुए भी हत्या कर डालने वाला पाप विलीन हो जाता है॥ २०॥

यत् प्रयागादितीर्थोक्तप्रायश्चित्तशतैरपि। नैवापनोद्यते पापं तदप्याशु विनाशयेत्॥ २१॥

प्रयाग आदि तीर्थों में सौ बार प्रायश्चित्त करने पर भी जो पाप समाप्त नहीं होता, वह इसके अनुष्ठान मात्र से शीघ्र समाप्त हो जाता है॥ २१॥

पुण्यक्षेत्रेषु सर्वेषु कुरुक्षेत्रादिषु स्वयम्। बुद्धिपूर्वमघं कृत्वा तदप्याशु विनाशयेत्॥ २२॥

समस्त पुण्य क्षेत्रों में तथा कुरुक्षेत्र आदि क्षेत्रों में जान-समझकर किया गया पाप भी इसके प्रभाव से शीघ्र क्षीण हो जाता है॥ २२॥

कृच्छ्रैस्तप्तपराकाद्यैर्नानाचान्द्रायणैरपि। पापं च नापनोद्यं यत् तदप्याशु विनाशयेत्॥ २३॥

जो पाप कृच्छ्र चान्द्रायण आदि अनेक चान्द्रायणों से नष्ट नहीं होता, वह भी इसके (षडक्षर मन्त्र के) प्रभाव से शीघ्र नष्ट हो जाता है॥ २३॥

आत्मतुल्यसुवर्णादिदानैर्बहुविधैरपि। किंचिदप्यपरिक्षीणं तदप्याशु विनाशयेत्॥ २४॥

तुला पर तौलकर अपने बराबर स्वर्णदान करके एवं अन्य अनेक प्रकार का दान करने पर भी जो पाप किंचित्मात्र भी क्षीण नहीं होते, वे पाप भी इसके (षडक्षर मंत्र के) प्रभाव से शीघ्र समाप्त हो जाते हैं॥ २४॥

अवस्थात्रितयेष्वेवं बुद्धिपूर्वमघं च यत्। तन्मन्त्रस्मरणेनैव निःशेषं प्रविलीयते॥ २५॥

तीनों अवस्थाओं (जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति या बचपन, जवानी, बुढ़ापा) में बुद्धिपूर्वक (सोच-समझकर) किया गया पाप भी इस मन्त्र के प्रभाव से निःशेष (समाप्त) हो जाता है॥ २५॥

अवस्थात्रितयेष्वेवं मूलबन्धमघं च यत्। तत्तन्मन्त्रोपदेशेन सर्वमेतत् प्रणश्यति॥ २६॥

तीनों अवस्थाओं में ब्रह्मचर्य सम्बन्धी किया हुआ पाप उस मन्त्र के उपदेशमात्र से ही नष्ट हो जाता है॥ २६॥

आब्रह्मबीजदोषाश्च नियमातिक्रमोद्भवाः। स्त्रीणां च पुरुषाणां च मन्त्रेणानेन नाशिताः॥ २७॥

ब्रह्म से लेकर बीज तक के दोष एवं नियमों के अतिक्रमण से होने वाले स्त्री और पुरुषों के समस्त दोष इस मन्त्र के प्रभाव से नष्ट हो जाते हैं॥ २७॥

येषु येष्वपि देशेषु रामभद्र उपास्यते। दुर्भिक्षादिभयं तेषु न भवेत्तु कदाचन॥ २८॥

जिस-जिस देश में भगवान् श्रीरामचन्द्र जी की उपासना होती है, वहाँ दुर्भिक्षादि भय कभी नहीं होते॥ २८॥

शान्तः प्रसन्नवदनो नक्रोधो भक्तवत्सलः। अनेन सदृशो मन्त्रो जगत्स्वपि न विद्यते॥ २९॥

भगवान् श्रीरामचन्द्र जी प्रसन्नमुख, शान्त स्वभाव वाले, क्रोधरहित, भक्तवत्सल हैं, उनके समान मन्त्र संसार में कहीं नहीं है॥ २९॥

सम्यगाराधितो रामः प्रसीदत्येव सत्वरम्। ददात्यायुष्यमैश्वर्यमन्ते विष्णुपदं च यत्॥ ३०॥

सम्यक् प्रकार से भगवान् श्रीराम की आराधना करने से वे तुरन्त प्रसन्न होते हैं और अपने भक्त को आयु, ऐश्वर्य और अंत में विष्णु पद प्रदान करते हैं॥ ३०॥

तदेतदृचाऽभ्युक्तम्–
ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते॥ ३१॥

वही बात इस ऋचा में भी कही गयी है– जिसमें सम्पूर्ण देवगण अधिष्ठित हैं, उस अनश्वर परम व्योम (धाम) में समस्त वेद (ज्ञान समुच्चय) स्थित हैं। जो विद्वान् उसे नहीं जानते, वे केवल ऋचाओं (वेदों) के द्वारा क्या कर लेंगे और जो उसे जानते हैं, वे सम्यक् रूप से उसी परमात्मा में कृतार्थ होकर स्थित रहते हैं॥ ३१॥

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्॥ ३२॥
तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते। विष्णोर्यत् परमं पदम्॥ ३३॥

जो (परमात्मा) आकाश में प्रयुक्त सूर्यमण्डल की तरह परम व्योम में चिन्मय तेज के द्वारा सभी ओर संव्याप्त है, ऐसे भगवान् विष्णु के उस परमधाम का विद्वान् उपासक सदैव दर्शन करते हैं। साधना में सतत लगे रहने वाले निष्काम ब्राह्मण वहाँ पहुँच कर उस परमधाम को और भी प्रदीप्त किये रहते हैं, ऐसे उस पद को विष्णु का परमधाम कहते हैं॥ ३२-३३॥

ॐ सत्यमित्युपनिषत्॥ ३४॥

ॐ यह सत्य उपनिषद् है॥ ३४॥

॥ ॐ भद्रं कर्णेभिः..............इति शान्तिः॥

॥ इति श्रीरामोत्तरतापिन्युपनिषत्समाप्ता॥

॥ संन्यासोपनिषद्॥

॥ शान्तिपाठः॥

॥ ॐ पूर्णमदः............... इति शान्तिः ॥ (द्रष्टव्य- तारसारोपनिषद्)

देही संन्यसनाद्याति परां सालोक्यतां पराम्। ॐ तत्सच्चिन्मयं ब्रह्म सर्वातीतं समाश्रये॥ १॥

संन्यास ग्रहण करने से जीव, परब्रह्म परमात्मा की सालोक्यता को प्राप्त कर लेता है। ॐ तत्सत् से वाच्य चिन्मय ब्रह्म ही सबसे परे है, हम उसी का आश्रय ग्रहण करें। ॐ पूर्णमदः इति शान्तिः॥

हरिः ॐ॥ अथाहिताग्निर्म्रियेत प्रेतस्य मन्त्रैः संस्कारोपतिष्ठते। स्वस्थो वाश्रमपारं गच्छेयमिति। एतान्पितृमेधिकानोषधिसंभारान्संभृत्यारण्ये गत्वाऽमावास्यायां प्रातरेवाग्नीनुपसमाधाय पितृभ्यः श्राद्धतर्पणं कृत्वा ब्रह्मेष्टिं निर्वपेत्। स सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः। तस्यैषाहुतिर्दिव्याऽमृतत्वाय कल्पतामित्येवमत ऊर्ध्वं यद्ब्रह्माभ्युदयद्दिवं च लोकमिदममुं च सर्वं सर्वमभिजन्युः। सर्वश्रियं दधतु सुमनस्यमाना ब्रह्मजज्ञानमिति ब्रह्मणेऽथर्वणे प्रजापतयेऽनुमतयेऽग्नये स्विष्टकृत इति हुत्वा यज्ञ यज्ञं गच्छेत्यग्नावरणी हुत्वोचित्सखायमिति चतुर्भिरनुवाकैराज्याहुतीर्जुहुयात्तैरेवोपतिष्ठते। मय्यग्रेऽग्निमिति चाथो अग्नीन्समारोपयेद्व्रतवान्स्यादतन्द्रित इति॥ १॥

हरिः ॐ॥ जब नित्य विधिपूर्वक अग्निहोत्र करने वाले गृहस्थ द्विज की मृत्यु हो जाती है, तो उसका अन्त्येष्टिसंस्कार प्रेत-मन्त्रों द्वारा ही सम्पन्न किया जाता है। यदि स्वस्थ रहते हुए कोई द्विज यह निश्चय करे कि मैं तो संन्यास ग्रहण करके गृहस्थ आश्रम से पार होना चाहता हूँ। तब इस पितृमेध सम्बन्धी ओषधि सामग्री को इकट्ठी करके जंगल में जाकर अमावस्या के दिन प्रातःकाल ही यज्ञाग्नि तैयार करके, पितरों का श्राद्ध-तर्पण करके ब्रह्मयज्ञ पूर्ण कर लेना चाहिए।

संन्यासी यदि तत्त्वज्ञ है, तो सर्वज्ञ होने के कारण उसका तप भी ज्ञानमय ही होता है। अतः फिर उसके द्वारा ब्रह्मयज्ञ में दी हुई दिव्य आहुति भी 'अमृतत्व के लिए यह आहुति सफल हो , समर्थ हो, इसी भावना से दी जाती है। इसके बाद- 'यद्ब्रह्माभ्युदयद्दिवं, सर्वश्रियं दधतु, ब्रह्मजज्ञानं' इत्यादि मन्त्रों से, ब्रह्म के लिए , अथर्वा के लिए, प्रजापति के लिए, अनुमति के लिए, अग्नि के लिए एवं स्विष्टकृत् के लिए आहुतियाँ प्रदान करें। पश्चात् 'यज्ञ यज्ञं गच्छ' इत्यादि मन्त्र से दोनों अरणियों की भी अग्नि में आहुति देनी चाहिए। तदनन्तर 'उचित्सखायं' इत्यादि चार अनुवाकों से आज्याहुतियाँ प्रदान की जायें। उन्हीं चारों अनुवाकों से ही उपस्थान (सूर्य की स्तुति) करना चाहिए। 'मय्यग्रेऽग्निम्' इत्यादि मन्त्र के अनुसार अग्नि को आत्मा में समारोपित कर व्रत (संन्यास व्रत) ग्रहण कर सावधान हो जाये॥ १॥

तत्र श्लोकाः- ब्रह्मचर्याश्रमे खिन्नो गुरुशुश्रूषणे रतः। वेदानधीत्यानुज्ञात उच्यते गुरुणाश्रमी॥ दारमाहृत्य सदृशमग्निमाधाय शक्तितः। ब्राह्मीमिष्टिं यजेत्तासामहोरात्रेण निर्वपेत्॥ संविभज्य सुतानर्थैर्ग्राम्यकामान्विसृज्य च। चरेत वनमार्गेण शुचौ देशे परिभ्रमः॥ वायुभक्षोऽम्बुभक्षो वा विहितानोत्तरः फलैः। स्वशरीरे समारोपः पृथिव्यां नाश्रुपातकः। सह तेनैव पुरुषः कथं संन्यस्त उच्यते॥ २॥

इस सन्दर्भ में ये श्लोक हैं— ब्रह्मचर्य आश्रम का पालन करता हुआ द्विज परिश्रमपूर्वक गुरु की सेवा करता हुआ वेदों का अध्ययन करता है। फिर वेदाध्ययन समाप्ति के पश्चात् गुरुदेव की आज्ञा लेकर योग्य कुमारिका से विवाह करता है। गृहस्थ आश्रम में प्रवेश कर अग्न्याधान करता है। नित्य ब्रह्मयज्ञ करता है। वानप्रस्थ में प्रवेश के लिए एक अहोरात्र पर्यन्त यज्ञकर उसे समाप्त कर देता है। पुत्रों में सम्पत्ति का बँटवारा करके उन्हें छोड़कर, वनमार्ग का आश्रय लेकर, पवित्र स्थानों में भ्रमण करता रहता है। वायु, जल अथवा फलों के आहार से शरीर की रक्षा करता है। (यह सब करते हुए) पृथ्वी पर आँसू नहीं गिराता है। यदि मोहवश अश्रुपात करेगा, तो उसे संन्यासी कैसे कहेंगे ?॥ २॥

सनामधेयस्तु स किं यस्मिन्संन्यस्त उच्यते। तस्मात्फलविशुद्धाङ्गी संन्यासं सहतेऽर्चिमान्॥ अग्निवर्णं निष्क्रामति वानप्रस्थं प्रपद्यते। लोकाद्भार्यया सहितो वनं गच्छति संयतः॥ त्यक्त्वा कामान्संन्यसति भयं किमनुपश्यति। किंवा दुःखं समुद्दिश्य भोगांस्त्यजति सुस्थितान्॥ गर्भवासभयाद्भीतः शीतोष्णाभ्यां तथैव च। गुहां प्रवेष्टुमिच्छामि परं पदमनामयमिति॥ ३-१॥

संन्यासी होने पर उसका गृहस्थवाला नाम नहीं रहेगा। नाम के रहते हुए वह संन्यासी कैसे कहा जायेगा ? फलमात्र आहार से विशुद्ध रहते हुए ही संन्यास को सहन कर सकता है। अग्नि के समान गौर वर्ण (तेजस्वी) होकर वानप्रस्थ को प्राप्त होता है। संयम का पालन करते हुए पत्नीसहित उसे वन में प्रस्थान करना पड़ता है। सारी कामनाओं का त्याग कर देता है। किसी प्रकार से भयभीत नहीं होता है। दुःख के उद्देश्य से ही वह गृहस्थ के सुख भोगों का त्याग नहीं करता है। भविष्य में गर्भवास के भय से डरकर तथा सर्दी-गर्मी से डरकर वह गृहस्थ त्याग नहीं करता है। वह तो यह सोचकर ही त्याग करता है कि मुझे अब उस अनामय हृदयगुहा में प्रवेश करना उचित है॥ ३-१॥

संन्यस्याग्निं न पुनरावर्तनं यन्मन्युर्जायामावहदित्यथाध्यात्ममन्त्राञ्जपेद्दीक्षामुपेयात्। कषायवासाः कक्षोपस्थलोमानि वर्जयेदूर्ध्वगोपायुर्विमुक्तमार्गो भवत्यनयैव चेद्भिक्षाशनं दध्यात्पवित्रं धारयेज्जन्तु संरक्षणार्थम्। तत्र श्लोकाः-कुण्डिकां चमसं शिक्यं त्रिविष्टपमुपानहम्। शीतोपघातिनीं कन्थां कौपीनाच्छादनं तथा॥ पवित्रं स्नानशाटीं चोत्तरासङ्गस्त्रिदण्डकम्। अतोऽतिरिक्तं यत्किंचित्सर्वं तद्वर्जयेद्यतिः॥ ३-२॥

वह संन्यास में अग्नि का भी त्याग कर देता है। तब अपुनरावर्तन के लिए- यन्मन्युर्जायामावहत् इत्यादि आध्यात्मिक मन्त्रों का जप करे तथा दीक्षा ग्रहण करे। दीक्षानन्तर गेरुए वस्त्र ही पहने। कोख तथा गुप्तांगों के केशों की सफाई न करे। मूलबन्ध का अभ्यास करते हुए मुक्तिमार्ग का भागी बन जाता है। भिक्षा करते हुए शरीर रक्षा करे साथ ही क्षुद्रजन्तुओं की रक्षा का ध्यान रखते हुए पवित्री (कुशाओं की कूँची) धारण करे।

इस सम्बन्ध में ये श्लोक हैं— कटोरा, लकड़ी का कमण्डलु, झोला, त्रिविष्टप (सम्भवतः ध्यानादि के निमित्त योगियों द्वारा हाथ के नीचे लगाया जाने वाला टेका), उपानह. सर्दी से बचाव के लिए कम्बल, कौपीनवस्त्र, स्नान हेतु एक काषाय वस्त्र (धोती), उपवस्त्र, त्रिदण्डक- इन वस्तुओं के अतिरिक्त अन्य सभी का त्याग यति को करना ही चाहिए॥ ३-२॥

नदीपुलिनशायी स्याद्देवागारेषु वाऽप्युत। नात्यर्थं सुखदुःखाभ्यां शरीरमुपतापयेत्॥ स्नानं दानं तथा शौचमद्भिः पूताभिराचरेत्। स्तूयमानो न तुष्येत निन्दितो न शपेत्परान्॥ भिक्षादि वैदलं पात्रं स्नानद्रव्यमवारितम्। एतां वृत्तिमुपासीना घातयन्तीन्द्रियाणि च। विद्याया मनसि संयोगो मनसाकाशश्चाकाशाद्वायुर्वायोर्ज्योतिर्ज्योतिष आपोऽद्भ्यः पृथिवी पृथिव्या इत्येषा भूतानां ब्रह्म प्रपद्यते॥ ४॥

संन्यासी को नदी के तट पर या देव मन्दिर के परिसर में शयन करना चाहिए, नगर या ग्राम के भीतर किसी स्थान में नहीं। अत्यधिक सुख-दु:ख के कारण शरीर को प्रभावित नहीं होने देना चाहिए। स्नान, दान एवं शुचिता पवित्र जल से ही सम्पन्न करनी चाहिए। स्तुति सुनकर प्रसन्न नहीं होना चाहिए साथ ही निन्दा सुनकर निन्दकों को शाप नहीं देना चाहिए। शास्त्रविहित भिक्षाचर्या करें। शास्त्रविहित पात्र (खप्पर) कटोरा (लकड़ी का) एवं स्नान द्रव्य का प्रयोग करें। इस वृत्ति (आचरण) से संन्यास का पालन करने वाले अपनी इन्द्रियों का दमन करते रहते हैं। तत्त्वविद्या का मन से संयोग होता है। मन से आकाश, आकाश से वायु, वायु से तेज, तेज से जल एवं जल से पृथ्वी का प्रादुर्भाव होता है। फिर पृथ्वी से यह सृष्टि विविध प्राणिमयी हो जाती है अर्थात् प्राणियों में अंश रूप से ब्रह्म प्रविष्ट हो जाता है॥ ४॥

अजरममरमक्षरमव्ययं प्रपद्यते तदभ्यासेन प्राणापानौ संयम्य तत्र श्लोकाः– वृषणापानयोर्मध्ये पाणी आस्थाय संश्रयेत्। संदश्य दशनैर्जिह्वां यवमात्रं विनिर्गताम्॥ माषमात्रां तथा दृष्टिं श्रोत्रे स्थाप्य तथा भ्रुवि। श्रवणे नासिके न गन्धाय न त्वचं न स्पर्शयेत्॥ अथ शैवं पदं यत्र तद्ब्रह्म तत्परायणम्। तदभ्यासेन लभ्यते पूर्वजन्मार्चितात्मनः॥ अथ तैः संभूतैर्वायुः संस्थाप्य हृदयं तपः। ऊर्ध्वं प्रपद्यते देहाद्भित्त्वा मूर्धानमव्ययम्॥ अथाऽयं मूर्धानमस्य देहैषा गतिर्गतिमताम्। ये प्राप्य परमां गतिं भूयस्ते न निवर्तन्ते परात्परमवस्थात्परात्परमवस्थादिति॥ ५॥

संन्यासी अभ्यास के द्वारा प्राण और अपान का संयम करके उस अजर, अमर, अक्षर, अव्यय ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। उसके विषय में ऐसी संस्तुति है कि संन्यासी को अभ्यास के लिए दोनों हाथों को अंडकोश एवं अपान मार्ग के मध्य रखकर बैठे रहना चाहिए। जौ मात्र (जौ जितना लम्बा) जीभ को बाहर निकालकर उसे दाँतों से चबाकर बैठे रहें। दृष्टि को भ्रूमध्य में स्थापित करें तथा कान या नाक से शब्द या गन्ध ग्रहण करने पर ध्यान नहीं लगाएँ। किसी को भी अपने शरीर को छूने नहीं दें। इस प्रकार नियमपूर्वक अभ्यास करते हुए संन्यासी उस ब्रह्म में परायण हो जाता है, जिसे शैव पद कहा गया है। यह परमपद पूर्वजन्म में संचित अभ्यास संस्कार के साथ अभ्यास द्वारा ही प्राप्त होता है। उसी क्रम से प्राणायाम की प्रक्रिया से हृदय में स्थिर किया हुआ प्राण जब तप के द्वारा ऊर्ध्व (ब्रह्मरन्ध्र) में पहुँचता है, तब वह मूर्धा को भेदकर शरीर से बाहर निकल जाता है और अव्यय (ब्रह्म) को प्राप्त हो जाता है। लक्ष्य की ओर गमन करने वालों की यही श्रेष्ठ गति है। उस परमपद को प्राप्तकर फिर वापस जन्म-मरण के भवबन्धन में नहीं आना पड़ता है। हाँ, वापस नहीं आना पड़ता है॥ ५॥

॥ ॐ पूर्णमदः............. इति शान्तिः ॥

॥ इत्याथर्वणीया संन्यासोपनिषत्समाप्ता ॥

॥ सदानन्दोपनिषद् ॥

॥ तच्छंयोरावृणीमहे......इति शान्तिः ॥ (द्रष्टव्य-चित्युपनिषद्)

अथैनं सदानन्दः संवर्तो जैगीषव्यश्च नीललोहितं रुद्रमुवाच । भगवन् किमपवर्गं साध यतीति । स एतेभ्यो भगवान् नीललोहितः प्रोवाच । अन्तर्बहिर्धारितं परंब्रह्माभिधेयं शाम्भवं लिङ्गम्,

कभी सदानन्द संवर्त और जैगीषव्य ने भगवान् रुद्र के पास पहुँच कर निवेदन किया- भगवन्! अपवर्ग की साधना क्या है? वे भगवान् रुद्र इन जिज्ञासुओं से इस प्रकार कहने लगे- कि शिव का लिङ्ग, जो परब्रह्म स्वरूप है, उसे अन्तर्बहिः (मन के अन्दर तथा बाहर उपासना के लिए) धारण करना चाहिए ।

आधारे दहरेऽव्यक्ते स्वर्णस्फाटिकवैद्रुमम् । निरन्तरानुसन्धानात् तदन्तर्धारणे विदुः ॥
चतुर्दलं द्वादशारं द्व्यश्रमव्यक्तकं शिवम् । दहरेऽङ्गुष्ठमात्रं तमुमाकान्तमहर्निशम् ।
अनिराकारमात्मानं धृत्वा यान्ति परं पदम् ॥ परात् परतरो ब्रह्मा तत्परात् परतो हरिः ।
तत्परात् परतोऽधीशस्तस्मात् स्यादुत्तरः शिवः ॥ जातवेदसमव्यक्तं व्यक्ताव्यक्तं परं सदा ।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीराः
तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥ अन्तर्धारणशक्ते न ह्यशक्ते न द्विजोत्तमाः ।
संस्कृत्य गुरुणा दत्तं शैवं लिङ्गमुरःस्थले । धार्यं विप्रेण मुक्त्यर्थे शिवतत्त्वविदो विदुः ॥
येनाचिरात्सर्वपापं व्यपोह्य परात्परं पुरुषमुपैति विद्वान् ।

अव्यक्त आधार की गहराई में सुवर्ण-स्फाटिक-विद्रुम से निर्मित शिवलिङ्ग का निरन्तर अनुसन्धान करने से अर्थात् निरन्तर उसका चिन्तन करते हुए, एकाग्रता साधन करते हुए सिद्धि प्राप्त करते हैं, इसी को अन्तर्धारण कहते हैं ।

चार दलों वाले, द्वादश अरों वाले, अव्यक्त शिव को, आधार-कुण्ड में अंगुष्ठ मात्र उन उमाकान्त को अहर्निश साकार रूप में अपने आत्मा में धारण करने वाला परमपद को प्राप्त होता है । पर से भी पर ब्रह्मा हैं .। उनसे भी पर विष्णु हैं । उनसे भी पर महादेव हैं । उनसे भी पर शिव हैं । जो अग्नि के समान व्यक्त और अव्यक्त दो रूप हैं। इसी प्रकार वह शिवतत्त्व भी व्यक्त और अव्यक्त दोनों रूपों में है। दोनों से परे है । उसी आत्मतत्त्व को जो धीरपुरुष अपने अन्तःमें स्थित देख पाते हैं, उन्हें ही शान्ति प्राप्त होती है, अन्यों को नहीं।

अन्तर्धारण में समर्थ ब्राह्मण को अशक्त होने पर भी गुरु से संस्कृत प्रदत्त शिवलिंग को उरस्थल पर मुक्ति के लिए धारण करना चाहिए, ऐसा शिवतत्त्व के विज्ञ जन कहते हैं । इससे साधक शीघ्र ही पापों से छुटकारा पाकर, परात्पर पुरुष को प्राप्त करते हैं ।

अस्य मात्रा अकारो ब्रह्मरूप उकारो विष्णुरूपो मकारः कालकालः अर्धमात्रा परमशिवः ओङ्कारो लिङ्गम् ।

इसकी मात्रा अकार ब्रह्मरूप है, उकार विष्णुरूप है, मकार कालकाल हैं । अर्धमात्रा परमशिव हैं, ओङ्कार ही लिङ्ग है ।

योऽसौ सर्वेषु वेदेषु पठ्यते ह्यज ईश्वरः । तस्मात्तद्धारणादेतल्लिङ्गदेहमलौकिकम् । मृतेऽपि तन्न दह्येत बिले चैतद्विनिक्षिपेत् ॥ न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैकेऽमृतत्वमानशुः ॥ यो वा स्वहस्तार्चितलिङ्गमेकं परात्परं धारयते नरो वा। तस्यैव लभ्यः परमेश्वरोऽसौ निरञ्जनं साम्यमुपैति दिव्यम् ॥
शिवलिङ्गधरं विप्रं विपन्नं तु न दाहयेत् । यदि वा दाहयेत्तस्य ब्रह्महत्या तदा भवेत् ॥

जो यह अज ईश्वर सारे वेदों में पढ़े जाते हैं । इससे उस तत्त्व को धारण करने से यह लिंग- देह अलौकिक हो जाता है । वह मरने पर भी चिता में नहीं जलता, इससे उसे किसी कुण्ड में फेंकना चाहिए ।

इस अमृत तत्त्व को न कर्म से, न सन्तान से, न धन से, न त्याग से प्राप्त किया जा सकता है । जो मनुष्य अपने हाथ से पूजित परात्पर लिंग को धारण करता है, उसी को परमेश्वर की प्राप्ति होती है । वह निरञ्जन की दिव्य समता को प्राप्त कर लेता है ।

शिवलिंग धारण करने वाले ब्राह्मण को मरने पर जलाना नहीं चाहिए । उसको जलाने पर ब्रह्महत्या का पाप लगता है ।

यदिदं लिङ्गं सकलं सकलनिष्कलं निष्कलं च स्थूलं सूक्ष्मं च तत्परं स्थूले स्थूलं सूक्ष्मे सूक्ष्मं कारणे तत्परं च ।

यह जो सकल, सकल निष्कल, निष्कल लिङ्ग है, मानो स्थूल, सूक्ष्म और कारण संज्ञा वाला है । स्थूल में स्थूल को, सूक्ष्म में सूक्ष्म और कारण में तत्पर-परब्रह्म स्वरूप को निश्चित करे ।

आत्मानमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् । ध्याननिर्मथनादेव पाशं दहति मानवः । अन्तर्बहिश्च तल्लिङ्गं विधत्ते यस्तु शाश्वतम् ॥

आत्मा को अरणि करके प्रणव (ओङ्कार) को ऊपर वाली अरणिरूप देकर ध्यान का मन्थन करने पर मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है । जो अन्तर्बहिः उस लिंग को निरन्तर धारण करता है ।

अविद्याऽऽवरणं भित्त्वा ब्रह्मणः सायुज्यं सलोकतामाप्नोति । तदिदं लिङ्गं ब्रह्म। तदिदं ॐ सत्यम् । यो विद्वान् ब्रह्मचारी गृही वानप्रस्थो यतिर्वा सदानन्दोपनिषदं पठति सोऽग्निपूतो भवति । स सत्यपूतो भवति । स्वर्णस्तेयात् पूतो भवति । ब्रह्महत्यायाः पूतो

भवति । स सकलभोगभुक् देहं त्यक्त्वा शिवसायुज्यमेति । इत्युपनिषत् ॥

वह अविद्या का आवरण भेद कर ब्रह्म का सायुज्य और सालोक्य प्राप्त करता है । यह लिङ्ग ब्रह्म ही है । यह ॐ सत्य है' जो विद्वान् ब्रह्मचारी गृहस्थ, वानप्रस्थ अथवा यति सदानन्द उपनिषद् को पढ़ता है, वह अग्निपूत हो जाता है । वह सत्यपूत हो जाता है । स्वर्ण की चोरी करने वाला भी पवित्र होता है । ब्रह्महत्या से भी पवित्र हो जाता है । वह इस लोक में सब भोगों को भोग कर (विरक्त होकर) शिव का सायुज्य प्राप्त करता है ।

॥ इति सदानन्दोपनिषत् समाप्ता ॥

॥ सामरहस्योपनिषद् ॥

[साम का अर्थ होता है 'रसात्मक' शान्तिदायक। अनादिकाल से जिज्ञासुओं के सामने यह प्रश्न उठता रहा है कि परमात्मा ने इस सृष्टि की रचना क्यों की? तत्त्वदर्शियों के पास इसका एक मात्र यही समाधान है कि परमसत्ता का मन हुआ कुछ खेल खेलने का लीला करने का। उसने यह लीला रच दी और स्वयं भी उसमें रस लेने लगा। इस उपनिषद् में उस सृष्टि के लीला रस के रहस्य का आलंकारिक वर्णन किया गया है, इसलिए इसे सामरहस्योपनिषद् कहा गया है।

इस लीला (महारास) के मुख्य नायक कृष्ण राधिका अथवा रसिकानन्द निकुञ्ज देवी हैं। ये परम पुरुष और उसकी चित्शक्ति के पर्याय हैं। गो, गोप, गोपी आदि उक्त लीला के प्रमुख पात्रों में हैं। गोप का अर्थ पशु या प्राणी के अतिरिक्त इन्द्रियाँ वाणी किरण आदि भी होती हैं। इस सृष्टि को पोषण देने वाली प्रकृतिगत शक्ति धाराओं को गो कहा गया है। गोप एवं गोपी उनके रक्षक-रक्षिकाएँ भी प्राण की विशिष्ट धाराएँ हैं, जो इस लीला के नायक-नायिका के प्रिय पात्र हैं।

लीला क्षेत्र को व्रज लोक, क्षर एवं अक्षर लोकों से परे कहा गया है। क्षर एवं अक्षर तो सृष्टि के अंग हैं। जहाँ से सृष्टि सृजन, पोषण एवं विलय की लीला हो रही है, वह क्षेत्र निश्चित रूप से सृष्टि से परे ही होगा। व्रजक्षेत्र के विस्तार एवं उसकी सज्जा आदि का जो वर्णन है वह प्रत्यक्ष भूमि पर संभव नहीं है। चेतना के जिस स्तर पर यह महारास चल रहा है, वह पदार्थ गुण एवं शब्दों के परे है। उसके वर्णन में सारे उपमान छोटे पड़ जाते हैं। इसलिए वर्णन की भाषा अतिरंजित हो जाती है। भावों की उच्चतम स्थिति में ही इस रहस्य का बोध पाया जा सकता है, ऐसा तत्त्वज्ञों का मत है। उक्त तथ्यों को ध्यान में रखकर ही सुधी अध्येता इस उपनिषद् का समुचित लाभ उठा सकते हैं।]

[यहाँ प्रपञ्च के बीच चित्-रहस्य को जानने की जिज्ञासा की गई है।,]

एकदा ब्रह्मणः पुत्राः सनकादयस्तत्त्वविवित्सया पितामहं पप्रच्छुः प्रणिपातपुरस्सरम्। अहो पितः निरन्तरं वैकुण्ठे या लीलास्ता ध्यायमानाः निरन्तरं चिदानन्देन सह संप्रेक्षामहे। वद यदि रुचिरापद्यते। चिदानन्दरसं ब्रह्म किं वदन्ति? व्यापकतया जगद्व्याप्य तिष्ठति यत्तद्ब्रह्म वदन्तितराम्। आपद्यमानोऽस्ति प्रकृतिं पुरुषः। कस्मात्प्रकृतियोगिता भवति? जीवाः कीदृग्विधाः? कस्मात्समुत्पन्ना भवन्ति? तेषां लोका अलोकाः कियत्प्रमाणाः? यान् वदन्ति पुराविदः॥ १॥

एक बार ब्रह्मा के पुत्र सनक आदि ने परम तत्त्व को जानने की इच्छा से प्रणामपूर्वक पितामह से पूछा×हे पिताजी! वैकुण्ठ में निरन्तर जो लीलायें होती रहती हैं, हम उनका निरन्तर ध्यान करते हुए दर्शन करते रहते हैं। यदि आपकी इच्छा हो, तो कृपया बताइये कि चिदानन्द ब्रह्मरस किसे कहते हैं ? प्रायः जगत् को व्याप्त करके जो स्थित है, उसे ही लोग ब्रह्म कहते हैं। पुरुष प्रकृतिनटी से मुग्ध है। ऐसा क्यों होता है ? पुरुष प्रकृति में क्यों लिप्त होता है ? जीव कितने प्रकार के हैं ? किससे उत्पन्न होते हैं ? उनके लोक अथवा अलोक कितने प्रमाण के हैं, जिन्हें पुराविद् कहते हैं? ॥ १ ॥

पितामह उवाच। नारायण मुखाच्छ्रुतोऽयं धर्मः। शृणुत सर्वा यैषा सृष्टिस्समुत्पद्यते। क्षराक्षराभ्यामधिकः पुरुषोत्तमसंज्ञितो भक्तिगम्य आनन्दमयो लोकः संविराजते। तस्य पुरुषोत्तमस्य उत्तरकटाक्षात्समुत्पन्ना जीवाः। तेषां स्नेहमार्गोऽयमापद्यते। दक्षिणकटाक्षादुत्पन्नाः कर्मजडा आसुरा अल्पोपासका भवन्ति। तस्मिन् रसिकानन्दस्वरूपात्पार्श्वात् द्वे एव मूर्ती प्रकटिते। प्रथमा भक्ति सुन्दरी प्रकटिता। पश्चान्मायादासी प्रकटिता। तयोः प्रथमा अत्यन्तवल्लभाअस्ति। भक्तेस्सकाशादुत्पन्ना जीवाः स्नेहमार्गीया भवन्ति। मायायाः समुत्पन्ना आसुराः कर्मजडा अन्यधर्मरता एव भवन्ति। यदा कर्ममार्गे रतिरसतां ते आसुरा भवन्ति। सा भक्तिस्त्रिविधैव भवति। एकाकर्ममिश्रिता देवानामृषीणामुपासकानां भवतितराम्। श्रवणकीर्तन स्मरणवन्दनसेवनोपकरणदास्यभावेनात्मसमर्पणम्। ते जीवा भक्तिमार्गीयाः एवैते। स एवायं पुरुषः स्वरमणार्थं स्वस्वरूपं प्रकटितवान्। तद्रूपं रससंवलितमानन्दरसोऽयं पुराविदो वदन्ति। सर्वे आनन्दरसा यस्मात् प्रकटिता भवन्ति। आनन्दरूपेषु पुरुषोऽयं रमते। स एवायं पुरुषः स्वयमेव समाराधनतत्परोऽभूत्। तस्मात् स्वयमेव समाराधनमकरोत्। अतोलोके वेदे श्रीराधा गीयते। तत्स्वरूपात्सृष्टिर्या समुत्पन्ना सा रसिकानन्देन सुसेव्यतां प्राप्ता आसीत्। प्रमाणप्रमेयादस्मान्मार्गादतिरिक्तोऽयं मार्गो रसात्मकः। य एतन्मार्गे आसक्तास्ते रसरूपिणीं सृष्टिमन्तरुत्पद्यमानाः भवन्ति। लक्ष्मीनारायणोऽयं संवादः॥ २॥

पितामह बोले— नारायण के मुख से ही मैंने यह धर्म सुना है। सुनो, जहाँ से यह सारी सृष्टि उत्पन्न होती है। क्षर-अक्षर दोनों से अधिक जो पुरुषोत्तम नाम से नामित है, ऐसा भक्तिगम्य, आनन्दमय लोक विराजमान है। उन पुरुषोत्तम के उत्तर कटाक्ष से (वाम नेत्र कोरक से) जीव उत्पन्न हुए हैं, उनको यह स्नेह मार्ग अभीप्सित है। दक्षिण कटाक्ष से (दायें-नेत्रकोरक से) उत्पन्न जीव कर्मजड़ आसुरवृत्ति वाले, अल्प समय उपासना करने वाले होते हैं। [**परम पुरुष को आनन्दमय लोक की संज्ञा दी गई है; अतः यहाँ बायें एवं दक्षिण नेत्र का अर्थ परमसत्ता के दो भिन्न दृष्टिकोण मानना युक्तिसंगत होगा।**] उसमें रसिकानन्द की कुक्षि से अर्थात् उस स्वरूप से दो मूर्तियाँ प्रकट हुईं। पहली भक्ति सुन्दरी प्रकट हुई, फिर मायादासी प्रकट हुई। इनमें पहली अति प्यारी है। भक्ति के सान्निध्य से उत्पन्न जीव स्नेह मार्गी हैं। माया से उत्पन्न रजोगुणी आसुरी वृत्ति वाले, कर्म परायण अन्य-अन्य धर्मों में आसक्त हैं। वे कर्म मार्ग में कामरस में निमग्न बिल्कुल ही असुर हो जाते हैं। वह भक्ति भी तीन प्रकार की होती है। पहली ऋषि-देवता तथा उपासकों के लिए कर्ममिश्रित भक्ति होती है। श्रवण,कीर्तन,स्मरण,वन्दन, सेवा में स्वयं को उपकरण का भाव, दास्यभाव से आत्मसमर्पण, इन्हें श्रद्धापूर्वक करने वाले जीव (दूसरी भक्ति के रूप में) भक्तिमार्गी कहे जाते हैं। उसी पुरुष ने अपने रमण के लिए स्वस्वरूप को प्रकट किया। उस रूप को रस से संवलित (मिश्रित), आनन्दरसमय ज्ञानी लोग बताते हैं। सब आनन्दरस जिससे प्रकट होते हैं। उन्हीं आनन्द रूपों में वह पुरुष रमण करता है। वही पुरुष स्वयं ही समाराधना में लगा। इस कारण उसने स्वयं ही समाराधन किया। अतः लोक-वेद में श्रीराधा नाम गाया जाता है। उस स्वरूप से जो सृष्टि हुई वह रसिकानन्द की सुसेव्यता को प्राप्त हुई। प्रमाण-प्रमेय वाले मार्ग से अतिरिक्त यह (तीसरी भक्ति) रसात्मक मार्ग है। जो इस मार्ग में आसक्त हैं, वे इस रसरूपिणी सृष्टि के भीतर जन्म लेते हैं। यह संवाद लक्ष्मीनारायण के बीच हुआ है॥ २॥

निरन्तरं नारायणो वैकुण्ठे रमया रहस्यलीलां सङ्गायमानोऽभवत्। रमारमणो वैकुण्ठे नारायणः स्वयं ध्यानापन्नोऽभवत्। तदा लक्ष्मीः रहस्युपासमाना तस्य तामवस्थां निरीक्ष्य प्रश्रयावनता पप्रच्छ। किं ध्यायसि? किं जपसि? परं कौतूहलं मे मनसि वर्तते। त्वत्तः परं को देवः? को लोकः? यस्य त्वं ध्यायसे प्रतिक्षणम्। तव मनः कां लीलामापन्नं दृश्यते? स होवाच लक्ष्मीं प्रति। महालीलास्थानं क्षराक्षराभ्यामधिकं पुरुषोत्तमाधिष्ठानम्। यत्र सप्तावरणानि तेजोमयानि। यत्र ब्रह्माण्डान्युत्पद्यन्ते लीयन्ते। कोटिश अण्डकटाहाः उत्पद्यन्ते लीयन्ते। यस्य प्रतापकल्पा उत्पन्ना ब्रह्मविष्णुरुद्रादयो देवाश्च दिक्पालाः कोटिश उत्पद्यमाना लीयमानाश्च भवन्ति। सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम्। अहो क्षराक्षराभ्यामधिकस्य रसिकानन्दस्य स्थानं विस्तरशो ब्रूहि॥ ३॥

श्रीनारायण वैकुण्ठ में रमा के साथ नित्य रहस्यलीला करते हैं। एक बार नारायण वैकुण्ठ में स्वयं ध्यानापन्न हुए। तब लक्ष्मीजी एकान्त में उपासना करती नारायण की उस अवस्था को देखकर विनयपूर्वक पूछने लगीं-प्रभो! (आप) किसका ध्यान करते हैं? किसको जपते हैं? मेरे मन में बड़ा कौतूहल है। आपसे बड़ा कौन देव है? कौन लोक है (आप) जिसका प्रतिक्षण ध्यान करते हैं। आपका मन किस लीला से ओत-प्रोत दिखता है। तब भगवान् नारायण लक्ष्मीजी से बोले—क्षर—अक्षर दोनों से अधिक पुरुषोत्तम संज्ञा वाला महालीला स्थान है, जहाँ तेजोमय सात आवरण हैं। जहाँ ब्रह्माण्ड उत्पन्न होते और लीन होते हैं। करोड़ों अण्ड कटाह उत्पन्न (और) लीन होते हैं। जिसके प्रताप—कल्प (तेजः समुच्चय) से उत्पन्न ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादि देव, दिक्पाल करोड़ों की संख्या में उत्पन्न और लीन होते रहते हैं। [**आज का विज्ञान भी यह स्वीकार कर चुका है कि इस सृष्टि में अगणित सृजन, पोषण तथा विनाश के चक्र चल रहे हैं। इसी तथ्य को पौराणिक-आलंकारिक भाषा में यहाँ व्यक्त किया गया है।**] उन लक्ष्मीजी ने पुनः प्रश्न किया— तब तो आप उस क्षर-अक्षर से अतीत रसिकानन्द वाले स्थान को विस्तार से बताइए॥ ३॥

स होवाच। आदौ पुरुषोत्तमस्य रसिकानन्दस्य अनादिसंसिद्धा लीलाः भवन्ति। अनादिरयं पुरुष एक एवास्ति। तदेव रूपं द्विधा विधाय समाराधनतत्परोऽभूत्। तस्मात् तां राधां रसिकानन्दां वेदविदो वदन्ति। तस्मादानन्दमयोऽयं लोकः। यत्रायं पुरुषो रमते तत्रायं रसो व्रजति। तस्माल्लोके वेदे व्रजलीला गीयते। तन्मध्ये वनानि द्वादश सन्ति। तेषां पृथक् नामानि सन्ति। तालवनं बृहद्वनं कुमुदवनं लोहवनं बकुलवनं भाण्डीरवनं महावनं गोष्ठं काम्यवनमरिष्टं च सदाशुभं दधिवनं बृन्दावनमिति। सदा आनन्दमयोऽयं लोको वेदविदो यं वदन्ति। यत्र बृन्दावनं सर्वकामसुखावहं भवति। यत्र वृक्षा आधिदैविका देवा एव भवन्ति। यत्र साधनवटभाण्डीरवटौ। यत्र वंशीवटसंकेतवटौ। अन्ये वृक्षाः कदम्बाद्या यत्र राजन्ते। यत्रोभयतटबद्धा यमुना रत्नखचिता आस्ते। यस्यां कुमुदवनानि राजन्ते। यस्यां हंससारसयूथानि क्रीडापराणि शोभाढ्यानि भवन्ति। यस्यास्तटे कोटिशः कुञ्जाश्च निकुञ्जाश्च राजन्ते। तस्मिन् मण्डले गोवर्धनोऽयं गिरिः रत्नमयोऽयं गिरिः राजमानो भवति। अयं गिरिः श्रीराधिकायाः रमणस्थानम्। स एवायं गिरिर्बृन्दावने सदा रसिकानन्दस्य क्रीडास्थानं भवति। तस्मिन् वने पशुपक्षिगणा आधिदैविकीं सृष्टिं प्राप्ताः सदा

सानुभवा भवन्ति। आधिदैविकी या सृष्टिः सा सृष्टिस्तस्मिन् लोके लोकतां प्राप्नोति। सा सृष्टिर्द्विभेदा भवति। एका संसिद्धा। अन्या साधनसिद्धा भवति। या संसिद्धा सा तस्या निकुञ्जदेव्याः स्वस्वरूपात् समुत्पाद्या भवति। या साधनसिद्धा सा भजनमार्गे प्रपन्ना। भक्तास्तां लीलां तद्भावेन प्राप्नुवन्ति॥ ४॥

भगवान् बोले– प्रारम्भ में रसिकानन्द पुरुषोत्तम की अनादि सिद्ध लीलायें होती हैं। यह अनादि पुरुष एक ही है। उसी रूप को दो भागों में बाँटकर समाराधन में तत्पर हुए। इस कारण वेदविद उन्हें रसिकानन्द व श्रीराधाजी के नाम से कहते हैं। इसी कारण यह आनन्दमय लोक है। जहाँ यह पुरुष रमता है, वहाँ यह रस भी उपस्थित रहता है। इससे लोक और वेद में ब्रजलीला गायी जाती है। वहाँ मध्य में बारह वन हैं, उनके नाम पृथक् पृथक् हैं। तालवन, बृहद्वन, कुमुदवन, लोहवन, बकुलवन, भाण्डीरवन, महावन, गोष्ठवन, काम्यवन, अरिष्टवन, सदाशुभदधिवन, वृन्दावन, ये नाम हैं। वेदविद् जिसे बतलाते हैं, ऐसा यह आनन्दमय लोक है। जहाँ वृन्दावन है, वह सब अभीष्ट सुख से पूर्ण है। जहाँ वृक्ष भी आधिदैविक देव ही होते हैं। जहाँ साधनवट भाण्डीरवट हैं। जहाँ वंशीवट-संकेतवट हैं। अन्य कदम्बादिवृक्ष जहाँ शोभा देते हैं। जहाँ दोनों ओर के तटों से आबद्ध यमुना रत्नजटित- सी प्रतीत होती है। जिसमें कुमुदों के वन सुशोभित हैं। जिस यमुना में हंस, सारसों के झुण्ड क्रीड़ा करते हुए बड़े शोभायमान होते हैं। जिस यमुना के तट पर करोड़ों कुञ्ज और निकुञ्ज विद्यमान हैं। उस मण्डल में गोवर्धन पर्वत है। यह पर्वत रत्नजटित- सा प्रतीत होता है। यह गिरि श्रीराधिकाजी का रमण स्थान है। यही पर्वत वृन्दावन में सदा रसिकानन्द का भी क्रीड़ा स्थान है। उस वन में पशु-पक्षिगण आधिदैविकी सृष्टि को प्राप्त हुए से अनुभव करते हैं। आधिदैविकी सृष्टि वहाँ लोक सृष्टि को प्राप्त होती है। वह सृष्टि दो प्रकार की है। पहिली संसिद्धा, दूसरी साधना सिद्धा। जो संसिद्धा है, वह उस निकुञ्जदेवी के स्वस्वरूप से उत्पन्न हुई है। जो साधनसिद्धा है, वह भजन मार्ग द्वारा प्राप्त हुई है। भक्त लोग उस लीला को तद्भाव होकर प्राप्त करते हैं॥ ४॥

[यम का अर्थ अनुशासन होता है। यमुना यम की बहिन है। दिव्य अनुशासन की वह धारा है जिसके अन्तर्गत सृष्टि चक्र चलता रहता है। उसके तट पर अर्थात् उसके प्रभाव क्षेत्र में करोड़ों निकुञ्ज सृष्टि की करोड़ों इकाइयों (आकाशगंगाओं) के पर्याय प्रतीत होते हैं। लीला नायिका एवं नायक का रमण-क्रीड़ा स्थल गोवर्धन पर्वत है। यह वह क्षेत्र है, जहाँ से गो-इन्द्रियों वाणी आदि के संवर्धन का तंत्र संचालित होता है। वहाँ के प्राणी आधिभौतिक नहीं, आधिदैविक हैं।]

रसलीलायामुपकरणानि रसलीलायामधिकरणे सख्यश्चातुर्यगुणयुताः ससखीसमूहा यौवनसंपत्तिपूर्णा अनेककलाकोविदाः रसभावेन पूर्णा भवन्ति। यत्र चन्दनवृक्षाणां श्रेणयो राजमाना भवन्ति। मणिविद्रुमलताग्रथिताः सुवर्णसुगन्धसंवलिता वृक्षास्तेषां पुष्पाणि संराजमानानि भवन्ति। तत्र सखीयूथानि भोज्यं हस्ते गृहीत्वा तिष्ठन्ति। तासु श्रेणिषु लतान्तैर्ग्रथितानि द्वाराणि मणिलतायुतानि भवन्ति । मणिमण्डलं यत्र तेजोमयं मणिमण्डपेन सह भ्राजमानं भवति। लताग्रथिता मणिस्तंभाः शतशो राजमाना भवन्ति। तस्मिन् मण्डपे परितः सुवर्णभित्तिषु जटिताः मणयस्तेजोमयाः संराजमाना भवन्ति। तत्राधित्यकासु चन्द्रकान्तमणिना

द्योतिता जलमणयो जलधाराश्च भवन्ति। तेन जलेन पूरिताः सुगन्ध मणिपुष्करिण्यो राजमाना भवन्ति। तत्र कमलानि प्रफुल्लानि श्वेतरक्तपीतानि मनोहरशोभां ददति। तत्रोपस्थितपरागस्तद्वनं वासयति। तत्र हंसयुग्मानि कोटिशो देववाण्या निकुञ्जदेव्या यशो गायन्ति। यत्र भ्रमराः सानुभवा देववाण्या निकुञ्जदेव्या यशो गायन्ति। तत्र पुष्करिणीः परितो दश दश मन्दिराणि चतुष्कोणेषु सन्ति। रत्नमयकुड्येषु कृत्रिमाः पक्षिणः सानुभवा इव दृश्यन्ते। तत्र मध्ये मध्ये वृक्षा निकुञ्जतां प्राप्नुवन्ति। सुकोमलैः पत्रैस्तेजोमयै राजन्ते। तेषां सुगन्धेन उन्मदा भ्रमरास्तस्याः श्रीराधिकाया यशो गायन्ति। तत्र केचित् वृक्षाः पुष्पैः शाखाप्रतिशाखाः नम्रा भवन्ति। तेषु वृक्षेषु हरितपीतशुभ्रश्वेता द्योतिताः पुष्पगुच्छा भवन्ति। तेषामधः शृङ्गारवत्यादयः सख्यः पुष्पाणां शय्यां रचयन्ति। तत्र लतान्तरैः आच्छादिता वृक्षा निकुञ्जतां प्राप्नुवन्ति। तत्र मणिजटितानि रमणस्थानानि कोटिशो राजन्ते। यत्र ललिता विशाखा सुभगा कलावती मनोरमा चन्द्रकलामोहिनी गतिरतिविलासिनी मोहिनी शास्त्रगीतज्ञा गुणज्ञा भोगज्ञा भोगप्रदा कामप्रदा कामदा केलिदा सुरतकलाकोविदा संभोगसुखदा गतत्रपा निःशङ्करतिदा सुतरां सुरतान्तनिद्रिता अन्याः कोटिशः सख्यः संविराजमाना भवन्ति॥ ५॥

रसलीला में उपकरण और अधिष्ठानरूप चतुर सखियाँ हैं, जो अपनी सखियों सहित यौवन से पूर्ण, अनेक कामकलाओं की जानकार हैं तथा रसभावपूर्ण हैं। जहाँ चन्दन वृक्षों की कतारें सुशोभित हैं। मणिविद्रुमरूप लताओं से ग्रथित सुवर्णरूप सुगन्ध से ओतप्रोत वृक्ष तथा उन पर पुष्प सुशोभित होते हैं। वहाँ सखियों का समूह हाथ में भोज्य पदार्थ लिए खड़ा होता है। उन पंक्तियों में अन्य लताओं से बनाए मणिचित्रित लता-द्वार हैं। जहाँ तेजोमय मणिमण्डल मणिमण्डप के साथ शोभित हैं। जहाँ सैकड़ों मणिस्तम्भ भी लताओं से लिपटे हुए विराजमान हैं। उस मण्डप में चारों ओर की सुवर्ण दीवारों में जड़ी मणियाँ देदीप्यमान हैं। वहाँ अधित्यकाओं पर चन्द्रकान्त मणि से द्योतित जल मणियाँ और जल धाराएँ शोभा देती हैं। उस जल से भरी, सुगन्धित मणि बावड़ियाँ शोभायमान हैं। वहाँ श्वेत रक्त-पीले कमल मनोहर शोभा प्रदान करते हैं। उन कमलों का पराग उस वन को सुवासित करता है। वहाँ करोड़ों हंस युग्म देववाणी में निकुञ्ज देवी का यशोगान करते हैं। जहाँ अनुभवयुक्त (जीवन्त) भौंरे देववाणी में निकुञ्ज देवी का यशोगान करते हैं। उस बावड़ी के चारों ओर दस-दस मन्दिर प्रत्येक ओर हैं। रत्नमय सुवर्ण निर्मित कृत्रिम पक्षी जीवित से प्रतीयमान होते हैं। बीच-बीच में कहीं-कहीं वृक्ष निकुञ्ज का आकार बन जाते हैं। जहाँ वे सुकोमल तेजोमय पत्तों को धारण किये हैं। उनकी सुगन्ध से उन्मत्त हुए भ्रमर भी श्रीराधिकाजी का यशोगान करते हैं। वहाँ कुछ वृक्ष शाखा- प्रशाखा तथा पुष्पों के भार से झुके हैं। उन सभी वृक्षों पर हरे, पीले, भूरे, श्वेत रंग के चमकदार पुष्पगुच्छ शोभित हैं। उनके नीचे शृंगारवती इत्यादि सखियाँ पुष्पों की शय्या रचती हैं। वहाँ लताओं से ढके वृक्ष निकुञ्ज बन जाते हैं। वहाँ करोड़ों मणिजटित रमणस्थान हैं। जहाँ ललिता, विशाखा, सुभगा, कलावती, मनोरमा, चन्द्रकलामोहिनी, गतिरतिविलासिनी, मोहिनी, शास्त्रगीत की विज्ञ, गुणज्ञ, भोगज्ञ, भोगप्रदा, कामप्रदा, कामदा, केलिदा, सुरतकला की पण्डिता, सम्भोग सुखदा, गतत्रपा, निःशङ्करतिदा, सुरत काल में ही सो जाने वाली, अन्य करोड़ों सखियाँ विराजित हैं॥ ५॥

[सृष्टि की रसमय लीला के क्रम में प्रकृतिगत जो विविध सहयोगी धाराएँ कार्यरत हैं, उन्हें सखियों के रूप में अनुभव किया गया है। जिस स्थान से विश्व की सारी श्री-समृद्धि का उद्भव

होता है, उसके वर्णन में भाव असमर्थ-से सिद्ध होते हैं। अस्तु; भक्त उन्हें आलंकारिक भाषा में व्यक्त करने का प्रयास करते हैं। जैसे किसी अनिर्वचनीय पीड़ा को करोड़ों बिच्छुओं के दंश की उपमा से व्यक्त करने का प्रयास किया जाता है, उसी तरह यहाँ उस दिव्य श्री-समृद्धि को व्यक्त करने का प्रयास किया गया लगता है। आगे के वर्णन भी इसी प्रकार के हैं।]

दश मन्दिराणि भक्ष्यभोज्यैः संपूरितानि भवन्ति। यत्र घृतपक्वानि पक्वान्नान्यनेकशो विविधरसयुक्तानि सन्ति। तेषु मन्दिरेषु कटुतिक्तकषायमाधुर्यरसा भोगवत्या सख्या कृताः संपूर्णाःप्रतिक्षणं नूतना भवन्ति। अत्रे सिद्धान्नभोगापूपपायसपक्वान्नभागाः शाकविविधषड्रससंवलिता अन्नपूर्णया सख्या संपादितास्तया निकुञ्जदेव्या सेव्यमाना भवति। वस्त्रवत्या सख्या संपादितान्यनेकशो वस्त्राणि समयोचितानि मनोरमाणि सन्ति। भूषणभूष्या सख्या रचितानि भूषणानि तस्या निकुञ्जदेव्याः प्रीणनाय तेषु मन्दिरेषु शय्याभोजनशृङ्गाराः कोटिशः सन्ति। तत्रान्ये शृङ्गारादिभोगा भोगवत्या कृतास्तेषु मन्दिरेषु तस्याः सुखार्थं भवन्ति। तत्र चतुःश्रेणीनि दशदशमन्दिराणि सन्ति। तेषु मन्दिरेषु शय्याभोजनशृङ्गारा अनेकधा रचिता भवन्ति। तेषु मन्दिरेषु सखीनां समूहाः पृथक् पृथक् कार्येषु संलग्ना भवन्ति। तेषां मध्ये रासमण्डलं तेजोमयमानन्दमयं तस्याः श्रीराधिकायाः सुखार्थं बृन्दानाम्ना सख्या तया संपादितं भवति। तेषु मन्दिरेषु सखीनां एका योगमाया सखी सर्वासां सखीनां सर्वत्र एकभावं करोति। तस्मिन् स्थाने सुनादाः सख्यः सुनादेन सप्तस्वराणि श्रावयन्ति। तत्र ब्रह्माण्डे याः सिद्धयोऽणिमादयस्तत्र सखीरूपं विधाय तां श्रीराधिकां सेवमाना भवन्ति। सुमेरुहेमाद्रिमलयाद्याः पर्वता अन्ये ये निधयो देवानां सन्ति ते निधयस्तस्याः निकुञ्जदेव्याः प्रीणनाय सखीनां रूपाणि विधाय तन्मण्डलं सेवन्ते। तस्मिन्मण्डले श्रीरपि सखीरूपं विधाय आकारं गोपयन्ती सेवमाना भवति। नित्यलीलायां षड्तवोऽपि सखीनां रूपाणि विधाय सेवमाना भवन्ति। काले काले तासु निकुञ्जश्रेणिषु सञ्चारिणीनां नानाभोगान् ददति। मेघा नाना सखीनां रूपाणि कृत्वा जलसेचनं कुर्वन्ति। कामदेवोऽपि सखीरूपं विधाय तत्स्थानं सेवमानो भवति। अहोरात्रमपि स्वस्वरूपेण अहनि निशि च सेवते। तन्मण्डलम्। तदिच्छया क्वचिद्दिवा क्वचिन्निशा क्वचित्प्रातः क्वचित्सायं क्वचिन्मध्याह्नः क्वचिन्निशीथं नानाभावेन काले-काले तन्मण्डलं सेवते। नानामणय ओषधयो वनस्पतयो वृक्षा ये पृथिव्यां सन्ति ते आधिदैविकीं सृष्टिं प्राप्ताः सेवमाना भवन्ति। सिन्धवः स्वरूपेण निधीन् गृहीत्वा तन्मण्डलं सेवमाना भवन्ति। सुमेरुहेमाद्रिमलयाद्याः पर्वताः तत्स्थानं सेवमाना भवन्ति। सखीरूपेणात्यन्तमणिज्योत्स्नाभिर्यत्र तत्र अन्ये च ब्रह्माण्डवर्तिनस्तत्स्थानं दीपयन्तो भवन्ति॥ ६॥

दस भवन भक्ष्य-भोज्यों से भरे हुए हैं। जहाँ घी से बने अनेक रसों से युक्त विविध भाँति के पकवान उपलब्ध हैं। उन भवनों में भोगवती सखी द्वारा निर्मित कटु, तिक्त, कषाय, माधुर्य रस निष्पन्न पदार्थ प्रतिक्षण ताजे ही रहते हैं। अन्न में सिद्धान्न भोग- अपूप-पायस (खीर) पूरी इत्यादि विविध स्वादों वाले शाकादि पदार्थ अन्नपूर्णा सखी द्वारा निर्मित विराजमान रहते हैं, जो निकुञ्ज देवी से सेवन किये जाते हैं। वस्त्रवती सखी द्वारा निर्मित अनेक प्रकार के ऋतु अनुकूल मनोहारी वस्त्र वहाँ विद्यमान रहते हैं। उन भवनों में भूषण भूष्या सखी द्वारा निर्मित आभूषण तथा करोड़ों शय्या, भोजन, शृंगार सामग्री निकुञ्ज देवी की प्रसन्नता के लिए हैं। उन भवनों में भोगवती द्वारा रचित अन्य शृङ्गारादि भोग उस (निकुञ्ज देवी) के सुखार्थ हैं। वहाँ चार पंक्तियों में चारों ओर दश-दश भवन हैं, जहाँ शय्या, भोजन, शृंगार की विविध सामग्री विद्यमान है। उन भवनों में सखियों के समूह पृथक्-पृथक् कार्यों में लगे होते हैं। उन भवनों के बीच में तेजोमय आनन्दमय रासमण्डल है, जो श्रीराधा जी के सुख के

लिए वृन्दा नाम की सखी द्वारा निर्मित है। उन भवनों में योगमाया नाम की सखी सबका एकीभाव (सबको एकजुट करके) रखती है। वहाँ सुनादा आदि सखियाँ सुन्दर स्वर में सात स्वरों को सुनाती हैं। ब्रह्माण्ड की अणिमादि सिद्धियाँ सखीरूप धारणकर श्रीराधिकाजी की सेवा करती हैं। सुमेरु आदि पर्वत तथा देवों की अन्य निधियाँ निकुञ्ज देवी को प्रसन्न करने के लिए सखियों का वेश बनाकर उस मण्डल की सेवा करते हैं। उस मण्डल में लक्ष्मी भी सखीरूप बनाकर, स्वयं का रूप छिपाती हुई उपस्थित होती हैं। नित्यलीला में छः ऋतुएँ भी सखियों का रूप बनाकर सेवा करती हैं। समय-समय पर उन निकुञ्ज पंक्तियों में रमण करती हुई सखियों को नाना भोग उपलब्ध कराती हैं। मेघ भी सखियों का रूप बनाकर ही जलसिञ्चन करते हैं। कामदेव भी सखी रूप में ही उस मण्डल की सेवा में रहता है। दिन-रात भी अपने-अपने स्वरूप से मण्डल की सेवा करते हैं। उनकी इच्छा से कहीं दिन, कहीं रात्रि, कहीं प्रातः, कहीं सायं, कहीं मध्याह्न, कहीं अर्धरात्रि, नाना भावों में समय-समय पर, उस मण्डल की सेवा करते हैं। नाना मणियाँ, ओषधियाँ, वनस्पतियाँ, वृक्ष समूह जो भी पृथिवी पर हैं, वे सब आधिदैविक सृष्टि को प्राप्त हुए उस मण्डल की सेवा करते हैं। सागर निधियों (रत्न आदि) को धारण कर उस मण्डल की सेवा करते हैं। सुमेरु, हेमाद्रि, मलय आदि पर्वत उस स्थान की सेवा करते हैं। ब्रह्माण्डवर्ती अन्य मणि, ज्योत्सना आदि पदार्थ सखीरूप धारणकर उस स्थान को जगमगाते हैं॥ ६॥

पृथिव्यां यत्किञ्चिद्वस्तुमात्रं तस्याधिदैविकं रूपं तत्रैवास्ति। तस्मात्सर्वं समुत्पन्नं भवति। ब्रह्माण्डे ये देवास्ते आधिदैविकेन रूपेण तत्स्थानं सेवमाना भवन्ति। तस्मात्ते सर्वे समुत्पन्ना ब्रह्माण्डे भवन्ति। वेदाः स्वऋचाभिस्तस्मिंस्थाने तस्या निकुञ्जदेव्या यशो गायन्ति। कामदुघाः स्वयूथेनाधिदैविकं रूपं विधाय संसेवन्ते। दधिदुग्धतक्रनवनीतघृताद्यान् रसान् गृहीत्वा सेवमाना भवन्ति। तत्र रासमण्डलमेतैर्गुणैरन्यैर्विविधैः संपूरितं रसिकानन्देन सह श्रीराधिकां सेवमानं भवति। यस्य रासमण्डलस्य परितः स्थानानि द्वादश संशोभमानानि भवन्ति। एकं मज्जनस्थानम्। यत्रोष्णोदकपुष्करिण्यो जलैः संपूर्णा भवन्ति तत्र मज्जनवत्यादयः सख्यो मज्जनार्थं सेवमाना भवन्ति। तत्रान्याः पुष्करिण्यः शीतोदकपूर्णा भवन्ति। तत्र निकुञ्जानां श्रेणयो रत्नालवालैश्चन्द्रोद्भवैर्जलैः सेव्यमाना भवन्ति। तत्रान्याः पुष्करिण्यः शीतोदकपूर्णा भवन्ति। चन्द्रकान्तमणेरुत्पन्नैर्जलैः सेव्यमाना मुक्तालता मुक्तागुच्छैः संपूरिता भवन्ति। मणिलतासु ज्योत्स्नायां प्रतिबिम्बिताः पक्षिणः परस्परं दृष्टिबन्धेन नृत्यं कुर्वन्ति। द्वितीयं शृङ्गारस्थानम्। यत्र शृङ्गारवत्या सख्याअधिश्रितम्। तस्मिन् स्थाने अधिश्रिता रङ्गवत्यादयः सख्यो मोदन्ते। तृतीयं मानस्थानम्। यत्र मानवत्यादयः सख्यो मानं रचयन्ति। यस्मिन् मन्दारवृक्षाः सुवर्णलताः सुगन्धा ग्रथिता भवन्ति। तेषु वृक्षेषु पुष्पाणि सुगन्धसंवलितानि भवन्ति। लतान्तैराच्छादितं स्थानं सुगन्धसंवलितं मनोरमं तेजसा दीप्यमानं भवति। हरितपीतच्छायाभिः संयुतं तेजसा दीप्यमानं भवति। मन्दारनिकुञ्जाः श्रीराधिकाया अधिष्ठानम्। यमुनायास्तीरे धीरसमीरे एकवटश्चकास्ति। तस्य वटस्य परितो निकुञ्जानां श्रेणयोराजमाना भवन्ति। द्वादश निकुञ्जाः सन्ति। सखीनां सञ्चाराः सूक्ष्मतरा लतान्तैर्ग्रथिता भवन्ति। तत्र ललितादयः सख्यो रसिकानन्देन सह

वचनप्रतिवचनोत्तरं ददति। कुञ्जान्तरश्रेणिषु सखीनां मध्यसञ्चारोऽस्ति। रसिकानन्दः पुरुषोत्तमः। स्वयमेव प्रणिपातं करोति। स्वामिनी मनोरमा निकुञ्जे स्वयमेवातिमानातुरतया मनोभावापन्ना भवति। स्वभावसंसिद्धाः सख्यो भावापन्ना भवन्ति। अतिरसलंपटो रसिकानन्दः सर्वासां सखीनां प्रणिपातं करोति। अत्यन्तमग्नाः सख्यस्तत्सुखं निरीक्ष्य सुरतानन्दे मग्ना भवन्ति॥ ७॥

पृथिवी पर जो कुछ भी है, वह सब आधिदैविक रूप में वहाँ विद्यमान है। उसी से सब कुछ उत्पन्न होता है, ब्रह्माण्ड में जो देव हैं, वे भी आधिदैविक रूप में वहाँ विद्यमान हैं। उसी से उत्पन्न हुए भौतिक रूप में आते हैं। वेद वहाँ अपनी ऋचाओं से निकुञ्ज देवी का यशोगान करते हैं। कामधेनुओं का समूह आधिदैविक रूप से वहीं सेवा करता है। घृत, दुग्ध, दधि, तक्र (छाछ), नवनीत इत्यादि रसों से वहाँ सेवा देता है। इन गुणों से तथा अन्य विविध गुणों- रसों से संयुक्त रासमण्डल रसिकानन्द के साथ भी श्रीराधिकाजी की सेवा करता है। उस रासमण्डल के चारों ओर बारह स्थानों पर सेवा- सामग्रियाँ हैं। एक मज्जन (स्नान) स्थान है जहाँ पर कुछ गर्म जल वाली बावड़ियाँ जल से पूर्ण हैं, वहाँ मज्जनवती आदि सखियाँ स्नानार्थ सेवा करती हैं, वहीं अन्य बावड़ियाँ शीतजल से भरी हैं। वहाँ निकुञ्जों की पंक्तियाँ रत्नों के आलबालों (थावलों) में चन्द्रमा की किरणों से पैदा होने वाले जलों से सिक्त रहती हैं। कुछ अन्य बावड़ियाँ भी शीतल जलों से युक्त चन्द्रकान्तमणि से उत्पन्न जल से पूर्ण हैं तथा उनमें प्रतिबिम्बित लताएँ और उनके गुच्छक मोती की लताओं और गुच्छकों से भरी प्रतीत होती हैं। मणि लताओं में चन्द्रमा में प्रतिबिम्बित पक्षी परस्पर दृष्टि बाँधकर (समन्वय पूर्वक) नाचते हैं। दूसरा शृंगारस्थान है, जो शृंगारवती सखी के आश्रय में है। वहाँ रङ्गवत्यादि सखियाँ प्रसन्नतापूर्वक अपनी सेवा प्रदान करती हैं। तीसरा मानस्थान है, जहाँ मानवती आदि सखियाँ मान रचती हैं, जिसमें मन्दार वृक्ष, सुवर्ण लताएँ सुगन्ध से ग्रथित हैं। उन वृक्षों के फूल भी सुगन्धित हैं। लतान्तरों से आच्छादित स्थान सुगन्धित, हरी-पीली छाया से संवलित दिव्य तेज से प्रकाशित है। मन्दार के निकुञ्ज श्रीराधाजी के अधिष्ठान हैं। यमुना के किनारे मन्द सुगन्ध वायु में एक वट शोभायमान है। उस वट के चारों ओर निकुञ्जों की पंक्तियाँ विराजमान हैं। बारह निकुञ्ज हैं। सखियों के संचार भी सूक्ष्मतर रूप में उन लतान्तरों में ग्रथित हैं। वहाँ ललिता आदि सखियाँ रसिकानन्द के साथ कथनोपकथन करती हैं। कुञ्जों के अन्दर श्रेणियों में सखियों के बीच संचार होता रहता है। रसिकानन्द पुरुषोत्तम स्वयं ही प्रणाम करते हैं। स्वामिनी मनोरमा निकुञ्ज में आतुरता से अति मान-मनोभावों से पूर्ण हैं। स्वभाव संसिद्धा सखियाँ भावापन्न हो जाती हैं। अतिरसलम्पट रसिकानन्द सब सखियों को प्रणाम करते हैं। अत्यन्त हर्षमग्न हुई सखियाँ उस दृश्य को देखकर सुरतानन्द में डूब जाती हैं॥ ७॥

[पृथिवी पर जो भी कुछ आधिभौतिक (प्रत्यक्ष) रूप में है, वह सब उक्त लोक में आधि दैविक (सूक्ष्म प्रीटामिक स्टेज) रूप में विद्यमान है। परम पुरुष तथा चित्शक्ति के रस विलास के रूप में उन सभी का प्राकट्य और विस्तार होता रहता है।]

चतुर्थं भोगस्थानम्। यत्र सुभोज्या सख्या सेवितम्। यत्र खाद्यपेयलेह्यचोष्यरसा अनेकस्वादुयुताः भवन्ति। अन्नपूर्णया सख्या पाचितानन्नरसानत्युष्णान् सद्यः पाचितानिव श्रीराधिकया सह रसिकानन्दः सेवते। अगुरुरसांस्तैलरसान् पुष्परसान् नानासुगन्धरसान् श्रीराधिकया सह रसिकानन्दः संसेव्यमानो भवति। अन्ये ताम्बूलादयो लवङ्गकर्पूरादय एलाजातीफलपूगफलनारिकेलपनससहकारभद्राक्षेक्षुरसैः शर्करादयः पिष्टरसपूर्णतया

निकुञ्जदेव्या संसेव्यन्ते। ललिता रङ्गवती भोगवती प्रेमोत्कण्ठा सुरतानन्दा सुरतरसकोविदा चेति सख्यः श्रीराधिकया दत्तं प्रसादं भुञ्जते। तत्रैकं रसिकानन्दशृङ्गारस्थानम्। यत्र पारिजातकवृक्षाः सदा पुष्पैः प्रफुल्लिता नम्रा भवन्ति। तत्र सुगन्धसुवर्णलताभिः संवलितं भवति। सुगन्धमुक्तालताभिः पारिजातकवृक्षा ग्रथितनिकुञ्जतां प्राप्नुवन्ति। तत्र एको भ्रमरो देववाण्या चातुर्येण मानस्थाने राधिकां प्रति दूतत्वं करोति। स भ्रमरो रसिकानन्दं प्रति प्रियो भवति। स भ्रमरः स्वचातुर्येण श्रीराधिकाया मानापकरणं करोति। स भ्रमरोऽत्यन्तमनोहरचातुर्यासीमगुणज्ञः स्वभावसंसिद्धः साधनसिद्धो भवति। स भ्रमरो रसिकानन्दस्य दूतो भवति। निरन्तरं श्रीराधिकायाः मानलीलायां सहकारी भवति। तस्माद्रसिकानन्दस्यातितरां वल्लभो भवति। तेऽत्र भ्रमरा मनोहरशब्देन सङ्गीतरसं गमयन्ति॥ ८॥

चौथा भोग स्थान है, जो सुभोज्या नामक सखी से अधिष्ठित है। जहाँ खाद्य, पेय, लेह्य, चोष्य विविध रसों और स्वादों से पूर्ण पदार्थ हैं। अन्नपूर्णा सखी द्वारा पकाये गर्म और ताजे इन पदार्थों का श्रीराधिकाजी के साथ रसिकानन्द सेवन करते हैं। अगररस, तैल रस, षुपरस तथा नाना सुगन्ध रसों का रसिकानन्द श्रीराधाजी के साथ सेवन करते हैं। अन्य ताम्बूल आदि लौंग, कपूरादि इलायची, जायफल, सुपारी, नारियल, पनस, आम्र, भद्राक्ष, इक्षु रसों से शक्कर इत्यादि पीसे हुए रूप में निकुञ्ज में देवी से सेवित होते हैं। ललिता-भोगवती-रङ्गवती, प्रेमोत्कण्ठा, सुरतानन्दा, सुरतरसकोविदा ये सखियाँ श्रीराधाजी से दिये प्रसाद को पाती हैं (खाती हैं)। वहाँ एक रसिकानन्द शृंगारस्थान है, जहाँ पारिजात वृक्ष सदा खिले फूलों के साथ नम्र होते हैं। वहाँ सुगन्धित सुवर्ण लताओं से लिपटे हुए पारिजात वृक्ष निकुञ्ज का रूप बन जाते हैं। वहाँ एक भ्रमर [**यह भ्रमर लीलापुरुष की सृजनात्मक मानसतरंग का परिचायक है, जिसके सतत गुंजन से प्रकृति को सृष्टिलीला के ताने-बाने बुनने की प्रेरणा मिलती रहती है।**] देववाणी में चतुरता से मान स्थान पर राधिकाजी के प्रति दूत कार्य करता है। वह भौंरा रसिकानन्द को अतिप्रिय है। वह भ्रमर अपने चातुर्य से श्रीराधाजी के मान को दूर करता है। वह भ्रमर अत्यन्त मनोरम, चातुर्यसम्पन्न, असीम गुणज्ञ, स्वभाव-संसिद्ध तथा साधनसिद्ध है। वह भ्रमर रसिकानन्द का दूत है। निरन्तर श्रीराधिकाजी की मान लीला में सहायक होता है। इसीलिए रसिकानन्द को बहुत प्यारा है। अन्य भ्रमर मनोहर शब्द से सङ्गीत रस प्राप्त कराते हैं॥ ८॥

तत्रैकः शुकः साधनसिद्धः श्रीराधिकाया मानस्थाने मन्दारनिकुञ्जे निवसति। तेन शुकेन भ्रमरचातुर्यं निरीक्ष्य तस्या निकुञ्जदेव्याः कृपां निरीक्ष्य अत्याश्चर्यं प्रपेदे। स भ्रमरस्तेन शुकेन पृष्टः अहो अले त्वं कः? केन साधनेन त्वयेदं रूपं प्राप्तम्? कथं श्रीरसिकानन्दस्य श्रीराधिकाया दूतत्वं प्राप्तः? अलिरुवाच। अहो शुक त्वं पूर्वं कोऽसि? केन साधनेनेदं लीलास्थानं प्राप्तम्? शुक उवाच। अहं पूर्वं ब्राह्मणोऽस्मि। विष्णोरुपासककुलोत्पन्न एकात्मभावेन मम मनो हरिं भजमानं भवति। एकस्मिन् वासरेऽस्मि ब्रह्मलोकं गतः। तत्रानन्यमार्गीयाभक्ताः मया दृष्टाः। रसमार्गीया भक्ता मया दृष्टाः। तेषां सङ्गमेन मया निकुञ्ज लीला अनुभूताः। तत्रारिष्टे श्रीराधाकृष्णपुष्-करिण्युद्भवां मृत्तिकां भक्षयता तत्र निरन्तरक्रीडास्थलं मया श्रुतं पूर्वम्। अस्या

मृत्तिकायाः माहात्म्यं महालीलायाः प्राप्तेः कारणम्। भ्रमरो वदति। त्वया किं श्रुतमस्या माहात्म्यम्? शुक उवाच। श्रीरसिकानन्देन वन्दितम्। श्रीराधिकायाः प्रेमवत्यादयः सख्यस्तस्मात्स्थानात्समुत्पन्नाः। स्वयमपि तस्मिंस्थले रासलीलायाः प्रारम्भः कृतः। तस्मिन् काले श्रीरसिकानन्देन स्वयमेव वन्दितं तपसा ध्यानेनाधिकृतम्। तस्माल्लोके वेदे वन्दितमिदं स्थानम्। अस्य स्थानस्य मृत्तिका मया अनुभूता। तेनेदं स्थानं प्राप्तम्। इदं शरीरं तया मृत्तिकया पुष्टं साधनसिद्धं जातम्॥ ९॥

वहाँ एक तोता साधन-सिद्ध हुआ श्रीराधिकाजी के मान-स्थान मन्दार निकुञ्ज में रहता है। वह शुक उस भ्रमर के चातुर्य और श्रीराधिकाजी की उस पर कृपा को देखकर अत्यन्त आश्चर्यान्वित हुआ। तोते ने भौंरे से पूछा– भैया तुम कौन हो ? किस साधन से यह रूप प्राप्त हुआ है। कैसे तुम्हें यह दूतता प्राप्त हुई है। भौंरा बोला– अच्छा शुक पहले तुम बताओ कि पूर्व में तुम कौन थे, किस साधन से तुम्हें यह लीला स्थान प्राप्त हुआ है ? शुक बोला– मैं पहले ब्राह्मण था। विष्णु उपासक कुलोत्पन्न हुआ एकात्म भाव से मन हरि में लगा था। एक दिन ब्रह्मलोक गया। वहाँ अनन्य मार्ग वाले भक्त खड़े देखे। रसमार्गीय भक्त देखे। उनके साथ मैंने भी निकुञ्ज लीला का अनुभव किया। उस निरापद निरन्तर क्रीड़ा स्थल में राधाकृष्ण द्वारा पुष्करिणी की मिट्टी को खाये जाते हुए मैंने सुना। इस मिट्टी की महिमा से इस महालीला की प्राप्ति होती है। भौंरा कहता है– तुमने इसका क्या माहात्म्य सुना ? शुक बोला– श्रीरसिकानन्द के द्वारा यह वन्दित है। श्रीराधिकाजी की प्रेमवती आदि सखियाँ इस स्थान से उत्पन्न हुई हैं। स्वयं भी उस स्थल पर रासलीला का प्रारम्भ किया। उस समय तप और ध्यान से अधिकृत इस स्थान को श्रीरसिकानन्द ने स्वयं वन्दित किया। अतएव यह स्थान लोक-वेद में वन्दित है। इस स्थान की मिट्टी का मैंने अनुभव किया है। उसी से यह स्थान प्राप्त हुआ है। यह शरीर भी उस मिट्टी से पुष्ट हुआ साधन सिद्ध हो गया॥ ९॥

अहो भ्रमर त्वं कथय यदि रुचिः स्यात्। अलिरुवाच। अहमपि पूर्वं गौडदेशोद्भवकायस्थः। वैष्णवोऽहं निरन्तरं प्रेमाधिक्येन रसिकानन्दं सेवमानोऽभवम्। गुर्वनुग्रहेण साधूनां रसमार्गीयाणां सङ्गेन मया रसमार्गरूपा कथाश्रुता। तेषां साधूनां सङ्गो मयानुभूतः। तत्कथाद्वारेण मम हृदि प्रविष्टो रसः। अहं रसलीलायां प्रपन्नोऽभवम्। रसलीलायां प्रवृत्तिरन्यधर्मविस्मारणपूर्विका जाता। तस्याः सेवाकथायां प्रत्ययो बभूव। ये रसमार्गीया भक्तास्तेषां सम्बन्धालापकीर्तनगोष्ठीमार्गानुभावान्मनो भावमापन्नं प्रेमाधिक्यं सुखसंपत्तिः इष्टतमवस्तुपात्रदेहादि यत्किञ्चित् समर्पयेदिति। इत्यानुभविकेन मार्गेण भक्तैस्सह व्रजलोके प्राप्तोऽहं सर्वसङ्गरिक्तोऽभवम्। तस्मिन् व्रजमण्डले निवसन्नहं प्रतिकक्षं प्रतिकुञ्जं तां लीलां चिन्तयमानस्तद्भावापन्नो भवामि। तद्भक्तैः सह देहादिसुखं ततो ग्राह्यं ततो देयमिति मनसा वाचा तैः सह कालोऽज्ञातकालविषयोऽयते। एवं मम धर्मः सिद्धो भवति। सिद्धधर्मेण शरीरं साधनसिद्धं बभूव। तदा ममाभिलाषो मनस एवं भूतो भवति। येनाभिलाषेणाहं भ्रमररूपेण तस्या निकुञ्जदेव्या यशः सङ्गायामि। पश्चात्प्रसन्नेन रसिकानन्देन तया देव्या मनसेप्सितं रूपं दत्तम्। इदं मान्यस्थानं दत्तम्॥ १०॥

अरे भ्रमर! तुम भी अपनी कहो, यदि रुचि हो, तो। भ्रमर बोला– मैं भी पहले गौड़ देशोद्भव कायस्थ था। मैं वैष्णव निरन्तर प्रेमाधिक्य से रसिकानन्द की सेवा करता था। गुरु की कृपा से रसमार्गी साधुओं के सङ्ग से मैंने रसमार्ग रूपी कथा सुनी। उन साधुओं के संग का अनुभव किया। उस कथा के द्वारा मेरे हृदय में रस प्रवेश कर गया। मैं रसलीला में परिपक्व हो गया। इस लीला की प्रवृत्ति ने अन्य सभी बातों को भुला दिया। उसकी सेवा कथा में विश्वास हो गया। रसमार्गी भक्तों के सम्बन्ध से उनके साथ बातचीत-कीर्तन गोष्ठी-मार्ग में साथ चलने से मन भावापन्न हो गया। प्रेम का आधिक्य ही सुख – संपत्ति है, इस आधार पर भक्त इष्टतम-वस्तु पात्र, देह आदि सब कुछ समर्पण कर दे, यह अनुभव करता हुआ मार्ग से चलकर भक्तों के साथ व्रजभूमि को प्राप्त हुआ और सभी आसक्तियों से रहित हो गया। उस ब्रजमण्डल में रहता हुआ, प्रतिकक्ष में, प्रतिकुञ्ज में उस लीला का चिन्तन करता हुआ, उस भाव में मग्न रहता। उन भक्तों के साथ देहादि सुख-दुःखों का समान अनुभव करते हुए समय सीमा का ज्ञान भी न रहा। इस प्रकार मेरा धर्म सिद्ध होता रहा। सिद्ध धर्म से शरीर साधना-सिद्ध हो गया। तब मेरे मन में इच्छा जाग्रत् हुई कि मैं भ्रमर रूप से उन निकुञ्ज देवी का यश गाऊँ। बस प्रसन्न होकर रसिकानन्द और उन देवी ने मुझे मनचाहा रूप दे दिया, यह मान्य स्थान भी दिया॥ १०॥

अहो शुक अहमस्मिन् स्थाने श्रीराधिकाया वने क्रीडापरो भवेयमिति। तद्वृन्दावनं सर्वकालसुखसमृद्धिसंपूर्णं श्रीराधिकया सदा सेवितं रसिकानन्देन सह। तस्मिन् वायवः शीतमन्दसुरभिभावेन सेवमानाः सन्ति। तत्र स्थाने अमृतोदा पुष्करिणी आस्ते। तासु पुष्करिणीषु कन्दुकलीलया श्रान्ताः सख्यो मज्जनं कुर्वन्ति। अतितरां सितजलकल्लोलैर्मज्जनक्रियायां तस्मिन्नत्यन्तरसमग्नानि हंसयूथानि राजन्ते। उपरि पक्षिणां पंङ्क्तिः कलकण्ठैः सेव्यमाना अभ्येति। अतितरामानन्दमग्नाः सखीनां गणा गुणगणान् सङ्गायमाना भवन्ति। तत्रोपर्येकं शृङ्गारस्थलं मन्दिरमस्ति। एकं भक्ष्यभोज्यस्थलमस्ति। एकं सखीसङ्गमोपवेशताम्बूलसुगन्धरससेवनायैवेति। एकं शय्यागृहं सुगन्धमणिमयभोगान्वितम्। आधिदैविकेन रूपेण कामः सखीरूपं विधाय स्वयमेव सेवमान आस्ते। रतिसंभोगातिकलाकौतुकानि नेत्रहावभावकटाक्षसंवलितकाम-रसभावभेदानि संयोक्ष्यमाणकामरससुखसंपत्तियोग्यतां मनोभवः संयोक्ष्यमाणसुखं च पिबति। नित्यं नित्यनूत्नभावभेदशृङ्गारं नूत्नम्। रूपं नूत्नम्। क्रीडा नूत्ना। वचनं नूत्नम्। प्रतिक्षणं प्रतिक्षणं नूत्नमेव सुखं सखीनाम्। नूत्नः सर्वो भाव आस्ते॥ ११॥

अरे शुक! मैं इस स्थान पर श्रीराधाजी के वन में क्रीड़ापरायण रहा हूँ। यह वृन्दावन सब समय सुख-समृद्धि से पूर्ण श्रीराधिकाजी के साथ रसिकानन्द से सेवित है। वहाँ शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु बहती है। वहाँ अमृत जल से भरी पुष्करिणियाँ (झीलें) हैं। उनमें कन्दुक लीला से थकी सखियाँ स्नान करती हैं। मज्जन क्रिया में श्वेत जल से कल्लोल करते हंसों के समूह भी सुशोभित होते हैं। ऊपर आकाश में पक्षियों की पंक्तियाँ कल-कण्ठों से गीत गाती, सेवा करती हैं। अत्यन्त आनन्द में मग्न सखियों के समूह राधा युगल का गुणगान करते हैं। वहाँ ऊपर एक शृंगार स्थल है, एक भक्ष्य-भोज्य स्थल है, एक सखियों द्वारा बैठकर गपशप करने तथा पान-सुपारी-सुगन्ध रस सेवन करने का स्थल है। एक शय्यागृह है, जहाँ सुगन्धित मणिमय भोग विद्यमान है। आधिदैविक रूप से कामदेव [**उपनिषद्कार यहाँ स्पष्ट रूप से यह उल्लेख कर रहे हैं कि यह समस्त**

लीला आधिदैविक है। यहाँ कामदेव-सृष्टि उद्भव की कामना के प्रतीक हैं।] सखी का रूप बनाकर वहाँ स्वयं सेवा करता है। रति संभोग [**संभोग चेतना एवं पदार्थ के सूक्ष्मकणों के एकीकरण से जीव-जगत् के प्रादुर्भाव की प्रक्रिया है।]** काल के कला- कौतुकों को नेत्रों के हावभाव, कटाक्षों से युक्त कामरस के भाव-भेदों के साथ प्रयुक्त होती हुई कामरस- सुखसम्पत्ति-योग्यता को कामदेव स्वयं प्रयुज्यमान होकर पीता है। नित्य नये भाव-भेदानुसार श्रृंगार नया है। नित्य नया रूप है। नई क्रीड़ाएँ हैं। नये-नये कथनोपकथन हैं। प्रतिक्षण सखियों को नये-नये सुखों की अनुभूति होती है। सारा भाव नित्य नयापन लिये होता है॥ ११॥

एकादशश्रेणयः सदा वसन्तस्थानम्। किंशुकवकुलाम्रवृक्षाः शोभायमानलवङ्गलता-परिशीलिता अत्यन्तं निगूढगुच्छपुष्पपरागा भवन्ति। उन्मदकोकिलभ्रमरसूक्ष्मस्वरसङ्गीयमानानि सखीनां यूथानि केशबन्धनवस्त्राण्य-तिरञ्जितानि शोभामातन्वन्ति। कलगीतानि वसन्तोद्भवानि सङ्गीयन्ते। तस्मिन् स्थाने सदा कौतुकविष्टा गोप्यः केसरकर्पूरमृगमदागुरुरसान् सेचयन्त्यो भवन्ति। परस्परं हस्तैः कनकखचितजटिताः सर्वाः कन्या मृगमदकर्पूररसं सिञ्चन्त्य आपद्यन्ते। अभिलिम्पन्त्यः परिमृजन्त्यः अञ्जन्त्यो लोचने काश्चित् काश्चित् गानं गायन्त्यो गोप्यः तां व्रजेश्वरीं व्रजनायिकां ताः सख्यो वेषशृङ्गारशोभासंराजितामशोभयन्त। तस्मिन् वसन्तऋतुः सखीरूपं विधाय तां व्रजेश्वरीमुपसेवमान आस्ते। यत्र वसन्तस्तत्रैव कामावेशो जन्यते। स कामः सखीरूपं विधायोपसेवमानः आस्ते। रतिभावे सा व्रजेश्वरी तां देवीमुपसेवमाना-तिगुणगणनया-क्वचित्पुष्पावेशेन वसन्त सुखमुपसेवते। क्वचित्फलावेशेन वसन्त उपसेवते। क्वचित्कोमलाङ्कुरावेशेन वसन्त उपसेवमान आस्ते। क्वचित्पक्षिणां रवेण उपसेव्यमान आसेवामातनोत्। क्वचिल्लतान्तैराविर्भावेनोन्मदभ्रमरपिकशुका गीतगानं कुर्वाणा आपद्यन्ते। रसिकानन्दस्तया निकुञ्जदेव्या सह वसन्तोद्भवैः पत्राङ्कुरैः शय्यां विधाय वसन्तसुखान्यनुभवन्नास्ते। विविधलतान्तरेषु पुष्पगुच्छसंवलिताः सख्यः शय्यां विविधप्रकारां प्रतिकुञ्जं रचयन्ति। उपकरणकामकलया सुरतकेलिञ्च उपतापसुखमन्वभूत्। आसेदिवान् रतिरससुरतानन्दो विविधकलारूपेण प्रतिपद्यमानो भवति। हावभावकेलिकौतुकानि भवन्ति। वसन्तः कामेन सह रसलीलारतिं विस्तारयति। तत्रानेकलता वसन्तोद्भवैः कुसुमैर्वनलीलायां प्रफुल्लिता नम्राः भवन्ति। नानाकौतुकाविष्टाः प्रेमवत्यादयः सख्य अतिभावापन्ना बभूवुः। तस्यां लीलायां चतस्त्रः सख्यः श्रीराधिकां संसेवमाना भवन्ति। तस्य वसन्तस्य सुखं केनोपवर्ण्यते। चतस्त्रः सख्यः कथिताः। तासां नामानि शृणुत। रङ्गवती गुणवती गानवती मनोरमा। एताः सख्यस्तस्मिन् वसन्तस्थाने सेवमाना भवन्ति। तद्वसन्तस्थानं श्रीराधिकाया अतितरां वल्लभं भवति। तत्स्थानं श्रीराधिकया रसिकानन्देन सह सेव्यमानं भवति। ताः सख्यस्तस्मिन् स्थाने प्रेम्णो भावं विस्तारयन्ति। रङ्गवती रसरङ्गलीलां विस्तारयति। नानाभावेन वसन्तरङ्गभोगान् विस्तारयति। एवं नानाभावभेदं सुरतानन्दं विस्तारयति। गुणवती रागरङ्गसुगन्धरसवीणा-वेणुप्रणालिकया

सर्वासां सखीनां कामलीलायाः प्रबोधं जनयति। गानवती गीतगानगुणेन श्रीरसिकानन्दस्य श्रीराधिकां प्रीणयति। मनोरमा मनोरमं भावमापन्ना भवति। ताः सख्यो भावापन्नाः साधनसिद्धा भवन्ति॥ १२॥

ग्यारह उद्यान पंक्तियाँ हैं, जहाँ साक्षात् वसन्त का स्थान है। किंशुक-बकुल, आम्रवृक्ष, लौंग की लताओं से परिवेष्टित हुए शोभायमान हैं, जिन पर सुन्दर गुच्छे, पुष्प परागपूर्ण लगे हैं। उन्मत्त कोयल तथा भ्रमर के बारीक स्वर के समान स्वरों से गाती हुई सखियों के समूह तीव्र रंगों वाले वस्त्रों की पट्टियों से केशों को बाँधती अनुपम छटा को बिखेरती हैं। सुन्दर वसन्तकालिक गीत गाती हैं। वहाँ कौतुकाविष्ट (तमाशबीन) हुई गोपियाँ केसर, कपूर, कस्तूरी-अगर रसों को परस्पर हाथों से सींचतीं, मुख पर पाउडर, होठों पर लाली लगाती, पोंछती, नेत्रों में अञ्जन आँजती, कोई-कोई गीत गाती शोभायमान हैं। वे सखियाँ अपनी शोभा से उन व्रजेश्वरी व्रजनायिका को, जो स्वयं वेषशृंगार आदि से सुसज्जित हैं, अधिक शोभायमान करती हैं। वसन्तऋतु सखी रूप से व्रजेश्वरी की सेवा करती हैं। जहाँ वसन्त है वहीं कामावेश पैदा होता है। वह काम सखी रूप धारण कर व्रजेश्वरी की सेवा करता है। रति भाव में वह (सखीरूपधारी काम) व्रजेश्वरी देवी की सेवा करती है। गुणगणाधिक्य से कहीं पुष्पावेश, से कहीं फलावेश से, कहीं कोमलाङ्कुरावेश से वसन्त सेवा करता है। कहीं पक्षियों के कलरव से वसन्त सेवा करता है। कहीं लतान्तरों से निकले उन्मत्त भौंरे, कोयल, तोते गीत गाते आ जाते हैं। रसिकानन्द निकुञ्ज देवी के साथ वसन्तकाल के पत्रांकुरों (कोंपलों) से शय्या बनाकर वसन्त सुख का अनुभव करते हैं। विविध लतान्तरालों में पुष्प गुच्छों से जूड़ा सजाए सखियाँ भी प्रत्येक कुञ्ज में विविध प्रकार की शय्याएँ रचती हैं। उपकरणों तथा कामकला से सुरतक्रीड़ा-पारंगत रसिकानन्द भी उपताप के शमन-सुख का अनुभव करते हैं। वे विविध कलाओं से प्रतिपद्यमान रतिरस तथा सुरतानन्द को प्राप्त करते हैं। हाव-भाव केलि-कौतुक होते हैं। वसन्त काम के साथ मिलकर रसलीला में रति का विस्तार करता है। वहाँ अनेक लताएँ वसन्त के फूलों से वनलीला में प्रफुल्लित और नम्र हो जाती हैं। अनेक कौतुक से आविष्ट हुई प्रेमवती आदि सखियाँ अत्यन्त भावापन्न हो जाती हैं। उस लीला में चार सखियाँ श्रीराधाजी की सेवा करती हैं। उस वसन्त के सुख का वर्णन कौन कर सकता है? ये चार सखियाँ- रंगवती, गुणवती, गानवती एवं मनोरमा हैं। ये सखियाँ उस वसन्त स्थान पर सेवा करती हैं। वह वसन्त स्थान श्रीराधाजी को बहुत प्यारा है। वह स्थान राधिकाजी के साथ रसिकानन्द से सेव्यमान होता है। वे सखियाँ वहाँ प्रेमभाव का विस्तार करती हैं। रंगवती रसरंग लीला का विस्तार करती हैं। नाना प्रकार से वसन्त रङ्ग भोगों का विस्तार करती हैं। इस नाना भावों के भेद वाले सुरतानन्द का विस्तार होता है। गुणवती राग-रंग सुगन्ध रस वीणा-वेणु वादन इत्यादि से सब सखियों में काम-क्रीड़ा का भाव जगाती है। गानवती रसिकानन्द के गुणगान सम्बन्धी गीतों को गाकर श्रीराधिकाजी को मनाती है। मनोरमा मनोरमभावों से युक्त होती है। वे सखियाँ भावापन्न साधनसिद्धा हैं॥ १२॥

ता ऊचुः तासां साधनं किं येन साधनेन वसन्तलीलायाः स्थानं प्राप्तम्। अहो भक्तानां रसमार्गीयाणां पुण्या रसमार्गिणी कथा निःश्रेयसाय भवति। येषां स्नेहमार्गधर्मकर्मरहितकेवलमनसा वृत्तिः श्रीराधिकायां गतिरतिभावो भवेत् ते एव तां लीलां प्राप्नुवन्ति। तस्मात्ताभिर्यत्साधनं कृतं तत्सर्वं कथय। अहो ताः सख्यः वैवस्वतमनोः पुत्र्य आसन्। ताः कन्याः पितुर्गृहे निरन्तरं क्रीडमानाः बभूवुः। एकरूपा एकस्थिता एकप्राणा एकभावापन्ना बभूवुः। अतिगुणगणनारताः पितृवत्सला भवन्ति। तस्य राज्ञो गृहे एकदा नारदः समागतः॥ १३॥

उन्होंने कहा- भला उनका क्या साधन रहा होगा? जिस साधन से वसन्त लीला का स्थान प्राप्त हुआ। अहो-रसमार्गी भक्तों की पुण्यप्रद रसमार्गिणी कथा मोक्षदायिनी है। जिनका स्नेह मार्ग, धर्म-कर्म से रहित, केवल मन की वृत्ति से श्रीराधिका में गति-रति भाव वाला होता है। वे ही इस लीला के अधिकारी हैं। भ्रमर ने कहा- उन्होंने जो साधन किया, उसे बताओ। शुक बोला- अच्छा सुनो, वे सखियाँ वैवस्वत मनु की पुत्रियाँ थीं। पिता के घर खेलती हुई बड़ी हुईं। वे कन्याएँ समान रूप, समान आकार, एक प्राण, एक भावापन्न थीं। अत्यन्तगुणवती होने से पिता की बहुत प्यारी थीं। राजा के घर एक बार नारद जी पधारे॥ १३॥

ताः कन्या नारदं दृष्ट्वा प्रणिपातपुरस्सराः। तद्रूपमद्भुतं दृष्टं जटामुकुटमण्डितम्॥
वस्त्रालङ्करणैर्युक्तं वीणावादनतत्परम्। कृताञ्जलिपुटाः सर्वाः स्थितास्तं चोपतस्थिरे॥
पप्रच्छुस्तं तथाभूतं विनयान्नयकोविदाः। भगवन् सर्वभूतानां हिताय भुवनेऽटसि॥
भवादृशा महाभागा लोकानां च हिते रताः। शरणागतदीनानां कृपां कुर्वन्ति साधवः॥
इति संप्रार्थितो नारदः प्रसन्नो बभूव। भोः पुत्र्यः को भवतीनां मनोऽभिलाषः? तत्सर्वं विस्तरशो ब्रूत। नारदेनैवं चोदिताः कन्याः पुनः प्रोचुः। पितुर्गृहे भावापन्नैर्भक्तैः सङ्गीयमानोऽयं व्रजलोकः। त्वं विस्तरशो ब्रूहि तम्। श्रुतमात्रोऽयं रसलीलां ददाति। तस्मात्तत्स्थानं रसिकानन्देन श्रीराधिकया सह सेवितं वर्णय। नो मनोऽभिलाषो भवति। यदि कृपा स्यात्तर्हि तल्लोकविस्तारं वद। पुनर्नारद उवाचेदं तासां मनोऽभिलाषं ज्ञात्वा। शृणुत सख्यो रहस्यम्। न कदाचिद्वचनीयम्। तत्स्थानं कोटिसूर्यप्रतीकाशं तेजोमयं यत् निर्गुणं ब्रह्म पुराविदो वदन्ति। यस्मात्प्रजाः समुत्पन्नाः। ब्रह्मविष्णुरुद्रादयो यस्मादुत्पद्यन्ते लीयन्ते। आत्मविदो ज्ञानिन उत्पद्यन्ते लीयन्ते। रसमार्गिणो भक्ता यं स्थानं प्राप्नुवन्ति॥ १४-१८॥

उन कन्याओं ने नारद जी को प्रणाम किया, फिर उनके जटामुकुटमण्डित--वस्त्रालङ्करणों से युक्त स्वरूप को देखकर, वीणा बजाने में तत्पर नारद जी के पास पहुँच कर हाथ जोड़कर विनय के साथ पूछने लगीं- भगवन् आप सबके हित के लिए सारे संसार में भ्रमण करते रहते हैं। आप जैसे महाभाग दुखियों का कष्ट हरने वाले हैं। इस प्रकार की प्रार्थना से नारद जी प्रसन्न हुए। बोले- हे पुत्रियो! तुम्हारी क्या मनोभिलाषा है। विस्तार से बताओ, कन्याएँ बोलीं- पिता के घर रहते हुए हमने भावापन्न भक्तों द्वारा गीयमान व्रजलोक सुना है। आप विस्तार से बताइये। सुनने मात्र से जो रसलीला प्रदान करता है। इससे जो स्थान श्रीराधाजी के साथ रसिकानन्द से सेवित है, उसका वर्णन कीजिए। यही हमारा मनोभिलाष है। यदि हम पर कृपा है, तो उस लोक का विस्तृत वर्णन कीजिए। नारद जी उनके मन की इच्छा जानकर बोले- अच्छा, इस रहस्य को सुनो। किसी से कहना मत। वह स्थान करोड़ों सूर्य के समान कान्तियुक्त तेजोमय है, जिसे विद्वान् लोग निर्गुण ब्रह्म कहते हैं। जिससे सृष्टि उत्पन्न हुई है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र जिसमें उत्पत्ति और लय प्राप्त करते हैं। आत्मज्ञानी जिससे उत्पत्ति और लय प्राप्त करते हैं। रसमार्गी भक्त जिस स्थान को प्राप्त करते हैं॥ १४-१८॥

कन्या ऊचुः। ये रसमार्गीयाः भक्तास्तेषां लक्षणानि वद। नारद उवाचेदम्। ये रसिकानन्दोपासकास्ते सर्वात्मभावेन भजनं कुर्वते। भजनानन्दोपासकानां न वर्णो नाश्रमो न

देशो न कालोऽस्ति। यो धर्माधर्मौ परित्यज्य श्रीरसिकानन्दं सेवमानो भवति सः तां लीलां प्राप्नोति। येषां मनसि निश्चयस्तेषां प्रीतिरुत्पद्यते। य एवं रसमार्गे प्रपन्ना न तेषां धर्माधर्मौ बाधमानौ भवतः। विषयैर्बाध्यमानोऽपि न बाध्यते। येषामहोरात्रं सेवाकथायां नित्यमासक्तिस्तेषां भजनानन्दो भवति। ये तस्मिन् मार्गे प्रपन्ना भक्तास्तेषां देयं ततो ग्राह्यं यत्किञ्चिद्वस्तुमात्रम्। भक्तानां भक्तैस्सह कार्यं नान्यैः। भक्तानां भक्त एव ज्ञातिः। कुलवर्णधर्मादि सर्वं दैवतं यत्किञ्चिन्मात्रम्। रसगाः सेवकाः तेषां संबन्धो नान्यैः॥ १९॥

कन्याएँ बोलीं—भगवन्! रसमार्गी भक्तों के लक्षण बताने का कष्ट करें। नारद जी ने कहा- जो रसिकानन्द के उपासक हैं, वे सर्वात्मभाव से भजन करते हैं। भजनानन्द उपासकों का कोई वर्ण, आश्रम, देश, काल नहीं है। जो धर्माधर्म को छोड़कर श्री रसिकानन्द की सेवा करता है, वह उस लीला को प्राप्त करता है। जिनके मन में निश्चय ही उनमें प्रीति उत्पन्न होती है। जो इस रसमार्ग में प्रयाणरत हैं, उन्हें धर्माधर्म की बाधा नहीं है। विषयों से बाधित किया भी बाधित नहीं होता। जिनकी दिन-रात सेवा कथा में ही आसक्ति है, उनको भजनानन्द होता है। जो उस मार्ग पर चलने वाले भक्त हैं, जो कुछ भी दिया जाए अथवा लिया जाए, उन्हें ही दिया, अथवा उनसे ही लिया जाए। भक्तों का भक्तों से ही व्यवहार हो, अन्यों से नहीं। भक्तों की भक्त ही विरादरी है। कुलवर्ण धर्मादि जो कुछ भी है, वह सब देवता के नाते है। सेवक तो रसोपलब्धि करने वाले हैं, उनका अन्यों से क्या सम्बन्ध ?॥१९॥

अहो वेदैः पुराणैः सिद्धान्तैः — शास्त्रैर्नानावादैः नानाकर्मव्रतोपवासादिभिर्यमैर्नियमैश्चानानाऋषिकृतस्मृतिसिद्धान्तैरेकादश्युपवासादिव्रतनियमैस्तुलापुरुषदानादिभिर्नानादर्शनसिद्धान्तविचारैर्वर्णाश्रमोचितधर्मैः पितृश्राद्धादिभिः सूर्यचन्द्रोपरागकालोचितैर्ग्रहनक्षत्रताराज्योतिश्शास्त्रनिश्चयेन भ्रान्तचित्तैर्विधिनिषेधस्मृत्योक्तैर्धर्मैर्भ्रान्ताःसन्ध्योपासनकालसंस्कारैर्बलिवैश्वदेवबलिदानोपसर्पणैर्वेदमार्गादिभिर्नियमैरेतैश्चान्यैर्धर्मैर्विभ्रान्तास्तेषां रसिकानन्दः पुरुषोत्तमो न रमते। अहो सख्यः कर्मविभ्रान्तास्तां लीलां कदाचिन्न जानन्ति। साग्निका अग्निव्रतधारकाः कर्मजडास्तैः सह कदाचित्तद्धर्मालापनं न कुर्यात्। अतः किं बहुनोक्तेन। ब्राह्मणा ये भक्तिमार्गं न विदन्ति तेषां संभाषणं स्पर्शं न कुर्यात्। कदाचिन्नालपेत् ॥ २०॥

अरे! वेद, पुराण, सिद्धान्त शास्त्र, नानावादों से, नाना प्रकार के कर्म व्रतोपवास आदि यम- नियमों से, नाना ऋषियों के रचे स्मृति सिद्धान्तों, एकादशी उपवास आदि व्रत नियमों से, तुला पुरुष दान आदि कर्मों से, नाना दर्शनशास्त्र सिद्धान्त विचारों से, वर्णाश्रमोचित पितृश्राद्ध आदि धर्मों से, सूर्य-चन्द्र के उदयास्त ग्रहण आदि समयों पर किये जाने वाले कृत्यों से, ग्रह-नक्षत्र, ताराओं पर आधारित ज्योतिष् शास्त्र के निश्चय से भ्रान्त चित्त हुए, स्मृतियों में वर्णित विधि- निषेध वाले धर्मों से भ्रान्त हुए सन्ध्योपासन-कालसंस्कार बलिवैश्व देव बलिदान उपसर्पण आदि से वेद मार्ग पर आश्रित नियमों से तथा इसी प्रकार के अन्य धर्मकृत्यों से भ्रान्त हुए लोगों के मन में रसिकानन्द कभी भी रमण नहीं करते। अरी सखियो! कर्मों में बहके लोग उस लीला को नहीं जान पाते। नित्य

अग्निहोत्र करने वाले अथवा अग्निव्रत धारण करने वाले कर्मजड़ लोगों के साथ कभी भी धर्म चर्चा नहीं करनी चाहिए। अतः अधिक क्या कहूँ। जो ब्राह्मण
भक्ति मार्ग को स्वीकार नहीं किये हैं, उनके साथ सम्भाषण अथवा उनका स्पर्श नहीं करना चाहिए॥ २०॥

[विज्ञजनों का मत है कि भाव श्रद्धा युक्त कर्मकाण्ड अथवा ज्ञान ही फलित होता है। जो केवल कर्मकाण्ड या पुस्तककीय ज्ञान को सब कुछ मान लेते हैं, वे भटके हुए माने जाते हैं। भक्ति रहित अर्थात् भाव संवेदनाहीन जड़ कर्म को महत्त्व देने वालों से परहेज रखने की सलाह भक्तों को दी गई है।]

ता ऊचुः। भगवन् सर्वभूतानां हिताय भुवनेऽटसि। शरणागतदीनानां कृपां कुर्वन्ति साधवः॥ अतः प्रार्थयामो महालीलाया दर्शनं यत्र रसिकानन्दपुरुषोत्तमो रमते। एवं प्रार्थितो भगवान् नारदस्तासामत्यानन्दमयलोकं दर्शयामास। महामन्त्रविद्यया कृतसंस्कारास्ताः सख्यस्तस्यां लीलायां भावापन्नाः बभूवुः। ता ऊचुः। नारदेनोपदिष्टां विद्यां कथय यया विद्यया श्रीरसिकानन्दस्य श्रीराधिकया सह क्रीडास्थानं द्रक्ष्यामः। स होवाच। शृणुत सख्यः। यस्यां विद्यायां सद्यः समभ्यसनेन महावनविहारस्पर्शनं भवति। कृपासमभ्यसनात् रमणानन्द-लोकस्पर्शनं भवेत्। क्लीं सकलकामदात्रीं भ्रूं भोगदात्रीं ह्रीं रसिकानन्दविलासदात्रीं ह्रीं रतिकेलिकलाकोविदां बां वृन्दावनशशिनीं स्त्रुं सुरतानन्दरूपां श्रीं मनोहारिणीं नृं निकुञ्जकेलिकौतुकाविष्टदेहां भ्रूं भोगात्मिकां स्त्रां सखीनां सुखदायिनीं ह्रीं रासकेलिकलात्मिकां ध्यायेत्। क्लीं नमः। इमां विद्यां भोगात्मिकां नारदेन दत्तां ताः कन्या जगृहुः॥ २१॥

कन्याएँ बोलीं- आप तो सबके कल्याण के लिए संसार में भ्रमण करते ही रहते हैं। साधु लोग शरणागत दीनों पर कृपा करते ही हैं। अतः आप से प्रार्थना है कि जहाँ रसिकानन्द पुरुषोत्तम रमण करते हैं, उस महालीला का दर्शन कराने की कृपा कीजिए। इस प्रकार प्रार्थना करने पर नारद जी ने अत्यानन्दमय लोक के दर्शन कराये। महामन्त्र विद्या से संस्कार की हुई वे सखियाँ उस महालीला में भावापन्न हो गईं। वे बोलीं महाराज उस विद्या का उपदेश करें, जिससे श्रीराधाजी के साथ रसिकानन्द के क्रीड़ा स्थल को हम देख सकें। नारद बोले- हे सखियो! सुनो, जिस विद्या के अभ्यास से महावन-विहार का स्पर्श होता है। उसके कृपापूर्वक अभ्यास से ही रमणानन्द लोक का स्पर्श होता है।

क्लीं सकलकामों को देने वाली, भ्रूं भोग देने वाली, ह्रीं रसिकानन्द विलास देने वाली, ह्रीं रति-केलिकला की पण्डिता, बां वृन्दावन की चन्द्रिका, स्रुं सुरतानन्द रूप वाली, श्रीं मनोहारिणी, नृं निकुञ्ज केलि कौतुक से आविष्ट हुई देहवाली, भ्रूं भोगात्मिका स्त्रां सखियों को सुख देने वाली, ह्रीं रास केलिकलारूपिणी, इन भावों से युक्त देवी का ध्यान करे। क्लीं नमः। नारद के द्वारा दी हुई इस विद्या को उन कन्याओं ने ग्रहण किया॥ २१॥

रसिकानन्दप्राप्त्यर्थे गृहीत्वा तां विद्यामभ्यसेत्। तासां पितुर्गृहे एकं वनं नानापुष्पवृक्षैः सुशोभाढ्यम्। तत्र पुष्पलतानां निकुञ्जाः सुशोभाढ्याः संराजमाना मनोहराः सन्ति। तत्र ताः कन्या इमां विद्यामभ्यस्तवत्यः बृन्दावनबुद्ध्या। अहोरात्रं

तद्बुद्धयस्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः तस्यां लीलायां मग्रा नान्यं देहविषयं विदुः। क्वचिद्रुदन्त्यस्तच्चिन्तया क्वचिन्नृत्यन्त्यः क्वचिदलौकिकाः कथा वदन्त्यः क्वचिद्भक्तैस्सह अनुशीलयन्त्यः क्वचित्तस्मिन् वने बृन्दावनशोभां विधाय तद्भक्तैः सह राधारसिकलीलयोरनुभवं कुर्वन्ति। एकदा तासामाश्विन्यां पौर्णमास्यां महालीलाया महोत्सवकाले निकुञ्जदेव्या दर्शनं प्रदत्तम्। अशरीरया वाण्यावरो दत्तः। भवतीनां मनोऽभिलाषो मया ज्ञातः। यदि मम लोकदर्शनाकाङ्क्षा स्यात्। बृन्दावने गोवर्धनाद्रिशिरसि पुष्करिणीं विधाय तत्र मम ध्यानापन्नैर्भूयताम्। ममानुग्रहेण मम लीलावलोको भविष्यतीति ता वरेण छन्दयित्वा अन्तर्दधे। ताः कन्यास्तत्र गत्वा तथाकुर्वन्। तस्मिन् गोवर्धने अप्सरः पुष्करिण्यां ताः सर्वाः पूर्वोक्तया विधया श्रीराधिकाया भजनं चक्रुः। इत्थं भजनमापन्नाः कन्या मासेनैकेन तं लोकमपश्यन्॥ २२॥

रसिकानन्द की प्राप्ति के लिए इस विद्या का अभ्यास करे। उनके पिता के घर नाना पुष्पों से मनोहर एक वाटिका थी। वहाँ पुष्प लताओं से बने सुन्दर निकुञ्ज भी थे। ये कन्याएँ वहाँ इस विद्या का अभ्यास वृन्दावन मानकर करती रहीं। दिनरात वही बुद्धि किये, उन्हीं से बातचीत करती हैं, उनसे सम्बन्धित चेष्टाएँ करतीं, उसी लीला में मग्न रहतीं। देह के अन्य व्यापारों को भी भूल गईं। कभी उसकी चिन्ता में रोतीं, कभी नाचतीं, कभी अलौकिक कथा कहतीं, कभी भक्तों के साथ अनुशीलन करतीं, कभी वहाँ वृन्दावन की शोभा रचकर भक्तों के साथ राधारसिक लीला का अनुभव करतीं थीं। एक बार आश्विन की पूर्णमासी पर महालीला के महोत्सव काल में निकुञ्ज देवी ने उन्हें दर्शन दिया। अशरीरी वाणी से वर दिया कि तुम्हारी इच्छा मैंने जान ली। यदि मेरे लोक को देखना चाहती हो, तो वृन्दावन में गोवर्धन गिरि पर बावड़ी बनाकर, वहाँ मेरे ध्यान में मग्न होओ। मेरी कृपा से मेरी लीला लोक का दर्शन होगा। यह वर देकर अन्तर्धान हो गई। उन कन्याओं ने वहाँ जाकर वैसा ही किया। उस गोवर्धन पर अप्सराओं की बावड़ी के पास रहकर वे सब पूर्वोक्त विधि से श्रीराधिकाजी का भजन करने लगीं। इस प्रकार भजन करते हुए एक मास की अवधि में उस लोक के दर्शन उन्होंने कर लिये॥ २२॥

वृन्दावनं श्रीमत् सर्वकालसुखावहम्। यत्र षड्तवः आधिदैविकेन रूपेण सेवमाना भवन्ति। यत्र रत्नजटिला भूमयो मणिज्योत्स्नाभिर्दीप्यमाना भवन्ति। यत्र फलैः पुष्पैः पत्रैर्मणीनां स्तंभाः शतशो राजमाना भवन्ति। यत्र मणीनां लता भ्राजमाना विद्रुमलताभिः ग्रथिता भवन्ति। सुवर्णलताग्रथिता मुक्तालता मुक्तागुच्छैः पूर्यमाणाः भवन्ति। यत्र सखीनां यूथानि परस्परं शृङ्गाररसेन क्रीडमानानि भवन्ति। यत्र फलैः पुष्पैः सुकोमलैः पत्रैर्विराजमाना वृक्षा लताभिः संकीर्णा भवन्ति। यत्र मध्यश्रेणीषु सखीनां चारा अतिशोभमाना भवन्ति। यत्र वकुलवृक्षाणां वनानि कुत्रचित्संराजमानानि भवन्ति। कुत्र चिन्मन्दारवृक्षाः संराजन्ते। अम्लानपुष्पैर्नारङ्गैः शोभाढ्या भवन्ति। कुत्रचित्पारिजातकवनानि सुगन्धसंवलितानि सन्ति। तत्र वनेषून्मदाः कोकिला गायमानाः भवन्ति। कुत्रचिन्मन्दारवृक्षाः पुष्परागैश्चिता वस्त्रैश्छादिता इवासन्। तासु वृक्षाणां श्रेणीषु ताः कन्या एकं महास्थानं ददृशुः। पञ्चविंशद्योजनायतं परितो वाप्यो दशदशचतुष्कोणेषु नानारसैः संपूर्यमाणा भवन्ति। दश वाप्यः केसरकर्पूरमृगमदरसैः संपूर्यमाणा भवन्ति। दश

वाप्योऽगुरुरस संपूर्यमाणा भवन्ति। दश वाप्य: सुगन्धपयसा संपूर्णा भवन्ति। दश वाप्य उष्णोदकेनातिनिर्मलेन सुगन्धेन संपूर्यमाणा भवन्ति। तत्र दश वाप्यो मृज्जलेन सुशीतलेन संपूर्यमाणा भवन्ति। तत्र मध्यमण्डले पञ्चविंशद्योजनायते सुशोभाढ्ये मणिज्योत्स्नाभि: संवेष्टिते सखीनां यूथानि यत्र क्रीडां कुर्वन्ति तत्र परितो निकुञ्जानां श्रेणय: सूक्ष्मलतान्तरै: संवेष्टिता भवन्ति। तत्र मध्ये एकं रत्नासनं सुखसंपूरितं सुरतानन्दस्थानं भवति। यत्र प्रेमवती स्नेहवती गुणवती उत्कण्ठावती उत्साहवती भोगवती कलावती गानवती मनोरमा सुरतानन्दा सुखसंवलिता निद्रासंवलिता नि:शङ्का लज्जागतत्रपा सुभगा शृङ्गारवती संभोगवती भावशुद्धा एता अन्याश्च सख्यस्तत्स्थानं सेवमाना भवन्ति। निरन्तरं रासकेलिकौतुकेन नृत्यपरा सुगन्धकलावती संगीतज्ञा अङ्गसंवलिता रागज्ञा गुणज्ञा एता: अन्याश्च सिद्धान्तस्थानं सेवमाना भवन्ति। तत्र विहङ्गमानां पङ्क्तयो नानारूपै: कलशब्दै: सङ्गायन्त्यो भवन्ति। क्वचित् सखीमण्डले ता: रासक्रीडां कुर्वन्ति। क्वचित् कुञ्जान्तरे पुष्पपल्लवै:रचितशय्यायां क्रीडां कुर्वन्ति। क्वचिन्नानापुष्पैरङ्गप्रत्यङ्गेषु परस्परं शृङ्गारं कुर्वन्ति। क्वचित् पुष्पमालाभिरङ्गप्रत्यङ्गै: शृङ्गाररसं कुर्वन्ति। क्वचित्कुञ्जान्तरे शृङ्गाररसं कृत्वा सुखं संसेवमाना भवन्ति। ता: कन्या: श्रीराधिकारसिकं दृष्ट्वा अत्यन्तमेव मुमुहु: स्तुतिं चक्रु:। अतितरां नम्रा: कन्या: प्रश्रयावनता: नमश्चक्रु: विनयभावापन्ना बभूवु:। तदा श्रीराधिकया स्वस्वरूपं प्रदत्तम्। तासां महालीलायां योग्यता प्रदत्ता॥ २३॥

वृन्दावन सर्व काल ही सुख देने वाला है। जहाँ छ: ऋतुएँ आधिदैविक रूप से सेवा करती हैं। जहाँ रत्नजटित भूमि भाग मणियों की कान्ति से देदीप्यमान होते हैं। जहाँ मणिजटित स्तम्भ मणि कान्तियों से पत्र-पुष्प फलों से लदे प्रतीत होते हैं। जहाँ मणियों से बनी लताएँ विद्रुम लताओं से ग्रन्थित हुई शोभायमान हैं। सुवर्ण लता ग्रन्थिता मुक्ता लताएँ मुक्ता गुच्छों से पूर्ण हैं। जहाँ सखियों के समूह परस्पर शृंगार रस से क्रीड़ा करते हैं। जहाँ फलों, पुष्पों एवं सुकोमल पत्तों से सुशोभित वृक्ष लताओं के द्वारा सँकरे (संकीर्ण) दिखाई पड़ते हैं। जहाँ पंक्तियों के बीच में सखियों का संचार बड़ा मोहक लगता है। जहाँ बकुल वृक्षों के वन कहीं-कहीं विराजमान हैं, तो कहीं मन्दार (आक) वृक्ष शोभित हैं। कहीं विकसित पुष्पों वाले नारङ्ग (नारङ्गी;) वृक्ष सुशोभित हैं। कहीं पारिजातक वृक्षों के वन सुगन्ध बिखेर रहे हैं। वनों में मतवाली रास मण्डल कोयलें गीत गा रही हैं। कहीं मन्दार वृक्ष पुष्प परागों से आछन्न हुए कपड़ों से ढके हुए से प्रतीत होते हैं। वृक्षों की उन श्रेणियों में उन कन्याओं ने एक महास्थान देखा, पच्चीस योजन लम्बा-चौड़ा, चारों ओर दस-दस वापियाँ नाना रसों से भरी हुई शोभित हैं। दस वापियाँ केशर-कपूर कस्तूरी के रस से भरी हुई रहती हैं। दस वापियाँ अगरु रस (सुगन्धित द्रव्य जिससे अगरबत्तियाँ बनती हैं) से पूर्ण हैं। दस वापियाँ सुगन्ध युक्त दूध से भरी हैं। दस वापियाँ अति निर्मल सुगन्धित गर्म जल से भरी हैं। दस वापियाँ ठण्डी मिट्टी से निकले जल से भरी होती हैं। मण्डल जो पच्चीस योजन विस्तृत है, शोभायुक्त मणि- कान्तियों से वेष्टित है, उसके मध्य में सखियों के समूह जहाँ क्रीड़ा करते हैं, वहाँ चारों ओर निकुञ्जों की श्रेणियाँ सूक्ष्म लतान्तरों से वेष्टित हैं। बीच में एक सुख भरा रत्नासन वाला सुरतानन्द स्थान है। जहाँ प्रेमवती स्नेहवती-गुणवती-उत्कण्ठावती-उत्साहवती, भोगवती, कलावती, गानवती, मनोरमा, सुरतानन्दा, सुख संवलिता, निद्रासंवलिता, नि:शङ्का, लज्जागतत्रपा, सुभगा, शृंगारवती-संभोगवती, भावशुद्धा तथा अन्य सखियाँ उस स्थान की सेवा करती हैं। निरन्तर रास केलि कौतुक से नृत्यपरा, सुगन्धकलावती, सङ्गीतज्ञा, अंगसंवलिता, रागज्ञा,

गुणज्ञा आदि ये तथा अन्य (सखियाँ) सिद्धान्त स्थान की सेवा करतीं हैं। वहाँ पक्षियों की पंक्तियाँ नाना कलरवों से गाती रहती हैं। कभी-कभी सखी मण्डल में वे रासक्रीड़ा करती हैं। कभी कुञ्जों में पुष्प-पल्लवों से विरचित शय्या पर क्रीड़ा करती हैं। कभी नाना पुष्पों से अङ्ग-प्रत्यङ्गों में परस्पर शृंगार करती हैं। कभी पुष्पों की मालाओं से शृंगार करती हैं। कभी कुञ्जों में शृंगार करके सुख का अनुभव करती हैं। वे कन्याएँ श्रीराधिका रसिक को देखकर मुग्ध होकर स्तुति करने लगती हैं। अत्यन्त विनयपूर्वक वे उन्हें प्रणाम करती हैं तथा विनयभाव से भर जाती हैं। श्रीराधिकाजी ने उन्हें अपना स्वरूप प्रदान किया तथा महालीला में प्रवेश पाने की योग्यता प्रदान की॥ २३॥

अहो सत्सङ्गमाहात्म्यं केन वर्ण्यते। दर्शनात्स्पर्शनादालापाद्भोजनाच्छयनादासनाद्भोजनोच्छिष्टकृपाप्रसादात् रसिकानन्देन सहितायाः श्रीराधिकायाः कृपा भवति। अहो रसिकानन्दोपासकानां लक्षणानि वद येनाहं सतां सङ्गे विचरामि। अहो श्रुतमहालीलाः! ये निरन्तरं सेवमाना भक्ता वेदमार्गकर्मातिरिक्ता भवन्ति ते रसिकानन्दमार्गमाचार्योक्तमधीत्य यो बृन्दावनोक्तमार्गः सखीभिरुपासितः तासां मार्गे प्रपन्ना भवन्ति। अहो नानास्मृत्युक्तान् धर्मान् ये कुर्वन्ति त इह संसारे विचरन्ति। ये पितॄन् यजन्ति ते पितृलोकं प्राप्नुवन्ति। देवान् ये यज्ञकर्मणा यजन्ति ते देवलोकं स्वकर्मोपार्जितं यान्ति। ये ब्राह्मणाः ब्रह्मवर्चसमुपासमानास्ते ब्रह्मलोकं प्राप्नुवन्ति। गायत्रीं य उपासते ते सूर्यमण्डले लयं यान्ति॥२४॥

अहो! सत्संग की महिमा कौन कह सकता है। दर्शन, स्पर्श, आलाप, भोजन, शयन, आसन, भोजन के उच्छिष्ट कृपाप्रसाद आदि भावों से रसिकानन्द के साथ श्रीराधिका जी की कृपा होती है। अरे, रसिकानन्द उपासकों के लक्षण तो कहो, जिससे मैं भी उन सन्तों का संग कर सकूँ। अहो! महालीला को सुने हुए जो भक्त निरन्तर सेवापन्न हैं उनका वेद मार्ग से कोई सरोकार नहीं रहता। वे भक्त रसिकानन्द मार्ग को, आचार्य द्वारा कहे हुए को अध्ययन कर, जो वृन्दावन में सखियों द्वारा उपासित है, उस मार्ग में श्रद्धापन्न होते हैं। अरे! नाना स्मृतियों से कहे गये धर्म को जो करते हैं, वे इसी संसार में विचरण करते हैं। जो पितरों को पूजते हैं, वे पितृलोक प्राप्त करते हैं। जो यज्ञ कर्मों से देवताओं का पूजन करते हैं, वे देवलोक जो स्वकर्मों द्वारा उपार्जित है, को प्राप्त करते हैं। जो ब्राह्मण ब्रह्मतेज की उपासना करते हैं, वे ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं। जो गायत्री की उपासना करते हैं, वे सूर्य मण्डल में लय होते हैं॥ २४॥

येषां मध्ये शैवाः शिवोपासकास्तेषां प्रमादेनापि संभाषणं न कुर्यात्। ये कैवल्यधर्मरतास्तेषां संभाषणं स्पर्शनं च कृतं चेत्तर्हि सवासा जलमाविशेत्। अहो रुद्रोपासका ये तमोधर्मरतास्तेषां संभाषणं स्पर्शनं च कृतं चेत्तर्हि सवासा जलमाविशेत्। यक्षोपासकाः सदा त्याज्याः। गणपतिदुर्गायाः भजनभेदा अनेकशः सन्ति। तान् ये भजन्ति तेषां संभाषणं स्पर्शनं च कृतं चेत्तर्हि सवासा जलमाविशेद्रसिकानन्दोपासकः। कर्मकाण्डोपासका रसिका नन्दमार्गं न जानन्ति। जैनबौद्धचार्वाकमीमांसकवेदान्तन्यायपातञ्ज-लमतान्तराणि तेषां सिद्धान्तं कुर्वन्ति। ये भ्रान्ता भजनमार्गमविदुषः पण्डितमानिनस्तेषां संभाषणं स्पर्शनं च न कुर्यात्। विष्णुभजनरता

नारायणोपासकाः – श्रवणकीर्तनस्मरणवन्दनरता मत्स्यकच्छपवराहनृसिंहवामनपरशुरामरामोपासका वैष्णवास्तेऽपि तं लोकं न जानन्ति। तस्मात्तेषां सङ्गस्त्याज्यः। विष्णुभक्ताः ज्ञानवैराग्ययुक्ता अनन्याश्रययुक्तास्तेऽपि तं मार्गं न जानन्ति। सूक्ष्मतर मार्गो ब्रह्मादिभिर्नारदादिभिः रुद्रादिभिः सृष्टिकर्तृभिः प्रजापतिभिरप्यगम्यः। तस्मात्तया श्रीराधिकयानुगृहीतास्तं रसं जानन्ति नान्ये। यदा यस्य देवतान्तरभजनं भवति वैष्णवेषु विद्वेषो भवति तान् रसिकानन्दपुरुषोत्तमो न स्पृशेत्॥ २५॥

जिनके बीच में शिवोपासक शैव हों, उनके साथ भूलकर भी सम्भाषण नहीं करना चाहिए। जो कैवल्य धर्म परायण हैं, उनके साथ यदि संभाषण-स्पर्श हो गया हो, तो वस्त्रोंसहित स्नान करना चाहिए। यदि तमोगुणी रुद्रोपासकों से भाषण स्पर्श हो जाए, तब भी सवस्त्र स्नान करना चाहिए। यक्षोपासकों का त्याग करे। गणेश दुर्गा के भजन भेद अनेक हैं। अतः किसी रसिकानन्द का उनसे संभाषण स्पर्श हो जाए, तो सचैल (वस्त्र सहित) स्नान करे। कर्मकाण्डोपासक निरे ठूँठ हैं। वे रसिकानन्द मार्ग को नहीं जानते। जो जैन, बौद्ध, चार्वाक मीमांसक, न्याय,वेदान्त, पातञ्जलादि मतों के अनुयायी हैं, वे भ्रान्त हैं, वे भजन मार्ग को जानते ही नहीं, वे लोग पण्डितमानी (अपने पाण्डित्य का अभिमान करने वाले) हैं, इसलिए ऐसे लोगों से सम्भाषण स्पर्श न करे। विष्णु के भजने वाले, नारायणोपासक जो श्रवण, कीर्तन, स्मरण, वन्दन में रत हैं, मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम के उपासक वैष्णव भी उस लोक को नहीं जानते। अतः उनका संग त्याज्य है। अनन्याश्रययुक्त-ज्ञानवैराग्ययुक्त विष्णुभक्त भी उस मार्ग को नहीं जानते। वह सूक्ष्मतर मार्ग ब्रह्मा, नारद, रुद्र, सृष्टिकर्त्ता प्रजापति इत्यादिकों से भी अगम्य है। इसलिए श्रीराधाजी से अनुगृहीत जन ही उस रस को जानते हैं, अन्य नहीं। अन्य देवता की उपासना करने वाला वैष्णवों का द्वेष पात्र है। अतः रसिकानन्दोपासक उनका स्पर्श न करे॥ २५॥

अहो रसिकानन्दोपासकानां क्रियाः शृणुत। ये मनसि भजने सुनिश्चयास्तल्लीलोपासकाः सत्कथाक्षिप्तमानसाः। तल्लीलोपासकानां सङ्गेन कथाकीर्तनासक्तास्ते तत्सेवातद्भावेन शोकमोहभयोद्वेगरहिता अमत्सरा अहंभावरहिता ज्ञानवैराग्यसहिता बृन्दावनलीलोपासका भवन्ति। रसलीलायां निमग्नानां तेषां तद्भजनमेव साधनं तद्भजनमेव ज्ञानं तद्भक्ता एव ज्ञातिः तद्भक्ता एव कुलं एवं रसलीलाप्रपन्नो भवति। गृहादिधर्मान् त्यक्त्वा वर्णाश्रमधर्मान् त्यक्त्वा जातिकुलधर्मान् त्यक्त्वा मोक्षधर्मान् त्यक्त्वा सन्न्यासधर्मान् त्यक्त्वा देशकालकर्मस्वभावसंसिद्धान् धर्मान् त्यक्त्वा रसलीलामभ्यसेत्॥ २६॥

अब रसिकानन्दोपासकों की क्रियाएँ सुनो। जो मन में भजन के अभ्यस्त हैं, उनकी लीलाओं के उपासक हैं, सत्कथा में मन लगाए हैं, जो लीलोपासकों की संगति से कथा- कीर्तन में आसक्त हैं, वे ही तत्सेवापरायण हो शोक मोह भय उद्वेग से रहित, मत्सरहीन, अहंभावरहित ज्ञान-वैराग्य सहित वृन्दावन लीलोपासक होते हैं। रसलीला में निमग्न होना, उनका वह साधन ही भजन है, ज्ञान है। उनका भक्त ही उनकी जाति विरादरी है, कुल है। गृहस्थादि धर्मों को त्यागकर, वर्णाश्रम धर्म-जाति कुल धर्म-मोक्ष धर्म-संन्यास धर्म देश काल कर्म स्वभाव संसिद्ध धर्म इत्यादि को त्यागकर रसलीला का अभ्यास करे॥ २६॥

रसलीलायाः सेवावधिं कथय येन विधिना महालीलायाः प्राप्तिर्भवति। तद्भक्तानां दर्शनं भवेत्। स होवाच। रसलीलाया भजनं त्रिविधात्मकम्। एकं ध्यानमयम्। प्रतिकुञ्जं प्रतिवृक्षं ध्यानापन्नो भवेत्। रात्रौ दिवा रसिकानन्दं श्रीराधिकया सह हृदि चिन्तयमानः सखीभावेन भावापन्नो भवेत्। तदनुभावेन पुल्लिङ्गं विधूय महालीलायां लयलीयमानो भवेत्। द्वितीयं भजनप्रकारं शृणुत। येन भजनेन रसिकानन्दः श्रीराधिकया सह दृष्टिपथमापद्येत् योऽश्ममयं वा धातुमयं वा रसिकानन्दस्वरूपं श्रीराधिकया युतं विधाय शय्याभोजनशृङ्गारै राजोपचारैः स्नेहभावेन भजनं करोति। अहोरात्रं तद्भावेनापन्नो भजनं करोति स तां लीलां प्राप्नोति। ये रसिकानन्दोपासका भक्तास्तेषां सेवायां व्रतधारणम्। अहो भक्तानां सेवास्तु दुर्लभतराः। येषां हृदि निश्चय आपन्नस्तेषां श्रीरसिकानन्दःश्रीराधिकया सह प्रसन्नो भवति। भक्तानां सेवास्तु अत्यन्तदुर्लभा भवन्ति। ये निष्कर्ममार्गिणो भक्तिमार्गं केवलमापन्नास्ते सेव्याः पूज्या एव भवन्ति। ये अन्यधर्मं त्यक्त्वा रसिकानन्दसेवकास्ते भक्ता नान्ये। भक्ताः सुसेवमाना भवन्ति। तस्मात्सुसेवमाना भक्ताः कृपां कुर्वन्ति। साधूनां समचित्तानां कृपया महालीलाया दर्शनं भवति। तस्मात् रसिकानन्दं हृदि स्थाप्य साधूनां सङ्गेन बृन्दावनरहस्यमार्गानुसारेण सुसेवमानो भवति। अतिरसमग्रा भक्ता नान्यं विदन्ति॥ २७॥

अच्छा! रसलीला की अभ्यास विधि भी बताई जाए? जिससे महालीला की प्राप्ति हो। उसके भक्तों का दर्शन हो? वे बोले- रसलीला का भजन तीन प्रकार से है। एक ध्यानमय है, प्रतिकुञ्ज में प्रत्येक वृक्ष में ध्यानापन्न होवे। रात दिन श्रीराधा के साथ रसिकानन्द का हृदय में चिन्तन करता हुआ सखी भाव से पूर्ण होवे। उसी भाव से परिपूर्ण होकर पुल्लिंग भाव त्यागकर महालीला में सर्वतोभावेन लीन हो जाए। दूसरा प्रकार मूर्तिपूजा का है, जिसमें श्रीराधिका के साथ रसिकानन्द की पत्थर अथवा धातु की मूर्ति बनाकर शय्या, भोजन, शृंगारादि राजोपचारों से भजन करते हैं। जिससे तद्भावापन्न हो उनका स्वरूप दृष्टि पथ में संवलित हो जाता है और उस लीला को प्राप्त करता है। जो रसिकानन्दोपासक भक्त हैं, उनकी सेवा का व्रतधारण करना (भजन का) तीसरा प्रकार है। अरे- भक्तों की सेवा दुर्लभ है। जिनके हृदय में निश्चय-विश्वास हो गया है, उन पर रसिकानन्द श्रीराधिकाजी सहित प्रसन्न होते हैं। जो निष्काम हो भक्तिमार्ग पर आरूढ़ हैं वे ही सेव्य तथा पूज्य हैं, जो अन्य धर्मों को त्याग कर रसिकानन्द सेवक हैं, वे ही भक्त हैं। भक्त सेवा करने योग्य होते हैं। सेवा करने पर भक्त कृपा करते हैं। समचित्त साधुओं की कृपा से महालीला का दर्शन होता है। इससे रसिकानन्द को हृदय में बिठाकर, साधुओं के संग से वृन्दावन रहस्य मार्ग का अनुसरण करने से सुसेवमान अनुभव होता है। अति रसमग्र भक्त किसी अन्य को नहीं जानते॥ २७॥

अहो पुनर्महालीलाया वर्णनं श्रुत्वा वयं न तृप्यामः। शृणुत पुत्राः। वनविहारलीला पूर्वं नारायणेन लक्ष्म्यग्रे कथिता तदा श्रुतं तदहं वर्णयामि। अहो महालीलायाः स्थानं नारायणेनापि न दृष्टम्। यत्राष्टौ मणयः संराजमाना भवन्ति। चन्द्रकान्तमणिनामृतेन पुष्पपल्लविता वृक्षाः सेव्यमाना भवन्ति।

लतानामालवालानि सौवर्णानि दीप्यमानानि जलैः पूर्यमाणानि भवन्ति। तत्र सूर्यकान्तमणिना प्रदीप्यमाना वृक्षलताः शोभायमाना भवन्ति। मणिलताभिर्ग्रथितानि मन्दिराणि तेजोमयानि संराजन्ते। प्रसारितलता वृक्षैर्ग्रथिता निकुञ्जतां प्राप्नुवन्ति। तेषु निकुञ्जेषु लतानां नानारङ्गाः संदीप्यन्ते। तत्र शृङ्गारवत्यादयः सख्यः शय्योपकरणानि रचयन्ति। सुशोभायमानाः पक्षिणः कलशब्देन श्रीराधिकायाः शृङ्गाररसं सङ्गायन्तो भवन्ति। पिकयूथानि मनोहरेण शब्देन देववाण्या तस्याः श्रीराधिकाया रमणलीलां गायन्ति। तत्र मध्येमण्डलं तेजोमयमस्ति। हाटकमयास्तेजोभूमयस्तेजोमयाः संविराजन्ते। यत्र भूमौ परित अष्टौ मणयः सन्ति तेषां प्रसारिता लताः सुवर्णलताभिर्मुक्तालताभिर्ग्रथिताः पुष्पैः पल्लवैः संवलिता भवन्ति। प्रतिमण्येकैकं मन्दिरं सकलसिद्धवस्तुसमन्वितं भवति। रतिमन्दिरे शय्याः पयःफेननिभाः संराजन्ते। तत्रान्नानि विविधानि अन्यपूर्णया सख्या पाचितानि। प्रतिक्षणं नूत्नानि श्रीराधिकायै भोज्यार्थे भवन्ति। तत्र सुगन्धरसिकया सख्या रचिताः सुगन्धरसा अगुरुचन्दनकेसरीमृगमदकर्पूराद्या अनेकसुगन्धरसाः श्रीराधिकया संभोज्या भवन्ति। तत्र शृङ्गारवत्या सख्या रचिताः शृङ्गारा वस्त्रालङ्कारसंयुक्ताः सुभगा नानावस्तुमयाः श्रीराधिकार्थे कल्पिताः सुभोज्या भवन्ति। रङ्गवत्या रचिता रतिरङ्गा वचनप्रतिवचनमया इन्द्रियादिभावमयाः श्रीराधिकाया भोगार्थे भवन्ति। गानवत्या रचिता नानारागरङ्गभोगाः समयोचिताः प्रतिक्षणं नूत्नाः श्रीराधिकार्थे सुभोज्या भवन्ति। नृत्यकवत्या रचिताः सुगन्धकलाः श्रीराधिकार्थे कल्पिता भवन्ति। तत्र स्थाने भोगवती नाम्ना सखी नानाभोगान् कल्पयति। कटुतिक्तमधुरकषायाः सुस्वादा भोगाः श्रीराधिकाया भोज्यापन्ना भवन्ति। रतिवती नाम्ना सखी नानारतिसुखमुत्पादयति। रतिकलाकौतुकानि मनोज्ञानि भवन्ति। सुरतानन्दा सखी नानासुरतकलां श्रीराधिकायै कल्पयति। मनोज्ञा सखी नानामनोभावं ददाति। सुखदा सखी नानासुखं रसिकानन्दं प्रति राधिकार्थे कल्पयति। ताः सर्वाः सख्यः सुखकेलिकलानुभावेन रासलीलां कुर्वन्ति॥ २८॥

अरे! पुनः-पुनः से महालीला का वर्णन सुनकर भी हम तृप्त नहीं होते। वन विहार लीला नारायण के द्वारा लक्ष्मी जी से जो पूर्व में कही गई थी, उस सुनी हुई को मैं सुनाता हूँ। महालीला का स्थान नारायण ने भी नहीं देखा। जहाँ आठ मणियाँ विराजित हैं। चन्द्रकान्त मणिरूप अमृत से पुष्पपल्लवित वृक्ष सेव्यमान हैं। लताओं के थाँवले सुनहरे हैं, जलों से भरे हैं। वहाँ सूर्यकान्तमणि से दीप्तिमान वृक्ष - लताएँ शोभित हैं। मणि - लताओं से जड़े मन्दिर तेजोमय प्रतीत होते हैं। वृक्षों पर फैली लताएँ निकुञ्जों की रचना करती हैं। उन निकुञ्जों में लताओं के नाना रूप चमकते हैं। वहाँ शृंगारवती आदि सखियाँ शय्या आदि उपकरणों की तैयारी करती हैं। सुन्दर पक्षिगण मीठे स्वर से श्रीराधाजी के शृंगार के गीत गाते हैं। कोयलों के समूह मनोहर शब्दों से देववाणी में श्रीराधाजी की रमण लीला का गान करते हैं। वहाँ मध्य में तेजोमय मण्डल है, जहाँ स्वर्णभूमि भाग तेजोमय प्रतीत होते हैं जहाँ भूमि पर चारों ओर से आठ मणियाँ हैं। उनसे प्रसारित स्वर्णलता, मुक्त लताओं से ग्रथित, फूलों और पत्तों से संवलित हैं। प्रत्येक मणि सकल सिद्ध वस्तुओं से सम्पन्न एक-एक मंदिर जैसी है। रति मंदिर में दूध के झागों के समान शय्याएँ हैं। वहाँ विविध प्रकार के अन्न-भोज्य-पदार्थ अन्नपूर्णा सखी द्वारा बनाये गये हैं।

श्रीराधाजी के लिए बने ये भोज्य पदार्थ हर समय ताजे रहते हैं। वहाँ सुगन्धरसिका सखी से बनाये अगर, चंदन, केसर, कस्तूरी, कपूर आदि अनेक सुगन्ध रस वाले भोज्य पदार्थ श्रीराधा जी के द्वारा खाने योग्य होते हैं। शृंगारवती सखी द्वारा रचित वस्त्र - अलंकारों से युक्त शृंगार तथा अन्य पदार्थ श्रीराधाजी के द्वारा प्रयोग होते हैं। रंगवती सखी से रचे गये, वचन प्रतिवचनमय इंद्रियादि भावमय रति - रंग राधिका जी के भोगार्थ ही हैं। गानवती से रचे नाना प्रकार के राग-रंग भोग समयोचित प्रतिक्षण ताजे सुभोज्य हैं। नृत्यकवती से रची गई सुगन्ध कलायें कल्पित हैं। वहाँ भोगवती सखी नानाप्रकार के भोगों का निर्माण करती हैं। कटु, तिक्त, मधुर, कषाय रसों से युक्त भोग राधाजी के भोग्य पदार्थों में होते हैं। रतिवती नामक सखी नानाप्रकार के रति सुखों को उत्पन्न करती है। रतिकला कौतुक बड़े सुन्दर होते हैं। सुरतानन्दा सखी नाना सुरत कलाओं का विधान श्रीराधिका जी के लिए करती है। मनोज्ञासखी नाना मनोभावों को प्रदान करती है। सुखदा सखी नाना सुखों को रसिकानन्द तथा राधिकाजी के लिए कल्पित करती है। वे सारी सखियाँ सुख केलिकाओं के अनुभवों से रासलीला करती हैं॥ २८॥

तस्मिन् मध्यमण्डले सुरचिता सखी कस्मिंश्चित्समये रासलीलां रचयति। तत्र मध्ये कामेन सेवितं तेजोमयमासनं कल्पयित्वा श्रीराधिकया सह रसिकानन्दं समावेशयति। तत्र परित एताः सख्यः क्रीडाकलां दर्शयन्ति। कलावती गुणवती पुष्पवती अङ्गचपला सुरतकलाकोविदा रसकलाभिज्ञा रसभावज्ञा विपरीतसुरतनृत्यकलाकोविदा एताश्चान्याः सख्यः तस्मिन् मण्डले स्वान् स्वान् गुणान् प्रकटीकृत्य रसिकानन्दं सेवमानाः भवन्ति। साधनसिद्धाः संसिद्धाः सख्य अनेकरूपैस्ताभ्यां सुसेव्यमानाः भवन्ति। यादृशा भक्तास्तादृशं सुखं तादृशो लीलाभावश्च भवेत्॥ २९॥

उस मण्डल के मध्य में सुरचिता सखी किसी समय रासलीला का विधान करती है। वहाँ बीच में काम सेवित तेजोमय आसन को रचकर उस पर श्रीराधिकाजी के साथ रसिकानन्द को बिठाती है। तब वहाँ उनके चारों ओर ये सखियाँ क्रीड़ा कला को दिखाती हैं। उनके नाम ये हैं- कलावती, गुणवती, पुष्पवती अंगचपला, सुरतकलाकोविदा, रसकलाभिज्ञा, रसभावज्ञा, विपरीतसुरतनृत्यकलाकोविदा इत्यादि। अन्य सभी सखियाँ उस मण्डल में अपने-अपने गुणों को प्रकट करके रसिकानन्द की सेवा करती हैं। साधना - सिद्ध सखियाँ, स्वयं सिद्ध सखियाँ अनेक रूपों में उन दोनों के द्वारा सेवित होती हैं। जैसी भावना वाले भक्त हैं, वैसी ही सुख और वैसी ही भाव लीला होती है ॥२९॥

पुनस्ते ऊचुः। महास्थानं कियत्प्रमाणम्? संसिद्धोऽयं रसः। संसिद्धः कीदृग्विधः? ते संसिद्धा भक्ताः कीदृग्विधाः? तेषां रूपं कीदृग्विधम्? रसिकशिरोमणिरानन्दात्मकपुरुषोत्तमः श्रीराधामानन्दरमणानन्दरूपां तेन रूपेण सह बुभुजे। नित्यानन्दरूपेण सह पुरुषोत्तमो नित्यानन्दरूपः संक्रीडमानो भवति। सः एवं रूपं गोपिकास्वाविर्भावेन क्रीडयिष्यति। पृथग्रूपेण क्रीडमाना अभ्येति। तद्भावे क्रीडिष्यमाणा गोप्यः पृथक् संक्रीडमाना इव एकमेव स्थानमध्यासते। तेषां स्थानं कियत्प्रमाणम्? कीदृग्विधा भक्ताः? क्रीडमानं रूपं ताभिः संपीयमानसौष्ठवं किम्?

पुनरुवाचेदम्। रहस्यमतितरां सौष्ठवम्। षड्विधोऽयं रासः। तेषामेव रासलीलायामापद्यमानं रूपम्। रहस्यस्थानं महालीलायां शतयोजनायतं पद्मरागजाम्बूनदसुवर्णखचितम्। नीलमणिना परिधयः शोभाढ्या एवासन्। मध्येमध्ये पुष्यरागमणीनां स्थानं संभ्राजते। तेषामतितरां मणिज्योत्स्नां राजमानामभ्येत्य तस्मात् परितः शतकुञ्जविद्रुमलताः सुवर्णसुगन्धलताग्रथिताः सुसुगन्धाढ्यमातन्वन्। तेषामेव मणीनां शक्तयो विराजन्ते। पुष्पितवृक्षलता सुगन्धरसाभ्येति। तत्सुगन्धावेशिताः सख्यो भावापन्ना रमणरसरमणे रसरमणानन्दे रसे मग्ना भक्ताः प्रेमवत्यादयो लीलायां योग्यतामभियन्ति। रतिक्रीडायामानन्दरसः संभवति। ते सख्यस्तस्मादुत्पन्ना भवन्ति। शृंङ्गाररसं दृष्टिगोचरमुपसंपद्यन्ते। तस्मात् रमणानन्दादुत्पन्ना आत्मानन्दरूपिणः। यत्र यत्र तया देव्या स्वावेशेन सुखं सुसंसिद्धोऽयं रसः। तासां गोपीनां गृहंगृहमापद्यमानः प्रतिरूपं सुखं संयोजयति। तासामेव रसावेशेन रासस्थानं शतयोजनायतं पद्मरागमणिजटितनीलमणिना विराजितं जांबूनदमणिना सुवर्णेन जटितं शतशो मणिखचितम्। तद्भस्मस्थाने मणिस्तंभाः शतशो विराजमानास्तस्या निकुञ्जदेव्याः स्वावेशेन अनेकशो रूपाणि कृत्वा आत्मानं विभज्य स्वरसभोगसुखं संभुञ्जते। यथायथा रूपाणि तथातथा रसिकानन्दस्य रूपाणि सुखं संभोक्ष्यन्ते। तेषु तेषु रूपेषु क्रीडन्त्यस्ताः निकुञ्जदेव्याः स्वामिभावेन व्रजलीलायाः सुखमापद्यन्ते। स एव रासः। आनन्दाद्रमणानन्दोऽयं योज्यते। चन्द्रावलीचन्द्रभागासुश्रोणीसुभगाद्याः शतशो गोपभार्या वेदऋचः। वेदपुरुषा इमे गोपास्तासां गोपीनां स्वामिन्या आत्मस्वरूपेण स्वयमेव रमणानन्देनायोज्यन्त॥ ३०॥

पुनः उन्होंने पूछा- उनका क्रीड़ास्थल कितना बड़ा है? यह (आनन्द) भली प्रकार सिद्ध 'रस' है। किस विधि से यह संसिद्ध होता है? वे संसिद्ध भक्तजन किस प्रकार के हैं? उनका रूप किस प्रकार का है? रसिक शिरोमणि आनन्दरूप पुरुषोत्तम श्रीराधा के परमानन्द रूप के साथ भोग (आनन्दानुभूति) करते हैं। नित्यानन्द रूप (वाली राधा) के साथ नित्यानन्दरूप (श्रीकृष्ण) क्रीड़ारत होते हैं। वे (रसिकानन्द) गोपिकाओं में उस आनन्दरूप के आविर्भाव होने पर उसके साथ भी क्रीड़ा करेंगे। अन्यरूप से क्रीड़ारत रहती हुई उनके निकट पहुँचती हैं। उस भाव में पृथक् सम्यक् क्रीड़ा करते हुए मानो एक ही स्थान पर स्थित हो जाते हैं। वह स्थान कितना बड़ा है। भक्त जन किस प्रकार के हैं। क्रीड़ारत उन (गोपिकाओं) के द्वारा आनन्दमग्न होते समय उनका सौष्ठव (रूप सौन्दर्य) कैसा है? फिर वे बोले- उनका सौष्ठव अत्यधिक रहस्यमय है। यह रास छः प्रकार का है। उन्हीं का रासलीला में प्राकट्य होता है। महालीला का रहस्य स्थान सौ योजन विस्तृत है, जो पद्मराग जाम्बूनद सुवर्ण से खचित (जटित) है। नीलमणि से उसकी परिधियाँ बनी हैं। बीच-बीच में पुखराज मणियाँ शोभा देती हैं। उनसे भी अधिक मणियों की कान्ति से सुशोभित उस स्थान पर पहुँचकर, जिसके चारों ओर सैकड़ों कुञ्ज, झाड़ियाँ, लताएँ सुन्दर रङ्ग और सुगन्धि से सुवासित लताओं को और अधिक सुन्दर और सुवासित बना रही थीं। उन्हीं मणियों की शक्तियाँ विराजमान हैं। पुष्पितवृक्ष-लताएँ सुगन्धित एवं रसमय होते हैं, उस सुगन्ध से आवेशित सखियाँ रस में भावापन्न होती हैं। रस में मग्न भक्त भी प्रेमवती आदि सखियों की योग्यता को प्राप्त होते हैं। रतिक्रीड़ा में आनन्दरस का जन्म होता है। वे सखियाँ उससे ही उत्पन्न होती

हैं। शृंगार रस को दृष्टिगोचर रखते हुए रसमग्र भक्त रमणानन्द से उत्पन्न आत्मानन्द स्वरूप वाले हैं। जहाँ-जहाँ उस देवी के आवेश से सुख प्राप्त हो वही सुसंसिद्ध रस है। वह रस गोपियों के घर-घर भी प्राप्त होता है। उन्हीं के रसावेश से सौ योजन विस्तृत सुवर्ण मणि जटित रासमण्डल है। वहाँ सैकड़ों मणि स्तम्भों में निकुञ्ज देवी अपने अनेक रूप बना उस रास का पान करती हैं। जितने रूप हैं, उतने ही रसिकानन्द के रूप भी सुखोपभोग करते हैं। उन-उन रूपों में क्रीड़ा करती निकुञ्ज देवी एक से अनेक होकर भी अपनी और रसिकानन्द की एकरूपता का दृश्य उपस्थित करती हैं। यही रास मण्डल है, यही रास है, जिसमें आनन्द से रमणानन्द को जोड़ा जाता है। चन्द्रावली, चन्द्रभागा, सुश्रोणी, सुभगा आदि सैकड़ों गोपियाँ वेद की ऋचाएँ हैं। ये गोप वेदज्ञ पुरुष हैं, जो इन गोपियों की स्वामिनी द्वारा आत्मस्वरूप से स्वयं ही रमणानन्द से योजित किये हैं॥ ३०॥

[सामान्य लोग ज्ञान को शुष्क मानते हैं। भक्ति-मार्गी वेद की ऋचाओं के अवतरण को भी दिव्य रास का अंग अनुभव करते हैं। चित्शक्ति जिन सुपात्रों को योग्य समझती है, उनके साथ ऋचाओं का रमण करने के लिए अर्थात् उनके माध्यम से वेदऋचाएँ प्रकट होने का विधान बना देती हैं।]

अग्निना प्रज्वलिता रज्जुर्दृश्यमाना अग्निरेवाभाति। गोकुलोऽयमग्नेः संयोगादेवाभाति। ता गोप्यस्तद्भावेन रसं अनुभवन्त्यस्तस्या निकुञ्जदेव्या भावमापन्ना आसन्। द्वयो रासयोरिदं भवति। तृतीये रासे तु गृहं गृहं प्रति स्वयंस्वयमेव रसिकानन्दस्वरूपे क्रीडिता आसन्। स्वानन्दाविर्भावाय तासां योग्यतां निरूपयति। सुखमनुभवन्त्य आत्मभाव एवासन्। चतुर्थे तु गोरसविक्रीडा गोप्यश्चन्द्रावलीप्रभृतयोऽनेकशो दानलीलया निकुञ्जदेव्या स्वावेशेन सुखमनुभूय तद्वचनादभीष्टानि प्रतिपद्य योग्यानीन्द्रियाणि परस्परसुखं भुञ्जानास्तस्या निकुञ्जदेव्या रसिकशिरोमणिना सह सुखं स्वयमेव रूपेण अनुभवन्ति। पञ्चमी महालीला स्वयमेव वृषभानुगृहे प्रकटिता। तां तया सह पुरुषोत्तमरसिकानन्दोऽयं स्वयमेव व्रजलीलायां प्रकटितवान्। सः एव सुखं रमणानन्दरूपेण संभोक्ष्यमाणोऽभवत्। परस्परबाललीला-सुखयुग्मरूपे एकमेव रूपं भवति॥ ३१॥

अग्नि से जली रस्सी अग्नि ही प्रतीत होती है। यह गोकुल भी अग्नि के संयोग जैसा ही है। वे गोपियाँ उस भाव से रस का अनुभव करती हुई निकुञ्ज देवी के भावापन्न हो जाती हैं। दोनों रासों में यही होता है। तीसरे रास में तो घर-घर स्वयं ही रसिकानन्द स्वरूप में क्रीड़ा करती हैं। स्वानन्द के लिए अपनी योग्यता का निर्धारण करती हैं। सुख का अनुभव करती हुईं आत्मभाव में स्थित होती हैं। चतुर्थ रास में गोरस विक्रय की लीला करती गोपियाँ चन्द्रावली आदि अनेकों दान लीला से निकुञ्ज देवी के द्वारा स्वावेशित किये सुख का अनुभव करके उनके वचनों से अभीष्ट योग्य इन्द्रियों को प्राप्त कर परस्पर सुख भोगतीं उन निकुञ्ज देवी के द्वारा रसिक शिरोमणि के साथ भोगे सुख का स्वयं अनुभव करती हैं। पाँचवी महालीला स्वयं ही वृषभानु के घर में प्रकट हुई। उसको उस निकुञ्ज देवी के साथ पुरुषोत्तम रसिकानन्द ने स्वयं व्रजलीला में प्रकट किया है। वह सुख रमणानन्द रूप से भोगा जाने योग्य हुआ। परस्पर बाललीला का सुख भी युग्मरूप (जोड़ी) में एक रूप ही रहा॥ ३१॥

एवं तस्मिन् वृषभानुगृहे स्थानानि शतशः पद्मरागकुड्यानि गृहाणि तप्तसुवर्णपरिधीनि विराजमानानि भवन्ति। ललिताविशाखाश्रृङ्गारवत्यादयः स्वयमेव प्रकटिताः सख्यः स्वयमेव स्वरसं प्राप्ताः रसमानन्दात्मकमनुभवन्ति। अन्याश्च शतशो गोपीभावं प्राप्तास्तां लीलां प्राप्ता भवन्ति। यं यं भावं संयोक्ष्यमाणा गोपी भवेत्तं भावं द्वारि प्राप्य रासलीलाकृते उज्जहार। अत्यन्तभावलीलायां संयोक्ष्यमाणा गोपी पुष्करिण्यां तासामङ्गरागेण गोपीचन्दनं तासामेवोच्छिष्टं बुभुजे। भक्तानां तदेव हितकारि भवेत्। तदङ्गरागोद्भूततदाविर्भावेन महालीलायोग्यतां प्रतिपेदिरे। पुनः संशयं पप्रच्छुः। अहो द्वारिकायां रासः कस्मिन् समये कृतः? तत्र महालीलायाः स्थानं कुत्रास्ति? यत्र रसिकानन्दः पुरुषोत्तमः क्रीडति। केऽत्र भक्ताः? केषां सहायेन महालीलास्थानं प्रकटितम्॥ ३२॥

वृषभानु के उस घर में सैकड़ों कमरे, पद्मराग मणियों से चित्रित, तपे सोने की जैसी चारदीवारी वाले हैं। ललिता, विशाखा, श्रृंगारवती आदि सखियाँ स्वयं ही प्रकट हुईं, स्वयं स्वरस को प्राप्त हुईं, आनन्दात्मक रस का अनुभव करती हैं। अन्य सैकड़ों गोपी भाव को प्राप्त हुईं उस लीला को प्राप्त होती हैं। जिस-जिस भाव को आत्मसात् किये गोपी होती हैं, उस भाव को द्वार पर रासलीला के लिए प्रयोग करती हैं। अत्यन्त भाव लीला में आपन्न गोपियाँ पुष्करिणी में स्नान करती हैं, उनके शरीर पर लगा अंगराग धुल जाता है। उसके इस उच्छिष्ट को अन्य उपभोग करती हैं। अंगराग ही गोपीचन्दन है। भक्तों के लिए वह हितकारी है। उस अंगराग से उत्पन्न भाव ने ही महालीला की योग्यता को प्राप्त किया है। शङ्काशील ने फिर पूछा – अच्छा, द्वारिका में रास किस समय किया? वहाँ महालीला का स्थान कहाँ है – जहाँ पुरुषोत्तम रसिकानन्द क्रीड़ा करते हैं? ये भक्त कौन हैं? किनकी सहायता से महालीला स्थान प्रकट हुआ॥ ३२॥

श्रृणुत सख्यः। महानयं गोप्यो रसः। ये प्रत्ययापन्ना भक्तास्ते तं रसमनुभवन्ति व्रजलीलायाम्। त्रिविधा गोप्यः सन्ति। एका वेदऋचः सन्ति। एके अग्निकुमाराः सन्ति। एके संसिद्धाः श्रीराधिकया सह प्रकटिता भवन्ति। अष्टौ यूथानि संसिद्धानां भवन्ति। तेषां द्वादश यूथानि ब्रह्मणः पुत्राः अग्निकुमाराः सन्ति। द्वादश यूथानि वेदस्त्रीणां सन्ति। ते साधनसिद्धाः ये भक्ताः श्रीराधिकया सह रसिकानन्दोपासका भवन्ति। याः संसिद्धास्तासां नित्यलीलायामनुभवः। ये अग्निकुमारास्ते व्रजलीलायां श्रीराधिकया सह रसिकानन्दमुपासमानास्तां लीलां प्राप्ता भवन्ति। या वेदरूपिण्यस्तासां विरहभावेन महाननुग्रहः कृतः। प्रथमं महालीलायाः प्राप्तिः पश्चाद्विरहः। ता विरहोत्कण्ठिता गोप्यो नान्यसुखं विदुः तासामर्थे पञ्चयोजनपर्यन्तं महालीलायाः स्थानं प्रकटीकृतम्। तासां मनोभावबुभुत्सया एकं स्वगणं रहस्यलीलायोग्यं प्रेषयामास। द्वारिकालीलायां महालीला प्रकटिता। स एव गणस्तास्तत्रैव नयति। रसिकानन्दस्तासां स्वलीलामाविष्करोति। रुक्मिण्याद्याः पट्टराज्यस्तां लीलां श्रुत्वा उत्कण्ठिताःबभूवुः।ताभिःप्रार्थितो रसिकानन्दो महालीलां दर्शयामास॥ ३३॥

सखियो ! सुनो। यह रस बड़ा गोपनीय है। जो विश्वासी भक्त हैं, वे ही व्रजलीला में रस का अनुभव करते हैं। तीन प्रकार की गोपियाँ हैं। एक-वेद ऋचाएँ हैं, दूसरी-अग्नि कुमार हैं, तीसरी- श्रीराधा जी के साथ संसिद्ध रूप में प्रकट हुई हैं। संसिद्धों के आठ यूथ हैं। ब्रह्मा के पुत्रों अग्निकुमारों के बारह यूथ हैं तथा बारह यूथ ही वेद स्त्रियों (ऋचाओं) के हैं। जो भक्त श्रीराधिका के साथ रसिकानन्द के उपासक हैं, वे साधन सिद्ध हैं, उनका नित्यलीला में अनुभव होता है। जो अग्निकुमार हैं, वे व्रजलीला में श्रीराधिकाजी के साथ श्रीरसिकानन्द की उपासना करते हुए उस लीला को प्राप्त होते हैं। जो वेदऋचारूपिणी गोपियाँ हैं, उन पर विरहभाव ने बड़ी कृपा की है। पहले महालीला की प्राप्ति, फिर विरह। वे विरह से उत्कण्ठित गोपियाँ किसी अन्य सुख को जानती ही नहीं। उनके लिए पाँच योजन विस्तृत महालीला स्थान प्रकट किया है। उनके मनोभाव को जानने हेतु रहस्य लीला योग्य एक स्वगण उनके पास प्रेषित किया। द्वारिका लीला में महालीला प्रकट की। वही गण उन्हें वहाँ ले जाता है। रसिकानन्द उनके लिए स्वलीला का आविष्कार करते हैं। रुक्मिणी इत्यादि पटरानियाँ उस लीला को सुनकर उत्कण्ठित हो गई हैं। उनके द्वारा प्रार्थना किये जाने पर रसिकानन्द ने महालीला के दर्शन करा दिये॥ ३३॥

तदा रसिकानन्देनोक्तास्ताः पट्टराज्यो भवन्त्यस्तल्लीलायोग्या न भवन्ति। इमाः लीला लोके वेदमर्यादातिरिक्ताः। रसमार्गोपासका भक्ताः स्त्रियस्तां लीलां जानन्ति। वयं राजपुत्र्यः कथं तस्यां लीलायां योग्या न भवेम। बहुशः प्रार्थितो रसिकानन्दस्तथेत्युक्त्वा पुनराह। अहो राजपुत्र्यो भवतीनां यदि महालीलादर्शनाकाङ्क्षा भवति तर्हि अहं निशीथे आधिदैविकीं रात्रिं प्रकटयिष्यामि। तत्राधिदैविकोऽयं चन्द्रस्तत्राधिदैविका भक्ताः लीलोपयोग्या भवन्ति। भवत्यस्तत्रैवायान्तु। इति कथितास्ताः सर्वाः विस्मयापन्ना बभूवुः। अहो अत्यन्तमाश्चर्योऽयं विलासः। तत्रागता सुयोगा सखी रासलीलायां योगं चकार। सखी तत्र रासलीलां रचयति। तत्र रसिकानन्दः पुरुषोत्तमोऽतिमनोहररूपेण तासां मनांसि जह्रे। ताः सर्वा गोप्यः श्रीराधिकायाः कृपावशेन रमयांचक्रुः। तत्र रसिकानन्देन ब्रह्मरात्रिः प्रकटिता। तस्यां रात्रौ ताः सर्वा मनोरथशतै रमयांचक्रुः। क्रीडान्ते ब्रह्मरात्रिरपावृत्ता बभूव। द्वारिकायां स्थिता राजपुत्र्यः द्वारे स्थितान् गुरूनुग्रसेनवसुदेवाद्यान् ददृशुः। रसिकानन्देन मोहितास्तत्र स्थिता गुरवो ददृशुः। तासां ता रात्रयो रासलीलाया ध्यानेन व्यतीताः॥ ३४॥

रसिकानन्द ने उन पटरानियों से कहा- तुम इस लीला की अधिकारी पात्र नहीं हो। ये लीलाएँ लोक में वेद मर्यादा से बाहर हैं। रस मार्गोपासक भक्त तथा स्त्रियाँ उस लीला को जानती हैं। पटरानियाँ बोलीं- हम राजपुत्रियाँ हैं, भला हम उसकी अधिकारिणी क्यों नहीं हैं ? तब बड़ी प्रार्थना करने पर रसिकानन्द ने बताया- अहो राजपुत्रियो ! यदि महालीला देखने की प्रबल इच्छा है, तो मैं आज आधी रात आधिदैविक रात्रि को प्रकट करूँगा। वहाँ आधिदैविक चन्द्र, आधिदैविक भक्त ही लीला के उपयुक्त हैं। आप लोग वहीं आना। यह कहने पर वे सब बड़ी विस्मयापन्न हुईं। अरे ! यह विलास तो अनोखा ही है। वहाँ आई सुयोगा सखी ने रासलीला का योग बनाया। वह रासलीला का उपक्रम बनाती है। रसिकानन्द ने अति मनोहर रूप से उन रानियों के चित्तों का हरण कर लिया। सारी गोपियाँ श्रीराधिका की कृपा के वश हुई रमण करने लगीं। रसिकानन्द ने वहाँ [**ब्रह्मरात्रि में सृष्टि की प्रकृति की तमाम धाराएँ परमपुरुष परब्रह्म में लय हो जाती हैं। जब तक चित्त के संस्कार रहते**

हैं तब तक जीवरूपी गोपी और परमात्मारूप में लय नहीं हो सकती। जब चित्त के सारे संस्कारों को भी विसर्जित कर दिया जाता है, तभी पूर्ण लय के समग्र रस का बोध होता है।] प्रकट कर दी। उस रात्रि में वे सभी सैकड़ों मनोरथों से रमण करने लगीं। क्रीड़ान्त में ब्रह्मरात्रि हट गई। द्वारिका में स्थित राजपुत्रियों ने द्वार पर खड़े उग्रसेन, वसुदेवादि गुरुजनों को देखा। वहाँ स्थित गुरुजनों को रसिकानन्द ने मोहित हुए जैसी स्थिति में देखा। अब तो उन रानियों की अगली रातें रासलीला का ध्यान करते व्यतीत होने लगीं॥ ३४॥

ब्रह्मरात्रिरपावृत्तेति प्रातस्ताः सर्वास्तत्रैव समागताः। तत्र तत्स्थानं ददृशुः। यत्र मणिलता मुक्तालताः सुवर्णलताः पुष्पैः पत्रैः फलैः संपूर्णा मणिस्तंभैर्ग्रथिता निकुञ्जतां प्राप्नुवन्ति। सिद्धयो मूर्तिमत्यः तत्रैव स्थिता ददृशिरे। कामदेवो रत्या सह तत्रैव ददृशे। तत्र स्थिताः गोप्यो रसिकानन्देन संयुक्तास्तासां राजपुत्रीणां लीलां दृष्ट्वा निर्गलितमाना बभूवुः। ताः प्रश्रयावनता रसिकानन्दं पप्रच्छुः। अहो रासलीलामस्माकं दर्शय। ताभिः प्रार्थितो रसिकानन्दः प्रोवाच। समयोऽयं व्यतीतः। ब्रह्मरात्रिस्तु गता। मया भवतीनां पूर्वं कथितमस्ति। भवत्यो रासलीलायां योग्या न भवन्ति। ये वेदोक्तकर्ममार्गरतास्ते कदाचिदिमां लीलां न जानन्ति। तस्मात् भवत्य इमा लीलायोग्या न भवन्ति। ब्रह्मलोके स्थिता रुद्रलोके स्थिता इन्द्रलोके स्थिता नागलोके स्थिता स्त्रियस्ता अपीमां लीलां न जानन्ति। अन्ये मम भक्ताः बहवः सन्ति। तेऽपीमां लीलां न जानन्ति। तस्मात् भवत्यो निर्गलितमाना जाताः। तेन भावेनैतासां दर्शनं न प्राप्ताः॥ ३५॥

(अगले दो तीन वाक्यों को लकार और कारक व्यत्यय द्वारा सुसंगत किया गया है) ब्रह्मरात्रि हट गई, यह सोच प्रातः वे सारी वहाँ आकर उस स्थान को देखने लगीं, जहाँ मणि-मुक्ता-सुवर्ण लतिकाएँ पुष्प-फलों से लदी मणि स्तम्भों से लिपटी निकुञ्जता को प्राप्त हुई थीं। सिद्धियाँ वहाँ मूर्तिमती होकर विराजित हैं। कामदेव रति के साथ वहीं विद्यमान हुए। रसिकानन्द के साथ उन गोपियों की लीला देखकर वहाँ खड़ी राजपुत्रियों का मान भंग हो गया। रानियों ने विनयपूर्वक रसिकानन्द से पूछा- इस रासलीला को हमें पुनः दिखा दो, उनसे प्रार्थित होकर रसिकानन्द बोले--अब समय बीत गया। ब्रह्मरात्रि समाप्त हुई। मैंने आपसे पहले ही कहा था कि आप इसकी पात्र नहीं हैं। जो वेदोक्तमार्ग के अनुयायी हैं, वे इस लीला को नहीं जान सकते। इसलिए आप इस लीला को जानने के योग्य नहीं हैं। ब्रह्मलोक, रुद्रलोक, इन्द्रलोक, नागलोक में रहने वाली स्त्रियाँ भी इसे नहीं जानतीं। मेरे अन्य अनेकों भक्त हैं, किन्तु वे भी इस लीला को नहीं जानते। चूँकि आपने निर्गलित मान (अपमानित) अनुभव किया। इस कारण से इनका दर्शन प्राप्त नहीं हुआ॥ ३५॥

ताः राजपुत्र्यो रुक्मिण्याद्या रसिकानन्देनोक्ता दृष्ट्वा प्रसन्ना बभूवुः। तासां नामानि पप्रच्छुः सुयोगजा सखी तासां गोपीनां नामानि कथयामास। इयं चन्द्रावली नाम्ना तथा चन्द्रकला विख्याता। चन्द्रानना रोहिणी मनोरमा माधवी पुष्पगन्धा सुरतकलावती भोगवती हंसगमना गुणवती गानवती सुरतकलाकोविदा सुविहारवती नृत्यकलाभिज्ञा एताः सख्यः स्वयूथैस्तन्मण्डलं सेवमाना भवन्ति। ताः पट्टराज्यस्ताः संपूजयामासुः। नानासुगन्धाङ्गरागेण वस्त्रालङ्कारभूषणैस्तासां

शृङ्गारमकुर्वन्। तासामुच्छिष्टजलेन पङ्काङ्गरागेण गोपीपुष्करिणीति विख्याता बभूव। यस्यामुत्पन्ना मृत्तिका अतिपवित्रा भवति। ता गोप्यस्तद्भावेन महालीलायां लयं प्राप्ता बभूवुः॥ ३६॥

वे राजपुत्रियाँ रसिकानन्द के इस प्रकार समझाने पर प्रसन्न हो गईं। वे सखियों के नाम पूछने लगीं। सुयोगजा सखी ने उन सबके नाम बताये। यह चन्द्रावली नाम वाली है तथा चन्द्रकला के रूप में विख्यात है। चन्द्रानना, रोहिणी, मनोरमा, माधवी, पुष्पगन्धा, सुरतकलावती, भोगवती, हंसगमना, गुणवती, गानवती, सुरतकलाकोविदा, सुविहारवती, नृत्यकलाभिज्ञा, ये सखियाँ अपने-अपने यूथों के साथ इस मण्डल की सेवा करती हैं। पटरानियाँ उन गोपियों के द्वारा पूजित हुईं। नाना प्रकार के सुगन्धित अंगरागों से, वस्त्रालंकारों से उनका शृंगार किया। उनके उच्छिष्टजल से, अङ्गराग के पङ्क से गोपी नाम की पुष्करिणी विख्यात हो गई। जिसकी मिट्टी बड़ी पवित्र होती है। वे गोपियाँ तद्भाव से महालीला में लय को प्राप्त हुईं॥ ३६॥

[विभिन्न जीवात्माएँ हैं। राजपुत्रियाँ हैं। जीवन का विस्तार एक राज्य है। जो राजपुत्रियाँ (जीवात्माएँ) अपने प्रत्यक्ष-स्थूल अधिकारों का मोह छोड़ कर परम पुरुष और पराप्रकृति की लीला को समझना चाहती हैं, उसमें रस लेने लगती हैं, वे इस विराट् रासलीला में शामिल हो जाती हैं- लय प्राप्त कर लेती हैं।]

सा लक्ष्मीः प्रश्रयावनता नारायणं पप्रच्छ। तेऽग्निकुमाराः ऋषयः कुतः समुत्पन्नाः? तैरिदं स्थानं कथं प्राप्तम्? केन साधनेन ते सिद्धा भवन्ति? स होवाच। पूर्वं ब्रह्मा लोकपितामहः सनकादिना पृष्टः। महालीलायाः स्थानं कथय। यत्र रसिकानन्दः श्रीराधिकया सह नित्यं क्रीडति। तत्प्रश्नेनातुरो ब्रह्मा ध्यानापन्नो बभूव। स समाधौ महालीलां ददर्श। तद्दर्शनेन विकलेन्द्रियो बभूव। तत इन्द्रियेभ्यो रेतः आपद्यत। ततो रेतः अग्नौ न्यपतत्। गार्हपत्यकुण्डे निपतितं रेतः पुरुषायितं बभूव। ततः समुत्पन्नाः पुरुषा अग्निकुमारा भवन्ति। ततस्ते ऋषयो गोवर्धनाद्रौ शिरसि तप आतन्वन्। तद्दिनमारभ्यैते तु ऋषयो व्रजं सेवमाना बभूवुः॥ ३७॥

लक्ष्मीजी ने एक बार विनम्रभाव से श्री नारायण से यही पूछा- वे अग्निकुमार ऋषि कहाँ उत्पन्न हुए? उन्होंने यह स्थान कैसे प्राप्त किया? किस साधन से वे सिद्ध हुए हैं? नारायण ने कहा-पहले सनक आदि ने भी ब्रह्मा जी से यही प्रश्न किया था कि महालीला का स्थान बताइये, जहाँ रसिकानन्द श्रीराधिकाजी के साथ नित्य क्रीड़ा करते हैं। इस प्रश्न से आतुर ब्रह्मा ध्यानमग्न हो गये। उन्होंने समाधि में महालीला को देखा। उसके दर्शन से इन्द्रियाँ व्याकुल हो गईं। इन्द्रियों से रेतस् (वीर्य) स्खलित हुआ। वह रेतस् अग्नि के गार्हपत्य कुण्ड में गिरकर पुरुषायित हुआ। उससे अग्नि कुमार उत्पन्न हुए। तब वे ऋषिगण गोवर्धन के ऊपर तप करने लगे। उसी दिन से ये ऋषि व्रज की सेवा कर रहे हैं॥ ३७॥

एकदा ते ऋषयो गोवर्धनाद्रौ शिरस्येकां कन्यां ददृशुः। श्रीराधिकयानुगृहीतां सर्वाङ्गमनोहरां तत्राप्सरः पुष्करिण्यां मज्जमानां तां दृष्ट्वा ते प्रश्रयेण नम्रा बभूवुः। सा कन्या तान् प्रत्युवाच। भो ऋषयः कुतः समायाताः? किं कुरुत? ऋषयः ऊचुः। वयं ब्रह्मणः पुत्रा अस्मिन् वने निवसन्तो महावनविहारलीलादर्शनकाङ्क्षिणो भवामः। पुनस्तेऽग्निकुमारा ऋषयः ऊचुः। भो

भवती कुतः समायाता किं कार्यं कुरुते? इदं रहस्यम्। यदि मनसि कृपाविष्टा तर्हि रहस्यं कथय। साधवो दीनवत्सला एवासते। तया देव्या अनुगृहीतानां तेषामतिकृपाशाली स्वभावोऽयमापद्यते। सा पुनरुवाचेदं स्वयमेव करुणया॥ ३८॥

एक बार इन्होंने गोवर्धन पर एक कन्या देखी। श्रीराधिकाजी की कृपापात्र सर्वाङ्ग मनोहर उस कन्या को पुष्करिणी में स्नान करती हुई देखकर वे प्रश्रयभाव से नम्र हो गये। वह कन्या पूछने लगी- हे ऋषियो! कहाँ से पधारे हो, क्या करते हो? ऋषि बोले- हम ब्रह्मा के पुत्र हैं, इस वन में महालीला का दर्शन करने की इच्छा से रह रहे हैं। अग्नि कुमार ऋषियों ने आगे कहा- आप कौन हैं? कहाँ से आई हैं? क्या करती हैं? इस रहस्य को यदि उचित समझें, तो कृपा करके बताइये। साधु दीन वत्सल होते ही हैं। उन देवी के कृपापात्र जनों का तो कृपाशील होना स्वभाव ही है। तब वह स्वयं करुणार्द्रचित्त होकर कहने लगीं॥ ३८॥

अहो अहमपि पूर्वं महारुद्रराज्ञः पुत्री आसम्। तस्य गृहे निरन्तरमत इतः क्रीडमाना गीतगानैर्हरेर्लीलां मनस्यासादितास्मि। तस्य गुरुविभाण्डकमुनिपुत्री रूपशालिनी नाम्ना सा निरंतरं तस्यां लीलायां सदा ध्यानानुभावना तया देव्यानुगृहीता लीलोपयोग्यैति। तदा श्राविताना मधुनातनीं लीलां सोपरिष्टामभ्येति। ते ऊचुः। को मन्त्रः? क उपदेशः? किं ध्यानं तस्याः? उपदिश। यदि करुणावती वद। शृणुतेदं रहस्यम्। न कदाचिद्वचनीयोऽयं रसः सर्व एव। धर्माधर्मविरक्ता ये भक्तास्तेषामप्यवचनीयः। रसरहस्यविद्यामुपासमानः सद्योदर्शनमापद्यते। ॐ क्लीं क्लीं राधे संमोहिनि कामदात्रि कामकेलिकलारूपिणि नमो नमस्ते। इदं रहस्यं सर्वेषामपि दुर्लभतरम्॥ ३९॥

मैं भी पहले महारुद्र राजा की पुत्री थी। पिता के घर इधर से उधर खेलती हुई मैंने गीत-गानों से हरि की लीला को मन में प्राप्त कर लिया। पिता के गुरु विभाण्डक मुनि की रूपशालिनी नाम की कन्या उस लीला में निरन्तर ध्यान भावना करती थी। उसी से मैंने भी उस लीला में प्रवेश पाने की योग्यता प्राप्त की। तब सुनायी गयी मधुरतापूर्ण उस लीला की अधि निकटता पाने के लिए पहुँची। वे (अग्नि कुमार) बोले- क्या मन्त्र है? क्या उपदेश है? क्या ध्यान है? यदि करुणा है, तो कहिए। वह बोली- यह रहस्य किसी से नहीं कहना। जो भक्त धर्म-अधर्म से विरक्त हैं, उनसे भी नहीं कहना। इस रहस्य विद्या की उपासना करता हुआ शीघ्र ही दर्शन प्राप्त करता है। ॐ क्लीं क्लीं राधे सम्मोहिनि कामदात्रि कामकेलि कलारूपिणि! नमो नमस्ते। यह रहस्य सबके लिए दुर्लभतर है॥ ३९॥

आनन्दरसिकशिरोमणिमोहनेन रूपेण सद्योलक्षं जपित्वा ध्यानापन्नो भवेत्। संशृणुयात्तां सा नवकिशोरी तप्तहाटकाभरणा केशच्छटाचिक्कणसुगन्धरसप्लावितसीमन्तसिन्दूरसेचितमणिघटितसुवर्णाभूषणैर्भूषिता रत्नकर्णभूषणज्वलित कुण्डलाभ्यामन्यैः शुट्याद्यैर्भूषणैः संयोजिता केसरमृगमदकर्पूरचन्दन नानारेखासंयोजितललाटा मणिहीरकजात्यतिलकयोजिता संशोभते। कामकार्मुकभ्रूलतासंमोहितरसिकानन्दा तद्बाणमूर्च्छितेयं सदा तदावेशयोग्यतां प्रपद्य ध्यायमाना भवति। तां प्रपद्य स विश्वजयी भवेत्। नेत्रकृपाकटाक्षैर्भक्तानामभयदायिनी भवति।

खञ्जनमीन चाञ्चल्यवशीकृतो रसिकानन्दो भवेत्। नासाचञ्चुरतितरां तेजसा राजते। कपोलौ सुवर्णसंपुटौ तेजोमयौ भातः। शोभते नासा आभरणरचिता। मणिमयमुक्ताफलैर्गुम्फितो भवति विम्बाधरो विद्रुमकान्तिः। द्विजाली ताराकारा भवति। सा तेजसा भातितराम्। ज्योत्स्नाराजमानाननोत्कण्ठग्रीवा राजन्तेऽतितरां कपोलकण्ठादयः। तिरस्कुर्वन्ति तस्या बाहुशोभां केयूरकटकानि मरकतगुम्फितानि वलयानि शतशः तेजोमयानि। अतितरां लघु ताराकान्ति तिलकं शोभामत्येति। राजमानौ हस्तौ करतलाभ्यां यावकरसविभाविताङ्गुलीभ्यां सूक्ष्मतरमणिघटिकाभ्यां भवेताम्। सुवर्णभूषणानि संराजमानानि सुरोचन्ते। तस्या वक्षोजावतिमृगमदागुरुरचितावेव पुरुषोत्तमरसिकानन्दरमणाधिष्ठानं संराजमानावेव भवतः। मुक्तागुम्फितहारवल्लीद्वयौ च गिरी एव संराजमानौ भवतः। गम्भीरनाभिह्रदसन्निधाने नवरोमराजीया शोभा हाटकोपघटितनीलमणिराजिरिव राजते। कटिमेखला क्षुद्रघण्टिका-राजमाना मणिघटितहाटकखचितताराजालशोभामभ्येति। संराजमानजघनस्थलवासिमोहनगृहं सौभाग्याढ्यं शंबरवैरिणोऽधिष्ठानं रसिकानन्दैककलसुरतममलाम्बैरः परिवेष्टितं सुवर्णतार गुम्फितं शोभायमानं राजते। कदलीकाण्डरुचिरावूरू शोभामभीतः। चरणकमलमञ्जरीशोभा राजमाना यावकरङ्गरञ्जितेव शोभामभ्येति। नखचन्द्रतेजसा राजमानोऽयं लोको विराजमभ्येति॥ ४०॥

आनन्दरसिकशिरोमणि मोहनरूप का चिन्तन करते हुए एक लक्ष जप करके ध्यानापन्न होवे। ध्यान में उन नव किशोरीजी की मूर्ति स्थापित करे, जो किशोरीजी तपे सुवर्ण जैसे रंग वाली हैं, केशों के छटा के चिकने तथा सुगन्धरस से भीगे, सीमन्त सिन्दूर से सने, मणिजटित सुवर्ण के आभूषणों वाली हैं, रत्नजटित कर्णाभूषण कुण्डलों से तथा अन्य शुट्यादि भूषणों से सुसज्जित हैं। केसर-कस्तूरी-कपूर चन्दन की नाना रेखाओं से मस्तक शोभित है। मणि हीरक के समान माथे पर तिलक सुशोभित है, जिसने धनुष के आकार की भ्रू-लता से रसिकानन्द को सम्मोहित किया है तथा उन बाणों से स्वयं भी मूर्च्छित हुई तदावेश योग्यता को प्राप्त हुई ध्यान लीन हो जाती है। उनको प्राप्तकर वह विश्व विजयी हो जाता है। (वे) नेत्रों के कृपा कटाक्ष से भक्तों को अभय देने वाली हैं। खञ्जन, मीन जैसे नेत्रों की चञ्चलता से वशीभूत हुए रसिकानन्द जिनके अपने हैं। नासा का अग्रभाग बड़ा ही तेजस्वी है। कपोल सुवर्ण के सम्पुट जैसे हैं। नासिका आभरण से युक्त सुशोभित है। मणिमय मुक्ताफल से ऊपर का ओष्ठ शोभायमान है, जो जो विद्रुम (मूँगा) की कान्तिवाला है। दन्तपंक्ति तारों के आकार जैसी प्रतीत होती है। उसकी शोभा अनूठी है। चन्द्रिका से होड़ करती आनन पर उठी हुई ग्रीवा, कपोल, कण्ठ आदि अत्यन्त शोभायमान हैं। उनके बाहुओं के केयूर कटक, जो मरकत मणियों से गुम्फित हैं, बाहु शोभा को भी नीचा दिखाते हैं। छोटे तारा जैसे तिलक की शोभा तारा को पीछे छोड़ देती है। सुन्दर हथेलियों पर तथा अँगुलियों पर यावक (लाल रंग) का रस लगा है, अँगुलियों में मणिजटित अँगूठियाँ शोभित हैं। सुवर्ण के आभूषण यथा स्थान शोभायमान हैं। उनके उरोज कस्तूरी-अगर से विलेपित हैं, जो पुरुषोत्तम रसिकानन्द के रमणाधिष्ठान हैं। उनकी शोभा अद्वितीय है। जिन पर मुक्ता गुम्फित हार की दो लड़ियाँ विराजमान हैं, अतः जो मेरुशृंगों की शोभा को धारण करने वाले हैं। गम्भीर नाभिरूप सरोवर के पास नवरोम पंक्ति की शोभा सुवर्ण घटित नीलमणि पंक्ति की शोभा को धारण करने वाली है। कटि की मेखला छोटी घण्टियों से सुशोभित मणि घटित, सुवर्ण खचित ताराओं की शोभा को धारण करती है। सम्यक् सुशोभित जघन-स्थल स्थित मोहन गृह, सौभाग्य से भरा शंबर के शत्रु

(श्रीकृष्ण) रसिकानन्द का अधिष्ठान, उनका सुरतस्थान, सुवर्ण तारों से गुम्फित अमल वस्त्रों से ढका शोभायमान है। दोनों ऊरु कदली काण्ड की शोभा धारण करने वाले हैं। चरणकमल मञ्जरी शोभा यावकरस से रँगी हुई सी शोभा को धारण करती है। नखरूप चन्द्र के तेज से यह पूरा लोक ही देदीप्यमान है॥ ४०॥

अतःपरं शृणुत सखायः। रसिकानन्दस्य रूपं सदा निकुञ्जदेव्या ध्येयम्। आनन्दमात्रोऽयं करपादे तेजोमयोऽमृतमयः। श्यामहिरण्यपरिमध्यवनमालया युतो बर्हापीडो नटनाट्ययुक्तो मञ्चो रोचमानो राजमानः शोभायमानः शोभया संराजते अतितराम्। एक एव पुरुषोऽयं स्त्रीषु रमणानन्दयति। रसः संराजमानत्वमभ्येति। संशोभायमानो भवेत्। एक एव रसो द्विधा भिन्नोऽयं श्रीराधाकृष्णरूपाभ्याम्। नित्यानन्दाय नमो नमः। तस्मात् रससंयोगे भक्तास्तस्मिन् रसे संप्रीयमाणमनसः सखिस्थाने शोभायमानमभ्येत्य संगच्छन्ते। कोटिसूर्यप्रतीकाशं कोटिचन्द्रप्रभं संराजमानं तेजोमयं ब्रह्मेति पुराविदो वदन्ति। यस्मात् सृष्टिरुत्पद्यमानाभ्येति। संरोचमानाद्यस्मात् समुत्पन्नसृष्टयोब्रह्मविष्णुरुद्रादयो यस्य प्रतापशक्त्योत्पन्ना नानासृष्टिं कुर्वन्ति। यस्य प्रतापशक्त्योत्पत्तिस्थितिलयानातन्वन्ति। यस्मात् प्रेमानन्दान्नित्यानन्दोऽयं लोकः प्रकटितो भवति। प्रेमानन्द एव सृष्टिस्त्वाधिदैविकी। तस्मात् प्रेमानन्दरक्तपुरुषोत्तमाधिष्ठानसौष्ठवं यत्र कोटिशो निकुञ्जनानालताग्रन्थिस्तासु गन्धवृक्षादिः राजमानत्वमभ्येति। यत्र निकुञ्जश्रेणिषु सखीनां यूथान्यतितरां क्रीडाशृङ्गारयोग्यान्युपकरणानि राजमानान्यभ्येत्य शोभायमानानि राजन्ते। स्थाने स्थाने पृथक् प्रक्रियमाणानि शृङ्गारस्थानानि। हाटकमणिमय्यो भूमयः। नानारङ्गमयफलपुष्पवृक्षादिराजमानामभियन्ति षड्तवः। यत्राधिदैविकरूपेण विराजमाना नानातन्वन्। तेषामेव यादृशा भक्तास्तादृशलीलादृष्टिमाद्यमानं शृणुत। सखिप्रेम्णाऽयं लोकः सृष्टोऽस्माभिः पितृगृहं त्यक्त्वा अस्मिन् वने पर्वते नानारमणस्थानमस्माकमनुभवं प्रतिपद्य रचितं आधिदैविकं स्थानं वृन्दावनं अतिपुष्टपुष्करिणि यत्र निकुञ्जदेव्या सह पुरुषोत्तमो रमणानन्दो नित्यक्रीडामातनोत्। संकेतस्थानं रमणानन्दयुतो रसिकानन्दः क्रीडते॥ ४१॥

[यहाँ उपनिषत्कार पुनः इस लीला के नायकों— पात्रों के आध्यात्मिक रूप को स्पष्ट करते हैं। आध्यात्मिक रूप से ही लीला के आधिदैविक और आधिभौतिक रूपों का बोध होता है।]

हे सखाओ! आगे भी सुनो। रसिकानन्द का रूप सदा निकुञ्ज देवी के द्वारा ध्येय है। यह रूप आनन्द मात्र है, इसके कर, पाद भी तेजोमय तथा अमृतमय हैं। श्याम सुनहरे रंगों के मध्य वनमाला से युक्त, मोरपंख धारणकर्त्ता, नटकी नाट्य कला का जानकार, मञ्चासीन अत्यन्त ही शोभायुक्त है। यह अकेला पुरुष ही स्त्रियों में रमण करता आनन्द देता है। रस अपनी पराकाष्ठा पर उपलब्ध होता है। एक रस ही दो भागों में बँटा श्रीराधा-कृष्ण के रूप में व्यक्त है। उस नित्यानन्द के लिए नमस्कार है। इसीलिए रस संयोग में भक्त लोग उस रस में प्रसन्न मन वाले हो, स्वयं को सखिरूप में प्रस्तुत करते हैं। कोटि सूर्यों की प्रभा के समान, करोड़ों चन्द्रमाओं की कान्ति के सदृश जिस ब्रह्म को ज्ञानी लोग कहते हैं, जिससे सृष्टि की उत्पत्ति है, जिसकी प्रताप शक्ति से उत्पन्न ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र नाना सृष्टियों की रचना करते हैं। जिसकी प्रताप शक्ति से उत्पत्ति, स्थिति एवं लय का आयोजन करते

हैं, जिस प्रेमानंद से यह नित्यानन्द लोक प्रकट होता है। प्रेमानन्द ही आधिदैविक सृष्टि है। इसी से प्रेमानन्द में सक्त पुरुषोत्तम के अधिष्ठान की सुन्दरता है, जहाँ नाना लताओं और गन्ध वृक्षों की परस्पर ग्रन्थियाँ लगने से करोड़ों निकुञ्ज शोभा देते हैं। जहाँ निकुञ्जों की श्रेणियों में सखियों के झुण्ड क्रीड़ा शृंगार के उपयुक्त उपकरणों से सजे-बजे शोभायमान होते हैं। स्थान--स्थान पर पृथक् प्रयोग होने वाले शृंगार साधन हैं। सुवर्णमणि जटित फर्श हैं। षड् ऋतुएँ नाना रंगों के फलपुष्प वृक्षादि उन स्थानों पर प्राप्त कराती हैं। जहाँ आधिदैविक रूप से सब कुछ विराजमान है। उनके जिस भाव के भक्त हैं, वैसी लीला ही दृष्टिपथ में प्राप्त होती है। से इस लोक की सृष्टि हुई है। हमने पिता का घर छोड़ इस वन, पर्वत में नाना प्रकार से रमण स्थान का अनुभव प्राप्त किया है, जहाँ आधिदैविक यह वृन्दावन है। जिसमें अति सुन्दर पुष्करिणी में रसिकानन्द निकुञ्ज देवी के साथ नित्य रास क्रीड़ा करते हैं। रसिकानन्द रमणानन्द से युक्त संकेत स्थान पर ही क्रीड़ा करते हैं॥ ४१॥

['सखिप्रेम,' इसे इस लोक की सृष्टि का भाव समझना चाहिये। जब जीवन से जुड़ी तमाम शक्ति धाराएँ-स्वयं को कर्ता मानकर चलती हैं, तब तक वे पुरुष रूप में कार्य करती हैं। जब वे स्वयं को परम पुरुष की सहयोगिनी भर मान लेती हैं, तो कर्ता भाव का लोप हो जाने से सखिभाव, सखिप्रेम उत्पन्न होता है। यही भाव इस दिव्य लीला का मुख्य आधारभूत घटक माना गया है]

रमणानन्दः स्वरूपस्वामिन्यावेशः। रसिकानन्दस्तु पुरुषावेशः। इमां लीलाविद्यामधीयते ये तेऽनेन व्रजसङ्गिनः सङ्गेन सङ्गच्छन्ते। तस्मात् तस्या लीलायाः कथा मद्भक्तैः सह भक्त्या लीलाकथायां मग्नाः रात्रौ यत्र यत्र पुरुषासक्ता आत्मानन्दं तद्रूपिणं कुर्वाणा भवेयुः। रुचिरां लीलां योज्यमानां तां प्रतिपद्यमाना हि तया स्तुत्या ध्यानेन तल्लीलानुभवेन तन्मन्त्रोपासनेन तां लीलां पश्यन्तस्त ऋषयस्तद्भावेन गोवर्धनाद्रिशिरसि अटन्तः आत्मानं तद्भावेन भावयन्तोऽभवन्। रतिरसभावेनानन्दयोग्यतां वृक्षलतौषधयोऽनेकशोऽतितरामापद्यन्त॥ ४२॥

रमणानन्द क्या है ? स्वरूपस्वामिनी में आवेश होना रसिकानन्द पुरुषावेश है। इस लीला विद्या को जो पहचानते हैं, वे ब्रज सङ्गियों के संग से वृन्दावन धाम को प्राप्त होते हैं। इससे उस लीला कथा में मेरे भक्तों के साथ मग्न हुए, रात्रि में जहाँ-जहाँ पुरुषासक्त हों, उस आत्मा आनन्द को तद्रूप करने का प्रयत्न करें। उस रुचिर लीला को प्राप्त हुए, उस स्तुति, ध्यान, लीलानुभव से उस मन्त्र की उपासना से उस लीला को देखते हुए वे ऋषि सद्भाव से गोवर्धन पर्वत पर घूमते हुए अपने को तद्भाव भावित करते रहे। अनेक वृक्ष लतौषधियों ने रतिरस भाव से आनन्द योग्यता को अच्छी प्रकार प्राप्त किया॥ ४२॥

श्रीराधापुष्करिण्यां तं मन्त्रं जेपुः। तद्ध्यानं चक्रुः। तद्रूपे गुणात्मके एकरसे प्रत्यपद्यन्त। अतितरां गाढप्रेमरूपमापद्यन्त। अतीन्द्रियज्ञानेन संयोक्ष्यमाणा आपद्यन्त रतिप्रसङ्गेन तया निकुञ्जदेव्या स्वलोकदर्शनमनुभाविता अभूवन्। सा अत्यन्तगाढप्रेम्णा तल्लोकसेवनात् स्वोच्छिष्टं भुञ्जानान् तान् प्रति तद्भावाभवत्। बृन्दावनेरहस्यक्रीडायां महारासस्थलं दर्शयामास। तद्दर्शनेन योग्यतां प्राप्ता अत्यन्तस्तवनं चक्रुः। ते अग्निनमः। नम आनन्दरसदायिने। प्रेमानन्दाय रतिदायकसुरतानन्दाय कुमारा ऊचुः। श्रीरसिकानन्दाय नमः। नमस्तुभ्यम्। रसिकानन्दाय नमो नमः॥ ४३॥

श्री राधापुष्करिणी पर उस मन्त्र को जपा। वह ध्यान किया। गुणात्मक तद्रूप में एकरसता प्राप्त की। अत्यन्त प्रगाढ़ प्रेम को प्राप्त किया। अतीन्द्रिय ज्ञानयुक्त हो गये। रति प्रसङ्ग से उस निकुञ्ज देवी ने निजलोक के दर्शन से कृतार्थ कर दिया। वह अपने लोक में रहते हुए अपनी, जूठन खाने वाले उनके प्रति बड़ी भावपूर्ण हो गई। वृन्दावन में रहस्य क्रीड़ा में महारास स्थल को दिखाया। उसके दर्शन से योग्यता को प्राप्त हुए स्तुति करने लगे। अग्नि कुमार बोले, तुम्हें प्रणाम। आनन्दरस देने वाले, तुम्हें प्रणाम। प्रेमानन्द स्वरूप, रतिदायक, सुरतानन्द-स्वरूप तुम्हें प्रणाम। श्री रसिकानन्द के लिए नमः। तुम रसिकानन्द के लिए नमो नमः॥ ४३॥

अव्याकृतविहारिण्यै सर्वव्याकृतिहेतवे। नमः कल्याणनिधये तमस्तुभ्यं नमो नमः॥ ४४॥ ॐ नमोऽनन्त भोगवर्धिन्यै भोगात्मिकायै भोगसाक्षिण्यै। नमः शृङ्गाररूपाय। नमो भोगरूपाभ्याम् ।शरदि क्रीडते तुभ्यं नम आनन्दशालिने। नमोऽनन्तविहारायं नमस्ते रसरूपिणे॥ ४५ ॥ नमोरससाक्षिणे। नमो गूढकेलिकलाय। नमो दानशीलाय। नमो बृन्दारण्यविहारिणे। तदनुरूपेण तदा साक्षिणे नमोऽणुरूपाय। नमो धर्माय। नमः सर्वधर्मातिरिक्ताय। नमः कामदेवकुञ्जराय नमो नमः। सङ्केतविहारिणे नमः। दानलीला सुखदायिने नमः। भोगसुखरूपाय नमः। अत्यन्त सुखदेहिने नमः। सर्वधर्मातिरिक्ताय नमः। अनन्तसुखसंभवाय नमः। श्रीराधिकावल्लभाय नमः। श्रीराधाधरसुधाशालिने नमः। क्लीं कामवने कुञ्जकेलिरसिकाभ्यां नमः॥ ४६॥

हे परब्रह्म स्वरूप में विहार करने वाली, सब विकृतियों की कारणभूत, कल्याणों की भण्डार तुम्हें नमस्कार है, नमस्कार है। हे अनन्त भोगों को बढ़ाने वाली भोगात्मिका, भोगसाक्षिणी! तुम्हें नमन है। शृंगाररूप के लिए प्रणाम, भोगरूप दोनों को प्रणाम। शरत्काल में क्रीड़ा करने वाले, आनन्दशाली तुम्हें नमन है। अनन्त विहार वाले, रसरूप, तुम्हें नमन है। रस साक्षी को नमन। गूढ़ क्रीड़ा कलाओं के ज्ञाता को नमन। दानशील को नमन। वृन्दावन विहारी को नमन। तदनुरूप-तत्साक्षी, अणुरूप तुम्हें नमन है। धर्म को नमन। सर्वधर्मों से अतिरिक्त को नमन। कामदेव कुञ्जर को नमन। संकेत विहारी को नमन, दानलीला सुखदायी को नमन। भोगसुखरूप को नमन। अत्यन्त सुखदायी को नमन। सर्वधर्मों से अतिरिक्त को नमन। अनन्त सुखों के उत्पत्तिस्थान को नमन। श्रीराधिकावल्लभ को नमन। श्रीराधा अधर सुधाशाली को नमन। क्लीं कामवन में कुञ्जकेलि रसिक दोनों को नमन॥ ४४-४६॥

व्रां व्रीं बृन्दावने रहसि संवलितनित्यानन्दरूपाभ्यां नमः। नमः ह्रीं सृष्टिसमुत्पन्नाभ्याम्। नमः ह्रां सर्वचैतन्यभोगश्रावकाभ्याम्। युवाभ्यां नमो रमण सुखवल्लभाभ्याम्। ॐ श्रीबृन्दावन सदामोददायिभ्यां नमः। नमो बृन्दावने सखीसमूहे परस्परक्रीडासंवलितदेहाभ्याम्। ॐ नमः परस्परशृङ्गारसुखभोगवद्भ्याम्। ॐ नमः अद्यनादिसंभोगसुखभोक्तृभोगाभ्याम्। ॐ नमो वृषभानुनन्दगृहे क्रीडार्थं सप्रकटितदेहसंभवाभ्याम्। ॐ नमो ललितादिसंस्तुत्यदेहाभ्याम्। ॐ नमो यमुनाकेलिरसिकाभ्याम्। ॐ नमो जलकेलिरसिकाभ्याम्। ॐ नमो नौकारसकल्लोलाभ्याम्। ॐ नमो ग्रीष्मर्तुसेवितरूपाभ्याम्। ॐ नमो वसंतर्तुसेवितरूपाभ्याम्।

ॐ नमो शरदि रासक्रीडाकुतूहलेनानन्दविहारसर्वप्रदायिभ्याम्। यत् यौवनेऽद्भुतं रूपं कामकलाचातुर्याभिसंमितं तेभ्य एव नमो नमः। अत्रातिस्नेहसंकुलितमनोसद्म येषां तेभ्य एव नमो नमः। सर्वकारणरूपाभ्यां नमो नमः। सर्वरूपाविर्भावाभ्यां नमो नमः। भक्तवात्सल्याविर्भावाभ्यां नमो नमः। अत्यन्तनिगूढभावसंमोहिताभ्यां नमो नमः। प्रत्ययरसवीरुत्सुखदातृगुण गणयोग्याभ्यां नमो नमः। अनन्यभावरूपशोभासञ्चरित-स्वारस्यसंवलित-गुणगणनाभ्यां नमो नमः। रूपशोभासञ्च्चरितरसरसवादिगुणगणना-भावाभावसंवाहिभ्यां नमो नमः। यद्रूपवत्पृथिव्यां तदेकरूपाभ्यां नमो नमः॥ ४७॥

व्रां, व्रीं, वृन्दावन में एकान्त में लिपटे नित्यानन्द रूपशाली युगल जोड़ी को नमन। नमः ह्रीं सृष्टि को उत्पन्न करने वालों को नमन। नमः ह्रां सर्व चैतन्य भोगों के प्रदाता भोक्ता को नमन। रमणसुख जिन्हें प्यारा है, ऐसे तुम दोनों को नमन। ॐ श्री वृन्दावन में सदा मोद देने वाले तुम दोनों को नमन। ॐ नमः वृन्दावन में परस्पर क्रीड़ा करते समय मिले देह वालों को नमन। ॐ नमः परस्पर शृंगार सुख भोग वाले युगल को नमन। ॐ नमः आदि-अनादि संभोग सुख भोग तथा भोगने वाले युगल को नमन। ॐ नमः वृषभानुनन्द के घर क्रीड़ा के लिए प्रकट देहोत्पत्ति वाले युगल को नमन। ॐ नमः ललिता इत्यादि सखियों से स्तुत्य देह वाले युगल को नमन। ॐ नमः यमुना केलि रसिक युगल को नमन। जल में क्रीड़ा करने वाले रसिक युगल को नमन। ॐ नमः नौका में रस कल्लोल करने वाले युगल को नमन। ग्रीष्म ऋतु से सेवित रूप वाले युगल को नमन। वसन्त ऋतु से सेवित रूप-युगल को नमन। शरत्काल में रसक्रीड़ा कौतूहल से आनन्द विहार का रस सबको देने वाले युगल को नमन। यौवन में कामकला चातुर्य के योग्य अद्भुत रूप वाले युगल को नमन। इस विषय में जिनका मन मन्दिर स्नेहपूर्ण है, उन सभी को नमन। सबके कारण रूप दोनों को नमन सब रूपों का आविर्भाव जिनसे है, उस युगल को नमन। भक्तिरस, वात्सल्यरस का जिससे आविर्भाव है, उस युगल को नमन। अत्यन्त निगूढ़ भाव से जो परस्पर सम्मोहित है, उस युगल को नमन। प्रत्यय रस की लता को बढ़ाने वाले गुण - गणों के योग्य युगल को नमन। अनन्यभावरूप शोभा से संचरित जो रसमयता उससे मिली है (एक रूप है) गुण-गणना जिनकी, ऐसे युगल को नमन। रूप शोभा से संचरित रस तथा रसवादि गुण- गणना के भाव-अभाव के वाहक युगल को नमन। पृथिवी पर जो भी रूप हैं, वे सभी इसी से एक रूप हैं, इस युगल को नमन॥ ४७॥

एवं स्तुत्या स्तावितौ सद्योदर्शनमभवताम्। तद्दर्शनप्राप्त्याकोटिसूर्यप्रतीकाशं कोटिचन्द्राह्लादं तस्या निकुञ्जदेव्याः कटाक्षमन्वभवन्। तस्या निकुञ्जदेव्याः स्वस्वरूपेणाहो प्रार्थयत वरमित्युक्त्वा मनोऽभिलषितं उपाच्छन्द्यन्त। व्रजगोपकन्या भविष्यामः। तथा ममावेशेन रसिकानन्दे सुरतानन्दा भवन्तु। तेऽग्निपुत्रा व्रजे सत्स्वरूपतां प्राप्ता महालीलायाम्। नित्यानन्दरूपमेव यन्ति ते येषां स्थानं शतशो निकुञ्जरासस्थलानि। निकुञ्जदेव्या श्रीराधिकयात्मानं शतसहस्रधा कृत्वा तस्मिन् रसिकानन्दे तया देव्यात्मानं रसयाञ्चक्रुस्त ऋषयः। तदभावोऽनल्पं विपर्ययमातनोत्। तस्यां लीलायां भावापन्ना भावा अभवन्। शृणु महालक्ष्मि लीलायां येऽप्यरण्यधर्मिणो ये ज्ञानवैराग्यरहितास्ते तां लीलां प्राप्नुवन्ति। तस्माद्धर्माधर्मौ परित्यज्य पापपुण्यं परित्यज्य ये रसिकानन्दीमाज्ञां प्राप्तास्ते तां प्राप्नुवन्ति। इदं रहस्यं न कदाचिद्वाच्यम्॥ ४८॥

इस प्रकार स्तुति से स्तावित हुए (स्तवन किए हुए) दोनों ने शीघ्र दर्शन दिया। उस दर्शन की प्राप्ति से करोड़ों सूर्यों के प्रकाश जैसा, करोड़ों चन्द्रों के आह्लाद जैसा उन निकुञ्ज देवी के कटाक्ष का अनुभव किया। निकुञ्ज देवी ने अग्नि कुमारों से कहा- वर माँगो। वे बोले- हम ब्रज गोप कन्या बनें। देवी ने कहा- मेरे आवेश से रसिकानन्द में सुरतानन्द वाली होओ। वे अग्निकुमार ब्रज में स्वस्वरूप को प्राप्त हुए महालीला के अधिकारी बने। वे नित्यानन्द रूप को प्राप्त हुए, जिन्होंने सैकड़ों निकुञ्ज रास स्थलों में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है। उन ऋषियों ने निकुञ्ज देवी श्रीराधिकाजी के द्वारा स्वयं को सैकड़ों- हजारों रूपों में प्रकट करके उन रसिकानन्द में अपने को रमण किया। इसके अभाव में काफी व्यग्र रहे। उस लीला में भावापन्न भाव थे। हे लक्ष्मि ! सुनो, जो भी अरण्यधर्मी हैं, जो ज्ञान-वैराग्य से रहित हैं, वे ही उस लीला को प्राप्त करते हैं। अत: धर्म-अधर्म को छोड़कर, पाप-पुण्य को त्याग कर जिन्होंने रसिकानन्दी आज्ञा प्राप्त की है, वे ही उसे प्राप्त करते हैं। यह रहस्य किसी से भी न कहना॥ ४८ ॥

[जिस प्रकार संगीत की गूढ़ बारीकियाँ किसी श्रेष्ठ-समर्पित संगीत साधक को ही बताने योग्य होती हैं, उसी प्रकार दिव्य रसानुभूति की बारीकियाँ किसी श्रेष्ठ-समर्पित रस साधक को ही बतलाने की मर्यादा निर्धारित की गई है।]

सा लक्ष्मी:पुनरुवाच। ये योग्येषु सदा सहकारिणोऽभवन् नित्यलीलयानुभवलीलामापद्यन्त तैः किं साधनं कृतम्? केन साधनेन सिद्धा आसन्? अत्यन्तरसलीलामग्नाः रसिकानन्दे तया देव्या श्रीराधिकया दर्शनसुखं प्राप्तवन्तः। किं प्राप्तं येन आनन्दे अभवन्। स होवाचेदं रहस्यं प्रश्नम्। सखायः समुत्पद्य नित्यं व्रजलीलायां सहकारिणोऽयुज्यन्त। यथापूर्वं गोपानां द्विधा भेदा अभवन्। ये गोपाः सदा वनलीलायां सहकारिण आसन् ते सदा सुश्लोकदेवप्रस्थवरूथपकृष्णबलरामदेवहारकुमुदरोचिष्मद्रमणाद्या विराजमाना अभियन्ति। तेषां स्वलीलार्थं स्वर्गानन्दात् ते गोपाः प्रकटिताः। तेषां प्रेमानन्दं दत्तवान्। ते प्रेम्णा भजनेन रमणानन्ददर्शनयोग्या अभवन्। येषां प्रेमानन्दसंपत्तिस्ते रमणानन्ददर्शनयोग्या एव भवन्ति॥ ४९ ॥

लक्ष्मी फिर बोलीं! जो योग्यों में सदा सहकारी रहे, जो नित्य लीला से अनुभव लीला को प्राप्त हुए, उन्होंने कौन साधन किये थे ? किस साधन से वे सिद्ध हुए ? अत्यन्त रसलीला में मग्न हुए, रसिकानन्द में उन देवी राधिका के साथ दर्शनसुख प्राप्त कर सके। उन्होंने क्या प्राप्त किया-जो आनन्द मग्न हुए। भगवान् बोले- यह बड़ा गूढ़ रहस्य है। सखा लोग इकट्ठे होकर नित्य ब्रजलीला में सहकारी होते थे। यथापूर्व गोपों के दो भेद हुए। जो गोप सदा वनलीला में सहकारी होते थे, वे सदा सुश्लोक, देव, प्रस्थ, वरूथप, कृष्ण, बलराम, देव, हार, कुमुद, रोचिष्मत् रमण इत्यादि रूपों में विराजमान होते थे। उनकी स्वलीला के लिए स्वर्गानन्द से वे गोप प्रकट हुए, उन्हें प्रेमानन्द दिया। वे प्रेमपूर्वक भजन से रमणानन्द के दर्शन योग्य हुए जिनके पास प्रेमानन्दरूप संपत्ति है, वे ही रमणानन्द-दर्शन योग्य होते हैं॥ ४९ ॥

रमणसंपदि योग्या दर्शनस्पर्शालापसुखलीलारतिरास्तां तेषाम्। रमणानन्ददर्शनयोग्यतामातन्वन्नन्येषाम्। एकरतिरास्ताम्। रमणसेवायां संस्थापक शय्योपकरणगुणरूपगानरतिध्यानकीर्तनलीलास्मरणतद्भावापत्तिरूपसेवा यथा

कालोपपन्नसेवैवास्ताम्। रतिसेवायां रतिसेवाकथायां मनोऽयुञ्जत। अहो लक्ष्मि मम रूपाण्यनेकशो ममावतारा अनेकशः। अंशकला आवेशाः पूर्णाशास्तेऽपीमां लीलां न जानन्ति। अन्यास्तवांशकला उत्पन्नास्ताः अपि लीलां न जानन्ति। अन्ये ये शतशः सहस्त्रशस्तेऽपि तस्या लीलायाः अनन्तरा आपद्यन्ते। तस्मात्तत्तल्लीलोपयोगिलीलाप्राप्तिरेवास्ताम्। न धर्मो न कर्म न ज्ञानम्। न कर्म केवलम्। एक एव तल्लीलापाठः। एकैव लीलोपसेवा। किशोरनवनूत्ननवीयस्सदाविहारानन्दकलानिधेः रसिकानन्दशिरोमणेः श्रीराधाश्रियोऽतिमोहनस्योपासका भक्तास्तेषामुपासनम्। तल्लीलायोग्यतया धर्मोपासका वैष्णवा वैकुण्ठलीलामनाश्रिताः सनकादयो नारदादयोऽपि। जयन्तकुमुदजयविजया अन्ये च ये तेषां मम रूपाणि रासलीलायोग्या ये ममाविर्भावास्तेषां दर्शनं न भवत्येव। अन्ये कर्मोपासकास्तां लीलां स्वप्नेऽपि न ददृशुः॥ ५०॥

उनके पास रमण सम्पत्ति में योग्य दर्शन-स्पर्श, आलाप, सम्बन्धी सुख तथा लीला रति होती है। उन्होंने रमणानन्द दर्शन योग्यता प्राप्ति का अन्यों के लिए विधान किया। एकमात्र वहाँ ही रति (आसक्ति) हो। रमण सेवा में संस्थापक शय्या के उपकरण, उनके गुण, रूप का गान, उनमें रति, उनका ध्यान, कीर्तन, लीला स्मरण तद्भावापत्ति, रूपसेवा इत्यादि यथा समय किये जाएँ। रति सेवा एवं रति सेवा कथा में मन को लगाया जाए। अरे लक्ष्मि! मेरे अनेक रूप - अनेक अवतार हैं। अंश कलावतार अथवा पूर्णांश कलावतार भी इस लीला को नहीं जानते। अन्य तुम्हारे अंश से उत्पन्न स्त्रियाँ भी इसे नहीं जानतीं। अन्य भी जो सैकड़ों- हजारों हैं, वे भी उस लीला के बाद ही आते हैं। इससे उन-उन लीलाओं की उपयोगी लीलाओं को ही वे प्राप्त करते हैं। न कोई धर्म है, न कर्म है, न ज्ञान है। एकमात्र वह लीला ही पाठ है। एक मात्र लीला ही उपसेवा है। किशोर, नूतन, सदाविहार, आनन्दकलानिधि रसिकानन्द शिरोमणि तथा श्रीराधिकाजी की छवि के अतिमोहक रूप के जो उपासक हैं, वास्तव में वे ही सच्चे उपासक हैं। उस लीला के अयोग्य पात्र धर्मोपासक वैष्णव तथा वैकुण्ठ लीला के अधिकारी सनकादि, नारदादि भी नहीं हैं। जयन्त, कुमुद, जय, विजय आदि अन्य जो मेरे रूप हैं, वे भी रासलीला के अयोग्य हैं, उन्हें भी इसका दर्शन नहीं होता। अन्य कर्मोपासक तो उस लीला को स्वप्न में भी नहीं देख सकते॥ ५०॥

अहो अनन्यभक्ति पराकाष्ठा। अहो मद्भक्तानां सङ्ग एव पराकाष्ठा। तल्लीलाकथा पराकाष्ठा। तस्यां लीलायां प्रत्ययः पराकाष्ठा अन्यकथाधर्मदानव्रततीर्थसाधनानि विमुक्तानि। यमनियमप्राणायाम प्रत्याहारकलासुखभाविता सामान्यभक्तिरपि त्यक्ता। तल्लीलोपासकानां एकैव व्रजलीलातायत। रतौ रमणानन्दे रतिरासां भवति। अवस्थितोऽयं रसः। शुष्कवादिनामन्यां लीलां न शृणुयात्। कर्मवेदजनितानि कर्मोपासनानि ये कुर्वन्ति ते कर्मजडा आसुरास्तेषां हठात्सङ्गस्त्यज्यते। चित्तवृत्तिं दूषयति। येषां सङ्गं नालपेन्न शृणुयात् ते धर्मविरोधिनस्तां लीलां न जानन्ति। तस्मात्तद्धर्मदृढकारिणो ये ते सेव्याः पूज्याः। ते तां लीलां ददति। अनन्यधर्मान् शृणुयादिति रसमार्गिणां धर्मः। अरसिका जीवाः कर्मजडा ये तेषां स्वेष्टं न दर्शयेत्। स्वेष्टस्य

वार्तामपि न श्रावयेत्। सखायो येषां विद्याविर्भावस्तेषाम्। अन्य विद्यारुचिर्न भवत्येव। यदनन्यधर्मे रुचिरास्तेऽरुचिरन्यत्र भवेत्। तस्य स्वेष्टेआविर्भवति रतिः। सोऽन्यदिष्टं विस्मरति॥ ५१॥

अरे! अनन्य भक्ति ही पराकाष्ठा है। मेरे भक्तों का सङ्ग ही पराकाष्ठा है। वह लीला कथा ही पराकाष्ठा है। उस लीला में विश्वास पराकाष्ठा है। जिन्होंने अन्य कथा धर्म-दान, व्रत, तीर्थादि साधनों का त्याग कर दिया है। यम-नियम, प्राणायाम-प्रत्याहार आदि से कलांश मात्र को सुखोपलब्धि कराने वाली सामान्य भक्ति को त्याग दिया है। उस लीला के उपासकों की तो मात्र व्रजलीला चिन्तन वृत्ति ही प्रधान है। रमणानन्द की रति में इनकी रति होती है। यह रस नित्य रूप से अवस्थित है। सूखे तर्कवादियों की अन्य किसी भी लीला को न सुनना चाहिए। कर्म- वेद जनित कर्मोपासना जो कर्मजड़ आसुर करते हैं, उनका संग हठपूर्वक त्याग देना चाहिए। उनसे चित्तवृत्ति दूषित होती है। इनके साथ सम्भाषण नहीं करना चाहिए। ये धर्म विरोधी लोग इस लीला को नहीं जानते। अत: जो लोग इस धर्म में दृढ़ करने वाले हों, वे ही सेव्य और पूज्य हैं। वे उस लीला को देते हैं। जो इस धर्म के प्रति अनन्य हों, उन्हें ही सुनें, क्योंकि यह रसमार्गियों का धर्म है। अरसिक जड़ जीवों के लिए अपने इष्ट के दर्शन न कराये। अपने इष्ट की बात भी न सुनाये। हे सखाओ! जिनमें इस विद्या का आविर्भाव हो गया है, उनकी अन्य विद्याओं में रुचि नहीं होती। जिन्हें इस धर्म में अनन्य रुचि है, उनकी अन्यत्र अरुचि होती है। उसकी अपने इष्ट में ही रति बढ़ती है। वह इष्ट से अन्य को भूल जाता है॥ ५१॥

गुरुकृपया जीवत्वं प्रपन्नानामनुग्रहत अनुग्राह्यानुग्राहकभावेन रतिराविर्भवति। अतिरतेः स्नेहं विना न प्राप्तिः स्यात्। नारायणं प्रति लक्ष्म्या आविर्भूतया तया निकुञ्जदेव्या यानि सुखान्यनुभूयन्ते तेगं प्रश्नं पुनरभिवदति। ये साधनसिद्धास्तेषां कुतः स्थितिः। कया सरण्या तल्लोकप्राप्तिः स्वर्गतरास्ते। कया रसिकानन्देन तस्या निकुञ्जदेव्याः प्राप्तिर्भवेत्। ये गवां गणास्तेऽतितरां तस्या देव्याः दृष्टिगोचरा एवासताम्। पुरुषो रसिकानन्दः स्वहस्तेन तेषां यथासुखं परिमार्जयन् दधिदुग्धनवनीताद्यान् रसान् स्वयमेव भुङ्क्ते। ये वत्सतरास्तेषां स्वहस्तेन पृष्ठभागान् परिमार्जयति। तेषां स्थानं कियत्प्रमाणम्। नन्दादयो गोपा वृषभान्वादयश्च ते गोपाः साधनसिद्धा वा संसिद्धा वा। यशोदाद्याः स्त्रियो मातृभावं प्राप्तास्ता अनादिसंसिद्धा वा साधनसंसिद्धा वा। यासां गृहे रसिकानन्दोऽयं पूर्वं तया श्रीराधया स्वयमेव संसिद्धासु भावप्रकटितः एव भवति। अत्यन्तस्नेहावभवताम्। अत्यन्त उत्सवो रमण एव भवति भजनप्रेमानन्दसुखप्राप्तौ। अतितरां रूपासक्तिर्न कथं भवेत्। सुखरूपरतिर्येषामन्यत्किं स्मर्यते॥ ५२॥

जीवत्व को प्राप्त हुए मनुष्य की गुरुकृपा से अनुग्राह्य-अनुग्राहक भाव से रति उदय होती है। स्नेह बिना अत्यधिक रति की प्राप्ति नहीं होती। लक्ष्मी जी ने पुन: प्रश्न किया- भगवन्! उन आविर्भूत निकुञ्ज देवी ने क्या-क्या सुख अनुभव किये? जो साधन सिद्ध हैं, उनकी क्या स्थिति है? किस प्रणाली से उनमें स्वरति होकर उस लोक की प्राप्ति होती है? किससे रसिकानन्द के साथ उन निकुञ्ज देवी की प्राप्ति होती है? जो गायों के समूह हैं, वे उस देवी के अति कृपापात्र हैं, वे तो सामने ही रहते हैं। पुरुष रसिकानन्द स्वयं अपने हाथों से उनकी सफाई करके दही, दुग्ध, नवनीतादि रसों का उपभोग करते हैं। जो बछड़े वाली गौएँ हैं, उनके पिछले भाग (ऐन) को अपने हाथों से साफ करते हैं। वह स्थान कितना विस्तृत है? नन्दादि गोप तथा वृषभानु आदि गोप साधन सिद्ध

हैं अथवा संसिद्ध हैं ? यशोदादि स्त्रियाँ जो मातृभाव को प्राप्त हैं, वे अनादि संसिद्ध हैं अथवा साधन संसिद्ध हैं। जिनके घर रसिकानन्द आये। क्या उन संसिद्धाओं को कृतार्थ करने राधा के साथ आने का कार्यक्रम राधा की इच्छा से हुआ था ? अत्यंत ही स्नेह उनमें पूर्व से ही था। अत्यन्त प्रिय रमण ही होता है। वे दोनों भजन-प्रेमानन्द सुख से प्राप्त होते हैं ? उनमें परस्पर अत्यन्त रूपासक्ति क्यों न हो ? जिन्हें सुखरूप रति का स्मरण है, उन्हें अन्य क्या याद रहेगा ?॥ ५२ ॥

स होवाच पूर्वं सृष्ट्युत्पन्ना अष्टौ वसवः। तेषां वसुनाम्ना अष्टौ कोटयो वसवो देवप्रवरा मम लीलालोकं श्रुत्वा तल्लोके श्रुते उत्कण्ठमाना लीलयापेदुरिति श्रुतम्। इमं महिमानमभ्येत्य वनलीलासक्ताः अतितरामासताम्। अतिलोलुपे चित्ते तस्यां व्रजलीलायां राधा आस्त। संसिद्धनिकुञ्जलीलायां मयोपविष्टा मौनेनापन्नभावा अभवन्। ओङ्काराविर्भावलीलारूपश्रीराधारसिकानन्दरूपं प्रतिपद्य मनो भावापन्नं कृत्वा तां लीलां गायमाना अभवन्॥ ५३॥

इन सभी प्रश्नों को सुनकर नारायण ने कहना प्रारम्भ किया—सृष्टि की उत्पत्ति के समय आठ वसु उत्पन्न हुए। उनमें से वसु नाम से आठ प्रकार के वसु देवजाति के कहलाए, जो मेरे लीला लोक को सुनकर उस लोक के प्रति उत्कण्ठित हुए, लीला से ही प्राप्त उसे प्राप्त किया जा सकता है, ऐसा सुना गया। इस महिमा को सुनकर वे वन- लीला में बहुत आसक्त हुए, अतिलोलुप चित्त वाली उस ब्रजलीला में राधा जी थीं। संसिद्ध निकुञ्ज लीला में मेरे साथ बैठी मौन धारण किये हुए थी। ओङ्कार के आविर्भावरूप श्रीराधारसिकानन्द रूप को प्राप्त कर मन को भावापन्न करके उस लीला का गान करती रहीं॥ ५३ ॥

[निकुञ्ज लीला में राधा के मौन होने का तात्पर्य यह है कि सृष्टिपूर्व की स्थिति में चित्शक्ति सुप्त-मौन अवस्था में परम पुरुष के समीप रहती है। ओंकार का आविर्भाव परम पुरुष के संकल्प का प्रतीक है। उसके प्रकट होते ही चित्शक्ति उस लीला का गान करने लगती है अर्थात् उसे व्यक्त करने के लिए सचेष्ट हो जाती है]

ते वसव ऊचुः। ॐ श्रीराधारसिकानन्दविनोदाभ्यां संयुक्ताभ्यां नमो नमः। नित्यक्रीडात्मने नमो नमः। कामकेलिकौतुकात्मने नमो नमः। केलिकौतुकात्मने नमो नमः। शृङ्गाररसविनोदिने नमो नमः। धात्रे क्रीडासंपादिने नमो नमः। अनन्तरससंपादकारिणे नमो नमः। सीमन्तिने नमो नमः। रतौ संभोगिने नमो नमः। नानासुरतानन्दनिधये नमो नमः। रसिकानन्दशिरोमणये नमो नमः। रासमानजलक्रीडात्मने नमो नमः। क्रीडाविनोदिने नमो नमः। रतिसंभावितसुखसंवलितात्मने नमो नमः। सुरतोत्कण्ठिने नमो नमः। यौवनात्मने नमो नमः। रससंभोगात्मने नमो नमः। अत्यन्तक्रीडाश्रान्तिसंवलितवदनाय नमो नमः। प्रथमसङ्गरञ्जितात्मने नमो नमः। संभोगचटुचाटुवचनाय नमो नमः। मृदुकपोलवाण्यात्मने नमो नमः। निकुञ्जे पुष्पशय्या शृङ्गारवत्सखी सुखदात्रे नमो नमः। आलिङ्गनचुम्बनसुरत सुखसंवलितवदनाय नमो नमः।

सुरतानन्दसमग्रवशीकृतरसिकानन्दाय नमो नमः। आसनभेदसंयोगसुखदात्रे नमो नमः। विपरीतसुखदाय उदारचेतसे संभावितजितरसिकशिरोमणये नमो नमः। सुरतानन्दवशीकृत-स्वाधीनपतिकाशृङ्गारात्मसुखदायिने नमो नमः। ललितायां विशाखायां कलावत्यां शृङ्गारवत्यां योजितात्मने नमो नमः। भोगद्रष्टे भोगसंभवाय नमो नमः। निद्रासंभावितविप्रलंभ-सुखसमनुभवतिरस्कृतरसिकानन्दात्मने नमो नमः। अत्यन्तप्रवीणरससुखरसिकशिरोमणि-भोगभावुकात्मने नमो नमः। सर्वक्रीडारसपूरिणे नमो नमः। पृथिव्यां यत्र सुरतानन्दभोगास्तद्भोगाविर्भावान्तर्यामिणे नमो नमः। पृथिव्यां यदानन्दरूपं तत्तदानन्ददायिने नमो नमः। पृथिव्यामतिकाममनोरथं सिद्धं वासिद्धं सुन्दरं सुभगं तेषामेव नमो नमः। एवं स्तुतस्तदा वसुभिः स्वानन्दाविर्भावं ददावतिप्रीतो रुद्रोऽयम्॥ ५४॥

(ऐसी स्थिति में) वे वसु बोले-' श्रीराधारसिकानन्दविनोदाभ्यां संयुक्ताभ्यां नमो नमः।...................
.........पृथिव्यामति काममनोरथं सिद्धं वासिद्धं सुन्दरं सुभगं तेषामेव नमो नमः। इस प्रकार वसुओं द्वारा स्तुत रुद्र ने प्रसन्न होकर स्वानन्द के आविर्भाव का वर दिया। ॥ ५४॥

वसूनां प्रवरोऽयं नन्दोऽभवत्। धरानाम्नी स्त्री यशोदास्त। बृहद्वसुश्रेष्ठः कीर्तिदेव्या सह वृषभानुरभवत्। निकुञ्जदेव्या रसिकानन्देन सह यत्रानन्दोऽभवत्। नन्दोपनन्दभद्राश्वकृतवदुग्रभङ्गोदधिसामन्ता-तिरोचिष्मत्कान्त्येयमत्यनघरोचिष्मदुष्णीषरश्मिवसुसुजया अन्ये च शतशो वसवः साधनसिद्धाः एवासत। तेषां स्त्रीषु श्रीयशोदा सा च सत्या आस्त। रसिकानन्दशिरोमणिर्बृन्दावनेश्वर्या सह संक्रीडमानोऽभवत्। अतिरूपलावण्यलवकसूक्ष्मस्वरूपेणैनं भजमानाय नन्दरूपं दत्तवान्। ते गोपा गोप्यः। ते परस्परमेकप्राणा एवासत। ते गोपा एकप्राणा एकरूपिण एकभावा अभवन्। येषां पुरुषोत्तम आनन्दः अन्याश्च गोप्यो नानाभजनभावमाविष्कृत्य भजनानन्दे भजनं कुर्वन्ति। अतितरां स्नेहोऽभवत्॥ ५५॥

[यहाँ आधिदैविक से आधिभौतिक लीला प्रकट होने का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है]

वसुओं के मुख्य नन्द हुए। धरा नाम की स्त्री यशोदा हुई। बृहत् नामक वसुश्रेष्ठ अपनी कीर्ति देवी के साथ वृषभानु हुए। जहाँ व्रज क्षेत्र में निकुंज देवी के साथ रसिकानन्द रूप में आनन्द ने अवतार लिया, वहीं नन्द, उपनन्द, भद्राश्व, कृतवान्, उग्र भङ्गोदधि, सामन्त अतिरोचिष्मान, कान्त्येत्यमति, अनघ रोचिष्मदुष्णीष रश्मि-वसु सुजय इत्यादि अन्य सैकड़ों वसु जो साधन सिद्ध थे, जन्म लेकर आ गये। उनकी स्त्रियों में यशोदा और सत्या मुख्य थीं। रसिकानन्द शिरोमणि वृन्दावनेश्वरी के साथ क्रीड़ा करने लगे। अति रूप-लावण्य की सम्पूर्णता को सूक्ष्म रूप से ध्यान करने वाले इस वसु को नन्द का रूप दिया। अन्य वसु गोप और गोपियाँ बने। वे परस्पर एक प्राण थे। वे गोप एक प्राण, एकरूप, एकभाव वाले थे। जिनका मुखिया पुरुषोत्तम आनन्दरूप था। अन्य गोपियाँ नाना भावों को हृदय में सँजोए रसिकानन्द का भजन करती थीं। उनका बहुत अधिक स्नेह भजनानन्द में था॥ ५५॥

सा लक्ष्मीर्नारायणमुवाचेदम्। अत्यानन्दोऽयं लोकः। यस्मिन् लोके केवलरसनिधिर्मोहनेन रूपेण क्रीडामकरोत्। सा बृन्दावनेश्वरी कोट्यानन्दरूपा यत्र बालकेलिक्रीडां व्यदधात्। तेषां स्थानानि कीदृग्विधानि। गृहाणि कीदृग्विधानि। वद सर्वमानन्दाविर्भावेन। भजनानन्दः सुखं श्रीराधारसिकमोहनमेवं क्रीडामातनोत्। स होवाच लक्ष्मीम्। नन्दस्य गृहं सर्वसमृद्ध्यानन्दावधि मणिमयमाधिदैविकेन रूपेण स्वप्रकाशमकरोत्। पद्मरागमयः कुड्यः। सुवर्णजाम्बूनदप्राकारा वीथयो विराजमाना भवन्ति। यत्र वृषभानुगृहं नन्दगृहाद्योजनायितम्। तस्मात् स्थानात् द्वादश श्रेणयोऽतितरां लघुकोमलमणय एवासन्। तासु श्रेणिष्वनेकशो लताप्रतानिन्य एवासन्। सुवर्णयूथिकाप्रवालैर्मणीनारङ्गप्ररोहैरा-नन्दक्रीडास्थानमनुरचितं भवति। तत्रेदं संकेतस्थानम्॥ ५६ ॥

लक्ष्मी जी नारायण से बोलींद्ध यह लोक बड़ा आनन्दमय है। जहाँ रसनिधि ने स्वयं मोहनरूप से क्रीड़ा की। जहाँ कोटि-आनन्दरूपा वृन्दावनेश्वरी ने बालक्रीड़ा की। उनके स्थान कैसे थे? घर कैसे थे? सब कुछ आनन्दपूर्वक कहो। भजनानन्द ने सुखपूर्वक केवल रसिकानन्द श्रीराधा की युगल क्रीड़ा ही की अथवा कुछ अन्य भी? नारायण बोले- नन्द का घर सब समृद्धियों से भरपूर, आनन्द की चरम सीमा, मणिमय, आधिदैविक रूप से स्वयं प्रकाशमान था। पद्मरागमणि से बने बड़े जल पात्र सुशोभित थे। स्वर्ण से जड़ी चारदीवारी थी। वृषभानु का घर नन्द के घर से एक योजन दूर था। उस स्थान से बारह श्रेणियाँ लघु कोमल मणियों से चित्रित थीं। उन श्रेणियों में अनेक लता-प्रतान थे। सुवर्ण यूथिका प्रवालों से मणियों के नारंगी रङ्ग जैसे प्ररोहों से आनन्द क्रीड़ा स्थान सुसज्जित था। वहाँ संकेत स्थान भी था॥ ५६ ॥

अहो लक्ष्मि किं वर्ण्यते चतुर्योजनायितम्। नन्दवृषभानोर्गृहात् द्वादश श्रेणयोविराजमानाः सङ्केतस्थलादुपरितः। तेषु स्थानेषु मध्यस्थिता अनेकशो विविधलताप्रावारा अभियन्ति। मुक्तालताग्रथिता मर्णानां तेजसा प्रद्योतिता अभ्येत्यतितराम्। सहस्रनिकुञ्जा कदम्बलता सुगन्धसंवलितातितरां विस्तीर्णाभ्येति सुभगा कदम्बमञ्जरी। हरितपीतनीलश्वेतशुभ्राः कदम्बाश्च परागोद्धूतपरिधयः सुवासिता आसन्। तद्गन्धलोलुपभ्रमराः संसिद्धाः साधनसिद्धा अनेकशः कोमलकलं यशोगायमानाः सन्ति। कोकिलपिकशुकाः संसिद्धाः साधनसिद्धा अनेककोमलकलं गायमानाः सन्ति। रूपलावण्ययुताः हंसमयूरादयोऽनेकशो रुचिरा भवन्ति। ते तस्मिन् स्थाने रसिकानन्देऽति मोहनरूपे नित्यं संक्रीडमाना भवन्ति। बृन्दावनेश्वरीनित्यक्रीडाप्रधानं भवति रासखीनां समूहेन दशसहस्राणां समेतानां वृषभानोर्गृहम्। वृषभानुपुरं पूर्णानन्दयुतं प्रेमानन्दयुतं सुखसन्ततियुतम्। सर्वाः समृद्धयो द्वारे तिष्ठन्ति। अष्टमहासिद्धयो द्वारे द्वारे तिष्ठन्ति। अतितरां सुखसंपत्तिः स्वरूपेण सुसेवते। ये ये विद्यासधर्माणः सुभगाः सुरतकलाकामनिद्रालज्जाप्रेमसुरतोत्कण्ठादयस्ते विराजमाना भवन्ति। अधितत्स्थानं निकुञ्जे मध्ये सुगन्धशीतला मणयो ग्रीष्मादिषु ऋतुषु सेव्यरूपाः क्वचित् सुगन्धपारिजाताः केचिद्वृक्षाश्चम्पकाः सदापुष्पिताः सदा सुकोमलैः पत्रैर्विराजन्ते सुगन्धाः। केचिद्वृक्षाः

पक्वफलसुगन्धरसयुक्ता विराजमाना आसते। केचिल्लताप्रकीर्णाः अतितरां सुगन्धयुताः। आमोदगन्धलुब्धा भ्रमरा मुदा गायन्ति। काश्चिद्गोप्यस्तत्र मज्जन्त्य आसते। काश्चिद्गोप्यस्तस्यां वस्त्रालंकरणैर्भूषयांचक्रुः ॥ ५७ ॥

अहो लक्ष्मि ! उसका क्या वर्णन करें ? वह चार योजन में फैला था। नन्द वृषभानु के घर से संकेत स्थान तक बारह श्रेणियाँ थीं। उन स्थानों पर अनेक प्रकार की लताओं के आच्छादन मध्य स्थान थे। मोती की लताओं से गुंथित मणियों की कान्ति से अत्यधिक दीप्तिमान् हो रहा था। हजारों कुञ्जों, कदम्ब लताओं से युक्त, सुन्दर कदम्ब मञ्जरी की सुगन्ध अत्यधिक विस्तृत हो रही थी। हरे, पीले, नीले, श्वेत कदम्ब पराग से सुशोभित थे। उनकी गन्ध के लोभी भौंरे संसिद्ध साधन सिद्ध भक्तरूप में सुन्दर कण्ठ से उनका यशोगान करते थे। कोयल, तोते भी यशगान करते थे। रूप-लावण्यमय हंस, मयूरादि अनेकों की संख्या में शोभायमान होते थे। वे वहाँ नित्य रसिकानन्द के अतिमोहन रूप को देखकर नाच उठते थे। दस हजार सखियों के साथ वृन्दावनेश्वरी श्रीराधिकाजी की नित्य क्रीड़ा से वृषभानु का घर शोभायमान होता था। वृषभानुपुर (गोकुल) आनन्द व प्रेम तथा सुख-सन्तति से युक्त था। सारी समृद्धियाँ द्वार पर खड़ी प्रतीत होती थीं। आठों सिद्धियाँ द्वार-द्वार पर विराजमान थीं। अत्यधिक मात्रा में सुख-सम्पदाएँ स्वयं सेवारत थीं। जो-जो विद्या-धर्म से युक्त सुन्दरियाँ काम-क्रीड़ा, निद्रा, लज्जा, प्रेम आदि से उत्कंठित थीं, वे सभी वहाँ विराजमान थीं। निकुञ्जों के मध्य में सुगन्धित शीतल मणियाँ ग्रीष्मादि ऋतुओं में सेवनीय थीं। कहीं सुगन्ध भरे पारिजात, कहीं सदा खिले चम्पावृक्ष सुकोमल पत्तों से सुगन्धित रहते थे। किन्हीं पर पके सुगन्धित फल होते थे। कहीं लताओं के झुरमुट बड़ी सुगन्ध फैलाते थे। आमोदगन्ध से लुब्ध भौंरे प्रसन्न होकर गाते थे। कहीं स्नान करतीं गोपियाँ वस्त्रालङ्कारों से स्वयं को सजाती थीं ॥ ५७ ॥

काश्चिद्गोप्यः प्रेमासक्ता राधारसिकानन्दाभ्यां भोजनं चक्रुः। काश्चिद्गोप्यो दोलां ताभ्यां सह दोलयित्वा गायमाना आसन्। मुदा काश्चिद्गोप्यस्तच्चित्रशालायां स्वानि स्वानि रूपाणि पश्यन्ति हृष्यन्ति रात्रौ दिवानवरतम्। गोप्यो भावाश्रितास्तद्दोललीलां गायमाना भजनं चक्रुः। अत्यासक्ताः प्रेमभजनरूपा आनन्दं विन्दन्ते। ततो गोपास्तथा रसिकानन्दे मग्ना अत्यन्तप्रेमभजनं कुर्वते। ये प्रेमभजने निमग्नास्ते तां लीलामापद्यन्त। नित्यलीलाभजनानन्दोऽयं रसोऽनिर्वचनीयः। नन्दयशोदा वृषभानुसत्यादयो ये भक्तास्ते भजनानन्दं नित्यमनुभवन्त्यतितराम्। भूयो भूयः सुखसौष्ठवमभवत्। एवं गोपा गोप्यस्तन्मयतां प्राप्नुवन्ति। तासां मातृभावं प्रपन्ना गोप्यो भजनानन्दे भजनमेव कुर्वाणा आसन्। तासां गृहा दिष्ट्यानादिसुखसमृद्धिसंपत्तयो भवन्त्यानन्दसुखसमृद्धि सिद्धयः। नानाभजनयोग्यान्युपकरणानि तदर्थे संपादितानि भवन्ति। गोपगोपिकादीनां समृद्धिसुखं तस्य भजनार्थमेव भवति। अतितरां सुखार्थमेव योग्यतापद्यते। अनन्तसुखसंपत्तितया निकुञ्जदेव्याः स्वावेशेन सुखकोट्यानन्दं प्राप्नुवन्ति। अभियन्ति च सुखसंयोग्यताम्। पृथिव्यां भारते क्षेत्रे आनन्दमयो लोकः स्वसृष्टिलीलार्थं स्वयमेव प्रकटितः। तस्मिन् व्रजलोके सर्वा एव लीलाः सन्ति। ये गोपा गोप्यस्ते आधिदैविकीं लीलामतितरां संसिद्धा अनुभवन्ति ॥ ५८ ॥

कोई गोपिका प्रेमासक्त होकर श्रीराधा-रसिकानन्द के लिए भोजन बनाती हैं। कुछ गोपियाँ झूले को उनके साथ हिलाकर गीत गाती हैं। कहीं चित्रशाला में प्रसन्न मुद्रा में गोपियाँ अपने-अपने रूप को देखकर रात-

दिन प्रसन्न होती हैं। कुछ भाव-भरी गोपियाँ उस बाललीला को गाती हुईं भजन करती हैं। अत्यासक्त प्रेम-भजनरूपा आनन्द प्राप्त करती हैं। इसी प्रकार गोप भी रसिकानन्द में मग्न हुए प्रेम-भजन करते हैं। जो प्रेम भजन में निमग्न हैं, वे उस लीला के अधिकारी होते हैं। नित्यलीला में अथवा भजन में मग्न रहने का आनन्दरस वर्णनातीत है। नन्द-यशोदा, वृषभानु, सत्या आदि भक्त नित्य ही भजनानन्द का अत्यधिक अनुभव करते हैं। बार-बार सुख का अनुभव करते हैं। इस प्रकार गोप-गोपियाँ तन्मयता को प्राप्त करते हैं। उनमें मातृभाव को प्राप्त हुई गोपियाँ भजनानन्द में भजन करती हुई रहती थीं। उनके घर सुख-समृद्धि- आनन्द, सिद्धि एवं सौभाग्यादि से भरे थे। भजन के योग्य उपकरण नाना भाँति के संपादित थे। गोप-गोपियों के पास समृद्धि-सुख उनके भजन के लिए ही थे। (उनके) अधिक सुख के लिए ही योग्यता प्राप्त होती थी। अनन्त सुख-संपत्ति होने से निकुंज देवी के स्वावेश से सुख कोटि का आनन्द प्राप्त करते हैं। पृथिवी पर भारतवर्ष में यह आनन्द लोक स्वसृष्टि की लीला के लिए स्वयं ही प्रकट किया है। उस ब्रज लोक में सभी लीलाएँ हैं। गोप-गोपियाँ संसिद्ध हुए आधिदैविक लीला का अधिक अनुभव करते हैं॥ ५८॥

सा लक्ष्मीरुवाचेदम्। रहस्य इह व्रजमण्डले यानि पृथक्स्थानानि तानि ब्रूहि। एकविंशतियोजना भूमिरानन्दमय्येवास्ति। यमुनाया दक्षिणकूलतो महास्थानं पञ्चयोजनायतं विहारस्थानमतितरां सूक्ष्मं नित्यविहाररहस्यकेलिकलाविर्भावभावितम्। तस्मिन् स्थाने ये वृक्षाः गृहाणि निकुञ्जा अन्यानि विहारस्थानानि तान्याधिदैविकान्यासन्। यो वंशीवटोऽयं साक्षाच्छिवोऽयम्। यो भण्डीरवटः स एव देवेन्द्र आसीत्। तत्र स्थिता ये पक्षिणस्ते साधनसिद्धा आसन्। ते निरन्तरं ताभ्यामासन्। ये तत्र मनुष्या आधिदैविकरूपा एवासन् ते बृन्दावनेश्वरीसमनुगृहीतास्सदा तां लीलां दर्शयन्ति तदनुग्रहतः। यासामज्ञात्वा ज्ञात्वा वा यस्मिन् कस्मिन् भावे भावो भवेत्ता भावेन तां लीलां प्राप्नुवन्ति। यत्र कुत्रापि स्थितोऽपि तद्वृन्दावनोद्भवां मृत्तिकां भक्षयेत्। स एव तां लीलां प्राप्नोति। तत्स्थानोद्भवानां वृक्षाणां पुष्पमालां ये कण्ठे धारयन्ति ते सर्वकृत्यं विधूय तां लीलां प्राप्नुवन्ति। सदा तां लीलां गायमानास्तां लीलां प्राप्ता एव सन्ति। यैः प्रतिक्षणं बृन्दावनं स्मर्यते ते कृतार्थतां प्राप्नुवन्त्यतितराम्। अस्यामाधिदैविकीं लीलां प्राप्तास्तां लीलां गायन्ति ध्यायन्ति। स्नेहासक्ता ये तस्मिन् स्थले निवसन्ति ते पूर्वं तत्सृष्ट्युत्पन्ना एव सन्ति नान्यत्र॥ ५९॥

लक्ष्मी ने पूछा- इस रहस्यमय ब्रजमण्डल में जो पृथक् स्थान हैं, उन्हें बताओ। भगवान् नारायण बोले-इक्कीस योजन लम्बी-चौड़ी भूमि आनन्दमयी है। यमुना के दाहिने किनारे से पाँच योजन विस्तृत विहार स्थान है, जो अति सूक्ष्म है तथा जिसमें नित्य विहार होता है। वहाँ जो भी-वृक्ष-गृह निकुञ्ज अन्य विहार-स्थान हैं, सब आधिदैविक हैं। जो वंशीवट है, वह साक्षात् शिव हैं। जो भाण्डीरवट है, वह देवेन्द्र हैं। वहाँ जो पक्षिगण हैं, सब साधनसिद्ध हैं। जो मनुष्य हैं, वे आधिदैविक रूप वाले हैं, वे वृन्दावनेश्वरी की कृपा से उस लीला के दर्शन करते हैं। जिनका जाने-अनजाने जिस किसी भी भाव में उनके प्रति भाव हो, वे उसी भाव में उनकी लीला को प्राप्त करते हैं। जहाँ कहीं भी रहते हुए वृन्दावन की मिट्टी को प्रसाद रूप में खाये, वह मिट्टी ही उस लीला के दर्शन करा देती है। वहाँ के वृक्षों के फूलों की माला जो कण्ठ में धारण करते हैं, वे सब कामों को छोड़कर उस लीला को प्राप्त करते हैं। सदा उस लीला का गान करते हुए उस लीला को प्राप्त करते हैं। जो प्रतिक्षण

वृन्दावन का स्मरण करते हैं, वे बहुत ही कृतार्थता प्राप्त करते हैं। इस स्थान पर उस आधिदैविकी लीला को प्राप्त करते हैं, उसका गान और ध्यान करते हैं, स्नेहासक्त जो भक्त हैं, वे पहले भी यहीं रहते थे। कहीं अन्यत्र नहीं॥ ५९॥

तस्मिन् बृन्दावने गोवर्धनोऽयं पर्वतः पञ्चयोजनायतः। त्रीणि योजनान्यच्छिद्रितसप्तशृङ्गाणि निरस्तधातुमयानि। यत्र निरन्तरं श्रीराधारसिकः पुरुषोत्तमः संक्रीडते। यस्य गह्वराणि सुकोमलानि सुगन्धजुष्टानि विराजमानानि भवन्ति। यस्मिन् गोवर्धने स्वयमेव श्रीराधारसिकशिरोमणिः क्रीडां करोति। अतितरामानन्दमयोऽयं पर्वतो यस्मिन् पर्वते रुद्रो रुद्राण्या सह पूर्वं सृष्ट्यादौ तप आतनोत्। येन तपसा शिवः शिवोऽभूत् तत्र रुद्रशिवपुष्करिण्यां ये मज्जनं कुर्वन्ति ते तां लीलां प्राप्नुवन्ति। ये तं पर्वतमुपसेवमाना भवेयुस्तेषामनेनैव शरीरेण लीलायोग्यतास्ति। अनेनैव गोवर्धनाद्रौ कामदुघा या तप आतनोत् सेयं गोविन्दपुष्करिणी। ये प्रेममग्नास्तस्यां पुष्करिण्यां मज्जन्ति सेवन्ते ते तां काले काले तस्याः दर्शनयोग्यतामतिप्रेमानन्दप्राप्तिमनुभवन्ति। यत्र मानससरोवरं विधाय मयापि तप आतन्यत। तत्तल्लोकेच्छया अप्सरसा उर्वश्या तस्मिन् गोवर्धनाद्रौ तप आतन्यत। सानुभवोऽयं लोको यत्र यत्र परितः शिलाः श्रीराधाकृष्णनामाञ्चितास्तत्र ताः शिलाः श्रीबृन्दावनैश्वर्यधिवसति। आनन्दमयेन सह ये भक्तास्तस्य परिक्रमां कुर्वन्ति ते तल्लीलादर्शनयोग्यतां प्राप्नुवन्ति। इन्द्रपराजयमहोत्सवे अहमपि ब्रह्मादिना सह तस्मिन् स्थाने दर्शनार्थं गमिष्यामि। अतितरां श्रीराधारसिकस्य क्रीडास्थानं भवति॥ ६०॥

उस वृन्दावन में गोवर्धन पर्वत पाँच योजन विस्तृत है। तीन योजन तक सात चोटियाँ हैं, कहीं कोई छिद्र भी नहीं, धातु भी नहीं। यहाँ निरन्तर श्रीराधा-रसिक पुरुषोत्तम क्रीड़ा करते हैं। जिसकी गुफाएँ सुगन्धित और सुकोमल हैं। जिस गोवर्धन पर स्वयं श्रीराधा-रसिकशिरोमणि क्रीड़ा करते हैं। यह पर्वत बड़ा ही आनन्दमय है। जहाँ रुद्र ने रुद्राणी के साथ सृष्टि के प्रारंभ में तप किया था। जिस तप से शिव, शिव हुए, इस रुद्रशिव पुष्करिणी में जो स्नान करते हैं, वे उस लीला को प्राप्त करते हैं। जो उस पर्वत पर निवास करते हैं, वे इसी जन्म में लीला योग्यता प्राप्त कर लेते हैं। इसलिए गोवर्धन पर गोविन्द पुष्करिणी पर की गई तपस्या कामधेनु है। जो प्रेम मग्न उस पुष्करिणी में स्नान करते हैं या समय-समय पर उसका सेवन करते हैं, वे उस लीला के दर्शन की योग्यता तथा प्रेमानन्द प्राप्ति का अनुभव करते हैं। जहाँ मानसरोवर बनाकर मैंने भी तप किया था। उन-उन लोकों को प्राप्त करने की इच्छा से अप्सरा उर्वशी ने उसी गोवर्द्धन पर्वत पर तपस्या की। सानुभवलोक है यह, जहाँ-जहाँ राधा कृष्ण नामाङ्कित शिलाएँ वृन्दावन का ऐश्वर्य दिखाती हैं। जो भक्त आनन्द मग्न होकर इस पर्वत की परिक्रमा करते हैं, वे लीला दर्शन की योग्यता प्राप्त करते हैं। इन्द्र पराजय महोत्सव पर मैं भी ब्रह्मादि के साथ दर्शनार्थ वहाँ जाऊँगा (गया था) यह विशेष रूप से श्रीराधा- रसिक क्रीड़ा का स्थान है॥ ६०॥

सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम्। रहस्यस्थानेऽस्मिन् पर्वते रुद्रेण कस्मिन् काले तपः आतन्यत। तल्लीलां विस्तरशो ब्रूहि। मम मनोऽतिलोलं तस्यां कथायाम्। सुखे कस्तृप्तिं याति। येन तपसा ध्यानेन तद्भावो भवेदतितराम्। अहो अहं तं लोकं श्रोतुकामा। विस्तरेण ब्रूहि एवं प्रपन्नां हृद्याधाय

स्वयमेव नारायण अभिवदत्यतितरामानन्दमयेन चेतसा। स होवाच शृणु लक्ष्मि अस्य लोकस्य हन्त माहात्म्यम्। अहं वक्तुमशक्तश्च। यस्य श्रीराधिका रसिकानन्दस्य विहारस्थलस्य दर्शनालापकथानुभव अतितरां सद्यः सरूपे रमणानन्दे स्नेहाधिक्यं प्रापयन्ति। तथैव ते धन्यास्ते कृतार्थाः। ते अन्य धर्मरहितत्वेन प्रेमानन्दे प्रीतिमापद्यन्ते। अतितरामासक्तिर्भवेत्। ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यःशूद्रो वा अन्ये जात्यन्तरजाः शतशो जात्यन्तरभेदास्ते प्राप्नुवन्ति। न वर्णेन न धर्मेण येषां लीलारतिरास्ते ते तां लीलां प्राप्नुवन्ति। अन्यभावेनेश्वराविष्टचित्ता अन्यदेव प्राप्नुवन्ति। तद्भावे न कदाचित्तमेव प्राप्नुवन्ति। येषां तल्लीलानुभवो न स्यात् तेषामनेकशः साधनानि वृथा स्युः। ब्रह्मविद्यासेविनो ज्ञानिन आत्मवेदनेन तां लीलां न प्राप्नुवन्ति। तस्मात्तल्लीलादर्शनयोग्या भक्ताः स्वभावेन तस्याः श्रीराधिकाया अनुग्रहात्स्वात्मभावा भवन्ति। शिष्टानुशिष्टस्वेष्टध्यानकथासेवानुभावेन तेषामनुभवकथायामासक्तिः स्यात्। सा संयोक्ष्यमाणा रतिरिन्द्रियार्थे। रतिसङ्गो भावापन्नो भवति। ये रतिकलनयानुगृह्यन्ते ते तां लीलां प्राप्तवन्तो भवन्ति। सर्वं त्यक्त्वा तल्लीलाया अनुभविनो भवन्ति। अनुभवसंभवस्तदा भवेत् यदा साधवः कृपां कुर्वन्ति रतिर्भवति च॥ ६१॥

लक्ष्मी ने फिर पूछा-- इस रहस्य स्थान वाले पर्वत पर रुद्र ने कब तप किया था? उस लीला को विस्तार से कहो। मेरा मन उस कथा में बड़ा जिज्ञासु है। सुख से किसे तृप्ति होती है। जिस तप से, ध्यान से वह भाव अधिक पैदा हो? अहो! मैं उस कथा को सुनने की इच्छुक हूँ, विस्तार से कहिए। इस प्रकार स्वयं ही हृदय से कौतूहल को प्राप्त हुई लक्ष्मी को जानकर आनन्दमय श्रीनारायण चित्त से कहना प्रारम्भ करते हैं, वे बोले- लक्ष्मि! सुनो, इस लोक का माहात्म्य कहता हूँ। जिन राधिका रसिकानन्द की विहार कथा, दर्शन-आलाप का अनुभव सद्यः-स्वरूप में, रमणानन्द में स्नेहाधिक्य बढ़ाता है, उसे मैं भी कहने में अशक्त हूँ। वे लोग धन्य हैं, जो अन्य धर्मों को छोड़कर प्रेमानन्द में प्रीति उत्पन्न करते हैं। फिर उनमें आसक्ति प्राप्त करते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र किसी भी जाति का हो, कोई भी हो, इस नाते इस मार्ग में कोई बाधा नहीं। न वर्ण से, न धर्म से, जिनकी जिस लीला में रति होती है, वे उस लीला को प्राप्त करते हैं। जिनको उस लीला का अनुभव नहीं होता, उनके अनेक साधन भी व्यर्थ हो जाते हैं। ब्रह्मविद्या का सेवन करने वाले ज्ञानी आत्मा को कष्ट देने से उस लीला को प्राप्त नहीं कर पाते। अतः उस लीला-दर्शन की योग्यता वाले भक्त स्वभाव से उन राधिकाजी के अनुग्रह से आत्मभाव-सम्पन्न होते हैं। शिष्टानुशिष्ट स्वेष्ट के ध्यान कथा सेवानुभाव से उनकी अनुभव कथा में आसक्ति बढ़ती है। वह (कथा में लगन) इन्द्रियों में स्नेह-आत्मीयता का संचार करती है। रति-सङ्गवाले (श्रद्धासिक्त) को भावापन्नता आती है। जो रति कलना से अनुगृहीत किये जाते हैं, वे उस लीला को प्राप्त करते हैं। सब त्याग कर उस लीला के अनुभवी होते हैं। अनुभव का जन्म तब होता है, जब साधु कृपा करते हैं तथा प्रेमासक्ति बढ़ती है॥ ६१॥

सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम्। त्वयोक्तं यैषा व्रजवासिनी सृष्टिरद्भुतं स्थानं प्राप्तैवेति यस्मिन् स्थाने गोवर्धनोऽयं राजमान आस्ते। तस्मिन् गोवर्धने रुद्रेण तपो रुद्राण्या सहाक्रियत। पुष्करिणीं विधाय तप आतनोत्। यथायं लोको रुद्रेण तपता दृष्टः स्तुतः कथितो हृदि ध्यात एवायं लोकः

सर्वेषां भक्तानां संदृश्यते। सुशोभनोऽयं लोकः सर्वेषां लोकमहालीलाया आवेशेन तेषां भक्तानामनुग्रहं प्रपद्यमानो भवेत्। कथं रुद्रेण दर्शनं प्राप्तम्? केन साधनेन शिवः सिद्धोऽभवत्? स एवं गोवर्धनाद्रौ कियत्कालं किंरूपं तपोऽतप्यत? दृष्टिविभवोऽयम्। विस्तरशो ब्रूहि यदि कृपाभावो भवेत्। स होवाच। पूर्वं सृष्ट्यादावेकस्मिन् समये शिवः शिवया वैकुण्ठे तल्लीलादर्शनार्थं गतवान्। तत्र नानासत्त्वमयानि संक्रीडमानान्यनेकशो रुद्रेण दृष्टानि। सर्वा मया क्रीडिताः क्रीडा दृष्ट्वा अनुभूय अतृप्तेन्द्रियोऽभवत्। ममाग्रे स्थितो रुद्रो मम ध्यानावस्थां दृष्ट्वा अत्याश्चर्यवान् अहो साक्षान्नारायणोऽयं परं ब्रह्म। रुद्रादयो यं ध्यायन्ति। रुद्रादयो यां वैकुण्ठाश्रितां लीलामभिलषन्ति। आदित्यादयो यं द्योतयन्ति। यस्य कलावतारान् पृथिव्यां देवा ऋषयः स्तुवन्ति। यं नारायणं ध्यायन्ती तेन रमा सदा क्रीडते। यं गत्वा चतुर्धा मुक्तयो द्वारे तिष्ठन्ति। तद्धाम सर्वेषां देवादीनामपि दुर्लभतरम्। स एव नारायणः कस्य भजनं कुरुते। अत्याश्चर्यं गतो रुद्रो बद्धाञ्जलिः सन् नारायणं स्तौति॥ ६२॥

लक्ष्मी ने फिर पूछा- आपने कहा—व्रज क्षेत्र जहाँ गोवर्धन पर्वत है, वहाँ की सृष्टि अद्भुत है। गोवर्धन पर रुद्र ने रुद्राणी के साथ तप किया था। पुष्करिणी बनाकर (आपने भी) तप किया। जैसे यह लोक रुद्र को तप करते देखा, स्तुत किया, हृदय में ध्यान किया, वैसा ही सब भक्तों को दीख पड़ता है क्या? शोभायमान यह लोक महाशक्ति की लोकरचनारूप महालीला की प्रेरणा से उन सभी भक्तों पर मानो अनुग्रह स्वरूप प्रस्तुत हुआ है। रुद्र ने कैसे दर्शन किया? किस साधन से शिव सिद्ध हुए? उन्होंने गोवर्धनगिरि पर कितने समय-किस रूप में तप किया? और इस ऐश्वर्य का दर्शन किया? यह सब कृपा करके बताइये। भगवान् नारायण बोले- पहले सृष्टि के आदि में एक बार शिव और शिवा दोनों बैकुण्ठ में उस लीला का दर्शन करने गये। वहाँ रुद्र ने अनेकों जीवों को क्रीड़ा करते देखा। मेरे द्वारा की जाती सारी क्रीड़ाओं को देख- अनुभव कर, वे अतृप्त इन्द्रिय हो गये। मेरे सामने खड़े रुद्र मेरी ध्यानावस्था को देख अति आश्चर्ययुक्त हुए। अहो! साक्षान्नारायण ही परं ब्रह्म हैं। रुद्रादि जिसका ध्यान करते हैं। रुद्रादि जिस वैकुण्ठाश्रित लीला की कामना करते हैं। आदित्यादि जिससे द्योतित होते हैं। जिसके कलावतारों की देवता- ऋषि भी पृथिवी पर स्तुति करते हैं। जिन नारायण का ध्यान करती रमा सदा उनके साथ क्रीड़ा करती हैं। जिनको पाकर चार प्रकार की मुक्तियाँ द्वार पर आ खड़ी होती हैं। वह धाम सब देवों को दुर्लभतर है। वे नारायण किसका भजन करते हैं? अति आश्चर्यान्वित हुए रुद्र करबद्ध हो नारायण की स्तुति करने लगे॥ ६२॥

[रुद्र एवं नारायण भी परब्रह्म सृष्टि लीला के अंग हैं। अपने कर्त्तव्यों को निष्ठापूर्वक पूरा करते हुए भी आगे इस लीला के गूढ़-तत्त्व समझने की जिज्ञासा उभरती है।]

स होवाच रुद्रः। नमोऽनन्ताय महते वैकुण्ठाय श्रीमते तेजोमयाय तुभ्यं नित्यं नमो नमः। तवांशकला या नृसिंहाद्याः रामाद्या अनेकशो लीलामयास्ता ध्यायमानोऽहं शिवतां प्राप्तः। अहमधुनात्याश्चर्यं गतवानस्मि। अहं निरन्तरं तव ध्यानेन विचरामि पृथिव्याम्। त्वं कं ध्यायसि? सर्वं वर्णय तव कृपा यदि स्यात्। इति शिवेन संप्रार्थितोऽहं तल्लोकस्थितिं कथयिष्यन्- शृणु तात अहं नित्यं तल्लोकं ध्यायामि। यत्र निकुञ्जेश्वर्या क्रीडते रसिकानन्दो वनविहारे। यद्रहसि

क्रीडास्थानम्। यत्र आनन्दमयकामकेलिकौतुकरतिरा-सविनोदकुञ्जाश्च शतशो विराजन्ते। यत्र गोवर्धनोऽयं गिरिः राजमानो भवति। यत्र कदम्बकुञ्जश्रेणयो गह्वराणि रत्नानि धातुमयानि। यत्र पुष्करिण्योऽमृतोदैः पूर्णा विराजन्ते। यत्र मणिगणाक रा ज्योत्स्नातितेजोरूपसंवलितपरस्परवस्तुप्रतिबिम्बिता आसते। तस्य लोकस्य दैवतं श्रीराधिकया सहानन्दरसिकं पुरुषं ध्यायेम। यस्य कटाक्षात् समुत्पन्ना लोकानां ब्रह्माण्डानामुत्पत्तिस्थितिलयान् कुर्वन्ति। अनेकशो विद्या अविद्या देवाश्चासुराश्चानेकशः सृष्टिस्थितिलयान् लभन्ते। यत्र ब्रह्माण्डानि कोटिशो विराजमानानि राजन्ते। तदतितरां सुशोभायमानं ब्रह्मेति पुराविदो वदन्ति। यत्र गत्वा धाम्नि लयं यान्ति योगीन्द्राः। शृणु यदि ते तस्य लोकस्य द्रष्टुमिच्छा वर्तते तर्हि त्वं व्रज॥ ६३॥

वे बोले- नमोऽनन्ताय महते वैकुण्ठाय श्रीमते तेजोमयाय तुभ्यं नित्यं नमो नमः। तुम्हारे अंशावतार नृसिंह रामादि अनेक लीलामय रूपों का ध्यान करता मैं शिवत्व को प्राप्त हुआ हूँ। मैं इस समय बड़ा अचम्भित हूँ। मैं निरन्तर तुम्हारा ध्यान करता पृथिवी पर विचरण करता हूँ। फिर आप किसका ध्यान करते हैं? कृपा करके इस रहस्य को बताइये। इस प्रकार शिव से प्रार्थित मैंने (ध्यान किए जाने वाले) उस लोक के विषय में कहा- तात? सुनो! मैं नित्य उस लोक का ध्यान करता हूँ,जहाँ वन विहार में रसिकानन्द निकुञ्ज ईश्वरी के साथ क्रीड़ा करते हैं। जो एकान्तिक क्रीड़ा स्थान है। जहाँ आनन्दमय कामकेलि कौतुक, रति, रास, विनोद तथा कुञ्ज सैकड़ों की संख्या में विद्यमान हैं। जहाँ यह गोवर्धन गिरि विराजमान है। जहाँ कदम्ब कुञ्जों की पंक्तियाँ रत्नधातुमयी गुफाओं से युक्त हैं। जहाँ की पुष्करिणियाँ (तलैयाँ) अमृतरूप जल से पूर्ण हैं। जहाँ मणि के समूह की कान्ति से उनमें प्रतिबिम्बित रूप परस्पर संवलित होते दीख पड़ते हैं। उस लोक की अधिष्ठात्री देवी श्रीराधिका के साथ रसिकानन्द का हम ध्यान करते हैं। जिनके कटाक्ष से समुत्पन्न लोकों-ब्रह्माण्डादिकों की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश होते हैं। अनेक विद्या-अविद्या, देव-असुर उत्पत्ति स्थिति लयों को प्राप्त करते हैं। जहाँ करोड़ों ब्रह्माण्ड प्रकाशित होते विराजमान हैं। ज्ञानी लोग जिसे अति सुशोभित ब्रह्म कहते हैं। जहाँ जाकर योगीन्द्र लय हो जाते हैं। यदि तुम्हारी उस लोक को देखने की इच्छा है, तो व्रज की यात्रा करो॥ ६३॥

व्रजमण्डले गोवर्धनो गिरिरास्ते। रत्नधातुमयोऽयं पर्वतः। यत्र रसिकानन्दो बृन्दावनेश्वर्या सह क्रीडमानोऽभवत्। परितः क्रीडोपयुक्तानि वनानि द्वादश शोभायमानानि सुगन्धलतौषधिभिः संलग्नानि राजन्ते। यमुनामृतोदकैः क्रीडाविहार स्थलानि संराजन्ते। यत्र यमुना बद्धोभयतटीविराजमाना भवति। अतितरां पद्मरागपुष्परागचन्द्रकान्तसूर्यकान्तमणीनां तेजोभिर्विराजमानानि जलानि शोभन्ते। यत्र यमुनाया उपरि शतशो वानीरकुञ्जा विराजन्ते। जातियूथिकामल्लिकासुवर्णयूथिकाप्रकर-सुगन्धसंवलितेऽस्मिन् परागधृतोन्मदाः भ्रमरपिकशुकसारसहंसश्रेणयः शोभायमानाः कलकण्ठैर्निकुञ्जदेव्या यशोऽतितरां गायमाना भवन्ति। यत्र बृन्दावनलीलाया निकुञ्जदेव्याः रमणलीलास्थानम्। यस्य स्मरणादेव रसाविष्टचित्तो भवेत्। बृन्दावनं बृन्दावनं इति प्रतिक्षणं ये वदन्ति ते देहोपाधिं त्यक्त्वा तस्य

लीलारतिमनुभवन्ति। तन्ममापि निरन्तरं ब्रह्मादीनामप्यदृष्टगोचरम्। सहस्त्रयोजनात् ये बृन्दावनं संस्मरन्ति बृन्दावनमिति प्रतिक्षणं वदन्ति ते तल्लीलोपयोग्या एव भवन्ति॥ ६४॥

[यहाँ व्रजमण्डल का वर्णन आधिभौतिक न होकर आधिदैविक मानकर चलने से ही वर्णित विषय स्पष्ट हो सकता है। आगे के प्रसंग में आधिदैविक से आधिभौतिक स्वरूप के सम्बन्ध की बात कही गई है।]

व्रजमण्डल में गोवर्धन गिरि है। यह पर्वत धातु रत्नमय है। जहाँ रसिकानन्द ब्रजेश्वरी के साथ विहार करते हैं। चारों ओर क्रीड़ा के उपयुक्त सुगन्धित वृक्ष लताओं से पूर्ण बारह वन हैं। क्रीड़ा विहार स्थल यमुना के अमृत रूप जल से पूर्ण है। जहाँ यमुना के दोनों तट घाटों से बँधे हैं। यमुना का जल कल्लोलें करता पद्मराग-पुष्पराग, सूर्यकान्त-चन्द्रकान्त मणियों की कान्ति जैसा प्रतीत होता है। जहाँ यमुना के तटों पर सैकड़ों वेतों के कुञ्ज हैं। जाति, यूथिका (चमेली), मल्लिका (मालती), सुवर्ण (सुनहरी) लताओं के समूह की सुगन्ध से संवलित इस वन में पराग पीने में उन्मत्त भ्रमर, कोयल-तोते, सारस, हंस की श्रेणियाँ शोभित हुईं कलकण्ठ से वृन्दावन लीला के अधिष्ठान रमण लीलास्थल में श्रीराधिका के साथ श्रीरसिकानन्द के यश का गान करते हैं। मनुष्य जिसके स्मरणमात्र से ही रसाविष्ट चित्त वाला हो जाता है। जो मात्र वृन्दावन-वृन्दावन का जप करते हैं, वे भी देहोपाधि को त्याग उस लीला का अनुभव करते हैं। वह लीला तो मुझे तथा ब्रह्मादि देवों को दुर्दर्श है; किन्तु सहस्त्र योजन से भी जो वृन्दावन की रट लगाते हैं, वे उस लीला दर्शन के अधिकारी बन जाते हैं॥ ६४॥

यत्र कुत्रापि मृतो बृन्दावनोपासकस्तत्स्थलं तीर्थरूपं भवेत्। ये बृन्दावनोद्भवास्तुलसीकाष्ठाङ्कितमाला: कण्ठे धारयन्ति ते कृतार्थतां प्राप्नुवन्ति। तस्यां लता: सरसा आसते। अतितरां प्रीति: भवति। ये बृन्दावने वृक्षास्ते आधिभौतिका: सिद्धा:। साधनसिद्धा इतस्ततो भ्रमन्तीर्लता ओषधिक्रीडास्थलानि कुर्वन्ति। तया देव्या बृन्दावनेश्वर्या त्रय: कोटय: पुलिन्दगणा उत्पादिता:। तेषां बृन्दावनवासिनां देहोच्छिष्टानि मलमूत्रादीनि देहोद्भवानि कफलालामूत्राणि ते पुलिन्दगणा ऊषरे उत्क्षिपन्ति। तेषां भक्तानां दिव्यदेह आधिदैविक एवास्ते। अतितरां सौभाग्याढ्यो भवति। अहो शिव बृन्दावनमाहात्म्यं केन वर्ण्यते? सेवका यत्र कुत्रापि यत्किञ्चित् भोगार्थे कुर्वन्ति तद्भोगो रसिकानन्देन सह निकुञ्जदेव्या सर्व: संभोक्ष्यते। अतितरां सुखसंभोगस्थानं तत् स्थानं ममापि ध्येयं भवति। अहं निरन्तरं ध्यानापन्नो भवामि। तस्मिन् बृन्दावने मध्यस्थानं निरन्तरं मम ध्येयम्। तस्य स्थानस्य ध्यानेनाहमानन्दस्थानमानन्दावेशेन भवामि। आनन्दध्यानादहं तत् प्रतिपद्ये। अहो शिव त्वमप्यानन्दस्थानमतितरां प्रतियोज्य तदभ्येहि। ध्यानापन्नो भव। रतिरसभावभेदध्यानापन्नो भव। तद्बृन्दावनेश्वरीरूपमङ्गप्रत्यङ्गं रसिकानन्देन सह यो ध्यायति। स एव क्रीडायां मनोभावापन्नो भवति। पुन: शिव उवाच। त्वयोक्तानि द्वादशवनानि। तेषु वनेषु पृथक् पृथक् वद सर्वम्॥ ६५॥

वृन्दावन का उपासक जहाँ कहीं भी मृत्यु को प्राप्त हो, वह स्थान तीर्थरूप हो जाता है। जो वृन्दावन में पैदा हुए तुलसी-काष्ठ की माला गले में धारण करते हैं, वे कृतार्थ हो जाते हैं। उनके प्रति लताएँ सरस हो जाती

हैं। प्रीति अधिक होती है। वृन्दावन में जो वृक्ष हैं, वे भी आधिभौतिक सिद्ध हैं। साधन सिद्धा, इधर-उधर घूमती हुई लता-ओषधियाँ क्रीड़ास्थल बना लेती हैं। वृन्दावनेश्वरी उस देवी ने तीन करोड़ पुलिन्दगण (एक पुरानी असभ्य जाति) पैदा किये। उन वृन्दावन वासियों की देह के उच्छिष्ट मलमूत्रादि एवं कफ- लार इत्यादि को वे लोग (पुलिन्दगण) ऊसर भूमि में डालते हैं। उन भक्तों की दिव्य देह आधिभौतिक ही है। अत्यधिक सौभाग्यपूर्ण है। अहो! शिव-वृन्दावन का माहात्म्य कौन कह सकता है? सेवकगण जहाँ कहीं भी जो कुछ भोग के लिए तैयार करते हैं, वह भोग सारा ही रसिकानन्द निकुञ्ज देवी द्वारा खा लिया जाता है। अत्यन्त सुख-संभोग का स्थान वह मेरे लिए भी ध्येय है। मैं निरन्तर ध्यानापन्न रहता हूँ। उसमें वृन्दावन के मध्य का स्थान मेरे द्वारा निरन्तर ध्येय है। उस स्थान के ध्यान से मैं आनन्द-स्थान तथा आनन्दाविष्ट हो जाता हूँ। आनन्द के ध्यान से मैं उसे प्राप्त करता हूँ। अहो शिव! तुम भी आनन्द स्थान का अत्यधिक अभ्यास करके उसे प्राप्त करो। ध्यान लगाओ। रतिरस भावभेद से ध्यान लगाओ। उन वृन्दावनेश्वरी के अंग-प्रत्यंग एवं रूप का रसिकानन्द के साथ जो ध्यान करता है, वह क्रीड़ा में मनोभावापन्न (तन्मय) हो जाता है। पुन: शिव ने कहा- आपने बारह वनों की बात कही थी, उनकी अलग-अलग विशेषताएँ कहो॥ ६५॥

[जिस स्थल पर कोई श्रेष्ठ उपासक लम्बे समय तक साधनारत रहते हैं, वह स्थान उनकी साधना से अनुप्राणित हो जाता है, उसी स्थल को तीर्थ की संज्ञा दी जाती है। साधकों के अनुभवों को उनसे प्रकट उच्छिष्ट कहा गया है। उसके प्रभाव से ऊसर (रसहीन) मनोभूमियाँ भी उत्पादक,सरस हो जाती हैं।]

स होवाच। शृणु शिव वर्णनं वनानां यानि श्रुत्वा व्रजलीलायामत्यन्तसुखिनः संभवन्ति। महावने नन्दस्याधिष्ठानम्। गोकुले गवामधिष्ठानम्। यमुनायां क्रीडाधिष्ठानम्। बृन्दावने स्वामिन्या लीलाधिष्ठानम्। कामवने महालीलासङ्केतस्याधिष्ठानम्। बृहद्वने वृषभानुपुरनन्दपुराधिष्ठानम्। लोहवने पुलिन्दस्याधिष्ठानम्। तालवने उपनन्दाद्यधिष्ठानम्। दधिग्रामे दध्यधिष्ठानम्। गोवर्धनाद्रिपृष्ठे दधिविक्रयाधिष्ठानम्। गोवर्धनाद्र्यधो दानश्रेणिदानलीलाधिष्ठानम्। अयं गोवर्धनाद्रिः रमणलीलाधिष्ठानं भवति।

अरिष्टे गोगणे कुब्जवटे बृन्दावने तथा। गोवर्धनगिरौ रम्ये सृष्टिः सर्वात्मना भवेत्॥

भोः शिव अस्मिन् स्थाने श्रीराधारसिकानन्दावेव रूपेण सदा रमणं कुरुतो लीलासमेतौ। अत्यद्भुता संसिद्धा लीला सदा गोवर्धनाद्रौ। आनन्दमये स्थाने तप आचर। स रुद्रो रुद्राण्या सह तत्र पुष्करिणीं विधाय तन्नारायणमुखात् श्रुतं लोकस्य ध्यानमकरोत्। किञ्चिद्ध्यानेन ध्यानापन्नोऽभवत्। दशसहस्रवर्षं तल्लोकदर्शनार्थं तप आचरत्। तद्ध्यानेन निकुञ्जदेव्या दृष्टिपथमतिमोहनेन रूपेणानन्ददर्शनमापेदे। घनविद्युदुपमरूपनवीनया जायया सह केलिसम्पत्तिसमवेतं रमणानन्दं क्रीडासमेतमरूपयत्। तद्रूपदर्शनेन समाकुलोऽयं शिवस्त्रिभिर्नेत्रैर्निरूपयन् पुनः पुनः पञ्चभिर्वक्त्रैः स्तुतिमापेदे॥ ६६॥

नारायण बोले- सुनो, जिन वनों का वर्णन सुनकर व्रजलीला में अत्यन्त सुखी होते हैं। महावन में नन्द का अधिष्ठान है। गोकुल में गौओं का अधिष्ठान है। यमुना में क्रीड़ा स्थान है। वृन्दावन में स्वामिनी का लीला

स्थान है। कामवन में महालीला का सङ्केत स्थान है। बृहद्वन में वृषभानुपुर तथा नन्दपुर का अधिष्ठान है। लोहवन में पुलिन्दों की बस्ती है। तालवन में उपनन्द इत्यादिकों का अधिष्ठान है। दधिग्राम में दधि का अधिष्ठान है। गोवर्धन के पृष्ठ पर दधि विक्रय का अधिष्ठान (मण्डी) है। गोवर्धन के नीचे दान श्रेणी-दान लीलाधिष्ठान है। यह गोवर्धन ही रमणलीला का अधिष्ठान है। अरिष्ट (निरापद स्थान) में, गौओं के समूह में, कुञ्जवट पर वृन्दावन में, गोवर्धन पर सारी सृष्टि सर्वात्मभाव से युगल जोड़ी के ध्यान में समर्पित हो जाती है। हे शिव! इस स्थान पर श्रीराधा-रसिकानन्द ही स्वस्वरूप से सदा लीला समेत रमण करते हैं। गोवर्धन गिरि पर अति अद्भुत संसिद्धलीला होती है। इस आनन्दमय स्थान पर तपस्या करो। रुद्र ने रुद्राणी के साथ नारायण के कथनानुसार वहाँ पुष्करिणी बनाकर उस लोक का ध्यान किया। थोड़ा-थोड़ा ध्यान करके ध्यानापन्न हो गये। दस हजार वर्ष तक उस लोक के दर्शनार्थ तप किया। उस ध्यान से निकुञ्ज देवी का अतिमोहक रूप दृष्टिपथ में प्रविष्ट हुआ और आनन्द दर्शन हुआ। बिजली की आभा जैसी नवीन रूपसी पत्नी के साथ रमणानन्द को कामक्रीड़ा करते दर्शन किया। उस रूप-दर्शन से व्याकुल हुए शिव तीनों नेत्रों से देखते हुए पाँचों मुखों से स्तुति करने लगे॥ ६६ ॥

उवाचायं शिवः। अं अं अनन्ताय नमो नमः। श्रीं श्रीं श्रीकृष्णाय तुभ्यं नमो नमः। सं सं संभोगप्रियाय नमो नमः। बृं बृं बृन्दावनविहारिणे नमो नमः। कुं कुं कुञ्जविहारिणे नमो नमः। लं लं ललिताविहारिणे नमो नमः। क्रीं क्रीं क्रीडावनविहारिणे नमो नमः। रां रां राधामनोहारिणे नमो नमः। किंच निरन्तररासक्रीडासक्ताय नमो नमः। सदामनोहारिणे नमो नमः। सदा रतिप्रियाय नमो नमः। सदा गानप्रियाय नमो नमः। सुरतानन्दाय नमो नमः। आलिङ्गनप्रियाय नमो नमः। कूटस्थाय नमो नमः। रमणानन्दसुखदात्रे नमो नमः। अतिभोगप्रियाय नमो नमः। अन्तरात्मने नमो नमः। अतिरतिविहारिणे नमो नमः। अत्यद्भुतचारित्राय नमो नमः। भारद्वाजरूपिणे नमो नमः। रामाय नमो नमः। मोक्षदाय नमो नमः। भक्तप्रियाय नमो नमः। भक्तानन्दप्रदाय नमो नमः। अत्यानन्ददायकाय नमो नमः। सकलकलाकोविदाय नमो नमः। महाक्रीडासुखदाय नमो नमः। महालीलाविहारिणे नमो नमः। कस्तूरीतिलकाङ्किताय नमो नमः। शृङ्गारवत्यादीनां सखीनां सुखदायकाय नमो नमः। मोक्षदाय नमो नमः। स्वच्छन्दोपात्तदेहाय नमो नमः। शोकमोहभयवैराग्यदुःखनाशहेतवे नमो नमः। अन्तर्यामिणे नमो नमः। रसिकानन्दाय नमो नमः। परस्पररासकेलिकलाकौतुकाय नमो नमः। विप्रलम्भसुखप्रदाय नमो नमः। अतिरतिकौतुकाय नमो नमः। अगणितानन्ददायिने नमो नमः। एवं स्तुत्वा तदा रुद्रस्तूष्णीं केवलेन्द्रियस्तद्भावभावितोऽप्यासीत्। सरतिरासीत्। गतव्यथः आसीत्। समचेता आसीत्। स्तुत्वा रसिकानन्देऽभवत्। तया बृन्दावनेश्वर्या स्तुत्या प्रसन्नया वरेण छन्दितः साभिप्रायेण स्तवेन स्तविता त्वं वरं प्रार्थयेति। अकामो वा सकामो वा मद्भक्तो यजमानोऽयम्। वरेण तां प्रति छन्दयित्वा शिश्राय। अहो मयि यदि तुष्यसि तर्हि ब्रजलोके क्रीडास्थानं दर्शय। अयं देयो वरो ममाभिलषितः। वरोऽसौ तव भवेत्। तया निकुञ्जदेव्या दत्तो वरोऽयं ते दिव्यं चक्षुर्दत्तवत्यस्मि। त्वं चक्षुषाऽनेन मुक्त विहारस्थलं दर्शयिष्यसि। तस्मिन् गोवर्धनाद्रौ रुद्रस्य सर्वा व्रजलीला दृष्टिपथे आविरभूवन्॥ ६७॥

शिव ने कहा– अं अं अनन्ताय नमो नमः। .... अगणितानन्ददायिने नमो नमः। इस प्रकार स्तुति कर रुद्र मौन हो केवल इन्द्रियों से तद्भावभावित हो गये। स्तुति करके सारी व्यथा दूर हुई। रसिकानन्द में स्थिति हुई। इस स्तुति से प्रसन्न हुई वृन्दावनेश्वरी बोली– तुम मेरे भक्त हो, वर माँगो। शिव ने कहा– यह यजमान सकाम अथवा निष्काम भावपूर्ण आपका भक्त है। आप अपने वरदान द्वारा इसकी कामना पूर्ण करके चरणों में आश्रय दें। यदि आप तुष्ट हैं, तो ब्रज में क्रीड़ा स्थान का दर्शन कराएँ। यह देय वर मेरा अभिलषित है , देवी ने वर की पूर्णता का वचन दिया और कहा– मैंने तुम्हें दिव्य चक्षु दिया है। इस नेत्र से ही तुम उस मुक्त विहार स्थल का दर्शन करोगे, उस गोवर्धन पर्वत पर सारी लीला दृष्टि पथ में आती रहेगी॥ ६७॥

प्रथमं नन्दस्य भवनं कोटिवैकुण्ठव्यापिरत्नकुड्यैर्वरमणिस्तम्भैः शोभितमप्यासीत्। अतितरां नन्दगृहं पञ्चविंशतियोजनायतं पञ्चयोजनभूमौ मणिस्तम्भाकुलं बालक्रीडायां रमणयोग्यं यत्र पुरुषोत्तमो रसिकानन्दः संसिद्धलीलां करोति। सा व्रजेश्वरी स्वयमेव देवरूपं विधाय तस्मिन् रसिकानन्दे क्रीडां करोति। यथा पुरुषोत्तमस्य रसिकानन्दस्य संसिद्धप्रकटानुभावस्तथा संसिद्धोऽयं नन्दवसुभिः स्वावेशप्रकटानुभावो वितन्यते। नन्दगृहाद्वृषभानोर्गृहं योजनायितम्। रङ्गवत्यादयः सख्यः प्रेमवत्यादयश्च यशोदायाः समीपे क्रीडोपकरणान्यकुर्वन्। उपनन्दस्य पुत्री विशाखा नाम्ना रसिकानन्दस्य भावाभिज्ञैवास्ते। नन्दस्य वृषभानोर्गृहात् श्रीरसिकशिरोमणिद्वादशश्रेणयः एवासते। रमणस्थानं पञ्चयोजन-विस्तीर्णमेवास्ते। अतिरतिरमणकोटिकामपूर्णं जाम्बूनदसुवर्णखचितसुकोमलमास्ते। रमणसरसाः शतशः सुगन्धपारिजातका इव मणयो ललामभूतपरस्परगन्धाढ्या भवन्ति॥ ६८॥

पहले नन्द का भवन जो करोड़ों वैकुण्ठों जैसा व्यापक, रत्न जटित बड़े जल पात्रों से युक्त श्रेष्ठ मणि निर्मित स्तम्भों से सुशोभित था। अत्यधिक सुन्दर यह नन्द गृह पच्चीस योजन विस्तृत पाँच योजन भूमि पर मणि निर्मित स्तम्भों से घिरा हुआ रमण योग्य स्थल है, जहाँ श्रीरसिकानन्द सिद्ध बाल लीलाएँ करते हैं। व्रजेश्वरी उन रसिकानन्द में ही देवरूप से समाई हुई क्रीड़ा करती हैं, जिस प्रकार पुरुषोत्तम रसिकानन्द का संसिद्धभाव प्रकट हुआ, वैसा ही संसिद्धभाव नन्दवसुओं के द्वारा स्वयं के आवेश से प्रकट होकर विस्तीर्ण हुआ। नन्द के घर से वृषभानु का घर एक योजन दूर है। रंगवती, प्रेमवती आदि सखियाँ यशोदा जी के समीप क्रीड़ा के उपकरण तैयार करती थीं। विशाखा नाम वाली उपनन्द की पुत्री रसिकानन्द के भावों की जानकार थी। नन्द तथा वृषभानु के घरों से श्रीरसिक शिरोमणि तक द्वादश श्रेणियाँ थीं, जहाँ रमण स्थान था तथा जो पाँच योजन विस्तृत था। वह रमण स्थल कोटि कामनाओं को पूर्ण करने वाला स्वर्ण जटित और सुकोमल है। सैकड़ों मणियाँ सुगन्धित पारिजात के समान रमण में सरस होती हैं (सहायक होती हैं)॥ ६८॥

कल्पद्रुमवृक्षाःवाञ्छितफलदातारो भवन्ति। अतितरां फलपुष्पमणिलताहरितपीतश्वेतशुभ्र - भ्रमरसंवलितयोजितानि रतिकलाभावस्थानानि संराजन्ते यमलैर्यमलैः कुञ्जविद्रुमलताग्रथितानि। अतिरसरमणानन्दयोग्यानि शय्योपकरणानि संयोक्ष्यमाणानि भवन्ति। शाखासक्ताः पक्षिणो विराजमाना नानारङ्गैश्चञ्चुपक्षैर्भवन्ति। ते पक्षिणः कलशब्दं समवेता यशो गायमाना भवन्ति।

तेषु पक्षिषु केचित् साधनसिद्धाः संसिद्धाश्च भवन्ति। अतिप्रव्रजिताः परस्परगोष्ठीयुक्ता आसतेऽतितराम्। मणिज्योत्स्नापाकृतान्धकारैरतितरां रात्रौ दिवा तेजसा व्यक्तान्यासत॥ ६९॥

कल्पवृक्ष वाञ्छित फल देने वाले होते हैं। हरे, पीले, श्वेत, शुभ्र, फल पुष्प मणिलताएँ भ्रमरों से सुशोभित रति कला भावों के स्थानापन्न हुए से, दो-दो के जोड़ों में कुञ्ज विद्रुम लताओं से ग्रथित हुए शोभायमान हैं। वहाँ के शय्या स्थान भी अति रस भरे रमणानन्द के योग्य हैं। शाखाओं पर बैठे नाना रंगों की चोंच और पंखों वाले पक्षीगण शोभायमान हैं। वे पक्षी मधुर स्वर से समवेत हो यशोगान करते हैं। उन पक्षियों में कुछ साधनसिद्ध और संसिद्ध हैं। उनकी परस्पर गोष्ठियाँ होती हैं; क्योंकि बड़ी दूर से आये हुए हैं। वे स्थान मणियों की कान्ति से चमचमाते हुए रात में भी दिन के तेज को व्यक्त करते हैं॥ ६९॥

तस्मिन् स्थाने रङ्गवती प्रेमवती रसिकानन्देन सह क्रीडतः। वृषभानुकुमारी ललिता विशाखा अनुराधा चन्द्रकला सुमुखी सुभगा भोगवती सुगन्धाङ्गी रतिमती कामपूरा कामदा कामाक्षी कलावती हरिणाक्षी हंसगमना शृंङ्गारवती दृष्टिमोहना जितकामा वशकामा कामवर्धिनी सर्वाङ्गकामा कामदृष्टिः कामकलाकोविदा रतिदात्री रतिसुखसंपत्प्रदा सलज्जा निःशङ्का निर्लज्जा अतिरतिभोक्त्री श्रान्ता सोत्साहा सुरतागमज्ञा वनस्थानज्ञा सङ्केतज्ञा लतावृक्षज्ञा निकुञ्जश्रेणिषु मार्गज्ञा लतापरीक्षाकोविदा मणिपरीक्षाकोविदा अतिसन्धिज्ञा सङ्केतरसज्ञा केकाभिज्ञा पक्षिणां भाषाभिज्ञा पक्षिसंबन्धाभिज्ञा सङ्केतस्थानज्ञा संभावितरसज्ञा शय्योत्पाता खाद्यपेयचोष्यलेह्यरसास्वादज्ञा नानासुगन्धरसभेदज्ञा वस्त्रसुगन्धभेदज्ञा भूषणज्ञा अङ्गयोग्यभेदाभिज्ञा शृङ्गारयथायोग्यकालाभिज्ञा तालाभिज्ञा गीतज्ञा गीतरसभेदज्ञा तन्तूत्पाद्यरागभेदज्ञा सुगन्धज्ञा अङ्गरसभेदगुणज्ञा सुगन्धनृत्यभेदज्ञा संपत्तिसुखज्ञा सदारासक्रीडाप्रकटगुणगानकोविदा रासागमसोत्साहा रासलीला वचनसुखदायिनी एताः सख्यो विहारस्थाने आसते। कुञ्जप्रतिकुञ्जसुखदायिनीषु सखीनां कुञ्जश्रेणिषु सुखसंपत्तिसुखार्थं विद्रुमश्रेणीया नानाकुञ्जा अतितरां संशोभन्ते। तासु श्रेणिषु पुष्पपरागोद्भूता यवनिकाः संभवन्ति। तत्सृष्टिवेष्टितेऽङ्गभूषणैर्भूषितानि स्थानानि भूषयन्ति। शोभायमानानि रचितयोग्यान्यत्युन्नतश्रेणिषु वियूथानि विराजमानानि भवन्ति। सखीनां समूहाः श्रेणिषु संभोक्ष्यमाणाः क्रियामारभन्ते॥ ७०॥

वहाँ रङ्गवती तथा प्रेमवती रसिकानन्द के साथ क्रीड़ा करती हैं। वृषभानुकुमारी, ललिता, विशाखा, अनुराधा, चन्द्रकला, सुमुखी, सुभगा, भोगवती, सुगन्धाङ्गी, रतिमती, कामपूरा, कामदा, कामाक्षी, कलावती, हरिणाक्षी, हंसगमना, शृंगारवती, दृष्टिमोहना, जितकामा, वशकामा, कामवर्धिनी, सर्वाङ्गकामा, कामदृष्टि, कामकलाकोविदा, रतिदात्री, रतिसुख-संपत्प्रदा, सलज्जा, निःशङ्का,-निर्लज्जा, अतिरतिभोक्त्री, श्रान्ता, सोत्साहा, सुरतागमज्ञा, वनस्थानज्ञा, सङ्केतज्ञा, लतावृक्षज्ञा, निकुञ्ज श्रेणियों में मार्गज्ञा, लतापरीक्षा कोविदा, मणिपरीक्षा कोविदा, अतिसन्धिज्ञा, सङ्केतरसज्ञा केकाभिज्ञा, पक्षिभाषाभिज्ञा, पक्षि सम्बन्धाभिज्ञा, सङ्केत स्थानज्ञा, संभावित रसज्ञा, शय्योत्पाता, खाद्य-पेय-चोष्य-लेह्य-रसास्वादज्ञा, नानासुगन्ध रस भेदज्ञा, वस्त्रसुगन्ध भेदज्ञा, भूषणज्ञा, अङ्गयोग्य भेदाभिज्ञा, शृंगारयथायोग्यकालाभिज्ञा, तालाभिज्ञा, गीतज्ञा, गीतरसभेदज्ञा, तन्तूत्पाद्यरागभेदज्ञा, सुगन्ध

ज्ञा,अङ्गरसभेदगुणज्ञा, सुगन्धनृत्यभेदज्ञा, संपत्ति सुखज्ञा, सदारासक्रीड़ा- प्रकट- गुणगान- कोविदा, रासागमसोत्साहा, रासलीलावचन- सुखदायिनी ये सखियाँ विहार स्थान पर विराजती हैं। कुञ्ज-प्रतिकुञ्ज सुखदायिनी-कुञ्ज श्रेणियों में सखियों के सुखसंपत्ति जनित आनन्द के लिए विद्रुम श्रेणी वाले अनेक कुञ्ज बहुत सुशोभित होते हैं। उन श्रेणियों में फूलों के पराग में तर- आर्द्र की हुई (अथवा हिलाई जाती हुई) यवनिकाएँ (परदे) हैं। प्रकृति द्वारा सजाए अङ्ग-भूषणों से वे स्थान बहुत ही शोभायमान प्रतीत होते हैं। अङ्ग भूषणों से रचित उन योग्य शोभायमान अति- उन्नत श्रेणियों पर वियूथ विराजमान हैं । सखियों के समूह श्रेणियों में घूमते हुए क्रिया आरम्भ करते हैं॥ ७० ॥

द्वादशश्रेणिषु श्रीनन्दस्य श्रीवृषभानोर्गृहात् पृथग्द्वाराणि राजन्ते। तत्र जाम्बूनदसुवर्णभूमि-मणिगणचित्रितमध्यस्थलं क्रीडाविहारसंयुक्तं मण्डलाकारं पञ्चयोजनायतम्। यत्र काम आधिदैविकेन रूपेण उपसेवमानो भवति। श्रेणीनां द्वाराणि तस्मिन्मण्डले पृथक्शोभायमानानि सन्ति। एका श्रेणी मणिलतासुगन्धाढ्या सुकोमलातितरां न कोमला न कठिना। अत्यद्भुतसुरचितायां बृन्दा सखी आस्ते। तयातितरां तस्य सेवार्थे श्रीराधिकायाश्च रचिता शय्यैवास्ते। तत्र तस्मिन् मणिलतान्तरे चतस्त्रः श्रेणयः शोभायमाना भवन्ति। तासु श्रेणिषु चतस्त्रः पुष्करिण्य आसते। एका पुष्करिण्युष्णोदकेन पूर्णैवास्ते। एका पुष्करिणी सुगन्धशीतजलैवास्ते।एका पुष्करिण्यमृतोदकेन पूर्णैवास्ते।तत्र मज्जनस्थानमत्यन्तशोभायमानं चतुःसरं यत्र मणीनां द्वादश शृङ्गाणि शोभायमानानि भवन्ति। एकस्माद्गृहादन्तः सुगन्धतैलागुरुरसकर्पूरमृगमदकेसररसाः शतशः पुष्पलतापत्रत्वक्पयोभिः सुगन्धितेषु रसेषु संपूरिता भवन्ति। मज्जनक्रियोपयोग्याः सखीनां समूहाः मज्जनं कारयन्ति। नानाजलकेलिसुखसंपत्तिर्मज्जनावती तन्मज्जनेऽतितरां सरतिरास्ते। जलसंपत्त्यै अतितरां सुजलकल्लोला सखी उपसेवते। तत्र हंसीहंसाः सारसाः पक्षिणोऽग्रेऽग्रे क्रीडन्ति। अतितरां जलकेलिकल्लोलकर्मकरणादनन्तरं तत्राधिदैविकेन रूपेणाग्निरत्यन्तसुखदायकरूपेण सेवते। अतितरां सूक्ष्मस्वरूपकिरणैः सूर्यरूपः सेवमान आस्ते। अङ्गरागसंपूर्णमङ्गरागस्थानम्। मन्दिरमत्यमृतमङ्गसुखदायि शोभायमानमभ्येति। यत्र चन्द्रकिरणाः शोभायमाना आसते। सूक्ष्मतरतेजसा सेवमानाः आसते। तत्र रङ्गवत्यो नानाङ्गरागं प्रकुर्वन्ति। अतिसुखदायिनोऽतितरामङ्गरागाः शोभायमानाः सुखभोगा आसते॥ ७१ ॥

[यहाँ सृष्टि लीला में प्रयुक्त विभिन्न शक्ति एवं संसाधनों की विभिन्न श्रेणियों (प्रकारों) का आलंकारिक वर्णन किया गया प्रतीत होता है।]

बारह श्रेणियों में श्रीनन्द और वृषभानु के घर से पृथक् द्वार विराजित हैं। वहाँ सुवर्णमणि-चित्रित मध्य भाग है। जिसका ऐसा क्रीड़ा विहार से संयुक्त मण्डलाकार रूप में पाँच योजन विस्तृत रासमण्डल है। जहाँ कामदेव आधिदैविक रूप से सेवा करता है। श्रेणियों के द्वार उस मण्डल में अलग से सजे हैं। एक श्रेणी मणि लताओं की सुगन्ध से पूर्ण न कोमल ही है, न कठोर ही। उस अति अद्भुत बनाई गई श्रेणी में वृन्दा (उद्देश्य के

अनुरूप समूह बनाने में निपुण) सखी आसीन है। उसने श्रीरसिकानन्द और श्रीराधिकाजी की सेवा के लिए बड़ी सुन्दर शय्या बनाई है। उस मणि लतान्तर में चार श्रेणियाँ बहुत ही शोभायमान हैं। उन श्रेणियों में चार पुष्करिणियाँ हैं। एक बावड़ी गर्मजल से भरी है। एक सुगन्धित शीतल जल से भरी है। एक बावड़ी अमृतोदक से भरी है। वहाँ नहाने का स्थान बहुत ही सुन्दर चतुः सर वाला है, जहाँ मणियों के बारह शृंग (चोटियाँ) शोभायमान हैं। एक घर से जिसमें सुगन्धित तेल, अगररस, कपूर, कस्तूरी, केसररस भरे हैं, सैकड़ों पुष्पलता पत्ते छालें उन जलों से सुगन्धित हैं। मज्जनकर्म में दक्ष सखियाँ मज्जन कराती हैं। अनेकजलक्रीड़ा सुख, संपत्तिवाली मज्जनावती उस मज्जन में रति का आनन्द प्रदान कराती है। जल संपत्ति के लिए बहुत ही चतुर सुजल कल्लोला सखी सेवार्थ लगी है। वहाँ हंस-हंसियाँ-सारस पक्षी आगे-आगे क्रीड़ा करते हैं। जल क्रीड़ा करने के पश्चात् अग्निदेव आधिदैविक रूप से तपाने की सेवा करते हैं। अति सूक्ष्म स्वरूप किरणों से सूर्यदेव सेवा करते हैं। अङ्गरागस्थान अङ्गराग से सम्पूर्ण है। यह मन्दिर अंगों को सुख देने वाले उपकरणों से भरपूर है। जहाँ चन्द्र किरणें शोभा देती हैं, जो सूक्ष्मतर तेज से युक्त हैं। वहाँ रंगवती आदि सखियाँ नाना प्रकार के अङ्गराग करती हैं। अतिसुखदायी अंगराग सुखभोग ही हैं॥ ७१॥

शोभते तृतीयं शृङ्गारगृहम्। यत्र गृहात् गृहान्तरात् द्वाराणि शोभायमानानि भवन्ति। तत्र सखीनां सञ्चार आस्ते। अतिरतिसञ्चरिताः सख्यः सुखदायिन्यः शृङ्गारमधिकुर्वन्ति। प्रथममगुरुवासितकबरीसुगोप्यमानानि मंदारपारिजातपुष्पाणि शोभायमानान्यातन्वन्। तत्कालं मण्डलेन गुम्फितकेशपाशः शोभते। क्षुद्रघण्टिकाशब्दसूक्ष्मतरसंभाविता बृन्दावनेश्वरी प्रीयमाणा भवति। सीमन्तो नानामणिमुक्ताग्रथितजाम्बूनदसुवर्णखचित एवैति। मेघोपरि चन्द्रज्योत्स्ना इव नक्षत्रगणा विराजन्ते। स्यूतपुष्पसुवर्णजटितमणिमुक्ता खचितान्तरज्योत्स्नाभाविताः शोभायमाना आसते। कुटिलजटितज्योत्स्नाभिः अभ्रच्छायाकर्बुरितचन्द्र इवास्ते। कर्णकुण्डलज्योत्स्नारुचिमण्डलं कुण्डल युगळम्। ललाटं तिलकहाटकहीरकमणिज्योत्स्नाभिरतितरां जटितं संराजते। मणिभ्रुवौ विजयकामकार्मुकखण्डलते इव संविराजेते। नेत्रे जितखञ्जनमीनचातुर्यं जितवती। नासा कनकमुक्तायोजिता संराजते नितराम्। नासाभरणनीलपीतरक्तमणिज्योत्स्ना राजमाना नासामभ्येति। अतिरतिबिम्बाधरोष्ठौ विद्रुमरङ्गरञ्जितावास्ताम्। हीरकावलीघटितमुक्ता-फलज्योत्स्नाभिः रञ्जितमध्यचिबुकं मुखमण्डलं सलाञ्छनं चन्द्रमण्डलमिवास्ते। घटितकोमळमुक्तावलीकौ कुचकुंभौ हाटकमणिज्योत्स्नाभिः पुष्पपरागपरीताविवास्ताम्। भुजलताकरकङ्कणमरकतज्योत्स्नाभिर्हस्ताङ्गुलिमुद्रिकाजटितमणितेजांसि राजमानानि सन्ति। नाभिह्रदकुहरे लोक इव आशङ्क्यते। कटिमेखलाक्षुद्रघण्टिकाः कामदेवदुन्दुभिभूषणानि भवन्ति। नागेन्द्रहस्ता अतितिरस्कृता एव त्वचि कर्कशत्वेन। कदलीस्तम्भाः एकान्तशैत्येन तदूर्वोरुपमानबाह्या एवासन्। चरणकमलौ नूपुराभ्यां शोभायमानावास्ताम्। आपद्यमाना आसेदुष्यो विशदचरणाङ्गुल्यः शोभायमानाः भवन्ति। गतिरतिविलासवत्यास्ते॥ ७२॥

तीसरा श्रृंगारगृह है। जहाँ गृह से गृह के अन्दर तक द्वार शोभायमान हैं। वहाँ सखियों का सञ्चार है। रतिभाव में सञ्चार करती हुई सुखदायिनी सखियाँ श्रृंगार करती हैं। पहले अगर से सुवासित चोटी में छिपाये पारिजात पुष्प शोभा देते हैं। फिर उससे गोल जूड़ा बाँधा हुआ शोभित होता है। छोटी-छोटी घण्टिकाओं के सूक्ष्म मधुर शब्द से वृन्दावनेश्वरी विशेष प्रसन्न होती हैं। जूड़े पर सुवर्ण जटित नाना मणि मुक्ता ऐसे शोभा देते हैं, मानो मेघों पर चन्द्रकान्ति में नक्षत्र विराजमान हों। केशों में गुँथे हुए पुष्प एवं स्वर्ण में टेढ़े-मेढ़े जड़े हुए मणिमुक्ताओं की कान्ति बादलों की छाया से कबरी चाँदनी जैसी शोभायमान हो रही है। कानों के कुण्डल भी चाँदनी जैसी कान्ति का वलयरूप ही लगते हैं। ललाट पर लगा तिलक सोने के मध्य जड़ी हीरकमणि की कान्ति से बढ़कर है। दोनों भौंहें विजय की कामना वाले धनुष-खण्डों की भाँति सुशोभित हैं। नेत्र खञ्जन व मीन के चातुर्य को जीतने वाले हैं। नासिका सोने की कील में जड़े मोती से शोभायमान है। नासा आभूषण की नीली, पीली, लाल मणि कान्तियाँ नासा की कई गुनी शोभा बढ़ाती हैं। रतिभाव को प्रकट करने वाले दोनों ओष्ठ विद्रुम के रंग से रँगे हुए प्रतीत होते हैं। हीरों से जड़ी मुक्तामणियों की कान्ति से रञ्जित मध्य ठोड़ी वाला भाग मुखमण्डल लाञ्छनयुक्त चन्द्रमण्डल ही प्रतीत होता है। कोमल मुक्तावलियों से सजे हुए कुचकुम्भ स्वर्ण मणि कान्तियों से पुष्प पराग से घिरे हुए से लगते हैं। भुजलताओं के कर कङ्कणों की मरकत कान्तियों से हस्ताङ्गुलियों की अँगूठियों में जड़ी मणियों के तेज विशेष रूप से शोभित होते हैं। नाभिरूप सरोवर की गहराई में पूरे लोक की ही आशंका होती है। कटि मेखला में जड़ी क्षुद्र-घण्टियाँ मानो कामदेव की दुन्दुभियाँ हैं। हाथी की सूँड़ जैसे ढाल वाले त्वचा की कठोरता में कदली स्तम्भों को तिरस्कृत करने वाले उनके ऊरु उपमान से बाहर हैं। चरणकमल नूपुरों से शोभायमान थे। धरातल पर बैठने को लगती सी विशद चरणों की अँगुलियाँ शोभायमान हैं। उनकी चाल विलासवती है॥ ७२ ॥

रङ्गवती सखी वानीरश्रेणिनिकुञ्जे रसिकानन्दस्य शृङ्गारं दर्शयन्त्यास्ते। श्यामहिरण्यपरिधिवनमाल्यबर्हाद्योतितमुक्तावली – शोभते। धातुप्रवालनटवेषविचित्रिताङ्गशोभाढ्या सन्निकृष्यन्त्यासीत्। मकराकृतिकुण्डलौ शोभायमानमाननमतनुताम्। कनककपिशं वनमालया विराजते वेणुवादनकलरवकलापकलितं पीताम्बरम्। तस्मिन् मध्यस्थाने चतुर्धा श्रेणयः विद्रुमलतालवङ्गलताग्रथिताः। वृक्षाग्रग्रथिताभिः श्रेणिसञ्चार आस्ते॥ ७३ ॥

रंगवती सखी वेतों की श्रेणी निकुञ्ज में रसिकानन्द का श्रृंगार दिखाती हुई विद्यमान है। श्याम सुनहरी परिधि वाली वनमाला तथा पंखों की कान्ति से मुक्तावली शोभायमान है। धातु के प्रवाल जैसे नट वेष की विचित्रता वाली अङ्गों की शोभा अपनी ओर आकर्षित करती थी। मकर की आकृति वाले कुण्डल शोभा देते आनन की शोभा को अत्यधिक द्योतित करते हैं। सुनहरी पीला, पीताम्बर जो बाँसुरी-वादन के कलरव कलाप से अति सुन्दर है, वनमाला से अत्यधिक शोभा देता है। वहाँ मध्य स्थान में चारों ओर भी चारों श्रेणियाँ हैं, जो विद्रुमलता- लवङ्ग लताओं से ग्रथित हैं। वृक्षों के अग्रभागों में उलझी होने से नीचे बनी श्रेणियों (वीथियों) में आना-जाना होता है॥ ७३ ॥

तस्यां श्रेण्यां मध्ये एकं शय्यामन्दिरं मणिकुञ्जघटितं विराजते। पुष्परागमणिना खचितज्योत्स्नाभिः संवलिताः प्रतिबिम्बिताः मणयोतितरां राजमाना भवन्ति। रङ्गवती प्रेमवती नन्दगृहं

सकलश्रृंगारभूषणैर्भूषितं रसिकानन्दमतिप्रेम्णा आनयतः। अत्यन्तानन्दमग्नान्यानन्दरसेन वनान्युत्फुल्लितानि संसिद्धानि कोटिशः। सखीनां समूहाः कोटिशो गीतानि गायन्ति। तासु श्रेणिषु परस्परसञ्चाराय सखीनां मार्गा आसते। मार्गे मणिद्योतिताः परिधयो राजमानाः शोभन्ते॥ ७४॥

एक वीथी के मध्य में मणिकुञ्जों से घटित हुआ एक शय्या मंदिर है। पुष्पराग मणि से जड़ी, ज्योत्स्ना से संवलित प्रतिबिम्बत मणियाँ अतिशोभायमान होती हैं। रङ्गवती-प्रेमवती सखियाँ सकल श्रृंगारभूषणों से भूषित रसिकानन्द को बड़े प्रेम से नन्दगृह को लाती हैं। अत्यन्त आनन्द में मग्न करोड़ों वन संसिद्ध रूप से उत्फुल्ल होते हैं। सखियों के समूह करोड़ों गीत गाते हैं। उन वीथियों में परस्पर सञ्चार के लिए सखियों के मार्ग हैं। मार्ग में मणियों से द्योतित परिधियाँ शोभा देती हैं॥ ७४॥

एका पञ्चमी श्रेणी पुष्पिता नानारङ्गरचिता आस्ते। पुष्पाणि फलानि लतायां सन्तिअनेकमणिलताप्रवरज्योत्स्नापुष्पलता आरक्ता एवासते। पुष्पितवृक्षाणां सुगन्धमणिलतानां परस्परज्योत्स्नासंवलितवीथयो विराजन्ते। अमृतफलफलिता वृक्षा अतितरां पीतरक्ततरङ्गितनानाज्योत्स्नाः परस्परमतितरां शोभायमाना भवन्ति। अतिस्वादूनि मधुराणि फलानि नम्राणि सन्ति तेषाम्। तेषामधः सूक्ष्माः पुष्पलता नानारागरञ्जिता एवासते। तासां लतानामधः शय्यारचिता रमणानन्दसुखसंभोगायैवातितरां सुगन्धपुष्पसिकतारचिताः योग्या नानास्तरणैः संवलिताः कामरसपोषका एवासते। तासु श्रेणिषु विचित्रशाला अनेकशः संराजमाना भवन्ति। तासु शालासु सूक्ष्माणि सुगन्धमणीनां गृहाणि संराजन्ते। तेष्वन्तर्नानाभक्ष्यभोज्यानि वस्तून्यतितरां सौष्ठवेन राजमानानि प्रकाशन्ते। अन्यतो रचिता शय्या विविक्ता आस्ते। यत्र सा वृषभानुसुता सुरतानन्दश्च संभाषेते॥ ७५॥

एक पाँचवीं श्रेणी पुष्पित तथा नाना रंगों से रची पची है। लता में पुष्प और फल शोभित हैं। अनेक मणि लताओं के प्रवर से ज्योतित पुष्पलताएँ रञ्जित सी प्रतीत होती हैं। पुष्पित वृक्ष वाली सुगन्ध भरी मणिलताओं की परस्पर कान्ति संवलित वीथियाँ शोभायमान हैं। अमृत फलों से लदे हुए वृक्ष अत्यन्त पीली, लाल तरङ्गों से मिश्रित नाना कान्ति वाले, परस्पर अत्यन्त शोभित होते हैं। उन वृक्षों पर अति स्वादिष्ट मधुर फल नम्र होकर लगे हैं। उनके नीचे सूक्ष्म पुष्प-लताएँ नाना-रागरञ्जित हुई शोभित हैं। उन लताओं के नीचे रमणानन्द के सुख संभोग के लिए शय्या बनाई गई है, जो सुगन्धित पुष्पों की रज से सिक्त है तथा कामरस पोषक नाना आस्तरणों से संवलित है। उन वीथियों में विचित्र शालाएँ अनेकों की संख्या में विराजमान हैं। उन शालाओं में सूक्ष्म सुगन्ध मणियों के भण्डार सुशोभित हैं। उनके अन्दर नाना प्रकार के भक्ष्य भोज्य पदार्थ अत्यन्त सुघड़ता से विराजमान हैं। दूसरी शय्या एकान्त में स्थित है। जहाँ वृषभानुपुत्री और सुरतानन्द संभाषण करते हैं॥ ७५॥

तस्मिन् क्रीडामण्डले षष्ठी श्रेणी मणिप्रेष्ठैर्विराजमाना भवतितराम्। द्वारं त्वारक्तमणिखचित यन्त्रकवाटस्थलहाटकजटितमणिराजिराजमानं भवति। तत्र षड्तवः संलग्नाःसेवन्तेऽतितराम्। यत्र ग्रीष्मोऽयं ऋतुः तत्र शीतलजलाः पुष्करिण्यस्तटभूमिरत्नकुटीचन्द्रकान्तमणि-

जलयन्त्राणीवासीदन्ति। यत्र हंसीनां यूथानि क्रीडां कुर्वन्ति। अन्ये पक्षिणः देववाण्या परस्परसुखमनुभवन्त आसते। भोगताम्बूलाद्या अतितरां तस्मिन् स्थाने आसते॥ ७६॥

उस क्रीड़ा-मण्डल में छठी श्रेणी मणिप्रकोष्ठों से अत्यधिक सुशोभित है। द्वार लालमणियों से खचित हैं एवं यन्त्र कपाटों में सुवर्ण खचित मणियाँ शोभायमान हैं। वहाँ षड्ऋतुएँ संलग्न हुई सेवा करती हैं। जहाँ ग्रीष्म ऋतु है, वहाँ शीतल जल वाली वापियाँ तट पर रत्नकुट्टित भूमि की चन्द्रकान्त मणियों से जल यन्त्रों की भाँति भर दी जाती हैं, जहाँ हंसियों के यूथ क्रीड़ा करते हैं। अन्य पक्षी देववाणी में परस्पर सुख का अनुभव करते हैं। उन स्थानों पर ताम्बूलादि भोगों की बहुतायत है॥ ७६॥

श्रेणिसप्तमद्वारमतितेजोमयमुत्तरा शतं मन्दिराणि एकावल्या सन्ति। दक्षिणतः शतं मन्दिराण्येकावल्या राजन्ते। यत्र सखीनां यूथानि तेषां स्थानानि क्रीडाविहारस्थलानि। योज्यमानानि संभवन्ति। यत्र ललिता विशाखा अन्याश्च शतशः सख्यो रतिप्रेमानन्दस्थाने रमणानन्दयोग्या भक्तास्तिष्ठन्ति। यस्यां श्रेण्यां गृहं गृहं प्रति अष्ट सिद्धयो मूर्तिमत्यः संराजमाना आसते। अनेकशो भूषणैर्भूषिता अलं गोप्यस्तेषु गृहेषु क्रीडां कुर्वन्ति। नानारसा नवनीतरसाः राधास्वादितमिष्टरसा अनेकरसास्वादसुखदाः सन्ति। दुग्धफेनानेकभोगाः सुखसंभोग्या भवन्ति। तेषु आस्तरणयुक्ताः शय्याः शतशो राजमानाः भवन्ति। तेषु स्थानेषु सुरतानन्दप्रेमानन्दमग्नाः सख्यस्तदुपकरणरसंसङ्कुलयन्ते॥ ७७॥

सातवीं श्रेणी का द्वार बड़ा तेजोमय है। उसके उत्तर में सैकड़ों मंदिर एक ही पंक्ति में सुशोभित हैं। दक्षिण से (भी) सौ मन्दिर एक ही पंक्ति में सुशोभित होते हैं। जहाँ सखियों के यूथ उन स्थानों को क्रीड़ा विहारों के रूप में प्रयोग करते हैं। जहाँ ललिता, विशाखा और अन्य सैकड़ों सखियाँ रति-प्रेमानन्द स्थान पर रमणानन्द योग्य भक्तों के साथ बैठी हैं। इस श्रेणी में घर-घर आठों सिद्धियाँ मूर्तिवती होकर विराजमान हैं। अनेकानेक भूषणों से भूषित गोपियाँ उन गृहों में क्रीड़ा करती हैं। नाना प्रकार के रस, मक्खन, राधाजी से स्वाद लिए मीठे रस, अनेक रसों के स्वाद वाले सुखद रस यहाँ हैं। दुग्ध के फेन जैसे श्वेत अनेक भोग भोगने योग्य होते हैं। उनमें उत्तम बिछौने से युक्त सैकड़ों शय्याएँ विराजमान हैं। उनमें सुरतानन्द, प्रेमानन्दमग्ना सखियाँ उपकरणों को एकत्र करती हैं॥ ७७ ॥

अष्टमी श्रेणिः आम्रकदम्बकदलीचम्पकाशोकपुन्नागरोध्रमन्दारपारिजातकल्पकनीपनीरवटन्यग्रोधोदुम्बर-जम्बूवृक्षसरलशिंशुपाखदिरवकुलपिप्पलश्लेष्मांतकबदरीतालतालीवनमधुरशाखालवङ्गैलाजा-तीत्वक्पूगनालिकेरमातुलङ्गक्रमुककण्टकिनोऽनेकशः वृक्षाः पुष्पलताग्रथिताः केतक्यः अमृतवल्ल्यमृतफलैर्ग्रथिता अनेकपुष्पगुच्छलताग्रथिता वल्ल्यो वसन्ते। वासन्तीपल्लवैः योग्यास्तस्मिन् कदम्बवने निर्भरसेचनरससङ्कुलिता अनेकलताग्रथिताः सुवर्णालवालश्रेणयो ग्रथिताः जलपुष्करिण्य इवागाधजलपूरिता एवासते। पट्टडोरिग्रथितसुवर्णघटिका जलप्रवाहो जलयन्त्रमुखाविर्भूतो भवति। तत्र मध्ये पुष्करिण्यां रत्नखचिता मुक्ताखचिता द्वार्जलयन्त्रशीकरैराविष्टा भवति॥ ७८॥

आठवीं श्रेणी वृक्षों की है जहाँ आम, कदम्ब, केला, चम्पक, अशोक, पुन्नाग, रोध्र (लोध्र), मन्दार, पारिजात, कल्पक, नीप (कदम्ब), नीर, वट-न्यग्रोध, उदुम्बर, जम्बूवृक्ष-सरल, शिंशुपा, खदिर, वकुल, पिप्पल, श्लेष्मान्तक, बदरी, ताल, तालीवन, मधुर शाखा (मुलहठी), लवङ्ग, एला, जाती-त्वक्, पूग, नारिकेल, मातुलुंग (चकोतरा), क्रमुक (सुपारी), काँटों वाले भी बहुत से वृक्ष तथा पुष्पलताओं से ग्रथित केतकियाँ, अमृतवल्ली, अमृतफलों से ग्रथित अनेक पुष्पगुच्छ, लताग्रथित वल्लियाँ, वसन्त में वासन्ती पत्तों से भरी लदीं हैं, उस कदम्बवन में भरपूर सेचनरस से युक्त तथा अनेक लताओं से घिरी सुनहरी थाँवलों की पंक्तियाँ तथा अगाध जल से भरी बावड़ियाँ विद्यमान हैं। कपड़े की डोरी से ग्रथित सुवर्ण कलश का जल प्रवाह जलयन्त्र मुख से आविर्भूत होता है। पुष्करिणी के मध्य में रत्न-मुक्ताओं से खचित द्वार जलयन्त्र के फुहारों से घिरा है॥ ७८ ॥

नवमी श्रेणिर्जलेन सिच्यमाना अनेकजलक्रीडोपकरणा संयोक्ष्यमाणा भवति। क्वचित्सूर्यवंशीकमलानि क्वचित्सोमवंशीकमलानि विराजमानानि। तस्य मध्यस्थले वानीरकुञ्जे यमुना जलकल्लोलवती रत्नबद्धोभयतटी राजमाना भवति। यत्र वृक्षशाखा जलस्पर्शाद्दोलाविद्रुमलता भवन्ति तत्र बृन्दावनेश्वरी रसिकानन्देन सह दोलायामेति। ललिताद्याः सख्यः संगायन्त्यो भवन्ति। तत्र मयूरकोकिलहंससारसविहगाद्याः सङ्गायमाना गुणगणनायुताः भवन्तितराम्॥ ७९ ॥

नवमी श्रेणी जल से सिच्यमान, अनेक जलक्रीड़ा के उपकरणों वाली है। कहीं सूर्यवंशी कमल, तो कहीं चन्द्रवंशी कमल विराज रहे हैं। वहाँ मध्य के बेंतों के कुञ्ज में जल की किलोलें भरती, रत्नजटित घाटों से दोनों तट बँधे हैं जिसके, ऐसी यमुना शोभायमान है। जहाँ वृक्षों की शाखाएँ जल का स्पर्श करती झूलती हुई झूले का दृश्य उपस्थित करती हैं, वहाँ वृन्दावनेश्वरी रसिकानन्द के साथ झूलती हैं। ललिता आदि सखियाँ गीत गाती हैं। वहाँ मोर, सारस, हंस, कोयल इत्यादि पक्षी गाते हुए खूब गुणगान करते हैं॥ ७९ ॥

दशमी श्रेणिः रसिकानन्दस्य कन्दुकलीलाधिष्ठानस्थानं प्रति योजनायतं सुवर्णभूमिजटितखचितं पद्मरागमणिगणावलितं भूमिरचितं रङ्गश्रेणिविराजितमतितरां शोभते। अतिविविक्ते तस्मिंस्थाने कन्दुकलीलया सुशोभमानं स्थानम्। ताः सर्वाः सख्यः कन्दुकलीलायां कन्दुकलीलापरस्परस्वमर्यादा नातिक्रामन्ति। श्यामा रसवती ललिता शृङ्गारवती रङ्गवती कलावती गुणवती गानवती कुञ्जवती सुश्रोणी चन्द्रमुखी चन्द्रलेखा ताः सर्वाः सख्यः कन्दुककेलियष्टिं गृहीत्वा स्वमर्यादाः नातिक्रामन्त्यः क्रीडन्ति। रसिकानन्दशिरोमणिः स्वयमेव कन्दुकयष्टिं गृहीत्वा क्रीडति। विशाखा चन्द्रलेखानुराधा अतिरतिज्ञा रमणानन्दज्ञा सुरतोपदेशा सुरतकलाकोविदा गानवतीत्येताः सर्वाः सख्यः कन्दुकयष्टिं गृहीत्वा श्रीराधिकायाः कन्दुकमर्यादामनतिक्रम्य कन्दुकं नयन्ति। एवं परस्परं स्वं स्वं मर्यादया कन्दुकं नयन्ति। यदा श्रीराधिकया सह रसिकानन्दः कन्दुकव्याजेन क्रीडामनुभवति तदा ताः सर्वाः सख्यो जयशब्दमुदीरयन्ति। अन्याः पुष्पवत्यादयः सख्यः पुष्पवृष्टिं कुर्वन्ति॥ ८० ॥

दशमी श्रेणी रसिकानन्द की कन्दुक लीला का अधिष्ठान है, जो एक योजन विस्तृत है। (वह) सुवर्ण जटित भूमि प्रदेश वाला, पद्मपराग मणियों के वलय वाला, भूमि पर रंगों की श्रेणियों से शोभित हुआ विराजमान है। अति एकान्त में वह स्थान कन्दुक लीला से सुशोभित होता है। वे सारी सखियाँ कन्दुक लीला में स्वमर्यादा का अतिक्रमण नहीं करतीं। श्यामा, रसवती, ललिता, शृंगारवती, रङ्गवती, कलावती, गुणवती, गानवती, कुञ्जवती, सुश्रोणी, चन्द्रमुखी, चन्द्रलेखा वे सारी सखियाँ गेंद और बल्ला लेकर बिना मर्यादा अतिक्रमण किये खेलती हैं। रसिकानन्द शिरोमणि भी स्वयं बल्ला लेकर खेलते हैं। विशाखा, चन्द्रलेखा, अनुराधा, अतिरतिज्ञा, रमणानन्दज्ञा, सुरतोपदेशा, सुरतकलाकोविदा, गानवती इत्यादि सारी सखियाँ केलियष्टि (खेलने की लकड़ी बल्ले) लेकर श्रीराधाजी की गेंद को मर्यादित होकर ले जाती हैं। इस प्रकार अपनी-अपनी मर्यादा से गेंद को ले जाती हैं। जब श्रीराधिकाजी के साथ रसिकानन्द गेंद के बहाने क्रीड़ा करते हैं, तो सारी सखियाँ जयघोष करती हैं। अन्य पुष्पवती आदि सखियाँ पुष्पवृष्टि करती हैं॥ ८० ॥

तस्मिन् क्रीडास्थाने एकं मन्दिरं प्रेमवत्या सुरचितं सर्वभोगाढ्यं मनोरममस्ति। प्रेमवती प्रणिपातपुरस्सरं श्रीराधिकया सह रसिकानन्दं श्रमापनोदार्थं नयति। तत्र भोगवती सर्वभोगान् गृहीत्वाऽग्रतस्तिष्ठति। तत्रान्तः सुरचिता सखी सुभगां सर्वभोगान्वितां शय्यां रचयित्वा प्रश्रयावनता श्रीराधिकया सह रसिकानन्दं नयति। तत्र मनसि सोत्साहं करोति। तत्र रहसि चतस्त्रः सख्यः सुसेवमाना भवन्ति। सुकामा अलज्जा सुरतोद्गमा सुरतानन्दा सेवमाना भवन्ति। अन्या ललितादयः सख्यस्तत्सुखं निरीक्ष्यातिरसमग्रास्तां लीलां गायमाना भवन्ति। तदा लीलान्ते चतस्त्रः सख्यः सेवमाना भवन्ति। निद्रालसा संमीलिता सुसुखा गतत्रपा सुसेवमाना भवन्ति। तत्र जाताः सुलज्जा भोगवती गानवती सुसेवमाना भवन्ति। एवं कन्दुकलीलायाः सुखं प्रत्यवसरं श्रीराधिकया सह रसिकानन्दः सुसेवते॥ ८१ ॥

उस क्रीड़ा स्थल में एक मन्दिर प्रेमवती से बनाया हुआ, सब भोग्य पदार्थों से पूर्ण मनोरम है। प्रेमवती प्रणाम करके राधिकाजी के साथ रसिकान्द को थकान मिटाने वहाँ ले जाती है। वहाँ भोगवती सारे भोगों को सामने रखती है। सुरचिता सखी अन्दर सुभग शय्या बनाकर आग्रहपूर्ण निवेदन से श्रीराधिकाजी के साथ रसिकानन्द को ले जाती है। मन को उत्साहपूर्ण करती है। एकान्त में चार सखियाँ सेवा करती हैं। सुकामा, अलज्जा, सुरतोद्गमा, सुरतानन्दा सेवा करती हैं। अन्य ललिता आदि सखियाँ उस सुख को देखकर रसमग्र हो उस लीला का गान करती हैं। लीला के अन्त में निद्रालसा-संमीलिता, सुसुखा, गतत्रपा नाम की चार सखियाँ सेवा करती हैं। इसके पश्चात् सुलज्जा, भोगवती, गानवती सेवा करती हैं। इस प्रकार प्रतिदिन श्रीराधिका के साथ रसिकानन्द कन्दुक लीला का आनन्द लेते हैं॥ ८१ ॥

तत्र सहस्त्रनिकुञ्जैर्ग्रीष्मर्तुः सेव्यमानो भवति। रत्नजटिताः पुष्करिण्यः सुवासितैः सुजलैः संपूर्णाः भवन्ति। तत्र नम्रा वृक्षाः परितः पुष्पैः फलैः संपूर्णा भवन्ति। तत्र रसिकानन्दः श्रीराधिकया सह जलक्रीडां करोति। तत्र मज्जनवती तरङ्गिणी जलकल्लोला प्रेङ्खितवती सेव्यमाना अगाधजला नौकावती सुप्लवनवती जलाभिज्ञा सुलहरी हस्तपल्लवा एताश्चान्याः सख्यः श्रीराधिकया सह

जलक्रीडां कुर्वन्ति। तत्र जलक्रीडाव्याजेन रसिकानन्दो नानासुखं करोति। तत्र जलक्रीडान्ते शृङ्गारवती सखी शृङ्गारस्थानं नयति। तत्र पुष्पवती पुष्पमण्डनं रचयति। एवं ग्रीष्मलीलां नानासखीभिः सार्धं रसिकानन्दः श्रीराधिकया सह संसेवमानो भवति॥ ८२॥

[प्रभु की क्रीड़ा-लीला में सभी ऋतुएँ अपने-अपने अनुरूप संसाधनों और रसों के साथ क्रीड़ा में उनकी सेवा-सहायता करती हैं, ऐसा आलंकारिक वर्णन यहाँ किया जा रहा है। आगे ग्रह-नक्षत्रादि द्वारा तथा देवगणों द्वारा भी लीला-सेवा में भागीदारी का प्रसंग आया है।]

वहाँ हजारों निकुञ्जों से ग्रीष्मऋतु सेवा करती है। रत्नजटित बावड़ियाँ सुवासित जलों से पूर्ण होती हैं। चारों ओर पुष्पों- फलों से लदे वृक्ष शोभित हैं। वहाँ रसिकानन्द श्रीराधाजी के साथ जलक्रीड़ा करते हैं। वहाँ मज्जनवती-तरङ्गिणी, जलकल्लोला, प्रेङ्खितवती, सेव्यमाना, अगाधजला, नौकावती, सुप्लवनवती, जलाभिज्ञा, सुलहरी, हस्तपल्लवा ये तथा अन्य सखियाँ श्रीराधिकाजी के साथ जल क्रीड़ा करती हैं। वहाँ जल क्रीड़ा के बहाने रसिकानन्द नाना-सुख प्राप्त करते हैं। जल क्रीड़ा के बाद शृंगारवती सखी उन्हें शृंगार स्थान पर ले जाती है। वहाँ पुष्पवती पुष्पों से मण्डन करती है। इस प्रकार रसिकानन्द श्रीराधिकाजी के साथ सखियों से सेवित होते हुए ग्रीष्मलीला सम्पन्न करते हैं॥ ८२॥

ततः प्रावृल्लीलाया अनुभवः कथ्यते। सहस्रनिकुञ्जैः प्रसारिता प्रावृडानन्दमयी भवति। मेघा नानारूपाणि विधाय मणिमयभूमिं जलैः सिञ्चमाना हरितशाडलैः शोभायमानां कुर्वन्ति। मयूरपिकहंससारसयुताः पक्षिणः नानाकलशब्दैः कुञ्जान्तरं सेवमाना भवन्ति। कौसुम्भासुरङ्गाक्षणिकाप्रद्योतिताः सोत्साहाः सख्यः रसिकानन्दं श्रीराधिकया सह सेवन्ते। नानावृक्षा लताभिर्ग्रथिताः पुष्पैर्नम्रा भवन्ति। तत्र रसिकानन्दः श्रीराधिकया सह नानावेषैः शृङ्गारानुभवैः सुरतानन्दसुखं भुञ्जमानो भवति। प्रावृल्लीलां निरीक्ष्य ललितादयस्तां लीलां संगायमाना भवन्ति॥ ८३॥

इसके पश्चात् प्रावृट्-लीला (वर्षाजल में क्रीड़ा) का अनुभव कहते हैं। सहस्रों निकुञ्जों में फैली वर्षा आनन्दमयी है। मेघ नानारूप धारण करके मणिमय भूमि को जलों से अभिषिक्त करते हैं तथा हरी दूब से शोभित करते हैं। मोर, पिक,हंस, सारस आदि पक्षी नाना कलरवों से कुञ्जों को मुखरित करते हैं। कौसुम्भा, सुरङ्गा, क्षणिका, प्रद्योतिता, सोत्साहा सखियाँ राधाजी के साथ रसिकानन्द की सेवा करती हैं। लताओं से लिपटे हुए अनेक वृक्ष पुष्पों से झुके हैं। वहाँ रसिकानन्द श्रीराधाजी के साथ अनेक वेषों से शृंगारों के अनुभवों से सुरतानन्द सुख का स्वाद लेते हैं। प्रावृट्लीला को देखकर ललितादि सखियाँ लीला को गाती हैं॥ ८३॥

ततः शारदलीलायाः सुखं संवर्ण्यते। सहस्रैर्निकुञ्जैः प्रसृता शरत् प्रद्योतमाना भवति। यत्र सर्वाः लताः प्रफुल्लिताः सर्वे वृक्षाः प्रफुल्लिताः। सर्वासां सखीनां मनांसि प्रफुल्लितानि भवन्ति। यत्र शारदनिकुञ्जाः प्रफुल्लिताः तत्र मध्ये नित्यं रासमण्डलं सदा रसिकानन्देन सेवितम्। यत्र श्रीराधिका स्वसखीभिः सार्धं नित्यानन्दलीलां करोति। तन्मण्डलं पञ्चयोजनायतं

नानारङ्गमणिस्तंभशतशोभितं नानालताभिः पुष्पिताभिराच्छादितं परितः द्वादशश्रेणिसंवलितम्। तासु श्रेणिषु अनेकशः सख्यः संशोभमाना भवन्ति॥ ८४॥

तब शारद लीला सुख का वर्णन प्रारम्भ होता है। सहस्रों निकुञ्जों में फैली शरद् द्योतमान है। जहाँ सारी लताएँ सारे वृक्ष प्रफुल्लित हैं। सारी सखियों के मन प्रफुल्लित हैं। जहाँ शारद् निकुञ्ज प्रफुल्लित हैं, वहाँ मध्य में नित्य रसिकानन्द के द्वारा रास मण्डल का सेवन होता है। जहाँ राधिकाजी सखियों के साथ नित्य आनन्द लीला करती हैं। वह मण्डल पाँच योजन लम्बा-चौड़ा है। जो नाना रङ्ग की मणियों के सैकड़ों खम्भों से निर्मित, नाना पुष्पित लताओं से आच्छादित चारों ओर बारह श्रेणियों से संवलित है। उन श्रेणियों में अनेक सखियाँ शोभायमान हैं॥ ८४॥

प्रथमश्रेण्यां ललिताविशाखादयः सख्यः नानाविधान्युपकरणानि कुर्वन्ति। द्वितीयश्रेण्यां प्रेमवत्यादयः सख्यः राजमाना भवन्ति। तृतीयश्रेण्यां शृङ्गारवत्यादयः सख्यो नानालंकारसुखरूपा अनेकशः शृङ्गारं कुर्वन्ति। चतुर्थश्रेण्यां भोगवत्यादयः सुगन्धवत्यादयः सख्यो नानाभोगरसान् रचयन्ति। पञ्चमश्रेण्यां पुष्पवत्यादयः सख्यो नानाविचित्राणि माल्यानि कुर्वन्ति॥ ८५॥

पहली श्रेणी में ललिता, विशाखा आदि सखियाँ नाना प्रकार के उपकरणों को तैयार करती हैं। दूसरी श्रेणी में प्रेमवती आदि सखियाँ विराजमान हैं। तीसरी श्रेणी में शृंगारवती आदि सखियाँ नाना सुखकारक अलङ्कारों से अनेक शृंगार करती हैं। चौथी श्रेणी में भोगवती आदि-सुगन्धवती आदि सखियाँ नाना प्रकार के व्यञ्जन तैयार करती हैं। पञ्चम श्रेणी में पुष्पवती आदि सखियाँ नाना प्रकार की मालाएँ तैयार करती हैं॥ ८५॥

षष्ठश्रेण्यां भूषावत्यादयः सख्यो रत्नजटितानि हाटकमयानि मनईप्सितानि रचयन्ति। सप्तमश्रेण्यामन्नपूर्णाद्याः सख्यो नानान्नमयरसान् पाचयन्ति। नानाविधानि पक्वान्नानि प्रतिक्षणं नूतनानि पाचयन्ति। अन्या रसभेदान् रचयन्ति। अष्टमश्रेण्यां सुगन्धवत्यादयः सख्यो नानासुगन्धान् रचयन्ति। गानवत्यादयः सख्यो गानं कुर्वन्ति। तन्तुवादिन्यादयः सख्यस्तालैः सुगानं कुर्वन्ति। नवमश्रेण्यां विलाससुरतरङ्गवत्यादयः सुरतानन्दादय अभिनवकला आसनभेदान् सङ्गीतसाहित्यकलाकुशलाःसख्य ऋग्यजुस्सामाथर्वणवेदरूपाः सख्यो नानास्तुतिभेदैर्गुणगणनां कुर्वन्ति। एकादशश्रेण्यां रङ्गवत्यादयो रङ्गरसभावान् नानाविचित्राणि वचनानि नम्राणि प्रेमोत्पादकयुतानि श्रावयन्ति। द्वादशश्रेण्यां सखीनां विधिसञ्चार आस्ते॥ ८६॥

छठी श्रेणी में भूषावती आदि सखियाँ रत्नजटित सुवर्णाभूषणों को मन चाहे रूप में तैयार करती हैं। सातवीं श्रेणी में अन्नपूर्णादि सखियाँ नाना अन्नमय रसों का निर्माण करती हैं। नाना प्रकार के पकवान प्रतिक्षण नये-नये पकाती हैं। अन्य रस भेदों का निर्माण करती हैं। आठवीं श्रेणी में सुगन्धवती आदि सखियाँ नाना सुगन्धों को रचती हैं। गानवती इत्यादि सखियाँ गान करती हैं। तन्तुवादिनी आदि सखियाँ तालों के साथ शास्त्रीय संगीत गाती हैं। नवमी (तथा दसवीं) श्रेणी में विलास, सुरत, रङ्गवती आदि सखियाँ; सङ्गीत, साहित्य, कला-कुशल सखियाँ तथा ऋक्, यजुः सामाथर्वण वेदरूपा सखियाँ; सुरतानन्द आदि अभिनव कलाओं तथा आसन भेदों

का नाना स्तुतियों से यशोगान करती हैं। ग्यारहवीं श्रेणी में रङ्गवती आदि सखियाँ रङ्गरस भावों को, नाना प्रकार के विचित्र वचनों को नम्र हो प्रेमोत्पादक रूप में सुनाती हैं। बारहवीं श्रेणी में सखियों का विविध प्रकार से सञ्चार होता है॥ ८६॥

तस्यां श्रेण्यामन्तर्भागे चतस्त्रः श्रेण्यो विराजन्ते। तत्र गृहाणि शतशो हाटकमणिखचितानि संरोचमानानि भवन्ति। रत्नवीथिषु योज्यमानाः श्रेणयः सुवर्णयूथिका अतिसुगन्धा मुक्तायूथिका अतितरां राजमानाः भवन्ति। तत्र तरुपुष्पाणि नानारङ्गमयानि सुगन्धाढ्यान्यनेकशो राजमानानि भवन्ति। तस्यां हरितपीतारक्तरक्तलता अनेकशः शोभाभेदैरत्यन्तं राजमानाः आसते। मणिलता आन्तरैर्मणिपुष्पैः संराजमाना भवन्ति। तासां लतान्तः सूक्ष्मलताः पुष्पिता राजमाना आसते। तासु श्रेणिषु सखीनां रमणस्थानानि सुरच्यमानानि गुणगन्धाढ्यानि रूपप्रतिकृतियुतान्यतितरां भवन्ति। सा श्रेणी श्रीराधाया अतितरां वल्लभा आस्ते। यदा गृहवनविहारेच्छाविर्भवति तदा तस्यां श्रीराधा स्वयमेव विचिन्वती स्वयमेव पुष्पहारावलीं ग्रथयति। रसिकानन्दः पुष्पाणि चिनोति। हरितपीतश्वेतारक्तपुष्पगुच्छैर्ग्रथितां हारावलिं श्रीराधायाः कण्ठे स्वहस्तेन परिधापयति। सा अतितरां विराजते॥ ८७॥

उस श्रेणी के अन्तर्भाग में चार श्रेणियाँ हैं। वहाँ सैकड़ों घर हाटकमणि से खचित शोभायमान हैं। रत्नवीथियों में प्रयोग में आती हुई श्रेणियाँ सुवर्ण वीथिका अति सुगन्धा-मुक्ता यूथिका अत्यन्त शोभा देती हैं। वहाँ वृक्षपुष्प नाना रंगों वाले सुगन्धों से भरे अनेकों की संख्या में विराजमान हैं। वहाँ हरी,पीली, लाल रंग की लताएँ अनेक शोभा भेदों से विराजमान हैं। मणि-लताएँ अन्दर बने मणिपुष्पों से संराजमान होती हैं। उन लताओं के अन्दर सूक्ष्म-लताएँ पुष्पित हुई विराजमान हैं। उन श्रेणियों में सखियों के रमणस्थान हैं, जो सुन्दर बने हुए , गुण गन्धों से पूर्णरूप प्रतिकृतियुक्त अर्थात् दर्पणयुक्त हैं। वह श्रेणी श्रीराधाजी को बहुत प्यारी है। जब गृह- वनविहार की इच्छा होती है, तब उसमें श्रीराधाजी स्वयं ही पुष्पों को चुनतीं, स्वयं ही माला तैयार करती हैं। रसिकानन्द भी पुष्प चुनते हैं। हरे, पीले, श्वेत, गुलाबी पुष्प-गुच्छों से गूँथी माला को श्रीराधा के गले में अपने हाथों से पहनाते हैं। वह बहुत ही सुन्दर लगती है॥ ८७॥

तस्यां श्रेण्यामेकं मन्दिरं गुप्तक्रीडास्थलं महातेजोमयं मणिमयसप्तभूमिकं संराजमानं भवति। एका भूमिः कनकमयी। तदुपरि रत्नसोपानसंवलिता भूरारक्तमणियुता भवति। अनेकरङ्गरञ्जितान्तरा सोपानपरम्परा संराजमाना भवति। तदुपरि भूः पुष्परागरचितातितरां सुशोभाढ्या भवति। तत्र सोपानपरम्परा शोभायमाना भवति। तदुपरि सोपानपरम्परा रत्नावलीखचिता नानारङ्गैः सुरचिता जाम्बूनदसुवर्णभूषिता परस्परसुगन्धसंवलितैवास्ते। सुरचितमणिवल्ली पुष्पपरागपरिधिमतितरां करोति। तदुपरि चन्द्रकान्तरचिता तत्सकाशात् चतुर्थी भूमिर्जलशीकरसंयोगिनी भवति॥ ८८॥

उस श्रेणी में एक मंदिर जो गुप्त क्रीड़ा स्थल है, बड़ा तेजोमय, मणिमय, सप्तभूमियों वाला शोभित है।

एक स्वर्णभूमि है। उसके ऊपर रत्नों की सीढ़ियों से युक्त गुलाबी रंग की मणियों वाली भूमि है। अनेक रङ्गों से रंजित अन्तर-भाग वाली सोपान परम्परा शोभायमान है। उनके ऊपर की भूमि पुष्पों की रंगीनी से युक्त अत्यन्त शोभा देती है। उसके ऊपर की सीढ़ियाँ रत्नावली से खचित, नाना रंगों से चित्रित, सुवर्ण- भूषित और परस्पर सुगन्ध से युक्त हैं। अच्छी प्रकार रचना की गई मणियों द्वारा बनाई गई लता, पुष्पों की पराग परिधि को भी मात देती है। उसके ऊपर चन्द्रकान्त मणियों से बनाई गई, उनके पास चौथी भूमि जल के फव्वारों से युक्त है॥ ८८॥

जलयन्त्रशीकरकणिकामयैः सुगन्धजलैः पूरितायां पुष्करिण्यां ग्रीष्मादौ श्रीराधिकया श्रीरसिकानन्देन च सुरतानन्दसुखमनुभूयते। यत्र सुखमनुभवन्तावासाते तत्र मणिलताग्रथिता विद्रुमदोलास्ते। रत्नजटितदोलायां मणिज्योत्स्नाः प्रतिबिम्बभावापन्ना एव भवन्तितराम्। तदुपरि सोपानपरंपरा मणिग्रथिता भवति। तदुपरि सुगन्धमणिरसवलिता भूः संराजमाना आस्ते। तत्र भूम्यां सूर्यचन्द्राग्निदेवता आधिदैविकेन रूपेण सखीरूपं विधायोपसेवमाना भवन्ति। तस्यां भूम्यां सुरतानन्दसुखमनुभवन्तो भवन्ति॥ ८९॥

जलयन्त्र की शीकर कणिकाओं, जो सुगन्धित भी हैं, से भरी गई पुष्करिणी में ग्रीष्मादि ऋतु में श्रीराधिकाजी के साथ रसिकानन्द सुरतानन्द का सुख अनुभव करते हैं। जहाँ इस सुख का अनुभव करते हैं, वहाँ मणिलता से ग्रथित विद्रुम का झूला भी है। रत्नजटित उस दोला (झूला) में मणियों की कान्ति प्रतिबिम्बित हुई बड़ी सुहावनी लगती है। उसके ऊपर की सीढ़ियाँ मणि जटित हैं। उसके ऊपर सुगन्धमयी मणियों के रस से संवलित भूमि शोभायमान है। उस भूमि पर सूर्य, चन्द्र, अग्निदेवता आधिदैविक रूप से सखीरूप बनाकर सेवा करते हैं। उस भूमि में सुरतानन्द सुख का अनुभव करते हैं॥ ८९॥

श्रीराधिकायाः रसिकानन्देन सह देहात्समुत्पन्नाः सख्यो दृष्टवती कलावती सोत्साहा प्रेमसंवलिता लज्जावती गुणवती गुणाढ्या भवन्ति। अन्या अनेकसख्यो रतिसुखमनुभवन्त्यो भावापन्ना भवन्ति। तदुपरि सोपानपरम्परा चत्वरे आस्ते। अत्यन्तसुखश्रेणिसञ्चारा सोपानपरम्परा रत्नावलीभूषिता भवति॥ ९०॥

श्रीराधिकाजी के साथ ही उत्पन्न हुई सखियाँ दृष्टवती, कलावती, सोत्साहा, प्रेमसंवलिता, लज्जावती, गुणवती, गुणाढ्या आदि अनेक सखियाँ, रसिकानन्द के साथ रतिसुख का अनुभव करती भावविभोर होती हैं। उसके ऊपर की सीढ़ियाँ चौराहे पर पहुँचाती हैं। यह सोपान परम्परा अत्यन्त सुखपूर्वक श्रेणियों में सञ्चार वाली रत्नावली से भूषित है॥ ९०॥

रतिसुखसंपत्तिप्रतिकूजा अनेकभूमयो योजिताः। एवंविधं मण्डलं द्वादशद्वारयुतम्। द्वादशद्वारे द्वादश श्रेणिसञ्चारा भवन्ति। अतः परम्पराश्रेणिसञ्चारो भवति। तन्मण्डलं यदेतत् षड्गुणप्रसिद्धं भवति। षड्गुणाः षड्तवः उपसेवमाना भवन्ति। एतस्मिन् मण्डले पूर्वतः सखीरूपं विधाय सूर्यः सुकोमलैः किरणैरुपसेवमान आस्ते। तस्य मण्डलस्योत्तरतश्चन्द्रः उपसेवमानो भवति। एतस्मिन् मण्डले पश्चिमतोऽग्निराधिदैविकेन रूपेण उपसेवमानो भवति। ग्रहास्तास्तारका अन्यानि नक्षत्राण्याधिदैविकं रूपं विधाय सदा उपसेवमाना भवन्ति॥ ९१॥

रतिसुख संपत्ति वाले कुञ्जों से विभूषित अनेक स्थल वहाँ हैं। इस प्रकार का यह मण्डल बारह द्वारों से युक्त है। बारहवें द्वार पर बारह ही श्रेणी सञ्चार हैं। वह मण्डल षड्गुणों से प्रसिद्ध है। षड्गुण तथा षड्ऋतुएँ सदैव सेवा में तत्पर रहती हैं। इस मण्डल में पूर्व से सखीरूप बनाकर सूर्यदेव सुकोमल किरणों से सेवा करते हैं। उस मण्डल के उत्तर में चन्द्रदेव सेवा करते हैं। इसके पश्चिम में अग्नि आधिदैविक रूप से सेवा करते हैं। ग्रह, तारागण, अन्य नक्षत्र आधिदैविक रूप से सदा सेवा करते हैं॥ ९१ ॥

इन्द्रोऽपि सखीरूपं विधाय देवाङ्गनाभिः सह विमानावलीषूपविश्य सदोपसेवमानो भवति। पितामहोऽपि सूक्ष्मरूपं विधायान्तरिक्षे तल्लोकदर्शनाकाङ्क्षो भवति निरन्तरम्।अन्ये दिक्पालाः संसिद्धा निरन्तरमाधिदैविकेन रूपेण तन्मण्डलमुपसेवमानास्तन्मण्डललोकानन्दमग्ना भवन्ति। तन्मण्डलोपासका भक्ता अन्यं न भजेरन्। अन्यधर्मासक्ता इदं मण्डलं न जानन्ति॥ ९२ ॥

इन्द्र भी सखीरूप बनाकर देवाङ्गनाओं के साथ विमानों की पंक्ति में बैठे हुए सेवा करते हैं। पितामह भी सूक्ष्मरूप धारण करके उस लोक के दर्शन की इच्छा से सेवा करते हैं। अन्य दिक्पाल संसिद्ध हैं, वे आधिदैविक रूप से उस मण्डल में उपस्थित रहते हैं। उस मण्डल में लोकानन्दमग्न रहते हैं। उस मण्डल के उपासक भक्त किसी अन्य को नहीं भजते। अन्य धर्मों के लोग इसे नहीं जानते॥ ९२ ॥

सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम्। ये मण्डलमुपासते ते किं कर्म कुर्वन्तो भवन्ति? स होवाच। तेऽनन्योपासकाः भवन्ति। अनन्यभजन सिद्धा आत्मभावा भवन्ति। आत्मभावा मण्डलमुपासते। आत्मानात्मभावो भवेत्। अतितरामात्मानन्दे मग्ना अन्यरसं न भावयन्ति। आत्मानन्दे मग्ना अभक्तान्न स्पृशन्ति। आत्मानन्दे मग्ना आत्मभावा भवन्ति। नान्यं शृण्वन्ति न नमन्ति न गायन्ति। ते भक्ता आत्मरसभाविता आत्मनो रतिरसभावनयानन्दं शृण्वन्त्यानन्दं गायन्ति। आनन्दयुता भक्ता अतिरसमग्ना गुणान् गृणन्ति। अतिरस मग्नास्तदुच्छिष्टमुपभुञ्जते। अनुच्छिष्टं कदाचिन्न भुञ्जते॥ ९३ ॥

लक्ष्मी जी ने पूछा— जो मण्डल में उपस्थित होते हैं, वे क्या कर्म करते रहते हैं? नारायण बोले— वे अनन्य उपासक हैं। अनन्यभजन में सिद्ध हुए आत्म भावपरक होते हैं। आत्मभाव वाले भक्त ही मण्डल की सेवा करते हैं। आत्म-अनात्मभाव वे अत्यन्त आनन्दरस में मग्न अन्य रस की इच्छा नहीं रखते। आत्मानन्द मग्न अभक्तों का स्पर्श नहीं करते। आत्मानन्द में मग्न आत्मभावलीन रहते हैं। न अन्य की सुनते हैं, न नमन करते हैं, न गाते हैं। वे भक्त आत्मरस-भावित हुए आत्मा की रतिरसभावना से आनन्द को सुनते हैं, आनन्द को गाते हैं। आनन्दयुक्त भक्त अत्यन्त रसमग्न हुए गुणों का गान करते हैं। अतिरस-मग्न हुए उनके उच्छिष्ट को(तेज त्यक्तेन भुञ्जीथा) ही खाते हैं। अनुच्छिष्ट कभी नहीं खाते॥ ९३ ॥

तन्मण्डलोपासकाः भक्ता अभक्तान् न स्पृशन्ति। ये अन्योपासका भक्ता आनन्देऽनाश्रिताः कर्मजडाः कर्मकाण्डोपासका एव ते। अग्न्युपासका ये ब्राह्मणा ब्रह्मवर्चसोपासका एव ते। तेषां संभाषणं तन्मण्डलोपासकः प्रमादेनापि न कुर्यात्। ये अन्यधर्मरहिता अन्यासक्तिरहितास्ते

तन्मण्डलं प्राप्नुवन्ति। अन्यधर्मरहिता एव प्राप्नुवन्ति। अन्ये आत्मानं न विदुरात्मना। किं बहुनोक्तेन धर्मेण॥ ९४॥

[यहाँ कर्मकाण्ड आदि से ऊपर उठकर आत्मा से ही आत्मा (जीवात्मा से परमात्मा) के बोध का तथ्य समझाया गया है।]

उस मण्डल के उपासक भक्त, अभक्तों का स्पर्श नहीं करते। जो कर्मकाण्डी उपासक हैं, वे कर्मजड़ हैं उनका आनन्द से कोई वास्ता नहीं। जो ब्राह्मण अग्नि उपासक हैं, वे भी ब्रह्मवर्चस के ही उपासक हैं। इन लोगों के साथ मण्डल के उपासक को कभी भूलकर भी बात नहीं करनी चाहिए। जो अन्य धर्मों से रहित हैं, जो अन्य की आसक्ति से रहित हैं, वे ही उस मण्डल को प्राप्त करते हैं। अन्य धर्म से रहित ही प्राप्त करते हैं। अन्य आत्मा द्वारा आत्मा को नहीं जानते। धर्म के द्वारा अधिक क्या कहना ?॥ ९४॥

ये ब्राह्मणा अन्यविद्योपासका: कर्मजडा: कर्मकाण्डोपासका: कालोपासका: कर्मधर्मदेवपित्रुपासका एव भवन्ति ते। ये शैवा: शाक्ता: सुरामांसरता: कौला जैना: पातञ्जला मीमांसका: जडतां प्राप्ताश्चार्वाका अन्यधर्मदृढासक्ता भवन्ति। ये तां व्रजेश्वरीं रसिकानन्देन सहोपासते सदानन्दरसमनुभवन्तो भवन्ति। रतिकला कोमला गुणगणनां कुर्वन्ति। तमेव रसं गायन्तो भवन्ति। अतिरतिमापद्यमाना भवन्ति॥ ९५॥

जो ब्राह्मण अन्य विद्या उपासक हैं, जो कर्मजड़, कर्मकाण्डोपासक हैं, जो कालोपासक हैं, जो कर्म-धर्म, देव-पितृ-उपासक हैं, जो शैव, शाक्त, सुरा-मांसरत कौल, जैन, पातञ्जल, मीमांसक, जड़ चार्वाक हैं, ये सभी अन्य मत-मतान्तरों में दृढ़ता से आसक्त होते हैं। जो उस ब्रजेश्वरी की रसिकानन्द के साथ उपासना करते हैं, वे सदा आनन्दरस का उपभोग करते हैं। रति कला में कोमल हृदय वाले गुणों की गणना करते हैं। उसी रस को गाते हैं। अतिरति भाव को प्राप्त करते हैं॥ ९५॥

ये दर्भं हस्ते गृह्णन्ति ते तं रसं न प्राप्नुवन्ति। तिलाञ्जलिं पितृणां ये ददति ते तन्मण्डलं प्राप्नुवन्ति। देवाश्चासुराश्च कर्मकाण्डोपासका एवेति, देवा: सद्विद्योपासका वैष्णवा एवेति, गुणातीतास्ते बृन्दावनेश्वरीमुपासते। रसिकानन्देन सह उपसेव्यमानमभियन्ति। अतिगुणमग्ना रात्रौ दिवा सदा सुरतानन्दसुखमनुभवन्तो युज्यन्ते। रतिकलाकौतुकानि संभोक्ष्यमाणा भवन्ति। भक्तानामाग्रहात् भगवान् रसिकानन्दोऽनुग्रहं करोति। ते मण्डलं विदु:॥ ९६॥

जो कुश हाथ में ग्रहण करते हैं, वे उस रस को नहीं प्राप्त करते हैं। जो पितरों को तिलाञ्जलि देते हैं, वे उस मण्डल को प्राप्त नहीं कर सकते। देव और असुर कर्मकाण्ड के ही उपासक हैं। देवता सद्विद्योपासक वैष्णव ही हैं, उनमें जो गुणातीत हैं, वे वृन्दावनेश्वरी की उपासना करते हैं। रसिकानन्द के साथ उनकी उपासना करते हैं। अति गुणमग्न रात-दिन सुरतानन्द का अनुभव करने में लगे रहते हैं। रति कला कौतुकों से संभोग करते हैं। भक्तों के आग्रह से भगवान् रसिकानन्द अनुग्रह करते हैं। तब वे मण्डल को जान पाते हैं॥ ९६॥

ये व्रजमण्डलं सेवन्ते ते मण्डलं जानन्तोऽन्यासक्तिं विना मण्डलासक्तिं कुर्वन्तः सदा सर्वलोकरसलीलायामासक्ता भवन्ति। ये मनोरथशतैः रात्रौ दिवा तल्लीलाः ग्रश्नन्ति ते तन्मण्डले भावापन्ना भूत्वा प्रतिष्ठितचित्ता भवन्ति। तन्मण्डलं श्रुत्वानन्दमासीदन्ति॥ ९७॥

जो भक्त ब्रजमण्डल की सेवा करते हैं, वे मण्डल के महत्त्व को जानते हुए अन्य किसी आसक्ति से रहित, मण्डल में आसक्त होते हैं, वे ही रासलीला में आसक्त होते हैं। जो सैकड़ों मनोरथों से रात-दिन उस लीला को ही गूँथते रहते हैं, वे भावापन्न होकर स्थिर चित्त हो जाते हैं। उस मण्डल की बात सुनकर भी आनन्द प्राप्त करते हैं॥ ९७॥

सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदं नारायणं तदा। रमारमण वैकुण्ठे यो वै क्रीडयित्वात्मभावो भवतितरामतिप्रीत्या नारायणोऽयं वदत्यभीष्टमनन्तरम्। अन्त्ये व्रजमण्डले पञ्चयोजनायतं मण्डलमस्ति। अधितन्मण्डलमासेदिवान् रुचिररतिमातनोति। यत्र शतशो गृहाणि हाटकमणिमयानि सहस्रपङ्क्तयोऽतितरां श्रेणयो विराजमानाः भवन्ति। येषु मन्दिरेषु सप्तभूमिष्वतितरामभ्येत्य मनुष्या रतिरसमग्नाः भावापन्ना भवन्ति। मणिभूमिष्वतितरामास्ते पुरुषः। तत्र गोपानां गृहाणि पङ्क्तिशो विराजमानानि भवन्ति। गोपानां गृहे गृहे अष्टमहासिद्धयो राजमानाः सन्ति। तेषां गृहे गृहे कल्पद्रुमा राजमाना एव भवन्ति। तेषां गृहाश्रमः केवलं क्रीडार्थमेव भवति। तेषामात्मसुखार्थमेव न भवति। कदाचन तेषामतिरसक्रीडा। अतिरसमग्ना हि संसिद्धा एवेति ते गोपाः गायन्ति रसिकानन्दस्य यशः॥ ९८॥

लक्ष्मी ने फिर नारायण से पूछा— हे रमारमण! वैकुण्ठ में क्रीड़ा करके जो आत्मभावस्थ होता है, उससे नारायण अति प्रसन्न होते हैं। नारायण बोले-यह ब्रजमण्डल अन्तिम प्राप्य है, जो पाँच योजन विस्तृत है। जहाँ सैकड़ों सुवर्ण-गृह, हजार पंक्तियाँ एवं उससे अधिक श्रेणियाँ शोभायमान हैं। जिन मंदिरों में सात भूमिकाओं को पार कर मनुष्य रतिरस में मग्न होते हैं। मणिभूमि में बहुत मन लगता है, जहाँ गोपों के घर पंक्तियों में सुशोभित हैं। गोपों के घर आठों महासिद्धियाँ विराजित रहती हैं। उनके घर-घर कल्पवृक्ष शोभित हैं। उनका गृहस्थाश्रम मात्र क्रीड़ा के लिए है। उनके आत्मसुख के लिए नहीं। कभी-कभी रस क्रीड़ा में अति रसमग्न हुए संसिद्ध वे गोप रसिकानन्द का यशगान करते हैं॥ ९८॥

व्रजेश्वर्या सह सङ्क्रीडमानो मानेन रसिकानन्दो गवां यूथान्यनेकशो हरितपीतश्वेतशुभ्रधूम्राताम्राणि विराजमानान्यनुयाति। कपिलाकज्जलिकाशुभ्राशुभ्राभ्राजमानानि यूथान्यनेकशो राजन्ते। यूथेषु प्रतिपङ्क्ति घटोध्नीः शतशो राजमानाः सा व्रजेश्वरी प्रतिक्षणमभ्येति। गाः कृपादृष्ट्यासेदिवान् संपोष्यमाणो भवति। सिद्धाभं पञ्चयोजनायतं गवाममृतमयं मण्डलम्। गवां गणा गोपैः सह सङ्क्रीडिताः भवन्ति। तत्र दुग्धसिन्धुरास्ते। वत्सवत्सतरीसहिता महोक्षाः सङ्क्रीडमानाः भवन्ति। तत्र मलमूत्ररहिता गावोऽमृतरसं संभुञ्जाना भवन्ति। तत्र तत्र ता गावः कुञ्जे निकुञ्जे क्रीडमाना भवन्ति। अतिरतिमग्ना गावः क्रीडापरा भवन्ति। नन्दगृहात्परितो गवां गणाः कोटिशः शोभमानाः भवन्ति॥ ९९॥

व्रजेश्वरी के साथ क्रीड़ा करते रसिकानन्द कभी सफेद, हरी, पीली, धूसर, लाल रंग की गौओं के समूह के पीछे-पीछे चलते हैं। कपिला, कजली, सफेद, काली अनेक यूथों में सुशोभित हैं। यूथों में प्रतिपंक्ति बड़े ऐन वाली सैकड़ों गौओं के पीछे ब्रजेश्वरी चलती हैं। गौएँ कृपादृष्टि प्राप्त कर निहाल हो जाती हैं। सिद्धआभामय पाँच योजन विस्तृत गायों का अमृतमय मण्डल है। गायों के समूह गोपों के साथ खेलते हैं। गायें बड़ी प्रसन्नता से खेल में लगती हैं। दूध का तो मानो वहाँ समुद्र ही है। बछड़े-बछिया साँड़ भी खूब क्रीड़ा करते हैं। गौएँ मल-मूत्र न करके अमृत रस का ही विसर्जन करती हैं। वे गौएँ प्रत्येक कुञ्ज-निकुञ्ज में क्रीड़ा करती रहती हैं। अत्यन्त रतिमग्न गौएँ क्रीड़ापरायणा हैं। नन्द के घर के चतुर्दिक् करोड़ों गौएँ शोभायमान हैं॥ ९९॥

ताः सर्वा गोप्यो दधिमथनक्रियापरा रसिकानन्दस्य व्रजेश्वर्या सह क्रीडां तां तां लीलां गायमाना भवन्ति। सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम्। कामदुघया किं तप आचरितम्? अतिरतिप्रीतिः कथमभूत्? यासामेव दुग्धदधिनवनीतरसा घृतरसास्तया निकुञ्जदेव्योपसेव्यमाना वृषभानुगृहे प्रकटिता भवन्ति। निकुञ्जदेव्या सह तस्मिन् गृहे पुरुषो ह वै सङ्क्रीडामातनोत्। तस्मिन् गृहे गवां गणाः शतशो राजमाना भवन्ति। ताः किमाचरितवत्यः किं कृतवत्यः कामापेदिरे रतिप्रीतिं कथमासत? किं शृण्वन्त्य आपेदिरे?॥ १००॥

(वहाँ) वे सारी गोपियाँ दधिमन्थन क्रिया में लगी रसिकानन्द की ब्रजेश्वरी के साथ उन-उन क्रीड़ाओं का बखान करती रहती हैं। लक्ष्मी ने पुनः पूछा- कामधेनु ने क्या तप किया? उसकी अतिरति- प्रीति क्योंकर हुई? जिसके कारण दूध, दही, मक्खन, घृत आदि रस वृषभानु के घर प्रकट होकर निकुञ्ज देवी की सेवा में प्रस्तुत हुए निकुञ्ज देवी के साथ उस घर में पुरुष (रसिकानन्द) ने क्रीड़ा की। वृषभानु के घर सैकड़ों-हजारों गौओं ने क्या आचरण किये, क्या सुना, जो निकुञ्ज देवी की कृपापात्र हुईं?॥ १००॥

स होवाच नारायणोऽयम्। गवां भेदौ द्वावेव भवतः। संसिद्धाः साधनसिद्धाश्च। या गावो व्रजमण्डले तिष्ठन्ति ताः संसिद्धाः भवन्ति। एकस्मिन्नवसरेऽहं तां व्रजेश्वरीं रसिकानन्देन सह संवलितां तस्मिन् व्रजमण्डले मनसासेदिवान्। कामदुघा या तप आतनोत् तस्मिन्नवसरे वैकुण्ठे आगता। कामदुघा मां निरन्तरं ध्यानावस्थायां रममाणं वीक्ष्य विचारितवती। अहो नारायणोऽयं सदा लक्ष्मीकान्तोऽपि प्रतिकलं कस्य ध्यानापन्नो भवतितराम्। पश्चात् यं नारायणो देव्या सह ध्यायति स्म। यस्यावतारकलाः कोविदाः सर्वे ध्यात्वा उपजीवन्ति। यद्येवंविधो नारायणः सर्वसुखसंपत्तिपूर्णानन्दः कस्य ध्यानमापन्न आसेदिवानिति। तथैवेत्यस्या मनोभिलाषं ज्ञात्वाहमुवाचेदम्। अहो कामदुघे तव मनसि किमागतमिति॥ १०१॥

नारायण ने कहा- गौओं के दो भेद हैं- संसिद्धा-साधन सिद्धा। जो गायें ब्रजमण्डल में ही रहती हैं, वे संसिद्धा हैं। एक बार मैंने उन ब्रजेश्वरी का रसिकानन्द के साथ मन में ध्यान किया। कामधेनु ने जो तप किया था, उसी अवसर पर वहाँ वैकुण्ठ में आई। मुझे ध्यानावस्था में देख विचार करने लगी। अरे! ये नारायण हैं, लक्ष्मीकान्त हैं, फिर प्रतिपल किसका ध्यान देवी सहित करते हैं? जिनके अवतार अंशों को भी विद्वान् लोग इन्हीं की भाँति पूजते हैं। सब सुख सम्पत्ति पूर्ण नारायण फिर किसके ध्यान में मग्न हैं। ऐसा उसका मनोऽभिलाष

जानकर मैं बोला- कामदुघे क्या सोचती हो?॥ १०१॥

[यही भेद पूर्व में सखियों के भी बताये गये हैं। जिनकी वृत्तियाँ व्रज क्षेत्र के अनुकूल हो गई हैं, वे वहाँ रहने वाली आत्माएँ संसिद्धा कही गई हैं। जिनकी वृत्तियाँ किन्हीं विशेष प्रकरणों-साधनों में ही उस अनुरूप बन पाती हैं, वे साधन-सिद्धा कही जाती हैं।]

सोवाचेदम्। नमोऽनन्ताय महते कृष्णायाकुण्ठमेधसे। योगेशाय च योगाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये॥ त्वयानुगृहीता भक्ता आत्मानं तन्मयं मत्वा आत्मभावा भवन्ति। गवां यूथानि शतशो विराजमानान्यमृतरससंज्ञिता गावो भवन्ति। तस्मिन्नवसरे वनेषु तृणसंवलिता निकुञ्जा अतिरसपूर्णा जलाशयाः शतशः शोभमाना आसते। तस्मिन् स्थाने संभाषमाणान् तृणजलौषधयः संभाषमाणा भवन्ति। अतिपुष्टा गावो गोष्ठ्या आसेदुष्यः सुखसंभोज्यदुग्धरसघृतरसदधिर-सनवनीतरसाद्यान् भावापन्ना दाशुष्यो भवन्ति। शुभ्रश्वेतकर्बुरिताः गावो रससंवलिता गोष्ठान्यनेकशो राजमानान्यभियन्ति॥ १०२॥

वह बोली- **नमो अनन्ताय महते कृष्णायाकुण्ठमेधसे।**
योगेशाय च योगाय ब्रह्मणेऽनन्त शक्तये॥

तुमसे अनुगृहीत भक्त अपने को तन्मय मानकर आत्मभाव वाले होते हैं। गायों के सैकड़ों समूह हैं। गायें अमृतरसा संज्ञा वाली होती हैं। उस समय वनों में तृणों (घासों) से भरपूर निकुञ्ज, रसपूर्ण जलाशय भी सैकड़ों थे। वहाँ तृण, औषधियाँ परस्पर वार्तालाप करती थीं। अतिपुष्ट गायें गोष्ठों में बैठी सुख से घासादि खातीं तथा भाव सहित दुग्ध, घृत, दधि नवनीत रसों को प्रदान करने की इच्छुक रहती थीं। शुभ्र-श्वेत, कबरी गौएँ रस से पूर्ण अनेक गोष्ठों में बैठी जुगाली करती थीं॥ १०२॥

ता गोप्यो दधिमन्थनघोषेण सह संगायमाना भवन्ति। तासां शृङ्गारसुखमापद्यमानोऽभवत्। गोलोकादागता कामदुघा नारायणमुखाच्छ्रुतमात्रे गोवर्धनाद्रौ शिरसि मन्त्रं जप्त्वा तद्भावेनाभवत्। सा व्रजेश्वरी रसिकानन्देन प्रत्यक्षभावमातेने। सा प्रसन्ना सती तां लीलां दत्तवतीति॥ १०३॥

वे गोपियाँ दधि मन्थन के स्वर के साथ गाती थीं। उनका शृंगार सुख भी अपूर्व था। गोलोक से आई कामदुघा नारायणमुख से गोवर्धन पर्वत की महिमा सुनकर मन्त्रजप कर भावाविष्ट हो गई। वह (कामधेनु) ब्रजेश्वरी रसिकानन्द को प्रत्यक्ष देखकर अत्यन्त भावाविष्ट हुई। ब्रजेश्वरी ने प्रसन्न होकर उसे लीला दी॥ १०३॥

नारायणः प्रत्युत्तरमुवाच। अहो प्रिये अस्य लोकस्य कथा श्रूयमाणा सर्वेषां निविशमाना हृदि गतं कामक्रोधादिकं नाशयति। अतिरतिभक्तिरापद्यते रसिकानन्दरतिरापद्यते। वर्णाश्रमस्वधर्मा बाधका न भवन्ति। कामदुघा गोवर्धनाद्रिशिरसि गोविन्दपुष्करिण्यां तपश्चकार। महामन्त्रममुं जजाप। शृणु तन्मन्त्रध्यानम्। ॐ नमः श्रीराधारसिकानन्दाभ्याम्। मूलमन्त्रोऽयम्। द्वादशाक्षरसंवलितमोङ्कारबीजसंवलितं यो ध्यायेत् स एव तां लीलां प्राप्नोति। अत एव कृतं पुष्करिण्यां गोविन्दकुण्डमिति नाम्ना प्रसिद्धं कुञ्जम्। पृथिव्यां तस्मिन्नद्रौ सा

वनफलतृणौषधीर्भक्षयामास। सा कामदुघा तपः आचरन्ती तस्मिन्नद्रौ परिचक्राम। एवं शतं समास्तप आचरितवती॥ १०४॥

नारायण कहते हैं- अहो प्रिये! इस लोक की कथा सुनी हुई सबके हृदय में प्रवेश पाकर काम, क्रोध इत्यादि का नाश करती हैं [**दिव्य रस का बोध मिलने पर रस की अन्य कामनाएँ शान्त हो जाती हैं। कामना की पूर्ति न होने पर क्रोध उत्पन्न होता है। काम क्षय होने पर क्रोध की उत्पत्ति का आधार ही नष्ट हो जाता है।**] अतिरति भक्ति प्राप्त होती है। रसिकानन्द में रति बढ़ती है। वर्णाश्रम धर्म इसमें बाधक नहीं होते। (कामदुघा कामधेनु) ने भी गोवर्धन पर्वत पर गोविन्द पुष्करिणी के तट पर तप किया। महामन्त्र को जपा। उस मन्त्र का ध्यान सुनो। ॐ नमः श्री राधारसिकानन्दाभ्याम्॥ यह मूल मन्त्र है। द्वादश अक्षर वाला यह मन्त्र ओंकार बीज से सम्पुटित करके जो भी जपेगा, वही उस लीला को प्राप्त करेगा। इसलिए कामधेनु ने पुष्करिणी के तट पर गोविन्द कुण्ड नाम से प्रसिद्ध कुञ्ज बनाया। पृथिवी पर स्थित उस पर्वत पर घूमकर वहाँ वन फल तृणोषधियाँ खाती थी। वह तप करती हुई उस पर्वत पर भ्रमण करती थी। इस प्रकार सैकड़ों वर्ष बीत गये॥ १०४॥

यत्र गोवर्धनाद्रौ रत्नधातुमयलतौषधयः सदा प्रफुल्लिताः फलिता रससंवलिताः अतिशोभायमाना भवन्ति। यत्र गह्वराणि रत्नहाटकमयान्यनेकशः शोभायमानानि क्रीडास्थानानि भवन्ति। अनेकरङ्गविचित्रा ओषधयो नानारङ्गैः रचिता एव यत्र फलपुष्पैर्भासिता भवन्ति। यत्र सा व्रजेश्वरी रसिकानन्देन सह सङ्क्रीडामतितरामातनोति। यत्र सखीनां बृन्दानि विहारपराणि। तत्र तस्यां पुष्करिण्यां सा व्रजेश्वरी स्वस्वरूपं दर्शयामास॥ १०५॥

जिस गोवर्धन पर रत्नधातुमयी लतौषधियाँ सदा प्रफुल्लित और रससिक्त रहकर शोभायमान थीं। जहाँ रत्नसुवर्णमयी गुफाएँ क्रीड़ा स्थानों के रूप में शोभायमान थीं। जहाँ फल-पुष्पों से लदी प्रतीत होती अनेक रङ्गों से रँगी विचित्र ओषधियाँ हैं। जहाँ रसिकानन्द के साथ ब्रजेश्वरी बहुत क्रीड़ा करती हैं। जहाँ सखियों के समूह विहार-परायण हैं। वहाँ उस पुष्करिणी पर ब्रजेश्वरी स्वस्वरूप का दर्शन कराती थीं॥ १०५॥

रसिकानन्दरूपं रसरूपमेव साक्षादेवंविधमतिगुणसंवलितमेवास्ते। नूतनो नवजायया सह क्रीडनं दर्शयामास। सा कामदुघा स्तोत्रं चकार। नमो रसात्मने। नमो ज्ञानात्मने। नमः सदावनविहारिणे। नमः स्वभक्तकर्मस्वभावदुःखनाशहेतवे॥ १०६॥

इस प्रकार रसिकानन्द का रूप तो अतिगुण संवलित साक्षात्सरूप ही है। नव ने नवजाया के साथ क्रीड़ा दिखलाई। तब वह कामधेनु स्तुति करने लगी। आप रसात्मा हैं, आप ज्ञानात्मा हैं, आपको प्रणाम है। सदा वनविहारी को नमन। स्वभक्त के कर्मस्वभावजन्य दुःखनाश के हेतु आपको नमन है॥ १०६॥

नमः प्राकट्यदेहरूपिणे। नमो यमुनाजलकल्लोलविहारात्मने। नमः कामकेलिकौतुकात्मने। नमः कामप्रियाय। नमः कामात्मने। नमः कामसंवलितदेहदात्रे। नम आदिकर्त्रे । नम आदिहेतु-रतिदात्रे॥ १०७॥

शरीर रूप में प्रकट होने वाले को नमन। कल-कल करते यमुनाजल में विहार करने वाले को नमन। क्रीड़ा-कल्लोल का कौतुक करने वाले को नमन। कामप्रिय को नमन। काम (सौन्दर्य के देवता) स्वरूपात्म को नमन। काम (सौंदर्य) युक्त शरीर प्रदान करने वाले को नमन। आदिकर्त्ता को नमन। रति (आनन्द) के मूलकारण को नमन॥ १०७॥

नमः श्रीराधाध्यानापन्नदेहात्मने। नमो रसात्मने। नमो रसलंपटपरिपूर्णदेहदातृरूपिणे। नमोऽनिर्वचनविहारिणे। नमो रतिदात्रे। नमो रतिकेलिकलाकौतुकात्मने। नमो भक्तिरतिदात्रे। नमो ज्ञाननिर्वाणदात्रे॥ १०८॥

श्रीराधा के ध्यान में तल्लीन रहने वाले को नमन। रसात्मक (आनन्दरूप) को नमन। रस (आनन्द) लोभ से परिपूर्ण शरीरदाता को नमन। सर्वत्र (अनिर्वचन) विहार करने वाले को नमन। रति (आनन्द) प्रदाता को नमन। रति (आनन्द) क्रीड़ा की कला के कौतुक रूप को नमन। भक्ति का आनन्द प्रदान करने वाले को नमन। ज्ञान और निर्वाण (मोक्ष) प्रदाता को नमन॥ १०८॥

नम आनन्दस्वरूपिणे। नमस्तद्द्रष्ट्रे। नमस्तस्य हेतवे। नमः कलरासज्ञानविहारात्मने। नमोऽगुणाय नमः सृष्टिरूपगुणदायिने। नमो गुणकेलिसुरता-नन्दसुखभोक्त्रे। नमो भोगदायिने। नमो भोगात्मने॥ १०९॥

आनन्दस्वरूप वाले को नमन। द्रष्टा रूप आपको नमन। सबके मूल कारण को नमन। सुन्दर रासक्रीड़ा के ज्ञाता को नमन। निर्गुण होते हुए भी सृष्टि रचना रूप गुण वाले को नमन। (तीनों) गुणों की क्रीड़ा रस के आनन्द सुख के भोक्ता रूप को नमन। भोग (सांसारिक सुख) प्रदान करने वाले को नमन। भोग (आनन्द) रूपात्मक को नमन॥ १०९॥

नम आत्मरूपिणे। नमः सुरतानन्दरूपरसदात्रे। नमोऽनन्तचरित्रदायिने। नमः क्रमलीलात्मने। नमः श्रीराधाकृष्णरूपिणे। नमः श्रीकृष्णराधारूपिणे। नमोऽनेकविहारदेहधारिणे। नमः शतसहस्रकोटिशो लक्षकोटिविहाररूपिणे। नमो ललिताप्रतिक्षणसुखदात्रे। नमः कुञ्जान्तरविशाखाद्यनेकसखीविहारात्मने॥ ११०॥

आत्मरूप (सबकी आत्मारूप) को नमन। सुरत (आत्मा-परमात्मा के मिलन रूप) आनन्द रूप रस दाता को नमन। अनन्त चरित्र निर्माण कर्त्ता को नमन। क्रम लीला (विभिन्न रूपों में क्रियाशील) रूपात्मक को नमन। श्रीराधाकृष्ण रूपात्मक को नमन। श्री कृष्ण-राधारूपात्मक को नमन। अनेक रूपों में विहार करने वाले को नमन। हजारों -लाखों (असंख्यों) रूपों में विहार करने वाले को नमन। ललिता (आत्मचेतना के एकरूप) को प्रतिक्षण सुख देने वाले को नमन। कुंजों के अन्तराल में विशाखा आदि (आत्मचेतनाओं) के साथ विहार करने वाले को नमन॥ ११०॥

नम आद्यनादिरूपसंसिद्धभक्तिरूपिणे। नमो दानधर्मदात्रे। नमः सुखरूपिणे। नमो व्रजाविर्भावभाविताय। नमोऽत्यन्तदानरूपिणे। नमः सदा बृन्दावनश्रेणिविहारिणे। नम आदिद्वादशवनविहारात्मने।।नमः पृथिव्यां यानि रूपाणि सुन्दराण्यनेकशस्तत्तवविजानीयात्। इति लक्ष्मीलज्जाधृतिकान्त्यनेकाकाराय गुणरतिदायिने नमो नमः इति स्तुत्वा स्थितां कामदुघां तद्दर्शनमहोत्सवाकुलां रसिकानन्दस्तया निकुञ्जदेव्या सहोवाचेदम्। अहो का त्वं स्तुतिं ब्रुवाणासि। मम भक्तिरिह लोके दुर्लभा। दुर्लभतरं वरं वरय। तव मनसि मम दर्शनादधिकं न किञ्चिदवशिष्यते। तव स्तवेन यो नित्यं स्तौति समाहितः सदाभीष्टं प्राप्नोति॥ १११॥

आदि-अनादि अनेक रूपों में विद्यमान भक्ति रूपात्मक को नमन। दान-धर्म आदि (गुण) प्रदान करने वाले को नमन। सुख रूपात्मक को नमन। व्रजक्षेत्र के (प्राणियों) लोगों को भावपूरित करने वाले को नमन। अत्यन्त दानरूप (सर्वश्रेष्ठ दान-परम आनन्द रूप) को नमन। वृन्दावन में सदैव विहार करने वाले को नमन। आदि वन आदि द्वादश वनों में विहार करने वाले को नमन। पृथिवी पर जितने रूपों में सुन्दरता दिखाई देती है, उनके मूल रूप को नमन। इस प्रकार लक्ष्मी,लज्जा,धृति, कान्ति आदि अनेक आकार-रूप वाले तथा गुण एवं आनन्द प्रदान करने वाले (श्री कृष्ण तत्त्व को) बारम्बार नमन है। इत्यादि स्तुति करके खड़ी कामधेनु को, जो उनके दर्शन महोत्सव को आकुल थी, रसिकानन्द निकुञ्ज देवी से यह बोले- अरे! तुम कौन हो, जो ऐसी स्तुति कर रही हो। मेरी भक्ति इहलोक में दुर्लभ है। तुम दुर्लभतर वर माँगो, तुम्हारे मन में मेरे दर्शनों के अतिरिक्त कोई कामना नहीं है। तुम्हारे इस स्तोत्र से जो एकाग्रतापूर्वक नित्य स्तुति करेगा, वह अभीष्ट को प्राप्त करेगा॥ १११॥

पुनरुवाचेदं कामुदघा यदि देयो वरो नाथ तव लोके वसाम्यहम्। गोरसदधिरसदुग्धरसनवनीतरसघृतरसफाण्टरसैरहं सेवे। रसिकानन्द उवाच। अनेकशः स्वाविर्भावेन लोके मम वल्लभा त्वं सदा वस। अहं त्वां रक्षिष्यामि। वनविहारे यथेच्छं विहर। ये अनन्याश्रया मम भक्तास्तेषां न वर्णाश्रमधर्मा आन्तरालिका जायन्ते। तेषां न कर्माणि आन्तरालिकानि जायन्ते। तेषां साधनमान्तरालिकं न जायते। व्रतानि यज्ञाश्छन्दांसि योगक्षेमफलानि चानन्यानि धर्मसाधनानि यत्किञ्चिदपि कृत्यं सर्वमान्तरालिकं न जायते। ये ब्राह्मणाः कर्मज्ञानसाधकास्तेषां ज्योतिषागमकर्मसाध-कास्तेषां च सङ्गो हठात् त्याज्य एवेति वचनमस्ति॥ ११२॥

तब कामधेनु बोलीं- यदि आप वर ही देना चाहते हैं, तो यह दीजिए कि मैं आपके लोक में रहूँ। अपने घी, दूध, दही, नवनीत, फाण्ट (दूध का फटा) आदि रसों से आपकी सेवा करूँ। रसिकानन्द बोले-तुम अनेक होकर, मेरी प्यारी होकर यहाँ रहो। मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा। यथेच्छाविहार करो। मेरे अनन्य भक्तों के वर्णाश्रम धर्म बाधक नहीं हैं। न उनके कर्म ही इसमें बाधक होते हैं। उनका साधन भी इसमें बाधक नहीं है। व्रत, यज्ञ, छन्द (वेद), योगक्षेम फल आदि अन्य धर्मसाधन अथवा कोई भी कृत्य इसमें बाधक नहीं होता, जो ब्राह्मण कर्म-ज्ञान के साधक हैं, उनका ज्योतिष् शास्त्र कर्मों का साधक है, अतः उनका सङ्ग हठपूर्वक त्यागने योग्य ही है, ऐसा वचन (शास्त्रवचन) है॥ ११२॥

दशयोजनं व्रजपरिणाहः। तत्र पशुपक्षिणो मृगा गावोऽन्ये ये वृक्षाः अनन्यपरां आसते। अतिरसमग्रा गायन्ति। तस्मिन् मण्डले देवाः दर्शनकाङ्क्षा एव भवन्ति। भक्तक्रियामापद्यमाना भक्तास्तन्मण्डलं वन विहारस्थानं ये व्रजवासमिच्छन्ति। ते एव सर्वधर्मातिरिक्ता भवन्ति। कर्मातिरिक्ता भवन्ति। सङ्गातिरिक्ता भवन्ति। व्रजमण्डलोपासकाः भवन्ति अहो लक्ष्मि सा सृष्टिस्तु सृष्ट्यतिरिक्तैवास्ते॥ ११३॥

ब्रजक्षेत्र दस योजन की परिधि में है। वहाँ पशु-पक्षिगण, मृग तथा अन्य वृक्ष आदि भी अनन्यपरायण हैं। अति रसमग्र होकर गाते हैं। उस मण्डल में देवता भी दर्शनाभिलाषी रहते हैं। भक्ति को प्राप्त हुए जो वनविहार- स्थल में ब्रजवास के इच्छुक होते हैं, वे सब धर्मों से अलग हो जाते हैं। कर्मों से अलग हो जाते हैं। सङ्ग से पृथक् हो जाते हैं। वे तो ब्रजमण्डल के उपासक हैं। अहो लक्ष्मि! वह सृष्टि तो इस सृष्टि से अलग ही है॥ ११३॥

तत्सृष्टेरुत्पद्यमानो रसमार्गमाश्रितो भवति। मनः सोत्साहं यद्येतस्मिन्मण्डले तदङ्गीकारं प्राप्तोऽमनोमोहोऽतितरां प्रतिसंयोक्ष्यमाणस्तं रसमनुभवन् भावापन्न आस्ते। यदा यदा देवाश्च पितरश्च कालश्च व्रजातिसाधने यतन्ते तावत्सहस्रशाखाध्यायी भवति। सर्वयज्ञकर्मकरोऽपि तन्मण्डलं स्वप्नेऽपि न जानाति। ज्ञानिनो ये ब्रह्मबोधका योगिनस्तपस्विनस्ते स्वप्नेऽपि तन्मण्डलं न जानन्ति॥ ११४॥

उस सृष्टि में पैदा हुआ, तो रस मार्ग का अनुयायी होता है। यदि मन में उत्साह है, तभी इस मण्डल को स्वीकार करता है। फिर मन से मोह को दूर कर रस का अनुभव करता हुआ भावापन्न हो जाता है। जब-जब देव, पितर, काल, ब्रजमण्डल के साधन में जो अभ्यास करते हैं, उतने से ही वेद की सहस्रों शाखाओं के अध्ययन का फल मिलता है। सर्व यज्ञ और सर्वकर्म करने वाला भी उस मण्डल को स्वप्न में भी नहीं जानता। ज्ञानी अथवा ब्रह्मज्ञाता योगी तपस्वी लोग भी स्वप्न में इस मण्डल को नहीं जानते॥ ११४॥

सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम्। कैश्चिह्नैस्तान् भक्तान् जानीमहे। स होवाच। ते सदा प्रेममार्गिणो भवन्त्येव। न निर्विण्णा नातिसक्ता गृहादौ विषयादौ नातिसक्ता यदृच्छया प्राप्तवस्तुमात्रमुपसेवमाना एव भवन्ति। न निर्वेदो नाश्रमो न कर्म यदृच्छाकथासेवा भक्तानां प्रीतिरनन्या भक्तिर्भवति। एवंविधसंसारातिरिक्तः स्वभावसंसिद्धो भवति। ततस्तां लीलां प्राप्तवन्तो भवन्ति। एवमुपासकास्तस्मिन्मण्डले गत्वातितरां संयोक्ष्यमाणाः आपद्यन्ते॥ ११५॥

लक्ष्मी फिर पूछने लगीं-- किन चिह्नों (लक्षणों) से उन भक्तों को जाना जाए। नारायण बोले-वे सदा प्रेममार्गी ही होते हैं। वे न दुःखी होते हैं, न गृहादि विषयों में आसक्त होते हैं। स्वतः प्राप्त वस्तु मात्र का ही सेवन करते हैं। न निर्वेद , न आश्रम, न कर्म। यदृच्छा कथा सेवा, भक्तों की सेवा व उनमें प्रीति एवं अनन्य भक्ति सम्पन्न होते हैं। इस प्रकार संसार से विरक्त हुआ स्वभाव संसिद्ध हो जाता है। तब फिर उस लीला को प्राप्त करते हैं। ऐसे उपासक उस मण्डल में जाकर अभ्यास करते प्राप्त होंगे॥ ११५॥

सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम्। रसमार्गीया भक्तास्तन्मण्डलं प्राप्तवन्तः। तेषामेका दशा। तेषां का गतिः? स होवाच। तन्मण्डलांद्भवाः भक्ता आत्मरतिगुणा रतिगुणाढ्या अनन्यमार्गाढ्यास्तां लीलां प्राप्तवन्तस्तन्नामाङ्कितवर्ष्माणस्तुलसीकाष्ठाङ्कितदेहा आत्मनाम्ना सुखालङ्कृतशरीरा रासादिली-लाध्यानावस्थायामापद्यमाना युज्यन्ते। कुञ्जे निकुञ्जे श्रेण्यां श्रेण्यां रतियोग्यताभावमापद्यमाना भवन्ति। तामेव कथां प्रतिक्षणं नूतनामासेवमाना आसते। श्वपचो वा ब्राह्मणो वा वर्णान्तरो वा यो भक्तानां सह सङ्गमापद्यते स एव तां लीलां प्राप्तो भवति। रतिमासेदिवान् यदि तदुच्छिष्टे कदाचिदन्नबुद्धिस्तेषामस्ति। तदुच्छिष्टे जले सदा तीर्थबुद्धिः भवति। तत्र तत्कथायां साक्षाद्बुद्धिर्भवति॥ ११६॥

लक्ष्मी ने पुनः पूछा– रसमार्गीय भक्त उस मण्डल को प्राप्त करते हैं। उनकी क्या दशा और क्या गति होती है ? भगवान् बोले-- उस मण्डल में उत्पन्न भक्त आत्मरति गुणवाले, रति गुण से भरपूर, अनन्य भाव वाले, उस लीला को प्राप्त हुए, उस नाम का कवच धारण किये, तुलसी काष्ठ से अंकित देह वाले, आत्मसुख से सजे रासादि लीला का ध्यान करते हुए दिखाई पड़ेंगे। कुञ्ज-कुञ्ज, पंक्ति-पंक्ति में रति योग्यता भाव को प्राप्त भक्त मिलेंगे। वे प्रतिक्षण उसी कथा को नये-नये रूप में सेवन करते हैं। चाण्डाल हो, चाहे ब्राह्मण हो अथवा किसी भी वर्ण का हो, जो भी भक्तों का सङ्ग करता है, वही उस लीला को प्राप्त करता है। उन भक्तों के उच्छिष्ट में भी अन्न बुद्धि होती है, उच्छिष्ट जल में भी तीर्थबुद्धि तथा उस कथा में साक्षात् ब्रह्मबुद्धि होती है॥ ११६॥

ये मण्डलमुपासमानास्तेषां को धर्मः? किं कर्मः? को रसो भवतितराम्? ये तन्मण्डलमुपासमानाः भवन्ति तेषां किं तीर्थव्रतयज्ञधर्माः सन्ति? किं बाध्यमानं भवेत्? तेषां मुख्यं मनोभवति। ये गुणाढ्या रसरूपिण आनन्दरसनिमग्नास्ते गुणतद्भागिनो भवन्ति। तन्मात्रप्राप्तमार्गोऽयं लोकः सदाण्डजो भवेत्। आत्मानन्दे मग्नासु ये रात्रौ दिवा व्रजध्यानापन्ना भवन्ति सदा तेषां नित्यं निकुञ्जदेव्या अनुग्रहो भवति॥ ११७॥

जो मण्डल की उपासना करते हैं, उनका भला अन्य क्या धर्म है ? क्या कर्म है ? कौन रस इससे बढ़कर है। उस मण्डल के उपासकों के तीर्थ, व्रत, धर्म, यज्ञ क्या होंगे ? क्या बाधा होगी ? उनका मुख्य मन होता है। जो गुणों से पूर्ण, रसस्वरूप, आनन्दरस में निमग्न हो गये हैं, वे उस लीला के भागीदार हैं। ऐसे लोग मानो उस आनन्दरस में निमग्न अण्ड के मध्य सदा विद्यमान रहते हैं। आत्मानन्द में डूबे जो रातदिन ब्रज ध्यान में मस्त रहते हैं, वे सदा उस निकुञ्ज देवी के कृपापात्र रहते हैं॥ ११७॥

ये महालीलायामत्यासक्तास्तेषां कदाचित्कालधर्मभयं न भवत्येवेति सद्यः कृतार्थतोत्पद्यमाना भवति। अवर्णोऽपि सवर्णतां प्राप्नोति। ये न भवन्ति ते दुष्टगतयो भवन्ति। ये व्रजमण्डलोपासकास्ते व्रजे निवसन्ति। ये रासमण्डलोपासकास्ते रासलीलां प्राप्नुवन्ति। अनन्तसुखं संभुञ्जते। या यशोदाद्या लीलामुपासमाना भजने प्रपद्यमाना भजनानन्दे संयोक्ष्माणा भवन्ति। ये

नन्दादयोऽत्यन्तसखीभावमुपासमाना अत्यन्तसङ्गं प्राप्तास्ते रमणानन्दसखीसमूहं प्राप्ताः। ते तां लीलां प्राप्नुवन्ति ये निकुञ्जदेवीं ध्यायन्ति रमणानन्दमुपासते॥ ११८॥

जो भक्त महालीला में अति आसक्त हैं, उन्हें कभी काल का, धर्म का, भय नहीं होता; क्योंकि उन्हें कृतार्थता प्राप्त हो जाती है। अवर्ण भी सवर्णता प्राप्त कर लेता है। जो नहीं होते, उनकी बुरी गति होती है। जो ब्रजमण्डल के उपासक हैं, वे ब्रज में ही रहते हैं। जो रासमण्डल के उपासक हैं, वे रासलीला को प्राप्त करते हैं। अनन्त सुख भोगते हैं। यशोदा आदि जो लीला की उपासना करती हैं, वे भजन को प्राप्त हुईं भजनानन्द में मस्त हो जाती हैं। जो नन्द आदि हैं, वे भी सखी भाव को प्राप्त कर अत्यन्त संग को प्राप्त हुए रमणानन्द रूप सखी समूह को प्राप्त होते हैं। वे उस लीला को प्राप्त करते हैं, जो निकुञ्ज देवी का ध्यान करते हैं, रमणानन्द की उपासना करते हैं॥ ११८॥

अत्यन्तं सुरतानन्दं प्राप्ता ये संयोक्ष्यमाणा व्रजमण्डलं मध्यस्थानं भजन्ति ते महालीलां प्राप्य संभोगसुखं संप्राप्नुवन्ति। स आह लक्ष्मीम्। श्रुतपरकाष्ठा ये सखीभावं प्राप्तवन्तस्ते गोपास्तां लीलां संप्राप्नुवन्ति। यः सर्वधर्मान्परित्यज्य तन्मण्डलोपासको भवति स एव तां लीलां प्राप्य सर्वव्रतातिरिक्तो ज्ञानातिरिक्तो विधूतविधिनिषेधकृत्याकृत्यगुणागुणभावाभावः सदा सङ्कृष्यमाणो लीलायां प्रतिपद्यमानः संयुज्यतेऽतितरां रसे॥ ११९॥

अत्यन्त सुरतानन्द को प्राप्त हुए जो ब्रजमण्डल के मध्यस्थान का ध्यान करते हैं, वे महालीला को प्राप्त हुए संभोग-सुख को प्राप्त करते हैं। भगवान् लक्ष्मी से बोले-सुनने की पराकाष्ठा को जो प्राप्त हो गये, वे ही सखीभाव को प्राप्त हुए गोप उस लीला को प्राप्त करते हैं। जो सब धर्मों का त्याग कर उस मण्डल का उपासक होता है, वही उस लीला को प्राप्त हुआ सब व्रतों से अधिक, ज्ञान से अधिक, कृत्य-अकृत्य, गुण-अगुण, भाव-अभाव सारे विधि-निषेधों से दूर सदा लीला को प्राप्त हुआ रस में डुबकी लगाता है॥ ११९॥

अहो लक्ष्मि! षड्विधेयं रासमाया कथिता। सर्वां लीलां परित्यज्य तत्स्थानं प्राप्तवन्तो भवन्ति। सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम्। कीदृग्विधं रासस्थानम्? निरन्तरं तत्स्थानस्योपासका यदुपासनामात्रास्तां लीलां प्राप्नुवन्ति तद्वर्णय॥ १२०॥

अहो लक्ष्मि! यह रास माया छः प्रकार की कही गई है। सब लीला को त्यागकर उस स्थान को प्राप्त करता है। लक्ष्मी ने पुनः पूछा-- वह रासस्थान कैसा है? निरन्तर उस स्थान के उपासक जो उपासना मात्र से उस लीला को प्रप्त करते हैं, पुनः उसका वर्णन करो॥ १२०॥

स होवाच नारायणोऽयम्। एकं सहस्रादित्यसङ्काशमतिह्लादमयम्। अहं ब्रह्मा रुद्रो देवा दिक्पाला यस्मात्समुत्पद्यमानाः यस्य प्रतापात्तस्मिन् स्थाने संसिद्धाः साधनसिद्धा अनेकशो भक्ताः। यत्र मणय आधिदैविकेन रूपेण तेजांसि ददति। यत्र संसिद्धः सूर्यः सखीरूपं विधायोपसेवते। सूक्ष्मसूक्ष्मरूपं विधाय यत्रात्मना चन्द्रः सेवमानो भवतितराम्। यत्राग्निः सखी रूपं विधायोपसेवमान आस्ते। देवास्तस्मिन् स्थाने सदा संसिद्धा एवोपसेवमाना आसते। पृथिव्यां

सूर्यचन्द्रनक्षत्राणि अन्ये ये साधनोपकारकास्ते सर्वे उपसेवमाना एवासते। अन्यास्तु यस्मात्स्थानादिमाः प्रजाः समुत्पद्यमाना भवन्ति तल्लोकं वर्णयामि॥ १२१ ॥

नारायण बोले- हजारों सूर्यों जैसा एक प्रकाशमान एवं आनन्दपूर्ण स्थान है। मैं ब्रह्मा रुद्र देवगण दिक्पाल जिससे उत्पन्न हुए हैं, जिसके प्रताप से वहाँ संसिद्ध और साधन सिद्ध अनेकों भक्त हैं। जहाँ मणियाँ आधिदैविकरूप से तेज प्रदान करती हैं। जहाँ संसिद्ध सूर्य सखीरूप बनाकर सेवा करता है। जहाँ चन्द्रमा भी सूक्ष्म-सूक्ष्मरूप से सेवा करता है। जहाँ अग्नि भी सखीरूप से सेवा करता है। देवगण वहाँ संसिद्ध ही सेवा करते हैं। पृथिवी पर जो सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र तथा अन्य जो उपकारक साधन है, वे सब सेवा करते हैं। इस स्थान से और जो प्रजा उत्पन्न होती है, उसका वर्णन करता हूँ॥ १२१ ॥

अनेकशः कोटिब्रह्माण्डकान्यतिशयाविर्भावमापद्यमानानि सन्तितराम्। तस्मिन् स्थाने मध्ये मध्ये आवरणज्योतिरास्ते। आवरणस्य मध्ये सहस्रयोजनपरिणाहवति गुणगणनाय श्रीराधाकृष्णस्य गुणगणाः सङ्गीयन्ते। प्रथमपरिणाहे गवां गणाः क्रीडापरा एव भवन्ति गोपगोपीभिः। एतानि क्रीडास्थानानि तृणजलौषधीलताफलपुष्पपत्रकोमलान्यासते। मधुघृतदुग्धदधिनवनीताद्या रसाः संसिद्धा भवन्तितराम्। यत्रान्नानि खाद्यपेयचोष्य लेह्यविविधपक्वरसानेकसंवलितानि भवन्ति। यत्र वृक्षा अमृतमधुधाराः अतितरामासेदुषां वर्षन्ति। यत्र पुष्करिण्योऽमृतपूर्णा भवन्ति। तत्रामृतं पीत्वा जरामरणगर्भोत्पत्तिविनाशा न भवन्तितराम्। अमृतोदं नाम सरो देवैरुपपीयमानं भवति। तया निकुञ्जदेव्या स्वदृष्ट्यमृतेन संपूर्यमाणं भवतितराम्। तस्मिन् स्थाने गोपगोपीगणाः पुलिननिलीनाः सदा क्रीडापराः भवन्ति॥ १२२ ॥

[यहाँ सृष्टिलीला विस्तार के विभिन्न चरणों का आलंकारिक वर्णन किया गया है]

अनेकों ब्रह्माण्ड कोटियाँ नित्य आविर्भाव को प्राप्त होती हैं। उस स्थान पर बीच-बीच में आवरण-ज्योति है। आवरण के बीच हजार योजन परिधिवत् विस्तार में श्रीराधा कृष्ण का गुणगान होता रहता है। प्रथम परिणाह (परिधि) में गायों के झुण्ड गोप-गोपियों के साथ क्रीड़ा परायण हैं। तृण, जल, ओषधि, लता, फल, पुष्प आदि कोमल वस्तुएँ क्रीड़ा के साधन हैं। मधु, घृत, दुग्ध, दधि, मक्खन आदि रस संसिद्ध हैं। जहाँ खाद्य-पेय, चोष्य, लेह्य, विविध प्रकार के रसों से पूर्ण होते हैं। जहाँ वृक्ष अमृत की मधुधारा को नीचे बैठे भक्तों पर बरसाते हैं। जहाँ अमृतभरी पुष्करिणियाँ हैं। वहाँ अमृत पीकर जरा-मरण गर्भोत्पत्ति विनाश नहीं होते। अमृतोदनाम के सरोवर का अमृत देवों के द्वारा पिया जाता है। देवी की कृपादृष्टि अमृत से संपूर्यमाण होता है। उस स्थान पर गोप गोपीगण तटों के कुञ्जों में क्रीड़ापरायण रहते हैं॥ १२२ ॥

द्वितीयपरिणाहे वाटिकाः क्रीडास्थानानि वृक्षाः पक्वफलपुष्पनम्राः पत्रैर्नम्रा धरा आसीदन्ति। क्रीडापराणां गोपीनां गणा निकुञ्जदेव्याः श्रीराधायाः स्वावेशेन क्रीडापराः सुरतानन्देन संभोक्ष्यमाणा भवन्ति। यत्र भक्तास्तत्क्रीडापरास्तद्ध्यानपरास्तद्रूपा आसते। तस्मिंस्थाने ये भक्ताः सदा रसमार्गिणस्तेषां सङ्ग आस्ते । अहो भक्तिमार्गरससंवलितोऽनुभवन् तस्व सङ्गं

रसिकानन्दस्वरूपो भवति। धर्मः स एव कर्माणि स एव विद्या स एव भवति। ये धर्मास्ते अधर्माः। ये कर्माणि तान्येवाकर्माणि॥ १२३॥

दूसरे परिणाह (परिधि) में वाटिका क्रीड़ा स्थान हैं, पके फलों से लदे-वृक्ष पुष्प-पत्रों से सुसज्जित झुके हुए धरा को छूते हैं। क्रीड़ापरायण गोपियों के समूह निकुञ्ज देवी श्रीराधाजी के स्वावेश से क्रीड़ापरायण हुए रसिकानन्द के द्वारा भोगे जाते हैं। जहाँ भक्त लोग तत्क्रीड़ापरायण, तद्ध्यानपरायण तथा तद्रूप हुए हैं। उस स्थान पर जो भी भक्त हैं, वे सदा रसमार्गी हैं, उनका सङ्ग होता है। अरे भक्ति मार्ग के रस से संवलित अनुभव करता हुआ उसका सङ्ग रसिकानन्दस्वरूप होता है। धर्म वही, कर्म वही, विद्या वही होता है। जो धर्म वाले हैं वे अधार्मिक हैं। जो कर्म हैं, वे सब अकर्म हैं॥ १२३॥

तृतीयमावरणं महाक्रीडास्थानम्। तस्मिन् स्थाने एकसप्तत्यधिककोटयो निकुञ्जाः शोभायमाना आसते। यस्मिन्नावरणमध्ये रमणस्थलानि कोटिशो राजमानानि। यस्मिन् स्थाने मणीनां वलयाः सुगन्धयुताः राजमाना भवन्ति। पद्मरागमणिलताग्रथिता नीलमणिपुष्पसंवलिता भवन्तितरां मध्ये मध्ये। विद्रुमकृता हाटककोटयो लताग्रथिता हाटकभूमिषु रमणस्थानं शोभाढ्यं कुर्वन्तितराम्। रमणानन्दोऽयं सदा भक्तानां सुखकरो भवति। यस्य लोकस्य कथाश्रवणमात्रात् सर्वे वर्णाः सर्वे धर्माः विधर्माणः प्रतिभान्तितराम्। यस्मिन्नावरणे स्वामिन्याः श्रीराधायाः श्रीरसिकानन्दस्य च सदा क्रीडास्थलं भवति॥ १२४॥

तीसरा आवरण (परिधि) महाक्रीड़ा स्थान है। उस स्थान पर इकहत्तर से भी अधिक निकुञ्ज श्रेणियाँ हैं। जिस आवरण में रमण स्थल भी करोड़ों की संख्या में विराजमान हैं। जहाँ मणियों के वलय सुगन्ध भरे विद्यमान हैं। पद्मराग मणियों की लताओं से ग्रथित, नीलमणि के पुष्पों से बीच-बीच में संवलित हैं। विद्रुम से बनी सुवर्ण लताएँ उन स्वर्ण भूमियों पर रमण स्थान की शोभा बढ़ाती हैं। यह रमणानन्द सदा भक्तों को सुखकर होता है। जिस लोक का नाम सुनने मात्र से सारे वर्ण, सारे धर्म विधर्म लगने लगते हैं। जिस आवरण में स्वामिनी श्रीराधाजी तथा श्रीरसिकानन्द का सदा क्रीड़ास्थल रहता है॥ १२४॥

मणिलतानां सञ्चारे हंसीनां यूथान्यत्यन्तसोल्लासानि पीतग्रीवाणि रक्तचञ्चुपुटानि राजमानानि भवन्ति। ते सुस्वरेण संज्ञिता इव सामगानं कलकण्ठैः कुर्वन्तो भवन्ति। तस्मिन् आवरणे लतायां शुकयूथान्यत्यन्तहरितानि रक्तचञ्चुपुटानि पीतपुच्छपक्षाणि। यैः प्रतिशाखं गान्धर्ववेदो गीयमानो भवति। यस्मिन्नावरणे श्रीराधिकायाः स्वाङ्गात् संभाविताः सख्यः क्रीडापरा भवन्ति। सोत्साहा सोत्कण्ठा प्रेमप्रेक्षणा हास्यवती कटाक्षगुणवती सुस्नेहा मलिना शय्योपकरणा पुष्पवती निःशङ्का निर्लज्जा सुरतोत्कण्ठा सुरतानन्दा मालावती सुखश्रमा कलावती कलाकोविदा गुणज्ञा शृङ्गाररसा कामभाविता भावोत्साहा निद्राजागरिता सरससुखेत्यादिनानासख्यो रतिशृङ्गारमनुभवन्त्यो भवन्ति। निरन्तरं ताः सख्यः क्रीडापराः कुञ्जान्तरे रसिकानन्दं सेवमाना भवन्ति। लतान्तरे भक्ष्यभोज्यानि ताम्बूलाद्या भोगाः कामकेलिरसान्तरे सुखभोगरसक्रीडाः कृतवत्यो भवन्ति॥ १२५॥

मणिलताओं के संचार मार्ग में हंसिनियों के यूथ अत्यन्त उल्लास से भरे पीली गर्दन वाले, लाल चोंच वाले विराजमान होते हैं। वे सुस्वर से मिलकर सामवेद का पाठ करते से प्रतीत होते हैं। उन लता आवरणों पर बैठे हरे रंग के तोते, जो लाल चंचुपुटों वाले, पीले पिछले पंखों वाले हैं। वे प्रतिशाख पर बैठे गान्धर्व वेद का गान करते प्रतीत होते हैं। जिस आवरण में श्रीराधाजी के स्वाङ्ग से उद्भूत सखियाँ क्रीड़ापरायण होती हैं। सोत्साहा, सोत्कण्ठा, प्रेमप्रेक्षणा, हास्यवती, कटाक्षगुणवती, सुस्नेहा, मलिना, शय्योपकरणा, पुष्पवती, निःशङ्का, निर्लज्जा, सुरतोत्कण्ठा, सुरतानन्दा, मालावती, सुखश्रमा, कलावती, कलाकोविदा, गुणज्ञा, शृंगाररसा, कामभाविता, भावोत्साहा, निद्राजागरिता, सरससुखा इत्यादि अनेक सखियाँ रतिशृंगार का अनुभव करती हैं। निरन्तर वे सखियाँ क्रीड़ापरायण रहती हुई कुञ्जों में रसिकानन्द की सेवा करती हैं। लतान्तरों में खाने-पीने की वस्तुएँ ताम्बूल आदि भी कामक्रीड़ा के मध्य प्रयोग के लिए उपस्थित रखती हैं॥ १२५ ॥

एतां लीलां संसिद्धाः सखीनां गणाः पक्षिणां गणाः प्राप्तवन्तो भवन्ति। साधनसिद्धास्तस्मिन्नावरणे क्रीडापराः भवन्ति। सा लक्ष्मीरुवाचेदम्। केन साधनेनेदं स्थानं दृष्टिगोचरं भवति। स होवाच। सृष्टौ त्रयो योगा भवन्ति। ज्ञानयोगः कर्मयोगो भक्तियोगश्चेति। तेषां त्रयाणां योगानां मध्ये प्रेमयोगोऽतिरिक्तो भवतितराम्। येषामेव प्रेमसंपत्तिस्तेषामेव सुरतानन्दसुखं भवति। न धर्मेण नेष्टापूर्तेन न वर्णेन नाश्रमेण न तीर्थेन न व्रतेन न देहशोषणयोगेन न वेदोदितेन कर्मणा न धर्माधर्मविचार साधनेन तत्स्थानं भवति। यो मनसि निरन्तरं तद्ध्यानापन्नो भवति तस्य भवति। यत्र यत्र स्थितं तत्र तत्र तमेव धर्मं जानीमहे। तमेव सुखं जानीमहे। तद्धानिः तदन्तरायः। तदेव सुखं यत् तद्भक्तैः सह संभाषणात्तस्यावरणलीलावार्तायां कालनिर्यापणम्। गृहोत्सवे येषामुपार्जितवस्तुमात्रं तदर्थे विनिहितं भवति ते तल्लोकं प्राप्नुवन्ति॥ १२६ ॥

इस लीला को संसिद्ध सखियाँ तथा पक्षी समूह ही प्राप्त करते हैं। साधन सिद्ध उस आवरण में क्रीड़ा-परायण रहते हैं। लक्ष्मी ने पूछा- किस साधन से यह स्थान दृष्टिगोचर होता है। भगवान् नारायण बोले-सृष्टि में तीन योग हैं। ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग। इन तीनों योगों से प्रेमयोग अतिरिक्त और बढ़कर है। जिनके पास प्रेम की सम्पत्ति है, उन्हें ही सुरतानन्द प्राप्त होता है। यह स्थान न धर्म से, न इष्टापूर्त से, न वर्णाश्रम से, न तीर्थव्रत से, न देहशोषण योग से,न वेदोक्त कर्म से, न धर्माधर्म विचार साधन से प्राप्त होता है। जो मन से निरन्तर तद्ध्यानापन्न होता है, उसे मिलता है। जहाँ भी बैठे, वहाँ उसी ध्यान को करता रहे। बस यही धर्म है। यही सुख है। इसकी हानि होना ही विघ्नरूप है। वही सुख है, जहाँ उन भक्तों के साथ वार्तालाप करने से उस आवरण की लीला वार्ता में समययापन हो। घर के उत्सवों में जिनकी इकट्ठी की गई वस्तुएँ तदर्थ प्रयुक्त होती हैं, वे ही उस लोक को प्राप्त करते हैं ॥१२६ ॥

अहो लक्ष्मि इयं सृष्टिस्तु रसरूपिणी भवति। तेषां रसमार्गव्यतिरिक्ता धर्मा बाधका एव भवन्तितराम्। मनःसङ्ग्रहमानीय मनसा भावेनेन्द्रियाणि मनसि धृत्वा मनसा भावेन अहोरात्रं लयमापद्यन्ते। यस्मिन्नावरणे मनो निमग्नतां प्राप्नोति। तया निकुञ्जदेव्यानुगृहीतो रात्रौ दिवा कालेऽकाले तन्मार्गीयस्तल्लोकं सेवमानो भवति। अहो मनसो वृत्तिरतितरां चञ्चलापि ते भक्ताः

संसारासक्तिरहिता: लोकेऽनेषणात्मानस्तन्मया अनपेक्षाश्चित्ते संपूर्णा: प्रशान्ता: समदर्शिनो निर्ममा निरहङ्कारा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहा भवन्ति। तेषु नित्यं महाभागा: अन्यमार्गरहिता हि ये आत्मानं तन्मयं पश्यन्तस्त एवात्मानं सेवन्ते। ये तन्मार्गीया: सन्त: सदोपासकास्तेषां प्रेमलक्षणकाष्ठाप्रतीक्षा भवति॥ १२७॥

[यहाँ उपनिषद् वाक्य 'रसो वै स:' के अनुरूप तत्त्वदर्शन की व्याख्या की गयी है]

अहो लक्ष्मि! यह सृष्टि तो रसरूपिणी है। उनके रसमार्ग के अतिरिक्त शेष धर्म इसमें बाधक ही हैं। मन का संग्रह करके, मन से भावना करके इन्द्रियों को मन में समेटकर रात-दिन उनका लय किया जाता है। जिस आवरण में निमग्रता को प्राप्त करता है। उन निकुञ्जदेवी की कृपा से रात-दिन समय- असमय तन्मार्गी भक्त उस लोक का ध्यान करता है। यद्यपि मन की वृत्ति बड़ी चञ्चल है, तथापि वे भक्त संसार की आसक्ति से रहित, लोक में इच्छा न रखने वाले, तन्मय, अनपेक्ष, चित्त में सम्पूर्ण रूप से तुष्ट, प्रशान्त, समदर्शी, निर्मम, निरहंकार, निर्द्वन्द्व तथा अपरिग्रही होते हैं। उनमें नित्य महाभाग अन्य मार्गरहित जो अपने आत्मा को तन्मय हो देखते हैं, वे ही आत्मा की उपासना करते हैं। जो उस मार्ग के सन्त हैं, वे सदा उपासक होते हैं और उनके प्रेम लक्षण की पराकाष्ठा-प्रतीक्षा होती है॥ १२७॥

अहो चतुर्थावरणं महास्थानम्। यस्मिन्नावरणे स्वामिन्या: स्वयं विहारस्थलमस्ति। शतसहस्त्रकुञ्जा निकुञ्जा लतावती सुवर्णवर्णा विद्रुमलता अमला निर्मला व्यक्तमुक्तालता भ्राजमाना आसां सखीनां सञ्चारोऽत्र स्थान आस्ते। सूक्ष्मलतान्तरे शय्योपकरणानि। अनेकलतान्तरे रासक्रीडा भवतितराम्। अयं रास: सहजसंवलितो भवति। तस्मिन्नावरणे अतिक्रीडापराणि रूपाणि कृत्वा रासलीलासुखमनुभवन्ती सा व्रजेश्वरी रसिकानन्देन सह सङ्क्रीडमाना आपद्यते॥ १२८॥

अहो चतुर्थावरण महास्थान है। जिस आवरण में स्वामिनी का स्वयं-विहार-स्थल है। शत सहस्त्रकुञ्जा-निकुञ्जा, लतावती, सुवर्णवर्णा, विद्रुमलता, अमला, निर्मला, व्यक्तमुक्तालता, भ्राजमाना इन सखियों का ही सञ्चार वहाँ है। सूक्ष्म लतान्तर में शय्या के उपकरण हैं। अनेक लतान्तरों में रास क्रीड़ा होती है। यह रास सहज संवलित है। उस आवरण में अतिक्रीड़ापरायण रूपों को धारण कर रासलीला के सुख का अनुभव करती हुई वह ब्रजेश्वरी रसिकानन्द के साथ क्रीड़ापरायण होती है॥ १२८॥

पञ्चममावरणं तेजोमयम्। अमृतमय्य ओषधयो राजमाना: फलपुष्पयुता: पक्वफलरसयुक्ता भवन्ति। अन्न रसा: सुपच्यमाना: सरसा: कटुतिक्तमाधुर्यमिष्टरससंयुक्ता अनेकश: स्थानेषु तया श्रीराधिकया सेव्यमाना रसिकानन्देन संभोक्ष्यमाणा: विराजमाना भवन्ति। आत्माविर्भावेन नानासुखं भवति। भोगस्थानं भवतितराम्। स्थाने स्थाने तस्मिन्नावरणे रतिसुखं भवतितराम्॥ १२९॥

पाँचवाँ आवरण तेजोमय है। अमृतमयी ओषधियाँ फल-पुष्पों से पके फलों के रसों से युक्त शोभायमान हैं। अनेक स्थानों पर सुपाच्य भोजन, जो कटुतिक्त मधुराम्ललवण रसों से युक्त होते हैं, रखे होते हैं। श्रीराधिकाजी के साथ रसिकानन्द उनका भोग लगाते हैं। इस प्रकार के भाव आत्मा में आविर्भूत करने से बड़ा सुख होता है, वह भोग स्थान अति (सुन्दर) है। स्थान-स्थान पर उस आवरण में रति-सुख की प्राप्ति होती है॥ १२९॥

षष्ठमावरणं तेजोमयम्। यस्मिन् हाटकमयानि मन्दिराणि विराजमानानि भवन्ति। शतं मन्दिराणि तेजोमयानि यत्र राजन्ते। सुवर्णजटितमणिभिराक्रान्ताश्चामीकरखचिता मञ्जूषाः शोभायमाना भवन्ति। यत्र राजमानानि हाटकमणिजटितानि भूषणानि यथायोग्यानि वस्त्राणि भवन्तितराम्। यत्रावरणे संभोगस्थाने सखीनां समूहाः शृङ्गारवत्यादयो राजमानाः भवन्ति। आत्मानं शतधा कृत्वा अनेकभोगरसरतिसुखं संभोक्ष्यमाणाः भवन्ति॥ १३०॥

छठा आवरण भी तेजोमय है। जिसमें सुवर्ण जटित मन्दिर शोभायमान हैं। जहाँ सौ तेजोमय मन्दिर सुशोभित हैं। सुवर्णजटित मणियों से युक्त सुवर्ण खचित पेटिकाएँ सुशोभित होती हैं। जहाँ सुवर्ण मणि जटित आभूषण तथा यथायोग्य वस्त्र रहते हैं। जिस आवरण में संभोग स्थान पर शृंगारवती इत्यादि सखियों का समूह विराजमान होता है। अपने सैकड़ों रूपों में बाँटकर वे अनेक भोगों के रस का, रति सुख का भोग करते हैं॥ १३०॥

सप्तमावरणं क्रीडास्थानं सहस्त्रयोजनायतम्। परितः परितो मणिस्तम्भा अतिरसाढ्याः सुगन्धाढ्या भवन्ति। अतिरसगुणाढ्या भूः हाटकसुगन्धकोमला आविष्टसुखाढ्या भवतितरां संभोक्ष्यमाणैव। यत्र वल्लीनां सञ्चाराः परापरसञ्चारा एवासते। हाटकजटितमणिज्योत्स्नाभिः सर्वं प्रतिबिम्बितं वस्तुमात्रम्। तत्र कलावती गानवती सुगन्धा नृत्यपरा विशदा भोगपरा भोगवती भोगाभिज्ञा रतिकलाभिज्ञा कामसुखा कामातुरा निःशङ्का सदानन्दा सुरतसुखा सुरतानन्दा सुरतमग्ना आसनभेदाभिज्ञा अतिरसदानाभिज्ञा रसदा रसदातृभोगाभिज्ञा एताः सख्यः संसिद्धा अन्याः साधनसिद्धा अनेककलाकोविदा भवन्ति॥ १३१॥

सातवाँ आवरण हजार योजन विस्तृत क्रीड़ास्थान है तथा चारों ओर मणियों से खचित स्तम्भ, जिनके सहारे रसपूर्ण पदार्थ सुगन्ध से भरपूर रखे हैं। जहाँ की भूमि रसमयी सुगन्धमयी सुवर्णमयी भोग्यमान-सी है। जहाँ लताओं के बीच में सञ्चार मार्ग है। सुवर्ण में जटित मणियों से सारा प्रकाशित और प्रतिबिम्बित है। वहाँ कलावती, गानवती, सुगन्धा, नृत्यपरा, विशदा, भोगपरा, भोगवती, भोगाभिज्ञा, रतिकलाभिज्ञा, कामसुखा, कामातुरा, निःशङ्का, सदानन्दा, सुरतसखा, सुरतानन्दा ,सुरतमग्ना, आसनभेदाभिज्ञा, अतिरसदानाभिज्ञा, रसदा, रसदातृभोगाभिज्ञा- ये सखियाँ संसिद्धा हैं तथा अन्य अनेक कलाओं में पारङ्गत साधन सिद्ध हैं॥ १३१॥

तत्र मण्डलावरणे महास्थानं सशय्योपकरणम्। कलावती शय्योपकरणानि करोति। सुरतोत्साहा सुरतोत्कण्ठां ददाति। निर्लज्जा निश्शङ्कं सुखं ददाति। सुरतोद्गमा आलिङ्गनचुम्बननमितप्रेमभररससुखं ददाति। रतिवती रतिसुखं ददाति। रति कल्लोला रतिभररसालस्यमुकुलितनयना केलिसुखं ददाति। निभृतनिकुञ्जगृहं गतया तया देव्या सह रसिकानन्दः सुखमनुभवन्नास्ते॥ १३२॥

उस मण्डलावरण में भी सुन्दर शय्या वाला महास्थान है। कलावती शय्या के उपकरणों को (तैयार) करती है। सुरतोत्साहा सुरत की उत्कण्ठा जाग्रत् करती है। निर्लज्जा निःशङ्क सुख प्रदान करती है। सुरतोद्गमा आलिङ्गन, चुम्बनादि से भरपूर प्रेमरस प्रदान करती है। रतिवती रति सुख देती है। रतिकल्लोला रतिपूरित आलस्य से बन्द नेत्र वाली केलिसुख देती है। चुपचाप निकुञ्ज देवी के साथ उस निकुञ्ज गृह में गये रसिकानन्द सुख का अनुभव करते हैं॥ १३२॥

तस्मिन्निकुञ्जे सुरचिता सखी प्रतिकुञ्जं शय्यासुखं करोति। एका कलहंसी निरन्तरं तस्मिन्नावरणे सखीनां मण्डले मध्यस्था सदा क्रीडापरा कलशब्देन तां श्रीराधां रसिकानन्दं च क्रीडमानाऽभ्येति। तस्मिन्समये सुस्वरकण्ठेन सूक्ष्मस्वरं यथा भवति तथा तं गायमाना भवति। मानलीलायां रसिकानन्दवचनात्तां व्रजेश्वरीं प्रसादयति निरन्तरमतिमनोत्साहं च ददाति। सा व्रजेश्वरी कलहंसीं प्रत्यापद्यमानैव भवतितराम्। सा कलहंसी रसिकानन्दस्यातितरां वल्लभतया सुखमनुभवन्ती संरोचते। सा सदा जागरिता सा सदा गुणज्ञा सा सदा रससुरतभोगज्ञा भवतितराम्। सा कलहंसी सर्वासां सखीनां मनांसि प्रतिहरति स्वक्रीडया। सा कलहंसी रसिकानन्दस्यातिवल्लभा भवतितराम्। सा कलहंसी साधनसिद्धैवेति॥ १३३॥

उस निकुञ्ज में सुरचितासखी प्रत्येक कुञ्ज में शय्या सुख का प्रबन्ध करती है। एक कलहंसी निरन्तर उस आवरण में सखियों के बीच में सदा क्रीड़ापरायण रहती हुई सुन्दर शब्द से श्रीराधाजी तथा रसिकानन्द के पास क्रीड़ा करती जाती है। उस समय बड़े बारीक स्वर में गाती है। मानलीला में रसिकानन्द

के कहने से ब्रजेश्वरी (श्रीराधाजी) को मनाती है तथा मन को उत्साहित करती है। ब्रजेश्वरी कलहंसों के पहुँचते ही मान त्याग देती हैं। वह कलहंसी रसिकानन्द को बहुत प्यारी है। वह भी प्यार को अनुभव करती प्रसन्न रहती है। वह सदा जागती है गुणज्ञा और सुरतरस-भोगज्ञा भी है। वह कलहंसी अपनी क्रीड़ा से सब सखियों का मन हरती है। वह कलहंसी रसिकानन्द की अतिप्रिया है। वह कलहंसी साधनसिद्धा ही है॥ १३३॥

सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम्। अहो ! कलहंसी पूर्वं केन साधनेनेदं स्थानं प्राप्तवती। महास्थानं प्राप्तवती। अत्याश्चर्यम्! निरन्तरं केन साधनेन श्रीराधायाः क्रीडासखी भवतितराम्। स होवाच नारायणोऽयम्। सा कलहंसी सृष्ट्यादौ ब्रह्मणः पुत्री सरस्वती। सर्वविधाः प्रभवा यस्याः सकाशादुत्पद्यन्ते। चत्वारो वेदा उपवेदाः पुराणानि धर्मशास्त्राणि पृथिव्यां यानि वर्तिष्यमाणानि तानि तस्या उत्पद्यमानानि भवन्ति। सा ब्रह्मणः पुत्री आप्तयौवनैवास्त। सा एकस्मिन् समये मम लोकं प्राप्ता ममोपासनां चक्रे। स्वसुखार्थं मम ध्यानापन्नाऽभवत्। बहुकालं मामुपसेवमानाऽभवत्। तस्या भजनेन प्रसन्नोऽहं मम लीलास्थानं वैकुण्ठं दर्शितवान्। तस्मिन् त्वया मया क्रीडितानि स्थाननि संराजन्ते॥ १३४॥

लक्ष्मी ने पुनः पूछा– अहो! कलहंसी ने पहले क्या साधना की, जो उसे यह महान् स्थान प्राप्त हुआ। अति आश्चर्य है। इसने निरन्तर किस साधन से श्रीराधाकी क्रीड़ासखी बनने का सौभाग्य प्राप्त किया। नारायण बोले– वह कलहंसी सृष्टि के आदि में ब्रह्मा की पुत्री सरस्वती थी। सभी प्रकार के उद्भव जिससे होते हैं। चारों वेद, उपवेद, पुराण, धर्मशास्त्र पृथिवी पर जितनी भी विद्यायें हैं, सब उससे उत्पन्न हैं। ब्रह्मा की वह पुत्री यौवन को प्राप्त हुई। एक बार वह मेरे लोक में आकर मेरी उपासना करने लगी। स्वसुख के लिए मेरे ध्यान में मग्न हुई। बहुत समय तक मेरी सेवा करती रही। उसकी सेवा से प्रसन्न होकर मैंने उसे वैकुण्ठ का दर्शन करा दिया। वहाँ मैं और तुम क्रीड़ा करते सुशोभित थे॥ १३४॥

यत्र वैकुण्ठे अनेकशो भक्ता जयन्तकुमुदजयविजयगरुडाद्या: शतशः पार्षदा राजमाना भवन्ति। यत्र चतुर्धा मुक्तयः सेव्यमाना आसते। यत्र वनानि कोटिशोऽतितरां सन्ति। सा वाग्देव्यतितरामुत्कण्ठमना अत्यन्तं सुखसमाविष्टमना मम कृपादृष्ट्या सुखं प्राप्ता महालीलां प्रार्थयामास। तदा मयोक्ता सा वाग्देवी-त्वं व्रजवासे व्रज। पृथिव्यामच्छोदं नाम सरः कामवनसुगन्धशिलायामस्ति। तत्राच्छोदे मज्जयित्वा सुगन्धशिलायां व्रजेश्वरीं ध्यायमाना रसिकानन्देन सह आपद्यस्व-इति। तत्र तत्स्थाने सर्वात्मभावेन प्रीतिरुत्पद्यमाना भवति। प्रेमानन्दमनुभवन्तो भक्तास्तल्लीलोपयोग्या भवन्ति। सा निरन्तरं बृन्दावनं कामवनं श्रीगोवर्धनमुपसेवमानासेदुषी। अच्छोदेऽप्सरः पुष्करिण्यां निरन्तरं मज्जमानाऽभवत्। शतं समाव्रजलीलां सेवमानाऽभवत्॥ १३५॥

जिस वैकुण्ठ में अनेक जयन्त, कुमुद, जय, विजय, गरुड़ादि भक्त तथा सैकड़ों पार्षद विराजमान थे। जहाँ चारों मुक्तियाँ सेवा करती हैं। जहाँ करोड़ों वन हैं। उस सरस्वती ने अत्यन्त उत्कण्ठित मन से मेरी कृपादृष्टि से सुखी हो महालीला दर्शन का वर माँगा। तब मैंने उससे कहा- वाग्देवि! तुम ब्रजधाम में जाओ। पृथिवी पर अच्छोद नाम का सरोवर कामवन में सुगन्ध शिला पर है। वहाँ अच्छोद सरोवर में स्नान करके सुगन्ध शिला पर ब्रजेश्वरी के साथ रसिकानन्द का ध्यान करो। उस स्थान पर सर्वात्मभाव से प्रीति उत्पन्न होती है। प्रेमानन्द का अनुभव करते हुए भक्त उस लीला के अधिकारी बनते हैं। वे निरन्तर वृन्दावन, कामवन, गोवर्धन पर पहुँचने की इच्छा से चल पड़ीं। अप्सराओं की पुष्करिणी अच्छोद में नित्य स्नान करतीं। इस प्रकार सैकड़ों वर्ष ब्रजलीला का सेवन करते बीत गये॥ १३५॥

एकस्यां कार्तिक्यां पौर्णमास्यां तस्मिन् तद्वासिनो रासलीलां कुर्वन्ति। बहवो भागवतानां समाजे कलहंसीरूपं विधाय तां लीलामदर्शयन्। निशि दिने सा व्रजेश्वरी रसिकानन्देन सह दर्शनदृष्टिगोचरो भवतितराम्। अत्यानन्दरूपे सखीनां समूहमध्यस्थे महाक्रीडापरेऽतिमहामोहनरूपं दृष्ट्वा इन्द्रियशुद्धिप्रेम्णा भावापन्नाऽभवत्। प्रसेदुष्यतिसुकोमल-लावण्या सा वरं वरयेत्याह। सोवाचेदम्। यदि देयो वरस्तर्हि महालीलायां सदाहं सहचारिणी भवामि। किमन्येन वरेण। अयं तावन्मनोभिलाषो यल्लीला दृश्यते। तथेत्युक्ता सा ताभ्यां स्वस्थानं ययौ॥ १३६॥

एक बार कार्तिक पूर्णिमा को वहाँ के निवासी रासलीला कर रहे थे। बहुत से भागवतों के समाज म कलहंसी का रूप बनाकर उस रासलीला को दिखाया। रात में, दिन में वह ब्रजेश्वरी रसिकानन्द के साथ दृष्टिगोचर होने लगी। अति आनन्दरूप हुए सखियों के समूह के मध्य क्रीड़ापरायण हुए, उनका अति- मोहन रूप देखकर इन्द्रिय-शुद्धि से उत्पन्न प्रेम से भावापन्न हो गईं। प्रसन्न हुई अति सुकोमल लावण्यमयी ब्रजेश्वरी ने सरस्वती से वर माँगने को कहा- वे बोलीं- हे देवि! यदि वर ही देना है, तो यह वर दो कि मैं महालीला में सदैव सहचरी रहूँ। अन्य वर से क्या प्रयोजन? यह जो मनोभिलषित लीला देखने को मिल रही है, यही पर्याप्त है। देवी ने तथास्तु कहा। ऐसा कहने पर वे उनके साथ स्वस्थान को गईं॥ १३६॥

या सा तद्दिनमारभ्य क्रीडापरा भवतितराम्। कुञ्जे निकुञ्जे तेनैव कलहंसीरूपेण प्रतिशाखं लीयमाना सामगानेन मनोभावेन स्तौति नानाकौतुकक्रीडामकरोत्। सा महारमणस्थानं प्राप्ता। महालीलायां मग्ना रतिसुखमनुभवन्त्यास्त। सा कलहंसी स्वयूथं विधाय कदाचित्समये रात्रिपरभागे सुरतोत्थितां लीलामगायत्। कदाचिन्मज्जनलीलामागायमाना भवति। शृङ्गारलीलायां शृङ्गारं प्रति प्रतिक्षणं नूतनस्वाविर्भावरतोद्भवा भवतितराम्। लीलामागायमाना संभोक्ष्यमाणा भवति ॥ १३७ ॥

वे उस दिन से ही यहाँ क्रीड़ापरायण हैं। कुञ्ज-निकुञ्ज में उसी कलहंसी रूप से शाखा-शाखा पर अपनी लीला करतीं, सामगान से मनोभावपूर्वक स्तुति करती हुई क्रीड़ापरायण हैं। वे महारमण स्थान पर भी जाती हैं। महालीला में मग्न हुई रतिसुख का अनुभव करती हैं। वह कलहंसी कभी-कभी अपना यूथ बनाकर रात्रि के पिछले पहर सुरत के बाद की लीला को गाती है। कभी मज्जन लीला का गान करती है। शृंगार लीला में नये-नये आविष्कारों की उद्‌भावना करती है। लीला गाती-गाती संभोग्यमान का अभिनय करती है॥ १३७॥

भोगावस्थायां स्रक् चन्दनताम्बूलागुरुरसमृगमदकर्पूरकेसरसंवलितान्यास्तरणानि प्रतिक्षणं नूतनानि। अनेकशय्यायाः सुगन्धशृङ्गारादुपरिप्रफुल्लित-लताग्रथितपरस्परशुभाङ्गशोभनचन्दनवृक्षालम्बिताः सुवर्णगन्धेन युता लतान्तराः सन्तितराम्। तत्र शृङ्गारे रतिशृङ्गाररसस्थानं सङ्गायमाना भवतितराम्। भूषणस्थानं सुगन्धं सुवर्णम्। सुवर्णजटिता मणयः सुष्ठु गन्धेन पूर्यमाणा भवन्तितराम्। वस्त्राण्यतिसुगन्धेनातिपद्यमानानि परिधापयति। एवं कलहंसी वाग्भिः स्तुतिं चकार। अत्यर्थं सा निकुञ्जदेव्या गानवल्लभा भवति॥ १३८॥

भोगावस्था में माला,चन्दन, ताम्बूल,अगर, रस, मृगमद (कस्तूरी), कपूर, केसर से सुगन्धित आस्तरणों (बिस्तर) को प्रति क्षण नए-नए रखने की कल्पना गाती है। सुगन्ध शृंगार से युक्त, चन्दन वृक्ष पर अवलम्बित खिले हुए लता गुच्छकों के बीच परस्पर सुशोभित करते हुए, सुन्दर वर्ण और सुगन्ध से युक्त लताओं वाली अनेक शय्याओं का गान करती है। शृंगार में रति शृंगार रस स्थान गाती हुई मग्न हो जाती है। भूषणस्थान सुवर्ण और सुगन्ध है। सुवर्ण जटित मणियाँ उत्तम गन्ध से पूर्ण होती हैं। अति सुगन्धित वस्त्रों को धारण कराती है। कलहंसी इस प्रकार सुन्दर वाणी से स्तुति करती है। वह निकुञ्ज देवी की बड़ी गानप्रिया है॥ १३८॥

शृङ्गाररसोऽयम्। विधिनिषेधमार्गानुसारिणी शृङ्गाररसादनन्तरमात्मभावे भवति। रसमग्ना भवति संभाष्यमाणा मनोभवभावे भवति। आत्मभावेनेयं प्रत्यनुकरणं क्रियमाणमातनोति। वनलीलां मनस्यातनोति। अतिरतिं संयोक्ष्यमाणा कलहंसी रात्रौ दिवा लतान्तरेषु फलमिष्टं मधु राधाया दत्वान्यदासेवते॥ १३९॥

यह महा शृंगार रस है। विधि निषेध का अनुसरण न करने वाली यह शृंगार रस के बाद आत्मभाव में लीन हो जाती है। सम्भाषण करती-करती कामभाव में रसमग्न हो जाती है। यह आत्मभाव से देवी के प्रत्येक कर्म का अनुकरण करती है। वनलीला को मन में ही उतारती है। अति प्यार भरी कलहंसी दिन-रात लतान्तरों में राधाजी को मीठेफल, मधु आदि पदार्थ देकर भी सेवा करती है॥ १३९॥

तत्रैका पुष्करिणी मिष्टामृतरसपूरिता भवति। चतुर्योजनायता। तत्र पद्मषण्डानि सुवर्णसुगन्धसुकोमलानि मनोहराणि भवन्ति। तस्मिन् पद्मवने विहारक्रीडापरा कलहंसी सुरोचमाना भवति। अहो लक्ष्मि तस्मिन् केन भाग्योदयेन तस्या निकुञ्जदेव्या अनुग्रहेण अनन्याश्रयधर्मोत्पत्तिर्यदा भवतितरां तदा रतिराविर्भवति। तावद्देहोपाधिकर्मक्षुत्तृट्पिपासामोह-भयदुःखं तथा सुखानि तथा न भवन्ति यथा देवादीनाम्। व्रतोपवासधर्माधर्माः पितृकार्याकार्याणि यत्किञ्चिद्धर्माः शोभमाना धर्माः अन्यान्युपवासमयानि पापपुण्यानि ज्ञात्वा यः सर्वधर्मातिरिक्तो भवेत् स एव तन्मण्डलं प्राप्नोतीत्याह। अहो रम्यं पुण्यमाचरेत्। अतितरां भावो भवेत्॥ १४०॥

वहाँ चार योजन विस्तृत मीठे अमृतरस से पूर्ण एक पुष्करिणी भी है। वहाँ कमल बड़े सुगन्धित और कोमल व मनोहर होते हैं। उस पद्मवन में विहार क्रीड़ापरायण कलहंसी शोभा देती है। अहो लक्ष्मि! किसी भाग्योदय से अथवा निकुञ्ज देवी के अनुग्रह से अनन्याश्रय धर्म की उत्पत्ति जब होती है, तब रति आविर्भूत होती है। तब देहोपाधि-जन्य कर्म, भूख, प्यास, मोह, भय, दुःख-सुखादि वैसे नहीं होते, जैसे अन्य देव मनुष्यों के। व्रत--उपवास, धर्म-अधर्म, पितृकार्य इत्यादि जो कुछ भी धर्म नाम से जाना जाता है; अन्य उपवासमय पाप-पुण्यों को जानकर, उन सबको त्यागकर सबसे अलग हो जाता है, वही उस मण्डल को प्राप्त कर सकता है। अरे रम्य पुण्य का आचरण करना चाहिए। पूर्ण भाव होना चाहिए॥ १४०॥

संभोगलीलायां सुरतानन्दोऽयं लोकः सोऽवशिष्यते। सुरतानन्दसुखमनुभवन्तो भक्ता आत्मानं तन्मयतां नयन्ति। धर्माधर्मौ त्यक्त्वा समाः सहजभावा भवन्ति। अतिरसमग्रा विद्यातपोध्यानमैत्रीकलागुणसंयुक्ताश्च भवन्ति। अन्यप्रतिपत्तिसहितो नास्तिको न लभते तल्लोकप्राप्तिम्। अहो लक्ष्मि कदाचिन्महाभाग्योदयेन अस्मिन्नावरणे प्रीतिरास्ते। यत्र वृक्षाः फलैर्नम्राः पुष्पमिष्टामृतमयरसमग्रा भवन्ति। यत्र शाखाः पुष्पनम्रा भवन्ति॥ १४१॥

सम्भोग लीला में सुरतानन्दरूप लोक (जहाँ आत्मा-परमात्मा के सम्मिलन से भक्तगण सम्यक् रूप से आनन्दित हों, ऐसा लोक) ही शेष रहता है। सुरतानन्द सुख का अनुभव करते हुए भक्त अपने में तल्लीन हो जाते हैं। धर्माधर्म को त्यागकर सहज भावापन्न हो जाते हैं। अतिरसमग्र हुए विद्या, तप, ध्यान, मैत्री और कला-गुण संयुक्त होते हैं। अन्य प्रतिपत्ति वाला नास्तिक भला उस लोक को कैसे पा सकता है। हे लक्ष्मि! कभी बड़े भाग्योदय से इस आवरण में प्रीति होती है। जहाँ पर वृक्ष, फल-फूलों से लदे हुए मधुर रस पूर्ण हैं, शाखाएँ फलों से लदी हैं॥ १४१॥

पञ्चमे आवरणे संसिद्धानि शुकपिकयूथानि संराजमानान्यासते। केचिदाम्रवृक्षाः पक्वफलाः सदा संभोक्ष्यमाणा आसते। अतिरसमग्रः साधनसिद्ध एकः शुकोऽत्यन्तवल्लभोऽस्ति। यस्य पक्षचञ्चुकाः सा ब्रजेश्वरी स्वहस्तेन मार्जयति। रसिकानन्दोऽपि स्वहस्तेन भक्षं ददाति। तस्य सहचारिण्येका शारिका आस्ते। सा साधनसिद्धा भवतितराम्। तच्छुकशाटिकामिथुनं रसिकानन्दक्रीडायां सहचार्येव भवतितराम्। तत्र रसिका सा शारिका निरन्तरक्रीडापरा भवति। सुवर्णवर्णासु भूमिषु रत्नपरिधिषु सशय्योपकरणं विहारस्थलम्। तत्र वृक्षसञ्चाराः सुशोभाढ्या

भवन्तितराम्। तत्र शुकशारिकाः साधनसिद्धाः क्रीडापरा भवन्ति। अत्यासक्ता महाक्रीडायां संभवन्ति॥ १४२॥

पञ्चम आवरण में संसिद्ध तोते कोयलों के यूथ शोभित हैं। कुछ पके आमों को सदा खाते रहते हैं। अतिरसमग्र साधन-सिद्ध एक तोता बड़ा प्यारा है। उसके पंख और चोंच ब्रजेश्वरी अपने हाथों से साफ करती हैं। रसिकानन्द अपने हाथों से उसे भक्ष्य खिलाते हैं। उसकी सहचारिणी एक मैना है, वह अति साधनसिद्धा है। वह तोता-मैना का जोड़ा रसिकानन्द की क्रीड़ा में सहचारी होता है। वहाँ वह रसिका मैना-निरन्तर क्रीड़ापरायण होती है। सुवर्ण वर्ण की भूमियाँ जो रत्नों की परिधि वाली हैं, उनमें शय्या के साथ सजा विहार स्थल है। वहाँ शोभाशाली वृक्षों का भी सञ्चार है। वहाँ साधनसिद्ध शुक- सारिका क्रीड़ापरायण होते हैं। अत्यासक्त हुए महाक्रीड़ा में प्रवेश कर जाते हैं॥ १४२॥

अहो रसमार्गोऽयं दुर्लभतरोऽप्यासीत्। अहो महाभाग्यवशात्तस्याः निकुञ्जदेव्या अनुग्रहादत्यन्तप्रियतमो भवति। प्रीतिः प्रीत्या भवति भक्तिर्भक्त्या भवति स्नेहः स्नेहेन भवति तस्माद्भाग्योदयाददतितरामासेदुषः। अहो भाग्यवन्तः कृतकृत्यवन्तः सर्वे तीर्थवन्तो भवन्ति। अतिरसमग्राः अतिभुञ्जाना अत्यन्तसुखमनुभवन्ति। य इमां लीलां संभुञ्जमानाः भवन्ति य इमां लीलामुपासमाना एव भवन्ति ते भक्ता भवन्ति। यदा महा भाग्योदयो भवतितरां तदास्यां लीलायां प्रत्ययो भवेत्। ते धर्मकारिणः, ते व्रतकारिणः। येषां लीलायामुपासनारुचिरास्ते ते व्रतकारिणो भवन्ति। यस्य महालीलायां मनोऽभ्येति। यो विधौ च प्रतिषेधे च निर्विद्य अस्यां लीलायां मनोभावापन्नो भवेत् स एव लीलोपयोग्यो भवेत्। ये प्रत्ययकारिणः तेषामनुग्रहः॥ १४३॥

अरे, यह रसमार्ग बड़ा दुर्लभ भी है। बड़े भाग्य से उन निकुञ्ज देवी के अनुग्रह से प्राप्त होता है। प्रीति-प्रीति से, भक्ति-भक्ति से, स्नेह-स्नेह से बढ़ता है, ये सब भाग्योदय से ही प्राप्त होते हैं। ऐसे भक्त बड़े भाग्यशाली कृतकृत्य और तीर्थ वाले होते हैं। वे अतिरस मग्न हुए अत्यन्त सुख का अनुभव करते हैं। जो इस लीला का संभोग करते हैं, वे ही भक्त कहलाने के योग्य हैं। जब बड़ा भाग्योदय होता है, तब इस लीला में विश्वास होता है। जिनकी इस लीला की उपासना में रुचि होती है, वे ही व्रत करने वाले, वे ही धर्म करने वाले हैं। जिसका मन महालीला में लगता है, जो विधि निषेध को ताक में रखकर इस लीला में भावापन्न होता है, वही लीला के उपयुक्त है। जो विश्वास करते हैं, उन पर अनुग्रह होता है॥ १४३॥

सा लक्ष्मीः पुनरुवाचेदम्। रहस्यलीलायां मनो भावापन्नं भवति। अत्यन्तरत्याविष्टचित्ता भावापन्ना भवामि। कः शुकः? का शारिका भावापन्ना? यस्यां रसिकानन्दोऽत्यन्तस्नेहाविष्टमना भवति सा व्रजेश्वरी अत्यन्तं स्नेहं चकार। अतिदुर्लभतरं स्थानं प्राप्तम्। अविच्छिन्ना रतिगति योग्यता संयोक्ष्यमाणा भवतितराम्॥ १४४॥

लक्ष्मी पुनः पूछने लगीं- रहस्यलीला में मन भावापन्न होता है। क्या मैं भी अत्यन्त्याविष्टचित्ता होकर भावापन्न हो जाऊँगी? यह शुक कौन है? यह भावापन्ना सारिका कौन है? जिस पर रसिकानन्द अत्यन्त स्नेह करते हैं तथा ब्रजेश्वरी बड़ा प्यार करती हैं। अत्यन्त दुर्लभ स्थान इन्होंने प्राप्त किया है। अविच्छिन्न रतिगति की योग्यता जिनमें कूट-कूट कर भरी है॥ १४४॥

स होवाच नारायणोऽयम्। शृणु लक्ष्मि आदौ सृष्टेः सुमन्तो नाम ब्राह्मणः कौशिकगोत्रात्समुद्भूतो भवति। स कान्यकुब्जदेशे समुद्भूत आसीत्। अतितरां भावापन्नोऽभवत् तस्य मनोरमा भवत्यतिशयभक्तिमार्गरता। तौ दम्पती अतिसुभगावतितरस्नेहसंपन्नौ निरन्तरसेवायां संयोक्ष्यमाणरती आसाताम्। तौ दम्पती अतिस्नेहेनाविष्टचित्तौ काले काले तां व्रजेश्वरीं रसिकानन्देन सह उपसेवमानावासाताम्। तावतिवनलीलायामत्यासक्तौ भवतः॥ १४५॥

नारायण बोले- लक्ष्मि! सुनो। सृष्टि के आदि में सुमन्त नाम का ब्राह्मण कौशिक गोत्र में उत्पन्न हुआ। उसका जन्म कान्यकुब्ज देश में हुआ था। वह बड़ा ही भावापन्न था। उसकी पत्नी मनोरमा अतिशय भक्ति मार्ग में रत थी। वे दोनों अति सुन्दर अति स्नेहरस सम्पन्न निरन्तर सेवा में रत रहते थे। वे दम्पती समय-समय पर ब्रजेश्वरी के साथ रसिकानन्द को बड़े स्नेह भावाविष्ट होकर पूजा करते थे। धीरे-धीरे वे वनलीला में आसक्त होते चले गये॥ १४५॥

कस्मिन् कियद्भाग्योदयेन भक्तानां सङ्गेन वनं बृन्दावनं प्राप्तौ? तत्र बृन्दावने कामवने कदम्बषण्डे वृषभानुपुरे नन्दग्रामे पावनसरसि प्रतिपद्यमानाव-भवताम्। एवंविधे रहसि क्रीडाविहारे कियत्कालं वासमालम्ब्य तिष्ठन्तावभवताम्? दम्पती साभिलाषौ वने अत्यासक्तावभवताम्। मनोरथेन सह व्रजेश्वरी रसिकानन्देन सह दृष्टिपथमापेदे। महालीलायां क्रीडापरौ संभाषमाणौ संयुञ्जाताम्। तद्दिनमारभ्य तौ दम्पती महालीलायां क्रीडापरावभवताम्। सा लक्ष्मीरुवाचेदं रहस्यम्। व्रजवासिनीसृष्टिः कीदृग्विधा? ये संसिद्धास्ते कीदृग्विधाः? अन्ये के जीवाः सृष्ट्यादौ प्रकटिताः? जीवस्य कीदृग्विधं रूपम्? बन्धमोक्षौ कीदृग्विधौ भवतः?॥ १४६॥

किसी समय भाग्योदय से भक्तों के साथ वृन्दावन को आ गये। वहाँ वृन्दावन में कामवन, कदम्ब खण्ड, वृषभानुपुर, नन्दग्राम, पवित्र सर आदि स्थानाद्यड्डु में घूमे। इस प्रकार कभी क्रीड़ा विहार में एकान्त रूप से रहकर कुछ काल व्यतीत किया। दम्पती के मन में साधना करते हुए अभिलाषा जाग्रत् हुई। मनोरथ के साथ ही ब्रजेश्वरी रसिकानन्द के साथ दृष्टिपथ में आईं। महालीला में भाग लेने का वर माँगा और तथास्तु कहकर दे दिया। उस दिन से वे दम्पती महालीला में क्रीड़ापरायण हो गये। लक्ष्मी बोलीं यह तो रहस्य है? व्रजवासिनी सृष्टि कैसी है? जो संसिद्ध हैं] वे कैसे होते हैं? अन्य कौन जीव सृष्टि के आदि में प्रकट किये? जीव का क्या रूप है? बन्धन मोक्ष क्या है? ॥ १४६॥

पुनः स होवाच नारायणोऽयम्। अहो! प्रपञ्चोऽयमनादिसंसिद्धो भवति। यथा ब्रह्म त्रिविधात्मकम्। सच्चिदानन्दात्मकम्। सत्तु व्यापकतयास्ति। तेजोमयं चिदस्ति। आनन्दमयस्तु पुरुषोत्तमोऽतिरिच्यते। यथा ब्रह्मानन्दोऽयं लोकः सच्चिदानन्दो भवति तथा जीवसङ्घस्त्रिविधो भवति। सोवाचेदम्। किमयं जीवसङ्घो भवेत्? तेषां का दृष्टिः? कावस्था भवति।?॥ १४७॥

नारायण पुनः बोले— यह प्रपञ्च अनादि संसिद्ध है। यथा ब्रह्म त्रिविधात्मक है, जिसे सच्चिदानन्द भी कहते हैं। सत् व्यापकता से है। चित् तेजोयुक्त है। आनन्दरूप स्वयं पुरुषोत्तम हैं। जैसे ब्रह्मानन्द लोक ही सच्चिदानन्द है, उसी प्रकार जीव सङ्घ भी तीन प्रकार का है। लक्ष्मी बोलीं— जीव सङ्घ क्या है? उनकी क्या दृष्टि है? क्या अवस्था है?॥ १४७॥

स होवाचेदम्। शृणु। अनादिसंसिद्धोऽयं जीवश्चिदंशो भवति। सोवाचेदम्। यदि चिदंशो जीवः कथमज्ञानेन जडतां प्रपद्यते । स होवाच। यथा अनादिसंसिद्धोऽयं जीवसङ्घस्तथा मायाप्यनादिसिद्धा भवति। सा त्रिविधा व्याप्य तिष्ठति। स एवं जीवस्त्रिविधो भवति। सोवाचेदम्। जीवसङ्घस्त्रिविधस्तिष्ठति। वर्णय। स होवाच। सद्रूपः संसारात्मको भवति। नानाकर्माणि करोति। वर्णाश्चाश्रमाश्च धर्माश्च साधनानि संयुज्यन्ते। तेषामुत्पत्तिः स्थितिः। चिद्रूपो जीवो ज्ञानी भवति। स निष्कर्ममार्गीयो भवति। ये जीवाः आनन्दरूपास्तेषां सर्वधर्मत्यागात् रसानन्दस्वरूपा महालीलोपसेव्यमानाः आसते। तान् धर्माधर्मौ न बाधेते तस्यां महालीलायाम्॥ १४८॥

[आगे के क्रम में परब्रह्म के त्रिगुणात्मक (सच्चिदानन्द) स्वरूप तथा उसी के अनुरूप जीव एवं माया की दार्शनिक व्याख्या की गयी है]

नारायण ने कहा— सुनो! अनादि संसिद्ध यह जीव चित् का अंश है। अच्छा! यदि जीव चिदंश है, तो अज्ञान से जड़ता को क्यों प्राप्त होता है ? हाँ! जैसे अनादि संसिद्ध यह जीव सङ्घ है, वैसे ही माया भी अनादि सिद्ध है। वह तीन प्रकार से घेरती है। अतः जीव भी त्रिविध हो जाते हैं। अच्छा! जीव सङ्घ त्रिविध हैं, वर्णन कीजिए। वे बोले- सद्रूप संसारात्मक है। जो नाना कर्म करता है। वर्णाश्रम धर्म के साधनों का प्रयोग करता है। उत्पत्ति ही उनकी स्थिति है। चिद्रूप जीव ज्ञानी होता है। वह निष्काममार्गी होता है। जो जीव आनन्दरूप हैं, वे सब धर्मों को त्यागकर रसानन्दस्वरूप हुए महालीला का सेवन करते हुए रहते हैं। उस महालीला में धर्माधर्म बाधा नहीं पहुँचाते॥ १४८॥

सोवाचेदम्। कया मायया संयुज्यमानो जीवः कर्ममार्गरतो भवति? स होवाच। मायारूपं त्रिविधम्। यद्रूपं सद्रूपं तन्मायासंवलितोऽयं जीवसङ्घःकर्मकाण्डरतो भवति। चिद्रूपया मायया संवलितो जीवसङ्घः संन्यासी भवति। आनन्दसंवलितया माययानन्दात्मक एव भवति। आनन्दरसस्तु महालीलायाः कारणं भवतितराम्। तेषां कर्माणि याथातथ्येन वदामि। तेषां ये कर्ममार्गीयाः कर्मप्रतिपादका महावनलीलायामप्रत्ययकारिणोऽसुराः कर्मजडा अन्योपासकास्तदुपाधितयान्यमार्गं न विन्दन्ते॥ १४९॥

लक्ष्मी ने पूछा— किस माया से घिरा जीव कर्ममार्ग में आसक्त होता है। वे बोले— माया भी त्रिविध है। जो सद्रूप है, वह मया से संवलित यह जीव सङ्घ कर्मकाण्डरत है। चिद्रूप माया से घिरा जीवसङ्घ संन्यासी होता है। आनन्द संवलित माया से घिरा (जीवसङ्घ) आनन्दात्मक ही होता है। आनन्दरस ही तो महालीला का कारण है। उनके कर्मों को यथा-तथ्य रूप में कहता हूँ। उनमें जो कर्ममार्गी कर्म-प्रतिपादक महावनलीला में विश्वास न करने वाले असुर कर्मजड़ अन्योपासक हैं, वे इनसे ग्रसित हुए किसी अन्य मार्ग को स्वीकार नहीं करते हैं॥ १४९॥

अग्रेरुपासकास्ते यज्ञकर्मवासनात्मकलिङ्गशरीरेषूत्पत्तिं भजन्ते। तेन वासनात्मकेन लिङ्गेनोत्पत्तिस्थितिलयानापद्यन्ते। तस्माल्लिङ्गशरीरात्मकोऽयं जीवस्य स्वभावः। यदा सर्वा वासना विधूय महालीलायां प्रविष्टचित्तो जायते अहो लक्ष्मि लीलां ज्ञात्वा ज्ञात्वा ध्यायमानो देहजनितकामक्रोधलोभमोहभयसुखदुःखलज्जालज्जाज्ञान मोहमत्सरादीनागममन्त्रतन्त्रौषधिरस-

ज्योतिषवाग्विलासप्रपन्नान् नाना संसारजनितताननेकशः सात्त्विकराजसतामसान् संराजमानधर्माधर्माननतितरामभिमानगुणान्निरस्यन् महालीलां प्रविष्टो भवेत्। आत्मानं तन्मयमातनोति। अन्यत्र क्वापि विषयान्तरे प्रविष्टचित्तस्तदा तं लिङ्गं प्राप्नोति॥ १५०॥

अग्नि के उपासक यज्ञ कर्मों से वासनात्मक शरीरों में उत्पत्ति प्राप्त करते हैं। उस वासनात्मक लिङ्ग शरीर से उत्पत्ति-स्थिति-लय को प्राप्त करते हैं। लिङ्ग शरीरात्मक होना जीव का स्वभाव है। जब सब वासनाओं को तिरस्कृत करके महालीला में चित्त प्रवेश करता है। अरे लक्ष्मि! लीला को बार-बार जानकर ध्यान करता हुआ, देहजनित काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, सुख-दुःख, लज्जा-अलज्जा, अज्ञान, मोह, मत्सर आदि को, वेद-शास्त्र, मन्त्र, तन्त्र, औषधि, रस, ज्योतिष के वाग्विलासों को, संसारजनित नाना प्रकार के सात्विक, राजस, तामस भावों को तथा उनसे उत्पन्न अन्य विकाररूप धर्म-अधर्मों को, विशेषकर अभिमान-अहङ्कार गुण को निकालकर महालीला का अधिकारी बनता है। अपने को तन्मय कर लेता है। अन्य कहीं मन लगाने वाला उसी लिङ्ग शरीर को प्राप्त करता है॥ १५०॥

सा लक्ष्मीरुवाचेदम्। त्वयोक्तं जीवस्य मायाधीनत्वं जीवो येन वासनालिङ्गशरीरे उत्पद्यमानो भवति। किं बलं येन प्रयत्नवान् भवति? स होवाच। तस्मान्महाभाग्योदयेन यदृच्छया गुरुसहायेन सङ्गेन साधूनामन्यधर्मरहितानां विधूतपापं मनस्तन्मयतया तेन मार्गेण लिङ्गशरीरं विधूय महालीलायां व्रजेश्वरीं रसिकानन्देन सहोपसेवमान आसीदति॥ १५१॥

लक्ष्मी ने पूछा– आपने बताया कि जीव मायाधीन है, जिससे वासना लिङ्ग शरीर में उत्पन्न होता है। वह बल क्या है? जिससे प्रयत्नवान् होता है। नारायण बोले– महाभाग्य के उदय होने से, यदृच्छावश, गुरुकृपा से अथवा साधुओं की सङ्गति से, अन्य धर्म से रहित भक्तों का मन जब पापमुक्त हो जाता है तथा तन्मयता प्राप्त हो जाती है, तब लिङ्ग शरीर को त्याग ब्रजेश्वरी-रसिकानन्द के साथ महालीला में बैठने का सौभाग्य प्राप्त करता है॥ १५१॥

सा लक्ष्मीरुवाचेदम्। जीवस्य रूपं कीदृग्विधम्? केन रूपेणोत्पत्तिस्थितिलयानापद्यते? स होवाच। अनिर्वचनीयोऽयं जीवः। नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहत्यग्निर्मारुतो नैनं शोषयत्यापो नैनं क्लेदयन्ति। यां यां वासनां प्राप्नोति तं तं लिङ्गशरीरं प्राप्नुवन्नास्ते। अत्यन्तं वासनाबद्धो जीवः। वासनामुक्तो महालीलायामासक्तः संसारे ननिर्विण्णो नातिसक्तो भवति। संसिद्धोऽयं जीवसङ्घो मायोपाधिभेदेन नानाशरीरभावमाप्नोति। असंसिद्धस्तु रक्तशरीरसंयुक्तो भवति॥ १५२॥

लक्ष्मी ने पूछा– जीव का रूप कैसा है? किस रूप से उत्पत्ति स्थिति लय को प्राप्त करता है। नारायण बोले– यह जीव अनिर्वचनीय है अर्थात् कहने के योग्य नहीं है। इसे न शस्त्र काट सकते हैं, न अग्नि जला सकता है, न वायु सुखाने में सक्षम है, न जल गलाने में सक्षम है। जीव जिस-जिस वासना को प्राप्त होता है, उसी-उसी लिङ्ग शरीर को धारण करता है। जीव वासनाओं से आबद्ध है। वासना-मुक्त हुआ महालीला में आसक्त, न संसार में दुखी होता है न आसक्त होता है। अनादि संसिद्ध जीवसङ्घ माया के उपाधि भेद से नाना शरीरों को प्राप्त करता है। असंसिद्ध तो रक्त शरीर से संबद्ध होता है॥ १५२॥

सोवाचेदम्। शरीरं कीदृग्विधम् तस्मिन् शरीरे के गुणा के अवगुणाः? केन बन्धः शरीरे? केनैव मुक्तिः तस्मिन् शरीरे? को निरुपाधिः? तस्मिन् किं ज्ञानं भवति? कीदृशेन शरीरेण बन्धः? कीदृशेन मोक्षो भवति? स होवाच। शरीरभेदाः द्विविधाः। शरीरमेव कर्मोपजनितं यदृच्छया चोत्पन्नं तस्या निकुञ्जदेव्याः अनुग्रहाद्भवति। कर्मजडानां कर्मसंभूतवासनाजडात्मकं भवति। येषामनुग्रहात्संभवो भवति। तेषां स्नेहमार्गे रुचिरास्ते। येषां निर्वाणमार्गे रुचिर्भवति ते संन्यासिनो भवन्ति॥ १५३॥

लक्ष्मी बोलीं- शरीर कैसा है? उसमें कौन गुण अथवा अवगुण हैं? शरीर में किससे बँधा है? किससे मुक्ति है? कौन निरुपाधि है? उसमें क्या ज्ञान होता है? किस प्रकार के शरीर से बन्ध है, किस प्रकार के शरीर से मुक्ति है? नारायण बोले–शरीरों के दो भेद हैं, एक तो निजकर्मों के प्रयत्न से अथवा संयोग से उन निकुञ्ज देवी के अनुग्रह से प्राप्त होता है। दूसरा कर्मजड़ों का कर्मसंभूत वासना जड़ात्मक होता है। जिनका अनुग्रह से प्राप्त होता है। उनकी स्नेह मार्ग में रुचि होती है। जिनकी निर्वाण मार्ग में रुचि होती है, वे संन्यासी होते हैं॥ १५३॥

शरीरं तु एकादशेन्द्रियात्मकम्। पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि। पञ्च कर्मेन्द्रियाणि। उभयात्मकं मनो जायते। पञ्च महाभूतानि पञ्च तन्मात्राणि। त्रयो गुणाः। पञ्चविंशत्तमो जीवः। षड्विंशको महाविष्णुः सदा द्रष्टा भवति। इमे जीवाः शरीरोपाधिं भुञ्जानाः सुखं दुःखं प्राप्नुवन्तो भवन्ति। सर्वेषां शरीराणां समानगुणा भवन्ति। रागादयः कामक्रोधलोभमोहजरामरणसुखदुःखान्यनुभवन्त आपद्यन्ते। इदं शरीरं जरया ग्रस्तं गन्धर्वनगरोपमं मनोरथमयं भवति। ते सर्वे गुणा लिङ्गशरीरोदयादपेता लिङ्गं विधूयात्मानं तन्मयतां नयन्ति। ते रागादयो दोषाः शरीरसंवलिताः। ते कामक्रोधादयस्तदर्थे प्रयुज्यमानाः साधनरूपा भवन्ति? ॥ १५४॥

शरीर ग्यारह इन्द्रियों वाला है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और उभयात्मक मन है। पञ्चमहाभूत, पञ्चतन्मात्राएँ, तीन गुण, पच्चीसवाँ जीव, छब्बीसवें महाविष्णु सदाद्रष्टा रूप से विद्यमान हैं। ये जीव शरीर की उपाधि को भोगते सुख-दुःख को प्राप्त करते हैं। सब शरीरों के समान गुण होते हैं। राग आदि काम, क्रोध, लोभ, मोह, जरा, मरण, सुख-दुःख को अनुभव कराते हैं। यह शरीर जरा से ग्रस्त हो जाता है तथा गन्धर्व नगर जैसे सुन्दर मनोरथ शेष रहते हैं। ये सारे गुण लिंग शरीर के उदय से पूर्व ही निरस्त कर लिंग शरीर को नकार देते हैं अर्थात् उसमें वासना नहीं रहती, तब तन्मयता को प्राप्त कराते हैं। वे रागादि दोष शरीर से संवलित हैं। वे काम क्रोधादि दोष तदर्थ में प्रयोग किये गये साधनरूप हो जाते हैं॥ १५४॥

सोवाचेदम्। कथं रागादयः साधन रूपा भवन्ति? येषां संसर्गात् विकलतां प्रपेदिरे। भगवदर्थे प्रयुज्यमानाः रागादयः कथं निष्कर्मतां प्राप्नुवन्ति? एष काम एष क्रोध एष लोभ एष मोह इत्यात्मलीलार्थे जीवं प्रयोजयति। स होवाच। माया त्रिविधा भवति। सद्रूपया माययोत्पादिताः कामक्रोधादयो गुणाः संसारोत्पत्तिप्रयोजकाः भवन्ति। चिद्रूपे आश्रिता जीवास्ते तान् गुणान्

प्रपद्य जडतां प्रपेदिरे। आनन्दरूपे आश्रिता जीवास्तन्मयतां प्रपेदिरे। संसारितोऽयमानन्दमयो रस आत्मानमानन्दमयतया प्रपद्यते। रागादय: कामक्रोधादयो गुणा: साधनरूपा भवन्ति॥ १५५॥

लक्ष्मी बोलीं– यह कैसे ? जिनके संसर्ग से मनुष्य विकलता प्राप्त करता है, भगवदर्थ में प्रयुक्त किये वही दोष कैसे निष्कर्म हो जाते हैं ? यह काम, यह क्रोध, यह लोभ, यह मोह इन सबको जीव आत्मलीला में प्रयोग करता है। नारायण ने कहा– माया त्रिविधा है। सद्रूपा माया से उत्पन्न काम, क्रोधादि गुण संसार की उत्पत्ति के प्रयोजक हैं। चिद्रूपा माया से आश्रित जीव उन गुणों से जड़ता को प्राप्त करते हैं। आनन्दरूपा माया से आश्रित जीव तन्मयता को प्राप्त होते हैं। संसारित मन में प्रसरित यह आनन्दमय रस आत्मा को आनन्द से भर देता है। रागादि काम, क्रोधादि गुण साधनभूत हो जाते हैं॥ १५५॥

अहो! रसमार्गं प्रपद्यमानोऽयं जीवसङ्घ आत्मानं तन्मयतया ध्यात्वा वासनात्मकं लिङ्गं विधूयात्मभावमभ्यस्य तन्मयतां प्राप्नोति। यां यां वासनामात्मा विलापयमानो भवति तत्तद्भावेन तत्तल्लिङ्गं विलीयमानं भवति। अत्यन्तासक्तस्तस्मिन् मार्गे लिङ्गं विधूयापपाप्मा भावापन्नो भवेत्। यो मार्गस्ते कथितोऽयं मार्गो देवादिना न ज्ञात:। रुद्रादिना न ज्ञात:। तन्मण्डलमुपासमानस्तन्मयतां प्रपद्यते। इदं रहस्यं कथितम्। न वचनीयं कस्यचित्त्वया। स्वेष्टं हृदि ध्यात्वा तद्भावेन प्रलीयते। अहो लक्ष्मि इमं मार्गं समाश्रिता भक्ता: शरीरोपाधिधर्मान् मुक्त्वा तद्गुणतां प्राप्नुवन्तीति सामगा निरन्तरं रहसि सङ्गायन्तो भवन्ति॥ १५६॥

अरे! रस मार्ग को प्राप्त हुआ यह जीव-समूह अपने को तन्मयता से ध्यान करता हुआ, वासनात्मक लिङ्ग शरीर को नकार कर, आत्म भाव का अभ्यास करके तन्मय होता है। जिस-जिस वासना को आत्मा विलीन करता है, उस-उस भाव से लिङ्ग भी विलीन होता है। अत्यन्त आसक्त हुआ उस (आनन्दरस) मार्ग में लिङ्ग से विलग हो पापमुक्त हो, भावापन्न होता है। जो मार्ग मैंने तुम्हें बताया है, वह देवताओं को भी अज्ञात है। रुद्रादि को भी अज्ञात है। उस मण्डल की उपासना करता हुआ ही तन्मयता को प्राप्त करता है। यह रहस्य ही कहा है। तुम्हें किसी से भी कहना नहीं है। अपने इष्ट का हृदय में ध्यान करो तथा उसी भाव में विलीन हो जाओ। अहो लक्ष्मि! इस मार्ग का आश्रय लिए भक्त शरीरोपाधि के धर्मों का त्याग कर तद्गुणता को प्राप्त करते हैं, ऐसा सामगान करने वाले निरन्तर एकान्त में गाते रहते हैं॥ १५६॥

यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत्। तत्सर्वं क्षम्यतां राधे प्रसीद हरिवल्लभे॥ १५७॥

जो अक्षर पदभ्रष्ट हो गया हो, जो मात्राहीन रह गया हो। हे राधे! उस सबको क्षमा करो, हे हरिप्रिये! प्रसन्न हो॥ १५७॥

॥ इति सामरहस्योपनिषत् समाप्ता ॥

॥ स्वरूपोपनिषद् ॥

॥ ॐ नमः शिवाय ॥

अहमेव परं ब्रह्म वासुदेवाख्यमव्ययम् ।
इति स्यान्निश्चितो मुक्तो बद्ध एवान्यथा भवेत् ॥ १ ॥

मैं ही वासुदेव नामक अव्यय (अपरिवर्तनशील) परम ब्रह्म हूँ। ऐसा (मत) हो, तो निश्चय ही मुक्त हो जाता है । अन्यथा संसार में बँधा ही (अमुक्त) रहता है ॥ १ ॥

अहमेव परं ब्रह्म न चाहं ब्रह्मणः पृथक् ।
इत्येवं समुपासीत ब्राह्मणो ब्रह्मणि स्थितः ॥ २ ॥

मैं ही परम ब्रह्म हूँ और मैं ब्रह्म से अलग नहीं हूँ। ब्रह्म में दत्तचित्त होकर (मन लगाकर), जो इस प्रकार उपासना करता है, वही ब्राह्मण है॥ २ ॥

अहमेव परं ब्रह्म निश्चितं चित्त चिन्तितम् ।
चिद्रूपत्वादसङ्गत्वादबोधत्वात्प्रयत्नतः ॥ ३ ॥

चिद् रूप होने से, असंग होने से, अबोध होने से, मैं ही परम ब्रह्म हूँ, भली-भाँति प्रयत्नपूर्वक चित्त में चिन्तन कर जिसने यह निश्चय कर लिया है ॥ ३ ॥

सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं चैतन्यं च निरन्तरम् ।
तद् ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा कथं वर्णाश्रमी भवेत् ॥ ४ ॥

सभी उपाधियों (आवरणों) से हटा हुआ चैतन्य लगातार (सदा विद्यमान) वह ब्रह्म मैं हूँ- ऐसा जानकर वह कैसे वर्ण और आश्रम (के बन्धनों में पड़ने) वाला हो? ॥ ४ ॥

अहं ब्रह्मास्मि यो वेद स सर्वं भवतित्विदम् ।
न चान्या ईशते देवास्तस्यात्मैषां भवेद्धि सः ॥ ५ ॥

जो यह जान लेता है कि मैं ब्रह्म हूँ, वह तो यह सब कुछ हो जाता है । वह अन्य देवों को स्वामी नहीं मानता उसकी आत्मा इन (परमात्मा) की हो जाती है ॥ ५ ॥

अन्येषामहमन्योस्मीत्युपास्ते योन्यदेवता । न स वेद नरो ब्रह्म स देवानां पशुर्यथा ॥ ६ ॥

दूसरा कोई जो मैं अन्य हूँ- यह समझकर अन्य देवता की उपासना करता है । वह मनुष्य ब्रह्म को नहीं जानता । वह देवताओं में पशु (बलि) के समान है ॥ ६ ॥

अहमात्मा न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक् ।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्त स्वभाववान् ॥ ७ ॥

मैं आत्मा हूँ । अन्य नहीं हूँ । मैं ब्रह्म हूँ । दुःखी नहीं हूँ । मैं सत् चित् आनन्दरूप हूँ। मैं नित्य (सदा) मुक्त हूँ । स्वभाव (अपनी वास्तविक स्थिति) से युक्त हूँ ॥ ७ ॥

आत्मानं सततं ब्रह्म यः कुर्यादात्मचिन्तनम् ।
तन्महापातकं हन्ति तमः सूर्योदयस्तथा ॥ ८ ॥

स्वयं को ब्रह्म (मानकर) जो लगातार आत्मचिन्तन करता रहता है । उसके महापाप को (ईश्वर उसी प्रकार) नष्ट करता है, जैसे सूर्योदय अन्धकार को नष्ट करता है ॥ ८ ॥

अज्ञानाद् ब्रह्मणो जातमाकाशं बुद्बुदोपमम् ।
आकाशाद्वायुरुत्पन्नो वायोस्तेजस्ततो ह्यपः ॥ ९ ॥

ब्रह्म के अज्ञान से बुद्बुदे के समान आकाश उत्पन्न हुआ । आकाश से वायु उत्पन्न हुआ । वायु से तेज तथा तेज से जल उत्पन्न हुआ ॥ ९ ॥

अद्भ्यश्च पृथिवी जाता ततो व्रीहियवादिकम् ।
पृथिव्यप्सु पयौवह्नौवहिर्वायौ नभस्तथा ॥१०॥

जल से पृथिवी उत्पन्न हुई । उससे चावल, जौ आदि उत्पन्न हुए । पृथ्वी में जल,जल में अग्नि, वायु में अग्नि और आकाश भी वैसा अर्थात् वायु का उपादानकारण है ॥ १० ॥

नभश्चाव्याकृतितश्च शुद्धे शुद्धोऽस्म्यहं हरिः ।
अहं विष्णुरहं विष्णुरहं विष्णुरहं हरिः ॥ ११ ॥

अविकार (ब्रह्म) से आकाश (का उद्भव हुआ) शुद्ध से शुद्ध मैं हरि हूँ । मैं विष्णु, मैं विष्णु, मैं विष्णु, (और) मैं हरि हूँ ॥ ११ ॥

कर्तृभोक्तादिकं सर्वं यदविद्याऽहमेव च ।
अच्युतोऽहमनन्तोऽहं गाविन्दोऽहमहं हरिः ॥ १२ ॥

कर्त्ता, भोक्ता आदि जो सब अविद्या है, (वह) मैं ही हूँ। मैं अच्युत हूँ, मैं अनन्त हूँ, मैं गोविन्द हूँ, (और) मैं हरि हूँ ॥ १२ ॥

आनन्दोऽहमशेषोऽहमजोऽहममृतोऽस्म्यहम् ।
नित्योऽहं निर्विकारोऽहं निराकारोऽहमव्ययम् ॥ १३ ॥

मैं आनन्द हूँ, मैं अशेष (सम्पूर्ण) हूँ, मैं अजन्मा हूँ, मैं अमृत (अमर) हूँ। मैं नित्य हूँ। मैं निर्विकार (अपरिपर्तनशील) हूँ। मैं निराकार हूँ। मैं अव्यय एक (एकरूप हूँ)॥१३॥

सच्चिदानन्दरूपोऽहं पञ्चकोशातिगोऽस्म्यहम् ।
अकर्त्ताऽहमभोक्ताऽहमसङ्गः परमेश्वरः ॥ १४ ॥

मैं सत् चित् आनन्द रूप हूँ। मैं पाँचों कोशों के पार (अतिरिक्त हूँ) हूँ। [पाँच कोश इस प्रकार हैं- अन्नमय कोश या स्थूल शरीर, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश (२, ३, ४ से मिलकर लिंग शरीर बनता है) तथा आनन्दमय कोश अर्थात् मोक्ष।] मैं कर्त्ता नहीं हूँ। मैं निर्लिप्त (असंग-किसी का साथ न करने वाला) परमेश्वर हूँ ॥ १४ ॥

सदासत्सन्निधानेन चेष्टते सर्वमिन्द्रियः ।
आद्यमध्यान्तमुक्तोऽहं न बद्धोऽहं कदाचन ॥ १५ ॥

मैं असत् (अविधमान) के आधार पर सब इन्द्रियाँ चेष्टा करती है। मैं आदि, मध्य और अंत से मुक्त (रहित) हूँ। मैं कभी भी (किसी तरह) बँधा नहीं हूँ ॥ १५ ॥

स्वभावनिर्मलः शान्तः स एवाहं न संशयः ।
ब्रह्मैवाहं न संसारी मुक्तोऽहमिति भावयेत् ॥ १६ ॥

इसमें सन्देह नहीं कि वही मैं स्वभाव से निर्मल हूँ, शान्त हूँ। मैं ब्रह्म ही हूँ, संसार नहीं हूँ, मैं मुक्त हूँ,- ऐसी भावना करनी चाहिए ॥ १६ ॥

अशक्नुवन्भावयितुं वाक्यमेतत्सदा पठेत् ।
ध्यानयोगेन मासैकं ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ १७ ॥

मनन करने में समर्थ न हो, तो यह वाक्य पढ़े या इस वाक्य का पाठ करे। एक मास के ध्यान योग से ब्रह्महत्या दूर हो जाती है ॥ १७ ॥

संवत्सरं सदाभ्यासात्सिद्धयष्टकमवाप्नुयात् ।
यावज्जीवं सदाभ्यासाज्जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥ १८ ॥

एक वर्ष तक सदा अभ्यास करने से (साधक) वाञ्छित अष्ट सिद्धि प्राप्त करता है। जीवन भर नित्य अभ्यास करने वाला जीवन मुक्त कहलाता है ॥ १८ ॥

एवं योऽभ्यस्यते नित्यमैक्यात्मपरमात्मनोः ।
नाहं देहो न च प्राणो नेन्द्रियाणि तथैव च ॥ १९ ॥

इस प्रकार जो नित्य आत्मा और परमात्मा की एकता का अभ्यास करता है। (वह ऐसा चिन्तन करे कि)न मैं देह हूँ, और न प्राण हूँ, और न इन्द्रिय हूँ ॥ १९ ॥

न मनोऽहं न बुद्धिश्च नैव चित्तमहंकृतिः ।
सर्वज्ञोऽहमनन्तोऽहं सर्वशः सर्वशक्तिमान् ॥ २० ॥

न मैं मन हूँ, न बुद्धि हूँ, न चित्त हूँ, न अहंकार हूँ। मैं सर्वज्ञ हूँ, मैं अनन्त हूँ, मैं सर्वशः (सर्वत्र) हूँ, मैं सर्वशक्तिमान हूँ ॥ २० ॥

आनन्दसत्यबोधोऽहमिति ब्रह्मानुचिन्तनम् ।
नाहं पृथिवीं न सलिलं न वह्निरनिलस्तथा ॥ २१ ॥

आनन्द के अस्तित्व) की महत्ता का बोध मैं हूँ- इस प्रकार ब्रह्म का बार-बार मनन करे। न मैं पृथिवी हूँ, न जल हूँ, न अग्नि हूँ, न पवन हूँ ॥ २१ ॥

न चाकाशो न शब्दश्च न च स्पर्शस्तथा रसः ।
नाहं रूपो न गन्धं च न मायाहं न संसृतिः ॥ २२ ॥

न आकाश हूँ, न शब्द हूँ, न स्पर्श हूँ और न रस हूँ। न मैं रूप हूँ, न गन्ध हूँ, न माया हूँ और न आवागमन वाला संसार चक्र (या सृष्टि हूँ ॥ ४४ ॥

सदासाक्षिस्वरूपताच्छिव एवास्मि केवलम् ।
मय्येव सकलं जातं मयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ २३ ॥

सदा साक्षि स्वरूप (प्रत्यक्षरूपता) के कारण ही मैं केवल शिव हूँ। सब कुछ मुझ में ही उत्पन्न हुआ है। मुझमें ही सब प्रतिष्ठित (या स्थित) है ॥ २३ ॥

मयि सर्वं लयं याति तद्ब्रह्माद्वयमस्म्यहम् ।
अयं प्रपञ्चो मिथ्यैव सत्यं ब्रह्माहमव्ययम् ॥ २४ ॥

मुझमें ही सब विलीन हो जाता है। इसलिए मैं अद्वितीय केवल ब्रह्म हूँ। यह (सांसारिक) प्रपञ्च (विस्तार) झूठा है। सत्य तो केवल मैं अव्यय (अपरिवर्तनशील) ब्रह्म हूँ ॥ २४ ॥

तत्र प्रमाणं वेदान्तानुभवो गुरवस्तथा ।
ब्रह्मैवाहं न संसारी न चाहं ब्रह्मणः पृथक् ॥ २५ ॥

उस विषय में वेदान्त का अनुभव और गुरुजन प्रमाण हैं- (सत्य यह है कि) मैं ब्रह्म ही हूँ, संसारी नहीं हूँ और मैं ब्रह्म से अलग भी नहीं हूँ ॥ २५ ॥

नाहं देही न मे देहः केवलोऽहं सनातनः ।
तथा च श्रुत्यन्तरेऽपि ॥ २६ ॥

न मैं देहवाला हूँ, मेरी कोई देह नहीं है, मैं केवल (अद्वितीय) सनातन (चिरन्तन) हूँ। जैसा कि अन्य श्रुति में भी (पाया जाता) है ॥ २६ ॥

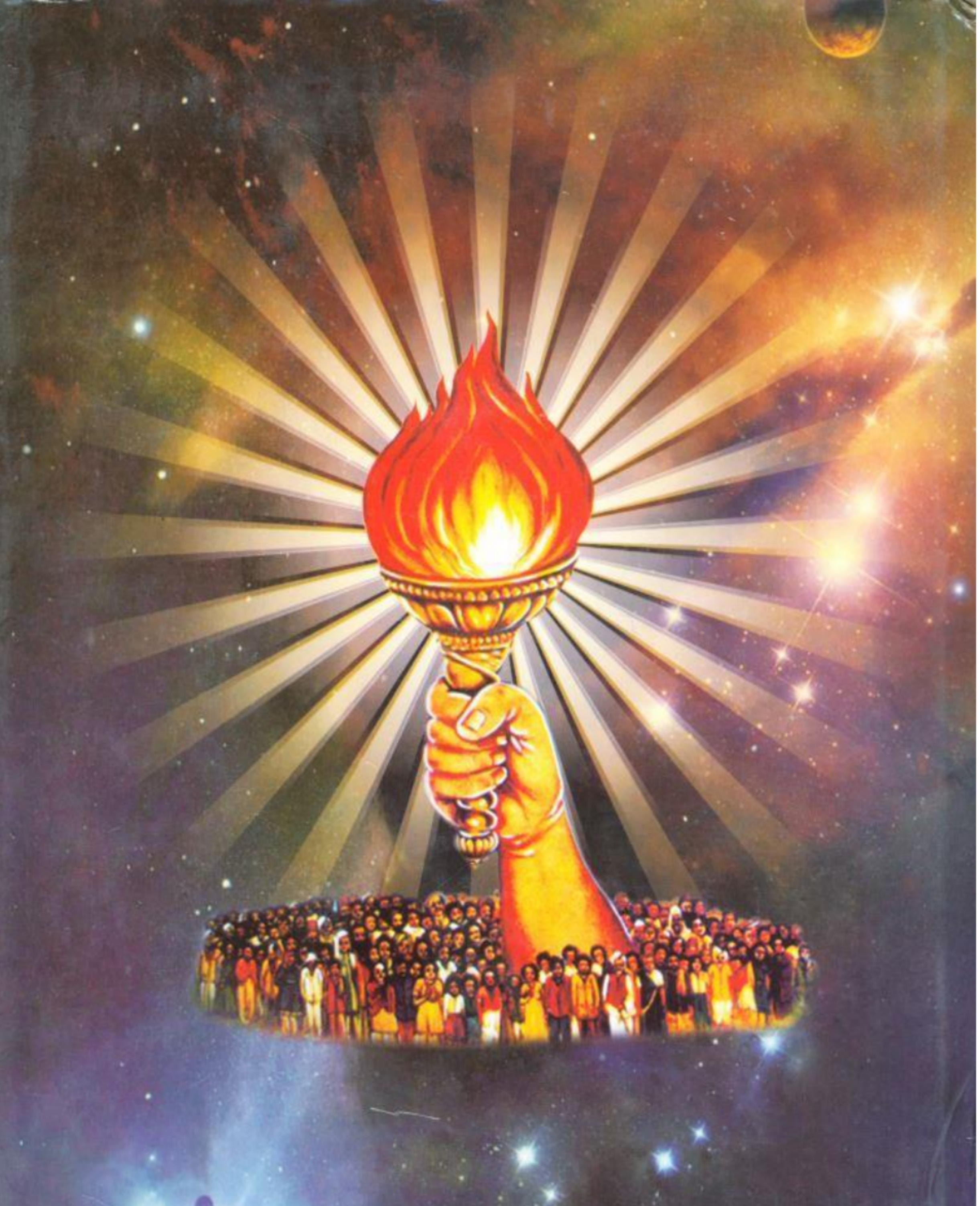
एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन ।
इति अथर्वणवेदे स्वरूपोपनिषत्सपूर्णाः ॥ २७ ॥

ब्रह्म एक ही है, अद्वितीय है, न यहाँ किसी प्रकार की (उसमें) अनेकता है। अथर्ववेद में स्वरूपोपनिषद् पूर्ण हुई ॥ २७ ॥

॥ इति शिवम् ॥

॥ यही शुभ हो ॥

॥ इति स्वरूपोपनिषत्समाप्ता ॥

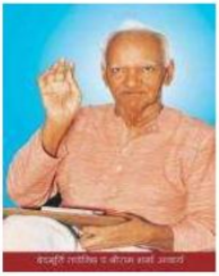


प्रकाशक- श्रीवेदमाता गायत्री ट्रस्ट (TMD), शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार. (उत्तराखण्ड)

HIN-B-0038

Code: AG 37

: युगऋषि पं. श्रीराम शर्मा आचार्य- संक्षिप्त परिचय :



ज्यादा जानकारी यहाँ से प्राप्त करें :
http://hindi.awgp.org/about_us

- **विचारक्रान्ति अभियान के प्रणेता** : विचारों को परिस्कृत और ऊँचा उथाने मे समर्थ 3000 से भी अधिक पुस्तकों के लेखन के माध्यम से विश्वव्यापी विचार क्रान्ति अभियान की शरुआत की ।
- **वेद, पुराण, उपनिषद के प्रसिद्ध भाष्यकार** : जिन्हों ने चारों वेद, 108 उपनिषद, षड दर्शन, 20 स्मृतियाँ एवं 18 पुराणों का युगानुकूल भाष्य किया, साथ ही 19 वाँ प्रज्ञा पुराण की रचना भी की ।
- **3000 से अधिक पुस्तकों के लेखक** : मनुष्य को देवता समान, घर-परिवार को स्वर्ग, समाज को सभ्य और समग्र विश्वराष्ट्र को श्रेष्ठ बनाने मे समर्थ हजारों पुस्तकें लिखकर समयानुकूल समर्थ मार्गदर्शन प्रदान किया ।
- **युग-निर्माण योजना के सूत्रधार** : जिन्होंने शतसूत्री युग निर्माण योजना बनाकर नये युग की आधार शिला रखी ।
- **वैज्ञानिक-अध्यात्मवाद के प्रणेता** : जिन्हों ने धर्म और विज्ञान के समन्वय की प्रथम प्रयोगशाला 'ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान' स्थापित कर सिद्ध किया कि "धर्म और विज्ञान विरोधी नहीं, पुरक है "।
- **'२१ वीं सदी : उज्जवल भविष्य' के उद्घोषक** : जिन्हों ने '२१ वीं सदी : उज्जवल भविष्य' का नारा दिया तथा युग विभीषिकाओं से भयग्रस्त मनुष्यता को नये युग के आगमन का संदेश दिया ।
- **स्वतंत्रता संग्राम के कर्मठ सैनानी** : जिन्हों ने महात्मा गाँधी, मदन मोहन मालवीय, गुरुवर रविन्द्रनाथ टैगोर के साथ राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए संघर्ष किया एवं स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी "श्रीराम मत्त" के रुप में प्रख्यात हुए ।
- **गायत्री के सिद्ध साधक** : जिन्हों ने गायत्री और यज्ञ को रुढियों और पाखण्ड से मुक्त कर जन-जन की उपासना का आधार तथा सद्‌बुद्धि एवं सतकर्म जागरण का माध्यम बनाया ।
- **तपस्वी** : जिन्होंने गायत्री की कठोरतम साधना कर २४-२४ लाख के २४ महापुरश्चरण २४ वर्षो में सम्पन्न किया । प्रकृति प्रकोप को शांत कर अनिष्टों को टाला, सृजन सम्भावनाओं को साकार किया ।
- **अखिल विश्व गायत्री परिवार के जनक** : जिन्हों ने अपने जीवनकाल में ही अपने साथ करोडों लोगों को आत्मियता के सूत्र में बाँधकर विश्व व्यापी 'युग निर्माण परिवार' - 'गायत्री परिवार' का गठन किया ।
- **समाज सुधारक** : जिन्हों ने नारी जागरण, व्यसन मुक्ति, आदर्श विवाह, जाति-पाँति प्रथा तथा परंपरागत रुढियों की समाप्ति हेतु अद्‌भूत प्रयास किए एवं एक आदर्श स्वरुप समाज में प्रस्तुत किया ।
- **ऋषि परम्परा के उद्धारक** : जिन्हों ने इस युग में महान ऋषियों की महान परंपराओं की पुनर्स्थापना की । लुप्तप्राय संस्कार परंपरा को पुनर्जीवित कर जन-जन को अवगत कराया ।
- **अवतारी चेतना** : जिन्होंने "धरती पर स्वर्ग के अवतरण और मनुष्य में देवत्व के जागरण" की अवतारी घोषणा को अपना जीवन लक्ष्य बनाया और चेतना का ऎसा प्रवाह चलाया कि करोंडों व्यक्ति उस ओर चल पड़े ।

गायत्री परिवार जीवन जीने कि कला के, संस्कृति के आदर्श सिद्धांतों के आधार पर परिवार,समाज,राष्ट्र युग निर्माण करने वाले व्यक्तियों का संघ है। **वसुधैवकुटुम्बकम्** की मान्यता के आदर्श का अनुकरण करते हुये हमारी प्राचीन ऋषि परम्परा का विस्तार करने वाला समूह है गायत्री परिवार। एक संत, सुधारक, लेखक, दार्शनिक, आध्यात्मिक मार्गदर्शक और दूरदर्शी युगऋषि पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी द्वारा स्थापित यह मिशन युग के परिवर्तन के लिए एक जन आंदोलन के रूप में उभरा है।